# प्रस्तावना.

हम ईश्वरका वारवार धन्यवाद करते है कि अपने सङ्कल्पानुसार "श्रुतिबोध" का पहला अङ्क अपने पाठको के हाथो मे सादर समर्पित करनेका सौभाग्य आज हमको प्राप्त हुआ । कोई भी देश हो उसके जीवित्व का मुख्य चिन्ह उसके धर्म की उन्नति ही है । कोई भी जाति हो उसका धर्म जितना सोज्ज्वल, जितना उच्च, युक्तिग्राह्य और सत्यमूलक होता है, उतना ही उसके मन और बुद्धि के परिपक्व होनेका पूर्ण विश्वास होता है । हम हिन्दुधर्मावलम्बियो का विश्वास है कि अन्य सब धर्मो की अपेक्षा हिन्दुधर्म अति श्रेष्ठ है । इसका प्रमाण यही है कि भारत की वर्तमान स्थिति मे भी श्रीमद्विवेकानन्द जैसे संन्यासी सुधार और सभ्यताके शिखरपर चढ़े हुए अमेरिका समान देशो मे गये और वहां अपनी विजयपताका सहज ही फहरा सके । पूर्वोक्त गुण जिस प्रमाणसे धर्म मे हो उसीपर उसकी श्रेष्ठता अवलम्बित है । हिन्दुधर्म की परिक्षा भी उसी कसोटी से करना होगी ।

वर्तमान समय मे ऐसी परीक्षा करनेमे हिन्दुधर्मावलम्बियो के लिये बहुतसी अडचने है । एक तो यह कि आज भारतवासियो का बहुतसा समय जीविका उपार्जन करनेमे ही व्यतीत हो जाता है। धर्मविषयक विचार करनेके लिये समय नहीं मिलता । यह ऐसा काम नही है जो थोड़े बहुत अवकाश के समय मे हो सके । धर्मविचार करनेमे धर्म के सर्वव्याप्त अङ्गो और उपाङ्गो की चर्चा सब दिशाओ और दृष्टियो से होना चाहिये । उसमे सृष्टि और महाकारण, जीव और परमेश्वर, अचिर और सनातन, असत् और शाश्वतिक, जड और चित् उत्पत्ति और संहार ऐसे बडे बडे अनेकानेक गहन प्रश्नो का ऊहापोह करना होता है । इनमे से किसी भी प्रश्नका विचार करनेमे बडे बडे विद्वानो को आयुपर्यन्त परिश्रम करना होता है । ऐसी दशा मे पाठक समझ सकते है कि इन सब और ऐसेही अन्य असंख्य प्रश्नो का विचार करके धर्मतत्व निकालने मे कितना परिश्रम पड़ सकता है । दिनका मुख्य भाग जीविकोपार्जन मे व्यतीत करने पर बड़े बडे तैलबुद्धि विद्वानो के मस्तिष्क मे भी धर्मविचार के गूढ प्रश्नो का प्रवेशित होना अत्यन्त कठीन है । जब यह बात है, तब सामान्य जनसमूह का तो कहना ही क्या !

हिन्दुधर्म का सच्चा ज्ञान प्राप्त करनेमे दूसरी एक और अडचन है । वह यह कि समस्त धर्मग्रंथ संस्कृतभाषा मे है । संस्कृत और देशी भाषाओ का अलगाव हुए सैकडो वर्ष व्यतीत हो गये । हिन्दुओ की धर्मरूपी निधि अबतक संस्कृत भाषा के दुर्गम कोट मे बन्द पड़ी है। इसीलिये आज हमारी बहुत शोचनीय दशा हो रही है । यों तो

हमने अपने अन्य समस्त व्यवहारों की शब्दसामुग्री उस कोट अर्थात् संस्कृत भाषा में से बाहर निकाली है, किन्तु अपने धार्मिक ज्ञानभण्डार को अभी तक नहीं निकाल सके। वह अभी तक वहीं पड़ा है। हमारी दशा ठीक उसी धनवानकीसी है जो कोश की कुंजी खो जानेके कारण बहुमूल्य वस्त्राभरण न धारण करके कंगालो की तरह फिरता हो। यो ही संस्कृत भाषारूपी कोश मे हमारे धर्मज्ञान की अनन्त निधि भी भरी पडी है, पर उसकी कुंजी मिलना हमको कठीण हो रहा है, इसीसे हम संसार की दृष्टि मे दीन और दरिद्री मालूम हो रहे है। इसीसे कहते है कि जब तक हम संस्कृत कोश मे से धर्मरूपी आभरण निकाल लाकर अपनी नैसर्गिक श्रेष्ठता से मंडित न हो जायंगे, तब तक हमारी गति नही है।

इसके सिवाय एक और बड़ी अड़चन है। वह यह कि हिन्दुधर्म का विवेचन करनेवाली इतनी दीर्घ ग्रन्थमाला है कि उसका मन्थन करना बड़े ही प्रयास का काम है। इसाई, मुसलमान, पारसी आदि का अपना अपना केवल एक धर्मग्रंथ है, पर हिन्दुधर्म की यह बात नही। हिन्दुधर्म मे अनेकानेक ऋषि, महर्षि और आचार्य हुए है। वे अपने अनुभव और अपनी स्फूर्ति से जनसमुदाय को सुमार्ग दिखलाने के लिये इतने ग्रन्थ रचे गये है कि अब उनका अवलोकन मात्र बड़े परिश्रम का काम हो गया है। यह प्रश्न दूसरा है कि बायबल की भांति एक ही ग्रन्थ मे धर्म का तत्व भरा हो अथवा इसके लिये अनेक ग्रन्थो की रचना होनी चाहिये। हर्ष की बात है कि हिन्दुधर्म मे दोनो ही बातो का सुभीता है। जो लोग एक ही ग्रंथ मे धर्म के सब तत्वो का होना चाहते है उनके लिये वैसा ग्रन्थ है, और जो अनेक ग्रन्थो को चाहते है उनके लिये भी सुभीता है। वेदो के प्रमाण अत्यन्त प्राचीन काल से अबाधितरूप से लिये जा रहे है। अनेकानेक धर्मज्ञानियो ने जो असंख्य ग्रंथभण्डार लिखा उसका सबसे उत्कृष्टसार वेदो ही मे उपस्थित है। यही नही, बल्कि उसमे से कितनो ही का विस्तार वेदो मे अत्यन्त हृदयंगम पद्धति से किया हुआ है। "श्रुतिबोध" मे यह सम्पूर्ण अमूल्य निधि हम पाठको के सामने उपस्थित करेगे। यहां उसका विशेष विस्तार करनेकी आवश्यकता नही। परन्तु इतना अवश्य कहेगे कि वेदो का साम्राज्य सहस्रो वर्षो से चल रहा है। यह कुछ मिथ्या आदरबुद्धि या अज्ञानजन्य श्रद्धापर अवलम्बित नही है, बल्कि उच्चतम ... की प्रखर सामर्थ्यपर ही उसका अवलम्बन है।

वेद चार है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषद् आदि अङ्गोपाङ्गो से वेदका विस्तार बहुत है। उतना ही उनमे विषयवैचित्र्य भी

है। ऋग्वेद मे प्रार्थना, यजुर्वेद मे यज्ञसंबंधी उपयुक्त मंत्र, सामवेद मे परमेश्वर का यशोगायन और अथर्ववेद मे धर्मज्ञान का विवेचन किया है।

फ्रान्स या जर्मनी का हिन्दुस्थान से कोई संबंध नही है। उन देशो से यह आशा नही की जा सकती कि वे भारत के आचार विचार साहित्य और विद्वानो की प्रशंसा करे। उसके अतिरिक्त भारत को वर्तमान काल मे प्रमुखत्व भी नही प्राप्त है। इससे यह संभव है कि. अन्य देशवासी हिन्दुओ को तिरस्कारदृष्टि से देखे। किन्तु ऐसी दशा होने पर भी उन देशों के विचारवान् पुरुषो ने हिन्दुओं के अनेक ग्रन्थो का बहुत आदर किया है। इससे स्पष्ट है और यह प्रत्येक निःपक्षपाती मनुष्य को मानना होगा कि उन ग्रंथो मे अवश्य कोई विलक्षण ओज और विशेपता है। वेदो का पता जब जर्मन पंडितो को लगा और उनकी दृष्टि इन पर पड़ी, तो वेदो के निसर्गसौन्दर्य को देख वे मुग्ध हो गये। उनमे से कितने ही तो यहां तक मोहित हुए कि उन्होने आद्योपान्त वेदो का अध्ययन कर डाला। किसीको वेदो की भाषा पसंद आई. किसीको उनकी सादी और सरल रचना भाई, उनके काव्य पर कोई लट्टु हो गया, कोई उनमे तत्वज्ञान पाकर आनंदित हुआ। इन सबमे रोट नामक विद्वान् ने बहुत परिश्रम पूर्वक वेदो का परिशीलन किया और वेदविषयक साहित्य चिरस्थायी करनेके अभिप्राय से उन्होने अन्य कई विद्वानो की सहायता से अपना सुप्रसिद्ध कोश बना डाला। हो सकता है कि अर्थविपयमे कुछ मत भेद हो. परन्तु इसमे सन्देह नही कि यह कोश बडी आस्था और अत्यन्त परिश्रम से तय्यार किया गया।

अर्वाचीन शोधको का मत है कि वेद कम से कम दस हजार वर्प पुराने है। इतने प्राचीन कालके ग्रंथ की भाषा अवश्य ही अव्यवस्थित, बेजोड और भद्दी होनी चाहिये. परन्तु वेदो मे यह बात नही है। बल्कि उनका काव्य सरल, सुबोध और मधुर है। कविताका सम्पूर्ण सौन्दर्य वेदो मे कूट कूट कर भरा हुआ है।

वेदो मे अक्षरो के ऊपर और नीचे रेखा मारकर कुछ स्वर दिखाये है। उन्हींके अनुसार वेदपाठी लोग अपनी गर्दन या हाथ हिलाकर मन्त्रो का उच्चारण करते है। वेदो की यह बात भी ध्यान देने योग्य है। भापण करनेमे शब्दो के कुछ विवक्षित अक्षरो पर जोर देकर उच्चारण करनेका प्रचार बहुतसी भाषाओ मे है। अक्षरो की ध्वनि की इस विशेपता को ही स्वर कहते है। जब तक वेदो का अधिक प्रचार था तब तक उनके अनुसार स्वरोच्चारण के नियम मालूम थे। किन्तु संस्कृत का प्रचार बन्द होनेके बाद उनके स्वरो का भी लोप हो गया। वेदो मे स्वर तीन प्रकार के है—उदात्त. अनुदात्त और स्वरित।

उदात्त स्वर दिखानेके लिये अक्षर पर कोई चिन्ह नहीं लगाते। अनुदात्त स्वर मे अक्षर के नोचे एक आड़ी रेखा खींच देते है और स्वरित स्वर दिखानेके लिये अक्षरकी ऊपर खड़ी लकीर खींचते है। स्वरित अक्षरके आगे जितने अनुदात्त अक्षर आते है उन पर कोई चिन्ह नहीं लगाया जाता। वेदो का स्वरूप शुद्ध रखने और उनका मूल्मार्थ और सत्यार्थ निश्चित करनेमे स्वरो का बहुत उपयोग किया गया है।

वेदो के विषय मे एक बात विशेषरूप से ध्यान देने की है। वह यह कि उनमे पाठान्तर नाम मात्र को भी नहीं है। हमारे प्राचीन ऋषि महर्षिओ ने ऐसे परिश्रम से उनकी रक्षा की, कि उनमे अपपाठ या भिन्नपाठ को घुसने को अवसर ही न मिला इसके लिये उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोडी ही है। यो तो वेदो के अर्थसंबंध मे बहुत कुछ मतभेद है, परन्तु जो कहीं ब्राह्मणो की उपेक्षा के कारण वेदो का पाठ भी शुद्ध न होता, तो आज तत्वार्थज्ञान का लोप ही हो जाता।

वेदो के अर्थसंबंध मे यहां कुछ कहना आवश्यक है। भगवान् यास्काचार्य ने ऐसे लोगो की निन्दा की है, जो बिना अर्थ समझे वेदो का पाठ करते है। इससे स्पष्ट है कि उनके समय मे भी ऐसे लोग थे जो अर्थ की अपेक्षा शब्दो का विशेष महत्व समझते थे। पीछे सायणाचार्य ने अपना सुप्रसिद्ध भाष्य तय्यार किया। उससे जनसाधारण को वेदो का अर्थ कैसा सुलभ हो गया यह सभी जानते है। उनके इसी प्रशंसनीय प्रयत्न के फलस्वरूप आज वेदो का अर्थ समझ ने मे सबको सहायता मिलती है। किन्तु कालचक्र के प्रभाव से दशा यहां तक बदल गई है कि अब आङ्गरेजी भाषा देशी भाषा के समान हो रही है। इस लिये यह आवश्यक है कि वेदो का भाषांतर अङ्गरेजी या किसी भाषा मे किया जाय। यह स्थिति अच्छी है अथवा बुरी, या संस्कृत भाषा का इतना ह्रास होने देना योग्य है अथवा नहीं, यह प्रश्न अलग है। परन्तु धर्म के पुनर्जीवित करनेका कैसा भी प्रयत्न काल देश वर्तमान के अनुसार करना ही चाहिये। इसी लिये हमने वेदो का भाषान्तर अङ्गरेजी, मराठी, हिन्दी और गुजराती इन चार प्रचलित भाषाओ मे करना आरंभ किया है। हिन्दी भाषा का प्रसार भारत मे सबसे अधिक है। तो भी जो उसको न समझे लिये हमने अंगरेजी भाषान्तर रखा है। इससे वे अपनी तृषा बुझा सकते है। प्रकार हमे आशा है कि इन चार भाषाओ के योग से हम वेदो का ज्ञान भारत कोने कोने मे फैला सकते है। आजपर्यन्त देश की किसी किसी भाषा मे वेदो का अनुवाद करने का थोडा बहुत प्रयत्न किया जा चुका है,

किन्तु समस्त देशवासियो के सुभीते की दृष्टि से और विस्तृत प्रमाण पर वेदो का अनुवाद करनेका यह पहिला ही प्रयत्न है। हम आशा करते है कि इसको यशस्वी करनेमे हमारे देशवन्धु अपनी सहानुभूति से हमको कृतार्थ करनेकी कृपा करेगे। आजतक वेदो के जितने भाषान्तर हुए है उनकी अपेक्षा यह भाषान्तर कुछ अलग दृष्टि से किया गया है। मनुष्य प्राय समाज, मत, कुटुंब आदि के पाश मे फंसा ही रहता है। इस लिये प्रत्येक विषय मे उसका कोई अपना विशेष मत हुआ करता है। ऐसा मनुष्य जब किसी वेद समान धर्मग्रन्थ का अनुवाद करता है, तो अनुवाद मूल का प्रतिबिंब प्राय नही होता. वह अनुवाद खास उसीके मत का चित्रपट होता है। ऐसा न होने पावे और वेदो का कथन ज्यो का त्यो अपने देशवासिओ के सामने धर सके. इस अभिप्राय से अपने निज के विचारो को अलग रखकर केवल सत्यबुद्धि से हम वेदो का भाषांतर करना चाहते है। इस भाषान्तर मे कही कही हम पौर्वात्य और पाश्चात्य इन दोनो ही विद्वानो को छोड़कर कोई तीसरा ही भिन्न अर्थ करेगे. परन्तु उससे हमारे पाठको को यह कदापि न समझना चाहिये कि वह अर्थ हमने किसी पक्ष, पंथ अथवा मतविशेष को पुष्ट करनेके अभिप्राय से किया है। ऐसा कभी न होगा। जो अर्थ हम स्वीकार नही करेगे उसका उल्लेख स्वतन्त्र अङ्क मे किया जायगा। उससे पाठको को आप ही विदित होगा कि कौनसा अर्थ उचित है और कौन नही। भाषान्तर मे जहां बहुत ही आवश्यक जचेगा वहो हम कुछ नोट देगे। किसी किसी जगह देवता अथवा पद-पाठ की बडी गडबड़ देखनेमे आती है, परन्तु वहां भी अभी हम कुछ नोट नही देगे। अभी केवल सरल भाषान्तर किया जावेगा। जहां कही बहुत विवाद होगा. या व्याकरण संबधी कोई विशेष कठीनता समझानेकी आवश्यकता होगी. या जहां अर्थ संबध मे टीकाकारो का तीव्र मतभेद होगा अथवा पदपाठ या देवता के संबध मे जहा विशेष-रूपसे स्पष्टीकरण करना आवश्यक होगा. इन सबका सविस्तर विचार करनेके लिये साधक बाधक प्रमाणो के साथ हम प्रसंगानुसार विशेष अङ्क निकाला करेगे। सामान्यपाठक लोग इतनी टीका टिप्पणी के बखेड़े मे नही पडना चाहते। उनको तो केवल सरल भाषान्तर चाहिये। भाषान्तर मे किसी प्रकार विच्छेद न हो इस कारण से हम अलग ही एक विशेष अंक छापना अच्छा समझते है। आशा है कि इससे साधारण पाठक और तार्किक विद्वान भी संतोष प्राप्त कर सकेगे।

भाषान्तर शुद्ध हिन्दी भाषा मे हो इसकी ओर हमारा विशेष लक्ष रहेगा। वेद यदि हिन्दी भाषा मे होते तो जैसी उनकी भाषा होती. हमारी राय मे ठीक वैसी ही भाषान्तर की भाषा होनी चाहिये। अच्छा भाषान्तर वही है जो पढने मे मनो-

रंजक हो। जिस भाषान्तर मे केवल मूल शब्द के समर्थकशब्द मात्र रख दिये गये हो वह भाषान्तर नही कहा जा सकता—वह केवल वेगार का काम है। भाषान्तर पढ़ कर यह न मालूम होना चाहिये कि यह भाषान्तर है।

मूल के शब्द ज्यो के त्यो उठाकर अनुवाद मे रख देनेसे भी अनुवाद होना नही कहा जा सकता। मूल के सब शब्द और सब अर्थ भाषान्तर मे प्रतिबिम्बित होना चाहिये। कभी कभी मूल के शब्दार्थ की अपेक्षा मूलका सकल्पित अर्थ और भी अधिक होता है। ऐसी जगह भाषान्तर मे अधिक शब्दो का व्यवहार करके अर्थ समझाना आवश्यक है। कही कही मूल मे कोई अर्थभरित गहन शब्द या प्रयोजनगर्भ वाक्यरचना आ जाती है ऐसे स्थानपर भी बिना अधिक शब्द के व्यवहार के काम नही चलता। इससे भाषान्तर मे कोई दोष नही आता, क्योकि ऐसा किये बिना अच्छा भाषान्तर हो सकता ही नही। उदाहरणार्थ

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम ॥ ऋ. १ १२. २

इस ऋचा मे जिस क्रम से शब्द रखे हुए है उसके देखते ही अर्थ की विशेषता का आभास होता है। इस सूक्त को गानेवाले मानो भक्ति मे इतने लीन हो गये है कि सदा की वाक्यरीति छोड़ कर "अग्निमग्नि" कहने लगे। मूल का यह भाव जिस तरह हिंदीभाषा मे आ सके उसी रीति से भाषान्तर करना चाहिये। ऐसे स्थान मे एक एक मूल शब्द की टक्कर के लिये एक एक हिन्दी शब्द रखदेनेसे भाषान्तर को सत्यानास करना है। शब्दो की गणना न करके मूल का भाव भाषान्तर मे होना चाहिये। इसी पर दृष्टि रखकर सरल हिंदीभाषा मे यह भाषान्तर किया गया है। यदि ऐसा न करके "मक्षिकास्थाने मक्षिका" का अवलम्बन किया जाता तो कौन ऐसे पाठक है जो भाषान्तर द्वारा मूलके अर्थ को समझ सकते?

ऋचा, वर्ग, अध्याय और अष्टक इन्ही चारो मे ऋग्वेद विभक्त किया गया है। ऋचा, एक मंत्र या एक श्लोक को कहते है। कई ऋचाएं मिलकर एक वर्ग और बहुतसे वर्ग मिलकर एक अध्याय होता है। प्रथमाध्याय मे ३७ वर्ग है। आठ अध्यायो का एक अष्टक होता है। ऋग्वेद ऐसे ही आठ अष्टको मे पूरा हुआ है। इसको विभक्त करनेकी और भी पद्धति है। उसके अनुसार कुछ ऋचाओ का एक सूक्त, कई सूक्तो का एक अनुवाक और बहुतसे अनुवाक मिलकर एक मंडल होता है। रीति से ऋग्वेद के दस मंडल है। अष्टक केवल अङ्कगणित की दृष्टि से ऋग्वेद के ाग करनेसे बने है, विषय की भिन्नता के ध्यान से ऐसा नही किया। यही बात ायो मे है। वे भी केवल हिसाब बराबर रखने के लिये प्रत्येक अष्टक मे आठ आठ गये है। किन्तु मंडल और सूक्त मे यह बात नही है। उनका विभाग कुछ तो

विषय और कुछ ऋषिसंबंध की दृष्टि से किया गया है। इस लिये अष्टक विभाग की अपेक्षा यह अधिक उपयोगी और उचित है। साथ ही सुभीते की दृष्टि से देखिये तो अष्टको का भी कुछ महत्व है। इस लिये हमने दोनो ही विभाग प्रत्येक पृष्ठ के सिरे पर लिख दिये है।

“ श्रुतिबोध ” प्रकाशित करनेकी विज्ञप्ति किये आज प्राय. तीन मास हुए। हमको यह लिखते बडा हर्ष होता है कि इस बीच मे सैकडो सज्जनो ने ग्राहको की सूची मे अपने नाम लिखा कर अपनी धार्मिकता का परिचय दिया और दिखा दिया है कि भारत मे धर्मजिज्ञासुओ का अब भी ह्रास नही हुआ। इससे और भी उत्साहित होकर हम आज “ श्रुतिबोध ” का यह प्रथमांक सुविज्ञ पाठक महाशयो की सेवा मे समर्पित करते है। हिन्दी भाषा के पाठको को प्रतिमास ६४ पृष्ठ और बडे आकार की ऐसी पुस्तक डाक महसूल सहित मात्र ४) रु. वार्षिक मे भेट की जायगी। दूसरे शब्दो मे यो कहना चाहिये कि सालभर मे मूल वेद और भाषान्तर का लगभग ८०० पृष्ठ का भारी ग्रंथ हम कुल ४ ) मे दे देने को तैयार है। यही नही, यदि हमारे देशवासियो ने हमारे इस परिश्रम को सार्थक किया तो हम मूल्य और भी कम कर देगे। सारांश यह कि हर तरह से इसमे रिआयत की जायगी, जिससे देशभर मे इसका प्रचार बढे। ईसाइओ के धर्मग्रंथ बायबल देखिये, करोडो की संख्या मे प्रति वर्ष छपती है। इस पर भी यह हालत, कि एक वर्ष की आवृत्ति की कोई प्रति दूसरे वर्ष के लिये नही बचती ! ऐसो ही दशा यदि हिन्दुओ के हिन्दुस्थान मे हिन्दुओ के वेद को न हो, तो बस, यह कहना होगा कि हममे जीवन्त मनुष्य अब रहे ही नही।

इस काम मे हमने किसीसे धन की सहायता नही मांगी, और न आप ही किसीने दी। अपने ही धन, अपने ही श्रम और अपने देशबन्धुओ की गुणज्ञता पर ही भरोसा करके हमने यह भारी काम अपने सिर पर उठाया है। होना तो यह चाहिये था कि वेदो का भाषान्तर देश के गरीब से गरीब मनुष्य के हाथो मे पहुचाया जाता परन्तु यह भरपूर धन साहाय्य के बिना हो नही सकता। ऐसी दशा मे यही बहुत है कि पांच सात वर्षो के अन्दर चारो वेद, मूल और अर्थ सहित, अत्यन्त अल्प मूल्य मे देशवासियो को देवे। यही हमारा उद्देश है आशा है पूर्ण होगा।

“ श्रुतिबोध ” मे मूल वेद और भाषान्तर की पुस्तके अलग अलग बांधी जा सके, इस अभिप्राय से दोनो अलग छापे गये है। उत्तम कागज सुन्दर छपाई और सफाई के विषय मे भी हमने अपने हिसाब कोई कसर बाकी नही रखी। ‘ सुबोधिनी ’ प्रेस के उदार स्वामी और चतुर मॅनेजर ने हमारे इस कार्य का महत्व समझकर सदा सस्ते संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती और अंग्रेजी के नवीन टाईपो द्वारा तथा अन्य

रीति से पत्र के मनोहर बनानेमे अत्यन्त परिश्रम किया है । यदि इन महाशयों से ऐसी सहायता न मिलती, तो 'श्रुतिबोध' ऐसे चित्ताकर्षक रूप मे पाठकों के सामने उपस्थित हो सकता, इसमे सन्देह है ।

अनेक महाशयों ने हमको लिखा कि 'श्रुतिबोध' मे सायणाचार्य की टीका और भाषान्तर भी दिया जाना चाहिये, परन्तु कार्य शीघ्र सम्पूर्ण होना चाहिये, अत हम उनकी इस सूचना को स्वीकार नहीं कर सके । इसके सिवाय और भी बहुतसे मित्रों, शुभचिन्तकों और वेदाभिमानी सज्जनों ने हमको कई प्रकारकी सूचनाएं दीं । ग्राह्य मालूम हुई हमने उन्हे स्वीकार किया । इनके अतिरिक्त कुछ महाशयों ने ऐसा भी लिखा कि मूल वेद देवनागरी लिपी मे छापकर गुजराती मे छापो किसीने तामिल अथवा तेलगू अक्षरों मे छापने की सलाह दी । किसीने कहा मराठी आदि मे भाषान्तर न करके केवल सरल संस्कृत भाषा मे कीजिये, किसीने लिखा सम्पूर्ण वेद भाषान्तर सहित छापकर ६०–७० अङ्क साथ भेज देना, किसी किसीने ऐसी इच्छा भी प्रकट की कि हम यजुर्वेदी है, इससे पहले उसी वेद का भाषान्तर होना चाहिये, किसीने कहा कि कृष्णयजुर्वेद का भाषान्तर मत करे तो हम ग्राहक होंगे इत्यादि । ऐसी ही अनेकानेक सूचनाएं हमको मिलीं । पर यह ग्राह्य नहीं है, यह स्पष्ट है । जो हो इस सब पत्रव्यवहार से देशवासियों की वेदविषयक निष्ठा और "श्रुतिबोध" के प्रति उनका उत्साह भली भांति प्रकट होता है ।

अन्तमे हम उन सज्जनों का धन्यवाद किये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने इस काम मे हमारी सहायता की, सहानुभूति दिखाई अथवा प्रोत्साहित किया । इसके अतिरिक्त हम उन विद्वानों का भी आभार मानते है जो इस आधुनिक समय मे वेदार्थ प्रगट करनेका प्रयत्न करचूके है । ये चाहे किसी भी दृष्टि से किये गये हो और हमसे चाहे कितने भी भिन्न हो, तो भी हम अपनी कृतज्ञता इन ग्रंथकारों के प्रति प्रकट करते है । यदि वेदों का समग्र प्रकाशन-कार्य हम समाप्ति तक पहुंचा सके और उसके द्वारा हिन्दूधर्म और भी पवित्र हो तथा उसपर लोगों का प्रेम और भी बढ़ सके तो हम इसको परमोपयोगी मानेंगे और अपना परिश्रम सार्थक समझेंगे । किन्तु इसके लिये ईश्वर की कृपा होना चाहिये । इसके प्राप्त करनेकी अभिलाषा से वेदों के निम्न लिखीत मंत्र द्वारा ईश्वरवंदना करके इस प्रस्तावना को समाप्त करते है:—

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्रणोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ १. ११. २.

प्रथमोऽष्टकः प्रथमं मण्डलम्

# ॥ ऋग्वेदः ॥

[ प्रथमोऽध्यायः ] [ प्रथमोऽनुवाकः]

॥ १ ॥ १-९ मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ गायत्री छन्द ॥ षड्ज, स्वरः ॥

॥ हरिः ॐ ॥

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥१॥
अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥
अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥
अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद्देवेषु गच्छति ॥ ४ ॥
अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरा गमत् ॥५॥१ ॥
यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥
उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयं । नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥
राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥

---

अग्निं । ईळे । पुरःऽहितं । यज्ञस्य । देवं । ऋत्विजं । होतारं । रत्नऽधातमं ॥१॥
अग्निः । पूर्वेभिः । ऋषिऽभिः । ईड्यः । नूतनैः । उत । सः । देवान् । आ ।
इह । वक्षति ॥ २ ॥ अग्निना । रयिं । अश्नवत् । पोषं । एव । दिवेऽदिवे । यशसं ।
वीरवत्ऽतमं ॥३॥ अग्ने । यं । यज्ञं । अध्वरं । विश्वतः । परिऽभूः । असि । सः । इत् ।
देवेषु । गच्छति ॥ ४ ॥ अग्निः । होता । कविऽक्रतुः । सत्यः । चित्रश्रवःऽतमः । देवः ।
देवेभिः । आ । गमत् ॥५॥ १॥ यत् । अंग । दाशुषे । त्वं । अग्ने । भद्रं । करिष्यसि ।
तव । इत् । तत् । सत्यं । अंगिरः ॥ ६ ॥ उप । त्वा । अग्ने । दिवेऽदिवे ।
दोषाऽवस्तः । धिया । वयं । नमः । भरंतः । आ । इमसि ॥ ७ ॥ राजंतं ।
अध्वराणां । गोपां । ऋतस्य । दीदिविं । वर्धमानं । स्वे । दमे ॥ ८ ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ९ ॥ २ ॥

॥ २ ॥ १-९ मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ देवता-१-३ वायु । ४-६ इन्द्रवायू । ७-९ मित्रावरुणौ ॥
छन्दः-१,२ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

( २ ) वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः । तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १ ॥
वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः । सुतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥
वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे । उरूची सोमपीतये ॥ ३ ॥
इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥
वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू । तावा यातमुप द्रवत् ॥ ५ ॥ ३ ॥
वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम् । मक्षिव १ त्था धिया नरा ॥ ६ ॥
मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ७ ॥
ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ ८ ॥

---

सः । नः । पिताऽइव । सूनवे । अग्ने । सुऽउपायनः । भव । सचस्व । नः । स्वस्तये ॥ ९ ॥ २ ॥
वायो इति । आ । याहि । दर्शत । इमे । सोमाः । अरंऽकृताः । तेषां । पाहि । श्रुधि । हवं ॥ १ ॥ वायो इति । उक्थेभिः । जरंते । त्वां । अच्छ । जरितारः । सुतऽसोमाः । अहःऽविदः ॥ २ ॥ वायो इति । तव । प्रऽपृञ्चती । धेना । जिगाति । दाशुषे । उरूची । सोमऽपीतये ॥ ३ ॥ इंद्रवायू इति । इमे । सुताः । उप । प्रयःऽभिः । आ । गतं । इंदवः । वां । उशंति । हि ॥ ४ ॥ वायो इति । इंद्रः । च । चेतथः । सुतानां । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू । तौ । आ । यातं । उप । द्रवत् ॥ ५ ॥ ३ ॥ वायो इति । इंद्रः । च । सुन्वतः । आ । यातं । उप । निःऽकृतं । मक्षु । इत्था । धिया । नरा ॥ ६ ॥ मित्रं । हुवे । पूतऽदक्षं । वरुणं । । रिशादसं । धियं । घृताचीं । साधंता ॥ ७ ॥ ऋतेन । मित्रावरुणौ । ऋतऽवृधौ । ऋतऽस्पृशा । क्रतुं । बृहंतं । आशाथे इति ॥ ८ ॥ कवी इति । नः । मित्रावरुणा ।

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ॥९॥ ४ ॥

॥ ३ ॥ १—१२ मधुच्छन्दा ऋषि ॥ देवता—१-३ अश्विनो । ४—६ इन्द्र । ७—९ विश्वे देवाः । १०-१२ सरस्वती ॥ छन्दः—२ निचृद्गायत्री । ४, ११ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । १, ३, ५-१०, १२ गायत्री ॥ षड्ज. स्वर. ॥

( ३ ) अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती । पुरुभुजा चनस्यतम् ॥१॥
अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया । धिष्ण्या वनतं गिरः ॥ २ ॥
दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यातं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥
इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥४॥
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ५ ॥
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥६॥ ५॥
ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत । दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥७॥
विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः । उस्रा इव स्वसराणि ॥ ८ ॥

---

तुविऽजातौ । उरुऽक्षया । दक्षं । दधाते इति । अपसं ॥९॥४॥ अश्विना । यज्वरीः । इषः । द्रवत्पाणी इति द्रवत्ऽपाणी । शुभः । पती इति । पुरुऽभुजा । चनस्यतं ॥१॥ अश्विना । पुरुऽदंससा । नरा । शवीरया । धिया । धिष्ण्या । वनतं । गिरः ॥२॥ दस्रा ॥ युवाकवः । सुताः । नासत्या । वृक्तऽबर्हिषः । आ । यातं । रुद्रवर्तनी इति रुद्रऽवर्तनी ॥३॥ इंद्र । आ । याहि । चित्रभानो इति चित्रऽभानो । सुताः । इमे । त्वाऽयवः । अण्वीभिः । तना । पूतासः ॥ ४ ॥ इंद्र । आ । याहि । धिया । इषितः । विप्रऽजूतः । सुतऽवतः । उप । ब्रह्माणि । वाघतः ॥ ५ ॥ इंद्र । आ । याहि । तूतुजानः । उप । ब्रह्माणि । हरिऽवः । सुते । दधिष्व । नः । चनः ॥ ६ ॥ ५ ॥ ओमासः । चर्षणिऽधृतः । विश्वे । देवासः । आ । गत । दाश्वांसः । दाशुषः । सुतं ॥ ७ ॥ विश्वे । देवासः । अप्ऽतुरः । सुतं । आ । गंत । तूर्णयः । उस्राःऽइव । स्वसराणि ।

विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः। मेधं जुषन्त वह्नयः ॥ ९ ॥
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनां। यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना। धियो विश्वा विराजति।
॥ १२ ॥ ६ ॥ १ ॥

## ॥ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

॥ ४ ॥ १–१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः–३ विराड् गायत्री । १० निचृद्गायत्री । १, २, ४–९ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(४) सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि ॥३॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्। यस्ते सखिभ्य आ वरम्॥४॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥ ५ ॥ ७ ॥

---

विश्वे। देवासः। अस्रिधः। एहिऽमायासः। अद्रुहः। मेधं। जुषंत। वह्नयः ॥ ९ ॥ पावका। नः। सरस्वती। वाजेभिः। वाजिनीऽवती। यज्ञं। वष्टु। धियाऽवसुः॥१०॥ चोदयित्री। सूनृतानां। चेतंती। सुऽमतीनां। यज्ञं। दधे। सरस्वती। ॥११॥ महः। अर्णः। सरस्वती। प्र। चेतयति। केतुना। धियः। विश्वाः। वि। राजति।
॥ १२ ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सुरूपऽकृत्नुं। ऊतये। सुदुघांऽइव। गोऽदुहे। जुहूमसि। द्यविऽद्यवि ॥ १ ॥ उप। नः। सवना। आ। गहि। सोमस्य। सोमऽपाः। पिब। गोऽदाः। इत्। रेवतः। मदः ॥ २ ॥ अथ। ते। अंतमानां। विद्याम। सुऽमतीनां। मा। नः। अति। ख्यः। आ। गहि ॥ ३ ॥ परा। इहि। विग्रं। अस्तृतं। इंद्रं। पृच्छ। विपःऽचितं। यः। ते। सखिऽभ्यः। आ। वरं। ॥ ४ ॥ उत। ब्रुवंतु। नः। निदः। निः। अन्यतः। चित्। आरत। दधानाः। इंद्रे। इत्। दुवः॥ ५ ॥ ७ ॥ उत। नः। सुऽभ-

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्। पतयन्मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः। प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥८॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो। धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥
यो रायो३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा। तस्मा इन्द्राय गायत ॥१०॥८॥

॥ ५ ॥ १-१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द—१ विराड् गायत्री । ३ पिपीलिका मध्या निचृद्गायत्री । ५,-७, ९ निचृद्गायत्री । ८ पादनिचृद्गायत्री । आर्च्युष्णिक् ४, १० गायत्री । ऋषभ स्वरः ॥

(५) आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत। सखायः स्तोमवाहसः ॥१॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥
स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरंध्याम्। गमद्वाजेभिरा स नः ॥३॥
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः। तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥

---

गान्। अरिः। वोचेयुः। दस्म। कृष्टयः। स्याम। इत्। इंद्रस्य। शर्मणि ॥ ६ ॥ आ। ई। आशुं। आशवे। भर। यज्ञऽश्रियं। नृऽमादनं। पतयत्। मंदयत्ऽसखं ॥ ७ ॥ अस्य। पीत्वा। शतक्रतो इति शतऽक्रतो। घनः। वृत्राणां। अभवः। प्र। आवः। वाजेषु। वाजिनं ॥ ८ ॥ तं। त्वा। वाजेषु। वाजिनं। वाजयामः। शतक्रतो इति शतऽक्रतो। धनानां। इंद्र। सातये ॥ ९ ॥ यः। रायः। अवनिः। महान्। सुऽपारः। सुन्वतः। सखा। तस्मै। इंद्राय। गायत ॥ १० ॥ ८ ॥ आ। तु। आ। इत। नि। सीदत। इंद्रं। अभि। प्र। गायत। सखायः। स्तोमऽवाहसः ॥१॥ पुरुऽतमं। पुरूणां। ईशानं। वार्याणां। इंद्रं। सोमे। सचा। सुते ॥ २ ॥ सः। घ। नः। योगे। आ। भुवत्। सः। राये। सः। पुरंऽध्यां। गमत्। वाजेभिः। आ। सः। नः ॥३॥ यस्य। संऽस्थे। न। वृण्वते। हरी इति। समत्ऽसु। शत्रवः। तस्मै। इंद्राय। गायत ॥ ४ ॥

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये । सोमासो दध्याशिरः ॥५॥ ९ ॥
त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥६॥
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः । शन्ते सन्तु प्रचेतसे ॥७॥
त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन्विश्वानि पौंस्या ॥९॥
मा नो मर्ता अभि द्रुहन्तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् ॥१०॥१०॥

॥ ६ ॥ १–१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ देवता–१–३ इन्द्रः । ४, ६, ८, ९ मरुतः । ५, ७ मरुत इन्द्रश्च । १० इन्द्रः ॥ छन्दः–२ विराड् गायत्री ४, ८ निचृद्गायत्री । १, ३, ५–७, ९, १० गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

( ६ ) युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥

---

सुतऽपाव्ने । सुताः । इमे । शुचयः । यंति । वीतये । सोमासः । दधिऽआशिरः ॥ ५ ॥९॥ त्वं । सुतस्य । पीतये । सद्यः । वृद्धः । अजायथाः । इंद्र । ज्यैष्ठ्याय । सुक्रतो इति सुऽक्रतो ॥६॥ आ । त्वा । विशंतु । आशवः । सोमासः । इंद्र । गिर्वणः । शं । ते । संतु । प्रऽचेतसे ॥ ७ ॥ त्वां । स्तोमाः । अवीवृधन् । त्वां । उक्था । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । त्वां । वर्धंतु । नः । गिरः ॥ ८ ॥ अक्षितऽऊतिः । सनेत् । इमं । वाजं । इंद्रः । सहस्रिणं । यस्मिन् । विश्वानि । पौंस्या ॥ ९ ॥ मा । नः । मर्ताः । अभि । द्रुहन् । तनूनां । इंद्र । गिर्वणः । ईशानः । यवय । वधं ॥१०॥१० ॥ युंजंति । ब्रध्नं । अरुषं । चरंतं । परि । तस्थुषः । रोचंते । रोचना । दिवि ॥ १ ॥ युंजंति । अस्य । काम्या । हरी इति । विऽपक्षसा । रथे । शोणा । धृष्णू इति । नृऽवाहसा ॥ २ ॥ केतुं । कृण्वन् । अकेतवे । पेशः । मर्याः । अपेशसे । सं । उषत्ऽभिः । अजायथाः ॥ ३ ॥ आत् । अह । स्वधां । अनु । पुनः । गर्भऽत्वं ।

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥
वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥५॥११॥
देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे सञ्जग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः ॥१०॥१२॥

॥ ७ ॥ १--१० मधुच्छन्दा ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—२ ४ निचृद्गायत्री । ८ १० पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । ९ पादनिचृद्गायत्री । १ ३, ५--७ गायत्री ॥ षड्जः स्वर ॥

( ७ ) इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥२॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥

---

आऽईरिरे । दधानाः । नाम । यज्ञियं ॥ ४ ॥ वीळु । चित् । आरुजत्नुऽभिः । गुहा । चित् । इंद्र । वह्निऽभिः । अविंदः । उस्रियाः । अनु ॥५॥११॥ देवऽयंतः । यथा । मतिं । अच्छ । विदत्ऽवसुं । गिरः । महां । अनूषत । श्रुतं ॥ ६ ॥ इंद्रेण । सं । हि । दृक्षसे । संऽजग्मान । अबिभ्युषा । मंदू इति । समानऽवर्चसा ॥७॥ अनवद्यैः । अभिद्युऽभि । मख । सहस्वत् । अर्चति । गणैः । इंद्रस्य । काम्यैः ॥ ८ ॥ अतः । परिऽज्मन् । आ । गहि । दिवः । वा । रोचनात् । अधि । सं । अस्मिन् । ऋंजते । गिरः ॥९॥ इतः । वा । सातिं । ईमहे । दिवः । वा । पार्थिवात् । अधि । इंद्रं । महः । वा । रजसः ॥१०॥१२॥ इंद्रं । इत् । गाथिनः । बृहत् । इंद्रं । अर्केभिः । अर्किणः । इंद्रं । वाणीः । अनूषत ॥ १ ॥ इंद्रः । इत् । हर्योः । सचा । संऽमिश्लः । आ । वचःऽयुजा । इंद्रः । वज्री । हिरण्ययः ॥ २ ॥ इंद्रः । दीर्घाय । चक्षसे । आ । सूर्यं । रोहयत् । दिवि । वि । गोभिः । अद्रिं । ऐरयत् ॥ ३ ॥

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥ १३ ॥
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ ६ ॥
तुंजेतुंजे य उत्तरे स्तोमा इंद्रस्य वज्रिणः । न विंधे अस्य सुष्टुतिं ॥ ७ ॥
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ८ ॥
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इंद्रः पंच क्षितीनां ॥ ९ ॥
इंद्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥ १४ ॥ २ ॥

## ॥ तृतीयोऽनुवाकः ॥

॥ ८ ॥ १—१० मधुच्छन्दा ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री । २ प्रतिष्ठा गायत्री । १० वर्धमाना गायत्री । ३–५, ६, ७–९ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(८) एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥

---

इंद्र । वाजेषु । नः । अव । सहस्रऽप्रधनेषु । च । उग्रः उग्राभिः । ऊतिऽभिः ॥ ४ ॥ इंद्रं । वयं । महाऽधने । इंद्रं । अर्भे । हवामहे । युजं । वृत्रेषु । वज्रिणं । ॥५॥१३॥ सः । नः । वृषन् । अमुं । चरुं । सत्राऽदावन् । अप । वृधि । अस्मभ्यं । अप्रतिऽस्कुतः ॥ ६ ॥ तुंजेतुंजे । ये । उत्ऽतरे । स्तोमाः । इंद्रस्य । वज्रिणः । न । विंधे । अस्य । सुऽस्तुतिं ॥ ७ ॥ वृषा । यूथाऽइव । वंसगः । कृष्टीः । इयर्ति । ओजसा । ईशानः । अप्रतिऽस्कुतः ॥ ८ ॥ यः । एकः । चर्षणीनां । वसूनां । इरज्यति । इंद्रः । पंच । क्षितीनां ॥ ९ ॥ इंद्रं । वः । विश्वतः । परि । हवामहे । जनेभ्यः । अस्माकं । अस्तु । केवलः ॥ १० ॥ १४ ॥ २ ॥

## ॥ तृतीयोऽनुवाकः ॥

आ । इंद्र । सानसिं । रयिं । सऽजित्वानं । सदाऽसहं । वर्षिष्ठं । ऊतये । भर ॥ १

नि येन॑ मुष्टिह॒त्यया॒ नि वृ॒त्रा रु॒णधा॑महै । त्वोता॑सो॒ न्यर्व॑ता ॥ २ ॥

इन्द्र॒ त्वोता॑स॒ आ व॒यं वज्रं॑ घ॒ना द॑दीमहि । जये॑म॒ सं यु॒धि स्पृधः॑ ॥ ३ ॥

व॒यं शूरे॑भि॒रस्तृ॑भि॒रिन्द्र॒ त्वया॑ यु॒जा व॒यं । सा॒स॒ह्याम॑ पृतन्य॒तः ॥ ४ ॥

म॒हाँ इन्द्रः॑ प॒रश्च॒ नु म॑हि॒त्वम॑स्तु व॒ज्रिणे॑ । द्यौर्न प्र॑थि॒ना शवः॑ ॥५॥ १५ ॥

स॒मो॒हे वा॒ य आश॑त॒ नर॑स्तो॒कस्य॒ सनि॑तौ । विप्रा॑सो वा धिया॒यवः॑ ॥६॥

यः कु॒क्षिः सो॑म॒पात॑मः समु॒द्र इ॑व॒ पिन्व॑ते । उ॒र्वीरापो॒ न का॒कुदः॑ ॥ ७ ॥

ए॒वा ह्य॑स्य सू॒नृता॑ वि॒रप्शी॒ गोम॑ती म॒ही । प॒क्वा शाखा॒ न दा॒शुषे॑ ॥ ८ ॥

ए॒वा हि ते॒ विभू॑तय ऊ॒तय॑ इन्द्र॒ माव॑ते । स॒द्यश्चि॒त्सन्ति॑ दा॒शुषे॑ ॥ ९ ॥

ए॒वा ह्य॑स्य॒ काम्या॒ स्तोम॑ उ॒क्थं च॒ शंस्या॑ । इन्द्रा॑य॒ सोम॑पीतये ॥१०॥१६॥

---

नि । येन॑ । मु॒ष्टि॒ऽह॒त्यया॑ । नि । वृ॒त्रा । रु॒णधा॑महै । त्वाऽऊ॑तासः । नि । अर्व॑ता ॥२॥

इंद्र॑ । त्वाऽऊ॑तासः । आ । व॒यं । वज्र॑ । घ॒ना । द॒दी॒म॒हि॒ । जये॑म । सं । यु॒धि । स्पृधः॑ ॥३॥

व॒यं । शूरे॑भिः । अस्तृ॑ऽभिः । इंद्र॑ । त्वया॑ । यु॒जा । व॒यं । स॒स॒ह्याम॑ । पृ॒त॒न्य॒तः ॥४॥

म॒हान् । इंद्रः॑ । प॒रः । च॒ । नु । म॒हि॒ऽत्वं । अ॒स्तु॒ । व॒ज्रिणे॑ । द्यौः । न । प्र॒थि॒ना ।

शवः॑ ॥ ५ ॥ १५ ॥ सं॒ऽओ॒हे । वा॒ । ये । आश॑त । नरः॑ । तो॒कस्य॑ । सनि॑तौ ।

विप्रा॑सः । वा॒ । धि॒या॒ऽयवः॑ ॥ ६ ॥ यः । कु॒क्षिः । सो॒म॒ऽपात॑मः । स॒मु॒द्रःऽइ॑व ।

पिन्व॑ते । उ॒र्वीः । आपः॑ । न । का॒कुदः॑ ॥ ७ ॥ ए॒व । हि । अ॒स्य॒ । सू॒नृता॑ । वि॒ऽ-

र॒प्शी । गोऽम॑ती । म॒ही । प॒क्वा । शाखा॑ । न । दा॒शुषे॑ ॥ ८ ॥ ए॒व । हि । ते॒ ।

विऽभू॑तय । ऊ॒तयः॑ । इं॒द्र॒ । माऽव॑ते । स॒द्यः । चि॒त् । सन्ति॑ । दा॒शुषे॑ ॥ ९ ॥ ए॒व ।

हि । अ॒स्य॒ । काम्या॑ । स्तोमः॑ । उ॒क्थ । च॒ । शंस्या॑ । इंद्रा॑य । सोम॑ऽपीतये ॥१०॥१६॥

॥ ९ ॥ १–१० मधुच्छन्दा ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द –१, ३, ७, १० निचृद्गायत्री । ५,६ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । २, ४, ८, ९ गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

(९) इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥ ३ ॥
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥ ४ ॥
सं चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित्ते विभु प्रभु ॥ ५ ॥ १७ ॥
अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥
सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ ७ ॥
अस्मे धेहि श्रवो बृहद्द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ ८ ॥

---

इंद्र । आ । इहि । मत्सि । अंधसः । विश्वेभिः । सोमपर्वऽभिः । महान् । अभिष्टिः । ओजसा ॥ १ ॥ आ । ईं । एनं । सृजत । सुते । मंदिं । इंद्राय । मंदिने । चक्रिं । विश्वानि । चक्रये ॥ २ ॥ मत्स्व । सुऽशिप्र । मंदिऽभिः । स्तोमेभिः । विश्वऽचर्षणे । सचा । एषु । सवनेषु । आ ॥ ३ ॥ असृग्रं । इंद्र । ते । गिरः । प्रति । त्वां । उत् । अहासत । अजोषाः । वृषभं । पतिं ॥ ४ ॥ सं । चोदय । चित्रं । अर्वाक् । राधः । इंद्र । वरेण्यं । असत् । इत् । ते । विऽभु । प्रऽभु ॥ ५ ॥ १७ ॥ अस्मान् । सु । तत्रं । चोदय । इंद्र । राये । रभस्वतः । तुविऽद्युम्न । यशस्वतः ॥ ६ ॥ सं । गोमत् । इंद्र । वाज वत् । अस्मे इति । पृथु । श्रवः । बृहत् । विश्वऽआयुः । धेहि । अक्षितं ॥ ७ ॥ अस्मे इति । धेहि । श्रवः । बृहत् । द्युम्नं । सहस्रऽसातमं । इंद्र । ताः । रथिनीः ।

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्तं ऋग्मियम्। होम गन्तारमूतये ॥ ९ ॥
सुतेसुते न्योकसे बृहद्बृहत एदरिः। इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥ १८ ॥

॥ १० ॥ १-१२ मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः-१-३, ५, ६ विराडनुष्टुप्। ८ निचृदनुष्टुप्। ४ भुरिगुष्णिक्। ७ ९-१२ अनुष्टुप् ॥ गान्धारः स्वरः। ४ ऋषभः स्वरः ॥

( १० ) गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥
यत्सानोः सानुमारुहद्भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥
युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥

---

इषः ॥ ८ ॥ वसोः। इन्द्रं। वसुऽपतिं। गीःऽभिः। गृणन्तः। ऋग्मियं। होम। गन्तारं। ऊतये ॥ ९ ॥ सुतेऽसुते। निऽओकसे। बृहत्। बृहते। आ। इत्। अरिः। इन्द्राय। शूषं। अर्चति ॥ १० ॥ १८ ॥

गायन्ति। त्वा। गायत्रिणः। अर्चन्ति। अर्कं। अर्किणः। ब्रह्माणः। त्वा। शतक्रतो इति शतऽक्रतो। उत्। वंशम्ऽइव। येमिरे ॥ १ ॥ यत्। सानोः। सानुं। आ। अरुहत्। भूरि। अस्पष्ट। कर्त्वं। तत्। इन्द्रः। अर्थं। चेतति। यूथेन। वृष्णिः। एजति ॥ २ ॥ युक्ष्व। हि। केशिना। हरी इति। वृषणा। कक्ष्यऽप्रा। अथ। नः। इन्द्र। सोमऽपाः। गिरां। उपऽश्रुतिं। चर ॥ ३ ॥

एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्या रुव ।
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥ ५ ॥

तमित्सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये ।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥ ६ ॥ १९ ॥

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः ।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥ ७ ॥

नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः ।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥ ८ ॥

---

आ । इहि । स्तोमान् । अभि । स्वर । अभि । गृणीहि । आ । रुव । ब्रह्म । च । नः । वसो इति । सचा । इंद्र । यज्ञं । च । वर्धय ॥ ४ ॥ उक्थं । इंद्राय । शंस्यं । वर्धनं । पुरुनिःऽसिधे । शक्रः । यथा । सुतेषु । नः । ररणत् । सख्येषु । च ॥५॥ तम् । इत् । सखिऽत्वे । ईमहे । तं । राये । त । सुऽवीर्ये । सः । शक्रः । उत । नः । शकत् । इंद्रः । वसु । दयमानः ॥ ६ ॥ १९ ॥ सुऽविवृतं । सुनिःऽअजं । इंद्र । त्वाऽदातं । इत् । यशः । गवां । अप । व्रजं । वृधि । कृणुष्व । राधः । अद्रिऽवः ॥ ७ ॥ नहि । त्वा । रोदसी इति । उभे इति । ऋघायमाणं । इन्वतः । जेषः । स्वः ऽवतीः । अपः । सं । गाः । अस्मभ्यं । धूनुहि ॥ ८ ॥ आश्रुत्ऽकर्ण । श्रुधि । हवं । नु । चित् । दधिष्व ।

आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः ।
इन्द्र स्तोमम्मिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥
विद्मा हि त्वा वृषंतमं वाजेषु हवनश्रुतम् ।
वृषंतमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥ १० ॥
आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब ।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥
परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः ।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥ २० ॥

॥ ११ ॥ १-८ जेता माधुच्छन्दस ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्द. ॥ गान्धार स्वरः ॥

( ११ ) इंद्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

---

मे । गिरः । इंद्र । स्तोमं । इमं । मम । कृष्व । युजः । चित् । अंतरं ॥९॥ विद्म । हि । त्वा । वृषन्ऽतमं । वाजेषु । हवनऽश्रुतं । वृषन्ऽतमस्य । हूमहे । ऊतिं । सहस्रऽसातमां ॥ १० ॥ आ । तु । नः । इंद्र । कौशिक । मंदसानः । सुतं । पिब । नव्यं । आयुः । प्र । सु । तिर । कृधि । सहस्रऽसां । ऋषिं ॥ ११ ॥ परि । त्वा । गिर्वणः । गिरः । इमाः । भवंतु । विश्वतः । वृद्धऽआयुं । अनु । वृद्धयः । जुष्टाः । भवंतु । जुष्टयः ॥ १२ ॥ २० ॥

इंद्रं । विश्वाः । अवीवृधन् । समुद्रऽव्यचसं । गिरः । रथिऽतमं । रथिनां । वाजानां । सत्ऽपतिं । पतिं ॥ १ ॥

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥
त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥
तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥
मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥

---

सख्ये । ते । इंद्र । वाजिनः । मा । भेम । शवसः । पते । त्वां । अभि । प्र । नोनुमः । जेतारं । अपराऽजितं ॥ २ ॥ पूर्वीः । इंद्रस्य । रातयः । न । वि । दस्यंति । ऊतयः । यदि । वाजस्य । गोऽमतः । स्तोतृऽभ्यः । मंहते । मघं ॥ ३ ॥ पुरां । भिंदुः । युवा । कविः । अमितऽओजाः । अजायत । इंद्रः । विश्वस्य । कर्मणः । धर्ता । वज्री । पुरुऽस्तुतः ॥ ४ ॥ त्वं । वलस्य । गोऽमतः । अप । अवः । अद्रिऽवः । बिलं । त्वां । देवाः । अबिभ्युषः । तुज्यमानासः । आविषुः ॥ ५ ॥ तव । अहं । शूर । रातिऽभिः । प्रति । आयं । सिंधुं । आऽवदन् । उप । अतिष्ठंत । गिर्वणः । विदुः । । तस्य । कारवः ॥ ६ ॥ मायाभिः । इंद्र । मायिनं । त्वं । शुष्णं । अव । अ- । विदुः । ते । तस्य । मेधिराः । तेषां । श्रवांसि । उत् । तिर ॥७॥ इंद्रं । ईशानं ।

इन्द्रमीशा॑नमोज॑साभि स्तोमा॑ अनूषत ।
सहस्रं॒ यस्य॑ रा॒तय॑ उ॒त वा॒ सन्ति॒ भूय॑सीः ॥८॥२१॥३॥

॥ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

॥ १२ ॥ १-१२ मेधातिथि काण्व ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ गायत्री छन्द ॥ षड्ज स्वरः ॥

( १२ ) अ॒ग्निं दू॒तं वृ॑णीमहे॒ होता॑रं वि॒श्ववे॑दसम् ।
अ॒स्य य॒ज्ञस्य॑ सु॒क्रतु॑म् ॥ १ ॥

अ॒ग्निम॑ग्निं॒ हवी॑मभिः॒ सदा॑ हवन्त वि॒श्पति॑म् ।
ह॒व्य॒वाहं॑ पुरुप्रि॒यम् ॥ २ ॥

अग्ने॑ दे॒वाँ इ॒हा व॑ह जज्ञा॒नो वृ॒क्तब॑र्हिषे ।
अ॒सि होता॑ न॒ ईड्य॑ः ॥ ३ ॥

---

ओज॑सा । अ॒भि । स्तोमा॑ः । अ॒नू॒ष॒त । स॒हस्र॑म् । यस्य॑ । रा॒तय॑ः । उ॒त । वा॒ । सन्ति॑ । भूय॑सीः ॥ ८ ॥ २१ ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अ॒ग्निम् । दू॒तम् । वृ॒णी॒म॒हे॒ । होता॑रम् । वि॒श्वऽवे॑दसम् । अ॒स्य । य॒ज्ञस्य॑ । सु॒ऽक्रतु॑म् ॥ १ ॥
अ॒ग्निम्ऽअ॑ग्निम् । हवी॑मऽभिः । सदा॑ । ह॒व॒न्त॒ । वि॒श्पति॑म् । ह॒व्य॒ऽवाह॑म् । पु॒रु॒ऽप्रि॒यम् ॥ २ ॥
अग्ने॑ । दे॒वान् । इ॒ह । आ । व॒ह॒ । ज॒ज्ञा॒नः । वृ॒क्तऽब॑र्हिषे । अ॒सि । होता॑ । नः॒ । ईड्य॑ः ॥ ३ ॥

ताँ उ॒श॒तो वि बो॑धय॒ यद॑ग्ने॒ यासि॑ दू॒त्य॑म् ।
दे॒वैरा स॑त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥ ४ ॥

घृता॑हवन दीदिवः॒ प्रति॑ ष्म॒ रिष॑तो दह ।
अग्ने॒ त्वं र॒क्ष॒स्विनः॑ ॥ ५ ॥

अ॒ग्निना॒ग्निः समि॑ध्यते क॒विर्गृ॒हप॑ति॒र्युवा॑ ।
ह॒व्य॒वाड्जु॒ह्वा॑स्यः ॥ ६ ॥ २२ ॥

क॒विम॒ग्निमुप॑ स्तुहि स॒त्यध॑र्माणमध्व॒रे ।
दे॒वम॑मीव॒चात॑नम् ॥ ७ ॥

यस्त्वाम॑ग्ने ह॒विष्प॑तिर्दू॒तं दे॑व सप॒र्यति॑ ।
तस्य॑ स्म प्रावि॒ता भ॑व ॥ ८ ॥

यो अ॒ग्निं दे॒ववी॑तये ह॒विष्माँ॑ आ॒विवा॑सति ।
तस्मै॑ पावक मृळय ॥ ९ ॥

स नः॑ पावक दीदि॒वोऽग्ने॑ दे॒वाँ इ॒हा व॑ह ।
उप॑ य॒ज्ञं ह॒विश्च॑ नः ॥ १० ॥

---

तान् । उ॒श॒तः । वि । बो॒ध॒य॒ । यत् । अ॒ग्ने॒ । यासि॑ । दू॒त्य॑म् । दे॒वैः । आ । स॒त्सि॒ । ब॒र्हिषि॑ ॥ ४ ॥ घृत॑ऽआहवन । दी॒दि॒ऽवः॒ । प्रति॑ । स्म॒ । रिष॑तः । द॒ह॒ । अग्ने॑ । त्वम् । र॒क्ष॒स्विनः॑ ॥ ५ ॥ अ॒ग्निना॑ । अ॒ग्निः । सम् । इ॒ध्य॒ते॒ । क॒विः । गृ॒हऽप॑तिः । युवा॑ । ह॒व्य॒ऽवाट् । जु॒हुऽआ॑स्यः ॥ ६ ॥ २२ ॥ क॒विम् । अ॒ग्निम् । उप॑ । स्तु॒हि॒ । स॒त्यऽध॑र्माणम् । अ॒ध्व॒रे । दे॒वम् । अ॒मी॒व॒ऽचात॑नम् ॥ ७ ॥ यः । त्वाम् । अ॒ग्ने॒ । ह॒विः॒ऽप॑तिः । दू॒तम् । दे॒व॒ । स॒प॒र्यति॑ । तस्य॑ । स्म॒ । प्र॒ऽअ॒वि॒ता । भ॒व॒ ॥ ८ ॥ यः । अ॒ग्निम् । दे॒वऽवी॑तये । ह॒विष्मा॑न् । आ॒ऽवि॒वा॑सति । तस्मै॑ । पा॒व॒क॒ । मृ॒ळ॒य॒ ॥ ९ ॥ सः । नः॒ । पा॒व॒क॒ । दी॒दि॒ऽवः॒ । अग्ने॑ । दे॒वान् । इ॒ह । आ । व॒ह॒ । उप॑

स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा ।
रयिं वीरवतीमिषम् ॥ ११ ॥

अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः ।
इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥१२॥२३॥

॥ १३ ॥ मेधातिथि काण्व ऋषि. ॥ १॥ देवता–इध्म. समिद्धो वाग्नि । २ तनूनपात् । ३ नराशस । ४ इळ । ५ बर्हिः । ६ देवीर्द्वारि । ७ उषासानक्ता । ८ दैव्यो होतारौ प्रचेतसौ । ९ तिस्रो देव्य सरस्वतीळा-भारत्य । १० त्वष्टा । ११ वनस्पतिः । १२ स्वाहाकृतयः ॥ गायत्री छन्द ॥ षड्ज स्वरः ॥

( १३ ) सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते ।
होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे ।
अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥

नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये ।
मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥

अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह ।
असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥

---

यज्ञं । हविः । च । न ॥ १० ॥ सः । नः । स्तवानः । आ । भर । गायत्रेण । नवीयसा । रयिं । वीरऽवतीं । इषं ॥ ११ ॥ अग्ने । शुक्रेण । शोचिषा । विश्वाभिः । देवहूतिऽभिः । इमं । स्तोमं । जुषस्व । नः ॥ १२ ॥ २३ ॥

सुऽसमिद्धः । नः । आ । वह । देवान् । अग्ने । हविष्मते । होतरिति । पावक । यक्षि । च ॥१॥ मधुऽमंतं । तनूऽनपात् । यज्ञं । देवेषु । नः । कवे । अद्य । कृणुहि । वीतये ॥२॥ नराशमं । इह । प्रियं । अस्मिन् । यज्ञे । उप । ह्वये । मधुऽजिह्वं । हविःऽकृतं ॥३॥ अग्ने । सुखऽतमे । रथे । देवान् । ईळितः । आ । वह । असि । होता । मनुऽहितः ॥४॥

स्तृणीत बर्हिरानुषग्घृतपृष्ठं मनीषिणः।

यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥ ५ ॥

वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः।

अद्या नूनं च यष्टवे ॥ ६ ॥ २४ ॥

नक्तोषसा सुपेशसास्मिन्यज्ञ उप ह्वये।

इदं नो बर्हिरासदे ॥ ७ ॥

ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी।

यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ८ ॥

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।

बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ९ ॥

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये।

अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

---

स्तृणीत। बर्हिः। आनुषक्। घृतऽपृष्ठं। मनीषिणः। यत्र। अमृतस्य। चक्षणं ॥५॥ वि। श्रयंतां। ऋतऽवृधः। द्वारः। देवीः। असश्चतः। अद्य। नूनं। च। यष्टवे ॥६॥२४॥ नक्तोषसा। सुऽपेशसा। अस्मिन्। यज्ञे। उप। ह्वये। इदं। नः। बर्हिः। आऽसदे। ॥७॥ ता। सुऽजिह्वौ। उप। ह्वये। होतारा। दैव्या। कवी इति। यज्ञं। नः। यक्षतां। इमं ॥ ८ ॥ इळा। सरस्वती। मही। तिस्रः। देवीः। मयःऽभुवः। बर्हिः। सीदंतु। अस्रिधः ॥ ९ ॥ इह। त्वष्टारं। अग्रियं। विश्वऽरूपं। उप। ह्वये। अस्माकं। अस्तु। केवलः ॥ १० ॥ अव। सृज। वनस्पते। देव। देवेभ्यः।

अव॑ सृजा वनस्पते॒ देव॑ दे॒वेभ्यो॑ ह॒विः ।

प्र दा॒तुर॑स्तु॒ चेत॑नम् ॥ ११ ॥

स्वाहा॑ य॒ज्ञं कृ॑णोत॒नेन्द्रा॑य॒ यज्व॑नो गृ॒हे ।

तत्र॑ दे॒वाँ उप॑ ह्वये ॥ १२ ॥ २५ ॥

॥ १४ ॥ १-१२ मेधातिथि काण्व ऋषि ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥ षड्ज स्वरः ॥

( १४ ) ऐभि॑रग्ने॒ दुवो॒ गिरो॒ विश्वे॑भि॒ः सोम॑पीतये ।

दे॒वेभि॑र्याहि॒ यक्षि॑ च ॥ १ ॥

आ त्वा॒ कण्वा॑ अहूषत गृ॒णन्ति॑ विप्र ते॒ धियः॑ ।

दे॒वेभि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ २ ॥

इ॒न्द्र॒वा॒यू बृह॒स्पतिं॑ मि॒त्राग्निं पू॒षणं॒ भग॑म् ।

आ॒दि॒त्यान्मारु॑तं ग॒णम् ॥ ३ ॥

प्र वो॑ भ्रियन्त॒ इन्द॑वो मत्स॒रा मा॑दयि॒ष्णवः॑ ।

द्र॒प्सा मध्व॑श्चमू॒षदः॑ ॥ ४ ॥

---

ह॒विः । प्र । दा॒तुः । अ॒स्तु॒ । चेत॑नं ॥ ११ ॥ स्वाहा॑ । य॒ज्ञं । कृ॒णो॒त॒न॒ । इं॒द्रा॑य । यज्व॑नः । गृ॒हे । तत्र॑ । दे॒वान् । उप॑ । ह्व॒ये॒ ॥ १२ ॥ २५ ॥

आ । ए॒भिः॒ । अ॒ग्ने॒ । दुवः॑ । गिरः॑ । विश्वे॑भिः । सोम॑ऽपीतये । दे॒वेभिः॑ । या॒हि॒ । यक्षि॑ । च॒ ॥१॥ आ । त्वा॒ । कण्वाः॑ । अ॒हू॒ष॒त॒ । गृ॒णंति॑ । वि॒प्र॒ । ते॒ । धियः॑ । दे॒वेभिः॑ । अ॒ग्ने॒ । आ । ग॒हि॒ ॥२॥ इं॒द्र॒वा॒यू इति॑ । बृह॒स्पतिं॑ । मि॒त्रा । अ॒ग्निं । पू॒षणं॑ । भगं॑ । आ॒दि॒त्यान् । मारु॑तं । ग॒णं ॥३॥ प्र । वः॒ । भ्रि॒यं॒ते॒ । इंद॑वः । म॒त्स॒राः । मा॒द॒यि॒ष्णवः॑ । द्र॒प्साः । मध्वः॑ । च॒मू॒ऽसदः॑ ॥ ४ ॥

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः ।
हविष्मन्तो अरंकृतः ॥५॥

घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः ।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥६॥२६॥

तान्यजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि ।
मध्वः सुजिह्व पायय ॥ ७ ॥

ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया ।
मधोरग्ने वषट्कृति ॥ ८ ॥

आकीं सूर्यस्य रोचनाद्विश्वान्देवाँ उषर्बुधः ।
विप्रो होतेह वक्षति ॥ ९ ॥

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना ।
पिबा मित्रस्य धामभिः ॥१०॥

त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि ।
सेमं नो अध्वरं यज ॥ ११ ॥

---

ईळते । त्वा । अवस्यवः । कण्वासः । वृक्तऽबर्हिषः । हविष्मंतः । अरंऽकृतः ॥ ५ ॥ घृतऽपृष्ठाः । मनःऽयुजः । ये । त्वा । वहंति । वह्नयः । आ । देवान् । सोमऽपीतये ॥ ६ ॥ २६ ॥ तान् । यजत्रान् । ऋतऽवृधः । अग्ने । पत्नीऽवतः । कृधि । मध्वः । सुऽजिह्व । पायय ॥७॥ ये । यजत्राः । ये । ईड्याः । ते । ते । पिबंतु । जिह्वया । मधोः । अग्ने । वषट्ऽकृति ॥८॥ आकीं । सूर्यस्य । रोचनात् । विश्वान् । देवान् । उषःऽबुधः । विप्रः । होता । इह । वक्षति ॥९॥ विश्वेभिः । सोम्यं । मधु । अग्ने । इंद्रेण । वायुना । पिब । मित्रस्य । धामऽभिः ॥१०॥ त्वं । होता । मनुःऽहितः । अग्ने । यज्ञेषु । सीदसि । सः । इमं । नः । अध्वरं ।

युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः ।

ताभिर्देवाँ इहा वह ॥ १२॥ २७ ॥

॥ १५ ॥ १-१२ मेधातिथि काण्व ऋषि. ॥ देवता-ऋतव । १ इन्द्र । २ मरुतः । ३ त्वष्टा । ४ अग्नि । ५ इन्द्रः । ६ मित्रावरुणौ । ७-१० द्रविणोदाः । ११ अश्विनौ । १२ अग्नि ॥ गायत्री छन्दः ॥ षड्ज. स्वरः ॥

( १५ ) इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः ।

मत्सरासस्तदोकसः ॥ १ ॥

मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद्यज्ञं पुनीतन ।

यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥ २ ॥

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना ।

त्वं हि रत्नधा असि ॥ ३ ॥

अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु ।

परि भूष पिब ऋतुना ॥ ४ ॥

---

युज ॥ ११ ॥ युक्ष्व । हि । अरुषीः । रथे । हरितः । देव । रोहितः । ताभिः । देवान् । इह । आ । वह ॥ १२ ॥ २७ ॥

इन्द्र । सोमं । पिब । ऋतुना । आ । त्वा । विशन्तु । इन्दवः । मत्सरासः । तत्ऽओकसः ॥ १ ॥ मरुतः । पिबत । ऋतुना । पोत्रात् । यज्ञं । पुनीतन । यूयं । हि । स्थ । सुऽदानवः ॥२॥ अभि । यज्ञं । गृणीहि । नः । ग्नावः । नेष्टरिति । पिब । ऋतुना । त्वं । हि । रत्नऽधाः । असि ॥ ३ ॥ अग्ने । देवान् । इह । आ । वह । सादय । योनिषु । त्रिषु । परि । भूष । पिब । ऋतुना ॥ ४ ॥

ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु ।
तवेद्धि सख्यमस्तृतम ॥ ५ ॥

युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम ।
ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥ ६ ॥ २८ ॥

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे ।
यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥

द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे ।
देवेषु ता वनामहे ॥ ८ ॥

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत ।
नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ ९ ॥

यत्त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे ।
अध स्मा नो ददिर्भव ॥ १० ॥

---

ब्राह्मणात् । इन्द्र । राधसः । पिब । सोमं । ऋतून् । अनु । तव । इत् । हि । सख्यं । अस्तृतं ॥ ५ ॥ युवं । दक्षं । धृतऽव्रता । मित्रावरुणा । दुःऽदभं । ऋतुना । यज्ञं । आशाथे इति ॥६॥ २८ ॥ द्रविणःऽदाः । द्रविणसः । ग्रावऽहस्तासः । अध्वरे । यज्ञेषु । देवं । ईळते ॥७॥ द्रविणःऽदाः । ददातु । नः । वसूनि । यानि । शृण्विरे । देवेषु । ता । वनामहे ॥८॥ द्रविणःऽदाः । पिपीषति । जुहोत । प्र । च । तिष्ठत । नेष्ट्रात् । ऋतुऽभिः । इष्यत ॥९॥ यत् । त्वा । [illegible] । ऋतुऽभिः । द्रविणःऽदः । यजामहे । अध । स्म । नः । ददिः । भव ॥१०॥ अश्विना । पिबतं । मधु । दीद्यग्नी इति दीदिऽअग्नी । शुचिऽव्रता । ऋतुना । यज्ञऽ-

अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता ।

ऋतुना यज्ञवाहसा ॥ ११ ॥

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि ।

देवान्देवयते यज ॥ १२ ॥ २९ ॥

॥ १६ ॥ १–९ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥ षड्जः स्वरः ॥

( १६ ) आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये ।

इन्द्र त्वा सूरचक्षसः ॥ १ ॥

इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः ।

इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २ ॥

इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः ।

सुते हि त्वा हवामहे ॥ ४ ॥

---

वाहसा ॥ ११ ॥ गार्हऽपत्येन । सन्त्य । ऋतुना । यज्ञऽनीः । असि । देवान् । देवऽयते । यज ॥ १२ ॥ २९ ॥

आ । त्वा । वहन्तु । हरयः । वृषणं । सोमऽपीतये । इन्द्र । त्वा । सूरऽचक्षसः ॥१॥ इमाः । धानाः । घृतऽस्नुवः । हरी इति । इह । उप । वक्षतः । इन्द्रं । सुखऽतमे । रथे ॥२॥ इन्द्रं । प्रातः । हवामहे । इन्द्रं । प्रऽयति । अध्वरे । इन्द्रं । सोमस्य । पीतये ॥ ३ ॥ उप । नः । सुतं । आ । गहि । हरिऽभिः । इन्द्र । केशिऽभिः । सुते । हि । त्वा । हवामहे ॥४॥

सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम् ।

गौरो न तृषितः पिब ॥५॥ ३० ॥

इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि ।

ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥ ६ ॥

अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शन्तमः ।

अथा सोमं सुतं पिब ॥ ७ ॥

विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति ।

वृत्रहा सोमपीतये ॥ ८ ॥

सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो ।

स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥ ९ ॥ ३१ ॥

॥ १७ ॥ १–९ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—२ यवमध्या विराड् गायत्री । ४ पादनिचृद् गायत्री । ५ भुरिगार्चि गायत्री । ६ निचृद्गायत्री । ८ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । १, ३ ७, ९, गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

---

सः । इमं । नः । स्तोमं । आ । गहि । उप । इदं । सवनं । सुतं । गौरः । न । तृषितः । पिब ॥ ५ ॥ ३० ॥ इमे । सोमासः । इंदवः । सुतासः । अधि । बर्हिषि । तान् । इंद्र । सहसे । पिब ॥६॥ अयं । ते । स्तोमः । अग्रियः । हृदिऽस्पृक् । अस्तु । शंऽतमः । अथ । सोमं । सुतं । पिब ॥ ७ ॥ विश्वं । इत् । सवनं । सुतं । इंद्रः । मदाय । गच्छति । वृत्रऽहा । सोमऽपीतये ॥८॥ सः । इमं । नः । कामं । आ । पृण । गोभिः । अश्वैः । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । स्तवाम । त्वा । सुऽआध्यः ॥ ९ ॥ ३१ ॥

( १७ ) इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे ।
ता नो मृळात ईदृशे ॥ १ ॥
गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः ।
धर्तारा चर्षणीनाम् ॥ २ ॥
अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ ।
ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥
युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनां ।
भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ४ ॥
इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् ।
क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥ ३२ ॥
तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि ।
स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥
इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे ।
अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥ ७ ॥
इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा ।
अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

---

इंद्रावरुणयोः । अहं । संऽराजोः । अवः । आ । वृणे । ता । नः । मृळातः । ईदृशे ॥१॥ गंतारा । हि । स्थः । अवसे । हवं । विप्रस्य । माऽवतः । धर्तारा । चर्षणीनां ॥ २ ॥ अनुऽकामं । तर्पयेथां । इंद्रावरुणा । रायः । आ । ता । वां । नेदिष्ठं । ईमहे ॥३॥ युवाकु । हि । शचीनां । युवाकु । सुऽमतीनां । भूयाम । वाजऽदाव्नां ॥४॥ इंद्रः । सहस्रऽदाव्नां । वरुणः । शंस्यानां । क्रतुः । भवति । उक्थ्यः ॥५॥३२॥ तयोः । इत् । अवसा । वयं । सनेम । नि । च । धीमहि । स्यात् । उत । प्रऽरेचनं ॥६॥ इंद्रावरुणा । वां । अहं । हुवे । चित्राय । राधसे । अस्मान् । सु । जिग्युषः । कृतं ॥ ७ ॥ इंद्रावरुणा । नु । नु । वां । सिसासंतीषु । धीषु । आ । अस्मभ्यं । शर्म । यच्छतं ॥ ८ ॥

प्र वा॑मश्नोतु सुष्टु॒तिरिन्द्रा॑वरुण॒ यां हु॒वे ।
यामृ॒धाथे॑ स॒धस्तु॑तिम् ॥ ९ ॥ ३३ ॥ ४ ॥

## ॥ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

॥ १८ ॥ १–९ मेधातिथि काण्व ऋषि. ॥ देवता १–३ ब्रह्मणस्पति । ४ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रश्च सोमश्च । ५ बृहस्पतिदक्षिणे । ६–८ सदसस्पतिः । ९ सदसस्पतिर्नाराशंसो वा ॥ छन्दः–१ विराड् गायत्री । ३, ६ ८ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । ४ निचृद्गायत्री । ५ पादनिचृद्गायत्री । २, ७, ९ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः

( १८ ) सो॒मानं॒ स्वर॑णं कृणु॒हि ब्र॑ह्मणस्पते ।
क॒क्षीव॑न्तं॒ य औ॑शि॒जः ॥ १ ॥
यो रे॒वान्यो अ॑मीव॒हा व॑सु॒वित्पु॑ष्टि॒वर्ध॑नः ।
स नः॑ सिषक्तु॒ यस्तु॒रः ॥ २ ॥
मा नः॒ शंसो॒ अर॑रुषो धू॒र्तिः प्रण॒ङ् मर्त्य॑स्य ।
रक्षा॑ णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३ ॥
स घा॑ वी॒रो न रि॑ष्यति॒ यमिन्द्रो॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ।
सोमो॑ हि॒नोति॒ मर्त्य॑म् ॥ ४ ॥
त्वं तं ब्र॑ह्मणस्पते॒ सोम॒ इन्द्र॑श्च॒ मर्त्य॑म् ।
दक्षि॑णा पा॒त्वंह॑सः ॥ ५ ॥ ३४ ॥

---

प्र । वा॒म् । अ॒श्नो॒तु॒ । सु॒ऽस्तु॒तिः । इन्द्रा॑वरुणा । याम् । हु॒वे । याम् । ऋ॒धाथे॒ इति॑ । स॒धऽस्तु॑तिम् ॥ ९ ॥ ३३ ॥ ४ ॥

## ॥ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सो॒मान॑म् । स्वर॑णम् । कृ॒णु॒हि । ब्र॒ह्म॒णः॒ । प॒ते॒ । क॒क्षीव॑न्तम् । यः । औ॒शि॒जः ॥१॥ यः । रे॒वान् । यः । अ॒मी॒व॒ऽहा । व॒सु॒ऽवित् । पु॒ष्टि॒ऽवर्ध॑नः । सः । नः॒ । सि॒स॒क्तु॒ । यः । तु॒रः ॥२॥ मा । न॒ः । शंसः॑ । अर॑रुषः । धू॒र्तिः । प्रण॑क् । मर्त्य॑स्य । रक्ष॑ । नः॒ । ब्र॒ह्म॒णः॒ । प॒ते॒ ॥३॥ सः । घ॒ । वी॒रः । न । रि॒ष्य॒ति॒ । यम् । इन्द्रः॑ । ब्रह्म॑णः । पतिः॑ । सोमः॑ । हि॒नोति॑ । मर्त्य॑म् ॥४॥ त्वम् । तम् । ब्र॒ह्म॒णः॒ । प॒ते॒ । सोमः॑ । इन्द्रः॑ । च॒ । मर्त्य॑म् । दक्षि॑णा । पा॒तु॒ । अंह॑सः ॥ ५ ॥ ३४ ॥ सद॑सः । पति॑म् । अद्भु॑तम् । प्रि॒यम् । इन्द्र॑स्य । काम्य॑म् । स॒निम् ।

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ६ ॥
यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन ।
स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥
आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् ।
होत्रा देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥
नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम् ।
दिवो न सद्ममखसम् ॥ ९ ॥ ३५ ॥

॥ १९ ॥ १–९ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता अग्निर्मरुतश्च ॥ छन्दः—२ निचृद्गायत्री । ९ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । १, ३–८ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

( १९ ) प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ १ ॥
नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ २ ॥
ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ३ ॥

---

मेधां । अयासिषं ॥ ६ ॥ यस्मात् । ऋते । न । सिध्यति । यज्ञः । विपःऽचितः । चन । सः । धीनां । योगं । इन्वति ॥७॥ आत् । ऋध्नोति । हविःऽकृतिं । प्राञ्चं । कृणोति । अध्वरं । होत्रा । देवेषु । गच्छति ॥८॥ नराशंसं । सुऽधृष्टमं । अपश्यं । सप्रथःऽतमं । दिवः । न । सद्मऽमखसं ॥ ९ ॥ ३५ ॥

प्रति । त्यं । चारुं । अध्वरं । गोऽपीथाय । प्र । हूयसे । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥१॥ नहि । देवः । न । मर्त्यः । महः । तव । क्रतुं । परः । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥ २ ॥ ये । महः । रजसः । विदुः । विश्वे । देवासः । अद्रुहः । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥ ३ ॥

य उ॒ग्रा अ॒र्कमा॑नृ॒चुरना॑धृष्टास॒ ओज॑सा ।
म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ ४ ॥
ये शु॒भ्रा घो॒रव॑र्पसः सुक्ष॒त्रासो॑ रि॒शाद॑सः ।
म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ ५ ॥ ३६ ॥
ये नाक॒स्याधि॑ रोच॒ने दि॒वि दे॒वास॒ आस॑ते ।
म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ ६ ॥
य ई॑ङ्ख॒यन्ति॒ पर्व॑तान् ति॒रः स॑मु॒द्रम॑र्ण॒वम् ।
म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ ७ ॥
आ ये त॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभि॑स्ति॒रः स॑मु॒द्रमोज॑सा ।
म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ ८ ॥
अ॒भि त्वा॑ पू॒र्वपी॑तये सृ॒जामि॑ सो॒म्यं मधु॑ ।
म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ ९ ॥ ३७ ॥१ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

ये । उ॒ग्राः । अ॒र्कम् । आ॒नृ॒चुः । अना॑धृष्टासः । ओज॑सा । म॒रुत्ऽभिः॑ । अ॒ग्ने॒ । आ । ग॒हि॒ ॥ ४ ॥ ये । शु॒भ्राः । घो॒रऽव॑र्पसः । सु॒ऽक्ष॒त्रासः॑ । रि॒शाद॑सः । म॒रुत्ऽभिः॑ । अ॒ग्ने॒ । आ । ग॒हि॒ ॥ ५ ॥ ३६ ॥ ये । नाक॑स्य । अधि॑ । रो॒च॒ने । दि॒वि । दे॒वासः॑ । आस॑ते । म॒रुत्ऽभिः॑ । अ॒ग्ने॒ । आ । ग॒हि॒ ॥ ६ ॥ ये । ई॒ङ्ख॒यन्ति॑ । पर्व॑तान् । ति॒रः । स॒मु॒द्रम् । अ॒र्ण॒वम् । म॒रुत्ऽभिः॑ । अ॒ग्ने॒ । आ । ग॒हि॒ ॥ ७ ॥ आ । ये । त॒न्वन्ति॑ । र॒श्मिऽभिः॑ । ति॒रः । स॒मु॒द्रम् । ओज॑सा । म॒रुत्ऽभिः॑ । अ॒ग्ने॒ । आ । ग॒हि॒ ॥ ८ ॥ अ॒भि । त्वा॒ । पू॒र्वऽपी॑तये । सृ॒जामि॑ । सो॒म्यम् । मधु॑ । म॒रुत्ऽभिः॑ । अ॒ग्ने॒ । आ । ग॒हि॒ ॥ ९ ॥ ३७ ॥ १ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

# ॥ अथ प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥



॥ २० ॥ १–८ मेधातिथिः काण्व ऋषि. ॥ देवता—ऋभवः ॥ छन्दः— ३ विराड् गायत्री । ४ निचृद्गायत्री । ५ ८ पिपीलिका मध्या निचृद्गायत्री । १, २, ६, ७ गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

(२०) अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया ।
अकारि रत्नधातमः ॥ १ ॥

य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी ।
शमीभिर्यज्ञमाशत ॥ २ ॥

तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथं ।
तक्षन्धेनुं सबर्दुघाम् ॥ ३ ॥

युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः
ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥ ४ ॥

---

॥ अथ प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



अयं । देवाय । जन्मने । स्तोमः । विप्रेभिः । आसया । अकारि । रत्नऽधातमः ॥ १ ॥ ये । इंद्राय । वचःऽयुजा । ततक्षुः । मनसा । हरी इति । शमीभिः । यज्ञं । आशत ॥२॥ तक्षन् । नासत्याभ्यां । परिऽज्मानं । सुऽखं । रथं । तक्षन । धेनुं । सबःऽदुघां ॥ ३ । युवाना । पितरा । पुनरिति । सत्यऽमंत्राः । ऋजुऽयवः । ऋभवः । विष्टी । अक्रत ॥ ४ ॥

सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता ।
आदित्येभिश्च राजभिः ॥ ५ ॥ १

उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् ।
अकर्त चतुरः पुनः ॥ ६

ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते ।
एकमेकं सुशस्तिभिः ॥ ७

अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया ।
भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ ॥ २

॥ २१ ॥ १--६ मेधातिथि काण्व ऋषिः ॥ देवते--इन्द्राग्नी ॥ छन्द -२ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री
५ निचृद्गायत्री । १, ३, ४, ६, गायत्री ॥ षड्जः स्वर ॥

(२१) इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मसि ।
ता सोमं सोमपातमा ॥ १

ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः ।
ता गायत्रेषु गायत ॥ २

---

सं । वः । मदासः । अग्मत । इंद्रेण । च । मरुत्वता । आदित्येभिः । च । राजऽभिः ॥ ५ ॥ १ ॥ उत । त्यं । चमसं । नवं । त्वष्टुः । देवस्य । निःऽकृतं । अकर्त । चतुरः । पुनरिति ॥ ६ ॥ ते । नः । रत्नानि । धत्तन । त्रिः । आ । साप्तानि । सुन्वते । एकंऽएकं । सुशस्तिभिः ॥ ७ ॥ अधारयंत । वह्नयः । अभजंत । सुऽकृत्यया । भागं । देवेषु । यज्ञियं ॥ ८ ॥ २ ॥

इह । इंद्राग्नी इति । उप । ह्वये । तयोः । इत् । स्तोमं । उश्मसि । ता । सोमं । सोमऽपातमा ॥१॥ ता । यज्ञेषु । प्र । शंसत । इंद्राग्नी इति । शुंभत । नरः । ता । गायत्रेषु

ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे ।
सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥

उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम् ।
इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥

ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् ।
अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥ ५ ॥

तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे ।
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥ ३ ॥

॥ २२ ॥ १--२१ मेधातिथि काण्व ऋषि ॥ देवता--१-४ अश्विनौ ५--८ सविता । ९, १० अग्नि । ११ देव्यः । १२ इन्द्राणीवरुणान्यग्नाय्यः । १३, १४, द्यावापृथिव्यौ । १५ पृथिवी । १६ विष्णुर्देवो वा । १७--२१ विष्णु ॥ छन्द --- १-३ ८, १२, १७ १८, पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री । ६, १९ निचृद्गायत्री । १५ विराड् गायत्री । ४, ५, ७, ९--११, १३, १४, १६, २०, २१. गायत्री ॥ षड्ज स्वरः ॥

( २२ ) प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ १ ॥

---

गायत ॥ २ ॥ ता । मित्रस्य । प्रऽशस्तये । इन्द्राग्नी इति । ता । हवामहे । सोमऽपा । सोमऽपीतये ॥ ३ ॥ उग्रा । संता । हवामहे । उप । इदं । सवनं । सुतं । इन्द्राग्नी इति । आ । इह । गच्छतां ॥ ४ ॥ ता । महांता । सदस्पती इति । इंद्राग्नी इति । रक्षः । उब्जतं । अप्रजाः । संतु । अत्रिणः ॥५॥ तेन । सत्येन । जागृतं । अधि । प्रऽचेतुने । पदे । इंद्राग्नी इति । शर्म । यच्छतं ॥ ६ ॥ ३ ॥
प्रातःऽयुजा । वि । बोधय । अश्विनौ । आ । इह । गच्छतां । अस्य । सोमस्य । पीतये ॥ १ ॥

या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा ।
अश्विना ता हवामहे ॥ २ ॥
या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती ।
तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥
नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः ।
अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४ ॥
हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये ।
स चेत्ता देवता पदम् ॥ ५ ॥ ४ ॥
अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि ।
तस्य व्रतान्युश्मसि ॥ ६ ॥
विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ।
सवितारं नृचक्षसम् ॥ ७ ॥
सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः ।
दाता राधांसि शुम्भति ॥ ८ ॥

---

या । सुऽरथा । रथिऽतमा । उभा । देवा । दिविऽस्पृशा । अश्विना । ता । हवामहे ॥२॥ या । वां । कशा । मधुऽमती । अश्विना । सूनृताऽवती । तया । यज्ञं । मिमिक्षतं ॥३॥ नहि । वां । अस्ति । दूरके । यत्र । रथेन । गच्छथः । अश्विना । सोमिनः । गृहं ॥४॥ हिरण्यऽपाणिं । ऊतये । सवितारं । उप । ह्वये । सः । चेत्ता । देवता । पदं । ॥५॥ ४ ॥ अपां । नपातं । अवसे । सवितारं । उप । स्तुहि । तस्य । व्रतानि । उश्मसि ॥ ६ ॥ विऽभक्तारं । हवामहे । वसोः । चित्रस्य । राधसः । सवितारं । नृऽचक्षसं ॥ ७ ॥ सखायः । आ । नि । सीदत । सविता । स्तोम्यः । नु । नः । दाता । राधांसि । शुंभति ॥ ८ ॥

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप।

त्वष्टारं सोमपीतये ॥ ९ ॥

आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम्।

वरूत्रीं धिषणां वह ॥ १० ॥ ५ ॥

अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः।

अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥ ११ ॥

इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये।

अग्नायीं सोमपीतये ॥ १२ ॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्।

पिपृतां नो भरीमभिः ॥ १३ ॥

तयोरिद्घृतवत्पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः।

गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥ १४ ॥

---

अग्ने। पत्नीः। इह। आ। वह। देवानां। उशतीः। उप। त्वष्टारं। सोमऽपीतये ॥ ९ ॥ आ। ग्नाः। अग्ने। इह। अवसे। होत्रां। यविष्ठ। भारतीं। वरूत्रीं। धिषणां। वह ॥ १० ॥ ५ ॥ अभि। नः। देवीः। अवसा। महः। शर्मणा। नृऽपत्नीः। अच्छिन्नऽपत्राः। सचंतां ॥ ११ ॥ इह। इंद्राणीं। उप। ह्वये। वरुणानीं। स्वस्तये। अग्नायीं। सोमऽपीतये। ॥ १२ ॥ मही। द्यौः। पृथिवी। च। नः। इमं। यज्ञं। मिमिक्षतां। पिपृतां। नः। भरीमऽभिः ॥ १३ ॥ तयोः। इत्। घृतऽवत्। पयः। विप्राः। रिहंति। धीतिऽभिः। गंधर्वस्य। ध्रुवे। पदे ॥ १४ ॥

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ १५ ॥ ६॥
अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।
समूळ्हमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९ ॥
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ २० ॥
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ २१ ॥ ७ ॥

---

स्योना । पृथिवि । भव । अनृक्षरा । निऽवेशनी । यच्छ । नः । शर्म । सऽप्रथः ।
॥१५॥६॥ अतः । देवाः । अवंतु । नः । यतः । विष्णुः । विऽचक्रमे । पृथिव्याः । सप्त ।
धामऽभिः ॥१६॥ इदं । विष्णुः । वि । चक्रमे । त्रेधा । नि । दधे । पदं । संऽऊळ्हं ।
अस्य । पांसुरे ॥ १७ ॥ त्रीणि । पदा । वि । चक्रमे । विष्णुः । गोपाः । अदाभ्यः ।
अतः । धर्माणि । धारयन् ॥१८॥ विष्णोः । कर्माणि । पश्यत । यतः । व्रतानि ।
पस्पशे । इंद्रस्य । युज्यः । सखा ॥ १९ ॥ तत् । विष्णोः । परमं । पदं । सदा ।
पश्यंति । सूरयः । दिविऽइव । चक्षुः । आऽततं ॥२०॥ तत् । विप्रासः । विपन्यवः ।
जागृऽवांसः । सं । इंधते । विष्णोः । यत् । परमं । पदं ॥ २१ ॥ ७ ॥

॥ २३ ॥ १—२४ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता—१ वायु । २, ३ इन्द्रवायू । ४—६ मित्रावरुणौ । ७—९ इन्द्रो मरुत्वान् । १०—१२ विश्वेदेवा. । १३—१५ पूषा । १६—२२ आप. । २३—२४ अग्निः ॥ छंद — १—१८ गायत्री । १९ पुरउष्णिक् । २० अनुष्टुप् । २१ प्रतिष्ठा । २२—२४ अनुष्टुप् ॥ स्वर —१—१८, २१ षड्ज । १९ ऋषभः । २०, २२—२४ गान्धार ॥

(२३) तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे ।
वायो तान्प्रस्थितान्पिब ॥ १ ॥

उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये ।
सहस्राक्षा धियस्पती ॥ ३ ॥

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये ।
जज्ञाना पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती ।
ता मित्रावरुणा हुवे ॥ ५ ॥ ८ ॥

---

तीव्राः । सोमासः । आ । गहि । आशीःऽवंतः । सुताः । इमे । वायो इति । तान् । प्रऽस्थितान् । पिब ॥ १ ॥ उभा । देवा । दिविऽस्पृशा । इंद्रवायू इति । हवामहे । अस्य । सोमस्य । पीतये ॥ २ ॥ इंद्रवायू इति । मनःऽजुवा । विप्राः । हवंते । ऊतये । सहस्रऽअक्षा । धियः । पती इति ॥ ३ ॥ मित्रं । वयं । हवामहे । वरुण । सोमऽपीतये । जज्ञाना । पूतऽदक्षसा ॥ ४ ॥ ऋतेन । यौ । ऋतऽवृधौ । ऋतस्य । ज्योतिषः । पती इति । ता । मित्रावरुणा । हुवे ॥ ५ ॥ ८ ॥

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करतां नः सुराधसः ॥ ६ ॥
मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये ।
सजूर्गणेन तृम्पतु ॥ ७ ॥
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।
विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ ८ ॥
हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा ।
मा नो दुःशंस ईशत ॥ ९ ॥
विश्वान्देवान्हवामहे मरुतः सोमपीतये ।
उग्रा हि पृश्निमातरः ॥ १० ॥ ९ ॥
जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया ।
यच्छुभं याथना नरः ॥ ११ ॥
हस्काराद्विद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः ।
मरुतो मृळयन्तु नः ॥ १२ ॥

---

वरुणं । प्रऽअविता । भुवत् । मित्रः । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः । करतां । नः । सुऽराधसः ॥ ६ ॥ मरुत्वंतं । हवामहे । इंद्रं । आ । सोमपीतये । सऽजूः । गणेन । तृंपतु ॥७॥ इंद्रऽज्येष्ठाः । मरुत्ऽगणाः । देवासः । पूषऽरातयः । विश्वे । मम । श्रुत । हवं ॥ ८ ॥ हत । वृत्रं । सुऽदानवः । इंद्रेण । सहसा । युजा । मा । नः । दुःऽशंसः । ईशत ॥ ९ ॥ विश्वान् । देवान् । हवामहे । मरुतः । सोमऽपीतये । उग्राः । हि । पृश्निऽमातरः ॥ १० ॥ ९ ॥ जयतांऽइव । तन्यतुः । मरुतां । एति । धृष्णुऽया । यत् । शुभं । याथना । नरः ॥ ११ ॥ हस्कारात् । विऽद्युतः । परि । अतः । जाताः । अवंतु । नः । मरुतः । मृळयतु । नः ॥ १२ ॥

आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः ।
आजा नष्टं यथा पशुम् ॥ १३ ॥
पूषा राजानमाघृणिरपगूळ्हं गुहा हितम् ।
अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ॥ १४ ॥
उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्ताँ अनुसेषिधत् ।
गोभिर्यवं न चर्कृषत् ॥ १५ ॥ १० ॥
अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् ।
पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥ १६ ॥
अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ १७ ॥
अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः ।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ १८ ॥
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये ।
देवा भवत वाजिनः ॥ १९ ॥

---

आ । पूषन् । चित्रऽबर्हिषं । आघृणे । धरुणं । दिवः । आ । अज । नष्टं । यथा । पशुं ॥ १३ ॥ पूषा । राजानं । आघृणिः । अपऽगूळ्हं । गुहा । हितं । अविंदत् । चित्रऽबर्हिषं ॥१४॥ उतो इति । सः । मह्यं । इंदुऽभिः । षट् । युक्तान् । अनुऽसेसिधत् । गोभिः । यवं । न । चर्कृषत् ॥१५॥१०॥ अंबयः । यंति । अध्वऽभिः । जामयः । अध्वरिऽयतां । पृंचतीः । मधुना । पयः ॥ १६ ॥ अमूः । याः । उप । सूर्ये । याभिः । वा । सूर्यः । सह । ताः । नः । हिन्वंतु । अध्वरं ॥ १७ ॥ अपः । देवीः । उप । ह्वये । यत्र । गावः । पिबंति । नः । सिंधुऽभ्यः । कर्त्वं । हविः ॥१८॥ अप्ऽसु । अंतः । अमृतं । अप्ऽसु । भेषजं । अपां । उत । प्रऽशस्तये । देवाः । भवत । वाजिनः ॥१९॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥ २० ॥ ११ ॥
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ २१ ॥
इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ २२ ॥
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ २३ ॥
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ॥२४॥१२॥५॥

## ॥ षष्ठोऽनुवाकः ॥

॥ २४ ॥ १-१५ शुनःशेप आजीगर्तिः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरात ऋषिः । देवता--१ प्रजापतिः । २ अग्निः । ३-५ सविता भगो वा । ६-१५ वरुणः ॥ छन्दः-१ २, ६-१५ त्रिष्टुप् । ३-५ गायत्री ॥ स्वरः-१, २, ६-१५ धैवतः । ३-५ षड्जः ॥

( २४ ) कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।

---

अप्ऽसु । मे । सोमः । अब्रवीत् । अंतः । विश्वानि । भेषजा । अग्निं । च । विश्वऽशंभुवं । आपः । च । विश्वभेषजीः ॥ २० ॥ ११ ॥ आपः । पृणीत । भेषजं । वरूथं । तन्वे । मम । ज्योक् । च । सूर्यं । दृशे ॥२१॥ इदं । आपः । प्र । वहत । यत् । किं । च । दुःऽइतं । मयि । यत् । वा । अहं । अभिऽदुद्रोह । यत् । वा । शेपे । उत । अनृतं ॥ २२ ॥ आपः । अद्य । अनु । अचारिषं । रसेन । सं । अगस्महि । पयस्वान् । अग्ने । आ । गहि । तं । मा । सं । सृज । वर्चसा ॥ २३ ॥ सं । मा । अग्ने । वर्चसा । सृज । सं । प्रऽजया । सं । आयुषा । विद्युः । मे । अस्य । देवाः । इंद्रः । विद्यात् । सह । ऋषिऽभिः ॥२४॥१२॥ ५॥

## ॥ षष्ठोऽनुवाकः ॥

कस्य । नूनं । कतमस्य । अमृतानां । मनामहे । चारु । देवस्य । नाम । कः । नः ।

को नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात्पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च ॥ १॥

अ॒ग्नेर्व॒यं प्र॑थ॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑ ।

स नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात्पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च ॥ २॥

अ॒भि त्वा॑ देव सवित॒रीशा॑नं॒ वार्या॑णाम् ।

सदा॑वन्भा॒गमी॑महे ॥ ३॥

यश्चि॒द्धि त॑ इ॒त्था भगः॑ शशमा॒नः पु॒रा नि॒दः ।

अ॒द्वे॒षो हस्त॑योर्द॒धे ॥ ४॥

भग॑भक्तस्य ते व॒यमुद॑शेम॒ तवाव॑सा ।

मू॒र्धानं॑ रा॒य आ॒रभे॑ ॥ ५॥ १३॥

न॒हि ते॑ क्ष॒त्रं न सहो॒ न म॒न्युं वय॑श्च॒नामी प॒तय॑न्त आ॒पुः ।

नेमा आपो॑ अनिमि॒षं चर॑न्ती॒र्न ये वात॑स्य प्रमि॒नन्त्यभ्व॑म् ॥६॥

---

म॒ह्यै । अदि॑तये । पुन॒रिति॑ । दा॒त् । पि॒तर॑म् । च॒ । दृ॒शेय॑म् । मा॒तर॑म् । च॒ ॥१॥ अ॒ग्नेः । व॒यम् । प्र॒थ॒मस्य॑ । अ॒मृता॑नाम् । मना॑महे । चारु॑ । दे॒वस्य॑ । नाम॑ । सः । नः॒ । म॒ह्यै । अदि॑तये । पुन॒रिति॑ । दा॒त् । पि॒तर॑म् । च॒ । दृ॒शेय॑म् । मा॒तर॑म् । च॒ ॥२॥ अ॒भि । त्वा॒ । दे॒व॒ । स॒वि॒त॒रिति॑ । ईशा॑नम् । वार्या॑णाम् । सदा॑ । अ॒व॒न् । भा॒गम् । ई॒म॒हे॒ ॥ ३ ॥ यः । चि॒त् । हि । ते॒ । इ॒त्था । भगः॑ । श॒श॒मा॒नः । पु॒रा । नि॒दः । अ॒द्वे॒षः । हस्त॑योः । द॒धे ॥४॥ भग॑ऽभक्तस्य । ते॒ । व॒यम् । उत् । अ॒शे॒म॒ । तव॑ । अव॑सा । मू॒र्धान॑म् । रा॒यः । आ॒ऽरभे॑ ॥ ५ ॥ १३ ॥ न॒हि । ते॒ । क्ष॒त्रम् । न । सहः॑ । न । म॒न्युम् । वयः॑ । च॒न । अ॒मी इति॑ । प॒तय॑न्तः । आ॒पुः । न । इ॒माः । आपः॑ । अ॒नि॒ऽमि॒षम् । चर॑न्तीः । न । ये । वात॑स्य । प्र॒ऽमि॒नन्ति॑ । अभ्व॑म् ॥ ६ ॥

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥७॥
उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥८॥
शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥९॥
अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः ।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥१०॥१४॥
तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः॥११॥

---

अबुध्ने । राजा । वरुणः । वनस्य । ऊर्ध्वं । स्तूपं । ददते । पूतऽदक्षः । नीचीनाः । स्थुः । उपरि । बुध्नः । एषां । अस्मे इति । अंतः । निऽहिताः । केतवः । स्युरिति स्युः । ॥ ७ ॥ उरुं । हि । राजा । वरुणः । चकार । सूर्याय । पंथां । अनुऽएतवै । ऊं इति । अपदे । पादा । प्रतिऽधातवे । अकः । उत । अपऽवक्ता । हृदयऽविधः । चित् ॥ ८ ॥ शतं । ते । राजन् । भिषजः । सहस्रं । उर्वी । गभीरा । सुऽमतिः । ते । अस्तु । बाधस्व । दूरे । निःऽऋतिं । पराचैः । कृतं । चित् । एनः । प्र । मुमुग्धि । अस्मत् ॥ ९ ॥ अमी इति । ये । ऋक्षाः । निऽहितासः । उच्चा । नक्तं । ददृश्रे । कुह । चित् । दिवा । ईयुः । अदब्धानि । वरुणस्य । व्रतानि । विऽचाकशत् । चंद्रमाः । नक्तं । एति ॥ १० ॥१४॥ तत् । त्वा । यामि । ब्रह्मणा । वंदमानः । तत् । आ । शास्ते । यजमानः । हविःऽभिः । अहेळमानः । वरुण । इह । बोधि । उरुऽशंस । मा । नः । आयुः । प्र । मोषीः ॥ ११ ॥

तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद्गृभीतः सो अस्मान्राजा वरुणो मुमोक्तु ॥ १२ ॥
शुनःशेपो ह्यह्वद्गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥ १३ ॥
अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥ १४ ॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १५ ॥ १५ ॥

॥ २५ ॥ १–२१ शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥ षड्जः स्वरः ॥

( २५ ) यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् ।
मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

---

तत् । इत् । नक्तं । तत् । दिवा । मह्यं । आहुः । तत् । अयं । केतः । हृदः । आ । वि । चष्टे । शुनःशेपः । यं । अह्वत् । गृभीतः । सः । अस्मान् । राजा । वरुणः । मुमोक्तु ॥ १२ ॥ शुनःऽशेपः । हि । अह्वत् । गृभीतः । त्रिषु आदित्यं । द्रुऽपदेषु । बद्धः । अव । एनं । राजा । वरुणः । ससृज्यात् । विद्वान् । अदब्धः । वि । मुमोक्तु । पाशान् ॥ १३ ॥ अव । ते । हेळः । वरुण । नमःऽभिः । अव । यज्ञेभिः । ईमहे । हविःऽभिः । क्षयन् । अस्मभ्यं । असुर । प्रचेत इति प्रऽचेतः । राजन् । एनांसि । शिश्रथः । कृतानि ॥ १४ ॥ उत् । उत्ऽतमं । वरुण । पाशं । अस्मत् । अव । अधमं । वि । मध्यमं । श्रथाय । अथ । वयं । आदित्य । व्रते । तव । अनागसः । अदितये । स्याम ॥ १५ ॥ १५ ॥

यत् । चित् । हि । ते । विशः । यथा । प्र । देव । वरुण । व्रतं । मिनीमसि । द्यविऽद्यवि ॥ १ ॥

मा नो॑ व॒धाय॑ ह॒त्नवे॑ जिहीळा॒नस्य॑ रीरधः ।
मा हृ॑णा॒नस्य॑ म॒न्यवे॑ ॥२॥
वि मृ॑ळी॒काय॑ ते॒ मनो॑ र॒थीरश्वं॒ न सन्दि॑तम् ।
गी॒र्भिर्व॑रुण सीमहि ॥३॥
परा॒ हि मे॒ विम॑न्यवः॒ पत॑न्ति॒ वस्य॑इष्टये ।
वयो॒ न व॑स॒तीरुप॑ ॥ ४ ॥
क॒दा क्ष॑त्र॒श्रियं॒ नर॒मा वरु॑णं करामहे ।
मृ॒ळी॒काया॑रु॒चक्ष॑सम् ॥ ५ ॥ १६ ॥
तदित्स॑मा॒नमा॑शाते॒ वेन॑न्ता॒ न प्र यु॑च्छतः ।
धृ॒तव्र॑ताय दा॒शुषे॑ ॥ ६ ॥
वेदा॒ यो वी॒नां प॒दम॒न्तरि॑क्षेण॒ पत॑ताम् ।
वेद॑ ना॒वः स॑मु॒द्रियः॑ ॥ ७ ॥
वेद॑ मा॒सो धृ॒तव्र॑तो॒ द्वाद॑श प्र॒जाव॑तः ।
वेदा॒य उ॑प॒जाय॑ते ॥ ८ ॥

---

मा । नः॒ । व॒धाय॑ । ह॒त्नवे॑ । जि॒ही॒ळा॒नस्य॑ । री॒र॒धः॒ । मा । हृ॒णा॒नस्य॑ । म॒न्यवे॑ ॥ २ ॥ वि । मृ॒ळी॒काय॑ । ते॒ । मनः॑ । र॒थीः । अश्व॑म् । न । सम्ऽदि॑तम् । गीः॒ऽभिः । व॒रु॒ण॒ । सी॒म॒हि॒ ॥३॥ परा॑ । हि । मे॒ । विऽम॑न्यवः । पत॑न्ति । वस्यः॑ऽइष्टये । वयः॑ । न । व॒स॒तीः । उप॑ ॥ ४ ॥ क॒दा । क्ष॒त्रऽश्रिय॑म् । नर॑म् । आ । वरु॑णम् । क॒रा॒म॒हे॒ । मृ॒ळी॒काय॑ । उ॒रु॒ऽचक्ष॑सम् ॥ ५ ॥ १६ ॥ तत् । इत् । स॒मा॒नम् । आ॒शा॒ते॒ इति॑ । वेन॑न्ता । न । प्र । यु॒च्छ॒तः॒ । धृ॒तऽव्र॑ताय । दा॒शुषे॑ ॥६॥ वेद॑ । यः । वी॒नाम् । प॒दम् । अ॒न्तरि॑क्षेण । पत॑ताम् । वेद॑ । ना॒वः । स॒मु॒द्रियः॑ ॥७॥ वेद॑ । मा॒सः । धृ॒तऽव्र॑तः । द्वाद॑श । प्र॒जाऽव॑तः । वेद॑ । यः । उ॒प॒ऽजाय॑ते ॥८॥

वेद॒ वात॑स्य वर्त॒निमु॒रोर्ऋ॒ष्वस्य॑ बृह॒तः ।
वेदा॒ ये अ॒ध्यास॑ते ॥ ९ ॥

नि ष॑साद धृ॒तव्र॑तो॒ वरु॑णः प॒स्त्या॒३॑स्वा ।
साम्रा॑ज्याय सु॒क्रतु॑ः ॥ १० ॥ १७ ॥

अतो॒ विश्वा॒न्यद्भु॑ता चिकि॒त्वाँ अ॒भि प॑श्यति ।
कृता॒नि॒ या च॒ कर्त्वा॑ ॥ ११ ॥

स नो॑ वि॒श्वाहा॑ सु॒क्रतु॑रादि॒त्यः सु॒पथा॑ करत् ।
प्र ण॒ आयूं॑षि तारिषत् ॥ १२ ॥

बिभ्र॑द्द्रा॒पिं हि॑र॒ण्यय॑ं वरु॑णो वस्त नि॒र्णिज॑म् ।
परि॒ स्पशो॒ नि षे॑दिरे ॥ १३ ॥

न यं दिप्स॑न्ति दि॒प्सवो॒ न द्रुह्वा॑णो॒ जना॑नाम् ।
न दे॒वम॒भिमा॑तयः ॥ १४ ॥

उ॒त यो मानु॑षे॒ष्वा यश॑श्च॒क्रे अस॒म्या ।
अ॒स्माक॑मु॒दरे॒ष्वा ॥ १५ ॥ १८ ॥

---

वेद॑ । वात॑स्य । व॒र्तनि॑म् । उ॒रोः । ऋ॒ष्वस्य॑ । बृ॒ह॒तः । वेद॑ । ये । अ॒धि॒ऽआस॑ते ॥ ९ ॥ नि । स॒साद॒ । धृ॒तऽव्र॑तः । वरु॑णः । प॒स्त्या॑सु । आ । साम्ऽरा॑ज्याय । सु॒ऽक्रतु॑ः ॥ १० ॥ १७ ॥ अत॑ः । विश्वा॑नि । अद्भु॑ता । चि॒कि॒त्वान् । अ॒भि । प॒श्य॒ति॒ । कृता॑नि । या । च॒ । कर्त्वा॑ ॥ ११ ॥ सः । नः॒ । वि॒श्वाहा॑ । सु॒ऽक्रतु॑ः । आ॒दि॒त्यः । सु॒ऽपथा॑ । क॒र॒त् । प्र । नः॒ । आयू॑ंषि । ता॒रि॒ष॒त् ॥ १२ ॥ बिभ्र॑त् । द्रा॒पिम् । हि॒र॒ण्यय॑म् । वरु॑णः । व॒स्त॒ । निः॒ऽनिज॑म् । परि॑ । स्पश॑ः । नि । से॒दि॒रे॒ ॥ १३ ॥ न । यम् । दिप्स॑न्ति । दि॒प्सव॑ः । न । द्रुह्वा॑णः । जना॑नाम् । न । दे॒वम् । अ॒भिऽमा॑तयः ॥ १४ ॥ उ॒त । यः । मानु॑षेषु । आ । यश॑ः । च॒क्रे । असा॑मि । आ । अ॒स्माक॑म् । उ॒दरे॑षु । आ ॥ १५ ॥ १८ ॥

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु ।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥ १६ ।

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् ।
होतेव क्षदसे प्रियम् ॥१७।

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि ।
एता जुषत मे गिरः ॥ १८ ।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युरा चके ॥ १९ ।

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि ।
स यामनि प्रति श्रुधि ॥ २० ।

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत ।
अवाधमानि जीवसे ॥ २१ ॥ १९ ।

॥ २६ ॥ १-१० शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द -१, ८, ९ आर्ची उष्णिक् । २ ६, निचृद्गायत्री । ३ प्रतिष्ठा गायत्री । ४, १० गायत्री । ५, ७ विराड् गायत्री ॥ स्वरः—१, ८, ९ ऋषभ । २, ६, ३, ४, १०, ५, ७ षड्ज ॥

---

परा । मे । यंति । धीतयः । गावः । न । गव्यूतीः । अनु । इच्छंतीः । उरुऽचक्षसं ॥१६॥ सं । नु । वोचावहै । पुनः । यतः । मे । मधु । आऽभृतं । होताऽइव । क्षदसे । प्रियं ॥१७॥ दर्शं । नु । विश्वऽदर्शतं । दर्शं । रथं । अधि । क्षमि । एताः । जुषत । मे । गिरः ॥१८॥ इमं । मे । वरुण । श्रुधि । हवं । अद्य । च । मृळय । त्वां । अवस्युः । आ । चके ॥ १९ ॥ त्वं । विश्वस्य । मेधिर । दिवः । च । ग्मः । च । राजसि । सः । यामनि । प्रति । श्रुधि ॥२०॥ उत् । उत्ऽतमं । मुमुग्धि । नः । वि । पाशं । मध्यमं । चृत । अव । अधमानि । जीवसे ॥ २१ ॥ १९ ॥

( २६ ) वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते ।
सेमं नो अध्वरं यज ॥ १ ॥
नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः ।
अग्ने दिवित्मता वचः ॥ २ ॥
आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये ।
सखा सख्ये वरेण्यः ॥ ३ ॥
आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
सीदन्तु मनुषो यथा ॥ ४ ॥
पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च ।
इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥ ५ ॥ २० ॥
यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे ।
त्वे इद्धूयते हविः ॥ ६ ॥
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।
प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ७ ॥

---

वसिष्व । हि । मियेध्य । वस्त्राणि । ऊर्जा । पते । सः । इमं । नः । अध्वरं । यज ॥ १ ॥ नि । नः । होता । वरेण्यः । सदा । यविष्ठ । मन्मऽभिः । अग्ने । दिवित्मता । वचः ॥ २ ॥ आ । हि । स्म । सूनवे । पिता । आपिः । यजति । आपये । सखा । सख्ये । वरेण्यः ॥ ३ ॥ आ । नः । बर्हिः । रिशादसः । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । सीदंतु । मनुषः । यथा ॥ ४ ॥ पूर्व्य । होतः । अस्य । नः । मंदस्व । सख्यस्य । च । इमाः । ऊं इति । सु । श्रुधि । गिरः ॥ ५ ॥ २० ॥ यत् । चित् । हि । शश्वता । तना । देवंऽदेवं । यजामहे । त्वे इति । इत् । हूयते । हविः ॥ ६ ॥ प्रियः । नः । अस्तु । विश्पतिः । होता । मंद्रः । वरेण्यः । प्रियाः । सुऽअग्नयः । वयं ॥ ७ ॥

स्व॒ग्नयो॒ हि वार्यं॑ दे॒वासो॑ द॒धि॒रे च॑ नः ।
स्व॒ग्नयो॑ मनामहे ॥ ८ ॥

अथा॑ न उ॒भये॑षा॒ममृ॑त॒ मर्त्या॑नाम् ।
मि॒थः स॑न्तु॒ प्रश॑स्तयः ॥ ९ ॥

विश्वे॑भिरग्ने अ॒ग्निभि॑रि॒मं य॒ज्ञमि॒दं वचः॑ ।
चनो॑ धाः सहसो यहो ॥ १० ॥ २१ ॥

॥ २७ ॥ १–१३ शुनःशेप आजीगतिर्ऋषिः ॥ देवता–१–१२ अग्निः । १३ विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१—१२ गायत्री । १३ त्रिष्टुप् ॥ स्वर–१–१२ षड्जः । १३ धैवतः ॥

( २७ ) अश्वं॒ न त्वा॒ वार॑वन्तं व॒न्दध्या॑ अ॒ग्निं नमो॑भिः ।
स॒म्राज॑न्तमध्व॒राणा॑म् ॥ १ ॥

स घा॑ नः सू॒नुः शव॑सा पृ॒थुप्र॑गामा सु॒शेवः॑ ।
मी॒ढ्वाँ अ॒स्माकं॑ बभूयात् ॥२॥

स नो॑ दू॒राच्चा॒साच्च॒ नि मर्त्या॑दघा॒योः ।
पा॒हि सद॒मिद्वि॒श्वायुः॑ ॥ ३ ॥

---

सु॒ऽअ॒ग्नयः॑ । हि । वार्य॑म् । दे॒वासः॑ । द॒धि॒रे । च॒ । नः॒ । सु॒ऽअ॒ग्नयः॑ । म॒ना॒म॒हे॒ ॥ ८ ॥ अथ॑ । नः॒ । उ॒भये॑षाम् । अमृ॑त । मर्त्या॑नाम् । मि॒थः । स॑न्तु । प्रऽश॑स्तयः ॥९॥ विश्वे॑भिः अ॒ग्ने॒ । अ॒ग्निऽभिः॑ । इ॒मम् । य॒ज्ञम् । इ॒दम् । वचः॑ । चनः॑ । धाः॒ । स॒ह॒सः॒ । य॒हो॒ इति॑ ॥१०॥२१॥

अश्व॑म् । न । त्वा॒ । वार॑ऽवन्तम् । व॒न्दध्यै॑ । अ॒ग्निम् । नमः॑ऽभिः । स॒म्ऽराज॑न्तम् । अ॒ध्व॒राणा॑म् ॥ १ ॥ सः । घ॒ । नः॒ । सू॒नुः । शव॑सा । पृ॒थुऽप्र॑गामा । सु॒ऽशेवः॑ । मी॒ढ्वान् । अ॒स्माक॑ । ब॒भू॒या॒त् ॥ २ ॥ सः । नः॒ । दू॒रात् । च॒ । आ॒सात् । च॒ । नि । मर्त्या॑त् । अ॒घ॒ऽयोः । पा॒हि । सद॑म् । इत् । वि॒श्वऽआ॑युः ॥ ३ ॥

इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् ।
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ४ ॥
आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ५ ॥ २२ ॥
विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ ।
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ ६ ॥
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।
स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ ७ ॥
नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् ।
वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ ८ ॥
स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता ।
विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥
जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ १० ॥ २३ ॥

---

इमं । ऊं इति । सु । त्वं । अस्माकं । सनिं । गायत्रं । नव्यांसं । अग्ने । देवेषु । प्र । वोचः ॥४॥
आ । नः । भज । परमेषु । आ । वाजेषु । मध्यमेषु । शिक्ष । वस्वः । अंतमस्य ॥५॥२२॥
विऽभक्ता । असि । चित्रभानो इति चित्रऽभानो । सिंधोः । ऊर्मौ । उपाके । आ ।
सद्यः । दाशुषे । क्षरसि ॥ ६ ॥ यं । अग्ने । पृत्ऽसु । मर्त्यं । अवाः । वाजेषु । यं ।
जुनाः । सः । यंता । शश्वतीः । इषः ॥ ७ ॥ नकिः । अस्य । सहंत्य । परिऽएता ।
कयस्य । चित् । वाजः । अस्ति । श्रवाय्यः ॥८॥ सः । वाजं । विश्वऽचर्षणिः । अर्वत्ऽभिः ।
अस्तु । तरुता । विप्रेभिः । अस्तु । सनिता ॥९॥ जराऽबोध । तत् । विविड्ढि । विशेऽविशे
यज्ञियाय । स्तोमं । रुद्राय । दृशीकं ॥ १० ॥ २३ ॥

स नो॑ म॒हाँ अ॑नि॒मा॒नो धू॒मके॑तुः पुरु॒श्च॒न्द्रः ।
धि॒ये वाजा॑य हिन्वतु ॥ ११॥
स रे॒वाँ इ॑व वि॒श्पति॒र्दैव्यः॑ के॒तुः शृ॑णोतु नः ।
उ॒क्थैर॒ग्निर्बृ॒हद्भा॑नुः ॥ १२ ॥
नमो॑ म॒हद्भ्यो॒ नमो॑ अर्भ॒केभ्यो॒ नमो॒ युव॑भ्यो॒ नम॑ आशि॒नेभ्यः॑ ।
यजा॑म दे॒वान्यदि॑ श॒क्नवा॑म॒ मा ज्याय॑सः॒ शंस॒मा वृ॑क्षि देवाः॥१३॥२४॥

॥ २८ ॥ १-९ शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ इन्द्रयज्ञसोमा देवता ॥ छन्दः--१-६ अनुष्टुप्। ७-९ गायत्री ॥ स्वरः --१-६ गान्धारः ७-९ षड्जः ॥

( २८ ) यत्र॒ ग्रावा॑ पृ॒थुबु॑ध्न ऊ॒र्ध्वो भव॑ति॒ सोत॑वे ।
उ॒लूख॑लसुताना॒मवेद्वि॑न्द्र जल्गुलः ॥ १ ॥
यत्र॑ द्वावि॑व ज॒घना॑धिषव॒ण्या॑ कृ॒ता ।
उ॒लूख॑लसुताना॒मवेद्वि॑न्द्र जल्गुलः ॥ २ ॥

---

सः । नः॒ । म॒हान् । अ॒नि॒ऽमा॒नः । धू॒मऽके॑तुः । पु॒रु॒ऽच॒न्द्रः । धि॒ये । वाजा॑य । हि॒न्व॒तु॒॥११॥ सः । रे॒वान्ऽइ॑व । वि॒श्पतिः॑ । दैव्यः॑ । के॒तुः॑। शृ॒णो॒तु॒ । नः॒ । उ॒क्थैः । अ॒ग्निः । बृ॒हत्ऽभा॑नुः ॥ १२ ॥ नमः॑ । म॒हत्ऽभ्यः॑ । नमः॑ । अ॒र्भ॒केभ्यः॑ । नमः॑ । युव॑ऽभ्यः । नमः॑ । आ॒शि॒नेभ्यः॑। यजा॑म । दे॒वान् । यदि॑ । श॒क्नवा॑म । मा । ज्याय॑सः । शंस॑ । आ । वृ॒क्षि॒ । दे॒वाः॒ ॥ १३ ॥ २४ ॥

यत्र॑ । ग्रावा॑ । पृ॒थुऽबु॑ध्नः। ऊ॒र्ध्वः । भव॑ति । सोत॑वे । उ॒लूख॑लऽसुतानां। अव॑ । इत् । ऊं॒ इति॑ । इ॒न्द्र॒ । ज॒ल्गु॒लः॒ ॥१ ॥ यत्र॑ । द्वौऽइ॑व । ज॒घना॑ । अ॒धि॒ऽस॒व॒न्या॑ । कृ॒ता । उ॒लूख॑लऽसुतानां । अव॑ । इत् । ऊं॒ इति॑ । इ॒न्द्र॒ । ज॒ल्गु॒लः॒ ॥ २ ॥

यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ३ ॥

यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन्यमितवा इव।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥४॥

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥ ५ ॥ २५ ॥

उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित्।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६ ॥

आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्भृतः।
हरी इवान्धांसि बप्सता ॥ ७ ॥

ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः।
इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥ ८ ॥

---

यत्र। नारी। अपऽच्यवं। उपऽच्यवं। च। शिक्षते। उलूखलऽसुतानां। अव। इत्। ऊं इति। इंद्र। जल्गुलः ॥३॥ यत्र। मथां। विऽबध्नते। रश्मीन्। यमितवैऽइव। उलूखलऽसुतानां। अव। इत्। ऊं इति। इंद्र। जल्गुलः ॥ ४ ॥ यत्। चित्। हि। त्वं। गृहेऽगृहे। उलूखलक। युज्यसे। इह। द्युमत्ऽतमं। वद। जयतांऽइव। दुंदुभिः ॥५॥२५॥ उत। स्म। ते। वनस्पते। वातः। वि। वाति। अग्रं। इत्। अथो इति। इंद्राय। पातवे। सुनु। सोमं। उलूखल ॥ ६ ॥ आयजी इत्याऽयजी। वाजऽसातमा। ता। हि। उच्चा। विऽजर्भृतः। हरी इवेति हरीऽइव। अंधांसि। बप्सता ॥ ७ ॥ ता। नः। अद्य। वनस्पती इति। ऋष्वौ। ऋष्वेभिः। सोतृऽभिः। इंद्राय। मधुऽमत्। सुतं ॥ ८ ॥

उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज ।

नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ९ ॥२६॥

॥ २९ ॥ १-७ शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ पङ्क्तिश्छन्दः ॥ पञ्चमः स्वरः ॥

(२९) यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥

शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥

नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥

---

उत् । शिष्टं । चम्वोः । भर । सोमं । पवित्रे । आ । सृज । नि । धेहि । गोः । अधि । त्वचि ॥ ९ ॥ २६ ॥

यत् । चित् । हि । सत्य । सोमऽपाः । अनाशस्ताःऽइव । स्मसि । आ । तु । नः । इंद्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ १ ॥ शिप्रिन् । वाजानां । पते । शचीऽवः । तव । दंसना । आ । तु । नः इंद्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ २ ॥ नि । स्वापय । मिथुऽदृशा । सस्तां । अबुध्यमाने इति । आ । तु । नः । इंद्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ ३ ॥ ससंतु । त्याः । अरातयः । बोधंतु । शूर । रातयः । आ । तु । नः । इंद्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ ४ ॥

सम् इन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥

पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७॥२७॥

॥ ३० ॥ १–२२ शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ देवता—१–१६ इन्द्रः । १७–१९ अश्विनौ । २०–२२ उषा ॥ छन्दः–१–१० १२–१५, १७–२२ गायत्री । ११ पादनिचृद्गायत्री । १६ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः–१—२२ षड्जः । १६ धैवतश्च ॥

( ३० ) आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

---

सं । इंद्र । गर्दभं । मृण । नुवंतं । पापया । अमुया । आ । तु । नः । इंद्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ ५ ॥ पताति । कुण्डृणाच्या । दूरं । वातः । वनात् । अधि । आ । तु । नः । इंद्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ ६ ॥ सर्वं । परिऽक्रोशं । जहि । जंभय । कृकदाश्वं । आ । तु । नः । इंद्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ ७ ॥ २७ ॥

आ । वः । इंद्रं । क्रिविं । यथा । वाजऽयंतः । शतऽक्रतुं । मंहिष्ठं । सिंच । इंदुऽभिः ॥ १ ॥

शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम्।

एदु निम्नं न रीयते ॥ २ ॥

सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे।

समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्।

वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ४ ॥

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।

विभूतिरस्तु सूनृता ॥ ५ ॥ २८ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो।

समन्येषु ब्रवावहै ॥ ६ ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।

सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥

आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः।

वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ८ ॥

---

शतं। वा। यः। शुचीनां। सहस्रं। वा। संऽआशिरां। आ। इत्। ऊं इति। निम्नं। न। रीयते ॥ २ ॥ सं। यत्। मदाय। शुष्मिणे। एना। हि। अस्य। उदरे। समुद्रः। न। व्यचः। दधे ॥३॥ अयं। ऊं इति। ते। सं। अतसि। कपोतःऽइव। गर्भऽधिं। वचः। तत्। चित्। नः। ओहसे ॥ ४ ॥ स्तोत्रं। राधानां। पते। गिर्वाहः। वीर। यस्य। ते। विऽभूतिः। अस्तु। सूनृता ॥ ५॥ २८ ॥ ऊर्ध्वः। तिष्ठ। नः। ऊतये। अस्मिन्। वाजे। शतक्रतो इति शतऽक्रतो। सं। अन्येषु। ब्रवावहै ॥ ६ ॥ योगेऽयोगे। तवःऽतरं। वाजेऽवाजे। हवामहे। सखायः। इंद्रं। ऊतये ॥ ७ ॥ आ। घ। गमत्। यदि। श्रवत्। सहस्रिणीभिः। ऊतिऽभिः। वाजेभिः। उप। नः। हवं ॥ ८ ॥

अनु॑ प्र॒त्नस्यौक॑सो हु॒वे तु॑विप्र॒तिं नर॑म् ।
यं ते॒ पूर्वं॑ पि॒ता हु॒वे ॥ ९ ॥

तं त्वा॑ व॒यं वि॑श्ववा॒रा शा॑स्महे पुरुहूत ।
सखे॑ वसो जरि॒तृभ्यः॑ ॥ १० ॥ २९॥

अ॒स्माकं॑ शि॒प्रिणी॑नां॒ सोम॑पाः सोम॒पाव्ना॑म् ।
सखे॑ वज्रि॒न्त्सखी॑नाम् ॥ ११ ॥

तथा॒ तद॑स्तु सोमपाः॒ सखे॑ वज्रि॒न्तथा॑ कृणु ।
यथा॑ त उ॒श्मसी॒ष्टये॑ ॥ १२ ॥

रे॒वती॑र्नः स॒धमा॑द॒ इन्द्रे॑ सन्तु तु॒विवा॑जाः ।
क्षु॒मन्तो॒ याभि॒र्मदे॑म ॥ १३ ॥

आ घ॒ त्वावा॒न्त्मना॒प्तः स्तो॒तृभ्यो॑ धृष्णविया॒नः ।
ऋ॒णोरक्षं॒ न च॒क्र्योः॑ ॥ १४ ॥

---

अनु॑ । प्र॒त्नस्य॑ । ओक॑सः । हु॒वे । तु॒वि॒ऽप्र॒तिं॑ । नर॑ं । यं । ते॒ । पूर्वं॑ । पि॒ता । हु॒वे ॥ ९ ॥ तं । त्वा॒ । व॒यं । वि॒श्व॒ऽवा॒र॒ । आ । शा॒स्म॒हे॒ । पु॒रु॒ऽहू॒त॒ । सखे॑ । व॒सो॒ इति॑ । ज॒रि॒तृऽभ्यः॑ ॥१०॥२९॥ अ॒स्माकं॑ । शि॒प्रिणी॑नां । सोम॑ऽपाः । सो॒म॒ऽपाव्नां॑ । सखे॑ । व॒ज्रि॒न् । सखी॑नां ॥११॥ तथा॑ । तत् । अ॒स्तु॒ । सो॒म॒ऽपाः॒ । सखे॑ । व॒ज्रि॒न् । तथा॑ । कृ॒णु॒ । यथा॑ । ते॒ । उ॒श्मसि॑ । इ॒ष्टये॑ ॥१२॥ रे॒वतीः॑ । नः॒ । स॒ध॒ऽमादे॑ । इन्द्रे॑ । स॒न्तु॒ । तु॒वि॒ऽवा॑जाः । क्षु॒ऽमन्तः॑ । याभिः॑ । मदे॑म ॥१३॥ आ । घ॒ । त्वाऽवा॑न् । त्मना॑ । आ॒प्तः । स्तो॒तृऽभ्यः॑ । धृ॒ष्णो॒ इति॑ । इ॒या॒नः । ऋ॒णोः । अक्षं॑ । न । च॒क्र्योः॑ ॥ १४ ॥

आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥ ३० ॥

शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥१६॥

अश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया ।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः ।
समुद्रे अंश्विनेयते ॥ १८ ॥

न्य१घ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः ।
परि द्यामन्यदीयते ॥ १९ ॥

कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये ।
कं नक्षसे विभावरि ॥ २०

---

आ । यत् । दुवः । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । आ । कामं । जरितॄणां
ऋणोः । अक्षं । न । शचीभिः ॥१५॥३०॥ शश्वत् । इंद्रः । पोप्रुथत्ऽभिः । जिगाय
नानदत्ऽभिः । शाश्वसत्ऽभिः । धनानि । सः । नः । हिरण्यऽरथं । दंसनाऽवान्
सः । नः । सनिता । सनये । सः । नः । अदात् ॥ १६ ॥ आ । अश्विनौ
अश्वऽवत्या । इषा । यातं । शवीरया । गोऽमत् । दस्रा । हिरण्यऽवत् ॥ १७
समानऽयोजनः । हि । वां । रथः । दस्रौ । अमर्त्यः । समुद्रे । अश्विना । ईयते ॥१८॥
नि । अघ्न्यस्य । मूर्धनि । चक्रं । रथस्य । येमथुः । परि । द्यां । अन्यत् । ईयते ॥१९॥
कः । ते । उषः । कधऽप्रिये । भुजे । मर्तः । अमर्त्ये । कं । नक्षसे । विभाऽवरि ॥२०॥

वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात् ।
अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१ ॥
त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः ।
अस्मे रयिं नि धारय ॥२२॥ ३१ ॥६ ॥

## ॥ सप्तमोऽनुवाकः ॥

॥ ३१ ॥ १—हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१–७, ९–१५, १७ जगती । ८, १६ १८ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१–७ ९–१५, १७ निषादः । ८ १६ १८, धैवत ॥

( ३१ ) त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ १ ॥
त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम् ।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ॥ २ ॥

---

वयं । हि । ते । अमन्महि । आ । अंतात् । आ । पराकात् । अश्वे । न । चित्रे । अरुषि ॥ २१ ॥ त्वं । त्येभिः । आ । गहि । वाजेभिः । दुहितः । दिवः । अस्मे इति । रयिं । नि । धारय ॥ २२ ॥ ३१ ॥ ६ ॥

## ॥ सप्तमोऽनुवाकः ॥

त्वं । अग्ने । प्रथमः । अंगिराः । ऋषिः । देवः । देवानां । अभवः । शिवः । सखा । तव । व्रते । कवयः । विद्मनाऽअपसः । अजायंत । मरुतः । भ्राजत्ऽऋष्टयः । ॥१॥ त्वं । अग्ने । प्रथमः । अंगिरःऽतमः । कविः । देवानां । परि । भूषसि । व्रतं । विऽभुः । विश्वस्मै । भुवनाय । मेधिरः । द्विऽमाता । शयुः । कतिधा । चित् । आयवे ॥ २ ॥

त्वम॑ग्ने प्र॒थ॒मो मा॒तरि॑श्वन आ॒विर्भ॑व सुक्र॒तूया वि॒वस्व॑ते ।
अरे॑जेतां॒ रोद॑सी होतृ॒वूर्ये॒ऽस॑घ्नोर्भा॒रमय॑जो म॒हो व॑सो ॥ ३ ॥
त्वम॑ग्ने॒ मन॑वे॒ द्याम॑वाशयः पु॒रूरव॑से सु॒कृते॑ सु॒कृत्त॑रः ।
श्वा॒त्रेण॒ यत्पि॒त्रोर्मुच्य॑से॒ पर्या त्वा॒ पूर्व॑मनय॒न्नाप॑रं॒ पुनः॑ ॥ ४ ॥
त्वम॑ग्ने वृष॒भः पु॑ष्टि॒वर्ध॑न॒ उद्य॑तस्रुचे भवसि श्र॒वाय्यः॑ ।
य आहु॑तिं॒ परि॒ वेदा॒ वष॑ट्कृति॒मेका॑यु॒रग्रे॒ विश॑ आ॒विवा॑ससि ॥५॥३२॥
त्वम॑ग्ने वृजि॒नव॑र्तनिं॒ नरं॒ सक्म॑न्पिपर्षि वि॒दथे॑ विचर्षणे ।
यः शूर॑साता॒ परि॑तक्म्ये॒ धने॑ द॒भ्रेभि॑श्चि॒त्सम॑ृता॒ हंसि॒ भूय॑सः ॥ ६ ॥
त्वं तम॑ग्ने अमृत॒त्व उ॑त्त॒मे मर्तं॑ दधासि॒ श्रव॑से दि॒वेदि॑वे ।
यस्ता॑तृषा॒ण उ॒भया॑य॒ जन्म॑ने॒ मयः॑ कृ॒णोषि॒ प्रय॒ आ च॑ सू॒रये॑ ॥ ७ ॥

---

त्वं । अ॒ग्ने॒ । प्र॒थ॒मः । मा॒तरि॑श्वने । आ॒विः । भ॒व॒ । सु॒क्र॒तु॒ऽया ।
वि॒वस्व॑ते । अरे॑जेतां । रोद॑सी॒ इति॑ । हो॒तृ॒ऽवूर्ये॑ । अस॑घ्नोः । भा॒रं । अय॑जः । म॒हः ।
व॒सो॒ इति॑ ॥३॥ त्वं । अ॒ग्ने॒ । मन॑वे । द्यां । अ॒वा॒श॒यः॒ । पु॒रूरव॑से । सु॒ऽकृते॑ । सु॒कृ॒त्ऽ-
त॑रः । श्वा॒त्रेण॑ । यत् । पि॒त्रोः । मुच्य॑से । परि॑ । आ । त्वा॒ । पूर्वं॑ । अ॒न॒य॒न् । आ ।
अप॑रं । पुन॒रिति॑ । ४॥ त्वं । अ॒ग्ने॒ । वृ॒ष॒भः । पु॒ष्टि॒ऽवर्ध॑नः । उद्य॑तऽस्रुचे । भ॒व॒सि॒ ।
श्र॒वाय्यः॑ । यः । आऽहु॑तिं । परि॑ । वेद॑ । वष॑ट्ऽकृतिं । एक॑ऽआयुः । अग्रे॑ । विशः॑ ।
आ॒ऽविवा॑ससि ॥५॥३२॥ त्वं । अ॒ग्ने॒ । वृ॒जि॒नऽव॑र्तनिं । नरं॑ । सक्म॑न् । पि॒प॒र्षि॒ । वि॒दथे॑ ।
वि॒ऽच॒र्ष॒णे॒ । यः । शूर॑ऽसाता । परि॑ऽतक्म्ये । धने॑ । द॒भ्रेभिः॑ । चि॒त् । सम्ऽऋ॑ता । हंसि॑ ।
भूय॑सः ॥ ६ ॥ त्वं । तं । अ॒ग्ने॒ । अ॒मृ॒त॒ऽत्वे । उ॒त्ऽत॒मे । मर्तं॑ । द॒धा॒सि॒ । श्रव॑से ।
दि॒वेऽदि॑वे । यः । त॒तृ॒षा॒णः । उ॒भया॑य । जन्म॑ने । मयः॑ । कृ॒णोषि॑ । प्रयः॑ । आ ।
च॒ । सू॒रये॑ ॥ ७ ॥

त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ ८ ॥

त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।
तनूकृद्बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ॥ ९ ॥

त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ॥१०॥३३॥

त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्य विश्पतिम् ।
इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते ॥ ११ ॥

त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ॥ १२ ॥

---

त्वं । नः । अग्ने । सनये । धनानां । यशसं । कारुं । कृणुहि । स्तवानः । ऋध्याम । कर्म । अपसा । नवेन । देवैः । द्यावापृथिवी । इति । प्र । अवतं । नः ॥ ८ ॥ त्वं । नः । अग्ने । पित्रोः । उपऽस्थे । आ । देवः । देवेषु । अनवद्य । जागृविः । तनूऽकृत् । बोधि । प्रऽमतिः । च । कारवे । त्वं । कल्याण । वसु । विश्वं । आ । ऊपिषे ॥ ९ ॥ त्व । अग्ने । प्रऽमतिः । त्वं । पिता । असि । नः । त्वं । वयःऽकृत् । तव । जामयः । वयं । सं । त्वा । रायः । शतिनः । सं । सहस्रिणः । सुऽवीरं । यंति । व्रतऽपां । अदाभ्य ॥ १० ॥ ३३ ॥ त्वां । अग्ने । प्रथमं । आयुं । आयवे । देवाः । अकृण्वन् । नहुषस्य । विश्पतिं । इळां । अकृण्वन् । मनुषस्य । शासनीं । पितुः । यत् । पुत्रः । ममकस्य । जायते ॥११॥ त्वं । नः । अग्ने । तव । देव । पायुऽभिः । मघोनः । रक्ष । तन्वः । च । वंद्य । त्राता । तोकस्य । तनये । गवां । असि । अनिऽमेषं । रक्षमाणः । तव । व्रते ।

त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।
यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन्मन्त्रं मनसा वनोषि तम् ॥१३॥

त्वमग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद्रेक्णः परमं वनोषि तत् ।
आध्रस्य चित्प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः॥१४॥

त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं । वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः॥१५॥३४॥

इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम्॥ १६ ॥

मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत्सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ॥१७॥

---

त्वं । अग्ने । यज्यवे । पायुः । अंतरः । अनिषंगाय । चतुःऽअक्षः । इध्यसे । यः । रातऽहव्यः । अवृकाय । धायसे । कीरेः । चित् । मंत्रं । मनसा । वनोषि । तं ॥१३॥ त्वं । अग्ने । उरुऽशंसाय । वाघते । स्पार्हं । यत् रेक्णः । परमं । वनोषि । तत् । आध्रस्य । चित् । प्रऽमतिः । उच्यसे । पिता । प्र पाकं शास्सि । प्र । दिशः । विदुःऽतरः ॥१४॥ त्वं । अग्ने । प्रयतऽदक्षिणं । नरं । वर्मऽइव । स्यूतं । परि । पासि । विश्वतः । स्वादुऽक्षद्मा । यः । वसतौ । स्योनऽकृत् । जीवऽयाजं । यजते । सः । उपऽमा । दिवः ॥१५॥३४॥ इमां । अग्ने । शरणिं । मीमृषः । नः । इमं । अध्वानं । यं । अगाम । दूरात् । आपिः । पिता । प्रऽमतिः । सोम्यानां । भृमिः । असि । ऋषिऽकृत् । मर्त्यानां ॥ १६ ॥ मनुष्वत् । अग्ने । अंगिरस्वत् । अंगिरः । ययातिवत । सदने । पूर्वऽवत । शुचे । अच्छ । याहि । आ । वह । दैव्यं । जनं । आ । सादय । बर्हिषि । यक्षि । च । प्रियं ॥ १७ ॥

एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा ।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या॥१८॥३५॥

॥ ३२ ॥ १–१५ हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥ धैवतः स्वरः ॥

(३२) इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥ १ ॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ २ ॥
वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥
यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥ ४ ॥

---

एतेन । अग्ने । ब्रह्मणा । ववृधस्व । शक्ती । वा । यत । ते । चकृम । विदा । वा । उत । प्र । नेषि । अभि । वस्यः । अस्मान् । सं । नः । सृज । सुऽमत्या । वाजऽवत्या ॥ १८ ॥ ३५ ॥

इंद्रस्य । नु । वीर्याणि । प्र । वोचं । यानि । चकार । प्रथमानि । वज्री । अहन् । अहिं । अनु । अपः । ततर्द । प्र । वक्षणाः । अभिनत । पर्वतानां ॥ १ ॥ अहन् । अहिं । पर्वते । शिश्रियाणं । त्वष्टा । अस्मै । वज्रं । स्वर्यं । ततक्ष । वाश्राःऽइव । धेनवः । स्यंदमानाः । अंजः । समुद्रं । अव । जग्मुः । आपः ॥ २ ॥ वृषऽयमाणः । अवृणीत । सोमं । त्रिऽकद्रुकेषु । अपिबत । सुतस्य । आ । सायकं । मघऽवा । अदत्त । वज्रं । अहन् । एनं । प्रथमऽजां । अहीनां ॥ ३ ॥ यत । इंद्र । अहन् । प्रथमऽजां । अहीनां । आत । मायिनां । अमिनाः । प्र । उत । माया । आत । सूर्यं । जनयन् । द्यां । उषसं । तादीत्ना । शत्रुं । न । किल । विविन्से ॥४॥

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥५॥३६॥

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥ ७ ॥

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥ ८ ॥

नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥

---

अहन् । वृत्रं । वृत्रऽतरं । विऽअंसं इंद्रः । वज्रेण । महता । वधेन । स्कंधांसिऽइव । कुलिशेन । विऽवृक्णा । अहिः । शयते । उपऽपृक् । पृथिव्याः ॥५॥३६॥ अयोद्धाऽइव । दुःमदः । आ । हि । जुह्वे । महाऽवीरं । तुविऽबाधं । ऋजीषं । न । अतारीत । अस्य । संऽऋतिं । वधानां । सं । रुजानाः । पिपिषे । इंद्रऽशत्रुः ॥६॥ अपात । अहस्तः । अपृतन्यत । इंद्रं । आ । अस्य । वज्रं । अधि । सानौ । जघान । वृष्णः । वध्रिः । प्रतिऽमानं । बुभूषन । पुरुऽत्रा । वृत्रः । अशयत । विऽअस्तः ॥ ७ ॥ नदं । न । भिन्नं । अमुया । शयानं । मनः । रुहाणाः । अति । यंति । आपः । याः । चित । वृत्रः । महिना । परिऽअतिष्ठत । तासां । अहिः । पत्सुतःऽशीः । बभूव ॥ ८ ॥ नीचाऽवयाः । अभवत । वृत्रऽपुत्रा । इंद्रः । अस्याः । अव । वधः । जभार । उत्ऽतरा । सूः । अधरः । पुत्रः । आसीत् । दानुः । शये । सहऽवत्सा । न । धेनुः ॥ ९ ॥

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥१०॥३७॥
दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥ ११ ॥
अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२॥
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥ १३ ॥
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥

---

अतिष्ठंतीनां । अनिऽवेशनानां । काष्ठानां । मध्ये । निऽहितं । शरीरं । वृत्रस्य । निण्यं । वि । चरंति । आपः । दीर्घं । तमः । आ । अशयत् । इंद्रऽशत्रुः ॥ १० ॥ ३७ ॥ दासऽपत्नीः । अहिऽगोपाः । अतिष्ठन् । निऽरुद्धाः । आपः । पणिनाऽइव । गावः । अपां । बिलं । अपिऽहितं । यत् । आसीत् । वृत्रं । जघन्वान् । अप । तत् । ववार ॥ ११ ॥ अश्व्यः । वारः । अभवः । तत् । इंद्र । सृके । यत् । त्वा । प्रतिऽअहन् । देवः । एकः । अजयः । गाः । अजयः । शूर । सोमं । अव । असृजः । सर्तवे । सप्त । सिंधून् ॥१२॥ न । अस्मै । विऽद्युत् । न । तन्यतुः । सिसेध । न । यां । मिहं । अकिरत् । ह्रादुनिं । च । इंद्रः । च । यत् । युयुधाते इति । अहिः । च । उत । अपरीभ्यः । मघऽवा । वि । जिग्ये ॥१३॥ अहेः । यातारं । कं । अपश्यः । इंद्र । हृदि । यत् । ते । जघ्नुषः । भीः । अगच्छत् । नव । च । यत् । नवतिं । च । स्रवंतीः । श्येनः । न । भीतः । अतरः । रजांसि ॥ १४ ॥

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव ॥१५॥३८॥२॥

॥ इति प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## ॥ अथ प्रथमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ ३३ ॥ १—१५ हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ८, ९, १२, १३ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ६, १० त्रिष्टुप् । ५, ७ ११ विराट् त्रिष्टुप् । १४, १५ भुरिक् पंक्तिः ॥ स्वर — १—१३ धैवतः । १४, १५ पञ्चम. ॥

( ३३ ) एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १ ॥

---

इंद्रः । यातः । अवऽसितस्य । राजा । शमस्य । च । शृंगिणः । वज्रऽबाहुः । सः । इत् । ऊं इति । राजा । क्षयति । चर्षणीनां । अरान् । न । नेमिः । परि । ता । बभूव ॥ १५ ॥ ३८ ॥ २ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आ । इत । अयाम । उप । गव्यंतः । इंद्रं । अस्माकं । सु । प्रऽमतिं । ववृधाति । अनामृणः । कुवित् । आत् । अस्य । रायः । गवां । केतं । परं । आऽवर्जते । न ॥१॥

उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥ २ ॥
नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३ ॥
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥ १ ॥
अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥ ६ ॥

---

उप । इत् । अहं । धनऽदां । अप्रतिऽइतं । जुष्टां । न । श्येनः । वसतिं । पतामि । इंद्रं । नमस्यन् । उपऽमेभिः । अर्कैः । यः । स्तोतृऽभ्यः । हव्यः । अस्ति । यामन् । ॥ २ ॥ नि । सर्वऽसेनः । इषुऽधीन् । असक्त । सं । अर्यः । गाः । अजति । यस्य । वष्टि । चोष्कूयमाणः । इंद्र । भूरि । वामं । मा । पणिः । भूः । अस्मत् । अधि । प्रऽवृद्ध ॥ ३ ॥ वधीः । हि । दस्युं । धनिनं । घनेन । एकः । चरन् । उपऽशाकेभिः । इंद्र । धनोः । अधि । विषुणक् । ते । वि । आयन् । अयज्वानः । सनकाः । प्रऽईतिं । ईयुः ॥ ४ ॥ परा । चित् । शीर्षा । ववृजुः । ते । इंद्र । अयज्वानः । यज्वऽभिः । स्पर्धमानाः । प्र । यत् । दिवः । हरिऽवः । स्थातः । उग्र । निः । अव्रतान् । अधमः । रोदस्योः ॥ ५ ॥ १ ॥ अयुयुत्सन् । अनवद्यस्य । सेनां । अयातयंत । क्षितयः । नवऽग्वाः । वृषऽयुधः । न । वध्रयः । निःऽअष्टाः । प्रवत्ऽभिः । इंद्रात् । चितयंत । आयन् ॥ ६ ॥

त्वमेतान्रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ७ ॥
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात्सूर्येण ॥ ८ ॥
परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥१०॥२॥
अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥ ११ ॥

---

त्वं । एतान् । रुदतः । जक्षतः । च । अयोधयः । रजसः । इन्द्र । पारे ।
अव । अदहः । दिवः । आ । दस्युं । उच्चा । प्र । सुन्वतः । स्तुवतः । शंसं ।
आवः ॥ ७ ॥ चक्राणासः । परिऽनहं । पृथिव्याः । हिरण्येन । मणिना । शुंभमानाः ।
न । हिन्वानासः । तितिरुः । ते । इंद्रं । परि । स्पशः । अदधात् । सूर्येण ॥ ८ ॥
परि । यत् । इंद्र । रोदसी इति । उभे इति । अबुभोजीः । महिना । विश्वतः । सीं ।
अमन्यमानान् । अभि । मन्यमानैः । निः । ब्रह्मऽभिः । अधमः । दस्युं । इंद्र ॥ ९ ॥
न । ये । दिवः । पृथिव्याः । अंतं । आपुः । न । मायाभिः । धनऽदां । परिऽअभूवन् ।
युजं । वज्रं । वृषभः । चक्रे । इंद्रः । निः । ज्योतिषा । तमसः । गाः । अधुक्षत् ॥१०॥२॥
अनु । स्वधां । अक्षरन् । आपः । अस्य । अवर्धत । मध्ये । आ । नाव्यानां ।
सध्रीचीनेन । मनसा । तं । इंद्रः । ओजिष्ठेन । हन्मना । अहन् । अभि । द्यून् ॥११॥

न्य॑विध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन्यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥ १४ ॥
आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।
ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥१५॥३॥

---

नि । अविध्यत् । इलीबिशस्य । दृळ्हा । वि । शृंगिणं । अभिनत् । शुष्णं । इंद्रः ।
यावत् । तरः । मघऽवन् । यावत् । ओजः । वज्रेण । शत्रुं । अवधीः । पृतन्युं ॥ १२ ॥
अभि । सिध्मः । अजिगात् । अस्य । शत्रून् । वि । तिग्मेन । वृषभेण । पुरः ।
अभेत् । सं । वज्रेण । असृजत् । वृत्रं । इंद्रः । प्र । स्वां । मतिं । अतिरत् । शाशदानः
॥१३॥आवः । कुत्सं । इंद्र । यस्मिन् । चाकन् । प्र । आवः । युध्यंतं । वृषभं । दशऽद्युं ।
शफऽच्युतः । रेणुः । नक्षत । द्यां । उत् । श्वैत्रेयः । नृऽसह्याय । तस्थौ ॥ १४ ॥
आवः । शमं । वृषभं । तुग्र्यासु । क्षेत्रऽजेषे । मघऽवन् । श्वित्र्यं । गां । ज्योक् ।
चित् । अत्र । तस्थिऽवांसः । अक्रन् । शत्रुऽयतां । अधरा । वेदना । अ-
कारित्यकः ॥१५ ॥ ३ ॥

॥ ३४ ॥ १–१२ हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द.—१, ६ विराड् जगती। २, ३, ७, ८ । निचृज्जगती । ५, १०, ११ जगती । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । १२ निचृत् त्रिष्टुप् । ९ भुरिक् पंक्ति. ॥ स्वर.—१–३, ५–८, १०,११ निषाद. ४ १२, ९ पञ्चमः ॥

( ३४ ) त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना ।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥ १ ॥
त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥२॥
समाने अहन्त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥३॥
त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम् ।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥ ४ ॥

---

त्रिः । चित् । नः । अद्य । भवतं । नवेदसा विऽभुः । वां । यामः । उत । रातिः । अश्विना । युवोः । हि । यंत्रं । हिम्याऽइव । वाससः । अभिऽआयंसेन्या । भवतं । मनीषिऽभिः ॥ १ ॥ त्रयः । पवयः । मधुऽवाहने । रथे । सोमस्य । वेनां । अनु । विश्वे । इत् । विदुः । त्रयः । स्कंभासः । स्कभितासः । आऽरभे । त्रिः । नक्तं । याथः । त्रिः । ऊं इति । अश्विना । दिवा ॥२॥ समाने । अहन् । त्रिः । अवद्यऽगोहना । त्रिः । अद्य । यज्ञं । मधुना । मिमिक्षतं । त्रिः । वाजऽवतीः । इषः । अश्विना । युवं । दोषाः । अस्मभ्यं । उषसः । च । पिन्वतं ॥ ३ ॥ त्रिः । वर्तिः । यातं । त्रिः । अनुऽव्रते । जने । त्रिः । सुप्रऽअव्ये । त्रेधाऽइव । शिक्षतं । त्रिः । नांद्यं । वहतं । अश्विना । युवं । त्रिः । पृक्षः । अस्मे इति । अक्षराऽइव । पिन्वतं ॥४॥

त्रिर्नो॑ र॒यिं व॑हतमश्विना यु॒वं त्रिर्दे॒वता॑ता॒ त्रिरु॒ताव॑तं॒ धियः॑ ।
त्रिः सौ॑भग॒त्वं त्रिरु॒त श्रवां॑सि न॒स्त्रिष्ठं॑ वां॒ सूरे॑ दुहि॒ता रु॑ह॒द्रथ॑म् ॥५॥

त्रिर्नो॑ अश्विना दि॒व्यानि॑ भेष॒जा त्रिः पार्थि॑वानि॒ त्रिरु॑ दत्तम॒द्भ्यः ।
ओ॒मानं॑ शं॒योर्मम॑काय सू॒नवे॑ त्रि॒धातु॒ शर्म॑ वहतं शुभस्पती ॥६॥४॥

त्रिर्नो॑ अश्विना यज॒ता दि॒वेदि॑वे॒ परि॑ त्रि॒धातु॑ पृथि॒वीम॑शायतम् ।
ति॒स्रो ना॑सत्या रथ्या परा॒वत॑ आ॒त्मेव॒ वातः॒ स्वस॑राणि गच्छतम् ॥७॥

त्रिर॑श्विना॒ सिन्धु॑भिः स॒प्तमा॑तृभि॒स्त्रय॑ आहा॒वास्त्रे॒धा ह॒विष्कृ॒तम् ।
ति॒स्रः पृ॑थि॒वीरु॒परि॑ प्र॒वा दि॒वो नाकं॑ रक्षेथे॒ द्युभि॑र॒क्तुभि॒र्हि॑तम् ॥८॥

क्व१॒॑ त्री च॒क्रा त्रि॒वृतो॒ रथ॑स्य॒ क्व१॒॑ त्रयो॑ व॒न्धुरो॒ ये सनी॑ळाः ।
क॒दा योगो॑ वा॒जिनो॒ रास॑भस्य॒ येन॑ य॒ज्ञं ना॑सत्योपया॒थः ॥९॥

---

त्रिः । नः॒ । र॒यिम् । व॒ह॒त॒म् । अ॒श्वि॒ना॒ । यु॒वम् । त्रिः । दे॒वऽता॑ता । त्रिः । उ॒त । अ॒व॒त॒ । धियः॑ । त्रिः । सौ॒भ॒ग॒ऽत्वम् । त्रिः । उ॒त । श्रवां॑सि । नः॒ । त्रि॒ऽस्थम् । वा॒म् । सूरे॑ । दु॒हि॒ता । आ । रु॒ह॒त् । रथ॑म् ॥ ५ ॥ त्रिः । नः॒ । अ॒श्वि॒ना॒ । दि॒व्यानि॑ । भे॒ष॒जा । त्रिः । पार्थि॑वानि । त्रिः । ऊं॒ इति॑ । द॒त्त॒म् । अ॒त्ऽभ्यः । ओ॒मान॑म् । शं॒ऽयोः । मम॑काय । सू॒नवे॑ । त्रि॒ऽधातु॑ । शर्म॑ । व॒ह॒त॒म् । शु॒भः॒ । प॒ती॒ इति॑ ॥ ६ ॥ ४ ॥ त्रिः । नः॒ । अ॒श्वि॒ना॒ । य॒ज॒ता॒ । दि॒वेऽदि॑वे । परि॑ । त्रि॒ऽधातु॑ । पृ॒थि॒वीम् । अ॒शा॒य॒त॒म् । ति॒स्रः । ना॒स॒त्या॒ । र॒थ्या॒ । प॒रा॒ऽवतः॑ । आ॒त्माऽइ॑व । वातः॑ । स्वस॑राणि । ग॒च्छ॒त॒म् ॥७॥ त्रिः । अ॒श्वि॒ना॒ । सिंधु॑ऽभिः । स॒प्तमा॑तृऽभिः । त्रयः॑ । आ॒ऽहा॒वाः । त्रे॒धा । ह॒विः । कृ॒तम् । ति॒स्रः । पृ॒थि॒वीः । उ॒परि॑ । प्र॒वा । दि॒वः । नाक॑म् । र॒क्षे॒थे॒ इति॑ । द्यु॒ऽभिः॑ । अ॒क्तुऽभिः॑ । हि॒तम् ॥ ८ ॥ क्व॑ । त्री । च॒क्रा । त्रि॒ऽवृतः॑ । रथ॑स्य । क्व॑ । त्रयः॑ । व॒न्धुरः॑ । ये । स॒ऽनी॑ळाः । क॒दा । योगः॑ । वा॒जिनः॑ । रास॑भस्य । येन॑ । य॒ज्ञम् । ना॒स॒त्या॒ । उ॒प॒ऽया॒थः ॥ ९ ॥

आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति॥ १०॥
आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा॥११॥
आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम्।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ॥१२॥५॥

॥ ३५॥ १–११ हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः॥ देवता.–१ अग्निर्मित्रावरुणौ रात्रिः सविता। २–११ सविता॥ छन्द.–१ विराड् जगती। ९ निचृज्जगती। २, ५, १०, ११, विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ६, त्रिष्टुप्। ७, ८ भुरिक् पङ्क्तिः॥ स्वर.—१, ९ निषाद.। २, ५, १०, ११, ३, ४, ६ धैवत. ७, ८ पञ्चम ॥

(३५) ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये॥ १॥

---

आ। नासत्या। गच्छतं। हूयते। हविः। मध्वः। पिबतं। मधुऽपेभिः। आसऽभिः। युवोः। हि। पूर्वं। सविता। उषसः। रथं। ऋताय। चित्रं। घृतऽवंतं। इष्यति॥१०॥ आ। नासत्या। त्रिऽभिः। एकादशैः। इह। देवेभिः। यातं। मधुऽपेयं। अश्विना। प्र। आयुः। तारिष्टं। निः। रपांसि। मृक्षतं। सेधतं। द्वेषः। भवतं। सचाऽभुवा॥ ११॥ आ। नः। अश्विना। त्रिऽवृता। रथेन। अर्वांचं। रयिं। वहतं। सुऽवीरं। शृण्वंता। वां। अवसे। जोहवीमि। वृधे। च। नः। भवतं। वाजऽसातौ॥ १२॥ ५॥

ह्वयामि। अग्निं। प्रथमं। स्वस्तये। ह्वयामि। मित्रावरुणौ। इह। अवसे। ह्वयामि। रात्रीं। जगतः। निऽवेशनीं। ह्वयामि। देवं। सवितारं। ऊतये॥ १॥

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ २॥
याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम्।
आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ॥३॥
अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम्।
आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः॥४॥
वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः।
शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ५॥
तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट्।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥ ६ ॥ ६॥

---

आ। कृष्णेन। रजसा। वर्तमानः। निऽवेशयन्। अमृतं। मर्त्यं। च। हिरण्ययेन। सविता। रथेन। आ। देवः। याति। भुवनानि। पश्यन् ॥२॥ याति। देवः। प्रऽवता। याति। उत्ऽवता। याति। शुभ्राभ्यां। यजतः। हरिऽभ्यां। आ। देवः। याति। सविता। पराऽवतः। अप। विश्वा। दुःऽइता। बाधमानः ॥३॥ अभिऽवृतं। कृशनैः। विश्वऽरूपं। हिरण्यऽशम्यं। यजतः। बृहंतं। आ। अस्थात्। रथं। सविता। चित्रऽभानुः। कृष्णा। रजांसि। तविषीं। दधानः ॥ ४ ॥ वि। जनान्। श्यावाः। शितिऽपादः। अख्यन्। रथं। हिरण्यऽप्रउगं। वहंतः। शश्वत्। विशः। सवितुः। दैव्यस्य। उपऽस्थे। विश्वा। भुवनानि। तस्थुः ॥ ५ ॥ तिस्रः। द्यावः। सवितुः। द्वौ। उपऽस्था। एका। यमस्य। भुवने। विराषाट्। आणिं। न। रथ्यं। अमृता। अधि। तस्थुः। इह। ब्रवीतु। यः। उं इति। तत्। चिकेतत् ॥ ६ ॥ ६ ॥

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद्गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वे३दानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥ ७ ॥

अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ९ ॥

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि
देव ॥ ११ ॥ ७ ॥ ७ ॥

---

वि । सुऽपर्णः । अंतरिक्षाणि । अख्यत् । गभीरऽवेपाः । असुरः । सुऽनीथः । क्व । इदानीं । सूर्यः । कः । चिकेत । कतमां । द्यां । रश्मिः । अस्य । आ । ततान ॥ ७ ॥ अष्टौ । वि । अख्यत् । ककुभः । पृथिव्याः । त्री । धन्व । योजना । सप्त । सिंधून् । हिरण्यऽअक्षः । सविता । देवः । आ । अगात् । दधत् । रत्ना । दाशुषे । वार्याणि ॥ ८ ॥ हिरण्यऽपाणिः । सविता । विऽचर्षणिः । उभे इति । द्यावापृथिवी इति । अंतः । ईयते । अप । अमीवां । बाधते । वेति । सूर्यं । अभि । कृष्णेन । रजसा । द्यां । ऋणोति ॥ ९ ॥ हिरण्यऽहस्तः । असुरः । सुऽनीथः । सुऽमृळीकः । स्वऽवान् । यातु । अर्वाङ् । अपऽसेधन् । रक्षसः । यातुऽधानान् । अस्थात् । देवः । प्रतिऽदोषं । गृणानः ॥ १० ॥ ये । ते । पंथाः । सवितरिति । पूर्व्यासः । अरेणवः । सुऽकृताः । अंतरिक्षे । तेभिः । नः । अद्य । पथिऽभिः । सुऽगेभिः । रक्ष । च । नः । अधि । च । ब्रूहि । देव ॥ ११ ॥ ७ ॥ ७ ॥

## ॥ अष्टमोऽनुवाकः ॥

॥ ३६ ॥ १–२० घोर ऋषि. ॥ १–२० अग्निर्देवता ॥ छन्द.–१, १२ भुरिगनुष्टुप्। २ निचृत्सत पङ्क्तिः। ४ निचृत्पङ्क्तिः । १०, १४ निचृद्विष्टारपंक्ति. । १८ विष्टारपङ्क्ति. । २० सत. पङ्क्ति. । ३, ११ निचृत्पथ्या बृहती । ५ १६ निचृद्बृहती । ६ भुरिग् बृहती । ७ बृहती । ८ स्वराड् बृहती । ९ निचृदुपरिष्टाद्बृहती । १३ उपरिष्टाद्बृहती । १५ विराट् पथ्याबृहती । १७ विराडुपरिष्टाद्बृहती । १९ पथ्याबृहती ॥ स्वरः–१ १२ गान्धार । २ ४, १०, १४ १८ २० पञ्चम । ३ ११, ५, १६, ६–९, १३ १५ १७, १९ मध्यमः ॥

(३६) प्र वो॑ य॒ह्वं पु॑रू॒णां वि॒शां दे॑वय॒तीना॑म् ।
अ॒ग्निं सू॒क्तेभि॒र्वचो॑भिरीमहे॒ यं सी॒मिद॒न्य ईळ॑ते ॥ १॥
जना॑सो अ॒ग्निं द॑धिरे सहो॒वृधं॑ ह॒विष्म॑न्तो विधेम ते ।
स त्वं नो॑ अ॒द्य सु॒मना॑ इ॒हावि॒ता भवा॒ वाजे॑षु सन्त्य ॥ २ ॥
प्र त्वा॑ दू॒तं वृ॑णीमहे॒ होता॑रं वि॒श्ववे॑दसं ।
म॒हस्ते॑ स॒तो वि च॑रन्त्य॒र्चयो॑ दि॒वि स्पृ॑शन्ति भा॒नवः॑ ॥ ३ ॥
दे॒वास॑स्त्वा॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा सं दू॒तं प्र॒त्नमि॑न्धते ।
विश्वं॒ सो अ॑ग्ने जयति॒ त्वया॒ धनं॒ यस्ते॑ द॒दाश॒ मर्त्यः॑ ॥ ४ ॥

---

## ॥ अष्टमोऽनुवाकः ॥

प्र । वः॒ । य॒ह्वं । पु॒रू॒णां । वि॒शां । दे॒व॒ऽय॒तीनां॑ । अ॒ग्निं । सु॒ऽउ॒क्तेभिः॑ । वचः॑ऽभि । ई॒म॒हे॒ । यं । सीं॒ । इ॒त् । अ॒न्ये । ईळ॑ते ॥ १ ॥ जना॑सः । अ॒ग्निं । द॒धि॒रे॒ । स॒हः॒ऽवृधं॑ । ह॒विष्मं॑तः । वि॒धे॒म॒ । ते॒ । सः । त्वं । नः॒ । अ॒द्य । सु॒ऽमनाः॑ । इ॒ह । अ॒वि॒ता । भव॑ । वाजे॑षु । सं॒त्य॒ ॥ २ ॥ प्र । त्वा॒ । दू॒तं । वृ॒णी॒म॒हे॒ । होता॑रं । वि॒श्वऽवे॑दस । म॒हः । ते॒ । स॒तः । वि । च॒रं॒ति॒ । अ॒र्चयः॑ । दि॒वि । स्पृ॒शं॒ति॒ । भा॒नवः॑ ॥ ३ ॥ दे॒वासः॑ । त्वा॒ । वरु॑णः । मि॒त्रः । अ॒र्य॒मा । सं । दू॒तं । प्र॒त्नं । इं॒ध॒ते॒ । विश्वं॑ । सः । अ॒ग्ने॒ । ज॒य॒ति॒ । त्वया॑ । धनं॑ । यः । ते॒ । द॒दाश॑ । मर्त्यः॑ ॥ ४ ॥

मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥८॥
त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥ ६ ॥
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥ ७ ॥
घ्नन्तो वृत्रमतरन्रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ।
भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ ८॥
सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥
यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥ १० ॥९॥

---

मंद्रः। होता। गृहऽपतिः। अग्ने। दूतः। विशां। असि। त्वे इति। विश्वा। संऽगतानि व्रता। ध्रुवा। यानि। देवाः। अकृण्वत ॥५॥८॥ त्वे इति। इत्। अग्ने। सुऽभगे यविष्ठ्य। विश्वं। आ। हूयते। हविः। सः। त्वं। नः। अद्य। सुऽमनाः। उत। अपरं यक्षि। देवान्। सुऽवीर्या ॥ ६ ॥ तं। घ। ईं। इत्था। नमस्विनः। उप। स्वऽराजं आसते। होत्राभिः। अग्निं। मनुषः। सं। इंधते। तितिर्वांसः। अति। स्रिधः॥७॥ घ्नंतः वृत्रं। अतरन्। रोदसी इति। अपः। उरु। क्षयाय। चक्रिरे। भुवत्। कण्वे। वृषा द्युम्नी। आऽहुतः। क्रंदत्। अश्वः। गोऽइष्टिषु ॥८॥ सं। सीदस्व। महान्। असि शोचस्व। देवऽवीतमः। वि। धूमं। अग्ने। अरुषं। मियेध्य। सृज। प्रऽशस्त। दर्शतं ॥ ९ ॥ यं। त्वा। देवासः। मनवे। दधुः। इह। यजिष्ठं। हव्यऽवाहन। यं। कण्वः

यम॒ग्निं मेध्या॑तिथिः॒ कण्व॑ ई॒धे ऋ॒तादधि॑।
तस्य॒ प्रेषो॑ दीदियु॒स्तमि॒मा ऋच॒स्तम॒ग्निं व॑र्धयामसि ॥ ११ ॥
रा॒यस्पू॑र्धि स्वधा॒वोऽस्ति॒ हि तेऽग्ने॑ दे॒वेष्वाप्य॑म्।
त्वं वाज॑स्य॒ श्रुत्य॑स्य राजसि॒ स नो॑ मृळ म॒हाँ अ॑सि ॥ १२ ॥
ऊ॒र्ध्व ऊ॒ षु ण॑ ऊ॒तये॒ तिष्ठा॑ दे॒वो न स॑वि॒ता।
ऊ॒र्ध्वो वाज॑स्य॒ सनि॑ता॒ यद॒ञ्जिभि॑र्वा॒घद्भि॑र्वि॒ह्वया॑महे ॥ १३ ॥
ऊ॒र्ध्वो नः॑ पा॒ह्यंह॑सो॒ नि के॒तुना॒ विश्वं॒ सम॒त्रिणं॑ दह।
कृ॒धी न॑ ऊ॒र्ध्वाञ्च॒रथा॑य जी॒वसे॑ वि॒दा दे॒वेषु॑ नो॒ दुवः॑ ॥ १४ ॥
पा॒हि नो॑ अग्ने र॒क्षसः॑ पा॒हि धू॒र्तेररा॑व्णः।
पा॒हि रीष॑त उ॒त वा॒ जिघां॑सतो॒ बृह॑द्भानो॒ यवि॑ष्ठ्य ॥ १५ ॥ १० ॥

---

मेध्य॑ऽअतिथिः। धन॒ऽस्पृत॑म्। यम्। वृषा॑। यम्। उप॒ऽस्तुतः॥ १० ॥ ९ ॥ यम्। अ॒ग्निम्। मेध्य॑ऽअतिथिः। कण्वः॑। ई॒धे। ऋ॒तात्। अधि॑। तस्य॑। प्र। इषः॑। दी॒दि॒युः॑। तम्। इ॒माः। ऋचः॑। तम्। अ॒ग्निम्। व॒र्ध॒या॒म॒सि ॥ ११ ॥ रा॒यः। पू॒र्धि। स्व॒धा॒ऽव॒ः। अस्ति॑। हि। ते॒। अग्ने॑। दे॒वेषु॑। आप्य॑म्। त्वम्। वाज॑स्य। श्रुत्य॑स्य। रा॒ज॒सि॒। सः। नः॒। मृ॒ळ। म॒हान्। अ॒सि॒ ॥ १२ ॥ ऊ॒र्ध्वः। ऊँ॒ इति॑। सु। नः॒। ऊ॒तये॑। तिष्ठ॑। दे॒वः। नः। स॒वि॒ता। ऊ॒र्ध्वः। वाज॑स्य। सनि॑ता। यत्। अ॒ञ्जिऽभिः॑। वा॒घत्ऽभिः॑। वि॒ऽह्वया॑महे ॥ १३ ॥ ऊ॒र्ध्वः। न॒ः। पा॒हि। अंह॑सः। नि। के॒तुना॑। विश्व॑म्। स। अ॒त्रिण॑म्। द॒ह। कृ॒धि। न॒ः। ऊ॒र्ध्वान्। च॒रथा॑य। जी॒वसे॑। वि॒दा। दे॒वेषु॑। न॒ः। दुवः॑ ॥ १४ ॥ पा॒हि। न॒ः। अ॒ग्ने॒। र॒क्षसः॑। पा॒हि। धू॒र्तेः। अरा॑व्णः। पा॒हि। रिष॑तः। उ॒त। वा॒। जिघां॑सतः। बृह॑द्भानो॒ इति॒ बृह॑त्ऽभानो। यवि॑ष्ठ्य ॥ १५ ॥ १० ॥

घ॒नेव॒ विष्व॒ग्वि ज॒ह्यरा॑व्णस्तपुर्जम्भ॒ यो अ॑स्म॒ध्रुक् ।
यो मर्त्यः॒ शिशी॑ते॒ अत्य॒क्तुभि॒र्मा नः॒ स रि॒पुरी॑शत ॥ १६ ॥

अ॒ग्निर्व॑व्ने सु॒वीर्य॑म॒ग्निः कण्वा॑य॒ सौभ॑गम् ।
अ॒ग्निः प्राव॑न्मि॒त्रोत मेध्या॑तिथिम॒ग्निः सा॒ता उ॑पस्तु॒तम् ॥ १७ ॥

अ॒ग्निना॑ तु॒र्वशं॒ यदुं॑ परा॒वत॑ उ॒ग्रादे॑वं हवामहे ।
अ॒ग्निर्न॑यन्नव॑वास्त्वं बृ॒हद्र॑थं तु॒र्वीतिं॒ दस्य॑वे॒ सहः॑ ॥ १८ ॥

नि त्वाम॑ग्ने॒ मनु॑र्द॒धे ज्योति॒र्जना॑य॒ शश्व॑ते ।
दी॒देथ॒ कण्व॑ ऋ॒तजा॑त उ॒क्षितो॒ यं न॑म॒स्यन्ति॑ कृ॒ष्टयः॑ ॥ १९ ॥

त्वे॒षासो॑ अ॒ग्नेरम॑वन्तो अ॒र्चयो॑ भी॒मासो॒ न प्रती॑तये ।
र॒क्ष॒स्विनः॒ सद॒मिद्या॑तु॒माव॑तो॒ विश्वं॒ सम॒त्रिणं॑ दह ॥ २० ॥ ११ ॥

---

घ॒नाऽइ॑व । विष्व॑क् । वि । ज॒हि॒ । अरा॑व्णः । त॒पुः॒ऽजं॒भ॒ । यः । अ॒स्म॒ऽध्रुक् । यः । मर्त्यः॑ । शिशी॑ते । अति॑ । अ॒क्तुऽभिः॑ । मा । नः॒ । सः । रि॒पुः । ई॒शत॑ ॥ १६ ॥ अ॒ग्निः । व॒व्ने॒ । सु॒ऽवीर्यं॑ । अ॒ग्निः । कण्वा॑य । सौभ॑गं । अ॒ग्निः । प्र । आ॒व॒त् । मि॒त्रा । उ॒त । मेध्य॑ऽअतिथिं । अ॒ग्निः । सा॒तौ । उ॒प॒ऽस्तु॒तं ॥ १७ ॥ अ॒ग्निना॑ । तु॒र्वशं॑ । यदुं॑ । प॒रा॒ऽवतः॑ । उ॒ग्रऽदे॑वं । ह॒वा॒म॒हे॒ । अ॒ग्निः । न॒य॒त् । नव॑ऽवास्त्वं । बृ॒ह॒त्ऽर॑थं । तु॒र्वीतिं॑ । दस्य॑वे । सहः॑ ॥ १८ ॥ नि । त्वां । अ॒ग्ने॒ । मनुः॑ । द॒धे॒ । ज्योतिः॑ । जना॑य । शश्व॑ते । दी॒देथ॑ । कण्वे॑ । ऋ॒तऽजा॑तः । उ॒क्षि॒तः । यं । न॒म॒स्यंति॑ । कृ॒ष्टयः॑ ॥ १९ ॥ त्वे॒षासः॑ । अ॒ग्नेः । अम॑ऽवंतः । अ॒र्चयः॑ । भी॒मासः॑ । न । प्रति॑ऽइतये । र॒क्ष॒स्विनः॑ । सदं॑ । इ॒त् । या॒तु॒ऽमाव॑तः । विश्वं॑ । सं । अ॒त्रिणं॑ । द॒ह॒ ॥ २० ॥ ११ ॥

॥ ३७ ॥ १–१५ कण्वो घोर ऋषि ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्द –१, २ ६, ६–८, १२ गायत्री। ३, ५ ११, १४, निचृद् गायत्री। ५ विराड् गायत्री। १० १५ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री १३ पादनिचृद्गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

( ३७ ) क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम्।
कण्वा अभि प्र गायत ॥ १ ॥
ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः।
अजायन्त स्वभानवः ॥ २ ॥
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्।
नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥ ३ ॥
प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे।
देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ ४ ॥
प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम्।
जम्भे रसस्य वावृधे ॥ ५ ॥ १२ ॥
को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः।
यत्सीमन्तं न धूनुथ ॥ ६ ॥

---

क्रीळं। वः। शर्धः। मारुतं। अनर्वाणं। रथेऽशुभं। कण्वाः। अभि। प्र। गायत ॥१॥ ये। पृषतीभिः। ऋष्टिऽभिः। साकं। वाशीभिः। अञ्जिऽभिः। अजायंत। स्वऽभानवः ॥ २ ॥ इहऽइव। शृण्वे। एषां। कशाः। हस्तेषु। यत्। वदान्। नि। यामन्। चित्रं। ऋंजते ॥ ३ ॥ प्र। वः। शर्धाय। घृष्वये। त्वेषऽद्युम्नाय। शुष्मिणे। देवत्तं। ब्रह्म। गायत ॥ ४ ॥ प्र। शंस। गोषु। अघ्न्यं। क्रीळं। यत्। शर्धः। मारुतं। जंभे। रसस्य। ववृधे ॥५॥१२॥ कः। वः। वर्षिष्ठः। आ। नरः। दिवः। च। ग्मः। च। धूतयः। यत्। सीं। अंतं। न। धूनुथ ॥ ६ ॥

नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे ।
जिहीत पर्वतो गिरिः ॥ ७

येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः ।
भिया यामेषु रेजते ॥ ८

स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे ।
यत्सीमनु द्विता शवः ॥ ९

उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत ।
वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ १० ॥ १३

त्यं चिद्धा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् ।
प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ११

मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन ।
गिरीँरचुच्यवीतन ॥ १२

यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना ।
शृणोति कश्चिदेषाम् ॥ १३

---

नि । वः । यामाय । मानुषः । दध्रे । उग्राय । मन्यवे । जिहीत । पर्वतः । गिरिः ॥ ७ येषां । अज्मेषु । पृथिवी । जुजुर्वान्ऽइव । विश्पतिः । भिया । यामेषु । रेजते ॥ ८ ॥ स्थिरं । हि । जानं । एषां । वयः । मातुः । निःऽएतवे । यत् । सीं । अनु द्विता । शवः ॥ ९ ॥ उत् । ऊं इति । त्ये । सूनवः । गिरः । काष्ठाः । अज्मेषु । अत्नत वाश्राः । अभिऽज्ञु । यातवे ॥ १० ॥ १३ ॥ त्यं । चित् । घ । दीर्घं । पृथुं । मिहः । नपातं अमृध्रं । प्र । च्यवयन्ति । यामभिः ॥ ११ ॥ मरुतः । यत् । ह । वः । बलं । जनान् अचुच्यवीतन । गिरीन् । अचुच्यवीतन ॥ १२ ॥ यत् । ह । यांति । मरुतः । सं ह । ब्रुवते । अध्वन् । आ । शृणोति । कः । चित् । एषां ॥ १३ ॥

प्र यांत शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः ।
तत्रो षु मादयाध्वै ॥ १४ ॥

अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम् ।
विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥ १५ ॥ १४ ॥

॥ ३८ ॥ १–१५ कण्वो घोर ऋषिः॥ मरुतो देवता॥ छन्द.—१, ८, ११. १३, १५ ४, गायत्री । २, ६ ७, ९, १० निचृद्गायत्री । ३ पादनिचृद्गायत्री ।५,. १२ पिपीलिका मध्या निचृत् । १४ यवमध्या विराड् गायत्री ॥षड्ज स्वरः ॥

(३८) कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः ।
दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥

क्व नूनं कद्वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः ।
क्व वो गावो न रण्यन्ति ॥ २ ॥

क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता ।
को३विश्वानि सौभगा ॥ ३ ॥

---

प्र । यात । शीभं । आशुऽभिः । संति । कण्वेषु । वः । दुवः । तत्रो इति । सु । मादयाध्वै ॥१४॥ अस्ति । हि । स्म । मदाय । वः । स्मसि । स्म । वयं । एषां । विश्वं । चित् । आयुः । जीवसे ॥ १५ ॥ १४ ॥

कत् । ह । नूनं । कधऽप्रियः । पिता । पुत्रं । न । हस्तयोः । दधिध्वे । वृक्तऽबर्हिषः ॥१॥ क्व । नूनं । कत् । वः । अर्थं । गंत । दिवः । न । पृथिव्याः । क्व । वः । गावः । न । रण्यंति ॥२॥ क्व । वः । सुम्ना । नव्यांसि । मरुतः । क्व । सुविता । को३ इति । विश्वानि । सौभगा ॥ ३ ॥

यद्यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन।
स्तोता वो अमृतः स्यात् ॥ ४ ॥

मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः।
पथा यमस्य गादुप ॥ ५ ॥ १५ ॥

मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्।
पदीष्ट तृष्णया सह ॥ ६ ॥

सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः।
मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥ ७ ॥

वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति।
यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥ ८ ॥

दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन।
यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९ ॥

---

यत्। यूयं। पृश्निऽमातरः। मर्तासः। स्यातन। स्तोता। वः। अमृतः। स्यात् ॥ ४ ॥ मा। वः। मृगः। न। यवसे। जरिता। भूत्। अजोष्यः। पथा। यमस्य। गात्। उप ॥ ५ ॥ १५ ॥ मो इति। सु। नः। परा-परा। निःऋतिः। दुःहना। वधीत्। पदीष्ट। तृष्णया। सह ॥६॥ सत्यं। त्वेषा अमऽवंतः। धन्वन्। चित्। आ। रुद्रियासः। मिहं। कृण्वंति। अवातां ॥ ७ वाश्राऽइव। विऽद्युत्। मिमाति। वत्सं। न। माता। सिसक्ति। यत्। एषां। वृष्टिः असर्जि ॥ ८ ॥ दिवा। चित्। तमः। कृण्वंति। पर्जन्येन। उद्ऽवाहेन। यत्। थिवीं। विऽउंदंति ॥९॥ अध। स्वनात्। मरुतां। विश्वं। आ। सद्म। पार्थिवं

अर्ध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम् ।
अरेजन्त प्र मानुषाः ॥ १० ॥ १६ ॥

मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु ।
यातेमखिद्रयामभिः ॥ ११ ॥

स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् ।
सुसंस्कृता अभीशवः ॥ १२ ॥

अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् ।
अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥ १३ ॥

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः ।
गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥ १४ ॥

वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् ।
अस्मे वृद्धा असन्निह ॥ १५ ॥ १७ ॥

---

अरेजंत । प्र । मानुषाः ॥१०॥१६॥ मरुतः । वीळुपाणिऽभिः । चित्राः । रोधस्वतीः । अनु । यात । ईं । अखिद्रयामऽभिः ॥११॥ स्थिराः । वः । संतु । नेमयः । रथाः । अश्वासः । एषां । सुऽसंस्कृताः । अभीशवः ॥१२॥ अच्छ । वद । तना । गिरा । जरायै । ब्रह्मणः । पतिं । अग्निं । मित्रं । न । दर्शतं ॥१३॥ मिमीहि । श्लोकं । आस्ये । पर्जन्यःऽइव । ततनः । गाय । गायत्रं । उक्थ्यं ॥१४॥ वंदस्व । मारुतं । गणं । त्वेषं । पनस्युं । अर्किणं । अस्मे इति । वृद्धाः । असन् । इह ॥१५॥१७॥

॥ ३९ ॥ १—१० कण्वो घौर ऋषि ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ९, पथ्याबृहती ७ उपरिष्टाद्विराट् बृहती । २, ८, १०, विराट् सतः पङ्क्ति. । ४, ६, निचृत्सत. पङ्क्ति । ३ अनुष्टुप स्वरः–१, ५, ९, ७, मध्यमः । २, ८, १०, ४, ६, पञ्चमः । ३ गान्धारः ॥

(३०) प्र यदि॒त्था प॑रा॒वतः॑ शो॒चिर्न मान॒मस्य॑थ ।

कस्य॒ क्रत्वा॑ मरु॒तः॒ कस्य॒ वर्प॑सा कं या॑थ॒ कं ह॑ धूतयः ॥ १ ॥

स्थि॒रा वः॑ स॒न्त्वायु॑धा परा॒णुदे॑ वी॒ळू उ॒त प्र॑ति॒ष्कभे॑ ।

यु॒ष्माक॑मस्तु॒ तवि॑षी॒ पनी॑यसी॒ मा मर्त्य॑स्य मा॒यिनः॑ ॥ २ ॥

परा॑ ह॒ यत्स्थि॒रं ह॒थ नरो॑ व॒र्तय॑था गु॒रु ।

वि या॑थन व॒निनः॑ पृथि॒व्या व्याशाः॒ पर्व॑तानाम् ॥ ३ ॥

न॒हि वः॒ शत्रु॑र्विवि॒दे अधि॒ द्यवि॒ न भूम्यां॑ रिशादसः ।

यु॒ष्माक॑मस्तु॒ तवि॑षी॒ तना॑ यु॒जा रुद्रा॑सो॒ नू चि॑दा॒धृषे॑ ॥ ४ ॥

---

प्र । यत् । इ॒त्था । प॒रा॒ऽवतः॑ । शो॒चिः । न । मान॑ । अस्य॑थ । कस्य॑ । क्रत्वा॑ । म॒रु॒तः॒ । कस्य॑ । वर्प॑सा । कं । या॒थ॒ । कं । ह॒ । धू॒त॒यः॒ ॥१॥ स्थि॒रा । वः॒ । सं॒तु॒ । आयु॑धा । प॒रा॒ऽनुदे॑ । वी॒ळु । उ॒त । प्र॒ति॒ऽस्कभे॑ । यु॒ष्माक॑ । अ॒स्तु॒ । तवि॑षी । पनी॑यसी । मा । मर्त्य॑स्य । मा॒यिनः॑ ॥२॥ परा॑ । ह॒ । यत् । स्थि॒रं । ह॒थ । नरः॑ । व॒र्तय॑थ । गु॒रु । वि । या॒थ॒न॒ । व॒निनः॑ । पृ॒थि॒व्याः॒ । वि । आशाः॑ । पर्व॑तानां ॥३॥ न॒हि । वः॒ । शत्रुः॑ । वि॒वि॒दे । अधि॑ । द्यवि॑ । न । भूम्यां॑ । रि॒शा॒द॒सः॒ । यु॒ष्माक॑ । अ॒स्तु॒ । तवि॑षी । तना॑ । यु॒जा । रुद्रा॑सः । नु । चि॒त् । आ॒ऽधृषे॑ ॥४॥ प्र । वे॒पय॑न्ति । पर्व॑तान् । वि ।

प्र वेपयन्ति पर्वतान्वि विञ्चन्ति वनस्पतीन्।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥ ५ ॥ १८ ॥
उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥
आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥ ७ ॥
युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥ ८ ॥
असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥ ९ ॥

---

विञ्चंति। वनस्पतीन्। प्रो इति। आरत। मरुतः। दुर्मदाःऽइव। देवासः। सर्वया। विशा ॥५॥१८॥ उपो इति। रथेषु। पृषतीः। अयुग्ध्वं। प्रष्टिः। वहति। रोहितः। आ। वः। यामाय। पृथिवी। चित्। अश्रोत्। अबीभयंत। मानुषाः ॥६॥ आ। वः। मक्षु। तनाय। कं। रुद्राः। अवः। वृणीमहे। गंत। नूनं। नः। अवसा। यथा। पुरा। इत्था। कण्वाय। बिभ्युषे ॥ ७ ॥ युष्माऽईषितः। मरुतः। मर्त्यऽइषितः। आ। यः। नः। अभ्वः। ईषते। वि। त। युयोत। शवसा। वि। ओजसा। वि। युष्माकाभिः। ऊतिऽभिः ॥८॥ असामि। हि। प्रऽयज्यवः। कण्वं। दद। प्रऽचेतसः। असामिऽभिः। मरुतः। आ। नः। ऊतिऽभिः। गंत। वृष्टिं। न। विऽद्युतः ॥ ९ ॥

असाम्योजो विभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० ॥ १९ ॥

॥ ४० ॥ १–८ कण्वो घौर ऋषि. ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्द.–२, १, ८ निचृदुपरिष्टाद्बृहती । ५ पथ्याबृहती । ३, ७ आर्चीत्रिष्टुप् । ४, ६ शतःपङ्क्तिर्निचृत्पङ्क्ति ॥ स्वरः–१, २, ८ ५ मध्यमः । ३, ७ धैवतः । ४, ६ पञ्चमः ॥

( ४० ) उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥
त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते ।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥ २ ॥
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥
यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥

---

असामि । ओजः । विभृथ । सुऽदानवः । असामि । धूतयः । शवः । ऋषिऽद्विषे । मरुतः । परिऽमन्यवे । इषुं । न । सृजत । द्विषं ॥ १० ॥ १९ ॥

उत् । तिष्ठ । ब्रह्मणः । पते । देवऽयंतः । त्वा । ईमहे । उप । प्र । यंतु । मरुतः । सुऽदानवः । इंद्र । प्राशूः । भव । सचा ॥१॥ त्वां । इत् । हि । सहसः । पुत्र । मर्त्यः।उपऽब्रूते । धने । हिते । सुऽवीर्यं । मरुतः । आ । सुऽअश्व्यं । दधीत । यः । वः । आऽचके ॥ २ ॥ प्र । एतु । ब्रह्मणः । पतिः । प्र । देवी । एतु । सूनृता । अच्छ । वीरं । नर्यं । पंक्तिऽराधसं । देवाः । यज्ञं । नयंतु । नः ॥३ ॥ यः । वाघते । ददाति । सूनरं । वसु । सः । धत्ते । अक्षिति । श्रवः । तस्मै । इळां । सुऽवीरां । आ । यजामहे । सुऽप्रतूर्तिं । अनेहसं ॥४॥ प्र । नूनं । ब्रह्मणः । पतिः ।

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥५॥२०॥
तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥ ६ ॥
को देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम् ।
प्रप्र दाश्वान्पस्त्याभिरस्थितान्तर्वावत्क्षयं दधे ॥ ७ ॥
उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित्सुक्षितिं दधे ।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः ॥ ८ ॥ २१ ॥

॥ ४१ ॥ १-९ कण्वो घोर ऋषि ॥ देवता-१-३ ७-९ वरुणमित्रार्यमण । ४-६ आदित्याः ॥ छन्दः-१ ४ ५ ८ गायत्री । २ ३ ६ विराड् गायत्री । ७ ९ निचृद्गायत्री ॥ १-९ षड्ज स्वर ॥

( ४१ ) यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
नू चित्स दभ्यते जनः ॥ १ ॥

---

मत्रं । वदति । उक्थ्यं । यस्मिन् । इंद्रः । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । देवाः । ओकांसि । चक्रिरे ॥५॥२०॥ तं । इत् । वोचेम । विदथेषु । शंऽभुवं । मत्रं । देवाः । अनेहसं । इमां । च । वाचं । प्रतिऽहर्यथ । नरः । विश्वा । इत् । वामा । वः । अश्नवत् ॥ ६ ॥ कः । देवऽयंतं । अश्नवत् । जनं । कः । वृक्तऽबर्हिष । प्रऽप्र । दाश्वान् । पस्त्याभिः । अस्थित । अंतःवावत् । क्षयं । दधे ॥ ७ ॥ उप । क्षत्रं । पृंचीत । हंति । राजऽभिः । भये । चित् । सुऽक्षिति । दधे । न । अस्य । वर्ता । न । तरुता । महाऽधने । न । अर्भे । अस्ति । वज्रिणः ॥ ८ ॥ २१ ॥

यं । रक्षंति । प्रचेतसः । वरुणः । मित्र । अर्यमा । नु । चित् । सः । दभ्यते । जनः ॥ १ ॥

यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः ।
अरिष्टः सर्व एधते ॥ २ ॥
वि दुर्गा वि द्विषः पुर एघ्नन्ति राजान एषाम् ।
नयन्ति दुरिता तिरः ॥ ३ ॥
सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते ।
नात्रावखादो अस्ति वः ॥ ४ ॥
यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा ।
प्र वः स धीतये नशत् ॥५॥२२॥
स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना ।
अच्छा गच्छत्यस्तृतः ॥ ६ ॥
कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः ।
महि प्सरो वरुणस्य ॥ ७ ॥
मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् ।
सुम्नैरिद्व आ विवासे ॥ ८ ॥

---

यं । बाहुताऽइव । पिप्रति । पांति । मर्त्यं । रिषः । अरिष्टः । सर्वः । एधते ॥ २ ॥ वि । दुःऽगा । वि । द्विषः । पुरः । घ्नंति । राजानः । एषा नयंति । दुःऽइता । तिरः ॥३॥ सुऽगः । पंथाः । अनृक्षरः । आदित्यासः । ऋत यते । न । अत्र । अवऽखादः । अस्ति । वः ॥४॥ यं । यज्ञं । नयथ । नरः । आ न्याः । ऋजुना । पथा । प्र । वः । सः । धीतये । नशत् ॥ ५ ॥ २२ ॥ सः । रत्नं मर्त्यः । वसु । विश्वं । तोकं । उत । त्मना । अच्छ । गच्छति । अस्तृतः ॥६॥ कथ राधाम । सखायः । स्तोमं । मित्रस्य । अर्यम्णः । महि । प्सरः । वरुणस्य ॥ ७ मा । वः । घ्नंतं । मा । शपंतं । प्रति । वोचे । देवऽयंतं । सुम्नैः । इत् । वः । आ

चतुरश्चिद्ददमानाद्बिभीयादा निधातोः ।
न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥ ९ ॥ २३ ॥

॥ ४२ ॥ १--१० कण्वो घोर ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः–१, ९ निचृद्गायत्री । २, ३, ५--८ १० गायत्री । ४ विराड् गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

( ४२ ) सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् ।
सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥ १ ॥
यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति ।
अप स्म तं पथो जहि ॥ २ ॥
अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् ।
दूरमधि स्रुतेरज ॥ ३ ॥
त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित् ।
पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥ ४ ॥
आ तत्ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे ।
येन पितॄनचोदयः ॥ ५ ॥ २४ ॥

---

विवासे ॥ ८ ॥ चतुरः । चित् । ददमानात् । बिभीयात् । आ । निऽधातोः । न । दुःऽउक्ताय । स्पृहयेत् ॥ ९ ॥ २३ ॥

सं । पूषन् । अध्वनः । तिर । वि । अंहः । विऽमुचः । नपात् । सक्ष्व । देव । प्र । नः । पुरः ॥१॥ यः । नः । पूषन् । अघः । वृकः । दुःऽशेवः । आऽदिदेशति । अप । स्म । तं । पथः । जहि ॥२॥ अप । त्यं । परिऽपंथिनं । मुषीवाणं । हुरःऽचितं । दूरं । अधि । स्रुतेः । अज ॥३॥ त्वं । तस्य । द्वयाविनः । अघऽशंसस्य । कस्य । चित् । पदा । अभि । तिष्ठ । तपुषिं ॥ ४ ॥ आ । तत् । ते । दस्म । मंतुऽमः । पूषन् । अवः । वृणीमहे । येन । पितॄन् । अचोदयः ॥ ५ ॥ २४ ॥

अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम ।
धनानि सुषणा कृधि ॥ ६ ॥
अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु ।
पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ७ ॥
अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने ।
पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ८ ॥
शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् ।
पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ९ ॥
न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि ।
वसूनि दस्ममीमहे ॥ १० ॥ २५ ॥

॥ ४३ ॥ १—९ कण्वो घोर ऋषि ॥ देवता—१, २, ४—६ रुद्रः । ३ मित्रावरुणौ । ७—९ सोम ॥ छन्द —१—४, ७, ८ गायत्री । ५ विराड्गायत्री । ६ पादनिचृद्गायत्री । ९ अनुष्टुप् ॥ स्वरः १—८ षड्ज । ९ गान्धार ॥

(४३) कद्रुद्राय प्रचेतसे मीढुष्टमाय तव्यसे ।
वोचेम शन्तमं हृदे ॥ १ ॥

---

अध । नः । विश्वऽसौभग । हिरण्यवाशीमत्ऽतम । धनानि । सुऽसना । कृधि ॥६॥ अति । नः । सश्चतः । नय । सुऽगा । नः । सुऽपथा । कृणु । पूषन् । इह । क्रतुं । विदः ॥ ७ ॥ अभि । सुऽयवसं । नय । न । नवऽज्वारः । अध्वने । पूषन् । इह । क्रतुं । विदः ॥ ८ ॥ शग्धि । पूर्धि । प्र । यंसि । च । शिशीहि । प्रासि । उदरं । पूषन् । इह । क्रतुं । विदः ॥ ९ ॥ न । पूषणं । मेथामसि । सुऽउक्तैः । अभि । गृणीमसि । वसूनि । दस्मं । ईमहे ॥ १० ॥ २५ ॥

कत् । रुद्राय । प्रऽचेतसे । मीढुःऽतमाय । तव्यसे । वोचेम । शंऽतमं ।

यथा नो अदितिः कर॑त्पश्वे नृभ्यो यथा गवे॑ ।
यथा तोकाय रुद्रिय॑म् ॥ २ ॥
यथा नो मित्रो वरु॑णो यथा रुद्रश्चिके॑तति ।
यथा विश्वे॑ सजोष॑सः ॥ ३ ॥
गाथप॑तिं मेधप॑तिं रुद्रं जला॑षभेषजम् ।
तच्छंयोः सुम्नमी॑महे ॥ ४ ॥
यः शुक्र इ॑व सूर्यो हिर॑ण्यमिव रोच॑ते ।
श्रेष्ठो॑ देवानां वसुः ॥ ५ ॥ २६ ॥
शं नः करत्यर्व॑ते सुगं मेषाय मेष्ये॑ ।
नृभ्यो नारि॑भ्यो गवे॑ ॥ ६ ॥
अस्मे सो॑म श्रियमधि नि धे॑हि शतस्य॑ नृणाम् ।
महि श्रव॑स्तुविनृम्णम् ॥ ७ ॥
मा नः॑ सोमपरिबाधो मारा॑तयो जुहुरन्त ।
आ न॑ इन्दो वाजे॑ भज ॥ ८ ॥

---

रुद्रे ॥ १ ॥ यथा॑ । नः । अदि॑तिः । कर॑त् । पश्वे॑ । नृऽभ्यः॑ । यथा॑ । गवे॑ ।
यथा॑ । तोकाय॑ । रुद्रियं॑ ॥ २ ॥ यथा॑ । नः । मित्रः । वरु॑ण । यथा॑ । रुद्रः ।
चिके॑तति । यथा॑ । विश्वे॑ । सऽजोष॑सः ॥ ३ ॥ गाथऽप॑तिं । मेधऽप॑तिं । रुद्रं ।
जला॑षऽभेषजं । तत् । शंऽयोः । सुम्नं । ईमहे ॥ ४ ॥ यः । शुक्रःऽइ॑व । सूर्यः॑ ।
हिर॑ण्यंऽइव । रोच॑ते । श्रेष्ठः॑ । देवानां॑ । वसुः॑ ॥ ५ ॥ २६ ॥ शं । नः ।
करति । अर्व॑ते । सुऽगं । मेषाय॑ । मेष्ये॑ । नृऽभ्यः॑ । नारि॑ऽभ्यः । गवे॑ ॥ ६ ॥
अस्मे इति॑ । सोम । श्रियं॑ । अधि । नि । धेहि । शतस्य॑ । नृणां । महि ।
श्रवः॑ । तुविऽनृम्णं ॥ ७ ॥ मा । नः । सोमऽपरिबाधः॑ । मा । अरा॑तयः ।
जुहुरंत । आ । नः । इंदो इति॑ । वाजे॑ । भज ॥ ८ ॥

यास्ते॑ प्र॒जा अ॒मृत॑स्य॒ पर॑स्मि॒न्धाम॑न्नृ॒तस्य॑ ।
मू॒र्धा नाभा॑ सोम वेन आ॒भूष॑न्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥ २७ ॥ ८ ॥

## ॥ नवमोऽनुवाकः ॥

॥ ४४ ॥ १—१४ प्रस्कण्व ऋषिः ॥ देवता १—१४ अग्निः ॥ छन्दः—१, ५ उपरिष्टाद्विराड्बृहती । ३ निचृदुपरिष्टाद्बृहती । ७, ११ निचृत्पथ्याबृहती । १२ भुरग्बृहती । १३ पथ्याबृहती । २, ४, ८, १४ विराट् सत पंक्तिः । १० विराड्विस्तारपंक्तिः । ९ आर्ची त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ५, ३ ७, ११—१३ मध्यमः । २, ४ ६ ८, १४, १० पञ्चमः । ९ धैवतः ॥

( ४४ ) अग्ने॒ विव॑स्वदु॒षस॑श्चि॒त्रं राधो॑ अमर्त्य ।
आ दा॒शुषे॑ जातवेदो वहा॒ त्वम॒द्या दे॒वाँ उ॑ष॒र्बुध॑ ॥ १ ॥
जुष्टो॒ हि दू॒तो असि॑ हव्य॒वाह॒नोऽग्ने॑ र॒थीर॑ध्व॒राणा॑म् ।
स॒जूर॒श्विभ्या॑मु॒षसा॑ सु॒वीर्य॑म॒स्मे धे॑हि॒ श्रवो॑ बृ॒हत् ॥ २ ॥
अ॒द्या दू॒तं वृ॑णीमहे॒ वसु॑म॒ग्निं पु॑रुप्रि॒यम् ।
धू॒मके॑तुं॒ भाऋ॑जीकं॒ व्यु॑ष्टिषु य॒ज्ञाना॑मध्वर॒श्रिय॑म् ॥ ३ ॥

---

याः । ते॒ । प्र॒ऽजाः । अ॒मृत॑स्य । पर॑स्मिन् । धाम॑न् । ऋ॒तस्य॑ । मू॒र्धा । नाभा॑ । सो॒म॒ । वे॒नः॒ । आ॒ऽभूष॑न्तीः । सो॒म॒ । वे॒दः॒ ॥ ९ ॥ २७ ॥ ८ ॥

## ॥ नवमोऽनुवाकः ॥

अग्ने॑ । विव॑स्वत् । उ॒षसः॑ । चि॒त्रं । राधः॑ । अ॒म॒र्त्य॒ । आ । दा॒शुषे॑ । जा॒त॒ऽवे॒दः॒ । व॒ह॒ । त्वं । अ॒द्य । दे॒वान् । उ॒षः॒ऽबुधः॑ ॥ १ ॥ जुष्टः॑ । हि । दू॒तः । असि॑ । ह॒व्य॒ऽवाह॑नः । अग्ने॑ । र॒थीः । अ॒ध्व॒राणा॑ं । स॒ऽजूः । अ॒श्विऽभ्या॑ं । उ॒षसा॑ । सु॒ऽवीर्य॑ं । अ॒स्मे इति॑ । धे॒हि॒ । श्रवः॑ । बृ॒हत् ॥ २ ॥ अ॒द्य । दू॒तं । वृ॒णी॒म॒हे॒ । वसु॑ं । अ॒ग्निं । पु॒रु॒ऽप्रि॒यं । धू॒मऽके॑तुं । भाःऽऋ॑-

श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४ ॥

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥ २८ ॥

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥ ७ ॥

सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥

---

जीकं । विऽउष्टिषु । यज्ञानां । अध्वरऽश्रियं ॥ ३ ॥ श्रेष्ठं । यविष्ठं । अतिथिं । सुऽआहुतं । जुष्टं । जनाय । दाशुषे । देवान् । अच्छ । यातवे । जातऽवेदसं । अग्निं । ईळे । विऽउष्टिषु ॥ ४ ॥ स्तविष्यामि । त्वां । अहं । विश्वस्य । अमृत । भोजन । अग्ने । त्रातारं । अमृतं । मियेध्य । यजिष्ठं । हव्यऽवाहन ॥ ५ ॥ २८ ॥ सुऽशंसः । बोधि । गृणते । यविष्ठ्य । मधुऽजिह्वः । सुऽआहुतः । प्रस्कण्वस्य । प्रऽतिरन् । आयुः । जीवसे । नमस्य । दैव्यं । जनं ॥ ६ ॥ होतारं । विश्वऽवेदसं । सं । हि । त्वा । विशः । इन्धते । सः । आ । वह । पुरुऽहूत । प्रऽचेतसः । अग्ने । देवान् । इह । द्रवत् ॥ ७ ॥ सवितारं । उषसं । अश्विना । भगं । अग्निं । विऽउष्टिषु । क्षपः । कण्वासः । त्वा । सुतऽसोमासः । इन्धते । हव्यऽवाहं । सुऽअध्वर ॥ ८ ॥

पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९ ॥

अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्ववितां पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥ २९ ॥

नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद्देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥ ११ ॥

यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ॥ १२ ॥

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३ ॥

---

पतिः । हि । अध्वराणां । अग्ने । दूतः । विशां । असि । उषःऽबुधः ।
आ । वह । सोमऽपीतये । देवान् । अद्य । स्वःऽदृशः ॥ ९ ॥ अग्ने । पूर्वाः ।
अनु । उषसः । विभावसो इति विभाऽवसो । दीदेथ । विश्वऽदर्शतः । असि ।
ग्रामेषु । अविता । पुरःऽहितः । असि । यज्ञेषु । मानुषः ॥ १० ॥ २९
नि । त्वा । यज्ञस्य । साधनं । अग्ने । होतारं । ऋत्विजं । मनुष्वत् । दे
धीमहि । प्रऽचेतसं । जीरं । दूतं । अमर्त्यं ॥ ११ ॥ यत् । देवान्
मित्रऽमहः । पुरःऽहितः । अंतरः । यासि । दूत्यं । सिंधोःऽइव । प्रऽस्वनिताः
ऊर्मयः । अग्नेः । भ्राजंते । अर्चयः ॥ १२ ॥ श्रुधि । श्रुत्ऽकर्ण । वह्निऽभि
देवैः । अग्ने । सयावऽभिः । आ । सीदंतु । बर्हिषि । मित्रः । अर्यमा । प्रात

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
पिबन्तु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥ १४ ॥ ३० ॥

॥ ४५ ॥ १—१० प्रस्कण्व काण्व ऋषि. ॥ १—१० अग्निर्देवा देवता ॥ छन्दः—१भुरिगुष्णिक् । ५ उष्णिक्. २, ३ ७, ८ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । ६, ९, १० विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—१ ऋषभः । २—४ ६—१० गान्धार ॥

( ४२ ) त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत ।
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ १ ॥

श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः ।
तान्रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥ २ ॥

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत् ।
अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ॥ ३ ॥

महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ॥ ४ ॥

---

यावानः । अध्वरं ॥ १३ ॥ शृण्वंतु । स्तोमं । मरुतः । सुऽदानवः । अग्निऽजिह्वा । ऋतऽवृधः । पिबंतु । सोमं । वरुणः । धृतऽव्रतः । अश्विऽभ्यां । उषसा । सऽजूः ॥ १४ ॥ ३० ॥

त्वं । अग्ने । वसून् । इह । रुद्रान् । आदित्यान् । उत । यज । सुऽअध्वरं । जनं । मनुऽजातं । घृतऽप्रुषं ॥ १ ॥ श्रुष्टीऽवानः । हि । दाशुषे । देवाः । अग्ने । विऽचेतसः । तान् । रोहितऽअश्व । गिर्वणः । त्रयःऽत्रिंशतं । आ । वह ॥ २ ॥ प्रियमेधऽवत् । अत्रिऽवत् । जातऽवेदः । विरूपऽवत् । अंगिरस्वत् । महिऽव्रत । प्रस्कण्वस्य । श्रुधि । हवं ॥ ३ ॥ महिऽकेरवः । ऊतये । प्रियऽमेधाः । अहूषत । राजंतं । अध्वराणां । अग्निं । शुक्रेण । शोचिषा ॥ ४ ॥

घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः ।
याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा ॥ ५ ॥

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः ।
शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥

नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥

आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः ।
बृहद्भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्ताय दाशुषे ॥

प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य ।
इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ॥

अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः ।
अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्न्यम् ॥ १० ॥ ३

---

घृतऽआहवन । सन्त्य । इमाः । ऊं इति । सु । श्रुधि । गिरः । याभिः । कण्वस्य । सूनवः । हवन्ते । अवसे । त्वा ॥ ५ ॥ ३१ ॥ त्वां । चित्रश्रवःऽतम । हवन्ते । विक्षु । जन्तवः । शोचिःऽकेशं । पुरुऽप्रिय । अग्ने । हव्याय । वोळ्हवे ॥ ६ ॥ नि । त्वा । होतारं । ऋत्विजं । दधिरे । वसुवित्ऽतमं । श्रुत्ऽकर्णं । सप्रथःऽतमं । विप्राः । अग्ने । दिविष्टिषु ॥ ७ ॥ आ । त्वा । विप्राः । अचुच्यवुः । सुतऽसोमाः । अभि । प्रयः । बृहत् । भाः । बिभ्रतः । हविः । अग्ने । मर्ताय । दाशुषे ॥ ८ ॥ प्रातःऽयाव्नः । सहःऽकृत । सोमऽपेयाय । सन्त्य । इह । अद्य । दैव्यं । जनं । बर्हिः । आ । सादय । वसो इति ॥ ९ ॥ अर्वाञ्चं । दैव्यं । जनं । अग्ने । यक्ष्व । सहूतिऽभिः । अयं । सोमः । सुऽदानवः । तं । पात । तिरःऽअह्न्यं ॥ १० ॥ ३२ ॥

॥ ४६ ॥ १—१५ प्रस्कण्व. काण्व ऋषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः-१ १० विराड्गायत्री । ३, ११, ६, १२, १४, गायत्री । ५, ७, ९, १३, १५, २, ४, ८, निचृद्गायत्री ॥ १—१५ षड्जः स्वरः ॥

( ४६ ) एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥

या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।
धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥

वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि ।
यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥

हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा ।
पिता कुटस्य चर्षणिः ॥ ४ ॥

आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा ।
पातं सोमस्य धृष्णुया ॥ ५ ॥ ३३ ॥

---

एषो इति । उषाः । अपूर्व्या । वि । उच्छति । प्रिया । दिवः । स्तुषे । वां । अश्विना । बृहत् ॥ १ ॥ या । दस्रा । सिंधुऽमातरा । मनोतरा । रयीणां । धिया । देवा । वसुऽविदा ॥ २ ॥ वच्यंते । वां । ककुहासः । जूर्णायां । अधि । विष्टपि । यत् । वां । रथः । विऽभिः । पतात् ॥ ३ ॥ हविषा । जारः । अपां । पिपर्ति । पपुरिः । नरा । पिता । कुटस्य । चर्षणिः ॥ ४ ॥ आऽदारः । वां । मतीनां । नासत्या । मतऽवचसा । पातं । सोमस्य । धृष्णुऽया ॥ ५ ॥ ३३ ॥

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः।
तामस्मे रासाथामिषम् ॥ ६ ॥

आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे।
युञ्जाथामश्विना रथम् ॥ ७ ॥

अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः।
धिया युयुज्र इन्दवः ॥ ८ ॥

दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे।
स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥ ९ ॥

अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः।
व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥ १० ॥ ३४ ॥

अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया।
अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ११ ॥

---

या। नः। पीपरत्। अश्विना। ज्योतिष्मती। तमः। तिरः। तां। अस्मे इति। रासाथां। इषं ॥ ६ ॥ आ। नः। नावा। मतीनां। यातं। पाराय। गंतवे। युंजाथां। अश्विना। रथं ॥ ७ ॥ अरित्रं। वां। दिवः। पृथु। तीर्थे। सिंधूनां। रथः। धिया। युयुज्रे। इंदवः ॥ ८ ॥ दिवः। कण्वासः। इंदवः। वसु। सिंधूनां। पदे। स्वं। वव्रिं। कुह। धित्सथः ॥ ९ ॥ अभूत्। ऊं इति। भाः। ऊं इति। अंशवे। हिरण्यं। प्रति। सूर्यः। वि। अख्यत्। जिह्वया। असितः ॥ १० ॥ ३४ ॥ अभूत्। ऊं इति। पारं। एतवे। पंथाः। ऋतस्य। साधुऽया। अदर्शि।

तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति ।
मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥ १२ ॥
वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा ।
मनुष्वच्छंभू आ गतम् ॥ १३ ॥
युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् ।
ऋता वनथो अक्तुभिः ॥ १४ ॥
उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् ।
अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ १५ ॥ ३५ ॥ ३ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

## ॥ अथ प्रथमाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ ४७ ॥ १–१० प्रस्कण्वः काण्व ऋषि. ॥ आश्विनो देवते ॥ छन्द —१, ५ निचृत्पथ्या बृहती । ३, ७ पथ्या बृहती । ९ विराट् पथ्या बृहती । २, ६, ८ निचृत्सतः पंक्तिः । ४, १० सतः पंक्ति ॥ स्वरः–१, ५ ३ ७ ९ मध्यम. । २, ६, ८ ४, १० पञ्चम ॥

(४७) अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥१॥

---

वि । सुतिः । दिवः ॥ ११ ॥ तत्ऽतत् । इत् । अश्विनोः । अवः । जरिता । प्रति । भूषति । मदे । सोमस्य । पिप्रतोः ॥ १२ ॥ ववसाना । विवस्वति । सोमस्य । पीत्या । गिरा । मनुष्वत् । शंभू इति शंऽभू । आ । गतं ॥ १३ ॥ युवोः । उषाः । अनु । श्रियं । परिऽज्मनोः । उपऽआचरत् । ऋता । वनथः । अक्तुऽभिः ॥ १४ ॥ उभा । पिबतं । अश्विना । उभा । नः । शर्म । यच्छतं । अविद्रियाभिः । ऊतिऽभिः ॥ १५ ॥ ३५ ॥ ३ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

॥ अथ प्रथमाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अयं । वां । मधुमत्ऽतमः । सुतः । सोमः । ऋतऽवृधा । तं । अश्विना । पिबतं । तिरःऽअह्न्यं । धत्तं । रत्नानि । दाशुषे ॥ १ ॥

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥२॥

अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥ ३ ॥

त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥४॥

याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५॥१॥

सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

---

त्रिऽवन्धुरेण । त्रिऽवृता । सुऽपेशसा । रथेन । आ । यातं । अश्विना । कण्वासः । वां । ब्रह्म । कृण्वन्ति । अध्वरे । तेषां । सु । शृणुतं । हवं ॥२॥ अश्विना । मधुमत्ऽतमं । पातं । सोमं । ऋतऽवृधा । अथ । अद्य । दस्रा । वसु । बिभ्रता । रथे । दाश्वांसं । उप । गच्छतं ॥ ३ ॥ त्रिऽसधस्थे । बर्हिषि । विश्वऽवेदसा । मध्वा । यज्ञं । मिमिक्षतं । कण्वासः । वां । सुतऽसोमाः । अभिऽद्यवः । युवां । हवन्ते । अश्विना ॥ ४ ॥ याभिः । कण्वं । अभिष्टिऽभिः । प्र । आवतं । युवं । अश्विना । ताभिः । सु । अस्मान् । अवतं । शुभः । पती इति । पातं । सोमं । ऋतऽवृधा ॥ ५ ॥ १ ॥ सुऽदासे । दस्रा । वसु । बिभ्रता । रथे । पृक्षः । वहतं । अश्विना । रयिं । समुद्रात् । उत । वा । दिवः । परि । अस्मे इति । धत्तं ।

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥७॥
अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥८॥
तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ॥९॥
उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत्कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ॥१०॥२॥

॥ ४८ ॥ १–१६ प्रस्कण्व काण्व ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ७, ९ विराट् पथ्या बृहती । ५, ११, १३ निचृत् पथ्या बृहती । १२ बृहती । १५ पथ्या बृहती । ४, ६, १४ विराट् सत पङ्क्तिः । २, १०, १६ निचृत् सत पङ्क्तिः । ८ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३, ५, ९, ७, ११, १३, १२, १५ मध्यमः । २, ४, ६, १४, १०, १६, ८ पञ्चमः ॥

(४८) सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥१॥

---

पुरु स्पृहं ॥ ६ ॥ यत् । नासत्या । पराऽवति । यत् । वा । स्थः । अधि । तुर्वशे । अतः । रथेन । सुऽवृता । नः । आ । गतं । साकं । सूर्यस्य । रश्मिऽभिः ॥ ७ ॥ अर्वाञ्चा । वां । सप्तयः । अध्वरऽश्रियः । वहन्तु । सवना । इत् । उप । इषं । पृञ्चन्ता । सुऽकृते । सुऽदानवे । आ । बर्हिः । सीदतं । नरा ॥ ८ ॥ तेन । नासत्या । आ । गतं । रथेन । सूर्यऽत्वचा । येन । शश्वत् । ऊहथुः । दाशुषे । वसु । मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥ ९ ॥ उक्थेभिः । अर्वाक् । अवसे । पुरुवसू इति पुरुऽवसू । अर्कैः । च । नि । ह्वयामहे । शश्वत् । कण्वानां । सदसि । प्रिये । हि । कं । सोमं । पपथुः । अश्विना ॥ १० ॥ २ ॥

सह । वामेन । नः । उषः । वि । उच्छ । दुहितः । दिवः । सह । द्युम्नेन । बृहता । विभाऽवरि । राया । देवि । दास्वती ॥ १ ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥२॥

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥

उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥ ४ ॥

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥ ३ ॥

वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥ ६ ॥

---

अश्वऽवतीः । गोऽमतीः । विश्वऽसुविदः । भूरि । च्यवन्त । वस्तवे । उत् । ईरय । प्रति । मा । सूनृताः । उषः । चोद । राधः । मघोनां ॥ २ ॥ उवास । उषाः । उच्छात् । च । नु । देवी । जीरा । रथानां । ये । अस्याः । आऽचरणेषु । दध्रिरे । समुद्रे । न । श्रवस्यवः ॥ ३ ॥ उषः । ये । ते । प्र । यामेषु । युंजते । मनः । दानाय । सूरयः । अत्र । अह । तत् । कण्वः । एषां । कण्वऽतमः । नाम । गृणाति । नृणां ॥ ४ ॥ आ । घ । योषाऽइव । सूनरी । उषाः । याति । प्रऽभुंजती । जरयंती । वृजनं । पत्ऽवत् । ईयते । उत् । पातयति । पक्षिणः ॥ ५ ॥ ३ ॥ वि । या । सृजति । समनं । वि । अर्थिनः । पदं । न । वेति । ओदती । वयः । नकिः । ते । पप्तिऽवांसः । आसते । विऽउष्टौ । वाजिनीऽ-

एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥७॥

विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥ ८ ॥

उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥१०॥४॥

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥ ११ ॥

---

वति ॥ ६ ॥ एषा । अयुक्त । पराऽवतः । सूर्यस्य । उत्ऽअयनात् । अधि ।
शतं । रथेभिः । सुऽभगा । उषाः । इयं । वि । याति । अभि । मानुषान् ॥ ७ ॥
विश्वं । अस्याः । ननाम । चक्षसे । जगत् । ज्योतिः । कृणोति । सूनरी । अप । द्वेषः ।
मघोनी । दुहिता । दिवः । उषाः । उच्छत् । अप । स्रिधः ॥ ८ ॥ उषः । आ ।
भाहि । भानुना । चंद्रेण । दुहितः । दिवः । आऽवहंती । भूरि । अस्मभ्यं ।
सौभगं । विऽउच्छंती । दिविष्टिषु ॥ ९ ॥ विश्वस्य । हि । प्राणनं ।
जीवनं । त्वे इति । वि । यत् । उच्छसि । सूनरि । सा । नः । रथेन । बृहता ।
विभाऽवरि । श्रुधि । चित्रऽमघे । हवं ॥ १० ॥ ४ ॥ उषः । वाजं । हि । वंस्व ।
यः । चित्रः । मानुषे । जने । तेन । आ । वह । सुऽकृतः । अध्वरान् । उप ।
ये । त्वा । गृणंति । वह्नयः ॥ ११ ॥

विश्वा॑न्दे॒वाँ आ व॑ह॒ सोम॑पीतये॒ऽन्तरि॑क्षादुष॒स्त्वम् ।
सास्मासु॑ धा॒ गोम॒दश्वा॑वदु॒क्थ्य१॒॑मुषो॒ वाजं॑ सु॒वीर्य॑म् ॥१२॥

यस्या॒ रुश॑न्तो अ॒र्चयः॒ प्रति॑ भ॒द्रा अदृ॑क्षत ।
सा नो॑ र॒यिं वि॒श्ववा॑रं सु॒पेश॑समु॒षा द॑दातु॒ सुग्म्य॑म् ॥ १३ ॥

ये चि॒द्धि त्वामृष॑यः॒ पूर्व॑ ऊ॒तये॑ जुहू॒रेऽव॑से महि ।
सा नः॒ स्तोमाँ॑ अ॒भि गृ॑णीहि॒ राध॒सोषः॑ शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॑ ॥१४॥

उषो॒ यद॒द्य भा॒नुना॒ वि द्वारा॑वृ॒णवो॑ दि॒वः ।
प्र नो॑ यच्छतादवृ॒कं पृ॒थु च्छ॒र्दिः प्र दे॑वि॒ गोम॑ती॒रिषः॑ ॥१५॥

सं नो॑ रा॒या बृ॑ह॒ता वि॒श्वपे॑शसा मिमि॒क्ष्वा समिळा॑भि॒रा ।
सं द्यु॒म्नेन॑ विश्व॒तुरो॑षो महि॒ सं वाजै॑र्वाजिनीवति ॥१६॥५॥

---

विश्वा॑न् । दे॒वान् । आ । व॒ह॒ । सोम॑ऽपीतये । अ॒न्तरि॑क्षात् । उ॒षः॒ । त्वम् । सा । अ॒स्मासु॑ । धाः॒ । गोऽम॑त् । अश्व॑ऽवत् । उ॒क्थ्य॑म् । उषः॑ । वाज॑म् । सु॒ऽवीर्य॑म् ॥ १२ ॥ यस्याः॑ । रुश॑न्तः । अ॒र्चयः॑ । प्रति॑ । भ॒द्राः । अदृ॑क्षत । सा । नः॒ । र॒यिम् । वि॒श्वऽवा॑रम् । सु॒ऽपेश॑सम् । उ॒षाः । द॒दा॒तु॒ । सुग्म्य॑म् ॥ १३ ॥ ये । चि॒त् । हि । त्वाम् । ऋष॑यः । पूर्वे॑ । ऊ॒तये॑ । जु॒हू॒रे । अव॑से । म॒हि॒ । सा । नः॒ । स्तोमा॑न् । अ॒भि । गृ॒णी॒हि॒ । राध॑सा । उषः॑ । शु॒क्रेण॑ । शो॒चिषा॑ ॥ १४ ॥ उषः॑ । यत् । अ॒द्य । भा॒नुना॑ । वि । द्वारौ॑ । ऋ॒णवः॑ । दि॒वः । प्र । नः॒ । य॒च्छ॒ता॒त् । अ॒वृ॒कम् । पृ॒थु । छ॒र्दिः । प्र । दे॒वि॒ । गोऽम॑तीः । इषः॑ ॥ १५ ॥ सम् । नः॒ । रा॒या । बृ॒ह॒ता । वि॒श्वऽपे॑शसा । मि॒मि॒क्ष्व । सम् । इळा॑भिः । आ । सम् । द्यु॒म्नेन॑ । वि॒श्व॒ऽतुरा॑ । उ॒षः॒ । म॒हि॒ । सम् । वाजैः॑ । वा॒जि॒नी॒ऽव॒ति॒ ॥ १६ ॥ ५ ॥

॥ ४९ ॥ १—४ प्रस्कण्वः काण्व ऋषि ॥ उषा देवता ॥ निचृदनुष्टुप् छन्द ॥ गान्धार स्वरः ॥

(४९) उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १ ॥
सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २ ॥
वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ॥६॥

॥ ५० ॥ १-१३ प्रस्कण्व काण्व ऋषि ॥ सूर्यो देवता ॥ छन्दः-१ ६ निचृद्गायत्री । २, ४, ८, ९ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । ३ गायत्री । ५ यवमध्या विराड्गायत्री । १०, ११ निचृदनुष्टुप् । १२, १३ अनुष्टुप् ॥ स्वर.- १ -९ षड्ज । १०.-१३ गान्धार. ॥

(५०) उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १ ॥

---

उषः । भद्रेभिः । आ । गहि । दिवः । चित् । रोचनात् । अधि । वहन्तु । अरुणऽप्सवः । उप । त्वा । सोमिनः । गृहं ॥ १ ॥ सुऽपेशसं । सुऽखं । रथं । यं । अधिऽअस्थाः । उषः । त्वं । तेन । सुऽश्रवसं । जनं । प्र । अव । अद्य । दुहितः । दिवः ॥ २ ॥ वयः । चित् । ते । पतत्रिणः । द्विऽपत् । चतुःऽपत् । अर्जुनि । उषः । प्र । आरन् । ऋतून् । अनु । दिवः । अंतेभ्यः । परि ॥३॥ विऽउच्छंती । हि । रश्मिऽभिः । विश्वं । आऽभासि । रोचनं । तां । त्वां । उषः । वसुऽयवः । गीःऽभिः । कण्वाः । अहूषत ॥ ४ ॥ ६ ॥

उत् । ऊं इति । त्यं । जातऽवेदसं । देवं । वहंति । केतवः । दृशे । विश्वाय । सूर्यं ॥ १ ॥

अप॒ त्ये ता॒यवो॑ यथा॒ नक्ष॑त्रा यन्त्य॒क्तुभिः॑ ।

सूरा॑य वि॒श्वच॑क्षसे ॥ २

अदृ॑श्रमस्य के॒तवो॒ वि र॒श्मयो॒ जनाँ॒ अनु॑ ।

भ्राज॑न्तो अ॒ग्नयो॑ यथा ॥ ३

त॒रणि॑र्वि॒श्वद॑र्शतो ज्योति॒ष्कृद॑सि सूर्य ।

विश्व॒मा भा॑सि रोच॒नम् ॥ ४

प्र॒त्यङ् दे॒वानां॒ विशः॑ प्र॒त्यङ्ङुदे॑षि॒ मानु॑षान् ।

प्र॒त्यङ्विश्वं॒ स्व॑र्दृ॒शे ॥ ५ ॥ ७

येना॑ पावक॒ चक्ष॑सा भुर॒ण्यन्तं॒ जनाँ॒ अनु॑ ।

त्वं व॑रुण॒ पश्य॑सि ॥ ६

वि द्यामे॑षि॒ रज॑स्पृ॒थ्वहा॒ मिमा॑नो अ॒क्तुभिः॑ ।

पश्य॒ञ्जन्मा॑नि सूर्य ॥ ७

---

अप॑ । त्ये । ता॒यवः॑ । य॒था॒ । नक्ष॑त्रा । य॒न्ति॒ । अ॒क्तुऽभिः॑ । सूरा॑य । वि॒श्वऽच॑क्षसे ॥ २ ॥ अदृ॑श्रं । अ॒स्य॒ । के॒तवः॑ । वि । र॒श्मयः॑ । जना॑न् । अनु॑ । भ्राज॑न्तः । अ॒ग्नयः॑ । य॒था॒ ॥ ३ ॥ त॒रणिः॑ । वि॒श्वऽद॑र्शतः । ज्यो॒तिः॒ऽकृत् । अ॒सि॒ । सू॒र्य॒ । विश्वं॑ । आ । भा॒सि॒ । रो॒च॒नं ॥ ४ ॥ प्र॒त्यङ् । दे॒वानां॑ । विशः॑ । प्र॒त्यङ् । उत् । ए॒षि॒ । मानु॑षान् । प्र॒त्यङ् । विश्वं॑ । स्वः॑ । दृ॒शे ॥ ५ ॥ ७ ॥ येन॑ । पा॒व॒क॒ । चक्ष॑सा । भु॒र॒ण्यन्तं॑ । जना॑न् । अनु॑ । त्वं । व॒रु॒ण॒ । पश्य॑सि ॥ ६ ॥ वि । द्यां । ए॒षि॒ । रजः॑ । पृ॒थु । अहा॑ । मिमा॑नः । अ॒क्तुऽभिः॑ । पश्य॑न् । जन्मा॑नि । सू॒र्य॒ ॥

सप्त त्वा॑ ह॒रितो॒ रथे॒ वह॑न्ति देव सूर्य ।
शो॒चिष्के॑शं विचक्षण ॥ ८ ॥

अयु॑क्त स॒प्त शु॒न्ध्युव॒: सूरो॒ रथ॑स्य न॒प्त्य॑: ।
ताभि॑र्याति॒ स्वयु॑क्तिभिः ॥ ९ ॥

उद्व॒यं तम॑स॒स्परि॒ ज्योति॒ष्पश्य॑न्त॒ उत्त॑रम् ।
दे॒वं दे॑व॒त्रा सूर्य॒मग॑न्म॒ ज्योति॑रुत्त॒मम् ॥ १० ॥

उ॒द्यन्न॒द्य मि॑त्रमह आ॒रोह॒न्नुत्त॑रां॒ दिव॑म् ।
हृ॒द्रो॒गं मम॑ सूर्य हरि॒माणं॑ च नाशय ॥ ११ ॥

शुके॑षु मे हरि॒माणं॑ रोप॒णाका॑सु दध्मसि ।
अथो॑ हारिद्र॒वेषु॑ मे हरि॒माणं॒ नि द॑ध्मसि ॥ १२ ॥

उद॑गाद॒यमा॑दि॒त्यो विश्वे॑न॒ सह॑सा स॒ह ।
द्वि॒षन्तं॒ मह्यं॑ र॒न्धय॒न्मो अ॒हं द्वि॑ष॒ते र॑धम् ॥ १३ ॥ ८॥९॥

---

स॒प्त । त्वा॒ । ह॒रितः॑ । रथे॑ । वह॑न्ति । दे॒व॒ । सूर्य॒ । शो॒चिःऽके॑शं । वि॒ऽच॒क्ष॒ण ॥ ८ ॥ अयु॑क्त । स॒प्त । शु॒न्ध्युवः॑ । सूरः॑ । रथ॑स्य । न॒प्त्यः॑ । ताभिः॑ । या॒ति॒ । स्वयु॑क्तिऽभिः ॥ ९ ॥ उत् । व॒यं । तम॑सः । परि॑ । ज्योतिः॑ । पश्यं॑तः । उत्ऽत॑रं । दे॒वं । दे॒व॒ऽत्रा । सूर्यं॑ । अग॑न्म । ज्योतिः॑ । उ॒त्ऽत॒मं ॥ १० ॥ उ॒त्ऽयन् । अ॒द्य । मि॒त्र॒ऽम॒हः॒ । आ॒ऽरोह॑न् । उत्ऽत॑रां । दिवं॑ । हृ॒त्ऽरो॒गं । मम॑ । सूर्य॒ । ह॒रि॒माणं॑ । च॒ । ना॒श॒य॒ ॥ ११ ॥ शुके॑षु । मे॒ । ह॒रि॒माणं॑ । रो॒प॒णाका॑सु । द॒ध्म॒सि॒ । अथो॒ इति॑ । हा॒रि॒द्र॒वेषु॑ । मे॒ । ह॒रि॒माणं॑ । नि । द॒ध्म॒सि॒ ॥ १२ ॥ उत् । अ॒गा॒त् । अ॒यं । आ॒दि॒त्यः । विश्वे॑न । सह॑सा । स॒ह । द्वि॒षंतं॑ । मह्यं॑ । र॒न्धय॑न् । मो इति॑ । अ॒हं । द्वि॒ष॒ते । र॒धं॒ ॥ १३ ॥ ८ ॥ ९ ॥

## ॥ दशमोऽनुवाकः ॥

॥ ५१ ॥ १-१५ सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द - १, ९, १० जगती २, ५, ८ विराड् जगती । ११-१३ निचृज्जगती । ३ ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६, ७, त्रिष्टु । १५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ स्वर - १, २, ९, १०, ५, ११-१३, ८ निषाद. । ३, ४ ६, ७, १ १५ धैवत ॥

(५१) अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम्
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ १ ॥
अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत ॥ २ ॥
त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥ ३ ॥

---

## ॥ दशमोऽनुवाकः ॥

अभि । त्यं । मेषं । पुरुऽहूतं । ऋग्मियं । इंद्रं । गीःऽभिः । मदत । वस्वः । अर्णवं । यस्य । द्यावः । न । विऽचरंति । मानुषा । भुजे । मंहिष्ठं । अभि । विप्रं । अर्चत ॥ १ ॥ अभि । ईं । अवन्वन् । सुऽअभिष्टिं । ऊतयः । अंतरिक्षऽप्रां । तविषीभिः । आऽवृतं । इंद्रं । दक्षासः । ऋभवः । मदऽच्युतं । शतऽक्रतुं । जवनी । सूनृता । आ । अरुहत् ॥ २ ॥ त्वं । गोत्रं । अंगिरःऽभ्यः । अवृणोः । अप । उत । अत्रये । शतऽदुरेषु । गातुऽवित् । ससेन । चित् । विऽमदाय । अवहः । वसु । आजौ । अद्रिं । ववसानस्य । नर्तयन् ॥ ३ ॥ त्वं । अपां । अपि-

त्वमपामपिधानावृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु ।

वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥ ४ ॥

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।

त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥५॥ ९ ॥

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।

महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥६॥

त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।

तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥ ७ ॥

---

धानां । अवृणोः । अपं । अधारयः । पर्वते । दानुऽमत् । वसु । वृत्रं । यत् । इन्द्र । शवसा । अवधीः । अहिं । आत् । इत् । सूर्यं । दिवि । आ । अरोहयः । दृशे ॥ ४ ॥ त्वं । मायाभिः । अपं । मायिनः । अधमः । स्वधाभिः । ये । अधि । शुप्तौ । अजुह्वत । त्वं । पिप्रोः । नृऽमनः । प्र । अरुजः । पुरः । प्र । ऋजिश्वानं । दस्युऽहत्येषु । आविथ ॥ ५ ॥ ९ ॥ त्वं । कुत्सं । शुष्णऽहत्येषु । आविथ । अरन्धयः । अतिथिऽग्वाय । शंबरं । महान्तं । चित् । अर्बुदं । नि । क्रमीः । पदा । सनात् । एव । दस्युऽहत्याय । जज्ञिषे ॥ ६ ॥ त्वे इति । विश्वा । तविषी । सध्र्यक् । हिता । तव । राधः । सोमऽपीथाय । हर्षते । तव । वज्रः । चिकिते । बाह्वोः । हितः । वृश्च । शत्रोः । अव । विश्वानि । वृष्ण्या ॥ ७ ॥

वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥८॥
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः।
वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ॥९॥
तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥१०॥१०॥
मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः ॥११॥

---

वि। जानीहि। आर्यान्। ये। च। दस्यवः। बर्हिष्मते। रंधय। शासत्। अव्रतान्। शाकी। भव। यजमानस्य। चोदिता। विश्वा। इत्। ता। ते। सधऽमादेषु। चाकन ॥ ८ ॥ अनुऽव्रताय। रंधयन्। अपऽव्रतान्। आऽभूभिः। इंद्रः। श्नथयन्। अनाभुवः। वृद्धस्य। चित्। वर्धतः। द्यां। इनक्षतः। स्तवानः। वम्रः। वि। जघान। संऽदिहः ॥ ९ ॥ तक्षत्। यत्। ते। उशना। सहसा। सहः। वि। रोदसी इति। मज्मना। बाधते। शवः। आ। त्वा। वातस्य। नृऽमनः। मनःऽयुजः। आ। पूर्यमाणं। अवहन्। अभि। श्रवः ॥ १० ॥ १० ॥ मन्दिष्ट। यत्। उशने। काव्ये। सचा। इंद्रः। वङ्कू इति। वङ्कुऽतरा। अधि। तिष्ठति। उग्रः। ययिं। निः। अपः। स्रोतसा। असृजत्। वि। शुष्णस्य। दृंहिताः। ऐरयत्। पुरः ॥११॥ आ। स्म। रथं। वृषऽपानेषु।

आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।

इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥१२॥

अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।

मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३॥

इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।

अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥ १४ ॥

इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।

अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ॥१५॥११॥

---

तिष्ठसि । शार्यातस्य । प्रऽभृताः । येषु । मंदसे । इंद्र । यथा । सुतऽसोमेषु । चाकनः । अनर्वाणं । श्लोकं । आ । रोहसे । दिवि ॥ १२ ॥ अददाः । अर्भां । महते । वचस्यवे । कक्षीवते । वृचयां । इंद्र । सुन्वते । मेना । अभवः । वृषणश्वस्य । सुक्रतो इति सुऽक्रतो । विश्वा । इत् । ता । ते । सवनेषु । प्रऽवाच्या ॥ १३ ॥ इंद्रः । अश्रायि । सुऽध्यः । निरेके । पज्रेषु । स्तोमः । दुर्यः । न । यूपः । अश्वऽयुः । गव्युः । रथऽयुः । वसुऽयुः । इंद्रः । इत् । रायः । क्षयति । प्रऽयंता ॥ १४ ॥ इदं । नमः । वृषभाय । स्वऽराजे । सत्यऽशुष्माय । तवसे । अवाचि । अस्मिन् । इंद्र । वृजने । सर्वऽवीराः । स्मत् । सूरिऽभिः । तव । शर्मन् । स्याम ॥ १५ ॥ ११॥

॥ ५२ ॥ १-१५ सव्य आङ्गिरस ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ८ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् । ९, १० स्वराट् त्रिष्टुप् । १२, १३, १५ निचृत् त्रिष्टुप् । २-४ निचृज्जगती । ५, १४ जगती । ६, ११ विराट् जगती ॥ स्वर—१, ७—९ १०, १२, १३, १५ धैवत । २-६, ११, १४ निषाद ॥

(५२) त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१॥
स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।
इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥ २ ॥
स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥ ३ ॥
आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः ।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ॥ ४ ॥

---

त्यं । सु । मेषं । महय । स्वःऽविदं । शतं । यस्य । सुऽभ्वः । साकं । ईरते । अत्यं । न । वाजं । हवनऽस्यदं । रथं । आ । इंद्रं । ववृत्यां । अवसे । सुवृक्तिऽभिः ॥ १ ॥ सः । पर्वतः । न । धरुणेऽषु । अच्युतः । सहस्रंऽऊतिः । तविषीषु । ववृधे । इंद्रः । यत् । वृत्रं । अवधीत् । नदीऽवृतं । उब्जन् । अर्णांसि । जर्हृषाणः । अंधसा ॥ २ ॥ सः । हि । द्वरः । द्वरिषु । वव्रः । ऊधनि । चंद्रऽबुध्नः । मदऽवृद्धः । मनीषिभिः । इंद्रं । तं । अह्वे । सुऽअपस्यया । धिया । मंहिष्ठऽरातिं । सः । हि । पप्रिः । अंधसः ॥ ३ ॥ आ । यं । पृणंति । दिवि । सद्मऽबर्हिषः । समुद्रं । न । सुऽभ्वः । स्वाः । अभिष्टयः । तं । वृत्रऽहत्ये । अनु । तस्थुः । ऊतयः । शुष्माः । इंद्रं । अवाताः । अह्रुतऽप्सवः ॥ ४ ॥ अभि । स्वऽवृष्टिं । मदे । अस्य । युध्यतः । रघ्वीःऽइव ।

अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः।
इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधींरिव त्रितः ॥५॥१२॥
परी घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत्।
वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥ ६ ॥
ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना।
त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥७॥
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥ ८ ॥
बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्यमकृण्वत भियसा रोहणं दिवः।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ९ ॥

---

प्रवणे। सस्रुः॥ ऊतयः। इंद्रः। यत्। वज्री। धृषमाणः। अं-धसा। भिनत्। वलस्य। परिधीन्ऽइव। त्रितः॥ १२॥ परि। ईम्। घृणा। चरति। तित्विषे। शवः। अपः। वृत्वी। रजसः। बुध्नं। आ। अशयत्। वृत्रस्य। यत्। प्रवणे। दुःऽगृभिश्वनः। नि्ऽजघं-थ। हन्वोः। इंद्र। तन्यतुं॥ ६। ह्रदं। न। हि। त्वा। निऽऋ-षंति। ऊर्मयः। ब्रह्माणि। इंद्र। तव। यानि। वर्धना। त्वष्टा। चित्। ते। युज्यं। ववृधे। शवः। ततक्ष। वज्रं। अभिभूतिऽओ-जसं॥ ७॥ जघन्वान्। ऊं इति। हरिऽभिः। संभृतक्रतो इति। सं-भृतऽक्रतो। इंद्र। वृत्रं। मनुषे। गातुऽयन्। अपः। अयच्छथाः। बाह्वोः। वज्रं। आयसं। अधारयः। दिवि। आ। सूर्यं। दृशे॥ ८॥ बृहत्। स्वःऽचंद्रं। अमऽवत्। यत् उक्थ्यं। अकृण्वत। भि-यसा। रोहणं। दिवः। यत्। मानुषऽप्रधनाः। इंद्रं। ऊतयः। स्वः। नृऽसाचः। मरुतः अमदन्। अनु॥ ९॥

द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते ।
वृत्रस्य यद्बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ॥१०॥१३॥
यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन्विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥११॥
त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥१२॥
त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥१३॥
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥१४॥

---

द्यौः । चित् । अस्य । अमऽवान् । अहेः । स्वनात् । अयोयवीत् । भियसा । वज्रः । इंद्र । ते । वृत्रस्य । यत् । बद्बधानस्य । रोदसी इति । मदे । सुतस्य । शवसा अभिनत् । शिरः । १० ॥ १३ ॥ यत् । इत् । नु । इंद्र । पृथिवी । दशऽभुजिः । अहानि । विश्वा । ततनंत । कृष्टयः । अत्र । अह । ते । मघऽवन् । विऽश्रुतं । सहः । द्यां । अनु । शवसा । बर्हणा । भुवत् ॥ ११ ॥ त्वं । अस्य । पारे । रजसः । विऽओमनः । स्वभूतिऽओजाः । अवसे । धृषत्ऽमनः । चकृषे । भूमिं । प्रतिऽमानं । ओजसः । अपः । स्वरिति स्वः । परिऽभूः । एषि । आ । दिवं ॥ १२ ॥ त्वं । भुवः । प्रतिऽमानं । पृथिव्याः । ऋष्वऽवीरस्य । बृहतः । पतिः । भूः । विश्वं । आ । अप्राः । अंतरिक्षं । महिऽत्वा । सत्यं । अद्धा । नकिः । अन्यः । त्वाऽवान् ॥ १३ ॥ न । यस्य । द्यावापृथिवी इति । अनु । व्यचः । न । सिंधवः । रजसः । अंतं । आनशुः । न । उत । स्वऽवृष्टिं । मदे । अस्य । युध्यतः । एकः । अन्यत् । चकृषे । विश्वं । आनुषक् ॥ १४ ॥

आर्चन्नत्र॑ मरुतः॒ सस्मि॑न्नाजौ विश्वे॑ देवासो॑ अमदन्ननु॑ त्वा ।
वृत्रस्य॒ यद्भृ॑ष्टिमता॑ वधेन॒ नि त्वमि॑न्द्र प्रत्यानं॑ जघन्थ॑ ॥ १५ ॥ १४ ॥

॥ ५३ ॥ १-११ सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द—जगती १०-११ त्रिष्टुप्

(५३) न्यू॒३॒॑षु वाचं॒ प्र म॒हे भ॑रामहे॒ गिर॒ इन्द्रा॑य॒ सद॑ने वि॒वस्व॑तः ।
नू चि॒द्धि रत्नं॑ सस॒तामि॒वावि॑द॒न्न दु॑ष्टु॒तिर्द्र॑विणो॒देषु॑ शस्यते ॥ १ ॥
दु॒रो अश्व॑स्य दु॒र इ॑न्द्र॒ गोर॑सि दु॒रो यव॑स्य॒ वसु॑न इ॒नस्पतिः॑ ।
शि॒क्षान॒रः प्र॒दिवो॒ अका॑मकर्शनः॒ सखा॒ सखि॑भ्य॒स्तमि॒दं गृ॑णीमसि ॥२॥
शचीव इन्द्र पुरुकृद्द्युमत्तम॒ तवेदि॒दम॒भित॑श्चेकिते॒ वसु॑ ।
अतः॑ संगृ॒भ्या॑भिभूत॒ आ भ॑र॒ मा त्वा॑य॒तो ज॑रि॒तुः काम॑मूनयीः ॥ ३ ॥

---

आर्च॑न् । अत्र॑ । म॒रुतः॑ । सस्मि॑न् । आ॒जौ । विश्वे॑ । दे॒वासः॑ । अ॒म॒द॒न् । अनु॑ । त्वा॒ । वृ॒त्रस्य॑ । यत् । भृ॒ष्टि॒ऽमता॑ । व॒धेन॑ । नि । त्वं । इ॒न्द्र॒ । प्रति॑ । आ॒नं । ज॒घ॒न्थ॒ ॥ १५ ॥ १४ ॥

नि । ऊं॒ इति॑ । सु । वाच॑ं । प्र । म॒हे । भ॒रा॒म॒हे॒ । गिरः॑ । इंद्रा॑य । सद॑ने । वि॒वस्व॑तः । नु । चि॒त् । हि । रत्न॑ं । स॒स॒तांऽइ॑व । अवि॑दत् । न । दुः॒ऽस्तु॒तिः । द्र॒वि॒णः॒ऽदेषु॑ । श॒स्य॒ते॒ ॥ १ ॥ दु॒रः । अश्व॑स्य । दु॒रः । इ॒न्द्र॒ गोः । अ॒सि॒ । दु॒रः । यव॑स्य । वसु॑नः । इ॒नः । पतिः॑ । शि॒क्षा॒ऽन॒रः । प्र॒ऽदिवः॑ । अका॑मऽकर्शनः । सखा॑ । सखि॑ऽभ्यः । तं । इ॒दं । गृ॒णी॒म॒सि॒ ॥ २ ॥ शची॑ऽवः । इं॒द्र॒ । पु॒रु॒ऽकृ॒त् । द्यु॒म॒त्ऽत॒म॒ । तव॑ । इत् । इ॒दं । अ॒भितः॑ । चे॒कि॒ते॒ । वसु॑ । अतः॑ । सं॒ऽगृ॒भ्य॑ । अ॒भि॒ऽभू॒ते॒ । आ । भ॒र॒ । मा । त्वा॒ऽय॒तः । ज॒रि॒तुः । काम॑ं । ऊ॒न॒यीः॒ ॥ ३ ॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥५॥ १५॥
ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥६॥
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥७॥
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८॥

---

एभिः । द्युऽभिः । सुऽमनाः । एभिः । इंदुऽभिः । निःऽरुंधान । अमतिं । गोभिः
अश्विना । इंद्रेण । दस्युं । दरयंत इंदुऽभिः । युतऽद्वेषसः । सं । इषा । रभेमहि
॥ ४ ॥ सं । इंद्र । राया । सं । इषा । रभेमहि । सं । वाजेभिः । पुरुऽचंद्रैः
अभिद्युऽभिः । सं । देव्या । प्रऽमत्या । वीरऽशुष्मया । गोऽअग्रया। अश्वऽवत्या
रभेमहि ॥ ५ ॥ १५ ॥ ते । त्वा । मदाः । अमदन् । तानि । वृष्ण्या । ते
सोमासः । वृत्रऽहत्येषु । सत्ऽपते । यत् । कारवे । दश । वृत्राणि । अप्रति
बर्हिष्मते । नि । सहस्राणि । बर्हयः ॥ ६ ॥ युधा । युधं । उप । घ । इत् । एषि
धृष्णुऽया । पुरा । पुरं । सं । इदं । हंसि । ओजसा । नम्या । यत । इंद्र । सख्या
पराऽवति निःऽबर्हयः । नमुचिं । नाम । मायिनं ॥ ७ ॥ त्वं । करंजं । उत
पर्णयं । वधीः । तेजिष्ठया । अतिथिऽग्वस्य । वर्तनी । त्वं । शता । वंगृदस्य
अभिनत । पुरः । अनानुऽदः । परिऽसूताः । ऋजिश्वना ॥ ८ ॥ त्वं । एतान्

त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥
य उद्दचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११॥१६॥

॥ ५४ ॥ १-११ सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द-जगती त्रिष्टुप्

(५४) मा नो अस्मिन्मघवन्पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शवसः परीणशे ।
अक्रन्दयो नद्यो३ रोरुवद्वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत ॥१॥
अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि ।
यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभेवृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते ॥ २ ॥

---

जनऽराज्ञः । द्विः । दश अबंधुना । सुऽश्रवसा । उपऽजग्मुषः । षष्टिं । सहस्रा । नवतिं । नव । श्रुतः । नि । चक्रेण । रथ्या । दुःऽपदा । अवृणक् ॥ ९ ॥ त्वं । आविथ । सुऽश्रवसं । तव । ऊतिऽभिः । तव । त्रामऽभिः । इंद्र । तूर्वयाणं । त्वं । अस्मै । कुत्सं । अतिथिऽग्वं । आयुं । महे । राज्ञे । यूने । अरंधनायः । ॥ १० ॥ ये । उत्ऽऋचि । इंद्र । देवऽगोपा । सखायः । ते । शिवऽतमाः । असाम त्वां । स्तोषाम । त्वया । सुवीराः । द्राघीयः । आयुः । प्रऽतरं । दधानाः । ॥ ११ ॥ १६ ॥

मा । नः । अस्मिन् । मघऽवन् । पृतऽसु । अंहसि । नहि ते । अंतः । शवसः । परिऽनशे । अक्रंदयः । नद्यः । रोरुवत् वना । कथा । न । क्षोणीः । भियसा । सं । आरत ॥ १ ॥ अर्च । शक्राय । शाकिने । शचीऽवते । शृण्वंतं । इंद्रं । महयन् । अभि । स्तुहि । यः । धृष्णुना । शवसा । रोदसी इति । उभे इति । वृषा । वृषऽत्वा । वृषभः । निऽऋंजते ॥ २ ॥

अर्चा दिवे बृहते शूष्यं १ वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥३॥
त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शंबरं भिनत् ।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥४॥
नि यद्वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद्व्रन्दिनो रोरुवद्वना ।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि ॥५॥ १७ ॥
त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥ ६ ॥
स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति ।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ॥७॥

---

अर्च । दिवे । बृहते । शूष्यं । वचः । स्वऽक्षत्रं । यस्य । धृषतः । धृषत् । मनः । बृहत्ऽश्रवाः । असुरः । बर्हणा । कृतः । पुरः । हरिऽभ्यां । वृषभः रथः हि । सः ॥ ३ ॥ त्वं । दिवः । बृहतः । सानु । कोपयः । अव । त्मना । धृषता । शंबरं । भिनत् । यत् । मायिनः । व्रंदिनः । मंदिना । धृषत् । शितां । गभस्तिं । अशनिं । पृतन्यसि ॥ ४ ॥ नि । यत् । वृणक्षि । श्वसनस्य । मूर्धनि । शुष्णस्य । चित् । व्रंदिनः । रोरुवत् । वना । प्राचीनेन । मनसा । बर्हणाऽवता । यत् । अद्य । चित् । कृणवः । कः । त्वा । परि ॥ ५ ॥ १७ ॥ त्वं । आविथ । नर्यं । तुर्वशं । यदुं । त्वं तुर्वीतिं । वय्यं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । त्वं । रथं । एतशं । कृत्व्ये । धने त्वं । पुरः नवतिं । दंभयः । नव ॥ ६ ॥ सः । घ । राजा । सत्ऽपतिः । शूशुवत् । जनः । रातऽहव्यः । प्रति । यः । शासं । इन्वति । उक्था वा । यः । अभिऽगृणाति । राधसा । दानुः । अस्मै । उपरा । पिन्वते । दिवः ॥ ७ ॥ असमं । क्षत्रं । असमा ।

असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्रसोमपा अपसा सन्तु नेमे ।
ये तं इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति माहि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥ ८ ॥
तुभ्येदेते बहुला आद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥ ९ ॥
अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥१०॥
स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम् ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन्राये च नः स्वपत्या इषे धाः ॥११॥॥१८॥

॥ ५५ ॥ १–८ सव्य आङ्गिरस ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द–जगती

(५५) दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति ।
भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥१॥

---

मनीषा । प्र । सोमऽपाः । अपसा । संतु । नेमे । ये । ते । इंद्र । ददुषः । वर्धयंति । महि । क्षत्रं । स्थविरं । वृष्ण्यं । च ॥ ८ ॥ तुभ्यं । इत् । एते । बहुलाः । अद्रिऽदुग्धाः । चमूऽसदः । चमसाः । इंद्रऽपानाः । वि । अश्नुहि । तर्पय । कामं । एषां । अथ । मनः । वसुऽदेयाय । कृष्व ॥ ९ ॥ अपां । अतिष्ठत् । धरुणऽह्वरं । तमः । अंतः । वृत्रस्य । जठरेषु । पर्वतः । अभि । ईं । इंद्रः । नद्यः । वव्रिणा । हिताः । विश्वाः । अनुऽस्थाः । प्रवणेषु । जिघ्नते ॥ १० । सः । शेऽवृधं । अधि । धाः । द्युम्नं । अस्मे इति । महि । क्षत्रं । जनाषाट् । इंद्र । तव्यं । रक्ष । च । नः । मघोनः । पाहि । सूरीन् । राये । च । नः । सुऽअपत्ये । इषे । धाः ॥११॥१८॥

दिवः । चित् । अस्य । वरिमा । वि । पप्रथे । इंद्रं । न । मह्ना । पृथिवी । चन । प्रति । भीमः । तुविष्मान् । चर्षणिऽभ्यः । आऽतपः । शिशीते । वज्रं । तेजसे । न । वंसगः ॥ १ ॥

सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः ।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात्स युध्म ओजसा पनस्यते ॥२॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि ।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥ ३ ॥
स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम् ।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥ ४ ॥
स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥५॥१९॥
स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन् ।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ॥ ६ ॥

---

सः । अर्णवः । न । नद्यः समुद्रियः । प्रति । गृभ्णाति । विऽश्रिताः । वरीमऽभिः । इंद्रः । सोमस्य । पीतये । वृषऽयते । सनात् । सः । युध्मः । ओजसा । पनस्यते ॥ २ ॥ त्वं । तं । इंद्र । पर्वतं । न । भोजसे । महः । नृम्णस्य । धर्मणां । इरज्यसि । प्र । वीर्येण । देवता । अति । चेकिते । विश्वस्मै । उग्रः । कर्मणे । पुरःऽहित ॥३॥ सः । इत । वने । नमस्युऽभिः । वचस्यते । चारु । जनेषु । प्रऽब्रुवाणः । इंद्रियं । वृषा । छंदुः । भवति । हर्यतः । वृषा । क्षेमेण । धेनां । मघऽवा । यत् । इन्वति ॥ ४ ॥ सः । इत । महानि । संऽइथानि । मज्मना । कृणोति । युध्मः । ओजसा । जनेभ्यः । अध । चन । श्रत् । दधति । त्विषिऽमते । इंद्राय । वज्रं । निऽघनिघ्नते ॥ ५ ॥ १९ ॥ सः । हि । श्रवस्युः । सदनानि । कृत्रिमा । क्ष्मया । वृधानः । ओजसा । विऽनाशयन् । ज्योतींषि । कृण्वन् । अवृकाणि । यज्यवे । अव । सुऽक्रतु । सर्तवै । अपः । सृजत् । ॥ ६ ॥

दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ॥ ७॥
अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥ ८॥ ॥२०॥

॥ ५६ ॥ १-६ सव्य आङ्गिरस ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ जगती—छन्द ॥

॥ ५६ ॥ एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥ १ ॥
तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥ २ ॥
स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥ ३ ॥
देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥ ४ ॥

---

दानाय । मनः । सोमऽपावन् । अस्तु । ते । अर्वाञ्चा । हरी इति । वन्दनऽश्रुत् । आ । कृधि । यमिष्ठासः । सारथयः । ये । इन्द्र । ते न । त्वा । केताः । आ । दभ्नुवन्ति । भूर्णयः ॥ ७ ॥ अप्रऽक्षितं । वसु । बिभर्षि । हस्तयोः । अषाळ्हं । सहः । तन्वि । श्रुतः । दधे । आऽवृतासः । अवतासः । न । कर्तृऽभिः । तनूषु । ते । क्रतवः । इन्द्र । भूरयः ॥ ८ ॥ २० ॥

एषः । प्र । पूर्वीः । अव । तस्य । चम्रिषः । अत्यः । न । योषां । उत् । अयंस्त । भुर्वणिः । दक्षं । महे । पाययते । हिरण्ययं । रथं । आऽवृत्य । हरिऽयोगं । ऋभ्वसं ॥ १ ॥ तं । गूर्तयः । नेमन्ऽइषः । परीणसः । समुद्रं । न । संऽचरणे । सनिष्यवः । पतिं । दक्षस्य विदथस्य । नु । सहः । गिरिं । न वेनाः । अधि । रोह । तेजसा । ॥ २ ॥ सः । तुर्वणिः । महान् । अरेणु । पौंस्ये । गिरेः । भृष्टिः । न । भ्राजते । तुजा । शवः । येन । शुष्णं । मायिनं । आयसः । मदे । दुध्रः । आभूषु । रमयत् । नि । दामनि ॥ ३ ॥ देवी । यदि । तविषी । त्वाऽवृधा । ऊतये । इन्द्रं । सिसक्ति । उषसं । न । सूर्यः । यः । धृष्णुना । शवसा । बाधते । तमः । इयर्ति । रेणुं । बृहत् । अर्हरिऽस्वनिः ॥ ४ ॥

वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन्वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ ५ ॥
त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः ॥६॥२१॥

॥ ५७ ॥ १-६ सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ जगती छन्दः ॥

॥ ५७ ॥ प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥ २ ॥
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥ ४ ॥

---

वि । यत् । तिरः । धरुणं । अच्युतं । रजः । अतिस्थिपः । दिवः । आतासु । बर्हणा । स्वःऽमीळ्हे । यत् । मदे । इंद्र । हर्ष्या । अहन् । वृत्रं । निः । अपां । औब्जः । अर्णवं । ॥ ५ ॥ त्वं । दिवः । धरुणं । धिषे । ओजसा । पृथिव्याः । इंद्र । सदनेषु । माहिनः । त्वं । सुतस्य । मदे । अरिणाः । अपः । वि । वृत्रस्य । समया । पाष्या । अरुजः ॥ ६ ॥ २१ ॥ प्र । मंहिष्ठाय । बृहते । बृहत्ऽरये । सत्यऽशुष्माय । तवसे । मतिं । भरे । अपांऽइव । प्रवणे । यस्य । दुःऽधरं । राधः । विश्वऽआयु । शवसे । अपऽवृतं ॥१॥ अध । ते । विश्वं । अनु । ह । असत् । इष्टये । आपः । निम्नाःऽइव । सवना । हविष्मतः । यत् । पर्वते । न । संऽअशीत । हर्यतः । इंद्रस्य । वज्रः । श्नथिता । हिरण्ययः ॥२॥ अस्मै । भीमाय । नमसा । सं । अध्वरे । उषः । न । शुभ्रे । आ । भर । पनीयसे । यस्य । धाम । श्रवसे । नाम । इंद्रियं । ज्योतिः । आकारि । हरितः । न । अयसे ॥ ३ ॥ इमे । ते । इंद्र । ते । वयं । पुरुऽस्तुत । ये । त्वा । आऽरभ्य । चरामसि । प्रभुवसो । इति । प्रभुऽवसो । नहि । त्वत् । अन्यः । गिर्वणः । गिरः । सघत् । क्षोणीःऽइव । प्रति । नः । हर्य । तत् । वचः ॥ ४ ॥ भूरि । ते । इंद्र । वीर्यं । तव । स्मसि ।

भूरिं त इन्द्र वीर्यं १ तवं स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन्काममा पृंण।
अनुं ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं चं ते पृथिवी नेम ओजंसे ॥ ५ ॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चकर्तिथ।
अवासृजो निवृंताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहंः ॥६॥२२॥

## ॥ एकादशोऽनुवाकः ॥

॥ ५८ ॥ १-९ नोधा गौतम ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः जगती ॥

(५८) नू चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति॥१॥
आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥ २ ॥
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥ ३ ॥
वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥ ४ ॥

---

अस्य। स्तोतुः। मघऽवन्। कामं। आ। पृण। अनु। ते। द्यौः। बृहती। वीर्यं। ममे। इयं। च। ते। पृथिवी। नेमे। ओजसे॥ ५ ॥ त्वं। तं। इन्द्र। पर्वतं। महां। उरुं। वज्रेण। वज्रिन्। पर्वऽशः। चकर्तिथ। अव। असृजः। निऽवृंताः। सर्तवै। अपः। सत्रा। विश्वं। दधिषे। केवलं। सहः ॥६॥ २२ ॥

नु। चित्। सहःऽजाः। अमृतः। नि। तुंदते। होता। यत्। दूतः। अभवत्। विवस्वतः। वि। साधिष्ठेभिः। पथिऽभिः। रजः। ममे। आ। देवऽताता। हविषा। विवासति॥ १ ॥ आ। स्वं। अद्म। युवमानः। अजरः। तृषु। अविष्यन्। अतसेषु। तिष्ठति। अत्यः। नः। पृष्ठं। प्रुषितस्य। रोचते। दिवः। न। सानु। स्तनयन्। अचिक्रदत् ॥२॥ क्राणाः। रुद्रेभिः। वसुऽभिः। पुरःऽहितः। होता। निऽसत्तः। रयिषाट्। अमर्त्यः। रथः। न। विक्षु। ऋंजसानः। आयुषु। वि आनुषक्। वार्या। देवः। ऋण्वति ॥ ३ ॥ वि। वातऽजूतः। अतसेषु। तिष्ठते। वृथा। जुहूभिः। सृण्या। तुविऽस्वनिः। तृषु। यत्। अग्ने। वनिनः। वृषऽयसे। कृष्णं। ते। एम। रुशत्ऽऊर्मे। अजर ॥ ४ ॥

तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥५॥२३॥
दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥६॥
होतारं सप्त जुह्वो यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥७॥
अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात्पूर्भिरायसीभिः ॥८॥
भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥९॥२४॥

॥ ५९ ॥ १-७ नोधा गौतम ऋषिः ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

(५९) वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययन्थ ॥१॥

---

तपुःऽजम्भः। वने। आ। वातऽचोदितः। यूथे। न। सह्वान्। अव। वाति। वंसगः। अभिऽव्रजन्। अक्षितं। पाजसा। रजः। स्थातुः। चरथं। भयते। पतत्रिणः। ॥५॥२३॥ दधुः। त्वा। भृगवः। मानुषेषु। आ। रयिं। न। चारुं। सुऽहवं। जनेभ्यः। होतारं। अग्ने। अतिथिं। वरेण्यं। मित्रं। न। शेवं। दिव्याय। जन्मने ॥६॥ होतारं। सप्त। जुह्वः। यजिष्ठं। यं। वाघतः। वृणते। अध्वरेषु। अग्निं। विश्वेषां। अरतिं। वसूनां। सपर्यामि। प्रयसा। यामि। रत्नं ॥७॥ अच्छिद्रा। सूनो इति। सहसः। नः। अद्य। स्तोतृऽभ्यः। मित्रऽमहः। शर्म। यच्छ। अग्ने। गृणंतं। अंहसः। उरुष्य। ऊर्जः। नपात्। पूःऽभिः। आयसीभिः ॥८॥ भव। वरूथं। गृणते। विभाऽवः। भव। मघऽवन्। मघवत्ऽभ्यः। शर्म। उरुष्य। अग्ने। अंहसः। गृणंतं। प्रातः। मक्षु। धियाऽवसुः। जगम्यात् ॥९॥२४॥

वयाः। इत्। अग्ने। अग्नयः। ते। अन्ये। त्वे इति। विश्वे। अमृताः। मादयंते। वैश्वानर। नाभिः। असि। क्षितीनां। स्थूणाऽइव। जनान्। उपऽमित्। ययंथ। ॥१॥ मूर्धा। दिवः। नाभिः। अग्निः। पृथिव्याः। अथ। अभवत्। अरतिः।

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥ २ ॥
आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥ ३ ॥
बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो३ न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥ ४ ॥
दिवश्चित्ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ५ ॥
प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत ॥ ६ ॥
वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥ ७ ॥ २५ ॥

॥ ६० ॥ १–५ नोधा गौतम–ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप्–छन्दः ॥

( ६० ) वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम् ।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद्भृगवे मातरिश्वा ॥ १ ॥

---

रोदस्योः । तं । त्वा । देवासः । अजनयंत । देवं । वैश्वानर । ज्योतिः । इत् । आर्याय ॥ २ ॥ आ । सूर्ये । न । रश्मयः । ध्रुवासः । वैश्वानरे । दधिरे । अग्ना । वसूनि । या । पर्वतेषु । ओषधीषु । अप्ऽसु । या । मानुषेषु । असि । तस्य । राजा । ॥३॥ बृहती । इवेति । बृहतीऽइव । सूनवे । रोदसी इति । गिरः । होता । मनुष्यः । न । दक्षः । स्वःऽवते । सत्यऽशुष्माय । पूर्वीः । वैश्वानराय । नृऽतमाय । यह्वीः । ॥४॥ दिवः । चित् । ते । बृहतः । जातऽवेदः । वैश्वानर । प्र । रिरिचे । महिऽत्वं । राजा । कृष्टीनां । असि । मानुषीणां । युधा । देवेभ्यः । वरिवः । चकर्थ ॥ ५ ॥ प्र । नु । महिऽत्व । वृषभस्य । वोचं । यं । पूरवः । वृत्रऽहनं । सचंत । वैश्वानरः । दस्युं । अग्निः जघन्वान् । अधूनोत् । काष्ठाः । अव । शंबरं । भेत् ॥ ६ ॥ वैश्वानरः । महिम्ना । विश्वऽकृष्टिः । भरत्ऽवाजेषु । यजतः । विभाऽवा । शातऽवनेये । शतिनीभिः । अग्निः । पुरुऽनीथे । जरते । सूनृताऽवान् ॥ ७ ॥ २५ ॥

वह्निं । यशसं । विदथस्य । केतुं । सुप्रऽअव्यं । दूत । सद्यःऽअर्थं । द्विऽजन्मानं । रयिंऽइव । प्रऽशस्तं । रातिं । भरत् । भृगवे । मातरिश्वा ॥ १ ॥

अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः ।
दिवश्चित्पूर्वो न्यसादि होतापृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः ॥ २ ॥
तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत्सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥ ३ ॥
उशिक्पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ॥ ४ ॥
तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।
आशुं न वाजम्भरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ५ ॥ २६ ॥

॥ ६१ ॥ १-१६ नोधा गौतम-ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

( ६१ ) अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥
अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥

---

अस्य । शासुः । उभयासः । सचन्ते । हविष्मन्तः । उशिजः । ये । च । मर्ताः । दिवः । चित् । पूर्वः । नि । असादि । होता । आऽपृच्छ्यः । विश्पतिः । विक्षु । वेधाः ॥ २ ॥ तं । नव्यसी । हृदः । आ । जायमानं । अस्मत् । सुऽकीर्तिः । मधुऽजिह्वं । अश्याः । यं । ऋत्विजः । वृजने । मानुषासः । प्रयस्वन्तः । आयवः । जीजनन्त ॥ ३ ॥ उशिक् । पावकः । वसुः मानुषेषु । वरेण्यः । होता । अधायि । विक्षु । दमूनाः । गृहऽपतिः । दमे । आ । अग्निः । भुवत् । रयिऽपतिः । रयीणां ॥ ४ ॥ तं । त्वा । वयं । पतिं । अग्ने । रयीणां । प्र । शंसामः । मतिऽभिः । गोतमासः । आशुं । न । वाजम्ऽभरं । मर्जयन्तः । प्रातः । मक्षु । धियाऽवसुः । जगम्यात् ॥ ५ ॥ २६ ॥

अस्मै । इत् । ऊँ इति । प्र । तवसे । तुराय । प्रयः । न । हर्मि । स्तोमं । माहिनाय । ऋचीषमाय अध्रिऽगवे । ओहं । इन्द्राय । ब्रह्माणि । राततमा ॥ १ ॥ अस्मै । इत् । ऊँ इति । प्रयःऽइव । प्र यंसि । भरामि । आङ्गूषं । बाधे । सुऽवृक्ति । इन्द्राय । हृदा । मनसा । मनीषा । प्रत्नाय । पत्ये । धियः । मर्जयन्त ॥ २ ॥ अस्मै । इत् । ऊँ इति । त्यं । उपऽमं । स्वःऽसां । भरामि । आङ्गूषं । [illegible] । मंहिष्ठं । अच्छोक्तिऽभिः । मतीनां । सुवृक्तिऽभिः । सूरिं ।

अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥ ३ ॥
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ ४ ॥
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५ ॥ २७ ॥
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१रणाय ।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥ ६ ॥
अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥
अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८ ॥
अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ९ ॥

---

ववृधध्यै ॥ ३ ॥ अस्मै । इत् । ऊं इति स्तोमम् । सम् । हिनोमि । रथम् । न । तष्टाऽइव । तत्ऽसिनाय । गिरः । च । गिरः । च । गिर्वाहसे । सुऽवृक्ति । इन्द्राय । विश्वमऽइन्वम् । मेधिराय ॥ ४ ॥ अस्मै । इत् । ऊं इति । सप्तिम्ऽइव । श्रवस्या । इन्द्राय । अर्कम् । जुह्वा । सम् । अञ्जे । वीरम् । दानऽओकसम् । वन्दध्यै । पुराम् । गूर्तऽश्रवसम् । दर्माणम् ॥ ५ ॥ २७ ॥ अस्मै । इत् । ऊं इति । त्वष्टा । तक्षत् । वज्रम् । स्वपःऽतमम् । स्वर्यम् । रणाय । वृत्रस्य । चित् । विदत् । येन । मर्म । तुजन् । ईशानः । तुजता । कियेधाः ॥ ६ ॥ अस्य । इत् । ऊं इति । मातुः । सवनेषु । सद्यः । महः । पितुम् । पपिऽवान् । चारु । अन्ना । मुषायत् । विष्णुः । पचतम् । सहीयान् । विध्यत् । वराहम् । तिरः । अद्रिम् । अस्ता ॥ ७ ॥ अस्मै । इत् । ऊं इति । ग्नाः । चित् । देवऽपत्नीः । इन्द्राय । अर्कम् । अहिऽहत्ये । ऊवुरित्यूवुः । परि । द्यावापृथिवी इति । जभ्रे । उर्वी इति । न । अस्य । ते इति । महिमानम् । परि । स्तइतिस्तः ॥ ८ ॥ अस्य इत् । एव । प्र । रिरिचे । महिऽत्वम् । दिवः । पृथिव्याः । परि । अन्तरिक्षात् । स्वऽराट् । इन्द्रः । दमे । आ । विश्वऽगूर्तः । सुऽअरिः अमत्रः । ववक्षे । रणाय ॥ ९ ॥

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १० ॥ २८ ॥
अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥
अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥ १४ ॥
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥ २९ ॥

---

अस्य । इत् । एव । शवसा । शुषन्तम् । वि । वृश्चत् । वज्रेण । वृत्रम् । इन्द्रः । गाः ।
व्राणाः । अवनीः । अमुञ्चत् । अभि । श्रवः । दावने । सऽचेताः ॥ १० ॥ २८ ॥
अस्य । इत् । ऊँ इति । त्वेषसा । रन्त । सिन्धवः । परि । यत् । वज्रेण । सीम् ।
अयच्छत् । ईशानऽकृत् । दाशुषे । दशस्यन् । तुर्वीतये । गाधम् । तुर्वणिः । करिति
कः ॥ ११ ॥ अस्मै । इत् । ऊँ इति । प्र । भर । तूतुजानः । वृत्राय । वज्रम् ।
ईशानः । कियेधाः । गोः । न । पर्व वि । रद । तिरश्चा । इष्यन् अर्णांसि अपाम् ।
चरध्यै ॥ १२ ॥ अस्य । इत् । ऊँ इति प्र । ब्रूहि । पूर्व्याणि । तुरस्य । कर्माणि ।
नव्यः । उक्थैः । युधे । यत् इष्णानः । आयुधानि । ऋघायमाणः । निःऽरिणाति ।
शत्रून् ॥१३॥ अस्य । इत् । ऊँ । इति । भिया । गिरयः । च । दृळ्हाः । द्यावा । च ।
भूम । जनुषः । तुजेते । इति । उपो इति । वेनस्य । जोगुवानः । ओणिम् । सद्यः ।
भुवत् । वीर्याय । नोधाः ॥१४॥ अस्मै । इत् । ऊँ । इति । त्यत् । अनु । दायि ।
एषाम् । एकः । यत् । वव्ने । भूरेः । ईशानः । प्र । एतशम् । सूर्ये । पस्पृधानम् ।
सौवश्व्ये । सुस्विम् । आवत् । इन्द्रः ॥१५॥ एव । ते । हारिऽयोजन । सुऽवृक्ति ।
। ब्रह्माणि । गोतमासः । अक्रन् । आ । एषु । विश्वऽपेशसम् । धियम् । धाः ।
[illegible] । मक्षु । धियाऽवसु । जगम्यात् ॥ १६ ॥ २९ ॥

## ॥ अथ प्रथमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ ६२ ॥ गौतमो नोधा ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

(६२) प्र मन्महे शवसानायं शूषमाँगूषं गिर्वणसे अंगिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १ ॥
प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥ २ ॥
इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तनयाय धासिम् ।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ॥ ३ ॥
स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३नवग्वैः ।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥ ४ ॥

---

## ॥ अथ प्रथमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

प्र । मन्महे । शवसानायं । शूषं । आंगूषं । गिर्वणसे । अंगिरस्वत् । सुवृक्तिऽभिः । स्तुवते । ऋग्मियायं । अर्चाम । अर्कं । नरे । विऽश्रुताय ॥ १ ॥ प्र । वः । महे । महिं । नमः भरध्वं । आंगूष्यं । शवसानायं । सामं । येनं । नः । पूर्वे । पितरः । पदऽज्ञाः । अर्चंतः । अंगिरसः । गाः । अविंदन ॥ २ ॥ इंद्रस्य । अंगिरसां । च । इष्टौ । विदत् । सरमां । तनयाय । धासिं । बृहस्पतिः । भिनत् । अद्रिं । विदत् । गाः । सं । उस्रियाभिः । वावशंत । नरः ॥ ३ ॥ सः । सुऽस्तुभा । सः । स्तुभा । सप्त । विप्रैः । स्वरेण । अद्रिं । स्वर्यः । नवऽग्वैः । सरण्युऽभिः । फलिऽगं । इंद्र । शक्र । वलं । रवेण । दरयः । दशऽग्वैः ॥ ४ ॥

गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ॥ ५ ॥ १ ॥

तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः ॥ ६ ॥
द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसाः ॥ ७ ॥
सनाद्दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥ ८ ॥
सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥ ९ ॥

---

गृणानः । अंगिरःऽभिः । दस्म । वि । वः । उषसा । सूर्येण । गोभिः । अंधः । वि । भूम्याः । अप्रथयः । इंद्र । सानुं । दिवः । रजः । उपरं । अस्तभायः ॥ ५ ॥ १ ॥ तत् । ऊं इति । प्रयक्षऽतमं । अस्य । कर्म । दस्मस्य । चारुऽतमं । अस्ति दंसः । उपऽह्वरे । यत् । उपराः । अपिन्वत् । मधुऽअर्णसः । नद्यः । चतस्रः ॥ ६ ॥ द्विता । वि । वव्रे । सनऽजा । सनीळे इति सऽनीळे अयास्यः । स्तवमानेभिः । अर्कैः । भगः । न । मेने इति । परमे । विऽओमन् । अधारयत् । रोदसी इति । सुऽदंसाः ॥ ७ ॥ सनात् । दिवं । परि । भूम । विरूपे इति विऽरूपे । पुनःऽभुवा । युवती इति । स्वेभिः । एवैः । कृष्णेभिः । अक्ता । उषाः । रुशत्ऽभिः । वपुःऽभिः । आ । चरतः । अन्याऽअन्या ॥ ८ ॥ सनेमि । सख्यं । सुऽअपस्यमानः । सूनुः । दाधार । शवसा । सुऽदंसाः । आमासु । चित् । दधिषे । पक्वं । अंतरिति । पयः । कृष्णासु । रुशत् । रोहिणीषु ॥ ९ ॥

सनात्सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।
पुरु सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥ १० ॥ २ ॥

सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषाः ॥ ११ ॥
सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥ १२ ॥
सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद्ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १३ ॥३ ॥

॥ ६३ ॥ गौतमो नोधा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

(६३) त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् ॥ १ ॥

---

सनात् । सऽनीळाः । अवनीः । अवाताः । व्रता । रक्षंते । अमृताः । सहःऽभिः । पुरु । सहस्रा । जनयः । न । पत्नीः । दुवस्यंति । स्वसारः । अह्रयाणं ॥ १० ॥ २ ॥

सनाऽयुवः । नमसा । नव्यः । अर्कैः । वसुऽयवः । मतयः । दस्म । दद्रुः । पतिं । न । पत्नीः । उशतीः । उशंतं । स्पृशंति । त्वा । शवसाऽवन् । मनीषाः ॥ ११ ॥ सनात् । एव । तव । रायः । गभस्तौ । न । क्षीयंते । न । उप । दस्यंति । दस्म । द्युऽमान् । असि । क्रतुऽमान् । इंद्र । धीरः । शिक्ष । शचीऽवः । तव । नः । शचीभिः ॥ १२ ॥ सनाऽयते । गोतमः । इंद्र । नव्यं । अतक्षत् । ब्रह्म । हरिऽयोजनाय । सुऽनीथाय । नः । शवसान । नोधाः । प्रातः । मक्षु । धियाऽवसुः । जगम्यात् ॥ १३ ॥ ३ ॥

त्वं । महान् । इंद्र । यः । ह । शुष्मैः । द्यावा । जज्ञानः । पृथिवी इति । अमे । धाः । यत् । ह । ते । विश्वा । गिरयः । चित् । अभ्वा । भिया । दृळ्हासः । किरणाः । न । एजन् ॥ १ ॥

आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात् ।
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥ २ ॥
त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट् ।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ ३ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद्वज्रिन्वृषकर्मन्नुभ्नाः ।
यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥ ४ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन्दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
व्य१स्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ॥ ५ ॥ ४ ॥
त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६ ॥

---

आ । यत् । हरी इति । इंद्र । विऽव्रता । वेः । आ । ते । वज्रं । जरिता । बाह्वोः । धात् । येन । अविहर्यतक्रतो इत्यविहर्यतऽक्रतो । अमित्रान् । पुरः । इष्णासि । पुरुऽहूत । पूर्वीः ॥ २ ॥ त्वं । सत्यः । इंद्र । धृष्णुः । एतान् । त्वं । ऋभुक्षाः । नर्यः । त्वं । षाट् । त्वं । शुष्णं । वृजने । पृक्षे । आणौ । यूने । कुत्साय । द्युऽमते । सचा । अहन् ॥ ३ ॥ त्वं । ह । त्यत् । इंद्र । चोदीः । सखा । वृत्रं । यत् । वज्रिन् । वृषऽकर्मन् । उभ्नाः । यत् । ह । शूर । वृषऽमनः । पराचैः । वि । दस्यून् । योनौ । अकृतः । वृथाषाट् ॥ ४ ॥ त्वं । ह । त्यत् । इंद्र अरिषण्यन् । दृळ्हस्य । चित् । मर्ताना । अजुष्टौ । वि । अस्मत् । आ । काष्ठाः । अर्वते । वः । घनाऽइव । वज्रिन् । श्नथिहि । अमित्रान् ॥ ५ ॥ ४ ॥ त्वां । ह । त्यत् । इंद्र । अर्णऽसातौ । स्वःऽमीळ्हे । नरः । आजा । हवंते । तव । स्वधाऽवः । इयं । आ । सऽमर्ये । ऊतिः । वाजेषु । अतसाय्या । भूत् ॥ ६ ॥

त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन्पुरो वज्रिन्पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत्सुदासे वृथा वर्गंहो राजन्वरिवः पूरवे कः ॥ ७ ॥
त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥ ८ ॥
अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥ ५ ॥

॥ ६४ ॥ गौतमो नोधा ऋषि ॥ मरुतो देवता ॥ पञ्चदशी त्रिष्टुप्। शिष्टा जगत्यः ॥

(६४) वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥ १ ॥

---

त्वं । ह । त्यत् । इंद्र । सप्त । युध्यंन् । पुरः । वज्रिन् । पुरुऽकुत्साय । दर्दरिति दर्दः । बर्हिः । न । यत् । सुऽदासे । वृथा । वर्क् । अंहोः । राजन् । वरिवः । पूरवे । करिति कः ॥ ७ ॥ त्वं । त्या । नः । इंद्र । देव । चित्रां । इषं । आपः । न । पीपयः । परिऽज्मन् । यया । शूर । प्रति । अस्मभ्यं । यंसि । त्मनं । ऊर्जं । न । विश्वधं । क्षरध्यै ॥ ८ ॥ अकारि । ते । इंद्र । गोतमेभिः । ब्रह्माणि । आऽउक्ता । नमसा । हरिऽभ्यां । सुऽपेशसं । वाजं । आ । भर । नः । प्रातः । मक्षु । धियाऽवसुः । जगम्यात् ॥ ९ ॥ ५ ॥

वृष्णे । शर्धाय । सुऽमखाय । वेधसे । नोधः । सुऽवृक्तिं । प्र । भर । मरुत्ऽभ्यः । अपः । न । धीरः । मनसा । सुऽहस्त्यः । गिरः । सं । अंजे । विदथेषु । आऽभुवः ॥ १ ॥

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥ २ ॥
युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥ ३ ॥
चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥ ४ ॥
ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥ ५ ॥ ६ ॥

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥ ६ ॥

---

ते । जज्ञिरे । दिवः । ऋष्वासः । उक्षणः । रुद्रस्य । मर्याः । असुराः । अरेपसः । पावकासः । शुचयः । सूर्याःऽइव । सत्वानः । न । द्रप्सिनः । घोरऽवर्पसः ॥ २ ॥ युवानः । रुद्राः । अजराः । अभोक्ऽहनः । ववक्षुः । अध्रिऽगावः । पर्वताःऽइव । दृळ्हा । चित् । विश्वा । भुवनानि । पार्थिवा । प्र । च्यवयंति । दिव्यानि । मज्मना ॥ ३ ॥ चित्रैः । अंजिऽभिः । वपुषे । वि । अंजते । वक्षःऽसु । रुक्मान् । अधि । येतिरे । शुभे । अंसेषु । एषां । नि । मिमृक्षुः । ऋष्टयः । साकं । जज्ञिरे । स्वधया । दिवः । नरः ॥ ४ ॥ ईशानऽकृतः । धुनयः । रिशादसः । वातान् । विऽद्युतः । तविषीभिः । अक्रत । दुहंति । ऊधः । दिव्यानि । धूतयः । भूमिं । पिन्वंति । पयसा । परिऽज्रयः ॥ ५ ॥ ६ ॥ पिन्वंति । अपः । मरुतः । सुऽदानवः । पयः । घृतऽवत् । विदथेषु । आऽभुवः । अत्यं । न । मिहे । वि । नयंति । वाजिनं । उत्सं । दुहंति । स्तनयंतं । अक्षितं ॥ ६ ॥

महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥ ७ ॥
सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥ ८ ॥
रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ॥ ९ ॥
विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ॥ १० ॥ ७ ॥
हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ११ ॥

---

महिषासः । मायिनः । चित्रऽभानवः । गिरयः । न । स्वऽतवसः । रघुऽस्यदः । मृगाःऽइव । हस्तिनः । खादथ । वना । यत् । आरुणीषु । तविषीः । अयुग्ध्वं ॥ ७ ॥ सिंहाःऽइव । नानदति । प्रऽचेतसः । पिशाःऽइव । सुऽपिशः । विश्वऽवेदसः । क्षपः । जिन्वंतः । पृषतीभिः । ऋष्टिऽभिः । सं । इत् । सऽबाधः । शवसा । अहिऽमन्यवः ॥ ८ ॥ रोदसी इति । आ । वदत । गणऽश्रियः । नृऽसाचः । शूराः । शवसा । अहिऽमन्यवः । आ । वंधुरेषु । अमतिः । न । दर्शता । विऽद्युत् । न । तस्थौ । मरुतः । रथेषु । वः ॥ ९ ॥ विश्वऽवेदसः । रयिऽभिः । संऽओकसः । संऽमिश्लासः । तविषीभिः । विऽरप्शिनः । अस्तारः । इषुं । दधिरे । गभस्त्योः । अनंतऽशुष्माः । वृषऽखादयः । नरः ॥ १० ॥ हिरण्ययेभिः । पविऽभिः । पयःऽवृधः । उत् । जिघ्नंते । आऽपथ्यः । न । पर्वतान् । मखाः । अयासः । स्वऽसृतः । ध्रुवऽच्युतः । दुध्रऽकृतः । मरुतः । भ्राजत्ऽऋष्टयः ॥ ११ ॥

घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्यं सूनुं हवसां गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥ १२ ॥
प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ वं ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिराप्रच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥ १३ ॥
चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥ १४ ॥
नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १५ ॥८॥ ११ ॥

---

घृषुं । पावकं । वनिनं । विऽचर्षणिं । रुद्रस्यं । सूनुं । हवसा । गृणीमसि । रजःऽतुरं । तवसं । मारुतं । गणं । ऋजीषिणं । वृषणं । सश्चत । श्रिये ॥ १२ ॥ प्र । नु । सः । मर्तः । शवसा । जनान् । अति । तस्थौ । वः । ऊती । मरुतः । यं । आवत । अर्वत्ऽभिः । वाजं । भरते । धना । नृऽभिः । आऽपृच्छ्यं । क्रतुं । आ । क्षेति । पुष्यति ॥ १३ ॥ चर्कृत्यं । मरुतः । पृत्ऽसु । दुस्तरं । द्युऽमन्तं । शुष्मं । मघवत्ऽसु । धत्तन । धनऽस्पृतं । उक्थ्यं । विश्वऽचर्षणिं । तोकं । पुष्येम । तनयं । शतं । हिमाः ॥ १४ ॥ नु । स्थिरं । मरुतः । वीरऽवन्तं । ऋतिऽसहं । रयिं । अस्मासु । धत्त । सहस्रिणं । शतिनं । शूशुऽवांसं । प्रातः । मक्षु । धियाऽवसुः । जगम्यात् ॥ १५ ॥ ८ ॥ ११ ॥

## ॥ द्वादशोऽनुवाकः ॥

॥ ६५ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ६५ ॥ पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम् ।
सजोषा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन्विश्वे यजत्राः ॥ १ ॥
ऋतस्य देवा अनु व्रता गुर्भुवत्परिष्टिर्द्यौर्न भूम ।
वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्विमृतस्य योना गर्भे सुजातम् ॥ २ ॥
पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शंभु ।
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ॥ ३ ॥
जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति ।
यद्वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः ॥ ४ ॥
श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत् ।
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः ॥ ५ ॥ ९ ॥

---

पश्वा । न । तायुं । गुहा । चतंतं । नमः । युजानं । नमः । वहंतं । सऽजोषाः । धीराः । पदैः । अनु । ग्मन् । उप । त्वा । सीदन् । विश्वे । यजत्राः ॥ १ ॥ ऋतस्य । देवाः । अनु । व्रता । गुः । भुवत् । परिष्टिः । द्यौः । न । भूम । वर्धंति । ईं । आपः । पन्वा । सुऽशिश्विं । ऋतस्य । योना । गर्भे । सुऽजातं ॥ २ ॥ पुष्टिः । न । रण्वा । क्षितिः । न । पृथ्वी । गिरिः । न । भुज्म । क्षोदः । न । शंऽभु । अत्यः । न । अज्मन् । सर्गऽप्रतक्तः । सिंधुः । न । क्षोदः । कः । ईं । वराते ॥ ३ ॥ जामिः । सिंधूनां । भ्राताऽइव । स्वस्रां । इभ्यान् । न । राजा । वनानि । अत्ति । यत् । वातऽजूतः । वना । वि । अस्थात् । अग्निः । ह । दाति । रोम । पृथिव्याः ॥ ४ ॥ श्वसिति । अप्ऽसु । हंसः । न । सीदन् । क्रत्वा । चेतिष्ठः । विशां । उषःऽभुत् । सोमः । न । वेधाः । ऋतऽप्रजातः । पशुः । न । शिश्वा । विऽभुः । दूरेऽभाः ॥ ५ ॥ ९ ॥

॥ ६६ ॥ शक्तिपुत्र पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ६६ ॥ रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः ।
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥ १ ॥
दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम् ।
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति ॥ २ ॥
दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ।
चित्रो यदभ्राट् छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥ ३ ॥
सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका ।
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥ ४ ॥
तं वश्चराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्धम् ।
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्वर्दृशीके ॥ ५ ॥ १० ॥

---

रयिः । न । चित्रा । सूरः । न । संऽदृक् । आयुः । न । प्राणः । नित्यः । न । सूनुः ।
तक्वा । न । भूर्णिः । वना । सिसक्ति । पयः । न । धेनुः । शुचिः । विभाऽवा ॥ १ ॥
दाधार । क्षेमं । ओकः । न । रण्वः । यवः । न । पक्वः । जेता । जनानां । ऋषिः । न ।
स्तुभ्वा । विक्षु । प्रऽशस्तः । वाजी । न । प्रीतः । वयः । दधाति ॥ २ ॥ दुरोकऽशोचिः ।
क्रतुः । न । नित्यः । जायाऽइव । योनौ । अरं । विश्वस्मै । चित्रः । यत् । अभ्राट् ।
श्वेतः । न । विक्षु । रथः । न । रुक्मी । त्वेषः । समत्ऽसु ॥ ३ ॥ सेनाऽइव ।
सृष्टा । अमं । दधाति । अस्तुः । न । दिद्युत् । त्वेषऽप्रतीका । यमः । ह । जातः । यमः ।
जनिऽत्वं । जारः । कनीनां । पतिः । जनीनां ॥ ४ ॥ तं । वः । चराथा । वयं ।
वसत्या । अस्तं । न । गावः । नक्षन्ते । इद्धं । सिन्धुः । न । क्षोदः । प्र । नीचीः ।
ऐनोत् । नवन्त । गावः । स्वः । दृशीके ॥ ५ ॥ १० ॥

॥ ६७ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ६७ ॥ वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम् ।
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥ १ ॥
हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद्गुहा निषीदन् ।
विदन्तीमत्र नरो धियंधा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥ २ ॥
अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ।
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥ ३ ॥
य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य ।
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥ ४ ॥
वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः ।
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ॥ ५ ॥ ११ ॥

---

वनेषु । जायुः । मर्तेषु । मित्रः । वृणीते । श्रुष्टिं । राजाऽइव । अजुर्यं । क्षेमः । न । साधुः । क्रतुः । न । भद्रः । भुवत् । सुऽआधीः । होता । हव्यऽवाट् ॥ १ ॥ हस्ते । दधानः । नृम्णा । विश्वानि । अमे । देवान् । धात् । गुहा । निऽसीदन् । विदंति । ईं । अत्र । नरः । धियंऽधाः । हृदा । यत् । तष्टान् । मंत्रान् । अशंसन् ॥ २ ॥ अजः । न । क्षां । दाधार । पृथिवीं । तस्तंभ । द्यां । मंत्रेभिः । सत्यैः । प्रिया । पदानि । पश्वः । नि । पाहि । विश्वऽआयुः । अग्ने । गुहा । गुहं । गाः ॥ ३ ॥ यः । ईं । चिकेत । गुहा । भवंतं । आ । यः । ससाद । धारां । ऋतस्य । वि । ये । चृतंति । ऋता । सपंतः । आत् । इत् । वसूनि । प्र । ववाच । अस्मै ॥ ४ ॥ वि । यः । वीरुत्ऽसु । रोधत् । महिऽत्वा । उत । प्रऽजाः । उत । प्रऽसूषु । अंतरिति । चित्तिः । अपां । दमे । विश्वऽआयुः । सद्मऽइव । धीराः । संऽमाय । चक्रुः ॥ ५ ॥ ११ ॥

॥ ६८ ॥ शाक्तिपुत्र पराशर ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ६८ ॥ श्रीणन्नुप स्थाद्दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून्व्यूर्णोत् ।
परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद्देवो देवानां महित्वा ॥ १ ॥
आदित्ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यद्देव जीवो जनिष्ठाः ।
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ॥ २ ॥
ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ।
यस्तुभ्यं दाशाद्यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान्रयिं दयस्व ॥ ३ ॥
होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणां ।
इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥ ४ ॥
पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः ।
वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ॥ ५ ॥ १२ ॥

---

श्रीणन् । उप । स्थात् । दिवं । भुरण्युः । स्थातुः । चरथं । अक्तून् । वि । ऊर्णोत् । परि । यत् । एषां । एकः । विश्वेषां । भुवत् । देवः । देवानां । महिऽत्वा ॥ १ ॥ आत् । इत् । ते । विश्वे । क्रतुं । जुषंत । शुष्कात् । यत् । देव । जीवः । जनिष्ठाः । भजंत । विश्वे । देवऽत्वं । नाम । ऋतं । सपंतः । अमृतं । एवैः ॥ २ ॥ ऋतस्य । प्रेषाः । ऋतस्य । धीतिः । विश्वऽआयुः । विश्वे । अपांसि । चक्रुः । यः । तुभ्यं । दाशात् । यः । वा । ते । शिक्षात् । तस्मै । चिकित्वान् । रयिं । दयस्व ॥ ३ ॥ होता । निऽसत्तः । मनोः । अपत्ये । सः । चित् । नु । आसां । पतिः । रयीणां । इच्छंत । रेतः । मिथः । तनूषु । सं । जानत । स्वैः । दक्षैः । अमूराः ॥ ४ ॥ पितुः । न । पुत्राः । क्रतुं । जुषंत । श्रोषन् । ये । अस्य । शासं । तुरासः । वि । रायः । और्णोत् । दुरः । पुरुऽक्षुः । पिपेश । नाकं । स्तृऽभिः । दमूनाः ॥ ५ ॥ १२ ॥

॥ ६९ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥६९॥ शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः ।
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥ १ ॥
वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम् ।
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥ २ ॥
पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत् ।
विशो यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः ॥ ३ ॥
नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ ।
तत्तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि ॥ ४ ॥
उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ।
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवन्त विश्वे स्वर्दृशीके ॥ ५ ॥ १३ ॥

---

शुक्रः । शुशुक्वान् । उषः । न । जारः । पप्रा । समीची इति सम्ऽईची । दिवः । न । ज्योतिः । परि । प्रऽजातः । क्रत्वा । बभूथ । भुवः । देवानां । पिता । पुत्रः । सन् ॥ १ ॥ वेधा । अदृप्तः । अग्निः । विऽजानन् । ऊधः । न । गोनां । स्वाद्म । पितूनां । जने । न । शेवः । आऽहूर्यः । सन् । मध्ये । निऽसत्तः । रण्वः । दुरोणे ॥ २ ॥ पुत्रः । न । जातः । रण्वः । दुरोणे । वाजी । न । प्रीतः । विशः । वि । तारीत् । विशः । यत् । अह्वे । नृऽभिः । सऽनीळाः । अग्निः । देवऽत्वा । विश्वानि । अश्याः ॥ ३ ॥ नकिः । ते । एता । व्रता । मिनंति । नृऽभ्यः । यत् । एभ्यः । श्रुष्टिं । चकर्थ । तत् । तु । ते । दंसः । यत् । अहन् । समानैः । नृऽभिः । यत् । युक्तः । विवेः । रपांसि ॥ ४ ॥ उषः । न । जारः । विभाऽवा । उस्रः । संज्ञातऽरूपः । चिकेतत् । अस्मै । त्मना । वहंत । दुरः । वि । ऋण्वन् । नवंत । विश्वे । स्वः । दृशीके ॥५॥१३॥

॥ ७० ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ७० ॥ वनेम॑ पू॒र्वीर॒र्यो म॑नी॒षा अ॒ग्निः सु॒शोको॒ विश्वा॑न्यश्याः ।
आ दै॒व्यानि व्र॒ता चि॑कि॒त्वाना मानु॑षस्य॒ जन॑स्य॒ जन्म॑ ॥ १ ॥
गर्भो॒ यो अ॒पां गर्भो॒ वना॑नां॒ गर्भ॑श्च स्था॒तां गर्भ॑श्च॒रथा॑म् ।
अद्रौ॑ चिदस्मा अ॒न्तर्दु॑रो॒णे वि॒शां न विश्वो॑ अ॒मृतः॑ स्वा॒धीः ॥ २ ॥
स हि क्ष॒पावा॑ अ॒ग्नी र॑यी॒णां दाश॒द्यो अ॑स्मा॒ अरं॑ सू॒क्तैः ।
ए॒ता चि॑कित्वो॒ भूमा॒ नि पा॑हि दे॒वानां॒ जन्म॒ मर्ता॑श्च वि॒द्वान् ॥ ३ ॥
व॒र्धान्यं पू॒र्वीः क्ष॒पो विरू॑पाः स्था॒तुश्च॒ रथ॑मृ॒तप्र॑वीतम् ।
अरा॑धि॒ होता॒ स्व१॒॑र्निष॑त्तः कृ॒ण्वन्विश्वा॒न्यपां॑सि स॒त्या ॥ ४ ॥
गोषु॒ प्रश॑स्तिं॒ वने॑षु धिषे॒ भर॑न्त॒ विश्वे॑ ब॒लिं स्व॑र्णः ।
वि त्वा॒ नरः॑ पुरु॒त्रा स॑पर्यन्पि॒तुर्न जिव्रे॒र्वि वेदो॑ भरन्त ॥ ५ ॥
सा॒धुर्न गृ॒ध्नुरस्ते॑व॒ शूरो॒ याते॑व भी॒मस्त्वे॒षः स॒मत्सु॑ ॥ ६ ॥ १४ ॥

---

वनेम॑ । पू॒र्वीः । अ॒र्यः । म॒नी॒षा । अ॒ग्निः । सु॒ऽशोकः॑ । विश्वा॑नि । अ॒श्याः॒ । आ । दैव्या॑नि । व्र॒ता । चि॒कि॒त्वान् । आ । मानु॑षस्य । जन॑स्य । जन्म॑ ॥ १ ॥ गर्भः॑ । यः । अ॒पां । गर्भः॑ । वना॑नां । गर्भः॑ । च॒ । स्था॒तां । गर्भः॑ । च॒रथा॑म् । अद्रौ॑ । चि॒त् । अ॒स्मै॒ । अ॒न्तः । दु॒रो॒णे । वि॒शां । न । विश्वः॑ । अ॒मृतः॑ । सु॒ऽआ॒धीः ॥ २ ॥ सः । हि । क्ष॒पाऽवा॑न् । अ॒ग्निः । र॒यी॒णां । दाश॑त् । यः । अ॒स्मै॒ । अर॑म् । सु॒ऽउ॒क्तैः । ए॒ता । चि॒कि॒त्वः॒ । भूम॑ । नि । पा॒हि॒ । दे॒वानां॑ । जन्म॑ । मर्ता॑न् । च॒ । वि॒द्वान् ॥ ३ ॥ व॒र्धान् । यं । पू॒र्वीः । क्ष॒पः । विऽरू॑पाः । स्था॒तुः । च॒ । रथ॑म् । ऋ॒तऽप्र॑वीतं । अरा॑धि । होता॑ । स्वः॑ । निऽस॑त्तः । कृ॒ण्वन् । विश्वा॑नि । अपां॑सि । स॒त्या ॥ ४ ॥ गोषु॑ । प्रऽश॑स्तिं । वने॑षु । धि॒षे॒ । भर॑न्त । विश्वे॑ । ब॒लिम् । स्वः॑ । नः॒ । वि । त्वा॒ । नरः॑ । पु॒रु॒ऽत्रा । स॒प॒र्य॒न् । पि॒तुः । न । जिव्रेः॑ । वि । वेदः॑ । भर॑न्त ॥ ५ ॥ सा॒धुः । न । गृ॒ध्नुः । अस्ता॑ऽइव । शूरः॑ । याता॑ऽइव । भी॒मः । त्वे॒षः । स॒मत्ऽसु॑ ॥ ६ ॥ १४ ॥

॥ ७१ ॥ शक्तिपुत्र पराशर ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्द ॥

॥ ७१ ॥ उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः ।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥ १ ॥
वीळु चिद्दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण ।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥ २ ॥
दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः ।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥
मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय ॥ ४ ॥
महे यत्पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत्पृशन्यश्चिकित्वान् ।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥ ५ ॥ १५ ॥

---

उप । प्र । जिन्वन् । उशतीः । उशन्तं । पतिं । न । नित्यं । जनयः । सऽनीळाः । स्वसारः । श्यावीं । अरुषीं । अजुष्रन् । चित्रं । उच्छन्तीं । उषसं । न । गावः ॥ १ ॥ वीळु । चित् । दृळ्हा । पितरः । नः । उक्थैः । अद्रिं । रुजन् । अंगिरसः । रवेण । चक्रुः । दिवः । बृहतः । गातुं । अस्मे इति । अहरिति । स्वः । विविदुः । केतुं । उस्राः ॥ २ ॥ दधन् । ऋतं । धनयन् । अस्य । धीतिं । आत् । इत् । अर्यः । दिधिष्वः । विऽभृत्राः । अतृष्यन्तीः । अपसः । यन्ति । अच्छ । देवान् । जन्म । प्रयसा । वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥ मथीत् । यत् । ईं । विऽभृतः । मातरिश्वा । गृहेऽगृहे । श्येतः । जेन्यः । भूत् । आत् । ईं । राज्ञे । न । सहीयसे । सचा । सन् । आ । दूत्यं । भृगवाणः । विवाय ॥ ४ ॥ महे । यत् । पित्रे । ईं । रसं । दिवे । करः । अव । त्सरत् । पृशन्यः । चिकित्वान् । सृजत् । अस्ता । धृषता । दिद्युं । अस्मै । स्वायां । देवः । दुहितरि । त्विषिं । धात् ॥ ५ ॥ १५ ॥

स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून् ।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासंद्राया सरथं यं जुनासि ॥ ६ ॥
अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः ।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥ ७ ॥
आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥ ८ ॥
मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥ ९ ॥
मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥ १० ॥ १६ ॥

---

स्वे । आ । यः । तुभ्यं । दमे । आ । विऽभाति । नमः । वा । दाशात् । उशतः । अनु । द्यून् । वर्धो इति । अग्ने । वयः । अस्य । द्विऽबर्हाः । यासत् । राया । सऽरथं । यं । जुनासि ॥ ६ ॥ अग्निं । विश्वाः । अभि । पृक्षः । सचंते । समुद्रं । न । स्रवतः । सप्त । यह्वीः । न । जामिऽभिः । वि । चिकिते । वयः । नः । विदाः । देवेषु । प्रऽमतिं । चिकित्वान् ॥ ७ ॥ आ । यत् । इषे । नृऽपतिं । तेजः । आनट् । शुचि । रेतः । निऽसिक्तं । द्यौः । अभीके । अग्निः । शर्धं । अनवद्यं । युवानं । सुऽआध्यं । जनयत् । सूदयत् । च ॥ ८ ॥ मनः । न । यः । अध्वनः । सद्यः । एति । एकः । सत्रा । सूरः । वस्वः । ईशे । राजाना । मित्रावरुणा । सुपाणी इति सुऽपाणी । गोषु । प्रियं । अमृतं । रक्षमाणा ॥ ९ ॥ मा । नः । अग्ने । सख्या । पित्र्याणि । प्र । मर्षिष्ठाः । अभि । विदुः । कविः । सन् । नभः । न । रूपं । जरिमा । मिनाति । पुरा । तस्याः । अभिऽशस्तेः । अधि । इहि ॥ १० ॥ १६ ॥

॥ ७२ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

॥ ७२ ॥ नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥ १ ॥
अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥ २ ॥
तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः सुजाताः ॥ ३ ॥
आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः ।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥ ४ ॥
संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन् ।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥ ५ ॥ १७ ॥

---

नि । काव्या । वेधसः । शश्वतः । कः । हस्ते । दधानः । नर्या । पुरूणि ।
अग्निः । भुवत् । रयिऽपतिः । रयीणां । सत्रा । चक्राणः । अमृतानि । विश्वा ॥ १ ॥
अस्मे इति । वत्सं । परि । संतं । न । विदन् । इच्छंतः । विश्वे । अमृताः । अमूराः ।
श्रमऽयुवः । पदऽव्यः । धियंऽधाः । तस्थुः । पदे । परमे । चारु । अग्नेः ॥ २ ॥ तिस्रः ।
यत् । अग्ने । शरदः । त्वां । इत् । शुचिं । घृतेन । शुचयः । सपर्यान् । नामानि ।
चित् । दधिरे । यज्ञियानि । असूदयंत । तन्वः । सुऽजाताः ॥ ३ ॥ आ । रोदसी
इति । बृहती इति । वेविदानाः । प्र । रुद्रिया । जभ्रिरे । यज्ञियासः । विदत् । मर्तः ।
नेमऽधिता । चिकित्वान् । अग्निं । पदे । परमे । तस्थिऽवांसं ॥ ४ ॥ संऽजानानाः ।
उप । सीदन् । अभिऽज्ञु । पत्नीऽवंतः । नमस्यं । नमस्यन्निति नमस्यन् । रिरिक्वांसः ।
तन्वः । कृण्वत । स्वाः । सखा । सख्युः । निऽमिषि । रक्षमाणाः ॥ ५ ॥ १७ ॥

त्रिः सप्त यद्गुह्यानि त्वे इत्पदाविदन्निहिता यज्ञियासः ।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूंश्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ॥ ६ ॥
विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक्छुरुधो जीवसे धाः ।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥ ७ ॥
स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
विदद्गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥ ८ ॥
आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥ ९ ॥
अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन् ।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥ १० ॥ १८ ॥

---

त्रिः । सप्त । यत् । गुह्यानि । त्वे इति । इत् । पदा । अविदन् । निऽहिता । यज्ञियासः । तेभिः । रक्षन्ते । अमृतं । सऽजोषाः । पशून् । च । स्थातॄन् । चरथं । च । पाहि ॥ ६ ॥ विद्वान् । अग्ने । वयुनानि । क्षितीनां । वि । आनुषक् । शुरुधः । जीवसे । धाः । अंतःऽविद्वान् । अध्वनः । देवऽयानान् । अतंद्रः । दूतः । अभवः । हविःऽवाट् ॥ ७ ॥ सुऽआध्यः । दिवः । आ । सप्त । यह्वीः । रायः । दुरः । वि । ऋतऽज्ञाः । अजानन् । विदत् । गव्यं । सरमा । दृळ्हं । ऊर्वं । येन । नु । कं । मानुषी । भोजते । विट् ॥ ८ ॥ आ । ये । विश्वा । सुऽअपत्यानि । तस्थुः । कृण्वानासः । अमृतऽत्वाय । गातुं । मह्ना । महत्ऽभिः । पृथिवी । वि । तस्थे । माता । पुत्रैः । अदितिः । धायसे । वेरिति वेः ॥ ९ ॥ अधि । श्रियं । नि । दधुः । चारुं । अस्मिन् । दिवः । यत् । अक्षी इति । अमृताः । अकृण्वन् । अध । क्षरंति । सिंधवः । न । सृष्टाः । प्र । नीचीः । अग्ने । अरुषीः । अजानन् ॥ १० ॥ १८ ॥

॥ ७३ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

॥ ७३ ॥ र॒यिर्न यः पि॑तृवि॒त्तो व॑यो॒धाः सु॒प्रणी॑तिश्चिकि॒तुषो॒ न शासुः॑ ।
स्यो॒नशीरति॑थि॒र्न प्री॑णा॒नो होते॑व॒ सद्म॑ विध॒तो वि ता॑रीत् ॥ १ ॥
दे॒वो न यः स॑वि॒ता स॒त्यम॑न्मा॒ क्रत्वा॑ नि॒पाति॑ वृ॒जना॑नि॒ विश्वा॑ ।
पु॒रु॒प्रश॒स्तो अ॒मति॒र्न स॒त्य आ॒त्मेव॒ शेवो॑ दिधि॒षाय्यो॑ भूत् ॥ २ ॥
दे॒वो न यः पृ॑थि॒वीं वि॒श्वधा॑या उप॒क्षेति॑ हि॒तमि॑त्रो॒ न राजा॑ ।
पु॒रः॒सदः॑ शर्म॒सदो॒ न वी॒रा अ॑नव॒द्या पति॑जुष्टेव॒ नारी॑ ॥ ३ ॥
तं त्वा॒ नरो॒ दम॒ आ नित्य॑मि॒द्धमग्ने॒ सच॑न्त क्षि॒तिषु॑ ध्रु॒वासु॑ ।
अधि॑ द्यु॒म्नं नि द॑धु॒र्भूर्य॑स्मि॒न्भवा॑ वि॒श्वायु॑र्ध॒रुणो॑ रयी॒णाम् ॥ ४ ॥
वि पृ॒क्षो अ॑ग्ने म॒घवा॑नो अश्युर्वि सू॒रयो॒ दद॑तो॒ विश्व॒मायुः॑ ।
स॒नेम॒ वाजं॑ समि॒थेष्व॒र्यो भा॒गं दे॒वेषु॒ श्रव॑से॒ दधा॑नाः ॥ ५ ॥ १९ ॥

---

र॒यिः । न । यः । पि॒तृ॒ऽवि॒त्तः । व॒यः॒ऽधाः । सु॒ऽप्रनी॑तिः । चि॒कि॒तुषः॑ । न । शासुः॑ । स्यो॒न॒ऽशीः । अति॑थिः । न । प्री॒णा॒नः । होता॑ऽइव । सद्म॑ । वि॒ध॒तः । वि । ता॒री॒त् ॥ १ ॥ दे॒वः । न । यः । स॒वि॒ता । स॒त्यऽम॑न्मा । क्रत्वा॑ । नि॒ऽपाति॑ । वृ॒जना॑नि । विश्वा॑ । पु॒रु॒ऽप्र॒श॒स्तः । अ॒मतिः॑ । न । स॒त्यः । आ॒त्माऽइ॑व । शेवः॑ । दि॒धि॒षाय्यः॑ । भू॒त् ॥ २ ॥ दे॒वः । न । यः । पृ॒थि॒वीम् । वि॒श्वऽधा॑याः । उ॒प॒ऽक्षेति॑ । हि॒तऽमि॑त्रः । न । राजा॑ । पु॒रः॒ऽसदः॑ । श॒र्म॒ऽसदः॑ । न । वी॒राः । अ॒न॒व॒द्या । पति॑ऽजुष्टाऽइव । नारी॑ ॥ ३ ॥ तम् । त्वा॒ । नरः॑ । दमे॑ । आ । नित्य॑म् । इ॒द्धम् । अ॒ग्ने॒ । सच॑न्त । क्षि॒तिषु॑ । ध्रु॒वासु॑ । अधि॑ । द्यु॒म्नम् । नि । द॒धुः॒ । भूरि॑ । अ॒स्मि॒न् । भव॑ । वि॒श्वऽआ॑युः । ध॒रुणः॑ । र॒यी॒णाम् ॥ ४ ॥ वि । पृ॒क्षः । अ॒ग्ने॒ । म॒घ॒ऽवा॑नः । अ॒श्युः॒ । वि । सू॒रयः॑ । दद॑तः । विश्व॑म् । आयुः॑ । स॒नेम॑ । वाज॑म् । स॒म्ऽइ॒थेषु॑ । अ॒र्यः । भा॒गम् । दे॒वेषु॑ । श्रव॑से । दधा॑नाः ॥ ५ ॥ १९ ॥

ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥ ६ ॥
त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः ॥ ७ ॥
यान्राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् ॥ ८ ॥
अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥ ९ ॥
एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ॥ १० ॥ २० ॥ १२ ॥

---

ऋतस्य । हि । धेनवः । वावशानाः । स्मत्ऽऊध्नीः । पीपयंत । द्युऽभक्ताः ।
पराऽवतः । सुऽमतिं । भिक्षमाणाः । वि । सिंधवः । समया । सस्रुः । अद्रिं ॥ ६ ॥
त्वे इति । अग्ने । सुऽमतिं । भिक्षमाणाः । दिवि । श्रवः । दधिरे । यज्ञियासः ।
नक्ता । च । चक्रुः । उषसा । विरूपे इति विऽरूपे । कृष्णं । च । वर्णं । अरुणं ।
च । सं । धुरिति धुः ॥ ७ ॥ यान् । राये । मर्तान् । सुसूदः । अग्ने । ते । स्याम ।
मघऽवानः । वयं । च । छायाऽइव । विश्वं । भुवनं । सिसक्षि । आपप्रिऽवान् ।
रोदसी इति । अंतरिक्षं ॥ ८ ॥ अर्वत्ऽभिः । अग्ने । अर्वतः । नृऽभिः । नॄन् ।
वीरैः । वीरान् । वनुयाम । त्वाऽऊताः । ईशानासः । पितृऽवित्तस्य । रायः । वि ।
सूरयः । शतऽहिमाः । नः । अश्युः ॥ ९ ॥ एता । ते । अग्ने । उचथानि । वेधः ।
जुष्टानि । संतु । मनसे । हृदे । च । शकेम । रायः । सुऽधुरः । यमं । ते ।
अधि । श्रवः । देवऽभक्तं । दधानाः ॥ १० ॥ १२ ॥ २० ॥

## ॥ त्रयोदशोऽनुवाकः ॥

॥ ७४ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

॥ ७४ ॥ उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये ।
आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥
यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु ।
अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥ २ ॥
उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि ।
धनञ्जयो रणेरणे ॥ ३ ॥
यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये ।
दस्मत्कृणोष्यध्वरम् ॥ ४ ॥
तमित्सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो ।
जना आहुः सुबर्हिषम् ॥ ५ ॥ २१ ॥
आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये ।
हव्या सुश्चन्द्र वीतये ॥ ६ ॥

---

उपऽप्रयंतः । अध्वरं । मंत्रं । वोचेम । अग्नये । आरे । अस्मे इति । च । शृण्वते ॥ १ ॥ यः । स्नीहितीषु । पूर्व्यः । संऽजग्मानासु । कृष्टिषु । अरक्षत् । दाशुषे । गयं ॥ २ ॥ उत । ब्रुवंतु । जंतवः । उत् । अग्निः । वृत्रऽहा । अजनि । धनंऽजयः । रणेऽरणे ॥ ३ ॥ यस्य । दूतः । असि । क्षये । वेषि । हव्यानि । वीतये । दस्मत् । कृणोषि । अध्वरं ॥ ४ ॥ तं । इत् । सुऽहव्यं । अंगिरः । सुऽदेवं । सहसः । यहो इति । जनाः । आहुः । सुऽबर्हिषं ॥ ५ ॥ २१ ॥

आ । च । वहासि । तान् । इह । देवान् । उप । प्रऽशस्तये । हव्या । सुऽचंद्र । वीतये ॥ ६ ॥

न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन ।

यदग्ने यासि दूत्यम् ॥ ७

त्वोतो वाज्यह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः ।

प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् ॥ ८

उत द्युमत्सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि ।

देवेभ्यो देव दाशुषे ॥ ९ ॥ २२

॥ ७५ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

॥ ७५ ॥ जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् ।

हव्या जुह्वान आसनि ॥ १

अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम् ।

वोचेम ब्रह्म सानसि ॥ २

---

न । योः । उपब्दिः । अश्व्यः । शृण्वे । रथस्य । कत् । चन । यत् । अग्ने । यासि । दूत्यं ॥ ७ ॥ त्वाऽऊतः । वाजी । अह्रयः । अभि । पूर्वस्मात् । अपरः । प्र । दाश्वान् । अग्ने । अस्थात् ॥ ८ ॥ उत । द्युऽमत् । सुऽवीर्यं । बृहत् । अग्ने । विवाससि । देवेभ्यः । देव । दाशुषे ॥ ९ ॥ २२ ॥

जुषस्व । सप्रथःऽतमं । वचः । देवप्सरःऽतमं । हव्या । जुह्वानः । आसनि ॥ १ ॥ अथ । ते । अङ्गिरःऽतम । अग्ने । वेधःऽतम । प्रियं । वोचेम । ब्रह्म । सानसि ॥ २ ॥

कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः ।
को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ ३ ॥

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः ।
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ ४ ॥

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् ।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ५ ॥ २३ ॥

॥ ७६ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषि. ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्द ॥

॥ ७६ ॥ का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा ।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥ १ ॥
एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः ।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान् ॥ २ ॥

---

कः । ते । जामिः । जनानां । अग्ने । कः । दाशुऽअध्वरः । कः । ह । कस्मिन् । असि । श्रितः ॥ ३ ॥ त्वं । जामिः । जनानां अग्ने । मित्रः । असि । प्रियः । सखा । सखिऽभ्यः । ईड्यः ॥ ४ ॥ यज । नः । मित्रावरुणा । यज । देवान् । ऋतं । बृहत् । अग्ने । यक्षि । स्वं । दमं ॥ ५ ॥ २३ ॥

का । ते । उपऽइतिः । मनसः । वराय । भुवत् । अग्ने । शंऽतमा । का । मनीषा । कः । वा । यज्ञैः । परि । दक्षं । ते । आप । केन । वा । ते । मनसा । दाशेम ॥ १ ॥ आ । इहि । अग्ने । इह । होता । नि । सीद । अदब्धः । सु । पुरःऽएता । भव । नः । अवतां । त्वा । रोदसी इति । विश्वमिन्वे इति विश्वंऽइन्वे । यज । महे । सौमनसाय । देवान् ॥ २ ॥

प्र सु विश्वान्रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा ।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै च चकृमा सुदाव्ने ॥ ३ ॥
प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥ ४ ॥
यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥ ५ ॥ २४ ॥

॥ ७७ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्द ॥

॥ ७७ ॥ कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ॥ १ ॥
यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।
अग्निर्यद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥ २ ॥

---

प्र । सु । विश्वान् । रक्षसः । धक्षि । अग्ने । भव । यज्ञानां । अभिशस्तिऽपावा । अथ । आ । वह । सोमऽपतिं । हरिऽभ्यां । आतिथ्यं । अस्मै । चकृम । सुऽदाव्ने ॥ ३ ॥ प्रजाऽवता । वचसा । वह्निः । आसा । आ । च । हुवे । नि । च । सत्सि । इह । देवैः । वेषि । होत्रं । उत । पोत्रं । यजत्र । बोधि । प्रऽयंतः । जनितः । वसूनां ॥ ४ ॥ यथा । विप्रस्य । मनुषः । हविःऽभिः । देवान् । अयजः । कविऽभिः । कविः । सन् । एव । होतरिति । सत्यऽतर । त्वं । अद्य । अग्ने । मंद्रया । जुह्वा । यजस्व ॥ ५ ॥ २४ ॥

कथा । दाशेम । अग्नये । का । अस्मै । देवऽजुष्टा । उच्यते । भामिने । गीः । यः । मर्त्येषु । अमृतः । ऋतऽवा । होता । यजिष्ठः । इत् । कृणोति । देवान् ॥ १ ॥ यः । अध्वरेषु । शंऽतमः । ऋतऽवा । होता । तं । ऊं इति । नमःऽभिः । आ । कृणुध्वं । अग्निः । यत् । वेः । मर्ताय । देवान् । सः । च । बोधाति । मनसा । यजाति ॥ २ ॥

स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥ ३ ॥
स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम् ।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥ ४ ॥
एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः ।
स एषु द्युम्नं पीपयत्स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥ ५ ॥ २५ ॥

॥ ७८ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषि ॥ अग्निर्देवता गायत्री छन्द ॥

॥ ७८ ॥ अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे ।
द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ १ ॥
तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति ।
द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ २ ॥

---

सः । हि । क्रतुः । सः । मर्यः । सः । साधुः । मित्रः । न । भूत् । अद्भुतस्य । रथीः । तं । मेधेषु । प्रथमं । देवऽयंतीः । विशः । उप । ब्रुवते । दस्मं । आरीः ॥३॥ सः । नः । नृणां । नृऽतमः । रिशादाः । अग्निः । गिरः । अवसा । वेतु । धीतिं । तना । च । ये । मघऽवानः । शविष्ठाः । वाजऽप्रसूताः । इषयंत । मन्म ॥ ४ ॥ एव । अग्निः । गोतमेभिः । ऋतऽवा । विप्रेभिः । अस्तोष्ट । जातऽवेदाः । सः । एषु । द्युम्नं । पीपयत् । सः । वाजं । सः । पुष्टिं । याति । जोषं । आ । चिकित्वान् ॥५॥२५॥ अभि । त्वा । गोतमाः । गिरा । जातऽवेदः । विऽचर्षणे । द्युम्नैः । अभि । प्र । नोनुमः ॥ १ ॥ तं । ऊं इति । त्वा । गोतमः । गिरा । रायःऽकामः । दुवस्यति । द्युम्नैः । अभि । प्र । नोनुमः ॥ २ ॥

तमु॑ त्वा वाज॒सात॑मम॒ङ्गिर॒स्वद्ध॑वामहे । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥ ३ ॥
तमु॑ त्वा वृत्र॒हन्त॑मं॒ यो दस्यूँ॑रव॒धूनु॒षे द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥ ४ ॥
अवो॑चाम॒ रहू॑गणा अ॒ग्नये॒ मधु॑मद्व॒चः । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥ ५ ॥ २६ ॥

॥ ७९ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ आद्यस्तृचस्त्रैष्टुभः द्वितीय औष्णिह शिष्टानां गायत्री छन्द ॥

॥ ७९ ॥ हिर॑ण्यकेशो॒ रज॑सो विसा॒रेऽहि॒र्धुनि॒र्वात॑ इव॒ ध्रजी॑मान् ।
शुचि॑भ्राजा उ॒षसो॒ नवे॑दा॒ यश॑स्वतीरप॒स्युवो॒ न स॒त्याः ॥ १ ॥
आ ते॑ सुप॒र्णा अ॑मिनन्तँ॒ एवैः॑ कृ॒ष्णो नो॑नाव वृष॒भो यदी॒दम् ।
शि॒वाभि॒र्न स्मय॑माना॒भि॒रागा॒त्पत॑न्ति॒ मिहः॑ स्त॒नय॑न्त्य॒भ्रा ॥ २ ॥
यदी॑मृ॒तस्य॒ पय॑सा॒ पिया॑नो॒ नय॑न्नृ॒तस्य॑ प॒थिभी॒ रजि॑ष्ठैः ।
अ॒र्य॒मा मि॒त्रो वरु॑णः॒ परि॑ज्मा॒ त्वचं॑ पृञ्च॒न्त्युप॑रस्य॒ योनौ॑ ॥ ३ ॥

---

तं । ऊं॒ इति॑ । त्वा॒ । वा॒ज॒ऽसात॑मं । अं॒गि॒र॒स्वत् । ह॒वा॒म॒हे॒ । द्यु॒म्नैः । अ॒भि । प्र । नो॒नु॒मः॒ ॥ ३ ॥ तं । ऊं॒ इति॑ । त्वा॒ । वृ॒त्र॒हन्ऽत॑मं । यः । दस्यू॑न् । अ॒व॒ऽधू॒नु॒षे । द्यु॒म्नैः । अ॒भि । प्र । नो॒नु॒मः॒ ॥ ४ ॥ अवो॑चाम । रहू॑गणाः । अ॒ग्नये॑ । मधु॑ऽमत् । वचः॑ । द्यु॒म्नैः । अ॒भि । प्र । नो॒नु॒मः॒ ॥ ५ ॥ २६ ॥

हिर॑ण्यऽकेशः । रज॑सः । वि॒ऽसा॒रे । अहिः॑ । धुनिः॑ । वातः॑ऽइव । ध्रजी॑मान् । शुचि॑ऽभ्राजाः । उ॒षसः॑ । नवे॑दाः । यश॑स्वतीः । अ॒प॒स्युवः॑ । न । स॒त्याः ॥ १ ॥ आ । ते॒ । सु॒ऽप॒र्णाः । अ॒मि॒नं॒त॒ । एवैः॑ । कृ॒ष्णः । नो॒नाव॒ । वृ॒ष॒भः । यदि॑ । इ॒दं । शि॒वाभिः॑ । न । स्मय॑मानाभिः । आ । अ॒गा॒त् । पतं॑ति । मिहः॑ । स्त॒नयं॑ति । अ॒भ्रा ॥ २ ॥ यत् । ई॒ । ऋ॒तस्य॑ । पय॑सा । पिया॑नः । नय॑न् । ऋ॒तस्य॑ । प॒थिऽभिः॑ । रजि॑ष्ठैः । अ॒र्य॒मा । मि॒त्रः । वरु॑णः । परि॑ऽज्मा । त्वचं॑ । पृ॒चं॒ति॒ । उप॑रस्य । योनौ॑ ॥ ३ ॥

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।

अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४ ॥

स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा ।

रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।

स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६ ॥ २७ ॥

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि ।

विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ ७ ॥

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यं ।

विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ ८ ॥

---

अग्ने । वाजस्य । गोऽमतः । ईशानः । सहसः । यहो इति । अस्मे इति । धेहि । जातऽवेदः । महि । श्रवः ॥ ४ ॥ सः । इधानः । वसुः । कविः । अग्निः । ईळेन्यः । गिरा । रेवत् । अस्मभ्यं । पुरुऽअनीक । दीदिहि ॥ ५ ॥ क्षपः । राजन् । उत । त्मना । अग्ने । वस्तोः । उत । उषसः । सः । तिग्मऽजंभ । रक्षसः । दह । प्रति ॥ ६ ॥ २७ ॥

अव । नः । अग्ने । ऊतिऽभिः । गायत्रस्य । प्रऽभर्मणि । विश्वासु । धीषु । वंद्य ॥ ७ ॥ आ । नः । अग्ने । रयिं । भर । सत्राऽसहं । वरेण्यं । विश्वासु । पृत्ऽसु । दुस्तरं ॥ ८ ॥

आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् ।

मार्डीकं धेहि जीवसे ॥ ९ ॥

प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये ।

भरस्व सुम्नयुर्गिरः ॥ १० ॥

यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः ।

अस्माकमिद्वृधे भव ॥ ११ ॥

सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति ।

होता गृणीत उक्थ्यः ॥ १२ ॥ २८ ॥

॥ ८० ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ पङ्क्तिश्छन्द ।

॥ ८० ॥ इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।

शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १ ॥

---

आ । नः । अग्ने । सुऽचेतुना । रयिं । विश्वायुऽपोषसं । मार्डीकं । धेहि । जीवसे ॥ ९ ॥ प्र । पूताः । तिग्मऽशोचिषे । वाचः । गोतम । अग्नये । भरस्व । सुम्नऽयुः । गिरः ॥ १० ॥ यः । नः । अग्ने । अभिऽदासति । अंति । दूरे । पदीष्ट । सः । अस्माकं । इत् । वृधे । भव ॥ ११ ॥ सहस्रऽअक्षः । विऽचर्षणिः । अग्निः । रक्षांसि । सेधति । होता । गृणीते । उक्थ्यः ॥ १२ ॥ २८ ॥

इत्था । हि । सोमे । इत् । मदे । ब्रह्मा । चकार । वर्धनं । शविष्ठ । वज्रिन् । ओजसा । पृथिव्याः । निः । शशाः । अहिं । अर्चन् अनु । स्वऽराज्यं ॥ १ ॥

स त्वामदद्वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।

येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ २ ॥

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।

इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।

सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥

इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः ।

अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः समीय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥ २९ ॥

---

सः । त्वा । अमदत् । वृषा । मदः । सोमः । श्येनऽआभृतः । सुतः । येन । वृत्रं । निः । अत्ऽभ्यः । जघंथ । वज्रिन् । ओजसा । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ २ ॥

प्र । इहि । अभि । इहि । धृष्णुहि । न । ते । वज्रः । नि । यंसते । इंद्र । नृम्णं । हि । ते । शवः । हनः । वृत्रं । जयाः । अपः । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ ३ ॥

निः । इंद्र । भूम्याः । अधि । वृत्रं । जघंथ । निः । दिवः । सृज । मरुत्वतीः । अव । जीवऽधन्याः । इमाः । अपः । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ ४ ॥ इंद्रः । वृत्रस्य । दोधतः । सानुं । वज्रेण । हीळितः । अभिऽक्रम्य । अव । जिघ्नते । अपः । समीय । चोदयन् । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ ५ ॥ २९ ॥

अभिष्टने ते अद्रिवो यत्स्था जगच्च रेजते ।

त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १४ ॥

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।

तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १५ ॥

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।

तस्मिन्ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १६ ॥ ३१ ॥ ५ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

अभिऽस्तने । ते । अद्रिऽवः । यत् । स्थाः । जगत् । च । रेजते । त्वष्टा । चित् । तव । मन्यवे । इंद्र । वेविज्यते । भिया । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ १४

नहि । नु । यात् । अधिऽइमसि । इंद्र । कः । वीर्या । परः । तस्मिन् । नृम्णं । उत । क्रतुं । देवाः । ओजांसि । सं । दधुः । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ १५ ॥

या । अथर्वा । मनुः । पिता । दध्यङ् । धियं । अत्नत । तस्मिन् । ब्रह्माणि । पूर्वऽथा । इंद्रे । उक्था । सं । अग्मत । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ १६ ॥ ३१ ॥ ५ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## ॥ अथ प्रथमाष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ ८१ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ पङ्क्तिश्छन्दः ॥

॥ ८१ ॥ इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादृदिः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥
क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान्दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ४ ॥
आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि ।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ ॥ ५ ॥ १ ॥

## ॥ अथ प्रथमाष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इन्द्रः । मदाय । ववृधे । शवसे । वृत्रऽहा । नृऽभिः । तं । इत् । महत्ऽसु । आजिषु । उत । ईं । अर्भे । हवामहे । सः । वाजेषु । प्र । नः । अविषत् ॥ १ ॥ असि । हि । वीर । सेन्यः । असि । भूरि । पराऽददिः । असि । दभ्रस्य । चित् । वृधः । यजमानाय । शिक्षसि । सुन्वते । भूरि । ते । वसु ॥ २ ॥ यत् । उत्ऽईरते । आजयः । धृष्णवे । धीयते । धना । युक्ष्व । मदऽच्युता । हरी इति । कं । हनः । कं । वसौ । दधः । अस्मान् । इंद्र । वसौ । दधः ॥ ३ ॥ क्रत्वा । महान् । अनुऽस्वधं । भीमः । आ । ववृधे । शवः । श्रिये । ऋष्वः । उपाकयोः । नि । शिप्री । हरिऽवान् । दधे । हस्तयोः । वज्रं । आयसं ॥ ४ ॥ आ । पप्रौ । पार्थिवं । रजः । बद्बधे । रोचना । दिवि । न । त्वाऽवान् । इंद्र । कः । चन । न । जातः । न । जनिष्यते । अति । विश्वं । ववक्षिथ ॥ ५ ॥ १ ॥

यो अर्यो मर्तभोजनं परादद॑ति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भंजा भूरिं ते वसुं भक्षीय तव राधसः ॥ ६ ॥
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवांमृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसुं शिशीहि राय आ भर ॥ ७ ॥
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वां पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥ ८ ॥
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥ ९ ॥ २ ॥

॥ ८२ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ अन्त्या जगती ॥ शिष्टाः पङ्क्तयः ॥

॥ ८२ ॥ उपो षु शृंणुही गिरो मघवन्मातंथा इव ।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ १ ॥

---

यः । अर्यः । मर्तऽभोजनं । पराऽददाति । दाशुषे । इंद्रः । अस्मभ्यं । शिक्षतु । वि । भज । भूरिं । ते । वसुं । भक्षीय । तव । राधसः ॥ ६ ॥ मदेऽमदे । हि । नः । ददिः । यूथा । गवां । ऋजुऽक्रतुः । सं । गृभाय । पुरु । शता । उभयाहस्त्या । वसुं । शिशीहि । रायः । आ । भर ॥ ७ ॥ मादयस्व । सुते । सचा । शवसे । शूर । राधसे । विद्म । हि । त्वा । पुरुऽवसुं । उप । कामान् । ससृज्महे । अथ । नः । अविता । भव ॥ ८ ॥ एते । ते । इंद्र । जंतवः । विश्वं । पुष्यंति । वार्यं । अंतः । हि । ख्यः । जनानां । अर्यः । वेदः । अदाशुषां । तेषां । नः । वेदः । आ । भर ॥ ९ ॥ २ ॥

उपो इति । सु । शृणुहि । गिरः । मघऽवन् । मा । अतथाःऽइव । यदा । सूनृताऽवतः । करः । आत् । अर्थयासे । इत् । योज । नु । इंद्र । ते । इति ॥ १ ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ २ ॥
सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ३ ॥
स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ४ ॥
युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५ ॥
युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः ।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः ॥ ६ ॥ ३ ॥

---

अक्षन् । अमीमदंत । हि । अव । प्रियाः । अधूषत । अस्तोषत । स्वऽभानवः । विप्राः । नविष्ठया । मती । योज । नु । इंद्र । ते । हरी इति ॥ २ ॥ सुऽसंदृशं । त्वा । वयं । मघऽवन् । वंदिषीमहि । प्र । नूनं । पूर्णऽवंधुरः । स्तुतः । याहि । वशान् । अनु । योज । नु । इंद्र । ते । हरी इति ॥ ३ ॥ सः । घ । तं । वृषणं । रथं । अधि । तिष्ठाति । गोऽविदं । यः । पात्रं । हारिऽयोजनं । पूर्णं । इंद्र । चिकेतति । योज । नु । इंद्र । ते । हरी इति ॥ ४ ॥ युक्तः । ते । अस्तु । दक्षिणः । उत । सव्यः । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । तेन । जायां । उप । प्रियां । मंदानः । याहि । अंधसः । योज । नु । इंद्र । ते । हरी इति ॥ ५ ॥ युनज्मि । ते । ब्रह्मणा । केशिना । हरी इति । उप । प्र । याहि । दधिषे । गभस्त्योः । उत् । त्वा । सुतासः । रभसाः । अमंदिषुः । पूषण्ऽवान् । वज्रिन् । सं । ऊं इति । पत्न्या । अमदः ॥ ६ ॥ ३ ॥

॥ ८३. ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ जगती छन्दः ॥

॥८३॥ अश्वा॑वति प्रथ॒मो गोषु॑ गच्छति सुप्रा॒वीरि॑न्द्र॒ मर्त्य॒स्तवो॒तिभिः॑ ।
तमित्पृ॑णक्षि॒ वसु॑ना॒ भवी॑यसा॒ सिन्धु॒मापो॒ यथा॒भितो॒ विचे॑तसः ॥ १ ॥
आपो॒ न दे॒वीरुप॑ यन्ति हो॒त्रिय॑मव॒ः प॑श्यन्ति॒ वित॑तं॒ यथा॒ रजः॑ ।
प्रा॒चैर्दे॒वासः॒ प्र ण॑यन्ति देव॒युं ब्र॑ह्म॒प्रियं॑ जोषयन्ते व॒रा इ॑व ॥ २ ॥
अधि॒ द्वयो॑रदधा उ॒क्थ्यं१॒॑ वचो॑ य॒तस्रु॑चा मिथु॒ना या स॑प॒र्यतः॑ ।
अस॑यत्तो व्र॒ते ते॑ क्षेति॒ पुष्य॑ति भ॒द्रा श॒क्तिर्यज॑मानाय सुन्व॒ते ॥ ३ ॥
आदङ्गि॑राः प्रथ॒मं द॑धिरे॒ वय॑ इ॒द्धाग्न॑यः॒ शम्या॒ ये सु॑कृ॒त्यया॑ ।
सर्वं॑ प॒णेः सम॑विन्दन्त॒ भोज॑न॒मश्वा॑वन्तं॒ गोम॑न्त॒मा प॒शुं नरः॑ ॥ ४ ॥
य॒ज्ञैरथ॑र्वा प्रथ॒मः प॒थस्त॑ते॒ ततः॒ सूर्यो॑ व्रत॒पा वे॒न आज॑नि ।
आ गा आ॑जदु॒शना॑ का॒व्यः सचा॑ य॒मस्य॑ जा॒तम॒मृतं॑ यजामहे ॥ ५ ॥

---

अश्व॑ऽवति । प्र॒थ॒मः । गोषु॑ । ग॒च्छ॒ति॒ । सु॒प्र॒ऽअ॒वीः । इ॒न्द्र॒ । मर्त्यः॑ । तव॑ ऊ॒तिऽभिः॑ । तं । इत् । पृ॒ण॒क्षि॒ । वसु॑ना । भवी॑यसा । सिन्धुं॑ । आपः॑ । यथा॑ । अ॒भितः॑ । वि॒ऽचे॑तसः ॥ १ ॥ आपः॑ । न । दे॒वीः । उप॑ । यं॒ति॒ । हो॒त्रियं॑ । अ॒वः । प॒श्यं॒ति॒ । वि॒ऽत॑तं । यथा॑ । रजः॑ । प्रा॒चैः । दे॒वासः॑ । प्र । न॒यं॒ति॒ । दे॒व॒ऽयुं । ब्र॒ह्म॒ऽप्रियं॑ । जो॒ष॒यं॒ते॒ । व॒राःऽइ॑व ॥ २ ॥ अधि॑ । द्वयोः॑ । अ॒द॒धाः॒ । उ॒क्थ्यं॑ । वचः॑ । य॒तऽस्रु॑चा । मि॒थु॒ना । या । स॒प॒र्यतः॑ । अस॑म्ऽयतः । व्र॒ते । ते॒ । क्षे॒ति॒ । पुष्य॑ति । भ॒द्रा । श॒क्तिः । यज॑मानाय । सु॒न्व॒ते ॥ ३ ॥ आत् । अंगि॑राः । प्र॒थ॒मं । द॒धि॒रे॒ । वयः॑ । इ॒द्धऽअ॑ग्नयः । शम्या॑ । ये । सु॒ऽकृ॒त्यया॑ । सर्वं॑ । प॒णेः । सं । अ॒विं॒द॒त॒ । भोज॑नं । अश्व॑ऽवंतं । गोऽमं॑तं । आ । प॒शुं । नरः॑ ॥ ४ ॥ य॒ज्ञैः । अथ॑र्वा । प्र॒थ॒मः । प॒थः । त॒ते॒ । ततः॑ । सूर्यः॑ । व्र॒त॒ऽपाः । वे॒नः । आ । अ॒ज॒नि॒ । आ । गाः । आ॒ज॒त् । उ॒शना॑ । का॒व्यः । सचा॑ । य॒मस्य॑ । जा॒तं । अ॒मृतं॑ । य॒जा॒म॒हे॒ ॥ ५ ॥

बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्यस्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥ ४ ॥

॥ ८४ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ आदित षट् अनुष्टुभः ॥

॥ ८४ ॥ असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १ ॥
इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ २ ॥
आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ ३ ॥
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ ४ ॥
इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ५ ॥ ५ ॥

---

बर्हिः । वा । यत् । सुऽअपत्याय । वृज्यते । अर्कः । वा । श्लोकं । आऽघोषते । दिवि । ग्रावा । यत्र । वदति । कारुः । उक्थ्यः । तस्य । इत् । इंद्रः । अभिऽपित्वेषु । रण्यति ॥ ६ ॥ ४ ॥

असावि । सोमः । इंद्र । ते । शविष्ठ । धृष्णो इति । आ । गहि । आ । त्वा । पृणक्तु । इंद्रियं । रजः । सूर्यः । न । रश्मिऽभिः ॥ १ ॥ इंद्रं । इत् । हरी इति । वहतः । अप्रतिधृष्टऽशवसं । ऋषीणां । च । स्तुतीः । उप । यज्ञं । च । मानुषाणां ॥ २ ॥ आ । तिष्ठ । वृत्रऽहन् । रथं । युक्ता । ते । ब्रह्मणा । हरी इति । अर्वाचीनं । सु । ते । मनः । ग्रावा । कृणोतु । वग्नुना ॥ ३ ॥ इमं । इंद्र । सुतं । पिब । ज्येष्ठं । अमर्त्यं । मदं । शुक्रस्य । त्वा । अभि । अक्षरन् । धाराः । ऋतस्य । सदने ॥ ४ ॥ इंद्राय । नूनं । अर्चत । उक्थानि । च । ब्रवीतन । सुताः । अमत्सुः । इंदवः । ज्येष्ठं । नमस्यत । सहः ॥ ५ ॥ ५ ॥

नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ ६

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ७

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ८

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ९

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १० ॥ ६

---

नकिः । त्वत् । रथिऽतरः । हरी इति । यत् । इंद्र । यच्छसे । नकिः त्वा । अनु । मज्मना । नकिः । सुऽअश्वः । आनशे ॥ ६ ॥ यः । एकः । इत् विऽदयते । वसु । मर्ताय । दाशुषे । ईशानः । अप्रतिऽस्कुतः । इंद्रः । अंग ॥ ७ कदा । मर्तं । अराधसं । पदा । क्षुंपंऽइव । स्फुरत् । कदा । नः । शुश्रवत् गिरः । इंद्रः । अंग ॥ ८ ॥ यः । चित् । हि । त्वा । बहुऽभ्यः । आ । सुत ः । आऽविवासति । उग्रं । तत् । पत्यते । शवः । इंद्रः । अंग ॥ ९ ॥ स्वादोः इत्था । विषुऽवतः । मध्वः । पिबंति । गौर्यः । याः । इंद्रेण । सऽयावरीः वृष्णा । मदंति । शोभसे । वस्वीः । अनु । स्वऽराज्यं ॥ १० ॥ ६ ॥

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ११ ॥
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥ १३ ॥
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥ १४ ॥
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ १५ ॥ ७ ॥
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥ १६ ॥
क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति ।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे को जनाय ॥ १७ ॥

---

ताः । अस्य । पृशनऽयुवः । सोमं । श्रीणंति । पृश्नयः । प्रियाः । इंद्रस्य । धेनवः । वज्रं । हिन्वंति । सायकं । वस्वीः । अनु । स्वऽराज्यं ॥ ११ ॥ ताः । अस्य । नमसा । सहः । सपर्यंति । प्रऽचेतसः । व्रतानि । अस्य । सश्चिरे । पुरूणि । पूर्वऽचित्तये । वस्वीः । अनु । स्वऽराज्यं ॥ १२ ॥ इंद्रः । दधीचः । अस्थऽभिः । वृत्राणि । अप्रतिऽस्कुतः । जघान । नवतीः । नव ॥ १३ ॥ इच्छन् । अश्वस्य । यत् । शिरः । पर्वतेषु । अपऽश्रितं । तत् । विदत् । शर्यणाऽवति ॥ १४ ॥ अत्र । अह । गोः । अमन्वत । नाम । त्वष्टुः । अपीच्यं । इत्था । चंद्रमसः । गृहे ॥ १५ ॥ ७ ॥

कः । अद्य । युंक्ते । धुरि । गाः । ऋतस्य । शिमीऽवतः । भामिनः । दुःऽहृणायून् । आसन्ऽइषून् । हृत्सुऽअसः । मयःऽभून् । यः । एषां । भृत्यां । ऋणधत् । सः । जीवात् ॥ १६ ॥ कः । ईषते । तुज्यते । कः । बिभाय । कः । मंसते । संतं । इंद्रं । कः । अंति । कः । तोकाय । कः । इभाय । उत । राये । अधि । ब्रवत् । तन्वे । कः । जनाय ॥ १७ ॥

को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यंजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥ १८ ॥
त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ १९ ॥
मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २० ॥ ८ ॥ १३ ॥

## ॥ चतुर्दशोऽनुवाकः ॥

॥ ८५ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषि ॥ मरुतो देवता ॥ पञ्चमी, द्वादश्यो त्रिष्टुभौ ॥ शिष्टो जगत्य

॥ ८५ ॥ प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन्रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥ १ ॥
त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥ २ ॥

---

कः । अग्निं । ईट्टे । हविषा । घृतेन । स्रुचा । यजाते । ऋतुऽभिः । ध्रुवेभिः । कस्मै । देवाः । आ । वहान् । आशु । होम । कः । मंसते । वीतिऽहोत्रः । सुऽदेवः ॥ १८ ॥ त्वं । अंग । प्र । शंसिषः । देवः । शविष्ठ । मर्त्यं । न । त्वत् । अन्यः । मघऽवन् । अस्ति । मर्डिता । इंद्र । ब्रवीमि । ते । वचः ॥ १९ ॥ मा । ते । राधांसि । मा । ते । ऊतयः । वसो इति । अस्मान् । कदा । चन । दभन् । विश्वा । च । नः । उपऽमिमीहि । मानुष । वसूनि । चर्षणिऽभ्यः । आ ॥ २० ॥ ८ ॥

प्र । ये । शुंभंते । जनयः । न । सप्तयः । यामन् । रुद्रस्य । सूनवः । सुऽदंससः । रोदसी इति । हि । मरुतः । चक्रिरे । वृधे । मदंति । वीराः । विदथेषु । घृष्वयः ॥ १ ॥ ते । उक्षितासः । महिमानं । आशत । दिवि । रुद्रासः । अधि । चक्रिरे । सदः । अर्चंतः । अर्कं । जनयंतः । इंद्रियं । अधि । श्रियः । दधिरे । पृश्निऽमातरः ॥ २ ॥

ामांनरो यच्छुभयंन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मंतः ।
ाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥ ३ ॥
वे ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युंता चिदोजसा ।
नोजुवो यन्मंरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुंग्ध्वम् ॥ ४ ॥
॥ यद्रथेषु पृषतीरयुंग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
तारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मैवोदभिर्व्युन्दन्ति भूमं ॥ ५ ॥
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयंध्वं मरुतो मध्वो अंधसः ॥ ६ ॥ ९॥
तेऽवर्धन्त स्वतंवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चंक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद्वृषंणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥ ७ ॥

---

तेऽमांतरः । यत् । शुभयंते । अंजिऽभिः । तनूषु । शुभ्राः । दधिरे । विरुक्मंतः ।
बाधंते । विश्वं । अभिऽमातिनं । अपं । वर्त्मांनि । एषां । अनुं । रीयते ।
घृतं ॥ ३ ॥ वि । ये । भ्राजंते । सुऽमंखासः । ऋष्टिऽभिः । प्रऽच्यवयंतः ।
अच्युंता । चित् । ओजंसा । मनःऽजुवः । यत् । मरुतः । रथेषु । आ ।
वृषंऽव्रातासः । पृषंतीः । अयुंग्ध्वं ॥ ४ ॥ प्र । यत् । रथेषु । पृषंतीः । अयुंग्ध्वं ।
वाजे । अद्रिं । मरुतः । रंहयंतः । उत । अरुषस्यं । वि । स्यंति । धाराः ।
चर्मंऽइव । उदऽभिः । वि । उंदंति । भूमं ॥ ५ ॥ आ । वः । वहंतु । सप्तयः ।
रघुऽस्यदः । रघुऽपत्वानः । प्र । जिगात । बाहुऽभिः । सीदंत । आ । बर्हिः ।
उरु । वः । सदः । कृतं । मादयंध्वं । मरुतः । मध्वंः । अंधसः ॥ ६ ॥ ९ ॥
ते । अवर्धंत । स्वऽतंवसः । महिऽत्वना । आ । नाकं । तस्थुः । उरु ।
चक्रिरे । सदः । विष्णुः । यत् । ह । आवंत् । वृषंणं । मदऽच्युतं । वयः । न ।
सीदंन् । अधि । बर्हिषि । प्रिये ॥ ७ ॥

शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥ ८ ॥
त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥ ९ ॥
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥ १० ॥
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥ ११ ॥
या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥ १२ ॥ १० ॥

---

शूराःऽइव । इत् । युयुधयः । न । जग्मयः । श्रवस्यवः । न । पृतनासु । येतिरे । भयंते । विश्वा । भुवना । मरुत्ऽभ्यः । राजानःऽइव । त्वेषऽसंदृशः । नरः ॥ ८ ॥ त्वष्टा । यत् । वज्रं । सुऽकृतं । हिरण्ययं । सहस्रऽभृष्टिं । सुऽअपाः । अवर्तयत् । धत्ते । इंद्रः । नरि । अपांसि । कर्तवे । अहन् । वृत्रं । निः । अपां । औब्जत् । अर्णवं ॥ ९ ॥ ऊर्ध्वं । नुनुद्रे । अवतं । ते । ओजसा । दादृहाणं । चित् । बिभिदुः । वि । पर्वतं । धमंतः । वाणं । मरुतः । सुऽदानवः । मदे । सोमस्य । रण्यानि । चक्रिरे ॥ १० ॥ जिह्मं । नुनुद्रे । अवतं । तया । दिशा । असिंचन् । उत्सं । गोतमाय । तृष्णऽजे । आ । गच्छंति । ईं । अवसा । चित्रऽभानवः । कामं । विप्रस्य । तर्पयंत । धामऽभिः ॥ ११ ॥ या । वः । शर्म । शशमानाय । संति । त्रिऽधातूनि । दाशुषे । यच्छत । अधि । अस्मभ्यं । तानि । मरुतः । वि । यंत । रयिं । नः । धत्त । वृषणः । सुऽवीरं ॥ १२ ॥ १० ॥

॥ ८६ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

॥ ८६ ॥ मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः ।
स सुगोपातमो जनः ॥ १ ॥
यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् ।
मरुतः शृणुता हवम् ॥ २ ॥
उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत ।
स गन्ता गोमति व्रजे ॥ ३ ॥
अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु ।
उक्थं मदश्च शस्यते ॥ ४ ॥
अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
सूरं चित्सस्रुषीरिषः ॥ ५ ॥ ११ ॥

---

मरुतः । यस्य । हि । क्षये । पाथ । दिवः । विऽमहसः । सः । सुऽगोपातमः । जनः ॥ १ ॥ यज्ञैः । वा । यज्ञऽवाहसः । विप्रस्य । वा । मतीनां । मरुतः । शृणुत । हवं ॥ २ ॥ उत । वा । यस्य । वाजिनः । अनु । विप्रं । अतक्षत । सः । गंता । गोऽमति । व्रजे ॥ ३ ॥ अस्य । वीरस्य । बर्हिषि । सुतः । सोमः । दिविष्टिषु । उक्थं । मदः । च । शस्यते ॥ ४ ॥ अस्य । श्रोषंतु । आ । भुवः । विश्वाः । यः । चर्षणीः । अभि । सूरं । चित् । सस्रुषीः । इषः ॥ ५ ॥ ११ ॥

पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् ।
अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥ ६ ॥

सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः ।
यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥ ७ ॥

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः ।
विदा कामस्य वेनतः ॥ ८ ॥

यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना ।
विध्यता विद्युता रक्षः ॥ ९ ॥

गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् ।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १० ॥ १२ ॥

---

पूर्वीभिः । हि । ददाशिम । शरत्ऽभिः । मरुतः । वयं । अवःऽभिः । चर्षणीनां ॥ ६ ॥ सुऽभगः । सः । प्रऽयज्यवः । मरुतः । अस्तु । मर्त्यः । यस्य । प्रयांसि । पर्षथ ॥ ७ ॥ शशमानस्य । वा । नरः । स्वेदस्य । सत्यऽशवसः । विद । कामस्य । वेनतः ॥ ८ ॥ यूयं । तत् । सत्यऽशवसः । आविः । कर्त । महिऽत्वना । विध्यत । विऽद्युता । रक्षः ॥ ९ ॥ गूहत । गुह्यं । तमः । वि । यात । विश्वं । अत्रिणं । ज्योतिः । कर्त । यत् । उश्मसि ॥ १० ॥ १२ ॥

॥ ८७. ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ जगती छन्दः ॥

॥ ८७ ॥ प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥ १ ॥
उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित्पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ २ ॥
प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥ ३ ॥
स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणो३ऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावाऽनेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥ ४ ॥
पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥ ५ ॥

---

प्रऽत्वक्षसः । प्रऽतवसः । विऽरप्शिनः । अनानताः । अविथुराः । ऋजीषिणः । जुष्टऽतमासः । नृऽतमासः । अञ्जिऽभिः । वि । आनज्रे । के । चित् । उस्राःऽइव । स्तृऽभिः ॥ १ ॥ उपऽह्वरेषु । यत् । अचिध्वं । ययिं । वयःऽइव । मरुतः । केन । चित् । पथा । श्चोतन्ति । कोशाः । उप । वः । रथेषु । आ । घृतं । उक्षत । मधुऽवर्णं । अर्चते ॥ २ ॥ प्र । एषां । अज्मेषु । विथुराऽइव । रेजते । भूमिः । यामेषु । यत् । ह । युञ्जते । शुभे । ते । क्रीळयः । धुनयः । भ्राजत्ऽऋष्टयः । स्वयं । महिऽत्वं । पनयंत । धूतयः ॥ ३ ॥ सः । हि । स्वऽसृत् । पृषत्ऽअश्वः । युवा । गणः । अया । ईशानः । तविषीभिः । आऽवृतः । असि । सत्यः । ऋणऽयावा । अनेद्यः । अस्याः । धियः । प्रऽअविता । अथ । वृषा । गणः ॥ ४ ॥ पितुः । प्रत्नस्य । जन्मना । वदामसि । सोमस्य । जिह्वा । प्र । जिगाति । चक्षसा । यत् । ईं । इंद्रं । शमि । ऋक्वाणः । आशत । आत् । इत् । नामानि । यज्ञियानि । दधिरे ॥ ५ ॥

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥ ६ ॥ १३ ॥

॥ ८८ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ प्रस्तारपङ्क्ती । छन्दः ॥

॥ ८८ ॥ आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥ १ ॥
तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान्पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥ २ ॥
श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥ ३ ॥
अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ॥ ४ ॥

---

श्रियसे । कं । भानुऽभिः । सं । मिमिक्षिरे । ते । रश्मिऽभिः । ते । ऋक्वऽभिः ।
सुऽखादयः । ते । वाशीऽमंतः । इष्मिणः । अभीरवः । विद्रे । प्रियस्य । मारुतस्य
धाम्नः ॥ ६ ॥ १३ ॥

आ । विद्युन्मत्ऽभिः । मरुतः । सुऽअर्कैः । रथेभिः । यात । ऋष्टिमत्ऽभिः ।
अश्वऽपर्णैः । आ । वर्षिष्ठया । नः । इषा । वयः । न । पप्तत । सुऽमायाः ॥ १ ॥
ते । अरुणेभिः । वरं । आ । पिशंगैः । शुभे । कं । यांति । रथतूःऽभिः । अश्वैः ।
रुक्मः । न । चित्रः । स्वधितिऽवान् । पव्या । रथस्य । जंघनंत । भूम ॥ २ ॥
श्रिये । कं । वः । अधि । तनूषु । वाशीः । मेधा । वना । न । कृणवंते । ऊर्ध्वा ।
युष्मभ्यं । कं । मरुतः । सुजाताः । तुविऽद्युम्नासः । धनयंते । अद्रिं ॥ ३ ॥
अहानि । गृध्राः । परि । आ । वः । आ । अगुः । इमां । धियं । वार्कार्यां । च ।
देवीं । ब्रह्म । कृण्वंतः । गोतमासः । अर्कैः । ऊर्ध्वं । नुनुद्रे । उत्सऽधिं । पिबध्यै ॥ ४ ॥

एतत्त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।
पश्यन्हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्विधावतो वराहून् ॥ ५ ॥
एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।
अस्तोभयद्वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥ ६ ॥ १४ ॥

॥ ८९ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषि. ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ जगती छन्दः ॥

॥८९॥ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ १ ॥
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥ २ ॥
तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ ३ ॥

---

एतत् । त्यत् । न । योजनं । अचेति । सस्वः । ह । यत् । मरुतः । गोतमः । वः । पश्यन् । हिरण्यऽचक्रान् । अयःऽदंष्ट्रान् । विऽधावतः । वराहून् ॥ ५ ॥ एषा । स्या । वः । मरुतः । अनुऽभर्त्री । प्रति । स्तोभति । वाघतः । न । वाणी । अस्तोभयत् । वृथा । आसां । अनु । स्वधा । गभस्त्योः ॥ ६ ॥ १४ ॥

आ । नः । भद्राः । क्रतवः । यंतु । विश्वतः । अदब्धासः । अपरिऽइतासः । उत्ऽभिदः । देवाः । नः । यथा । सदं । इत् । वृधे । असन् । अप्रऽआयुवः । रक्षितारः । दिवेऽदिवे ॥ १ ॥ देवानां । भद्रा । सुऽमतिः । ऋजुऽयतां । देवानां । रातिः । अभि । नः । नि । वर्ततां । देवानां । सख्यं । उप । सेदिम । वयं । देवाः । नः । आयुः । प्र । तिरंतु । जीवसे ॥ २ ॥ तान् । पूर्वया । निऽविदा । हूमहे । वयं । भगं । मित्रं । अदितिं । दक्षं । अस्रिधं । अर्यमणं । वरुणं । सोमं । अश्विना । सरस्वती । नः । सुऽभगा । मयः । करत् ॥ ३ ॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।
तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ ४ ॥
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ५ ॥ १५ ॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६ ॥
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥ ७ ॥
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ ८ ॥

---

तत् । नः । वातः । मयःऽभु । वातु । भेषजं । तत् । माता । पृथिवी । तत् । पिता । द्यौः । तत् । ग्रावाणः । सोमऽसुतः । मयःऽभुवः । तत् । अश्विना । शृणुतं । धिष्ण्या । युवं ॥ ४ ॥ तं । ईशानं । जगतः । तस्थुषः । पतिं । धियंऽजिन्वं । अवसे । हूमहे । वयं । पूषा । नः । यथा । वेदसां । असत् । वृधे । रक्षिता । पायुः । अदब्धः । स्वस्तये ॥ ५ ॥ १५ ॥

स्वस्ति । नः । इंद्रः । वृद्धऽश्रवाः । स्वस्ति । नः । पूषा । विश्वऽवेदाः । स्वस्ति । नः । तार्क्ष्यः । अरिष्टऽनेमिः । स्वस्ति । नः । बृहस्पतिः । दधातु ॥ ६ ॥ पृषत्ऽअश्वाः । मरुतः । पृश्निऽमातरः । शुभंऽयावानः । विदथेषु । जग्मयः । अग्निऽजिह्वाः । मनवः । सूरऽचक्षसः । विश्वे । नः । देवाः । अवसा । आ । गमन् । इह ॥ ७ ॥ भद्रं । कर्णेभिः । शृणुयाम । देवाः । भद्रं । पश्येम । अक्षऽभिः । यजत्राः । स्थिरैः । अंगैः । तुस्तुऽवांसः । तनूभिः । वि । अशेम । देवऽहितं । यत् । आयुः ॥ ८ ॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ ९ ॥
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १० ॥ १६ ॥

॥ ९० ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषि ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ गायत्री अन्त्यानुष्टुप् छन्दः ॥

॥ ९० ॥ ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् ।
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ १ ॥
ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः ।
व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ॥ २ ॥
ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः ।
बाधमाना अप द्विषः ॥ ३ ॥

---

शतं । इत् । नु । शरदः । अंति । देवाः । यत्र । नः । चक्र । जरसं । तनूनां । पुत्रासः । यत्र । पितरः । भवंति । मा । नः । मध्या । रिरिषत । आयुः । गंतोः ॥ ९ ॥ अदितिः । द्यौः । अदितिः । अंतरिक्षं । अदितिः । माता । सः । पिता । सः । पुत्रः । विश्वे । देवाः । अदितिः । पंच । जनाः । अदितिः । जातं । अदितिः । जनिऽत्वं ॥ १० ॥ १६ ॥

ऋजुऽनीती । नः । वरुणः । मित्रः । नयतु । विद्वान् । अर्यमा । देवैः । सऽजोषाः ॥ १ ॥ ते । हि । वस्वः । वसवानाः । ते । अप्रऽमूराः । महःऽभिः । व्रता । रक्षंते । विश्वहा ॥ २ ॥ ते । अस्मभ्यं । शर्म । यंसन् । अमृताः । मर्त्येभ्यः । बाधमानाः । अप । द्विषः ॥ ३ ॥

वि नः पथः सुवितार्य चियन्त्विन्द्रो मरुतः ।

पूषा भगो वन्द्यासः ॥ ४ ॥

उत नो धियो गोअंग्राः पूषन्विष्णवेवंयावः ।

कर्ता नः स्वस्तिमतः ॥ ५ ॥ १७ ॥

मधु वाता ऋतायते मधुं क्षरन्ति सिन्धंवः ।

माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ ६ ॥

मधु नक्तमुतोषसो मधुंमत्पार्थिवं रजः ।

मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ ७ ॥

मधुंमान्नो वनस्पतिर्मधुंमाँ अस्तु सूर्यः ।

माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ८ ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।

शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥ १८ ॥

---

वि । नः । पथः । सुवितार्य । चियंतु । इंद्रः । मरुतः । पूषा । भगः । वंद्यासः ॥ ४ ॥ उत । नः । धियः । गोऽअंग्राः । पूषन् । विष्णो इति । एवंऽयावः । कर्त । नः । स्वस्तिऽमतः ॥ ५ ॥ १७ ॥ मधुं । वाताः । ऋतऽयते । मधुं । क्षरंति । सिंधंवः । माध्वीः । नः । संतु । ओषधीः ॥ ६ ॥ मधुं । नक्तं । उत । उषसः । मधुंऽमत् । पार्थिवं । रजः । मधुं । द्यौः । अस्तु । नः । पिता ॥ ७ ॥ मधुंऽमान् । नः । वनस्पतिः । मधुंऽमान् । अस्तु । सूर्यः । माध्वीः । गावः । भवंतु । नः ॥ ८ ॥ शं । नः । मित्रः । शं । वरुणः । शं । नः । भवतु । अर्यमा । शं । नः । इंद्रः । बृहस्पतिः । शं । नः । विष्णुः । उरुऽक्रमः ॥ ९ ॥ १८ ॥

॥ ९१. ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

॥ ९१ ॥ त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ १ ॥
त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः ।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः ॥ २ ॥
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥ ३ ॥
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥ ४ ॥
त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा ।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ ५ ॥ १९ ॥

---

त्वं । सोम । प्र । चिकितः । मनीषा । त्वं । रजिष्ठं । अनु । नेषि ।
पंथां । तव । प्रऽनीती । पितरः । नः । इंदो इति । देवेषु । रत्नं । अभजंत ।
धीराः ॥ १ ॥ त्वं । सोम । क्रतुऽभिः । सुऽक्रतुः । भूः । त्वं । दक्षैः । सुऽदक्षः ।
विश्वऽवेदाः । त्वं । वृषा । वृषऽत्वेभिः । महिऽत्वा । द्युम्नेभिः । द्युम्नी । अभवः ।
नृऽचक्षाः ॥ २ ॥ राज्ञः । नु । ते । वरुणस्य । व्रतानि । बृहत् । गभीरं । तव ।
सोम । धाम । शुचिः । त्वं । असि । प्रियः । न । मित्रः । दक्षाय्यः । अर्यमा-
ऽइव । असि । सोम ॥ ३ ॥ या । ते । धामानि । दिवि । या । पृथिव्यां । या ।
पर्वतेषु । ओषधीषु । अप्ऽसु । तेभिः । नः । विश्वैः । सुऽमनाः । अहेळन् ।
राजन् । सोम । प्रति । हव्या । गृभाय ॥ ४ ॥ त्वं । सोम । असि । सत्-
ऽपतिः । त्वं । राजा । उत । वृत्रऽहा । त्वं । भद्रः । असि । क्रतुः ॥ ५ ॥ १९ ॥

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे ।

प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ६ ॥

त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते ।

दक्षं दधासि जीवसे ॥ ७ ॥

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः ।

न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥ ८ ॥

सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे ।

ताभिर्नोऽविता भव ॥ ९ ॥

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।

सोम त्वं नो वृधे भव ॥ १० ॥ ॥ २० ॥

---

त्वं । च । सोम । नः । वशः । जीवातुं । न । मरामहे । प्रियऽस्तोत्रः । वनस्पतिः ॥ ६ ॥ त्वं । सोम । महे । भगं । त्वं । यूने । ऋतऽयते । दक्षं । दधासि । जीवसे ॥ ७ ॥ त्वं । नः । सोम । विश्वतः । रक्ष । राजन् । अघऽयतः । न । रिष्येत् । त्वाऽवतः । सखा ॥ ८ ॥ सोम । याः । ते । मयःऽभुवः । ऊतयः । संति । दाशुषे । ताभिः । नः । अविता । भव ॥ ९ ॥ इमं । यज्ञं । इदं । वचः । जुजुषाणः । उपऽआगहि । सोम । त्वं । नः । वृधे । भव ॥ १० ॥ २० ॥

सोम॑ गी॒र्भिष्ट्वा॑ व॒यं व॒र्धया॑मो वचो॒विदः॑ ।

सु॒मृ॒ळी॒को न॒ आ वि॑श ॥ ११ ॥

ग॒य॒स्फानो॑ अमीव॒हा व॑सु॒वित्पु॑ष्टि॒वर्ध॑नः ।

सु॒मि॒त्रः सो॑म नो भव ॥ १२ ॥

सोम॑ रार॒न्धि नो॑ हृ॒दि गावो॒ न यव॑से॒ष्वा ।

मर्य॑ इव॒ स्व ओ॒क्ये॑ ॥ १३ ॥

यः सो॑म स॒ख्ये तव॑ रा॒रण॑द्दे॒व मर्त्यः॑ ।

तं दक्षः॑ सचते क॒विः ॥ १४ ॥

उ॒रु॒ष्या णो॑ अ॒भिश॑स्ते॒ः सोम॒ नि पा॒ह्यंह॑सः ।

सखा॑ सु॒शेव॑ एधि नः ॥ १५ ॥ २१ ॥

---

सोम॑ । गीः॒ऽभिः॒ । त्वा॒ । व॒यं । व॒र्धया॑मः । व॒चः॒ऽविदः॑ । सु॒ऽमृ॒ळी॒कः । न॒ः । आ । वि॒श॒ ॥ ११ ॥ ग॒य॒ऽस्फानः॑ । अ॒मी॒व॒ऽहा । व॒सु॒ऽवित् । पु॒ष्टि॒ऽवर्ध॑नः । सु॒ऽमि॒त्रः । सो॒म॒ । नः॒ । भ॒व॒ ॥ १२ ॥ सोम॑ । र॒र॒न्धि । न॒ः । हृ॒दि । गावः॑ । न । यव॑सेषु । आ । मर्यः॑ऽइव । स्वे । ओ॒क्ये॑ ॥ १३ ॥ यः । सो॒म॒ । स॒ख्ये । तव॑ । र॒रण॑त् । दे॒व॒ । मर्त्यः॑ । तं । दक्षः॑ । स॒च॒ते॒ । क॒विः ॥ १४ ॥ उ॒रु॒ष्य । न॒ः । अ॒भिऽश॑स्तेः । सोम॑ । नि । पा॒हि॒ । अंह॑सः । सखा॑ । सु॒ऽशेव॑ः । ए॒धि॒ । न॒ः ॥ १५ ॥ २१ ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ १६ ॥
आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ १७ ॥
सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥ १८ ॥
या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥ १९ ॥
सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ २० ॥ २२ ॥

---

आ । प्यायस्व । सं । एतु । ते विश्वतः । सोम । वृष्ण्यं । भव । वाजस्य । संऽगथे ॥ १६ ॥ आ । प्यायस्व । मदिन्ऽतम । सोम । विश्वेभिः । अंशुऽभिः । भव । नः । सुश्रवःऽतमः । सखा । वृधे ॥ १७ ॥ सं । ते । पयांसि । सं । ऊं इति । यंतु । वाजाः । सं । वृष्ण्यानि । अभिमातिऽसहः । आऽप्यायमानः । अमृताय । सोम । दिवि । श्रवांसि । उत्ऽतमानि । धिष्व ॥ १८ ॥ या ते धामानि । हविषा । यजंति । ता । ते । विश्वा । परिऽभूः । अस्तु । यज्ञं । गयऽस्फानः । प्रऽतरणः । सुऽवीरः । अवीरऽहा । प्र । चर । सोम । दुर्यान् ॥ १९ ॥ [illegible] । धेनुं । सोमः । अर्वंतं । आशुं । सोमः । वीरं । कर्मण्यं । ददाति । सदन्यं । विदथ्यं । सभेयं । पितृऽश्रवणं । यः । ददाशत् । अस्मै ॥ २० ॥ २२ ॥

अषांळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥ २१ ॥
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ २२ ॥
देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥ २३ ॥ २३ ॥

॥ ९२ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ जगती छन्दः ॥

॥ ९२ ॥ एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्द्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥ १ ॥

---

अषांळ्हं । युत्ऽसु । पृतनासु । पप्रिं । स्वःऽसां । अप्ऽसां । वृजनस्य । गोपां ।
भरेषुऽजां । सुऽक्षितिं । सुऽश्रवसं । जयंतं । त्वां । अनु । मदेम । सोम ॥ २१ ॥
त्वं । इमाः । ओषधीः । सोम । विश्वाः । त्वं । अपः । अजनयः । त्वं । गाः ।
त्वं । आ । ततंथ । उरु । अंतरिक्षं । त्वं । ज्योतिषा । वि । तमः । ववर्थ
॥ २२ ॥ देवेन । नः । मनसा । देव । सोम । रायः । भागं । सहसाऽवन् । अभि । युध्य । मा । त्वा । आ । तनत् । ईशिषे । वीर्यस्य । उभयेभ्यः । प्र ।
चिकित्स । गोऽइष्टौ ॥ २३ ॥ २३ ॥

एताः । ऊं इति । त्याः । उषसः । केतुं । अक्रत । पूर्वे । अर्द्धे । रजसः ।
भानुं । अंजते । निःऽकृण्वानाः । आयुधानिऽइव । धृष्णवः । प्रति । गावः ।
अरुषीः । यंति । मातरः ॥ १ ॥

उदंपप्तन्नरुणा भानवो वृथां स्वायुजो अरुषीर्गा अंयुक्षत ।
अक्रंन्नुषासों वयुनांनि पूर्वथा रुशंन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २ ॥
अर्चंन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजंनेना परावतः ।
इषं वहंन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजंमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव वर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वंस्मै भुवंनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युंषा आंवर्तमः ॥ ४ ॥
प्रत्यर्ची रुशंदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वंम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुंहिता भानुमंश्रेत् ॥ ५ ॥ २४ ॥
अतांरिष्म तमंसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।
श्रिये छन्दो न स्मंयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायांजीगः ॥ ६ ॥

---

उत् । अपप्तन् । अरुणाः । भानवंः । वृथां । सुऽआयुजंः । अरुंषीः । गाः । अयुक्षत । अक्रंन् । उषसंः । वयुनांनि । पूर्वऽथां । रुशंतं । भानुं । अरुंषीः । अशिश्रयुः ॥ २ ॥ अर्चंति । नारीः । अपसंः । न । विष्टिऽभिः । समानेनं । योजंनेन । आ । पराऽवतंः । इषं । वहंतीः । सुऽकृते । सुऽदानंवे । विश्वां । इत् । अहं । यजंमानाय । सुन्वते ॥ ३ ॥ अधि । पेशांसि । वपते । नृतूःऽइव । अपं । ऊर्णुते । वक्षः । उस्राऽइव । वर्जहं । ज्योतिः । विश्वंस्मै । भुवंनाय । कृण्वती । गावंः । न । व्रजं । वि । उषाः । आवरित्यांवः । तमंः ॥ ४ ॥ प्रति । अर्चिः । रुशंत् । अस्याः । अदर्शि । वि । तिष्ठते । बाधते । कृष्णं । अभ्वं । स्वरुं । न । पेशंः । विदथेषु । अंजन् । चित्रं । दिवः । दुहिता । भानुं । अश्रेत् ॥ ५ ॥ २४ ॥ अतारिष्म । तमंसः । पारं । अस्य । उषाः । उच्छंती । वयुना । कृणोति । श्रिये । छंदंः । न । स्मयते । विऽभाती । सुऽप्रतीका । सौमनसायं । अजीगरिति ॥ ६ ॥

भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥ ७ ॥
उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥ ८ ॥
विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति ।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥ ९ ॥
पुनःपुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥ १० ॥ २५ ॥
व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥ ११ ॥

---

भास्वती । नेत्री । सूनृतानां । दिवः । स्तवे । दुहिता । गोतमेभिः । प्रजाऽवतः ।
नृऽवतः । अश्वऽबुध्यान् । उषः । गोऽअग्रान् । उप । मासि । वाजान् ॥ ७ ॥
उषः । तं । अश्या । यशसं । सुऽवीरं । दासऽप्रवर्गं । रयिं । अश्वऽबुध्यं । सुऽदं-
ससा । श्रवसा । या । विऽभासि । वाजऽप्रसूता । सुऽभगे । बृहंतं ॥ ८ ॥
विश्वानि । देवी । भुवना । अभिऽचक्ष्य । प्रतीची । चक्षुः । उर्विया । वि । भाति ।
विश्वं । जीवं । चरसे । बोधयंती । विश्वस्य । वाचं । अविदत् । मनायोः ॥ ९ ॥
पुनःऽपुनः । जायमाना । पुराणी । समानं । वर्णं । अभि । शुंभमाना । श्वघ्नीऽइव ।
कृत्नुः । विजः । आऽमिनाना । मर्तस्य । देवी । जरयंती । आयुः ॥ १० ॥ २५ ॥
विऽऊर्ण्वती । दिवः । अंतान् । अबोधि । अप । स्वसारं । सनुतः । युयोति ।
प्रऽमिनती । मनुष्या । युगानि । योषा । जारस्य । चक्षसा । वि । भाति ॥ ११ ॥

पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत् ।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥ १२ ॥
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १३ ॥
उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि ।
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ १४ ॥
युक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ १५ ॥ २६ ॥
अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ १६ ॥

---

पशून् । न । चित्रा । सुऽभगा । प्रथाना । सिंधुः । न । क्षोदः । उर्विया । वि । अश्वैत् । अमिनती । दैव्यानि । व्रतानि । सूर्यस्य । चेति । रश्मिऽभिः । दृशाना ॥ १२ ॥ उषः । तत् । चित्रं । आ । भर । अस्मभ्यं । वाजिनीऽवति । येन । तोकं । च । तनयं । च । धामहे ॥ १३ ॥ उषः । अद्य । इह । गोऽमति । अश्वऽवति । विभाऽवरि । रेवत् । अस्मे इति । वि । उच्छ । सूनृताऽवति ॥ १४ ॥ युक्ष्व । हि । वाजिनीऽवति । अश्वान् । अद्य । अरुणान् । उषः । अथ । नः । विश्वा । सौभगानि । आ । वह ॥ १५ ॥ २६ ॥ अश्विना । वर्तिः । अस्मत् । आ । गोऽमत् । दस्रा । हिरण्यऽवत् । अर्वाक् । रथं । सऽमनसा । नि । यच्छतं ॥ १६ ॥

यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।

आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ १७ ॥

एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी ।

उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ १८ ॥ २७ ॥

॥ ९३ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ अग्नीषोमौ देवता ॥ आद्यस्तृच आनुष्टुभः ।

॥ ९३ ॥ अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।

प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १ ॥

अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।

तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २ ॥

अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।

स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥ ३ ॥

---

यौ । इत्था । श्लोकं । आ । दिवः । ज्योतिः । जनाय । चक्रथुः । आ । नः ।
ऊर्जं । वहतं । अश्विना । युवं ॥ १७ ॥ आ । इह । देवा । मयःऽभुवा । दस्रा ।
हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी । उषःऽबुधः । वहंतु । सोमऽपीतये ॥ १८ ॥ २७ ॥

अग्नीषोमौ । इमं । सु । मे । शृणुतं । वृषणा । हवं । प्रति । सुऽउक्तानि ।
हर्यतं । भवतं । दाशुषे । मयः ॥ १ ॥ अग्नीषोमा । यः । अद्य । वां । इदं । वचः ।
सपर्यति । तस्मै । धत्तं । सुऽवीर्यं । गवां । पोषं । सुऽअश्व्यं ॥ २ ॥ अग्नीषोमा ।
यः । आऽहुतिं । यः । वां । दाशात् । हविःऽकृतिं । सः । प्रऽजया । सुऽवीर्यं ।
विश्वं । आयुः । वि । अश्नवत् ॥ ३ ॥

अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ ४ ॥
युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥ ५ ॥
आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ ६ ॥ २८ ॥
अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥ ७ ॥
यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

---

अग्नीषोमा । चेति । तत् । वीर्यं । वां । यत् । अमुष्णीतं । अवसं । पणिं । गाः । अवं । अतिरतं । बृसयस्य । शेषः । अविन्दतं । ज्योतिः । एकं । बहुऽभ्यः ॥ ४ ॥ युवं । एतानि । दिवि । रोचनानि । अग्निः । च । सोम । सक्रतू । इति । सऽक्रतू । अधत्तं । युवं । सिन्धून् । अभिऽशस्तेः । अवद्यात् । अग्नीषोमौ । अमुंचतं । गृभीतान् ॥ ५ ॥ आ । अन्यं । दिवः । मातरिश्वा । जभार । अमथ्नात् । अन्यं । परि । श्येनः । अद्रेः । अग्नीषोमा । ब्रह्मणा । वावृधाना । उरुं । यज्ञाय । चक्रथुः । ऊं इति । लोकं ॥ ६ ॥ २८ ॥ अग्नीषोमा । हविषः । प्रऽस्थितस्य । वीतं । हर्यतं । वृषणा । जुषेथां । सुऽशर्माणा । सुऽअवसा । हि । भूतं । अथ । धत्तं । यजमानाय । शं । योः ॥ ७ ॥ यः । अग्नीषोमा । हविषा । सपर्यात् । देवद्रीचा । मनसा । यः । घृतेन । तस्य । व्रतं । रक्षतं । पातं । अंहसः । विशे । जनाय । महि । शर्म । यच्छतं ॥ ८ ॥

अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः ।
सं देवत्रा बभूवथुः ॥ ९ ॥
अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति ।
तस्मै दीदयतं बृहत् ॥ १० ॥
अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् ।
आ यातमुप नः सचा ॥ ११ ॥
अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥१२॥२९॥१४॥

## ॥ पञ्चदशोऽनुवाकः ॥

॥ ९४ ॥ ऋषि -कुत्स आङ्गिरस ॥ देवता-अग्नि छन्द,-जगति, त्रिष्टुप्।

॥ ९४ ॥ इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १ ॥

---

अग्नीषोमा । सऽवेदसा । सहूती इति सऽहूती । वनतं । गिरः । सं । देवऽत्रा । बभूवथुः ॥ ९ ॥ अग्नीषोमौ । अनेन । वां । यः । वां । घृतेन । दाशति । तस्मै । दीदयतं । बृहत् ॥ १० ॥ अग्नीषोमौ । इमानि । नः । युवं । हव्या । जुजोषतं । आ । यातं । उप । नः । सचा ॥ ११ ॥ अग्नीषोमा । पिपृतं । अर्वतः । नः । आ । प्यायंतां । उस्रियाः । हव्यऽसूदः । अस्मे इति । बलानि । मघवत्ऽसु । धत्तं । कृणुतं । नः । अध्वरं । श्रुष्टिऽमंतं ॥ १२ ॥ २९ ॥ १४ ॥

इमं । स्तोमं । अर्हते । जातऽवेदसे । रथंऽइव । सं । महेम । मनीषया । भद्रा । हि । नः । प्रऽमतिः । अस्य । संऽसदि । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ १ ॥

यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम् ।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २ ॥
शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥
भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४ ॥
विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ५ ॥ ३० ॥
त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ६ ॥

---

यस्मै । त्वं । आऽयजसे । सः । साधति । अनर्वा । क्षेति । दधते । सुऽवीर्यं । सः । तूताव । न । एनं । अश्नोति । अंहतिः । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ २ ॥ शकेम । त्वा । संऽइधं । साधय । धियः । त्वे इति । देवाः । हविः । अदंति । आऽहुतं । त्वं । आदित्यान् । आ । वह । तान् । हि । उश्मसि । अग्ने । सख्ये । मा रिषाम । वयं । तव ॥ ३ ॥ भराम । इध्मं । कृणवाम । हवींषि । ते । चितयंतः । पर्वणाऽपर्वणा । वयं । जीवातवे । प्रऽतरं । साधय । धियः । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ४ ॥ विशां । गोपाः । अस्य । चरंति । जंतवः । द्विऽपत् । च । यत् । उत । चतुःऽपत् । अक्तुऽभिः । चित्रः । प्रऽकेतः । उषसः । महान् । असि । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ५ ॥ ३० ॥ त्वं । अध्वर्युः । उत । होता । असि । पूर्व्यः । प्रऽशास्ता । पोता । जनुषा । पुरःऽहितः । विश्वा । विद्वान् । आर्त्विज्या । धीर । पुष्यसि । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ६ ॥

यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित्सन्तळिदिवाति रोचसे ।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ७ ॥
पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ८ ॥
वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ९ ॥
यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १० ॥ ३१ ॥
अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ११ ॥

---

यः । विश्वतः । सुऽप्रतीकः । सऽदृङ् । असि । दूरे । चित् । सन् । तळित्ऽइव । अति । रोचसे । रात्र्याः । चित् । अंधः । अति । देव । पश्यसि । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ७ ॥ पूर्वः । देवाः । भवतु । सुन्वतः । रथः । अस्माकं । शंसः । अभि । अस्तु । दुःऽध्यः । तत् । आ । जानीत । उत । पुष्यत । वचः । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ८ ॥ वधैः । दुःऽशंसान् । अप । दुःऽध्यः । जहि । दूरे । वा । ये । अंति । वा । के । चित् । अत्रिणः । अथ । यज्ञाय । गृणते । सुऽगं । कृधि । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ९ ॥ यत् । अयुक्थाः । अरुषा । रोहिता । रथे । वातऽजूता । वृषभस्यऽइव । ते । रवः । आत् । इन्वसि । वनिनः । धूमऽकेतुना । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ १० ॥ ३१ ॥ अध । स्वनात् । उत । बिभ्युः । पतत्रिणः । द्रप्साः । यत् । ते । यवसऽअदः । वि । अस्थिरन् । सुऽगं । तत् । ते । तावकेभ्यः । रथेभ्यः । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ११ ॥

अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १२ ॥
देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १३ ॥
तत्ते भद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १४ ॥
यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥ १५ ॥
स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥१६॥३२॥६॥

---

अयं । मित्रस्य । वरुणस्य । धायसे । अवऽयातां । मरुतां । हेळः । अद्भुतः । मृळ । सु । नः । भूतु । एषां । मनः । पुनः । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ १२ ॥ देवः । देवानां । असि । मित्रः । अद्भुतः । वसुः । वसूनां । असि । चारुः । अध्वरे । शर्मन् । स्याम । तव । सप्रथःऽतमे । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ १३ ॥ तत् । ते । भद्रं । यत् । संऽइद्धः । स्वे । दमे । सोमऽआहुतः । जरसे । मृळयत्ऽतमः । दधासि । रत्नं । द्रविणं । च । दाशुषे । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ १४ ॥ यस्मै । त्वं । सुऽद्रविणः । ददाशः । अनागाःऽत्वं । अदिते । सर्वऽताता । यं । भद्रेण । शवसा । चोदयासि । प्रजाऽवता । राधसा । ते । स्याम ॥ १५ ॥ सः । त्वं । अग्ने । सौभगऽत्वस्य । विद्वान् । अस्माकं । आयुः । प्र । तिर । इह । देव । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंतां । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ १६ ॥ ३२ ॥ ॥ ६ ॥

इति प्रथमाष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## ॥ अथ प्रथमाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ ९५ ॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–अग्नि । छन्द–त्रिष्टुप् ॥

॥ ९५ ॥ द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ १ ॥
दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥ २ ॥
त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून्प्रशासद्वि दधावनुष्ठु ॥ ३ ॥
क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातॄर्जनयत स्वधाभिः ।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥ ४ ॥

---

## ॥ अथ प्रथमाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

द्वे इति । विरूपे इति विऽरूपे । चरतः । स्वर्थे इति सुऽअर्थे । अन्याऽअन्या । वत्सं । उप । धापयेते इति । हरिः । अन्यस्यां । भवति । स्वधाऽवान् । शुक्रः । अन्यस्यां । ददृशे । सुऽवर्चाः ॥ १ ॥ दश । इमं । त्वष्टुः । जनयन्त । गर्भं । अतन्द्रासः । युवतयः । विऽभृत्रं । तिग्मऽअनीकं । स्वऽयशसं । जनेषु । विऽरोचमानं । परि । सीं । नयन्ति ॥ २ ॥ त्रीणि । जाना । परि । भूषन्ति । अस्य । समुद्रे । एकं । दिवि । एकं । अप्ऽसु । पूर्वां । अनु । प्र । दिशं । पार्थिवानां । ऋतून् । प्रऽशासत् । वि । दधौ । अनुष्ठु ॥ ३ ॥ कः । इमं । वः । निण्यं । आ । चिकेत । वत्सः । मातॄः । जनयत । स्वधाभिः । बह्वीनां । गर्भः । अपसां । उपऽस्थात् । महान् । कविः । निः । चरति । स्वधाऽवान् ॥ ४ ॥

आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात्प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥ ५ ॥ १ ॥
उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥ ६ ॥
उद्यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥ ७ ॥
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥ ८ ॥
उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥ ९ ॥

---

आविःऽत्यः । वर्धते । चारुः । आसु । जिह्मानाम् । ऊर्ध्वः । स्वऽयशाः । उपऽस्थे । उभे इति ।
त्वष्टुः । बिभ्यतुः । जायमानात् । प्रतीची इति । सिंहम् । प्रति । जोषयेते इति ॥ ५ ॥ १ ॥
उभे इति । भद्रे इति । जोषयेते इति । न । मेने इति । गावः । न । वाश्राः ।
उप । तस्थुः । एवैः । सः । दक्षाणाम् । दक्षऽपतिः । बभूव । अञ्जन्ति । यम् ।
दक्षिणतः । हविःऽभिः ॥ ६ ॥ उत् । यंयमीति । सविताऽइव । बाहू इति । उभे
इति । सिचौ । यतते । भीमः । ऋञ्जन् । उत् । शुक्रम् । अत्कम् । अजते ।
सिमस्मात् । नवा । मातृऽभ्यः । वसना । जहाति ॥ ७ ॥ त्वेषम् । रूपम् । कृणुते ।
उत्ऽतरम् । यत् । सम्ऽपृञ्चानः । सदने । गोभिः । अत्ऽभिः । कविः । बुध्नम् ।
परि । मर्मृज्यते । धीः । सा । देवऽताता । सम्ऽइतिः । बभूव ॥ ८ ॥ उरु । ते ।
ज्रयः । परि । एति । बुध्नम् । विऽरोचमानम् । महिषस्य । धाम । विश्वेभिः ।
अग्ने । स्वयशःऽभिः । इद्धः । अदब्धेभिः । पायुऽभिः । पाहि । अस्मान् ॥ ९ ॥

धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥ १० ॥
एवा अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥ २ ॥

॥ ९६ ॥ ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्स । देवता शुद्धोग्नि । त्रिष्टुप्-छन्दः ॥

॥९६॥ स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ १ ॥
स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ २ ॥
तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ३ ॥

---

धन्वन् । स्रोतः । कृणुते । गातुं । ऊर्मिं । शुक्रैः । ऊर्मिऽभिः । अभि । नक्षति । क्षां । विश्वा । सनानि । जठरेषु । धत्ते । अंतः । नवासु । चरति । प्रऽसूषु ॥ १० ॥ एव । नः । अग्ने । संऽइधा । वृधानः । रेवत् । पावक । श्रवसे । वि । भाहि । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंतां । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत द्यौः ॥ ११ ॥ २ ॥

सः । प्रत्नऽथा । सहसा । जायमानः । सद्यः । काव्यानि । बट् । अधत्त । विश्वा । आपः । च । मित्रं । धिषणा । च । साधन् । देवाः । अग्निं । धारयन् । द्रविणःऽदां ॥ १ ॥ सः । पूर्वया । निऽविदा । कव्यता । आयोः । इमाः । प्रऽजाः । अजनयत् । मनूनां । विवस्वता । चक्षसा । द्यां । अपः । च । देवाः । अग्निं । धारयन् । द्रविणःऽदां ॥ २ ॥ तं । ईळत । प्रथमं । यज्ञऽसाधं । विशः । आरीः । आऽहुतं । ऋंजसानं । ऊर्जः । पुत्रं । भरतं । सृप्रऽदानुं । देवाः । अग्निं । धारयन् । द्रविणःऽदां ॥ ३ ॥

स मा॒तरि॒श्वा॑ पु॑रु॒वार॑पुष्टिर्वि॒दद्गा॒तुं तन॑याय स्व॒र्वित् ।
वि॒शां गो॒पा ज॑नि॒ता रोद॑स्योर्दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन्द्रविणो॒दाम् ॥ ४ ॥
नक्तो॒षासा॒ वर्ण॑मा॒मेम्या॑ने धा॒पये॑ते॒ शिशु॒मेकं॑ समी॒ची ।
द्यावा॒क्षामा॑ रु॒क्मो अ॒न्तर्वि भा॑ति दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन्द्रविणो॒दाम् ॥५॥३॥
रा॒यो बु॒ध्नः सं॒गम॑नो॒ वसू॑नां य॒ज्ञस्य॑ के॒तुर्म॑न्म॒साध॑नो॒ वेः ।
अ॒मृ॒त॒त्वं रक्ष॑माणास एनं दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन्द्रविणो॒दाम् ॥ ६ ॥
नू च॑ पु॒रा च॒ सद॑नं रयी॒णां जा॒तस्य॑ च॒ जाय॑मानस्य च॒ क्षाम् ।
स॒तश्च॑ गो॒पां भव॑तश्च॒ भूरे॑र्दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन्द्रविणो॒दाम् ॥ ७ ॥
द्र॒वि॒णो॒दा द्रवि॑णसस्तु॒रस्य॑ द्रविणो॒दाः सन॑रस्य॒ प्र यं॑सत् ।
द्र॒वि॒णो॒दा वी॒रव॑तीमि॒षं नो॑ द्रविणो॒दा रा॑सते दी॒र्घमायुः॑ ॥ ८ ॥

---

सः मा॒तरि॒श्वा॑ । पु॒रु॒वार॑ऽपुष्टिः । वि॒दत् । गा॒तुम् । तन॑याय । स्वः॒ऽवित् । वि॒शाम् । गो॒पाः । ज॒नि॒ता । रोद॑स्योः । दे॒वाः । अ॒ग्निम् । धा॒र॒य॒न् । द्र॒वि॒णः॒ऽदाम् ॥ ४ ॥
नक्तो॒षसा॑ । वर्ण॑म् । आ॒मेम्या॑ने॒ इत्या॒ऽमेम्या॑ने । धा॒पये॑ते॒ इति॑ । शिशु॑म् । एक॑म् । स॒मी॒ची इति॑ स॒म्ऽई॒ची । द्यावा॒क्षामा॑ । रु॒क्मः । अ॒न्तः । वि । भा॒ति॒ । दे॒वाः । अ॒ग्निम् । धा॒र॒य॒न् । द्र॒वि॒णः॒ऽदाम् ॥ ५ ॥ ३ ॥ रा॒यः । बु॒ध्नः । स॒म्ऽगम॑नः । वसू॑नाम् । य॒ज्ञस्य॑ । के॒तुः । म॒न्म॒ऽसाध॑नः । वेरिति॒ वेः । अ॒मृ॒त॒ऽत्वम् । रक्ष॑माणासः । ए॒न॒म् । दे॒वाः । अ॒ग्निम् । धा॒र॒य॒न् । द्र॒वि॒णः॒ऽदाम् ॥ ६ ॥ नु । च॒ । पु॒रा । च॒ । सद॑नम् । र॒यी॒णाम् । जा॒तस्य॑ । च॒ । जाय॑मानस्य । च॒ । क्षाम् । स॒तः । च॒ । गो॒पाम् । भव॑तः । च॒ । भूरेः॑ । दे॒वाः । अ॒ग्निम् । धा॒र॒य॒न् । द्र॒वि॒णः॒ऽदाम् ॥ ७ ॥ द्र॒वि॒णः॒ऽदाः । द्रवि॑णसः । तु॒रस्य॑ । द्र॒वि॒णः॒ऽदाः । सन॑रस्य । प्र । यं॒स॒त् । द्र॒वि॒णः॒ऽदाः । वी॒रऽव॑तीम् । इष॑म् । नः॒ । द्र॒वि॒णः॒ऽदाः । रा॒स॒ते॒ । दी॒र्घम् । आयुः॑ ॥ ८ ॥

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥ ४ ॥

॥ ९७ ॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–शुद्धोग्नि । छन्द–गायत्री ।

॥ ९७ ॥ अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ १ ॥
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ २ ॥
प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ३ ॥
प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ४ ॥
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ५ ॥

---

एव । नः । अग्ने । सम्ऽइधा । वृधानः । रेवत् । पावक । श्रवसे । वि । भाहि । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्ताम् । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ९ ॥ ४ ॥

अप । नः । शोशुचत् । अघम् । अग्ने । शुशुग्धि । आ । रयिम् । अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ १ ॥ सुऽक्षेत्रिया । सुगातुऽया । वसुऽया । च । यजामहे । अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ २ ॥ प्र । यत् । भन्दिष्ठः । एषाम् । प्र । अस्माकासः । च । सूरयः । अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ ३ ॥ प्र । यत् । ते । अग्ने । सूरयः । जायेमहि । प्र । ते । वयम् । अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ ४ ॥ प्र । यत् । अग्नेः । सहस्वतः । विश्वतः । यन्ति । भानवः । अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ ५ ॥

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ७ ॥
स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ८ ॥ ५ ॥

॥ ९८ ॥ ऋषिः-आङ्गिरसः कुत्स । देवता-अग्नि । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥ ९८ ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ २ ॥

---

त्वं । हि । विश्वतःऽमुख । विश्वतः । परिऽभूः । असि । अप । नः । शोशुचत् । अघं ॥ ६ ॥ द्विषः । नः । विश्वतःऽमुख । अति । नावाऽइव । पारय । अप । नः । शोशुचत् । अघं ॥ ७ ॥ सः । नः । सिंधुंऽइव । नावया । अति । पर्ष । स्वस्तये । अप । नः । शोशुचत् । अघं ॥ ८ ॥ ५ ॥

वैश्वानरस्य । सुऽमतौ । स्याम । राजा । हि । कं । भुवनानां । अभिऽश्रीः । इतः । जातः । विश्वं । इदं । वि । चष्टे । वैश्वानरः । यतते । सूर्येण ॥ १ ॥ पृष्टः । दिवि । पृष्टः । अग्निः । पृथिव्यां । पृष्टः । विश्वाः । ओषधीः । आ । विवेश । वैश्वानरः । सहसा । पृष्टः । अग्निः । सः । नः । दिवा । सः । रिषः । पातु । नक्तं ॥ २ ॥

...श्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मान्रायो मघवानः सचन्ताम् ।
...न्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २ ॥ ६ ॥

॥ ९९ ॥ ऋषि-मरीचिपुत्र, कश्यप ऋषि । देवता-जातवेदोऽग्नि. छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥ ९९ ॥ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
...नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥ ७ ॥

॥ १०० ॥ ऋषय.-वृषागिर ... ऋज्राश्व अम्बरीष सहदेव भयमान सुराधस । देवता इन्द्र । छन्द ... त्रिष्टुप् ।

॥१००॥ स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
...तीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥
...यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति ।
...वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २ ॥

दि॒वो न यस्य॒ रेत॑सो॒ दुघा॑नाः॒ पन्था॑सो॒ यन्ति॑ शव॒सापरी॑ताः ।
तर॒द्द्वे॑षाः सास॒हिः पौंस्ये॑भिर्म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥ ३ ॥
सो अङ्गि॑रोभि॒रङ्गि॑रस्तमो भू॒द्वृषा॒ वृष॑भिः॒ सखि॑भिः॒ सखा॒ सन् ।
ऋ॒ग्मिभि॑र्ऋ॒ग्मी गा॒तुभि॒र्ज्येष्ठो॑ म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥ ४ ॥
स सू॒नुभि॒र्न रु॒द्रेभि॒र्ऋभ्वा॑ नृ॒षाह्ये॑ सास॒ह्वाँ अ॒मित्रा॑न् ।
सनी॑ळेभिः श्रव॒स्या॑नि॒ तूर्व॑न्म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥ ५ ॥ ८ ॥
स म॑न्यु॒मीः स॒मद॑नस्य क॒र्तास्माके॑भि॒र्नृभि॒ः सूर्यं॑ सनत् ।
अ॒स्मिन्नह॒न्त्सत्प॑तिः पुरुहू॒तो म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥ ६ ॥
तमू॒तयो॑ रणय॒ञ्छूर॑सातौ॒ तं क्षेम॑स्य क्षि॒तयः॑ कृण्वत॒ त्राम् ।
स विश्व॑स्य क॒रुण॑स्येश॒ एको॑ म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥ ७ ॥

---

दि॒वः । न । यस्य॑ । रेत॑सः । दुघा॑नाः । पंथा॑सः । यंति॑ । शव॑सा । अप॑रिऽइताः ।
त॒र॒त्ऽद्वे॑षाः । स॒स॒हिः । पौंस्ये॑भिः । म॒रुत्वा॑न् । नः॒ । भ॒व॒तु॒ । इंद्रः॑ । ऊ॒ती ॥ ३ ॥
सः । अंगि॑रःऽभिः । अंगि॑रःऽतमः । भू॒त् । वृषा॑ । वृष॑ऽभिः । सखि॑ऽभिः । सखा॑ ।
सन् । ऋ॒ग्मिऽभिः॑ । ऋ॒ग्मी । गा॒तुऽभिः॑ । ज्येष्ठः॑ । म॒रुत्वा॑न् । नः॒ । भ॒व॒तु॒ । इंद्रः॑ ।
ऊ॒ती ॥ ४ ॥ सः । सू॒नुऽभिः॑ । न । रु॒द्रेभिः॑ । ऋभ्वा॑ । नृ॒ऽसह्ये॑ । स॒स॒ह्वान् ।
अ॒मित्रा॑न् । सऽनी॑ळेभिः । श्र॒व॒स्या॑नि । तूर्व॑न् । म॒रुत्वा॑न् । नः॒ । भ॒व॒तु॒ । इंद्रः॑ । ऊ॒ती
॥ ५ ॥ ८ ॥ सः । म॒न्यु॒ऽमीः । स॒ऽमद॑नस्य । क॒र्ता । अ॒स्माके॑भिः । नृऽभिः॑ ।
सूर्य॑ । स॒न॒त् । अ॒स्मिन् । अह॑न् । सत्ऽप॑तिः । पु॒रु॒ऽहू॒तः । म॒रुत्वा॑न् । नः॒ ।
भ॒व॒तु॒ । इंद्रः॑ । ऊ॒ती ॥ ६ ॥ तं । ऊ॒तयः॑ । र॒ण॒य॒न् । शूर॑ऽसातौ । तं । क्षेम॑स्य ।
क्षि॒तयः॑ । कृ॒ण्व॒त॒ । त्राम् । सः । विश्व॑स्य । क॒रुण॑स्य । ई॒शे॒ । एकः॑ । म॒रुत्वा॑न् ।
भ॒व॒तु॒ । इंद्रः॑ । ऊ॒ती ॥ ७ ॥

तम॑प्सन्त॒ शव॑स उत्स॒वेषु॒ नरो॒ नर॒मव॑से॒ तं धना॑य ।
सो अ॒न्धे चि॒त्तम॑सि॒ ज्योति॑र्विद॒न्मरु॑त्वान्नो भवत्विन्द्र ऊ॒ती ॥ ८ ॥
स स॒व्येन॑ यमति॒ व्राध॑तश्चि॒त्स द॑क्षि॒णे संगृ॑भीता कृ॒तानि॑ ।
स की॒रिणा॑ चि॒त्सनि॑ता॒ धना॑नि म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र ऊ॒ती ॥ ९ ॥
स ग्रामे॑भिः॒ सनि॑ता॒ स रथे॑भिर्वि॒दे विश्वा॑भिः कृ॒ष्टिभि॒र्न्व१॒॑द्य ।
स पौंस्ये॑भिरभि॒भूरश॑स्तीर्म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र ऊ॒ती ॥ १० ॥ ९ ॥
स जा॒मिभि॒र्यत्स॒मजा॑ति मी॒ळ्हेऽजा॑मिभिर्वा पुरुहू॒त एवैः॑ ।
अ॒पां तो॒कस्य॒ तन॑यस्य जे॒षे म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र ऊ॒ती ॥ ११ ॥
स व॒ज्रभृ॑द्दस्यु॒हा भी॒म उ॒ग्रः स॒हस्र॑चेताः श॒तनी॑थ॒ ऋभ्वा॑ ।
च॒म्री॒षो न शव॑सा॒ पाञ्च॑जन्यो म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र ऊ॒ती ॥ ॥ १२ ॥

---

तम् । अप्स॑न्त । शव॑सः । उ॒त्ऽस॒वेषु॑ । नरः॑ । नर॑म् । अव॑से । तम् । धना॑य । सः । अ॒न्धे । चि॒त् । तम॑सि । ज्योतिः॑ । वि॒दत् । म॒रुत्वा॑न् । नः॒ । भ॒व॒तु॒ । इन्द्रः॑ । ऊ॒ती ॥ ८ ॥ सः । स॒व्येन॑ । य॒म॒ति॒ । व्राध॑तः । चि॒त् । सः । द॒क्षि॒णे । सम्ऽगृ॑भीता । कृ॒तानि॑ । सः । की॒रिणा॑ । चि॒त् । सनि॑ता । धना॑नि । म॒रुत्वा॑न् ।

तस्य॒ वज्रः॑ क्रन्दति॒ स्मत्स्व॒र्षा दि॒वो न त्वे॒षो र॒वथः॒ शिमी॑वान् ।
तं स॑चन्ते स॒नय॒स्तं धना॑नि म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥ १३ ॥
यस्याज॑स्रं॒ शव॑सा॒ मान॑मु॒क्थं प॑रिभु॒जद्रोद॑सी वि॒श्वतः॑ सीम् ।
स पा॑रिष॒त्क्रतु॑भि॒र्मन्द॒सा॒नो म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥ १४ ॥
न यस्य॑ दे॒वा दे॒वता॒ न मर्ता॒ आप॑श्च॒न शव॑सो॒ अन्त॑माप॒ुः ।
स प्ररि॒क्वा त्वक्ष॑सा॒ क्ष्मो दि॒वश्च॑ म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥ १५ ॥ १० ॥
रो॒हिच्छ्या॒वा सु॒मद॑ंशुर्ल॒लामी॑र्द्यु॒क्षा रा॒य ऋ॒ज्राश्व॑स्य ।
वृष॑ण्वन्तं॒ बिभ्र॑ती धू॒र्षु रथं॑ म॒न्द्रा चि॑केत॒ नाहु॑षीषु वि॒क्षु ॥ १६ ॥
ए॒तत्त्यत्त॑ इन्द्र॒ वृष्ण॑ उ॒क्थं वा॑र्षागि॒रा अ॒भि गृ॑णन्ति॒ राधः॑ ।
ऋ॒ज्राश्वः॒ प्रष्टि॑भिरम्ब॒रीषः॑ स॒हदे॑वो॒ भय॑मानः सु॒राधाः॑ ॥ १७ ॥

---

तस्य॑ । वज्रः॑ । क्रं॒द॒ति॒ । स्मत् । स्वः॒ऽसाः । दि॒वः । न । त्वे॒षः । र॒वथः॑ । शिमी॑ऽवान् । तं । स॒चं॒ते॒ । स॒नयः॑ । तं । धना॑नि । म॒रुत्वा॑न् । नः॒ । भ॒व॒तु॒ । इंद्रः॑ । ऊ॒ती ॥ १३ ॥ यस्य॑ । अज॑स्रं । शव॑सा । मान॑ । उ॒क्थं । प॒रि॒ऽभु॒जत् । रोद॑सी॒ इति॑ । वि॒श्वतः॑ । सीं॒ । सः । पा॒रि॒ष॒त् । क्रतु॑ऽभिः । मं॒द॒सा॒नः । म॒रुत्वा॑न् । नः॒ । भ॒व॒तु॒ । इंद्रः॑ । ऊ॒ती ॥ १४ ॥ न । यस्य॑ । दे॒वाः । दे॒वता॑ । न । मर्ताः॑ । आपः॑ । च॒न । शव॑सः । अंत॑ । आ॒पुः । सः । प्र॒ऽरिक्वा॑ । त्वक्ष॑सा । क्ष्मः । [illegible]वः । च॒ । म॒रुत्वा॑न् । नः॒ । भ॒व॒तु॒ । इंद्रः॑ । ऊ॒ती ॥ १५ ॥ १० ॥ रो॒हित् । श्या॒वा । सु॒मत्ऽअं॑शुः । ल॒ला॒मीः । द्यु॒क्षा । रा॒ये । ऋ॒ज्रऽअ॑श्वस्य । वृष॑ण्ऽवंतं । [illegible]भ्रती । धूः॒ऽसु । रथं॑ । मं॒द्रा । चि॒के॒त॒ । नाहु॑षीषु । वि॒क्षु ॥ १६ ॥ ए॒तत् । त्यत् । ते॒ । इं॒द्र॒ । वृष्णे॑ । उ॒क्थं । वा॒र्षा॒गि॒राः । अ॒भि । गृ॒णं॒ति॒ । राधः॑ । ऋ॒ज्रऽअ॑श्वः । [illegible] । अं॒ब॒रीषः॑ । स॒हऽदे॑वः । भय॑मानः । सु॒ऽराधाः॑ ॥ १७ ॥

दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।
सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥ १८ ॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १९ ॥ ११ ॥

॥ १०१ ॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र । छन्दः–जगती त्रिष्टुभ् ॥

॥१०१॥ प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥
यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ २ ॥
यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ३ ॥

---

दस्यून् । शिम्यून् । च । पुरुऽहूतः । एवैः । हत्वा । पृथिव्यां । शर्वा । नि । बर्हीत् । सनत् । क्षेत्रं । सखिऽभिः । श्वित्न्येभिः । सनत् । सूर्यं । सनत् । अपः । सुऽवज्रः ॥ १८ ॥ विश्वाहा । इन्द्रः । अधिऽवक्ता । नः । अस्तु । अपरिऽह्वृताः । सनुयाम । वाजं । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्ताम् । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ १९ ॥ ११ ॥

प्र । मन्दिने । पितुऽमत् । अर्चत । वचः । यः । कृष्णऽगर्भाः । निःऽअहन् । ऋजिश्वना । अवस्यवः । वृषणम् । वज्रऽदक्षिणम् । मरुत्वन्तम् । सख्याय । हवामहे ॥ १ ॥ यः । विऽअंसम् । जहृषाणेन । मन्युना । यः । शम्बरम् । यः । अहन् । पिप्रुम् । अव्रतम् । इन्द्रः । यः । शुष्णम् । अशुषं । नि । अवृणक् । मरुत्वन्तम् । सख्याय । हवामहे ॥ २ ॥ यस्य । द्यावापृथिवी इति । पौंस्यम् । महत् । यस्य । व्रते । वरुणः । यस्य । सूर्यः । यस्य । इन्द्रस्य । सिन्धवः । सश्चति । व्रतम् । मरुत्वन्तम् । सख्याय । हवामहे ॥ ३ ॥

यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४ ॥
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ५ ॥
यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ६ ॥ १२ ॥
रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ७ ॥
यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥ ८ ॥

---

यः । अश्वानां । यः । गवां । गोऽपतिः । वशी । यः । आरितः । कर्मणिऽकर्मणि । स्थिरः । वीळोः । चित् । इंद्रः । यः । असुन्वतः । वधः । मरुत्वंतं । सख्याय । हवामहे ॥ ४ ॥ यः । विश्वस्य । जगतः । प्राणतः । पतिः । यः । ब्रह्मणे । प्रथमः । गाः । अविंदत् । इंद्रः । यः । दस्यून् । अधरान् । अवऽअतिरत् । मरुत्वंतं । सख्याय । हवामहे ॥ ५ ॥ यः । शूरेभिः । हव्यः । यः । च । भीरुऽभिः । यः । धावत्ऽभिः । हूयते । यः । च । जिग्युऽभिः । इंद्रं । यं । विश्वा । भुवना । अभि । संऽदधुः । मरुत्वंतं । सख्याय । हवामहे ॥ ६ ॥ १२ ॥ रुद्राणां । एति । प्रऽदिशा । विऽचक्षणः । रुद्रेभिः । योषा । तनुते । पृथु । ज्रयः । इंद्रं । मनीषा । अभि । अर्चति । श्रुतं । मरुत्वंतं । सख्याय । हवामहे ॥ ७ ॥ यत् । वा । मरुत्वः । परमे । सधऽस्थे । यत् । वा । अवमे । वृजने । मादयासे । अतः । आ । याहि । अध्वरं । नः । अच्छ । त्वाऽया । हविः । चकृम । सत्यऽराधः ॥ ८

त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन्यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥ ९ ॥
मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन्हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥ १० ॥
मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥ १३ ॥

॥ १०२ ॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र । छन्द–जगती त्रिष्टुभ् ॥

॥ १०२ ॥ इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥ १ ॥
अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥ २ ॥

---

त्वाऽया । इन्द्र । सोमम् । सुसुम । सुऽदक्ष । त्वाऽया । हविः । चकृम । ब्रह्मऽवाहः ।
अध । निऽयुत्वः । सऽगणः । मरुत्ऽभिः । अस्मिन् । यज्ञे । बर्हिषि । मादयस्व ॥ ९ ॥
मादयस्व । हरिऽभिः । ये । ते । इन्द्र । वि । स्यस्व । शिप्रे इति । वि ।

तं स्मा रथं मघवन्प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥ ३ ॥
वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥ ४ ॥
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ ५ ॥ १४
गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजङ्करः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥ ६ ॥
उत्ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत्सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरन्दर ॥ ७ ॥

---

तम् । स्म । रथम् । मघऽवन् । प्र । अव । सातये । जैत्रम् । यम् । ते अनुऽमदाम । सम्ऽगमे । आजा । नः । इन्द्र । मनसा । पुरुऽस्तुत । त्वायत्ऽभ्यः मघऽवन् । शर्म । यच्छ । नः ॥ ३ ॥ वयम् । जयेम । त्वया । युजा । वृतम् अस्माकम् । अंशम् । उत् । अव । भरेऽभरे । अस्मभ्यम् । इन्द्र । वरिवः । सुऽगम् कृधि । प्र । शत्रूणाम् । मघऽवन् । वृष्ण्या । रुज ॥ ४ ॥ नाना । हि । त्वा हवमानाः । जनाः । इमे । धनानाम् । धर्तः । अवसा । विपन्यवः । अस्माकम् स्म । रथम् । आ । तिष्ठ । सातये । जैत्रम् । हि । इन्द्र । निऽभृतम् । मनः तव ॥ ५ ॥ १४ ॥ गोऽजिता । बाहू इति । अमितऽक्रतुः । सिमः । कर्मन्ऽकर्मन् । शतम्ऽऊतिः । खजम्ऽकरः । अकल्पः । इन्द्रः । प्रतिऽमानम् । ओजसा अथ । जनाः । वि । ह्वयन्ते । सिसासवः ॥ ६ ॥ उत् । ते । शतात् । मघऽवन् उत् । च । भूयसः । उत् । सहस्रात् । रिरिचे । कृष्टिषु । श्रवः । अमात्रम् । धिषणा । तित्विषे । मही । अध । वृत्राणि । जिघ्नसे । पुरम्ऽदर ॥ ७

त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ८ ॥
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ९ ॥
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १० ॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥ १५ ॥

॥ १०३ ॥ ऋषि –आङ्गिरसः कुत्सः । देवता–इन्द्रः । छन्दः–जगती त्रिष्टुप् ॥

॥ १०३ ॥ तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।
क्षमेदमन्यद्दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥

---

त्रिविष्टिऽधातु । प्रतिऽमानम् । ओजसः । तिस्रः । भूमीः । नृऽपते । त्रीणि । रोचना । अति । इदम् । विश्वम् । भुवनम् । ववक्षिथ । अशत्रुः । इन्द्र । जनुषा । सनात् । असि ॥ ८ ॥ त्वाम् । देवेषु । प्रथमम् । हवामहे । त्वम् । बभूथ । पृतनासु । ससहिः । सः । इमम् । नः । कारुम् । उपऽमन्युम् । उत्ऽभिदम् । इन्द्रः । कृणोतु । प्रऽसवे । रथम् । पुरः ॥ ९ ॥ त्वम् । जिगेथ । न । धना । रुरोधिथ । अर्भेषु । आजा । मघऽवन् । महत्ऽसु । च । त्वाम् । उग्रम् । अवसे । सम् । शिशीमसि । अथ । नः । इन्द्र । हवनेषु । चोदय ॥ १० ॥ विश्वाहा । इन्द्रः । अधिऽवक्ता । नः । अस्तु । अपरिऽह्वृताः । सनुयाम । वाजम् । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्ताम् । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ११ ॥ १५ ॥

तत् । ते । इन्द्रियम् । परमम् । पराचैः । अधारयन्त । कवयः । पुरा । इदम् । क्षमा । इदम् । अन्यत् । दिवि । अन्यत् । अस्य । सम् । ईमिति । पृच्यते । समनाऽइव । केतुः ॥ १ ॥

स धारयत्पृथिवीं पप्रथंच्च वज्रेण हत्वा निरपः संसर्ज ।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन्व्यंसं मघवा शचीभिः ॥ २ ॥
स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः ।
विद्वान्वंज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३ ॥
तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रंत् ।
उपप्रयन्दंस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥
तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥ ५॥१६॥
भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयंज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६ ॥

---

सः । धारयत् । पृथिवीम् । पप्रथंत् । च । वज्रेण । हत्वा । निः । अपः । ससर्ज । अहन् । अहिम् । अभिनत् । रौहिणम् । वि । अहन् । विऽअंसम् । मघऽवा । शचीभिः ॥ २ ॥ सः । जातूऽभर्मा । श्रत्ऽदधानः । ओजः । पुरः । विऽभिन्दन् । अचरत् । वि । दासीः । विद्वान् । वज्रिन् । दस्यवे । हेतिम् । अस्य । आर्यम् । सहः । वर्धय । द्युम्नम् । इन्द्र ॥ ३ ॥ तत् । ऊचुषे । मानुषा । इमा । युगानि । कीर्तेन्यम् । मघऽवा । नाम । बिभ्रंत् । उपऽप्रयन् । दस्युऽहत्याय । वज्री । यत् । ह । सूनुः । श्रवसे । नाम । दधे ॥ ४ ॥ तत् । अस्य । इदम् । पश्यत । भूरि । पुष्टम् । श्रत् । इन्द्रस्य । धत्तन । वीर्याय । सः । गाः । अविन्दत् । सः । अविन्दत् । अश्वान् । सः । ओषधीः । सः । अपः । सः । वनानि ॥ ५ ॥ १६ ॥ भूरिऽकर्मणे । वृषभाय । वृष्णे । सत्यऽशुष्माय । सुनवाम । सोमम् । यः । आऽदृत्य । परिपन्थीऽइव । शूरः । अयज्वनः । विऽभजन् । एति । वेदः ॥ ६ ॥

तदिन्द्र प्रेवं वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७ ॥
शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥ १७ ॥

॥ १०४ ॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र । छन्द–जगती त्रिष्टुभ् ॥

॥ १०४ ॥ योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् ॥ २ ॥
अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन् ।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥ ३ ॥

---

तत् । इन्द्र । प्रऽइव । वीर्यं । चकर्थ । यत् । ससन्तं । वज्रेण । अबोधयः । अहिं ।
अनु । त्वा । पत्नीः । हृषितं । वयः । च । विश्वे । देवासः । अमदन् । अनु ।
त्वा ॥ ७ ॥ शुष्णं । पिप्रुं । कुयवं । वृत्रं । इन्द्र । यदा । अवधीः । वि । पुरः ।
शम्बरस्य । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्तां । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी ।
उत । द्यौः ॥ ८ ॥ १७ ॥

योनिः । ते । इन्द्र । निऽसदे । अकारि । तं । आ । नि । सीद । स्वानः ।
न । अर्वा । विऽमुच्य । वयः । अवऽसाय । अश्वान् । दोषा । वस्तोः । वहीयसः ।
प्रऽपित्वे ॥ १ ॥ ओ इति । त्ये । नरः । इन्द्रं । ऊतये । गुः । नु । चित् ।
तान् । सद्यः । अध्वनः । जगम्यात् । देवासः । मन्युं । दासस्य । श्चम्नन् । ते ।
नः । आ । वक्षन् । सुविताय । वर्णं ॥ २ ॥ अव । त्मना । भरते । केतऽवेदाः ।
अव । त्मना । भरते । फेनं । उदन् । क्षीरेण । स्नातः । कुयवस्य । योषे इति ।
हते इति । ते इति । स्यातां । प्रवणे । शिफायाः ॥ ३ ॥

युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ ४ ॥
प्रति यत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात् ।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ॥ ५ ॥ १८ ॥
स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥
अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥ ७ ॥
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥ ८ ॥

---

युयोप । नाभिः । उपरस्य । आयोः । प्र । पूर्वाभिः । तिरते । राष्टि । शूरः ।
अञ्जसी । कुलिशी । वीरऽपत्नी । पयः । हिन्वानाः । उदऽभिः । भरन्ते ॥ ४ ॥
प्रति । यत् । स्या । नीथा । अदर्शि । दस्योः । ओकः । न । अच्छ । सदनं ।
जानती । गात् । अध । स्म । नः । मघऽवन् । चर्कृतात् । इत् । मा । नः । मघाऽइव ।
निष्षपी । परा । दाः ॥ ५ ॥ १८ ॥ सः । त्वं । नः । इंद्र । सूर्ये । सः ।
अप्ऽसु । अनागाःऽत्वे । आ । भज । जीवऽशंसे । मा । अंतरा । भुजं । आ ।
रिरिषः । नः । श्रद्धितं । ते । महते । इंद्रियाय ॥ ६ ॥ अध । मन्ये । श्रत् ।
ते । अस्मै । अधायि । वृषा । चोदस्व । महते । धनाय । मा । नः । अकृते ।
पुरुऽहूत । योनौ । इंद्र । क्षुध्यत्ऽभ्यः । वयः । आऽसुतिं । दाः ॥ ७ ॥ मा । नः ।
वधीः । इंद्र । मा । परा । दाः । मा । नः । प्रिया । भोजनानि । प्र । मोषीः ।
आण्डा । मा । नः । मघऽवन् । शक्र । निः । भेत् । मा । नः । पात्रा । भेत् ।
[illegible] ॥ ८ ॥

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्यं पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेवं नः शृणुहि हूयमानः ॥ ९ ॥ १९ ॥

॥ १०५ ॥ ऋषि.–आङ्गिरसः कुत्स । देवता–विश्वेदेव । छन्द–जगती त्रिष्टुप् ॥

॥ १०५ ॥ चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १ ॥
अर्थमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ २ ॥
मो षु देवा अदः स्वरव पादि दिवस्परि ।
मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ३ ॥
यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद्दूतो वि वोचति ।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद्बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ४ ॥

---

अर्वाङ् । आ । इहि । सोमऽकामं । त्वा । आहुः । अयं । सुतः । तस्य । पिब । मदाय । उरुऽव्यचाः । जठरे । आ । वृषस्व । पिताऽइव । नः । शृणुहि । हूयमानः ॥ ९ ॥ १९ ॥

चन्द्रमाः । अप्ऽसु । अंतः । आ । सुऽपर्णः । धावते । दिवि । न । वः । हिरण्यऽनेमयः । पदं । विंदंति । विऽद्युतः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १ ॥ अर्थं । इत् । वै । ऊं इति । अर्थिनः । आ । जाया । युवते । पतिं । तुंजाते इति । वृष्ण्यं । पयः । परिऽदाय । रसं । दुहे । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ २ ॥ मो इति । सु । देवाः । अदः । स्वः । अव । पादि । दिवः । परि । मा । सोम्यस्य । शंऽभुवः । शूने । भूम । कदा । चन । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ३ ॥ यज्ञं । पृच्छामि । अवमं । सः । तत् । दूतः । वि । वोचति । क्व । ऋतं । पूर्व्यं । गतं । कः । तत् । बिभर्ति । नूतनः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ४ ॥

अमी ये देवा स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ५ ॥ २० ॥
कद्व ऋतस्य धर्णसि कद्वरुणस्य चक्षणं ।
कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ६ ॥
अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ७ ॥
सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ८ ॥
अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता ।
त्रितस्तद्वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥

---

अमी इति । ये । देवाः । स्थन । त्रिषु । आ । रोचने । दिवः । कत् । वः । ऋतं । कत् । अनृतं । क्व । प्रत्ना । वः । आऽहुतिः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ५ ॥ २० ॥ कत् । वः । ऋतस्य । धर्णसि । कत् । वरुणस्य । चक्षणं । कत् । अर्यम्णः । महः । पथा । अति । क्रामेम । दुःऽध्यः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ६ ॥ अहं । सः । अस्मि । यः । पुरा । सुते । वदामि । कानि । चित् । तं । मा । व्यन्ति । आऽध्यः । वृकः । न । तृष्णऽजं । मृगं । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ७ ॥ सं । मा । तपन्ति । अभितः । सपत्नीःऽइव । पर्शवः । मूषः । न । शिश्ना । वि । अदन्ति । मा । आऽध्यः । स्तोतारं । ते । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ८ ॥ अमी इति । ये । सप्त । रश्मयः । तत्र । मे । नाभिः । आऽतता । त्रितः । तत् । वेद । आप्त्यः । सः । जामिऽत्वाय । रेभति । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ९ ॥

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १० ॥ २१ ॥
सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ११ ॥
नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १२ ॥
अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान्यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १३ ॥
सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १४ ॥

---

अमी इति । ये । पंच । उक्षणः । मध्ये । तस्थुः । महः । दिवः । देवऽत्रा । नु ।
प्रऽवाच्यं । सध्रीचीनाः । नि । ववृतुः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १० ॥ २१ ॥
सुऽपर्णाः । एते । आसते । मध्ये । आऽरोधने । दिवः । ते । सेधंति । पथः ।

ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १५ ॥ २
असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १
त्रितः कूपेऽवहितो देवान्हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १७ ॥
अरुणो मा सकृद्वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १८ ॥
एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १९ ॥ २३ ॥ १

---

ब्रह्म । कृणोति । वरुणः । गातुऽविदं । तं । ईमहे । वि । ऊर्णोति । हृद
मतिं । नव्यः । जायतां । ऋतं । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १५ ॥ २
असौ । यः । पंथाः । आदित्यः । दिवि । प्रऽवाच्यं । कृतः । न । सः । देवाः
अतिऽक्रमे । तं । मर्तासः । न । पश्यथ । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति॥१
त्रितः । कूपे । अवऽहितः । देवान् । हवते । ऊतये । तत् । शुश्राव । बृहस्पतिः
कृण्वन् । अंहूरणात् । उरु । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १७ ॥ अरुण
मा । सकृत् । वृकः । पथा । यंतं । ददर्श । हि । उत् । जिहीते । निऽचाय्य
तष्टाऽइव । पृष्टिऽआमयी । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १८ ॥ एना
आंगूषेण । वयं । इंद्रऽवंतः । अभि । स्याम । वृजने । सर्वऽवीराः । तत् । नः
मित्रः । वरुणः । ममहंता । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ १९ ॥ २३ ॥ १

## ॥ षोडशोऽनुवाकः ॥

॥ १०६ ॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्रः । छन्द–जगती त्रिष्टुभ् ॥

॥१०६॥ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ १ ॥
त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शम्भुवः ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ २ ॥
अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ३ ॥
नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ४ ॥
बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ५ ॥

---

इन्द्रम् । मित्रम् । वरुणम् । अग्निम् । ऊतये । मारुतम् । शर्धः । अदितिम् । हवामहे । रथम् । न । दुःऽगात् । वसवः । सुऽदानवः । विश्वस्मात् । नः । अंहसः । निः । पिपर्तन ॥ १ ॥ ते । आदित्याः । आ । गत । सर्वऽतातये । भूत । देवाः । वृत्रऽतूर्येषु । शम्ऽभुवः । रथम् । न । दुःऽगात् । वसवः । सुऽदानवः । विश्वस्मात् ।

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ६ ॥
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ७ ॥ २४ ॥

॥ १०७ ॥ ऋषि –अङ्गिरस कुत्स । देवता–अग्नि । छन्द – जगती त्रिष्टुप् ।

॥ १०७ ॥ यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ १ ॥
उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभि स्तूयमानाः ।
इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥ २ ॥
तन्न इन्द्रस्तद्वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत्सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥ २५ ॥

---

इंद्रं । कुत्सः । वृत्रऽहनं । शचीऽपतिं । काटे । निऽबाळ्हः । ऋषिः । अह्वत् । ऊतये । रथं । न । दुःऽगात् । वसवः । सुऽदानवः । विश्वस्मात् । नः । अंहसः । निः । पिपर्तन ॥ ६ ॥ देवैः । नः । देवी । अदितिः । नि । पातु । देवः । त्राता । त्रायतां । अप्रऽयुच्छन् । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंतां । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ७ ॥

यज्ञः । देवानां । प्रति । एति । सुम्नं । आदित्यासः । भवंत । मृळयंतः । आ । वः । अर्वाची । सुऽमतिः । ववृत्यात् । अंहोः । चित् । या । वरिवोवित्ऽतरा । असत् ॥ १ ॥ उप । नः । देवाः । अवसा । आ । गमंतु । अंगिरसां । सामऽभिः । स्तूयमानाः । इंद्रः । इंद्रियैः । मरुतः । मरुत्ऽभिः । आदित्यैः । नः । अदितिः । शर्म । यंसत् ॥ २ ॥ तत् । नः । इंद्रः । तत् । वरुणः । तत् । अग्निः । तत् । अर्यमा । तत् । सविता । चनः । धात् । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्ताम् । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ३ ॥ २५ ॥

॥ १०८ ॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्राग्नी । छन्द–जगती त्रिष्टुभ् ॥

॥१०८॥ य इ॑न्द्राग्नी चि॒त्रत॑मो॒ रथो॑ वाम॒भि विश्वा॑नि॒ भुव॑नानि॒ चष्टे॑ ।
तेना या॑तं स॒रथं॑ तस्थि॒वांसाथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ १ ॥
याव॑दि॒दं भुव॑नं॒ विश्व॒मस्त्यु॑रु॒व्यचा॑ वरि॒मता॑ गभी॒रम् ।
तावाँ॑ अ॒यं पात॑वे॒ सोमो॑ अस्त्वर॑मिन्द्राग्नी॒ मन॑से यु॒वभ्या॑म् ॥ २ ॥
च॒क्राथे॒ हि स॒ध्र्य१॒॑ङ्नाम॑ भ॒द्रं स॑ध्रीची॒ना वृ॑त्रहणा उ॒त स्थः॑ ।
तावि॑न्द्राग्नी स॒ध्र्य॑ञ्चा नि॒षद्या॒ वृष्णः॒ सोम॑स्य वृष॒णा वृ॑षेथाम् ॥ ३ ॥
समि॑द्धेष्व॒ग्निष्वा॑नजा॒ना य॒तस्रु॑चा ब॒र्हिरु॑ तिस्तिरा॒णा ।
ती॒व्रैः सोमैः॒ परि॑षिक्तेभिर॒र्वागेन्द्रा॑ग्नी सौमन॒साय॑ यातम् ॥ ४ ॥
यानी॑न्द्राग्नी च॒क्रथु॑र्वी॒र्या॑णि॒ यानि॑ रू॒पाण्यु॒त वृष्ण्या॑नि ।
या वां॑ प्र॒त्नानि॑ स॒ख्या शि॒वानि॒ तेभिः॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ५ ॥ २६ ॥

---

यः । इ॒न्द्रा॒ग्नी॒ इति॑ । चि॒त्रऽत॑मः । रथः॑ । वा॒म् । अ॒भि । विश्वा॑नि । भुव॑नानि । चष्टे॑ । तेन॑ । आ । या॒त॒म् । स॒ऽरथ॑म् । त॒स्थि॒ऽवांसा॑ । अथ॑ । सोम॑स्य । पि॒ब॒त॒म् । सु॒तस्य॑ ॥ १ ॥ याव॑त् । इ॒दम् । भुव॑नम् । विश्व॑म् । अस्ति॑ । उ॒रु॒ऽव्यचा॑ । व॒रि॒मता॑ । ग॒भी॒रम् । तावा॑न् । अ॒यम् । पात॑वे । सोमः॑ । अ॒स्तु॒ । अर॑म् । इ॒न्द्रा॒ग्नी॒ इति॑ । मन॑से । यु॒वऽभ्या॑म् ॥ २ ॥ च॒क्राथे॒ इति॑ । हि । स॒ध्र्य॑क् । नाम॑ । भ॒द्रम् । स॒ध्री॒ची॒ना । वृ॒त्र॒ऽह॒नौ॒ । उ॒त । स्थः॒ । तौ । इ॒न्द्रा॒ग्नी॒ इति॑ । स॒ध्र्य॑ञ्चा । नि॒ऽसद्य॑ । वृष्णः॑ । सोम॑स्य । वृ॒ष॒णा॒ । आ । वृ॒षे॒था॒म् ॥ ३ ॥ समि॑द्धेषु । अ॒ग्निषु॑ । आ॒न॒जा॒ना । य॒तऽस्रु॑चा । ब॒र्हिः । ऊं॒ इति॑ । ति॒स्ति॒रा॒णा । ती॒व्रैः । सोमैः॑ । परि॑ऽसिक्तेभिः । अ॒र्वाक् । आ । इ॒न्द्रा॒ग्नी॒ इति॑ । सौ॒म॒न॒साय॑ । या॒त॒म् ॥ ४ ॥ यानि॑ । इ॒न्द्रा॒ग्नी॒ इति॑ । च॒क्रथुः॑ । वी॒र्या॑णि । यानि॑ । रू॒पाणि॑ । उ॒त । वृष्ण्या॑नि । या । वा॒म् । प्र॒त्नानि॑ । स॒ख्या । शि॒वानि॑ । तेभिः॑ । सोम॑स्य । पि॒ब॒त॒म् । सु॒तस्य॑ ॥ ५ ॥ २६ ॥

यद॑ब्रवं प्रथ॒मं वां॑ वृणा॒नो॒३॑ऽयं सोमो॒ असु॑रैर्नो वि॒हव्यः॑ ।
तां स॒त्यां श्र॒द्धाम॒भ्या हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ६ ॥
यदि॑न्द्राग्नी॒ मद॑थः॒ स्वे दु॑रो॒णे यद्ब्र॒ह्मणि॒ राज॑नि वा यजत्रा ।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ७ ॥
यदि॑न्द्राग्नी॒ यदु॑षु तु॒र्वशे॑षु यद्द्रु॒ह्युष्वनु॑षु पू॒रुषु॒ स्थः ।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ८ ॥
यदि॑न्द्राग्नी अव॒मस्यां॑ पृथि॒व्यां म॑ध्य॒मस्यां॑ पर॒मस्या॑मु॒त स्थः ।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ९ ॥
यदि॑न्द्राग्नी पर॒मस्यां॑ पृथि॒व्यां म॑ध्य॒मस्या॑मव॒मस्या॑मु॒त स्थः ।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ १० ॥

---

यत् । अब्र॑वं । प्र॒थ॒मं । वा॒म् । वृ॒णा॒नः । अ॒यम् । सोमः॑ । असु॑रैः । नः॒ । वि॒ऽहव्यः॑ । ताम् । स॒त्याम् । श्र॒द्धाम् । अ॒भि । आ । हि । या॒तम् । अथ॑ । सोम॑स्य । पि॒ब॒त॒म् । सु॒तस्य॑ ॥ ६ ॥ यत् । इ॒न्द्रा॒ग्नी॒ इति॑ । मद॑थः । स्वे । दु॒रो॒णे । यत् । ब्र॒ह्मणि॑ । राज॑नि । वा॒ । य॒ज॒त्रा॒ । अतः॑ । परि॑ । वृ॒ष॒णौ॒ । आ । हि । या॒तम् । अथ॑ । सोम॑स्य । पि॒ब॒त॒म् । सु॒तस्य॑ ॥ ७ ॥ यत् । इ॒न्द्रा॒ग्नी॒ इति॑ । यदु॑षु । तु॒र्वशे॑षु । यत् । द्रु॒ह्युषु॑ । अनु॑षु । पू॒रुषु॑ । स्थः । अतः॑ । परि॑ । वृ॒ष॒णौ॒ । आ । हि । या॒तम् । अथ॑ । सोम॑स्य । पि॒ब॒त॒म् । सु॒तस्य॑ ॥ ८ ॥ यत् । इ॒न्द्रा॒ग्नी॒ इति॑ । अ॒व॒मस्या॑म् । पृ॒थि॒व्याम् । म॒ध्य॒मस्या॑म् । प॒र॒मस्या॑म् । उ॒त । स्थः । अतः॑ । परि॑ । वृ॒ष॒णौ॒ । आ । हि । या॒तम् । अथ॑ । सोम॑स्य । पि॒ब॒त॒म् । सु॒तस्य॑ ॥ ९ ॥ यत् । इ॒न्द्रा॒ग्नी॒ इति॑ । प॒र॒मस्या॑म् । पृ॒थि॒व्याम् । म॒ध्य॒मस्या॑म् । अ॒व॒मस्या॑म् । उ॒त । स्थः । अतः॑ । परि॑ । वृ॒ष॒णौ॒ । आ । हि । या॒तम् । अथ॑ । सोम॑स्य । पि॒ब॒त॒म् । सु॒तस्य॑ ॥ १० ॥

यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत्पृथिव्यां यत्पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ११ ॥
यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १२ ॥
एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १३ ॥ २७ ॥

॥ १०९ ॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्राग्नी । छन्दः–जगती त्रिष्टुप् ॥

॥१०९॥ वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥ १ ॥
अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥ २ ॥

---

यत् । इन्द्राग्नी इति । दिवि । स्थः । यत् । पृथिव्याम् । यत् । पर्वतेषु । ओषधीषु । अप्ऽसु । अतः । परि । वृषणौ । आ । हि । यातम् । अथ । सोमस्य । पिबतम् । सुतस्य ॥ ११ ॥ यत् । इन्द्राग्नी इति । उत्ऽइता । सूर्यस्य । मध्ये । दिवः । स्वधया । मादयेथे इति । अतः । परि । वृषणौ । आ । हि । यातम् । अथ । सोमस्य । पिबतम् । सुतस्य ॥ १२ ॥ एव । इन्द्राग्नी इति । पपिऽवांसा । सुतस्य । विश्वा । अस्मभ्यम् । सम् । जयतम् । धनानि । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्ताम् । अदितिः ।

मा च्छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥ ३ ॥
युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥ ४ ॥
युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन्प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥ ५ ॥ २८ ॥
प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ ६ ॥
आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥ ७ ॥

---

मा । छेद्म । रश्मीन् । इति । नाधमानाः । पितॄणां । शक्तीः । अनुऽयच्छमानाः । इंद्राग्निऽभ्यां । कं । वृषणः । मदंति । ता । हि । अद्री इति । धिषणायाः । उपऽस्थे ॥ ३ ॥ युवाभ्यां । देवी । धिषणा । मदाय । इंद्राग्नी इति । सोमं । उशती । सुनोति । तौ । अश्विना । भद्रऽहस्ता । सुपाणी इति सुपाऽणी । आ । धावतं । मधुना । पृंक्तं । अप्ऽसु ॥ ४ ॥ युवां । इंद्राग्नी इति । वसुनः । विऽभागे । तवःऽतमा । शुश्रव । वृत्रऽहत्ये । तौ । आऽसद्य । बर्हिषि । यज्ञे । अस्मिन् । प्र । चर्षणी इति । मादयेथां । सुतस्य ॥ ५ ॥ २८ ॥ प्र । चर्षणिऽभ्यः । पृतनाऽहवेषु । प्र । पृथिव्याः । रिरिचाथे इति । दिवः । च । प्र । सिंधुऽभ्यः । प्र । गिरिऽभ्यः । महिऽत्वा । प्र । इंद्राग्नी इति । विश्वा । भुवना । अति । अन्या ॥ ६ ॥ आ । भरतं । शिक्षतं । वज्रबाहू इति वज्रऽबाहू । अस्मान् । इंद्राग्नी इति । अवतं । शचीभिः । इमे । नु । ते । रश्मयः । सूर्यस्य । येभिः । सऽपित्वं । पितरः । नः । आसन् ॥ ७ ॥

शिक्षतं वज्रहस्तास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥ २९ ॥

॥ ११० ॥ ऋषि –आङ्गिरस. कुत्स । देवता–ऋभव । छन्द – जगत्य , त्रिष्टुभ् ।

।११०॥ ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते।
समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥ १ ॥
आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥ २ ॥
तत्सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥ ३ ॥
विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥ ४ ॥

---

। शिक्षतं । वज्रऽहस्ता । अस्मान् । इंद्राग्नी इति । अवतं । भरेषु । तत् ।
मित्रः । वरुणः । ममहंता । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत ।
८ ॥ २९ ॥
ततं । मे । अपः । तत् । ऊं इति । तायते । पुनरिति । स्वादिष्ठा ।
। उचथाय । शस्यते । अयं । समुद्रः । इह । विश्वऽदेव्यः । स्वाहाऽकृतस्य।
ऊं इति । तृप्णुत । ऋभवः ॥ १ ॥ आऽभोगयं । प्र । यत् । इच्छंतः ।
। अपाकाः । प्रांचः । मम । के । चित् । आपयः । सौधन्वनासः ।
स्य । भूमना । अगच्छत । सवितुः । दाशुषः । गृहं ॥ २ ॥ तत् । सविता ।
अमृतऽत्वं । आ । असुवत् । अगोह्यं । यत् । श्रवयंतः । ऐतन । त्यं ।
। चमसं । असुरस्य । भक्षणं । एकं । संतं । अकृणुत । चतुःऽवयं ॥ ३ ॥
। शमी । तरणिऽत्वेन । वाघतः । मर्तासः । संतः । अमृतऽत्वं । आनशुः ।
नाः । ऋभवः । सूरऽचक्षसः । संवत्सरे । सं । अपृच्यंत । धीतिऽभिः ॥ ४॥

क्षेत्र॑मिव॒ वि म॑मु॒स्तेज॑नेनँ॒ एकं॒ पात्र॑मृ॒भवो॒ जेह॑मानम् ।
उप॑स्तुता उप॒मं नाध॑माना॒ अम॑र्त्येषु॒ श्रव॑ इ॒च्छमा॑नाः ॥ ५ ॥ १० ॥
आ म॑नी॒षाम॒न्तरि॑क्षस्य॒ नृभ्यः॑ स्रु॒चेव॑ घृ॒तं जु॑हवाम वि॒द्मना॑ ।
त॒र॒णि॒त्वा ये पि॒तुर॑स्य सश्चि॒र ऋ॒भवो॒ वाज॑मरुहन्दि॒वो रजः॑ ॥ ६ ॥
ऋ॒भुर्न॒ इन्द्रः॒ शव॑सा॒ नवी॑यानृ॒भुर्वाजे॑भि॒र्वसु॑भि॒र्वसु॑र्द॒दिः ।
यु॒ष्माकं॑ देवा॒ अव॒साह॑नि प्रि॒ये३॒॑ऽभि ति॑ष्ठेम पृत्सु॒तीरसु॑न्वताम् ॥ ७ ॥
निश्चर्म॑ण ऋभवो॒ गाम॑पिंशत॒ सं व॒त्सेना॑सृजता मा॒तरं॒ पुनः॑ ।
सौध॑न्वनासः स्वप॒स्यया॑ नरो॒ जिव्री॒ युवा॑ना पि॒तरा॑कृणोतन ॥ ८ ॥
वाजे॑भिर्नो॒ वाज॑सातावविड्ढ्यृभु॒माँ इ॑न्द्र चि॒त्रमा द॑र्षि॒ राधः॑ ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥ ९ ॥ ११ ॥

---

क्षेत्र॑म्ऽइव । वि । म॒मुः॒ । तेज॑नेन । एक॑म् । पात्र॑म् । ऋ॒भवः॑ । जेह॑मानम् । उप॑ऽस्तुताः । उ॒प॒ऽमम् । नाध॑मानाः । अम॑र्त्येषु । श्रवः॑ । इ॒च्छमा॑नाः ॥ ५ ॥ १० ॥ आ । म॒नी॒षाम् । अ॒न्तरि॑क्षस्य । नृऽभ्यः॑ । स्रु॒चाऽइ॑व । घृ॒तम् । जु॒ह॒वा॒म॒ । वि॒द्मना॑ । त॒र॒णि॒ऽत्वा । ये । पि॒तुः । अ॒स्य । स॒श्चि॒रे । ऋ॒भवः॑ । वाज॑म् । अ॒रु॒ह॒न् । दि॒वः । रजः॑ ॥ ६ ॥ ऋ॒भुः । नः॒ । इन्द्रः॑ । शव॑सा । नवी॑यान् । ऋ॒भुः । वाजे॑भिः । वसु॑ऽभिः । वसुः॑ । द॒दिः । यु॒ष्माक॑म् । दे॒वाः॒ । अव॑सा । अह॑नि । प्रि॒ये । अ॒भि । ति॒ष्ठे॒म॒ । पृ॒त्सु॒तीः । असु॑न्वताम् ॥ ७ ॥ निः । चर्म॑णः । ऋ॒भ॒वः॒ । गाम् । अ॒पिं॒श॒त॒ । सम् । व॒त्सेन॑ । अ॒सृ॒ज॒त॒ । मा॒तर॑म् । पुन॒रिति॑ । सौध॑न्वनासः । सु॒ऽअ॒प॒स्यया॑ । न॒रः॒ । जिव्री॒ इति॑ । युवा॑ना । पि॒तरा॑ । अ॒कृ॒णो॒त॒न॒ ॥ ८ ॥ वाजे॑भिः । नः॒ । वाज॑ऽसातौ । अ॒वि॒ड्ढि॒ । ऋ॒भु॒ऽमान् । इ॒न्द्र॒ । चि॒त्र । आ । द॒र्षि॒ । राधः॑ । तत् । नः॒ । मि॒त्रः । वरु॑णः । म॒म॒ह॒न्ता॒म् । अदि॑तिः । सिन्धुः॑ । पृ॒थि॒वी । उ॒त । द्यौः ॥ ९ ॥ १० ॥

॥ १११ ॥ ऋषिः–कुत्स । देवता–ऋभवः । छन्दः–जगती त्रिष्टुप् ॥

॥ १११ ॥ तक्ष॒न्रथं॑ सु॒वृतं॑ विद्म॒नाप॑सस्तक्ष॒न्हरी॑ इन्द्र॒वाहा॒ वृष॑ण्वसू ।
तक्ष॑न्पि॒तृभ्या॑मृ॒भवो॒ युव॒द्वय॒स्तक्ष॑न्व॒त्साय॑ मा॒तरं॑ सचा॒भुव॑म् ॥ १ ॥
आ नो॑ य॒ज्ञाय॑ तक्षत ऋभु॒मद्वयः॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य सु॒प्रजाव॑ती॒मिष॑म् ।
यथा॒ क्षया॑म॒ सर्व॑वीरया वि॒शा तन्नः॒ शर्धा॑य धासथा॒ स्वि॑न्द्रि॒यम् ॥ २ ॥
आ त॑क्षत सा॒तिम॒स्मभ्य॑मृभवः सा॒तिं रथा॑य सा॒तिमर्व॑ते नरः ।
सा॒तिं नो॒ जैत्रीं॒ सं म॑हेत वि॒श्वहा॑ जा॒मिमजा॑मिं॒ पृत॑नासु स॒क्षणि॑म् ॥ ३ ॥
ऋ॒भु॒क्षण॒मिन्द्र॒मा हु॑व ऊ॒तय॑ ऋ॒भून्वाजा॑न्म॒रुतः॒ सोम॑पीतये ।
उ॒भा मि॒त्रावरु॑णा नू॒नम॒श्विना॒ ते नो॑ हिन्वन्तु सा॒तये॑ धि॒ये जि॒षे ॥ ४ ॥
ऋ॒भुर्भरा॑य॒ सं शि॑शातु सा॒तिं स॑मर्य॒जिद्वाजो॑ अ॒स्माँ अ॑विष्टु ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥ ५ ॥ ३२ ॥

---

तक्ष॑न् । रथ॑म् । सु॒ऽवृत॑म् । वि॒द्म॒नाऽअ॑पसः । तक्ष॑न् । हरी॒ इति॑ । इ॒न्द्र॒ऽवाहा॑ । वृष॑ण्वसू॒ इति॒ वृष॑ण्ऽवसू । तक्ष॑न् । पि॒तृऽभ्या॑म् । ऋ॒भवः॑ । युव॑त् । वयः॑ । तक्ष॑न् । व॒त्साय॑ । मा॒तर॑म् । स॒चा॒ऽभुव॑म् ॥ १ ॥ आ । नः॒ । य॒ज्ञाय॑ । त॒क्ष॒त॒ । ऋ॒भु॒ऽमत् । वयः॑ । क्रत्वे॑ । दक्षा॑य । सु॒ऽप्र॒जाव॑तीम् । इष॑म् । यथा॑ । क्षया॑म । सर्व॑ऽवीरया । वि॒शा । तत् । नः॒ । शर्धा॑य । धा॒स॒थ॒ । सु । इ॒न्द्रि॒यम् ॥ २ ॥ आ । त॒क्ष॒त॒ । सा॒तिम् । अ॒स्मभ्य॑म् । ऋ॒भ॒वः॒ । सा॒तिम् । रथा॑य । सा॒तिम् । अर्व॑ते । न॒रः॒ । सा॒तिम् । नः॒ । जैत्री॑म् । सम् । म॒हे॒त॒ । वि॒श्वहा॑ । जा॒मिम् । अजा॑मिम् । पृत॑नासु । स॒क्षणि॑म् ॥ ३ ॥ ऋ॒भु॒क्षण॑म् । इन्द्र॑म् । आ । हु॒वे॒ । ऊ॒तये॑ । ऋ॒भून् । वाजा॑न् । म॒रुतः॑ । सोम॑ऽपीतये । उ॒भा । मि॒त्रावरु॑णा । नू॒नम् । अ॒श्विना॑ । ते । नः॒ । हि॒न्व॒न्तु॒ । सा॒तये॑ । धि॒ये । जि॒षे ॥ ४ ॥ ऋ॒भुः । भरा॑य । सम् । शि॒शा॒तु॒ । सा॒तिम् । स॒म॒र्य॒ऽजित् । वाजः॑ । अ॒स्मान् । अ॒वि॒ष्टु॒ । तत् । नः॒ । मि॒त्रः । वरु॑णः । म॒म॒ह॒न्ता॒म् । अदि॑तिः । सिन्धुः॑ । पृ॒थि॒वी । उ॒त । द्यौः ॥ ५ ॥ ३२ ॥

॥ ११२ ॥ ऋषि – कुत्स । देवता–द्यावा पृथिवी, अग्नि, अश्वी। छन्द जगती त्रिष्टुप्॥

॥ ११२ ॥ ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १ ॥
युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २ ॥
युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ३ ॥
याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ४ ॥
याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥५॥३३॥

---

ईळे । द्यावापृथिवी इति । पूर्वऽचित्तये । अग्निं । घर्मं । सुऽरुचं । यामन् । इष्टये ।
याभिः । भरे । कारं । अंशाय । जिन्वथः । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः ।
अश्विना । आ । गतं ॥ १ ॥ युवोः । दानाय । सुऽभराः । असश्चतः । रथं ।
आ । तस्थुः । वचसं । न । मंतवे । याभिः । धियः । अवथः । कर्मन् । इष्टये । ताभिः ।
ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ २ ॥ युवं । तासां । दिव्यस्य ।
प्रऽशासने । विशां । क्षयथः । अमृतस्य । मज्मना । याभिः । धेनुं । अस्वं । पिन्वथः ।
नरा । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ ३ ॥ याभिः ।
परिज्मा । तनयस्य । मज्मना । द्विऽमाता । तूर्षु । तरणिः । विऽभूषति । याभिः ।
त्रिऽमंतुः । अभवत् । विऽचक्षणः । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना ।
आ । गतं ॥ ४ ॥ याभिः । रेभं । निऽवृतं । सितं । अत्ऽभ्यः । उत् । वंदनं ।
ऐरयतं । स्वः । दृशे । याभिः । कण्वं । प्र । सिसासंतं । आवतं । ताभिः । ऊं इति ।
सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ ५ ॥ ३३ ॥

याभि॒रन्त॑कं॒ जस॑मान॒मार॑णे भु॒ज्युं याभि॑रव्य॒थिभि॑र्जिजि॒न्वथुः॑ ।
याभिः॑ क॒र्कन्धुं॑ व॒य्यं॑ च॒ जिन्व॑थ॒स्ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् ॥ ६ ॥
याभिः॑ शु॒चन्तिं॑ धन॒सां सु॑षं॒सदं॑ त॒प्तं घ॒र्मम्ओ॒म्याव॑न्त॒मत्र॑ये ।
याभिः॒ पृश्नि॑गुं पुरु॒कुत्स॒माव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् ॥ ७ ॥
याभिः॒ शची॑भिर्वृषणा परावृ॒जं प्रान्धं श्रो॒णं चक्ष॑स॒ एत॑वे कृ॒थः ।
याभि॒र्वर्ति॑कां ग्रसि॒ताममु॑ञ्चतं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् ॥ ८ ॥
याभिः॒ सिन्धुं॒ मधु॑मन्त॒मस॑श्चतं॒ वसि॑ष्ठं॒ याभि॑रजरा॒वजि॑न्वतम् ।
याभिः॒ कुत्सं॑ श्रु॒तर्यं॒ नर्य॒माव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् ॥ ९ ॥
याभि॑र्वि॒श्पलां॑ धन॒साम॑थ॒र्व्यं॑ स॒हस्र॑मीळ्ह आ॒जावजि॑न्वतम् ।
याभि॒र्वश॑म॒श्व्यं प्रे॒णिमाव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् ॥ १० ॥ ३४ ॥

---

याभिः॑ । अन्त॑कम् । जस॑मानम् । आऽअर॑णे । भु॒ज्युम् । याभिः॑ । अ॒व्य॒थिऽभिः॑ । जि॒जि॒न्वथुः॑ । याभिः॑ । क॒र्कन्धु॑म् । व॒य्य॑म् । च॒ । जिन्व॑थः । ताभिः॑ । ऊ॒म् इति॑ । सु । ऊ॒तिऽभिः॑ । अ॒श्वि॒ना । आ । ग॒त॒म् ॥ ६ ॥ याभिः॑ । शु॒चन्ति॑म् । ध॒न॒ऽसाम् ।

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ११
याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १२
याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १३ ॥
याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् ।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १४ ॥
याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १५ ॥ ३५

---

याभिः । सुदानू इति सुऽदानू । औशिजाय । वणिजे । दीर्घऽश्रवसे । मधु । कोशः । अक्षरत् । कक्षीवन्तम् । स्तोतारम् । याभिः । आवतम् । ताभिः । ऊम् इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ गतम् ॥ ११ ॥ याभिः । रसाम् । क्षोदसा । उद्नः । पिपिन्वथुः । अनश्वम् । याभिः । रथम् । आवतम् । जिषे । याभिः । त्रिऽशोकः । उस्रियाः । उत्ऽआजत । ताभिः । ऊम् इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ गतम् ॥ १२ ॥ याभिः । सूर्यम् । परिऽयाथः । पराऽवति । मन्धातारम् । क्षैत्रऽपत्येषु । आवतम् । याभिः । विप्रम् । प्र । भरत्ऽवाजम् । आवतम् । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥ १३ ॥ याभिः । महाम् । अतिथिऽग्वम् । कशःऽजुवम् । दिवःऽदासम् । शम्बरऽहत्ये । आवतम् । याभिः । पूःऽभिद्ये । त्रसदस्युम् । आवतं । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥ १४ याभिः । वम्रम् । विऽपिपानं । उपऽस्तुतं । कलिं । याभिः । वित्तऽजानिं । दुवस्यथः । याभिः । विऽअश्वं । उत । पृथिं । आवतं । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ १५ ॥ ३५ ॥

याभि॒र्नरा॑ श॒यवे॒ याभि॒रत्र॑ये॒ याभिः॑ पु॒रा मन॑वे गा॒तुमी॒षथुः॑ ।
याभिः॒ शारी॒राज॑तं॒ स्यूम॑रश्मये॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना॒ ग॑तम् ॥ १६ ॥
याभिः॒ पठ॑र्वा॒ जठ॑रस्य म॒ज्मना॒ग्निर्नादी॑देच्चि॒त इ॒द्धो अज्म॒न्ना ।
याभिः॒ शर्या॑त॒मव॑थो महाध॒ने ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना॒ ग॑तम् ॥ १७ ॥
याभि॒रङ्गि॑रो॒ मन॑सा निर॒ण्यथोऽग्रं॒ गच्छ॑थो विव॒रे गोअ॑र्णसः ।
याभि॒र्मनुं॒ शूर॑मि॒षा स॒माव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना॒ ग॑तम् ॥ १८ ॥
याभिः॒ पत्नी॑र्विम॒दाय॑ न्यू॒हथु॒रा घ॑ वा॒ याभि॑ररु॒णीरशि॑क्षतम् ।
याभिः॑ सु॒दास॑ ऊ॒हथुः॑ सुदे॒व्यं१॒॑ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना॒ ग॑तम् ॥ १९ ॥
याभिः॒ शन्ता॑ती॒ भव॑थो ददा॒शुषे॑ भु॒ज्युं याभि॒रव॑थो॒ याभि॒रध्रि॑गुम् ।
ओ॒म्याव॑तीं सु॒भरा॑मृत॒स्तुभं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना॒ ग॑तम् ॥ २० ॥ ३६ ॥

---

याभिः॑ । न॒रा॒ । श॒यवे॑ । याभिः॑ । अत्र॑ये । याभिः॑ । पु॒रा । मन॑वे । गा॒तुं । ई॒षथुः॑ । याभिः॑ । शारीः॑ । आज॑तं । स्यूम॑ऽरश्मये । ताभिः॑ । ऊं॒ इति॑ । सु । ऊ॒तिऽभिः॑ । अ॒श्वि॒ना॒ । आ । ग॒तं॒ ॥ १६ ॥ याभिः॑ । पठ॑र्वा । जठ॑रस्य । म॒ज्मना॑ । अ॒ग्निः । न । अदी॑देत् । चि॒तः । इ॒द्धः । अज्म॑न् । आ । याभिः॑ । शर्या॑तं । अव॑थः । म॒हा॒ऽध॒ने ।

याभिः॑ कृ॒शानु॒मस॑ने दुव॒स्यथो॑ ज॒वे याभि॒र्यूनो॒ अर्व॑न्त॒माव॑तम् ।
मधु॑ प्रि॒यं भ॑रथो॒ यत्स॒रड्भ्य॒स्ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् ॥ २१ ॥
याभि॒र्नरं॑ गोषु॒युधं॑ नृ॒षाह्ये॒ क्षेत्र॑स्य सा॒ता तन॑यस्य॒ जिन्व॑थः ।
याभी॒ रथाँ॒ अव॑थो॒ याभि॒रर्व॑त॒स्ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् ॥ २२ ॥
याभिः॒ कुत्स॑मार्जुने॒यं श॑तक्रतू॒ प्र तु॒र्वीतिं॒ प्र च॑ द॒भीति॒माव॑तम् ।
याभि॑र्ध्व॒सन्तिं॑ पुरु॒षन्ति॒माव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् ॥ २३ ॥
अप्न॑स्वतीमश्विना॒ वाच॑म॒स्मे कृ॒तं नो॑ दस्रा॒ वृष॑णा मनी॒षाम् ।
अ॒द्यू॒त्येऽव॑से॒ नि ह्व॑ये वां वृ॒धे च॑ नो भवतं॒ वाज॑सातौ ॥ २४ ॥
द्युभि॑र॒क्तुभिः॒ परि॑ पातम॒स्मानरि॑ष्टेभिरश्विना॒ सौभ॑गेभिः ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥२५॥३७॥७॥

---

याभिः॑ । कृ॒शानु॑ । अस॑ने । दु॒व॒स्यथः॑ । ज॒वे । याभिः॑ । यूनः॑ । अर्व॑न्तं । आव॑तं । मधु॑ । प्रि॒यं । भ॒र॒थः॒ । यत् । स॒रट्ऽभ्यः॑ । ताभिः॑ । ऊं॒ इति॑ । सु । ऊ॒तिऽभिः॑ । अ॒श्वि॒ना॒ । आ । ग॒तं॒ ॥ २१ ॥ याभिः॑ । नर॑ं । गो॒षु॒ऽयुधं॑ । नृ॒ऽसह्ये॑ । क्षेत्र॑स्य । सा॒ता । तन॑यस्य । जिन्व॑थः । याभिः॑ । रथा॑न् । अव॑थः । याभिः॑ । अर्व॑तः । ताभिः॑ । ऊं॒ इति॑ । सु । ऊ॒तिऽभिः॑ । अ॒श्वि॒ना॒ । आ । ग॒तं॒ ॥ २२ ॥ याभिः॑ । कुत्स॑ं । आ॒र्जु॒ने॒यं । श॒त॒क्र॒तू॒ इति॑ । श॒त॒ऽक्र॒तू॒ । प्र । तु॒र्वीति॑ं । प्र । च॒ । द॒भीति॑ं । आव॑तं । याभिः॑ । ध्व॒सन्ति॑ं । पु॒रु॒ऽसन्ति॑ं । आव॑तं । ताभिः॑ । ऊं॒ इति॑ । सु । ऊ॒तिऽभिः॑ । अ॒श्वि॒ना॒ । आ । ग॒तं॒ ॥ २३ ॥ अप्न॑स्वतीं । अ॒श्वि॒ना॒ । वाच॑ं । अ॒स्मे इति॑ । कृ॒तं । नः॒ । द॒स्रा॒ । वृ॒ष॒णा॒ । म॒नी॒षां । अ॒द्यू॒त्ये । अव॑से । नि । ह्व॒ये॒ । वा॒ं । वृ॒धे । च॒ । नः॒ । भ॒व॒तं॒ । वाज॑ऽसातौ ॥ २४ ॥ द्युऽभिः॑ । अ॒क्तुऽभिः॑ । परि॑ । पा॒तं॒ । अ॒स्मान् । अरि॑ष्टेभिः । अ॒श्वि॒ना॒ । सौभ॑गेभिः । तत् । नः॒ । मि॒त्रः । वरु॑णः । म॒म॒ह॒न्तां॒ । अदि॑तिः । सिन्धुः॑ । पृ॒थि॒वी । उ॒त । द्यौः ॥ २५ ॥ ३७ ॥

इति प्रथमाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## ॥ अथ प्रथमाष्टके अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ ११३ ॥ ऋषि-आङ्गिरस कुत्स । देवता-उषा । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥११३॥ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥ २ ॥
समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥
भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः ।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

---

॥ अथ प्रथमाष्टके अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जि॒ह्मश्ये॒३॒॑ चरि॑तवे म॒घोन्या॑भो॒गय॑ इ॒ष्टये॑ रा॒य उ॑ त्वम् ।
द॒भ्रं पश्य॑द्भ्य उर्वि॒या वि॒चक्ष॑ उ॒षा अ॑जीग॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ ५ ॥ १ ॥

क्ष॒त्राय॑ त्वं॒ श्रव॑से त्वं॒ म॑ही॒या इ॒ष्टये॑ त्व॒मर्थ॑मिव त्व॒मि॒त्यै ।
विस॑दृशा जीवि॒ताभि॑प्र॒चक्ष॑ उ॒षा अ॑जीग॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ ६ ॥

ए॒षा दि॒वो दु॑हि॒ता प्रत्य॑दर्शि व्यु॒च्छन्ती॑ युव॒तिः शु॒क्रवा॑साः ।
विश्व॒स्येशा॑ना॒ पार्थि॑वस्य॒ वस्व॒ उषो॑ अ॒द्येह सु॑भगे॒ व्यु॑च्छ ॥ ७ ॥

प॒रा॒य॒ती॒नामन्वे॑ति॒ पाथ॑ आयती॒नां प्र॑थ॒मा शश्व॑तीनाम् ।
व्यु॒च्छन्ती॑ जी॒वमु॑दी॒रय॑न्त्यु॒षा मृ॒तं कं च॒न बो॒धय॑न्ती ॥ ८ ॥

उषो॒ यद॒ग्निं स॒मिधे॑ च॒कर्थ॒ वि यदाव॒श्चक्ष॑सा॒ सूर्य॑स्य ।
यन्मानु॑षान्य॒क्ष्यमा॑णाँ॒ अजी॑ग॒स्तद्दे॒वेषु॑ चकृषे भ॒द्रमप्नः॑ ॥ ९ ॥

---

जि॒ह्मऽश्ये॑ । चरि॑तवे । म॒घोनी॑ । आ॒ऽभो॒गयै॑ । इ॒ष्टये॑ । रा॒ये । ऊं॒ इति॑ । त्वं । द॒भ्रं । पश्य॑त्ऽभ्यः । उ॒र्वि॒या । वि॒ऽचक्षे॑ । उ॒षाः । अ॒जी॒ग॒रिति॑ । भुव॑नानि । विश्वा॑ ॥ ५ ॥ १ ॥
क्ष॒त्राय॑ । त्वं । श्रव॑से । त्वं । म॒ही॒यै । इ॒ष्टये॑ । त्वं । अर्थ॑म्ऽइव । त्वं । इ॒त्यै । विऽस॑दृशा । जी॒वि॒ता । अ॒भि॒ऽप्र॒चक्षे॑ । उ॒षाः । अ॒जी॒गः । भुव॑नानि । विश्वा॑ ॥ ६ ॥
ए॒षा । दि॒वः । दु॒हि॒ता । प्रति॑ । अ॒द॒र्शि॒ । वि॒ऽउ॒च्छन्ती॑ । यु॒व॒तिः । शु॒क्रऽवा॑साः । विश्व॑स्य । ईशा॑ना । पार्थि॑वस्य । वस्वः॑ । उषः॑ । अ॒द्य । इ॒ह । सु॒ऽभ॒गे॒ । वि । उ॒च्छ॒ ॥ ७ ॥
प॒रा॒ऽय॒ती॒ना । अनु॑ । ए॒ति॒ । पाथः॑ । आ॒ऽय॒ती॒नां । प्र॒थ॒मा । शश्व॑तीनां । वि॒ऽउ॒च्छन्ती॑ । जी॒वं । उ॒त्ऽई॒रय॑न्ती । उ॒षाः । मृ॒तं । कं । च॒न । बो॒धय॑न्ती ॥ ८ ॥ उषः॑ । यत् । अ॒ग्निं । स॒म्ऽइधे॑ । च॒कर्थ॑ । वि । यत् । आवः॑ । चक्ष॑सा । सूर्य॑स्य । यत् । मानु॑षान् । य॒क्ष्यमा॑णान् । अजी॑ग॒रिति॑ । तत् । दे॒वेषु॑ । च॒कृ॒षे॒ । भ॒द्रं । अप्नः॑ ॥ ९ ॥

कियात्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥ १० ॥ २ ॥
व्युषु ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥ ११ ॥
यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥ १२ ॥
शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥ १३ ॥
व्यञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥ १४ ॥

---

कियति । आ । यत् । समया । भवाति । याः । विऽऊषुः । याः । च । नूनं । विऽउ-
च्छान् । अनु । पूर्वाः । कृपते । वावशाना । प्रऽदीध्याना । जोषं । अन्याभिः । एति ॥ १० ॥ २

आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥ १५ ॥ ३ ॥
उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ १६ ॥
स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥ १७ ॥
या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत्सोमसुत्वा ॥ १८ ॥
माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि ।
प्रशस्तिकृद्ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥ १९ ॥

---

आऽवहन्ती । पोष्या । वार्याणि । चित्रं । केतुं । कृणुते । चेकिताना । ईयुषीणां । उपऽमा । शश्वतीनां । विऽभातीनां । प्रथमा । उषाः । वि । अश्वैत् ॥ १५ ॥ ३ ॥
उत् । ईर्ध्वं । जीवः । असुः । नः । आ । अगात् । अप । प्र । अगात् । तमः । आ । ज्योतिः । एति । अरैक् । पंथां । यातवे । सूर्याय । अगन्म । यत्र । प्रऽतिरंते । आयुः ॥ १६ ॥ स्यूमना । वाचः । उत् । इयर्ति । वह्निः । स्तवानः । रेभः । उषसः । विऽभातीः । अद्य । तत् । उच्छ । गृणते । मघोनि । अस्मे इति । आयुः । नि । दिदीहि । प्रजाऽवत् ॥ १७ ॥ याः । गोऽमतीः । उषसः । सर्वऽवीराः । विऽउच्छंति । दाशुषे । मर्त्याय । वायोःऽइव । सूनृतानां । उत्ऽअर्के । ताः । अश्वऽदाः । अश्नवत् । सोमऽसुत्वा ॥ १८ ॥ माता । देवानां । अदितेः । अनीकं । यज्ञस्य । केतुः । बृहती । वि । भाहि । प्रशस्तिऽकृत् । ब्रह्मणे । नः । वि । उच्छ । आ । नः । जने । जनय । विश्वऽवारे ॥ १९ ॥

यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २० ॥ ४ ॥

॥ ११४ ॥ ऋषि-आङ्गिरस कुत्स । देवता-रुद्र । छन्द-जगती ॥

॥११४॥ इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः।
यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ १ ॥
मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ २ ॥
अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥ ३ ॥
त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥

---

यत्। चित्रम्। अप्नः। उषसः। वहन्ति। ईजानाय। शशमानाय। भद्रम्। तत्। नः।
मित्रः। वरुणः। ममहन्त। अदितिः। सिन्धुः। पृथिवी। उत। द्यौः ॥ २० ॥४॥

दि॒वो व॑रा॒हम॑रु॒षं क॑प॒र्दिनं॑ त्वे॒षं रू॒पं नम॑सा॒ नि ह्व॑यामहे ।
हस्ते॒ बिभ्र॑द्भेष॒जा वार्या॑णि॒ शर्म॒ वर्म॑ च्छ॒र्दिर॒स्मभ्यं॑ यंसत् ॥ ५ ॥ ५ ॥
इ॒दं पि॒त्रे म॒रुता॑मुच्यते॒ वचः॑ स्वा॒दोः स्वादी॑यो रु॒द्राय॒ वर्ध॑नम् ।
रास्वा॑ च नो अमृत मर्त॒भोज॑नं॒ त्मने॑ तो॒काय॒ तन॑याय मृळ ॥ ६ ॥
मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ अर्भ॒कं मा न॒ उक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ उक्षि॒तम् ।
मा नो॑ वधीः पि॒तरं॒ मोत मा॒तरं॒ मा नः॑ प्रि॒यास्त॒न्वो॑ रुद्र रीरिषः ॥ ७ ॥
मा न॑स्तो॒के तन॑ये॒ मा न॑ आ॒यौ मा नो॒ गोषु॒ मा नो॒ अश्वे॑षु रीरिषः ।
वी॒रान्मा नो॑ रुद्र भामि॒तो व॑धीर्ह॒विष्म॑न्तः॒ सद॒मित्त्वा॑ हवामहे ॥ ८ ॥
उप॑ ते॒ स्तोमा॑न्पशु॒पा इ॒वाक॑रं॒ रास्वा॑ पितर्मरुतां सु॒म्नम॒स्मे ।
भ॒द्रा हि ते॑ सुम॒तिर्मृ॑ळ॒यत्त॒माथा॑ व॒यमव॒ इत्ते॑ वृणीमहे ॥ ९ ॥

---

दिवः । व॒रा॒हं । अ॒रु॒षं । क॒प॒र्दिनं॑ । त्वे॒षं । रू॒पं । नम॑सा । नि । ह्व॒या॒म॒हे॒ । हस्ते॑ ।
बिभ्र॑त् । भे॒ष॒जा । वार्या॑णि । शर्म॑ । वर्म॑ । छ॒र्दिः । अ॒स्मभ्य॑ं । यं॒स॒त् ॥ ५ ॥ ५ ॥
इ॒दं । पि॒त्रे । म॒रुता॑ं । उ॒च्य॒ते॒ । वचः॑ । स्वा॒दोः । स्वादी॑यः । रु॒द्राय॑ । वर्ध॑नं । रास्व॑ ।
च॒ । नः॒ । अ॒मृ॒त॒ । म॒र्त॒ऽभोज॑नं । त्मने॑ । तो॒काय॑ । तन॑याय । मृ॒ळ ॥ ६ ॥ मा । नः॒ ।
म॒हान्तं॑ । उ॒त । मा । नः॒ । अ॒र्भ॒कं । मा । नः॒ । उक्ष॑न्तं । उ॒त । मा । नः॒ । उ॒क्षि॒तं ।
मा । नः॒ । व॒धीः॒ । पि॒तरं॑ । मा । उ॒त । मा॒तरं॑ । मा । नः॒ । प्रि॒याः । त॒न्वः॑ । रु॒द्र॒ ।
रि॒रि॒षः॒ ॥ ७ ॥ मा । नः॒ । तो॒के । तन॑ये । मा । नः॒ । आ॒यौ । मा । नः॒ । गोषु॑ ।
मा । नः॒ । अश्वे॑षु । रि॒रि॒षः॒ । वी॒रान् । मा । नः॒ । रु॒द्र॒ । भा॒मि॒तः । व॒धीः॒ । ह॒विष्म॑न्तः ।
सद॑ं । इत् । त्वा॒ । ह॒वा॒म॒हे॒ ॥ ८ ॥ उप॑ । ते॒ । स्तोमा॑न् । प॒शु॒पाःऽइ॑व । आ । अ॒क॒रं॒ ।
रास्व॑ । पि॒त॒रिति॑ । म॒रु॒तां॒ । सु॒म्नं । अ॒स्मे इति॑ । भ॒द्रा । हि । ते॒ । सु॒ऽम॒तिः । मृ॒ळ॒यत्ऽत॑मा ।
अथ॑ । व॒यं । अवः॑ । इत् । ते॒ । वृ॒णी॒म॒हे॒ ॥ ९ ॥

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥ १० ॥
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥ ६ ॥

॥ ११५ ॥ ऋषि—आङ्गिरसः कुत्सः । देवता—सूर्यः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥ ११५ ॥ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १ ॥
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ २ ॥
भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥ ३ ॥

---

आरे । ते । गोऽघ्नं । उत । पुरुषऽघ्नं । क्षयत्ऽवीर । सुम्नं । अस्मे इति । ते । अस्तु ।
मृळ । च । नः । अधि । च । ब्रूहि । देव । अध । च । नः । शर्म । यच्छ । द्विऽबर्हाः ॥१०॥ अवोचाम । नमः । अस्मै । अवस्यवः । शृणोतु । नः । हवं । रुद्रः । मरुत्वान् ।
तत् । नः । मित्रः । वरुणः । मामहन्ताम् । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ४ ॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ५ ॥
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिंधुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥७॥१६॥

## ॥ सप्तदशोऽनुवाकः ॥

॥ ११६ ॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–अश्विनौ । छन्द–त्रिष्टुप् ॥

॥ ११६ ॥ नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
याववर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥ १ ॥
वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥ २ ॥

---

तत् । सूर्यस्य । देवऽत्वं । तत् । महिऽत्वं । मध्या । कर्तोः । विऽततं । सं । जभार । यदा । इत् । अयुक्त । हरितः । सधऽस्थात् । आत् । रात्री । वासः । तनुते । सिमस्मै ॥ ४ ॥ तत् । मित्रस्य । वरुणस्य । अभिऽचक्षे । सूर्यः । रूपं । कृणुते । द्योः । उपऽस्थे । अनंतं । अन्यत् । रुशत् । अस्य । पाजः । कृष्णं । अन्यत् । हरितः । सं । भरंति ॥ ५ ॥ अद्य । देवाः । उत्ऽइता । सूर्यस्य । निः । अंहसः । पिपृत । निः । अवद्यात् । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्तां । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ६ ॥ ७ ॥ १६ ॥

नासत्याभ्या । बर्हिःऽइव । प्र । वृंजे । स्तोमान् । इयर्मि । अभ्रियाऽइव । वातः । यौ । अर्भगाय । विऽमदाय । जायां । सेनाऽजुवा । निऽऊहतुः । रथेन ॥ १ ॥ वीळुपत्मऽभिः । आशुहेमऽभिः । वा । देवानां । वा । जूतिऽभिः । शाशदाना । तत् । रासभः । नासत्या । सहस्रं । आजा । यमस्य । प्रऽधने । जिगाय ॥ २ ॥

तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥ ३ ॥

तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥ ४ ॥

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥ ५ ॥ ८ ॥

यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति ।
तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥ ६ ॥

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरंधिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥ ७ ॥

---

तुग्रः । ह । भुज्युं । अश्विना । उदऽमेघे । रयिं । न । कः । चित् । ममृऽवान् । अव । अहाः । तं । ऊहथुः । नौभिः । आत्मन्ऽवतीभिः । अंतरिक्षप्रुत्ऽभिः । अपऽउदकाभिः ॥ ३ ॥ तिस्रः । क्षपः । त्रिः । अहा । अतिव्रजत्ऽभिः । नासत्या । भुज्युं । ऊहथुः । पतंगैः । समुद्रस्य । धन्वन् । आर्द्रस्य । पारे । त्रिऽभिः । रथैः । शतपत्ऽभिः । षट्ऽअश्वैः ॥ ४ ॥ अनारंभणे । तत् । अवीरयेथां । अनास्थाने । अग्रभणे । समुद्रे । यत् । अश्विना । ऊहथुः । भुज्युं । अस्तं । शतऽअरित्रां । नावं । आ । तस्थिऽवांसं ॥ ५ ॥ ८ ॥ यं । अश्विना । ददथुः । श्वेतं । अश्वं । अघऽअश्वाय । शश्वत् । इत् । स्वस्ति । तत् । वां । दात्रं । महि । कीर्तेन्यं । भूत् । पैद्वः । वाजी । सदं । इत् । हव्यः । अर्यः ॥ ६ ॥ युवं । नरा । स्तुवते । पज्रियाय । कक्षीवते । अरदतं । पुरंऽधिं । कारोतरात् । शफात् । अश्वस्य । वृष्णः । शतं । कुंभान् । असिंचतं । सुरायाः ॥ ७ ॥

हि॒मेना॒ग्निं घ्रं॒समवारयेथां पितु॒मती॒मूर्ज॑मस्मा अधत्तं ।
ऋ॒बीसे॒ अत्रि॑मश्वि॒नाव॑नीत॒मुन्नि॑न्यथुः॒ सर्व॑गणं स्व॒स्ति ॥ ८ ॥
परा॑व॒तं ना॑सत्यानुदेथा॒मु॒च्चाबु॑घ्नं चक्रथु॒र्जि॒ह्मबा॑रम् ।
क्षर॒न्नापो॒ न पा॒यना॑य रा॒ये स॒हस्रा॑य तृष्य॑ते गोत॑मस्य ॥ ९ ॥
जुजु॒रुषो॑ नासत्यो॒त व॒व्रिं प्रामु॑ञ्चतं द्रा॒पिमि॑व॒ च्यवा॑नात् ।
प्राति॑रतं जहि॒तस्यायु॑र्द॒स्रादित्पति॑मकृणुतं क॒नीना॑म् ॥ १० ॥ ९ ॥
तद्वां॑ नरा॒ शंस्यं॒ राध्यं॑ चाभि॒ष्टिम॑न्नासत्या॒ वरू॑थम् ।
यद्वि॒द्वांसा॑ नि॒धिमि॒वाप॑गूळ्ह॒मुद्द॑र्श॒तादू॒पथु॒र्वन्द॑नाय ॥ ११ ॥
तद्वां॑ नरा॒ स॒नये॒ दंस॑ उ॒ग्रमा॒विष्कृ॑णोमि तन्य॒तुर्न वृ॒ष्टिम् ।
द॒ध्यङ् ह॒ यन्मध्वा॑थर्व॒णो वा॒मश्व॑स्य शी॒र्ष्णा प्र यदी॑मु॒वाच॑ ॥ १२ ॥

---

हि॒मेन॑ । अ॒ग्निं । घ्रं॒सं । अ॒वा॒र॒ये॒थां॒ । पि॒तु॒ऽमती॑म् । ऊर्ज॑म् । अ॒स्मै॒ । अ॒ध॒त्त॒म् । ऋ॒बीसे॑ । अत्रि॑म् । अ॒श्वि॒ना॒ । अव॑ऽनीतम् । उत् । नि॒न्य॒थुः॒ । सर्व॑ऽगणम् । स्व॒स्ति ॥ ८ ॥ परा॑ । अ॒व॒तम् । ना॒स॒त्या॒ । अ॒नु॒दे॒था॒म् । उ॒च्चाऽबु॑ध्नम् । च॒क्र॒थुः॒ । जि॒ह्मऽबा॑रम् । क्षर॑न् । आपः॑ । न । पा॒यना॑य । रा॒ये । स॒हस्रा॑य । तृष्य॑ते । गोत॑मस्य ॥ ९ ॥ जु॒जु॒रुषः॑ । ना॒स॒त्या॒ । उ॒त । व॒व्रिम् । प्र । अ॒मु॒ञ्च॒त॒म् । द्रा॒पिम्ऽइ॑व । च्यवा॑नात् । प्र । अ॒ति॒र॒त॒म् । ज॒हि॒तस्य॑ । आयुः॑ । द॒स्रा॒ । आत् । इत् । पति॑म् । अ॒कृ॒णु॒त॒म् । क॒नीना॑म् ॥ १० ॥ ९ ॥ तत् । वा॒म् । न॒रा॒ । शंस्य॑म् । राध्य॑म् । च॒ । अ॒भि॒ष्टिऽमत् । ना॒स॒त्या॒ । वरू॑थम् । यत् । वि॒द्वांसा॑ । नि॒धिम्ऽइ॑व । अप॑ऽगूळ्हम् । उत् । द॒र्श॒तात् । ऊ॒पथुः॑ । वन्द॑नाय ॥ ११ ॥ तत् । वा॒म् । न॒रा॒ । स॒नये॑ । दंसः॑ । उ॒ग्रम् । आ॒विः । कृ॒णो॒मि॒ । त॒न्य॒तुः । न । वृ॒ष्टिम् । द॒ध्यङ् । ह॒ । यत् । मधु॑ । आ॒थ॒र्व॒णः । वा॒म् । अश्व॑स्य । शी॒र्ष्णा । प्र । यत् । ई॒म् । उ॒वाच॑ ॥ १२ ॥

अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरंधिः ।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥ १३ ॥
आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम् ।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥ १४ ॥
चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ १५ ॥ १० ॥
शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥ १६ ॥
आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य काष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥ १७ ॥

---

अजोहवीत् । नासत्या । करा । वां । महे । यामन् । पुरुऽभुजा । पुरंऽधिः । श्रुतं । तत् । शासुःऽइव । वध्रिऽमत्याः । हिरण्यऽहस्तं । अश्विनौ । अदत्तं ॥ १३ ॥ आस्नः । वृकस्य । वर्तिकां । अभीके । युवं । नरा । नासत्या । अमुमुक्तं । उतो इति । कविं । पुरुऽभुजा । युवं । ह । कृपमाणं । अकृणुतं । विऽचक्षे ॥ १४ ॥ चरित्रं । हि । वेःऽइव । अच्छेदि । पर्णं । आजा । खेलस्य । परिऽतक्म्यायां । सद्यः । जंघां । आयसीं । विश्पलायै । धने । हिते । सर्तवे । प्रति । अधत्तं ॥ १५ ॥ १० ॥ शतं । मेषान् । वृक्ये । चक्षदानं । ऋज्रऽअश्वं । तं । पिता । अंधं । चकार । तस्मै । अक्षी इति । नासत्या । विऽचक्षे । आ । अधत्तं । दस्रा । भिषजौ । अनर्वन् ॥ १६ ॥ आ । वां । रथं । दुहिता । सूर्यस्य । काष्मेऽइव । अतिष्ठत् । अर्वता । जयंती । विश्वे । देवाः । अनु । अमन्यंत । हृत्ऽभिः । सं । ऊं इति । श्रिया । नासत्या । सचेथे इति ॥ १७ ॥

यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥ १८ ॥
रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावीं समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥ १९ ॥
परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥ २० ॥ ११ ॥
एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥ २१ ॥
शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥ २२ ॥

---

यत् । अयातं । दिवःऽदासाय । वर्तिः । भरत्ऽवाजाय । अश्विना । हयन्ता । रेवत् । उवाह । सचनः । रथः । वां । वृषभः । च । शिंशुमारः । च । युक्ता ॥ १८ ॥

रयिं । सुऽक्षत्रं । सुऽअपत्यम् । आयुः । सुऽवीर्यं । नासत्या । वहन्ता । आ । जह्नावीं । सऽमनसा । उप । वाजैः । त्रिः । अह्नः । भागं । दधतीं । अयातं ॥ १९ ॥

परिऽविष्टं । जाहुषं । विश्वतः । सीं । सुऽगेभिः । नक्तं । ऊहथुः । रजःऽभिः । विऽभिन्दुना । नासत्या । रथेन । वि । पर्वतान् । अजरयू इति । अयातं ॥ २० ॥ ११ ॥

एकस्याः । वस्तोः । आवतं । रणाय । वशं । अश्विना । सनये । सहस्रा । निः । अहतं । दुच्छुनाः । इन्द्रऽवन्ता । पृथुऽश्रवसः । वृषणौ । अरातीः ॥ २१ ॥ शरस्य । चित् । आर्चत्ऽकस्य । अवतात् । आ । नीचात् । उच्चा । चक्रथुः । पातवे । वारिति वाः । शयवे । चित् । नासत्या । शचीभिः । जसुरये । स्तर्यं । पिप्यथुः । गां ॥ २२ ॥

अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥ २३ ॥
दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः ।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥ २४ ॥
प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥ २५ ॥ १२ ॥

॥ ११७ ॥ ऋषि—कक्षीवान् । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप् ॥

॥ ११७ ॥ मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥ १ ॥
यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥ २ ॥

---

अवस्यते । स्तुवते । कृष्णियाय । ऋजुऽयते । नासत्या । शचीभिः । पशुम् । न ।
नष्टम्ऽइव । दर्शनाय । विष्णाप्वम् । ददथुः । विश्वकाय ॥ २३ ॥ दश । रात्रीः ।
अशिवेन । नव । द्यून् । अवऽनद्धम् । श्नथितम् । अप्ऽसु । अन्तरिति । विऽप्रुतम् । रेभम् ।
उदनि । प्रऽवृक्तम् । उत् । निन्यथुः । सोमम्ऽइव । स्रुवेण ॥ २४ ॥ प्र । वाम् । दंसांसि ।

ऋषिं नरावंहंसः पाञ्चंजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेनं ।
मिनन्ता दस्योरशिंवस्य माया अंनुपूर्वं वृषणा चोदयंन्ता ॥ ३ ॥
अश्वं न गूळ्हमंश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिंणीथो विप्रुंतं दंसोंभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानिं ॥ ४ ॥
सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमंसि क्षियन्तंम् ।
शुभे रुक्मं न दंर्शतं निखांतमुदूपथुरश्विना वन्दंनाय ॥ ५ ॥ १३ ॥
तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेणं कक्षीवंता नासत्या परिंज्मन् ।
शफादश्वंस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ अंसिञ्चतं मधूंनाम् ॥ ६ ॥
युवं नरा स्तुवते कृष्णियायं विष्णाप्वं ददथुर्विश्वंकाय ।
घोषायै चित्पितृषदें दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तं ॥ ७ ॥

---

ऋषिं । नरौ । अंहंसः । पांचंऽजन्यं । ऋबीसांत् । अत्रिं । मुंचथः । गणेनं । मिनंता । दस्योः । अशिंवस्य । मायाः । अनुऽपूर्वं । वृषणा । चोदयंता ॥ ३ ॥ अश्वं । न । गूळ्हं । अश्विना । दुःऽएवैः । ऋषिं । नरा । वृषणा । रेभं । अपऽसु । सं । तं । रिणीथः । विऽप्रुतं । दंसःऽभिः । न । वां । जूर्यंति । पूर्व्या । कृतानिं ॥ ४ ॥ सुसुप्वांसं । न । निःऽऋतेः । उपऽस्थे । सूर्यं । न । दस्रा । तमंसि । क्षियंतं । शुभे । रुक्मं । न । दर्शतं । निऽखांतं । उत् । ऊपथुः । अश्विना । वंदनाय ॥५॥१३॥ तत् । वां । नरा । शंस्यं । पज्रियेणं । कक्षीवंता । नासत्या । परिंऽज्मन् । शफात् । अश्वंस्य । वाजिनंः । जनाय । शतं । कुंभान् । असिंचतं । मधूंनां ॥ ६ ॥ युवं । नरा । स्तुवते । कृष्णियायं । विष्णाप्वं । ददथुः । विश्वंकाय । घोषायै । चित् । पितृऽसदें । दुरोणे । पतिं । जूर्यंत्यै । अश्विनौ । अदत्तं ॥ ७ ॥

युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥ ८ ॥
पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥ ९ ॥
एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद्वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥ १० ॥ १४ ॥
सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥ ११ ॥
कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥ १२ ॥

---

युवं । श्यावाय । रुशतीं । अदत्तं । महः । क्षोणस्य । अश्विना । कण्वाय । प्रऽवाच्यं । तत् । वृषणा । कृतं । वां । यत् । नार्षदाय । श्रवः । अधिऽअधत्तं ॥ ८ ॥ पुरु । वर्पांसि । अश्विना । दधाना । नि । पेदवे । ऊहथुः । आशुं । अश्वं । सहस्रऽसां । वाजिनं । अप्रतिऽइतं । अहिऽहनं । श्रवस्यं । तरुत्रं ॥ ९ ॥ एतानि । वां । श्रवस्या । सुदानू इति सुऽदानू । ब्रह्म । आङ्गूषं । सदनं । रोदस्योः । यत् । वां । पज्रासः । अश्विना । हवंते । यातं । इषा । च । विदुषे । च । वाजं ॥ १० ॥ १४ ॥ सूनोः । मानेन । अश्विना । गृणाना । वाजं । विप्राय । भुरणा । रदंता । अगस्त्ये । ब्रह्मणा । वावृधाना । सं । विश्पलां । नासत्या । अरिणीतं ॥ ११ ॥ कुह । यांता । सुऽस्तुतिं । काव्यस्य । दिवः । नपाता । वृषणा । शयुऽत्रा । हिरण्यस्यऽइव । कलशं । निऽखातं । उत् । ऊपथुः । दशमे । अश्विना । अहन् ॥ १२ ॥

युवं च्यवा॑नमश्विना॒ जर॑न्तं॒ पुन॒र्युवा॑नं चक्रथुः॒ शची॑भिः ।
युवो रथं॑ दुहि॒ता सूर्य॑स्य स॒ह श्रि॒या ना॑सत्यावृणीत ॥ १३ ॥
युवं तुग्रा॑य पू॒र्व्येभि॒रेवैः॑ पुनर्म॒न्याव॑भवतं युवाना ।
युवं भु॒ज्युमर्ण॑सो निः स॑मु॒द्राद्विभि॑रूहथुर्ऋ॒ज्रेभि॒रश्वैः॑ ॥ १४ ॥
अजो॑हवीदश्विना तौ॒ग्र्यो वां॒ प्रोळ्हः॑ समु॒द्रम॑व्य॒थिर्ज॑गन्वान् ।
निष्टमू॑हथुः सु॒युजा॒ रथे॑न॒ मनो॑जवसा वृषणा स्व॒स्ति ॥ १५ ॥ १५ ॥
अजो॑हवीदश्विना॒ वर्ति॑का वामा॒स्नो यत्सी॒ममु॑ञ्चतं॒ वृक॑स्य ।
वि ज॒युषा॑ ययथुः॒ सान्वद्रे॑र्जा॒तं वि॒ष्वाचो॑ अहतं वि॒षेण॑ ॥ १६ ॥
श॒तं मे॒षान्वृ॒क्ये॑ मामहा॒नं तमः॒ प्रणी॑तम॒शिवे॑न पि॒त्रा ।
आक्षी ऋ॒ज्राश्वे॑ अश्विनावधत्तं॒ ज्योति॑र॒न्धाय॑ चक्रथुर्वि॒चक्षे॑ ॥ १७ ॥

---

यु॒वं । च्यवा॑नं । अ॒श्वि॒ना॒ । जर॑न्तं । पुन॑रिति॑ । युवा॑नं । च॒क्र॒थुः॒ । शची॑भिः । यु॒वोः । रथ॑म् । दु॒हि॒ता । सूर्य॑स्य । स॒ह । श्रि॒या । ना॒स॒त्या॒ । अ॒वृ॒णी॒त॒ ॥ १३ ॥ यु॒वं । तुग्रा॑य । पू॒र्व्येभिः॑ । एवैः॑ । पु॒नः॒ऽम॒न्यौ । अ॒भ॒व॒तं॒ । यु॒वा॒ना॒ । यु॒वं । भु॒ज्युं । अर्ण॑सः । निः । स॒मु॒द्रात् । विऽभिः॑ । ऊ॒ह॒थुः॒ । ऋ॒ज्रेभिः॑ । अश्वैः॑ ॥ १४ ॥ अजो॑हवीत् । अ॒श्वि॒ना॒ । तौ॒ग्र्यः । वा॒म् । प्रऽऊ॑ळ्हः । स॒मु॒द्रम् । अ॒व्य॒थिः । ज॒ग॒न्वान् । निः । तम् । ऊ॒ह॒थुः॒ । सु॒ऽयुजा॑ । रथे॑न । मनः॑ऽजवसा । वृ॒ष॒णा॒ । स्व॒स्ति ॥ १५ ॥ १५ ॥ अजो॑हवीत् । अ॒श्वि॒ना॒ । वर्ति॑का । वा॒म् । आ॒स्नः । यत् । सी॒म् । अमु॑ञ्चतं । वृक॑स्य । वि । ज॒युषा॑ । य॒य॒थुः॒ । सानु॑ । अद्रेः॑ । जा॒तम् । वि॒ष्वाचः॑ । अ॒ह॒त॒म् । वि॒षेण॑ ॥ १६ ॥ श॒तम् । मे॒षान् । वृ॒क्ये॑ । म॒म॒हा॒नं । तमः॑ । प्रऽनी॑तं । अशि॑वेन । पि॒त्रा । आ । अ॒क्षी इति॑ । ऋ॒ज्रऽअ॑श्वे । अ॒श्वि॒नौ॒ । अ॒ध॒त्त॒म् । ज्योतिः॑ । अ॒न्धाय॑ । च॒क्र॒थुः॒ । वि॒ऽचक्षे॑ ॥ १७ ॥

शतमेषं वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
ज्ञारः कनीनं इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥ १८ ॥
मही वामूतिरश्विना मयोभूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत्पुरंधिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥ १९ ॥
अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥ २० ॥ १६ ॥
यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ २१ ॥
आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥ २२ ॥

---

शतं । मेषान् । वृक्ये । चक्षदानं । ऋज्रऽअश्वं । तं । पिता । अन्धं । चकार ।
ज्ञारः । कनीनःऽइव । चक्षदानः । ऋज्रऽअश्वः । शतं । एकं । च । मेषान् ॥ १८ ॥
मही । वां । ऊतिः । अश्विना । मयःऽभूः । उत । स्रामं । धिष्ण्या । सं । रिणीथः ।
अथ । युवां । इत् । अह्वयत् । पुरंऽधिः । आ । अगच्छतं । सीं । वृषणौ । अवःऽभिः ॥ १९ ॥

सदा॑ कवी सु॑म॒तिमा च॑क्रे वां॒ विश्वा॒ धियो॑ अश्विना॒ प्राव॑तं मे।
अ॒स्मे र॒यिं ना॑सत्या बृ॒हन्त॑मपत्य॒साचं॒ श्रुत्यं॑ रराथाम् ॥ २३ ॥
हिर॑ण्यहस्तमश्विना॒ ररा॑णा पु॒त्रं न॑रा वध्रिम॒त्या अ॑दत्तम् ।
त्रिधा॑ ह॒ श्याव॑मश्विना॒ विक॑स्तमु॒ज्जीव॑स॒ ऐर॑यतं सुदानू ॥ २४ ॥
ए॒तानि॑ वामश्विना वी॒र्या॑णि॒ प्र पू॒र्व्याण्या॒यवो॑ऽवोचन् ।
ब्रह्म॑ कृ॒ण्वन्तो॑ वृषणा यु॒वभ्यां॑ सु॒वीरा॑सो वि॒दथ॒मा व॑देम ॥ २५ ॥ १७ ॥

॥ ११८ ॥ ऋषि -कक्षीवान् । देवता-अश्विनौ । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥११८॥ आ वां॒ रथो॑ अश्विना श्ये॒नप॑त्वा सुमृळी॒कः स्ववाँ॑ यात्व॒र्वाङ्
यो मर्त्य॑स्य॒ मन॑सो॒ जवी॑यान्त्रिवन्धु॒रो वृ॑षणा॒ वात॑रंहाः ॥ १ ॥
त्रि॒व॒न्धु॒रेण॑ त्रि॒वृता॒ रथे॑न त्रिच॒क्रेण॑ सु॒वृता॑ यातम॒र्वाक् ।
पिन्व॑तं॒ गा जिन्व॑त॒मर्व॑तो नो व॒र्धय॑तमश्विना वी॒रम॒स्मे ॥ २ ॥

---

सदा॑ । क॒वी इति॑ । सु॒ऽम॒तिम् । आ । च॒क्रे॒ । वा॒म् । विश्वाः॑ । धियः॑ । अ॒श्वि॒ना॒ । प्र॒ । अ॒व॒त॒म् । मे॒ । अ॒स्मे इति॑ । र॒यिम् । ना॒स॒त्या॒ । बृ॒हन्त॑म् । अ॒प॒त्य॒ऽसाच॑म् । श्रुत्य॑म् । र॒रा॒था॒म् ॥ २३ ॥ हिर॑ण्यऽहस्तम् । अ॒श्वि॒ना॒ । ररा॑णा । पु॒त्रम् । न॒रा॒ । व॒ध्रि॒ऽम॒त्याः । अ॒द॒त्त॒म् । त्रिधा॑ । ह॒ । श्याव॑म् । अ॒श्वि॒ना॒ । विऽक॑स्तम् । उत् । जी॒वसे॑ । ऐ॒र॒य॒त॒म् । सु॒दा॒नू॒ इति॑ सुऽदानू ॥ २४ ॥ ए॒तानि॑ । वा॒म् । अ॒श्वि॒ना॒ । वी॒र्या॑णि । प्र । पू॒र्व्याणि॑ । आ॒यवः॑ । अ॒वो॒च॒न् । ब्रह्म॑ । कृ॒ण्वन्तः॑ । वृ॒ष॒णा॒ । यु॒वऽभ्या॑म् । सु॒ऽवीरा॑सः । वि॒दथ॑म् । आ । व॒दे॒म॒ ॥ २५ ॥ १७ ॥

आ । वा॒म् । रथः॑ । अ॒श्वि॒ना॒ । श्ये॒नऽप॑त्वा । सु॒ऽमृ॒ळी॒कः । स्वऽवा॑न् । या॒तु॒ । अ॒र्वाङ् । यः । मर्त्य॑स्य । मन॑सः । जवी॑यान् । त्रि॒ऽव॒न्धु॒रः । वृ॒ष॒णा॒ । वात॑ऽरंहाः ॥ १ ॥ त्रि॒ऽव॒न्धु॒रेण॑ । त्रि॒ऽवृता॑ । रथे॑न । त्रि॒ऽच॒क्रेण॑ । सु॒ऽवृता॑ । आ । या॒त॒म् । अ॒र्वाक् । पिन्व॑तम् । गाः । जिन्व॑तम् । अर्व॑तः । नः॒ । व॒र्धय॑तम् । अ॒श्वि॒ना॒ । वी॒रम् । अ॒स्मे इति॑ ॥ २ ॥

प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥

आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ ४ ॥

आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥ ५ ॥ १८ ॥

उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६ ॥

युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ७ ॥

---

प्रवत्ऽयामना । सुऽवृता । रथेन । दस्रौ । इमं । शृणुतं । श्लोकं । अद्रेः । किं । अंग । वां । प्रति । अवर्ति । गमिष्ठा । आहुः । विप्रासः । अश्विना । पुराऽजाः ॥ ३ ॥

आ । वां । श्येनासः । अश्विना । वहंतु । रथे । युक्तासः । आशवः । पतंगाः । ये । अप्ऽतुरः । दिव्यासः । न । गृध्राः । अभि । प्रयः । नासत्या । वहंति ॥ ४ ॥

युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।

अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥ ८ ॥

युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।

जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥ ९ ॥

ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।

आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥ १० ॥

आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।

हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ॥ ११ ॥ १९ ॥

---

युवं । धेनुं । शयवे । नाधिताय । अपिन्वतं । अश्विना । पूर्व्याय । अमुंचतं । वर्तिका । अंहसः । निः । प्रति । जंघां । विश्पलायाः । अधत्तं ॥ ८ ॥ युवं । श्वेतं । पेदवे । इंद्रऽजूतं । अहिऽहनं । अश्विना । अदत्तं । अश्वं । जोहूत्रं । अर्यः । अभिऽभूतिं । उग्रं । सहस्रऽसां । वृषणं । वीळुऽअंगं ॥ ९ ॥ ता । वां । नरा । सु । अवसे । सुऽजाता । हवामहे । अश्विना । नाधमानाः । आ । नः । उप । वसुऽमता । रथेन । गिरः । जुषाणा । सुविताय । यातं ॥ १० ॥ आ । श्येनस्य । जवसा । नूतनेन । अस्मे इति । यातं । नासत्या । सऽजोषाः । हवे । हि । वां । अश्विना । रातऽहव्यः । शश्वत्ऽतमायाः । उषसः । विऽउष्टौ ॥ ११ ॥ १९ ॥

॥ ११९ ॥ ऋषिः-कक्षीवान् । देवता-अश्विनौ । छन्दः-जगती ॥

॥११९॥ आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥ १ ॥
ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥ २ ॥
सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरं ॥ ३ ॥
युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥ ४ ॥

---

आ । वां । रथं । पुरुऽमायं । मनःऽजुवं । जीरऽअश्वं । यज्ञियं । जीवसे । हुवे । सहस्रऽकेतुं । वनिनं । शतत्ऽवसुं । श्रुष्टीऽवानं । वरिवःऽधां । अभि । प्रयः ॥ १ ॥

युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ॥५॥२०॥
युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६ ॥
युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः ।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥ ७ ॥
अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥ ८ ॥
उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥ ९ ॥

---

युवोः । अश्विना । वपुषे । युवाऽयुजं । रथं । वाणी इति । येमतुः । अस्य । शर्ध्यं ।
आ । वां । पतिऽत्वं । सख्याय । जग्मुषी । योषा । अवृणीत । जेन्या । युवां । पती
इति ॥ ५ ॥ २० ॥ युवं । रेभं । परिऽसूतेः । उरुष्यथः । हिमेन । घर्मं । परिऽतप्तं ।
अत्रये । युवं । शयोः । अवसं । पिप्यथुः । गवि । प्र । दीर्घेण । वंदनः । तारि ।
आयुषा ॥ ६ ॥ युवं । वंदनं । निःऽऋतं । जरण्यया । रथं । न । दस्रा । करणा ।
सं । इन्वथः । क्षेत्रात् । आ । विप्रं । जनथः । विपन्यया । प्र । वां । अत्र । विधते ।
दंसना । भुवत् ॥ ७ ॥ अगच्छतं । कृपमाणं । पराऽवति । पितुः । स्वस्य । त्यजसा ।
निऽबाधितं । स्वःऽवतीः । इतः । ऊतीः । युवोः । अह । चित्राः । अभीके । अभवन् ।
अभिष्टयः ॥ ८ ॥ उत । स्या । वां । मधुऽमत् । मक्षिका । अरपत् । मदे । सोमस्य ।
औशिजः । हुवन्यति । युवं । दधीचः । मनः । आ । विवासथः । अथ । शिरः ।
प्रति । वां । अश्व्यं । वदत् ॥ ९ ॥

युवं पेद्वे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।

शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥ १० ॥ २१ ॥

॥ १२० ॥ ऋषिः - कक्षीवान् । देवता - अश्विनौ । छन्दः - गायत्री ॥

॥ १२० ॥ का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोषं उभयोः ।

कथा विधात्यप्रचेताः ॥ १ ॥

विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः ।

नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥ २ ॥

ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य ।

प्रार्चद्दयमानो युवाकुः ॥ ३ ॥

वि पृच्छामि पाक्या न देवान्वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा ।

पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥ ४ ॥

---

प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम् ।
प्रैषयुर्न विद्वान् ॥ ५ ॥ २२ ॥

श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् ।
आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६ ॥

युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरततंसतम् ।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥ ७ ॥

मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः ।
स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥ ८ ॥

दुहीयन्मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ९ ॥

---

प्र । या । घोषे । भृगवाणे । न । शोभे । यया । वाचा । यजति । पज्रियः । वा ।
प्र । इषऽयुः । न । विद्वान् ॥ ५ ॥ २२ ॥ श्रुतं । गायत्रं । तकवानस्य । अहं । चित् ।
हि । रिरेभ । अश्विना । वां । आ । अक्षी इति । शुभः । पती इति । दन् ॥ ६ ॥
युवं । हि । आस्तं । महः । रन् । युवं । वा । यत् । निःऽअततंसतं । ता । नः । वसू
इति । सुऽगोपा । स्यातं । पातं । नः । वृकात् । अघऽयोः ॥ ७ ॥ मा । कस्मै । धातं ।
अभि । अमित्रिणे । नः । मा । अकुत्र । नः । गृहेभ्यः । धेनवः । गुः । स्तनऽभुजः ।
अशिश्वीः ॥ ८ ॥ दुहीयन् । मित्रऽधितये । युवाकु । राये । च । नः । मिमीतं ।
वाजऽवत्यै । इषे । च । नः । मिमीतं । धेनुऽमत्यै ॥ ९ ॥

अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः ।
तेनाहं भूरि चाकन ॥ १० ॥

अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु ।
सोमपेयं सुखो रथः ॥ ११ ॥

अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः ।
उभा ता बस्रि नश्यतः ॥ १२ ॥ २३ ॥ १७ ॥

## ॥ अष्टादशोऽनुवाकः ॥

॥ १२१ ॥ ऋषिः कक्षीवान् । देवता-विश्वेदेवा,-इन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥१२१॥ कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां श्रवद्गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।
प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्राः ॥ १ ॥
स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥ २ ॥

---

अश्विनोः । असनं । रथं । अनश्वं । वाजिनीऽवतोः । तेन । अहं । भूरि । चाकन ॥ १० ॥ अयं । समह । मा । तनु । ऊह्याते । जनान् । अनु । सोमऽपेयं । सुखः । रथः ॥ ११ ॥ अध । स्वप्नस्य । निः । विदे । अभुञ्जतः । च । रेवतः । उभा । ता । बस्रि । नश्यतः ॥ १२ ॥ २३ ॥ १७ ॥

नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून् ।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद्द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥ ३
अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम् ।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥ ४ ॥
तुभ्यं पयो यत्पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥ ५ ॥ २४ ॥
अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः ।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥ ६ ॥
स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात्सूरो अध्वरे परि रोधना गोः ।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननर्विशे पश्विषे तुराय ॥ ७ ॥

---

नक्षत् । हवम् । अरुणीः । पूर्व्यम् । राट् । तुरः । विशाम् । अङ्गिरसाम् । अनु । द्यून् ।
तक्षत् । वज्रम् । निऽयुतम् । तस्तम्भत् । द्याम् । चतुःऽपदे । नर्याय । द्विऽपादे ॥ ३ ॥
अस्य । मदे । स्वर्यम् । दाः । ऋताय । अपिऽवृतम् । उस्रियाणाम् । अनीकम् । यत् । ह ।
प्रऽसर्गे । त्रिऽककुप् । निऽवर्तत् । अप । द्रुहः । मानुषस्य । दुरः । वरिति वः ॥ ४ ॥
तुभ्यम् । पयः । यत् । पितरौ । अनीताम् । राधः । सुऽरेतः । तुरणे । भुरण्यू इति ।
शुचि । यत् । ते । रेक्णः । आ । अयजन्त । सबःऽदुघायाः । पयः । उस्रि-
यायाः ॥ ५ ॥ २४ ॥ अध । प्र । जज्ञे । तरणिः । ममत्तु । प्र । रोचि । अस्याः ।
उषसः । न । सूरः । इन्दुः । येभिः । आष्ट । स्वऽइदुहव्यैः । स्रुवेण । सिञ्चन् ।
जरणा । अभि । धाम ॥ ६ ॥ सुऽइध्मा । यत् । वनऽधितिः । अपस्यात् । सूरः ।
अध्वरे । परि । रोधना । गोः । यत् । ह । प्रऽभासि । कृत्व्यान् । अनु । द्यून् । अनर्-
विशे । पशुऽइषे । तुराय ॥ ७ ॥

अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सं ।
हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन्वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥ ८ ॥
त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा ।
कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वञ्छुष्णमनन्तैः परियासि वधैः ॥ ९ ॥
पुरा यत्सूरस्तमसो अपीतेस्तमद्रिवः फलिगं हेतिमस्य ।
शुष्णस्य चित्परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रथितं तदादः ॥ १० ॥ २५ ॥
अनु त्वा मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा मदतामिन्द्र कर्मन् ।
त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम् ॥ ११ ॥
त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन्तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान् ।
यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद्वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् ॥ १२ ॥

---

अष्ट । महः । दिवः । आदः । हरी इति । इह । द्युम्नऽसहं । अभि । योधानः । उत्सं । हरिं । यत् । ते । मन्दिनं । धुक्षन् । वृधे । गोऽरभसं । अद्रिऽभिः । वाताप्यं ॥ ८ ॥ त्वं । आयसं । प्रति । वर्तयः । गोः । दिवः । अश्मानं । उप-

त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन्भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् ॥ १३ ॥
त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीके ।
प्र नो वाजान्रथ्यो३अश्वबुध्यानिषे यन्धि श्रवसे सूनृतायै ॥ १४ ॥
मा सा ते अस्मत्सुमतिर्वि दसद्वाजप्रमहः समिषो वरन्त ।
आ नो भज मघवन्गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम ॥१५॥२६॥८॥१॥

---

त्वं । सूरः । हरितः । रमयः । नॄन् । भरत् । चक्रं । एतशः । न । अयं । इंद्र ।
प्रऽअस्य । पारं । नवतिं । नाव्यानां । अपि । कर्तं । अवर्तयः । अयज्यून् ॥ १३ ॥
त्वं । नः । अस्याः । इंद्र । दुःऽहनायाः । पाहि । वज्रिऽवः । दुःऽइतात् । अभीके । प्र ।
नः । वाजान् । रथ्यः । अश्वऽबुध्यान् । इषे । यंधि । श्रवसे । सूनृतायै ॥ १४ ॥
मा । सा । ते । अस्मत् । सुऽमतिः । वि । दसत् । वाजऽप्रमहः । सं । इषः । वरंत ।
आ । नः । भज । मघऽवन् । गोषु । अर्यः । मंहिष्ठाः । ते । सधऽमादः । स्याम ।
॥ १५ ॥ २६ ॥ ८ ॥ १ ॥

इति प्रथमाष्टके अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ प्रथमाष्टकः समाप्तः ॥ १ ॥



द्वितीयोऽष्टकः प्रथमं मण्डलम्

# ॥ ऋग्वेदः ॥

[ प्रथमोऽध्यायः ] [ अष्टादशोऽनुवाकः ]

॥ १२२ ॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-विश्वेदेवा । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥ हरिः ओ३म् ॥

॥१२२॥ प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥ १ ॥
पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने ।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥ २ ॥
ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥ ३ ॥
उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥ ४ ॥

आ वो॑ रुवण्युमौ॑शि॒जो हु॒वध्यै॒ घोषे॑व॒ शंस॒मर्जु॑नस्य॒ नंशे॑ ।
प्र वः॑ पू॒ष्णे दा॒वन॒ आँ अच्छा॑ वोचेय व॒सुता॑तिम॒ग्नेः ॥ ५ ॥ १ ॥
श्रु॒तं मे॑ मित्रावरुणा॒ हवे॒मोत श्रु॒तं सद॑ने वि॒श्वतः॑ सीम् ।
श्रोतु॑ नः॒ श्रोतु॑रातिः सु॒श्रोतुः॑ सु॒क्षेत्रा॒ सिन्धु॑र॒द्भिः ॥ ६ ॥
स्तु॒षे सा वां॑ वरुण मित्र रा॒तिर्गवां॑ श॒ता पृ॒क्षया॑मेषु प॒ज्रे ।
श्रु॒तर॑थे प्रि॒यर॑थे॒ दधा॑नाः स॒द्यः पु॒ष्टिं नि॑रु॒न्धा॒नासो॑ अग्मन् ॥ ७ ॥
अ॒स्य स्तु॑षे॒ महि॑मघस्य॒ राधः॒ सचा॑ सनेम॒ नहु॑षः सु॒वीराः॑ ।
जनो॒ यः प॒ज्रेभ्यो॑ वा॒जिनी॑वा॒नश्वा॑वतो र॒थिनो॒ मह्यं॑ सू॒रिः ॥ ८ ॥
जनो॒ यो मि॑त्रावरुणावभि॒ध्रुग॒पो न वां॑ सु॒नोत्य॑क्ष्णया॒ध्रुक् ।
स्व॒यं स यक्ष्मं॒ हृद॑ये॒ नि ध॑त्त॒ आप॒ यदीं॒ होत्रा॑भिर्ऋ॒तावा॑ ॥ ९ ॥

---

आ । वः॒ । रु॒व॒ण्युम् । औ॒शि॒जः । हु॒वध्यै॑ । घोषा॑ऽइव । शंस॑म् । अर्जु॑नस्य । नंशे॑ । प्र । वः॒ । पू॒ष्णे । दा॒वने॑ । आ । अच्छ॑ । वो॒चे॒य॒ । व॒सुऽता॑तिम् । अ॒ग्नेः ॥ ५ ॥ १ ॥
श्रु॒तम् । मे॒ । मि॒त्रा॒व॒रु॒णा॒ । हवा॑ । इ॒मा । उ॒त । श्रु॒तम् । सद॑ने । वि॒श्वतः॑ । सी॒म् । श्रोतु॑ । नः॒ । श्रोतु॑ऽरातिः । सु॒ऽश्रोतुः॑ । सु॒ऽक्षेत्रा॑ । सिन्धुः॑ । अ॒त्ऽभिः ॥ ६ ॥
स्तु॒षे । सा । वा॒म् । व॒रु॒ण॒ । मि॒त्र॒ । रा॒तिः । गवा॑म् । श॒ता । पृ॒क्षऽया॑मेषु । प॒ज्रे । श्रु॒तऽर॑थे । प्रि॒यऽर॑थे । दधा॑नाः । स॒द्यः । पु॒ष्टिम् । नि॒ऽरु॒न्धा॒नासः॑ । अ॒ग्म॒न् ॥ ७ ॥
अ॒स्य । स्तु॒षे॒ । महि॑ऽमघस्य । राधः॑ । सचा॑ । स॒ने॒म॒ । नहु॑षः । सु॒ऽवीराः॑ । जनः॑ । यः । प॒ज्रेभ्यः॑ । वा॒जिनी॑ऽवान् । अश्व॑ऽवतः । र॒थिनः॑ । मह्य॑म् । सू॒रिः ॥ ८ ॥
जनः॑ । यः । मि॒त्रा॒व॒रु॒णौ॒ । अ॒भि॒ऽध्रुक् । अ॒पः । न । वा॒म् । सु॒नोति॑ । अ॒क्ष्ण॒या॒ऽध्रुक् । स्व॒यम् । सः । यक्ष्म॑म् । हृद॑ये । नि । ध॒त्ते॒ । आप॑ । यत् । ई॒म् । होत्रा॑भिः । ऋ॒तऽवा॑ ॥ ९ ॥

स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥ १० ॥ २ ॥
अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥ ११ ॥
एतं शर्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन्दशतयस्य नंशे ।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन्विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजं ॥ १२ ॥
मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत्पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना ।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥ १३ ॥
हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥ १४ ॥

---

चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः ।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ॥ १५ ॥ ३ ॥

॥ १२३ ॥ ऋषिः—कक्षीवान् । देवता—उषाः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥१२३॥ पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः ।
कृष्णादुदस्थादर्या३ विहाया श्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥ १ ॥
पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।
उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥ २ ॥
यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥ ३ ॥
गृहंगृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना ।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥ ४ ॥

---

चत्वारः । मा । मशर्शारस्य । शिश्वः । त्रयः । राज्ञः । आयवसस्य । जिष्णोः । रथः । वा । मित्रावरुणा । दीर्घऽअप्साः । स्यूमऽगभस्तिः । सूरः । न । अद्यौत् ॥ ३ ॥

पृथुः । रथः । दक्षिणायाः । अयोजि । आ । एनं । देवासः । अमृतासः । अस्थुः । कृष्णात् । उत् । अस्थात् । अर्या । विऽहायाः । चिकित्सन्ती । मानुषाय । क्षयाय ॥ १ ॥ पूर्वा । विश्वस्मात् । भुवनात् । अबोधि । जयन्ती । वाजं । बृहती । सनुत्री । उच्चा । वि । अख्यत् । युवतिः । पुनःऽभूः । आ । उषाः । अगन् । प्रथमा । पूर्वऽहूतौ ॥ २ ॥ यत् । अद्य । भागं । विऽभजासि । नृऽभ्यः । उषः । देवि । मर्त्यऽत्रा । सुऽजाते । देवः । नः । अत्र सविता । दमूनाः । अनागसः । वोचति । सूर्याय ॥ ३ ॥ गृहंऽगृहं । अहना । याति । अच्छ । दिवेऽदिवे । अधि । नाम । दधाना । सिसासन्ती । द्योतना । शश्वत् । आ । अगात् । अग्रंऽअग्रं । इत् । भजते । वसूनां ॥ ४ ॥

भग॑स्य॒ स्वसा॒ वरु॑णस्य जा॒मिरुषः॑ सूनृते प्रथ॒मा ज॑रस्व ।
प॒श्चा स द॑घ्या॒ यो अ॒घस्य॑ धा॒ता जये॑म॒ तं दक्षि॑णया॒ रथे॑न ॥ ५ ॥ ४ ॥
उदी॑रतां सू॒नृता॒ उत्पुरं॑धी॒रुद॒ग्नयः॑ शुशुचा॒नासो॑ अस्थुः ।
स्पा॒र्हा वसू॑नि॒ तम॒साप॑गूळ्हा॒विष्कृ॑ण्वन्त्यु॒षसो॑ विभा॒तीः ॥ ६ ॥
अपा॒न्यदेत्य॒भ्य१॒॑न्यदे॑ति॒ विषु॑रूपे॒ अह॑नी॒ सं च॑रेते ।
प॒रि॒क्षितो॒स्तमो॑ अ॒न्या गुहा॑क॒रद्यौ॑दु॒षाः शोशु॑चता॒ रथे॑न ॥ ७ ॥
स॒दृशी॑र॒द्य स॒दृशी॒रिदु॒ श्वो दी॒र्घं स॑चन्ते॒ वरु॑णस्य॒ धाम॑ ।
अ॒न॒व॒द्यास्त्रिं॒शतं॒ योज॑नान्येकै॒का क्रतुं॒ परि॑ यन्ति स॒द्यः ॥ ८ ॥
जा॒न॒त्यह्नः॑ प्रथ॒मस्य॒ नाम॑ शु॒क्रा कृ॒ष्णाद॑जनिष्ट श्विती॒ची ।
ऋ॒तस्य॒ योषा॒ न मि॑नाति॒ धामाह॑रहर्निष्कृ॒तमा॒चर॑न्ती ॥ ९ ॥

कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥ १० ॥ ५ ॥
सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥ ११ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥ १२ ॥
ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रम्भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥ १३ ॥ ६ ॥

॥ १२४ ॥ ऋषि –कक्षीवान । देवताः–उषा । छन्द –त्रिष्टुप् ॥

॥१२४॥ उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद्द्विपत्प्र चतुष्पदित्यै ॥ १ ॥

---

कन्याऽइव । तन्वा । शाशदाना । एषि । देवि । देवं । इयक्षमाणं । संऽस्मयमाना । युवतिः । पुरस्तात् । आविः । वक्षांसि । कृणुषे । विऽभाती ॥ १० ॥ ५ ॥ सुऽसंकाशा । मातृमृष्टाऽइव । योषा । आविः । तन्वं । कृणुषे । दृशे । कं । भद्रा । त्वं । उषः । विऽतरं । वि । उच्छ । न । तत् । ते । अन्याः । उषसः । नशंत ॥ ११ ॥ अश्वऽवतीः । गोऽमतीः । विश्वऽवाराः । यतमानाः । रश्मिऽभिः । सूर्यस्य । परा । च । यंति । पुनः । आ । च । यंति । भद्रा । नाम । वहमानाः । उषसः ॥ १२ ॥ ऋतस्य । रश्मिं । अनुऽयच्छमाना । भद्रंऽभद्रं । क्रतुं । अस्मासु । धेहि । उषः । नः । अद्य । सुऽहवा । वि । उच्छ । अस्मासु । रायः । मघवत्ऽसु । च । स्युरिति स्युः ॥ १३ ॥ ६ ॥

उषाः । उच्छंती । संऽइधाने । अग्नौ । उत्ऽयन् । सूर्यः । उर्विया । ज्योतिः । अश्रेत् । देवः । नः । अत्र । सविता । नु । अर्थं । प्र । असावीत् । द्विऽपत् । प्र । चतुःऽपत् । इत्यै ॥ १ ॥

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥ ७ ॥
स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥ ८ ॥
आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥ ९ ॥
प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत्स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥ १० ॥ ८ ॥
अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥ ११ ॥

---

अभ्राताऽइव । पुंसः । एति । प्रतीची । गर्तऽआरुगिव । सनये । धनानां । जायाऽइव
पत्ये । उशती । सुऽवासाः । उषाः । हस्राऽइव । नि । रिणीते । अप्सः ॥ ७ ॥
स्वसा । स्वस्रे । ज्यायस्यै । योनिं । अरैक् । अप । एति । अस्याः । प्रतिचक्ष्यऽइव
विऽउच्छंती । रश्मिऽभिः । सूर्यस्य । अंजि । अंक्ते । समनगाःऽइव । व्राः ॥ ८
आसां । पूर्वासां । अहऽसु । स्वसॄणां । अपरा । पूर्वां । अभि । एति । पश्चात् । ताः
प्रत्नऽवत् । नव्यसीः । नूनं । अस्मे इति । रेवत् । उच्छंतु । सुऽदिनाः । उषसः ॥ ९
प्र । बोधय । उषः । पृणतः । मघोनि । अबुध्यमानाः । पणयः । ससंतु । रेव
उच्छ । मघवत्ऽभ्यः । मघोनि । रेवत् । स्तोत्रे । सूनृते । जारयंती ॥ १० ॥ ८
अयं । इयं । अश्वैत् । युवतिः । पुरस्तात् । युंक्ते । गवां । अरुणानां । अनीकं ।
नूनं । उच्छात् । असति । प्र । केतुः । गृहंऽगृहं । उप । तिष्ठाते । अग्निः ॥ ११

उत् ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२ ॥
अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥ १३ ॥ ९ ॥

॥ १२५ ॥ [illegible] ॥

॥१२५॥ प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान्प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥
सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ २ ॥
आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥ ३ ॥

उप॑ क्षरन्ति॒ सिन्ध॑वो मयो॒भुव॑ ईजा॒नं च॑ य॒क्ष्यमा॑णं च धे॒नवः॑ ।
पृ॒णन्तं॑ च॒ पपु॑रिं च श्रव॒स्यवो॑ घृ॒तस्य॒ धारा॒ उप॑ यन्ति वि॒श्वतः॑ ॥ ४ ॥
नाक॑स्य पृ॒ष्ठे अधि॑ तिष्ठति श्रि॒तो यः पृ॒णाति॒ स ह॑ दे॒वेषु॑ गच्छति ।
तस्मा॒ आपो॑ घृ॒तम॑र्षन्ति॒ सिन्ध॑व॒स्तस्मा॑ इ॒यं दक्षि॑णा पिन्वते॒ सदा॑ ॥ ५ ॥
दक्षि॑णावता॒मिदि॒मानि॑ चि॒त्रा दक्षि॑णावतां दि॒वि सूर्या॑सः ।
दक्षि॑णावन्तो अ॒मृतं॑ भजन्ते॒ दक्षि॑णावन्तः॒ प्र ति॑रन्त॒ आयुः॑ ॥ ६ ॥
मा पृ॒णन्तो॒ दुरि॑त॒मेन॒ आर॒न्मा जा॑रिषुः सू॒रयः॑ सुव्र॒तासः॑ ।
अ॒न्यस्तेषां॑ परि॒धिर॑स्तु॒ कश्चि॒दपृ॑णन्तम॒भि सं य॑न्तु॒ शोकाः॑ ॥ ७ ॥ १० ॥

॥ १२६ ॥ ऋषि –कक्षीवान् । देवता–विद्वांस । छन्द –त्रिष्टुप् ॥

॥१२६॥ अम॑न्दा॒न्स्तोमा॒न्प्र भ॑रे मनी॒षा सिन्धा॒वधि॑ क्षिय॒तो भा॒व्यस्य॑ ।
यो मे॑ स॒हस्र॒ममि॑मीत स॒वान॒तूर्तो॒ राजा॒ श्रव॑ इ॒च्छमा॑नः ॥ १ ॥

---

उप॑ । क्ष॒र॒न्ति॒ । सिन्ध॑वः । म॒यः॒ऽभुवः॑ । ई॒जा॒नम् । च॒ । य॒क्ष्यमा॑णम् । च॒ । धे॒नवः॑ ।
पृ॒णन्त॑म् । च॒ । पपु॑रिम् । च॒ । श्र॒व॒स्यवः॑ । घृ॒तस्य॑ । धाराः॑ । उप॑ । य॒न्ति॒ । वि॒श्वतः॑ ॥ ४ ॥
नाक॑स्य । पृ॒ष्ठे । अधि॑ । ति॒ष्ठ॒ति॒ । श्रि॒तः । यः । पृ॒णाति॑ । सः । ह॒ । दे॒वेषु॑ ।
ग॒च्छ॒ति॒ । तस्मै॑ । आपः॑ । घृ॒तम् । अ॒र्ष॒न्ति॒ । सिन्ध॑वः । तस्मै॑ । इ॒यम् । दक्षि॑णा । पि॒न्व॒ते॒ ।
सदा॑ ॥ ५ ॥ दक्षि॑णाऽवताम् । इत् । इ॒मानि॑ । चि॒त्रा । दक्षि॑णाऽवताम् । दि॒वि ।
सूर्या॑सः । दक्षि॑णाऽवन्तः । अ॒मृत॑म् । भ॒ज॒न्ते॒ । दक्षि॑णाऽवन्तः । प्र । ति॒र॒न्ते॒ । आयुः॑ ॥ ६ ॥
मा । पृ॒णन्तः॑ । दुः॒ऽइ॑तम् । एनः॑ । आ । अ॒र॒न् । मा । जा॒रि॒षुः॒ । सू॒रयः॑ । सु॒ऽव्र॒तासः॑ ।
अ॒न्यः । तेषा॑म् । प॒रि॒ऽधिः । अ॒स्तु॒ । कः । चि॒त् । अपृ॑णन्तम् । अ॒भि । सम् । य॒न्तु॒ ।
शोकाः॑ ॥ ७ ॥ १० ॥

अम॑न्दान् । स्तोमा॑न् । प्र । भ॒रे॒ । म॒नी॒षा । सिन्धौ॑ । अधि॑ । क्षि॒य॒तः ।
भा॒व्यस्य॑ । यः । मे॒ । स॒हस्र॑म् । अमि॑मीत । स॒वान् । अ॒तूर्तः॑ । राजा॑ । श्रवः॑ ।
इ॒च्छमा॑नः ॥ १ ॥

उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥ ७ ॥ ११ ॥ १८ ॥

## ॥ एकोनविंशोऽनुवाकः ॥

॥ १२७ ॥ ऋषि –परुच्छेपः । देवता–अग्निः । छन्दः–अत्यष्टिः ॥

॥१२७॥ अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः । परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥
स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।
वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।
निःषहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

---

उपऽउप । मे । परा । मृश । मा । मे । दभ्राणि । मन्यथाः । सर्वा । अहं । अस्मि । रोमशा । गंधारीणांऽइव । अविका ॥ ७ ॥ ११ ॥ १८ ॥

अग्निं । होतारं । मन्ये । दास्वंतं । वसुं । सूनुं । सहसः । जातऽवेदसं । विप्रं । न । जातऽवेदसं ॥ यः । ऊर्ध्वया । सुऽअध्वरः । देवः । देवाच्या । कृपा । घृतस्य । विऽभ्राष्टिं । अनु । वष्टि । शोचिषा । आऽजुह्वानस्य । सर्पिषः ॥ १ ॥ यजिष्ठं । त्वा । यजमानाः । हुवेम । ज्येष्ठं । अंगिरसां । विप्र । मन्मऽभिः । विप्रेभिः । शुक्र । मन्मऽभिः । परिज्मानंऽइव । द्यां । होतारं । चर्षणीनां । शोचिःऽकेशं । वृषणं । यं । इमाः । विशः । प्र । अवंतु । जूतये । विशः ॥ २ ॥ सः । हि । पुरु । चित् । ओजसा । विरुक्मता । दीद्यानः । भवति । द्रुहंऽतरः । परशुः । न । द्रुहंऽतरः । वीळु । चित् । यस्य । संऽऋतौ । श्रुवत् । वनाऽइव । यत् । स्थिरं । निःऽसहमानः । यमते । न । अयते । धन्वऽसहा । न । अयते ॥ ३ ॥

दृळ्हा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसेऽग्नये दाष्ट्यवसे । प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद्वनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥ ४ ॥
तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात् । आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीळु शर्म न सूनवे ।
भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥ ५ ॥ १२ ॥
स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः । आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥६॥

द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो मथ्नन्तो
दाशा भृगवः । अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधींर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥
विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पतिं भुजे सत्य
गिर्वाहसं भुजे । अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ॥ ८ ॥
त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवताता
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥ ९ ॥

---

द्विता । यत् । ईं । कीस्तासः । अभिऽद्यवः । नमस्यंतः । उपऽवोचंत । भृगवः
मथ्नंतः । दाशा । भृगवः ॥ अग्निः । ईशे । वसूनां । शुचिः । यः । धर्णिः । एषां
प्रियान् । अपिऽधीन् । वनिषीष्ट । मेधिरः । आ । वनिषीष्ट । मेधिरः ॥ ७
विश्वासां । त्वा । विशां । पतिं । हवामहे । सर्वासां । समानं । दंऽपतिं । भुजे
सत्यऽगिर्वाहसं । भुजे ॥ अतिथिं । मानुषाणां । पितुः । न । यस्य । आसया । अ
इति । च । विश्वे । अमृतासः । आ । वयः । हव्या । देवेषु । आ । वयः ॥ ८
त्वं । अग्ने । सहसा । सहन्ऽतमः । शुष्मिन्ऽतमः । जायसे । देवऽतातये । रयिः
न । देवऽताता ॥ शुष्मिन्ऽतमः । हि । ते । मदः । द्युम्निन्ऽतमः । उत । क्रतुः
अध । स्म । ते । परि । चरंति । अजर । श्रुष्टीऽवानः । न । अजर ॥ ९

तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता।
स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः॥ २॥

एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद्दधद्रेतः कनिक्रदत्।
शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु॥ ३॥

स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति।
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत॥ ४॥

---

तं। यज्ञऽसाधं। अपि। वातयामसि। ऋतस्य। पथा। नमसा। हविष्मता। देवऽताता। हविष्मता॥ सः। नः। ऊर्जां। उपऽआभृति। अया। कृपा। न। जूर्यति। यं। मातरिश्वा। मनवे। पराऽवतः। देवं। भारिति भाः। पराऽवतः॥ २॥ एवेन। सद्यः। परि। एति। पार्थिवं। मुहुःऽगीः। रेतः। वृषभः। कनिक्रदत्। दधत्। रेतः। कनिक्रदत्॥ शतं। चक्षाणः। अक्षऽभिः। देवः। वनेषु। तुर्वणिः। सदः। दधानः। उपरेषु। सानुषु। अग्निः। परेषु। सानुषु॥ ३॥ सः। सुऽक्रतुः। पुरःऽहितः। दमेऽदमे। अग्निः। यज्ञस्य। अध्वरस्य। चेतति। क्रत्वा। यज्ञस्य। चेतति॥ क्रत्वा। वेधाः। इषुऽयते। विश्वा। जातानि। पस्पशे। यतः। घृतऽश्रीः। अतिथिः। अजायत। वह्निः। वेधाः। अजायत॥ ४॥

अ॒ग्निं होता॑रमीळते॒ वसु॑धितिं प्रि॒यं चेति॑ष्ठमर॒तिं न्येरि॑रे हव्य॒वाहं॒ न्येरि॑रे ।
वि॒श्वायुं॑ वि॒श्ववे॑दसं॒ होता॑रं यज॒तं क॒विम् ।
दे॒वासो॑ र॒ण्वमव॑से वसू॒यवो॑ गी॒र्भी र॒ण्वं व॑सू॒यवः॑ ॥ ८ ॥ १८ ॥

॥ १२९ ॥ ऋषिः—परुच्छेपः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—अत्यष्टि ॥

॥ १२९ ॥ यं त्वं रथ॑मिन्द्र मे॒धसा॑तयेऽपा॒का सन्त॑मिषिर प्र॒णय॑सि
प्रान॑वद्य॒ नय॑सि । स॒द्यश्चि॒त्तम॒भिष्ट॑ये॒ करो॒ वश॑श्च वा॒जिन॑म् ।
सास्माक॑मनवद्य तूतुजान वे॒धसा॑मि॒मां वाचं॒ न वे॒धसा॑म् ॥ १ ॥
स श्रु॑धि॒ यः स्मा॒ पृत॑नासु॒ कासु॑ चिद्द॒क्षाय्य॑ इन्द्र॒ भर॑हूतये॒ नृभि॒रसि॒
प्रतू॑र्तये॒ नृभिः॑ । यः शूरैः॒ स्व१॒॑ः सनि॑ता॒ यो विप्रै॒र्वाजं॒ तरु॑ता ।
तमी॑शा॒नास॑ इरधन्त वा॒जिनं॑ पृ॒क्षमत्यं॒ न वा॒जिन॑म् ॥ २ ॥

---

अ॒ग्निम् । होता॑रम् । ई॒ळ॒ते॒ । वसु॑ऽधितिम् । प्रि॒यम् । चेति॑ष्ठम् । अ॒र॒तिम् । नि । ए॒रि॒रे॒ । ह॒व्य॒ऽवाह॑म् । नि । ए॒रि॒रे॒ ॥ वि॒श्वऽआ॑युम् । वि॒श्वऽवे॑दसम् । होता॑रम् । य॒ज॒तम् । क॒विम् । दे॒वासः॑ । र॒ण्वम् । अव॑से । व॒सु॒ऽयवः॑ । गीः॒ऽभिः । र॒ण्वम् । व॒सु॒ऽयवः॑ ॥ ८ ॥ १८ ॥

यम् । त्वम् । रथ॑म् । इ॒न्द्र॒ । मे॒धऽसा॑तये । अ॒पा॒का । सन्त॑म् । इ॒षि॒र॒ । प्र॒ऽनय॑सि । प्र । अ॒न॒व॒द्य॒ । नय॑सि ॥ स॒द्यः । चि॒त् । तम् । अ॒भिष्ट॑ये । करः॑ । वशः॑ । च॒ । वा॒जिन॑म् । सः । अ॒स्माक॑म् । अ॒न॒व॒द्य॒ । तू॒तु॒जा॒न॒ । वे॒धसा॑म् । इ॒माम् । वाच॑म् । न । वे॒धसा॑म् ॥ १ ॥

सः । श्रु॒धि॒ । यः । स्म॒ । पृत॑नासु । कासु॑ । चि॒त् । द॒क्षाय्यः॑ । इ॒न्द्र॒ । भर॑ऽहूतये । नृऽभिः॑ । असि॑ । प्रऽतू॑र्तये । नृऽभिः॑ ॥ यः । शूरैः॑ । स्वः॑ । सनि॑ता । यः । विप्रैः॑ । वाज॑म् । तरु॑ता । तम् । ई॒शा॒नासः॑ । इ॒र॒ध॒न्त॒ । वा॒जिन॑म् । पृ॒क्षम् । अत्य॑म् । न । वा॒जिन॑म् ॥ २ ॥

प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान्मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति ।
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।
अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥ ६ ॥

वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम् ।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि ।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥ ७ ॥

प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन्दुर्मतीनाम् ।
स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः ।
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥ ८ ॥

---

प्र । तत् । वोचेयं । भव्याय । इंदवे । हव्यः । न । यः । इषऽवान् । मन्म । रेजति । रक्षःऽहा । मन्म । रेजति ॥ स्वयं । सः । अस्मत् । आ । निदः । वधैः । अजेत । दुःऽमतिं । अव । स्रवेत् । अघऽशंसः । अवऽतरं । अव । क्षुद्रंऽइव । स्रवेत् ॥ ६ ॥

वनेम । तत् । होत्रया । चितंत्या । वनेम । रयिं । रयिऽवः । सुऽवीर्यं । रण्वं । संतं । सुऽवीर्यं ॥ दुःऽमन्मानं । सुमंतुऽभिः । आ । ईं । इषा । पृचीमहि । आ । सत्याभिः । इंद्रं । द्युम्नहूतिऽभिः । यजत्रं । द्युम्नहूतिऽभिः ॥ ७ ॥

प्रऽप्र । वः । अस्मे इति । स्वयशःऽभिः । ऊती । परिऽवर्गे । इंद्रः । दुःऽमतीनां । दरीमन् । दुःऽमतीनां ॥ स्वयं । सा । रिषयध्यै । या । नः । उपऽईषे । अत्रैः । हता । ईं । असत् । न । वक्षति । क्षिप्ता । जूर्णिः । न । वक्षति ॥ ८ ॥

॥ १३० ॥ ऋषि -परुच्छेप । देवता–इन्द्रः । छंद -अत्यष्टिः ॥

॥१३०॥ एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पति-
रस्तं राजेव सत्पतिः । हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ १ ॥
पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवतं न वंसगस्तातृषाणो
न वंसगः । मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे ।
आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ॥ २ ॥
अविन्दद्दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ॥ ३ ॥

---

आ । इंद्र । याहि । उप । नः । पराऽवतः । न । अयं । अच्छ । विदथानिऽइव । सत्ऽपतिः । अस्तं । राजाऽइव । सत्ऽपतिः ॥ हवामहे । त्वा । वयं । प्रयस्वंतः । सुते । सचा । पुत्रासः । न । पितरं । वाजऽसातये । मंहिष्ठं । वाजऽसातये ॥ १ ॥ पिब । सोमं । इंद्र । सुवानं । अद्रिऽभिः । कोशेन । सिक्तं । अवतं । न । वंसगः । ततृषाणः । न । वंसगः ॥ मदाय । हर्यताय । ते । तुविःऽतमाय । धायसे । आ । त्वा । यच्छंतु । हरितः । न । सूर्यं । अहा । विश्वाऽइव । सूर्यं ॥ २ ॥ अविंदत् । दिवः । निऽहितं । गुहा । निऽधिं । वेः । न । गर्भं । परिऽवीतं । अश्मनि । अनंते । अंतः । अश्मनि ॥ व्रजं । वज्री । गवांऽइव । सिसासन् । अंगिरःऽतमः । अप । अवृणोत् । इषः । इंद्रः । परिऽवृताः । द्वारः । इषः । परिऽवृताः ॥ ३ ॥

भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो । अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥ ७ ॥
इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु ।
मनवे शासदव्रतान्त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥ ८ ॥
सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायतीशान आ मुषायति । उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥ ९ ॥
स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥ १० ॥ १९ ॥

---

भिनत् । पुरः । नवतिं । इन्द्र । पूरवे । दिवःऽदासाय । महि । दाशुषे । नृतो इति । वज्रेण । दाशुषे । नृतो इति ॥ अतिथिऽग्वाय । शंबरं । गिरेः । उग्रः । अव । अभरत् । महः । धनानि । दयमानः । ओजसा । विश्वा । धनानि । ओजसा ॥ ७ ॥
इन्द्रः । समत्ऽसु । यजमानं । आर्यं । प्र । आवत् । विश्वेषु । शतम्ऽऊतिः । आजिषु । स्वःऽमीळ्हेषु । आजिषु ॥ मनवे । शासत् । अव्रतान् । त्वचं । कृष्णां । अरन्धयत् । धक्षत् । न । विश्वं । ततृषाणं । ओषति । नि । अर्शसानं । ओषति ॥ ८ ॥
सूरः । चक्रं । प्र । वृहत् । जातः । ओजसा । प्रऽपित्वे । वाचं । अरुणः । मुषायति । ईशानः । आ । मुषायति ॥ उशना । यत् । पराऽवतः । अजगन् । ऊतये । कवे । सुम्नानि । विश्वा । मनुषाऽइव । तुर्वणिः । अहा । विश्वाऽइव । तुर्वणिः ॥ ९ ॥
सः । नः । नव्येभिः । वृषऽकर्मन् । उक्थैः । पुरां । दर्तरिति दर्तः । पायुऽभिः । पाहि । शग्मैः । दिवःऽदासेभिः । इन्द्र । स्तवानः । ववृधीथाः । अहोभिःऽइव । द्यौः ॥ १० ॥ १९ ॥

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥
आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥
उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता
हवीमभिः । यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६ ॥
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम्।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥ २० ॥

---

विदुः । ते । अस्य । वीर्यस्य । पूरवः । पुरः । यत् । इंद्र । शारदीः । अवऽअतिरः । ससहानः । अवऽअतिरः ॥ शासः । तं । इंद्र । मर्त्यं । अयज्युं । शवसः । पते । महीं । अमुष्णाः । पृथिवीं । इमाः । अपः । मंदसानः । इमाः । अपः ॥ ४ ॥ आत् । इत् । ते । अस्य । वीर्यस्य । चर्किरन् । मदेषु । वृषन् । उशिजः । यत् । आविथ । सखिऽयतः । यत् । आविथ ॥ चकर्थ । कारं । एभ्यः । पृतनासु । प्रऽवंतवे । ते । अन्याऽअन्यां । नद्यं । सनिष्णत । श्रवस्यंतः । सनिष्णत ॥ ५ ॥ उतो इति । नः । अस्याः । उषसः । जुषेत । हि । अर्कस्य । बोधि । हविषः । हवीमऽभिः । स्वःऽसाता । हवीमऽभिः ॥ यत् । इंद्र । हंतवे । मृधः । वृषा । वज्रिन् । चिकेतसि । आ । मे । अस्य । वेधसः । नवीयसः । मन्म । श्रुधि । नवीयसः ॥ ६ ॥ त्वं । तं । इंद्र । ववृधानः । अस्मऽयुः । अमित्रऽयंतं । तुविऽजात । मर्त्यं । वज्रेण । शूर । मर्त्यं ॥ जहि । यः । नः । अघऽयति । शृणुष्व । सुश्रवःऽतमः । रिष्टं । न । यामन् । अप । भूतु । दुःऽमतिः । विश्वा । अप । भूतु । दुःऽमतिः ॥ ७ ॥ २० ॥

नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रजमिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम्। ऐभ्यः समान्या दिशास्मभ्यं जेषि योत्सि च।
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम्॥ ४॥
सं यज्जनान्क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः। तस्मा आयुः प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः॥ ५॥
युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम्। दूरे चत्ताय छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत्।
अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः॥ ६॥ २१॥

---

नु। इत्था। ते। पूर्वऽथा। च। प्रऽवाच्यं। यत्। अंगिरःऽभ्यः। अवृणोः। अप। व्रजं। इंद्र। शिक्षन्। अप। व्रजं॥ आ। एभ्यः। समान्या। दिशा। अस्मभ्यं। जेषि। योत्सि। च। सुन्वत्ऽभ्यः। रंधय। कं। चित्। अव्रतं। हृणायंतं। चित्। अव्रतं॥ ४॥ सं। यत्। जनान्। क्रतुऽभिः। शूरः। ईक्षयत्। धने। हिते। तरुषंत। श्रवस्यवः। प्र। यक्षंत। श्रवस्यवः॥ तस्मै। आयुः। प्रजाऽवत्। इत्। बाधे। अर्चंति। ओजसा। इंद्रे। ओक्यं। दिधिषंत। धीतयः। देवान्। अच्छ। न। धीतयः॥ ५॥ युवं। तं। इंद्रापर्वता। पुरःऽयुधा। यः। नः। पृतन्यात्। अप। तंऽतं। इत्। हतं। वज्रेण। तंऽतं। इत्। हतं॥ दूरे। चत्ताय। छंत्सत्। गहनं। यत्। इनक्षत्। अस्माकं। शत्रून्। परि। शूर। विश्वतः। दर्मा। दर्षीष्ट। विश्वतः॥ ६॥

अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो

घृणान्न भीषाँ अद्रिवः ॥ शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे ।

अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥

वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवा-

नामव द्विषः । सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।

सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ ७ ॥ २२ ॥ १९ ॥

---

अवः । महः । इंद्र । दृहि । श्रुधि । नः । शुशोचं । हि । द्यौः । क्षाः । न । भीषा ।

अद्रिऽवः । घृणात् । न । भीषा । अद्रिऽवः ॥ शुष्मिन्ऽतमः । हि । शुष्मिऽभिः ।

वधैः । उग्रेभिः । ईयसे । अपुरुषऽघ्नः । अप्रतिऽइत । शूर । सत्वंऽभिः । त्रिऽसप्तैः ।

शूर । सत्वंऽभिः ॥ ६ ॥ वनोति । हि । सुन्वन् । क्षयं । परीणसः । सुन्वानः ।

हि । स्म । यजति । अव । द्विषः । देवानां । अव । द्विषः ॥ सुन्वानः । इत् ।

सिसासति । सहस्रा । वाजी । अवृतः । सुन्वानाय । इंद्रः । ददाति । आऽभुवं ।

रयिं । ददाति । आऽभुवं ॥ ७ ॥ २२ ॥ १९ ॥

तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु । तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते ।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥
तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि ।
त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये ।
त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥ ५ ॥
त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।
उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।
विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ६ ॥ २३ ॥

---

तुभ्यं । उषसः । शुचयः । पराऽवति । भद्रा । वस्त्रा । तन्वते । दंऽसु । रश्मिषु । चित्रा । नव्येषु । रश्मिषु ॥ तुभ्यं । धेनुः । सबःऽदुघा । विश्वा । वसूनि । दोहते । अजनयः । मरुतः । वक्षणाभ्यः । दिवः । आ । वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥ तुभ्यं । शुक्रासः । शुचयः । तुरण्यवः । मदेषु । उग्राः । इषणंत । भुर्वणि । अपां । इषंत । भुर्वणि ॥ त्वां । त्सारी । दसमानः । भगं । ईट्टे । तक्वऽवीये । त्वं । विश्वस्मात् । भुवनात् । पासि । धर्मणा । असुर्यात् । पासि । धर्मणा ॥ ५ ॥ त्वं । नः । वायो इति । एषां । अपूर्व्यः । सोमानां । प्रथमः । पीतिं । अर्हसि । सुतानां । पीतिं । अर्हसि ॥ उतो इति । विहुत्मतीनां । विशां । ववर्जुषीणां । विश्वाः । इत् । ते । धेनवः । दुह्रे । आऽशिरं । घृतं । दुह्रते । आऽशिरं ॥ ६ ॥ २३ ॥

आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ॥ पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम् ॥ ४ ॥
आ वां धियो ववृत्युरध्वरां उपेममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम् । तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥ २४ ॥
इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत । एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।
युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

---

आ । वा । रथः । नियुत्वान् । वक्षत् । अवसे । अभि । प्रयांसि । सुऽधितानि । वीतये । वायो इति । हव्यानि । वीतये ॥ पिबतं । मध्वः । अंधसः । पूर्वऽपेयं । हि । वा । हितं । वायो इति । आ । चंद्रेण । राधसा । आ । गतं । इंद्रः । च । राधसा । आ । गतं ॥ ४ ॥ आ । वा । धियः । ववृत्युः । अध्वरान् । उप । इमं । इंदुं । मर्मृजंत । वाजिनं । आशुं । अत्यं । न । वाजिनं ॥ तेषां । पिबतं । अस्मयू इत्यस्मऽयू । आ । नः । गंतं । इह । ऊत्या । इंद्रवायू इति । सुतानां । अद्रिऽभिः । युवं । मदाय । वाजऽदा । युवं ॥ ५ ॥ २४ ॥ इमे । वां । सोमाः । अप्ऽसु । आ । सुताः । इह । अध्वर्युऽभिः । भरमाणाः । अयंसत । वायो इति । शुक्राः । अयंसत ॥ एते । वां । अभि । असृक्षत । तिरः । पवित्रं । आशवः । युवाऽयवः । अति । रोमाणि । अव्यया । सोमासः । अति । अव्यया ॥ ६ ॥

॥ १३६ ॥ ऋषिः—परुच्छेप । देवता—मित्रावरुणौ । छन्दः—अत्यष्टिः ॥

॥ १३६ ॥ प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम् । ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता । अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १ ॥

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः । द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च । अथा दधाते बृहदुक्थ्यं१ वय उपस्तुत्यं बृहद्वयः ॥ २ ॥

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे । ज्योतिष्मत्क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती । मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

---

प्र । सु । ज्येष्ठं । निऽचिराभ्यां । बृहत् । नमः । हव्यं । मतिं । भरत । मृळयत्ऽभ्यां । स्वादिष्ठं । मृळयत्ऽभ्यां । ता । संऽराजा । घृतासुती इति घृतऽआसुती । यज्ञेऽयज्ञे । उपऽस्तुता । अथ । एनोः । क्षत्रं । न । कुतः । चन । आऽधृषे । देवऽत्वं । नु । चित् । आऽधृषे ॥ १ ॥ अदर्शि । गातुः । उरवे । वरीयसी । पंथाः । ऋतस्य । सं । अयंस्त । रश्मिऽभिः । चक्षुः । भगस्य । रश्मिऽभिः ॥ द्युक्षं । मित्रस्य । सदनं । अर्यम्णः । वरुणस्य । च । अथ । दधाते इति । बृहत् । उक्थ्यं । वयः । उपऽस्तुत्यं । बृहत् । वयः ॥ २ ॥ ज्योतिष्मतीं । अदितिं । धारयत्ऽक्षितिं । स्वःऽवतीं । आ । सचेते इति । दिवेऽदिवे । जागृऽवांसा । दिवेऽदिवे । ज्योतिष्मत् । क्षत्रं । आशाते इति । आदित्या । दानुनः । पती इति । मित्रः । तयोः । वरुणः । यातयत्ऽजनः । अर्यमा । यातयत्ऽजनः ॥ ३ ॥

## ॥ अथ द्वितीयाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ १३७ ॥ ऋषि –परुच्छेप । देवता–मित्रावरुणौ । छन्द –निचृच्छक्वरी ॥

॥१३७॥ सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे।
आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥
इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ २ ॥
तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः।
अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥ ३ ॥ १ ॥

---

सुसुम । आ । यातं । अद्रिऽभिः । गोऽश्रीताः । मत्सराः । इमे । सोमासः । मत्सराः । इमे ॥ आ । राजाना । दिविऽस्पृशा । अस्मऽत्रा । गंतं । उप । नः । इमे । वां । मित्रावरुणा । गोऽआशिरः । सोमाः । शुक्राः । गोऽआशिरः ॥ १ ॥ इमे । आ । यातं । इंदवः । सोमासः । दधिऽआशिरः । सुतासः । दधिऽआशिरः । उत । वां । उषसः । बुधि । साकं । सूर्यस्य । रश्मिऽभिः । सुतः । मित्राय । वरुणाय । पीतये । चारुः । ऋताय । पीतये ॥ २ ॥ तां । वां । धेनुं । न । वासरीं । अंशुं । दुहंति । अद्रिऽभिः । सोमं । दुहंति । अद्रिऽभिः ॥ अस्मऽत्रा । गंतं । उप । नः । अर्वाञ्चा । सोमऽपीतये । अयं । वां । मित्रावरुणा । नृऽभिः । सुतः । सोमः ।

॥ १३८ ॥ ऋषि –परुच्छेप । देवता–पूषा । छन्द –अत्यष्टि ॥

॥१३८॥ प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते
स्तोत्रमस्य न तन्दते । अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम् ।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥
प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न
पीपरो मृधः ॥ हुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमाङ्गूषान्द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥ २ ॥
यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित्सन्तोऽवसा बुभुज्रिर इति क्रत्वा
बुभुज्रिरे । तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥ ३ ॥

---

प्रऽप्र । पूष्णः । तुविऽजातस्य । शस्यते । महिऽत्वम् । अस्य । तवसः । न ।
तन्दते । स्तोत्रम् । अस्य । न । तन्दते ॥ अर्चामि । सुम्नऽयन् । अहम् । अन्तिऽऊति ।
मयःऽभुवम् । विश्वस्य । यः । मनः । आऽयुयुवे । मखः । देवः । आऽयुयुवे । मखः ॥१॥
प्र । हि । त्वा । पूषन् । अजिरम् । न । यामनि । स्तोमेभिः । कृण्वे । ऋणवः । यथा ।
मृधः । उष्ट्रः । न । पीपरः । मृधः ॥ हुवे । यत् । त्वा । मयःऽभुवम् । देवम् । सख्याय ।
मर्त्यः । अस्माकम् । आङ्गूषान् । द्युम्निनः । कृधि । वाजेषु । द्युम्निनः । कृधि ॥ २ ॥
यस्य । ते । पूषन् । सख्ये । विपन्यवः । क्रत्वा । चित् । सन्तः । अवसा । बुभुज्रिरे ।
इति । क्रत्वा । बुभुज्रिरे ॥ ताम् । अनु । त्वा । नवीयसीम् । निऽयुतम् । रायः । ईमहे ।
अहेळमानः । उरुऽशंस । सरी । भव । वाजेऽवाजे । सरी । भव ॥ ३ ॥

अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवोऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।
ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥ ४ ॥ २ ॥

॥ १३९ ॥ ऋषिः—परुच्छेप । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द —अत्यष्टि ॥

॥ १३९ ॥ अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं
वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे । यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा सन्दायि नव्यसी ।
अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ १ ॥
यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।
युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम् ।
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥ २ ॥

---

अस्याः । ऊं इति । सु । नः । उप । सातये । भुवः । अहेळमानः । ररिऽवान् ।
अजऽअश्व । श्रवस्यता । अजऽअश्व ॥ ओ इति । सु । त्वा । ववृतीमहि । स्तोमेभिः ।
दस्म । साधुऽभिः । नहि । त्वा । पूषन् । अतिऽमन्ये । आघृणे । न । ते । सख्यं ।
अपऽह्नुवे ॥ ४ ॥ २ ॥

अस्तु । श्रौषट् । पुरः । अग्निं । धिया । दधे । आ । नु । तत् । शर्धः ।
दिव्यं । वृणीमहे । इंद्रवायू इति । वृणीमहे ॥ यत् । ह । क्राणा । विवस्वति । नाभा ।
सम्ऽदायि । नव्यसी । अध । प्र । सु । नः । उप । यंतु । धीतयः । देवान् । अच्छ ।
न । धीतयः ॥ १ ॥ यत् । ह । त्यत् । मित्रावरुणौ । ऋतात् । अधि । आददाथे
इत्याऽददाथे । अनृतं । स्वेन । मन्युना । दक्षस्य । स्वेन । मन्युना ॥ युवोः । इत्था ।
अधि । सद्मऽसु । अपश्याम । हिरण्ययं । धीभिः । चन । मनसा । स्वेभिः । अक्षऽभिः ।
सोमस्य । स्वेभिः । अक्षऽभिः ॥ २ ॥

युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विनाश्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां
हव्याभ्या३यवः । युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।
प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥ ३ ॥
अचेति दस्रा व्यु१नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो
दिविष्टिषु । अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये ।
पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ॥ ५ ॥ ३ ॥

---

युवां । स्तोमेभिः । देवऽयंतः । अश्विना । आश्रवयंतःऽइव । श्लोकं । आयवः ।
युवा । हव्या । अभि । आयवः ॥ युवोः । विश्वाः । अधि । श्रियः । पृक्षः । च ।
विश्वऽवेदसा । प्रुषायंते । वा । पवयः । हिरण्यये । रथे । दस्रा । हिरण्यये ॥ ३ ॥
अचेति । दस्रा । वि । ऊं इति । नाकं । ऋण्वथः । युंजते । वां । रथऽयुजः ।
दिविष्टिषु । अध्वस्मानः । दिविष्टिषु ॥ अधि । वां । स्थाम । वंधुरे । रथे । दस्रा ।
हिरण्यये । पथाऽइव । यंतौ । अनुऽशासता । रजः । अंजसा । शासता । रजः ॥ ४ ॥
शचीभिः । नः । शचीवसू इति शचीऽवसू । दिवा । नक्तं । दशस्यतं । मा । वां ।
रातिः । उप । दसत् । कदा । चन । अस्मत् । रातिः । कदा । चन ॥ ५ ॥ ३ ॥

पत्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास
द्भिदः । ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे ।
ीर्भिर्गिर्वाह स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि ॥ ६ ॥
ो षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो
ज्ञियेभ्यः । यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।
ि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥ ७ ॥
ो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन्द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरो
ारिषुः । यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
स्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ ८ ॥

---

ान् । इन्द्र । वृषऽपानासः । इन्दवः । इमे । सुताः । अद्रिऽसुतासः । उत्ऽभिदः । तुभ्यं
ुतासः । उत्ऽभिदः ॥ ते । त्वा । मंदंतु । दावने । महे । चित्राय । राधसे ।
ीःऽभिः । गिर्वाहः । स्तवमानः । आ । गहि । सुऽमृळीकः । नः । आ । गहि ॥६॥
ो इति । सु । नः । अग्ने । शृणुहि । त्वं । ईळितः । देवेभ्यः । ब्रवसि
ज्ञियेभ्यः । राजऽभ्यः । यज्ञियेभ्यः ॥ यत् । ह । त्यां । अंगिरःऽभ्यः
ेनुं । देवाः । अदत्तन । वि । तां । दुह्रे । अर्यमा । कर्तरी । सचा । एषः । तां
द । मे । सचा ॥ ७ ॥ मो इति । सु । वः । अस्मत् । अभि । तानि । पौंस्या
ना । भूवन् । द्युम्नानि । मा । उत । जारिषुः । अस्मत् । पुरा । उत । जारिषुः ॥
त् । वः । चित्रं । युगेऽयुगे । नव्यं । घोषात् । अमर्त्यं । अस्मासु । तत् । मरुतः
् । च । दुस्तरं । दिधृत । यत् । च । दुस्तरं ॥ ८ ॥

दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे
मनुर्विदुः । तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः ।
तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥ ९ ॥
होता यक्षद्वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः ।
जगृभ्मा दूरआदिशं श्लोकमद्रेरध त्मना ।
अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥ १० ॥
ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥११॥४॥२०॥

## ॥ एकविंशोऽनुवाकः ॥

॥ १०० ॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि । छन्द-जगती ॥

॥१४०॥ वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये ।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥ १ ॥

---

दध्यङ् । ह । मे । जनुषं । पूर्वः । अंगिराः । प्रियऽमेधः । कण्वः । अत्रिः । मनुः । विदुः । ते । मे । पूर्वे । मनुः । विदुः ॥ तेषां । देवेषु । आऽयतिः । अस्माकं । तेषु । नाभयः । तेषां । पदेन । महि । आ । नमे । गिरा । इंद्राग्नी इति । आ । नमे । गिरा ॥ ९ ॥ होता । यक्षत् । वनिनः । वंत । वार्यं । बृहस्पतिः । यजति । वेनः । उक्षऽभिः । पुरुऽवारेभिः । उक्षऽभिः ॥ जगृभ्म । दूरेऽआदिशं । श्लोकं । अद्रेः । अध । त्मना । अधारयत् । अररिंदानि । सुऽक्रतुः । पुरु । सद्मानि । सुऽक्रतुः ॥ १० ॥ ये । देवासः । दिवि । एकादश । स्थ । पृथिव्यां । अधि । एकादश । स्थ । अप्सुऽक्षितः । महिना । एकादश । स्थ । ते । देवासः । यज्ञं । इमं । जुषध्वं ॥ ११ ॥ ४ ॥ वेदिऽसदे । प्रियऽधामाय । सुऽद्युते । धासिंऽइव । प्र । भर । योनिं । अग्नये । वस्त्रेणऽइव । वासय । मन्मना । शुचिं । ज्योतिःऽरथं । शुक्रऽवर्णं । तमःऽहनं ॥ १ ॥

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्य१न्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥ २ ॥
कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥ ३ ॥
मुमुक्ष्वो३ मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।
असमना अजिरासो रघुष्पदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः ॥ ४ ॥
आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः ।
यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन्त्स्तनयन्नेति नानदत् ॥ ५ ॥ ५ ॥

---

अभि । द्विऽजन्मा । त्रिऽवृत् । अन्नं । ऋज्यते । संवत्सरे । वृवृधे । जग्धं । ईमिति । पुनरिति । अन्यस्य । आसा । जिह्वया । जेन्यः । वृषा । नि । अन्येन । वनिनः । मृष्ट । वारणः ॥ २ ॥ कृष्णऽप्रुतौ । वेविजे इति । अस्य । सऽक्षितौ । उभा । तरेते इति । अभि । मातरा । शिशुं । प्राचाऽजिह्वं । ध्वसयंतं । तृषुऽच्युतं । आ । साच्यं । कुपयं । वर्धनं । पितुः ॥ ३ ॥ मुमुक्ष्वः । मनवे । मानवस्यते । रघुऽद्रुवः । कृष्णऽसीतासः । ऊं इति । जुवः । असमनाः । अजिरासः । रघुऽस्पदः । वातऽजूताः । उप । युज्यंते । आशवः ॥ ४ ॥ आत् । अस्य । ते । ध्वसयंतः । वृथा । ईरते । कृष्णं । अभ्वं । महि । वर्पः । करिक्रतः । यत् । सीं । महीं । अवनिं । प्र । अभि । मर्मृशत् । अभिऽश्वसन् । स्तनयन् । एति । नानदत् ॥ ५ ॥ ५ ॥

भूषन्न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥ ६ ॥
स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये ।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥ ७ ॥
तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानदद्वसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥ ८ ॥
अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः ।
वयो दधत्पद्वते रेरिहत्सदानु श्येनी सचते वर्तनीरह ॥ ९ ॥
अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान्वृषभो दमूनाः ।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥ १० ॥ ६ ॥

---

भूषन् । न । यः । अधि । बभ्रूषु । नम्नते । वृषाऽइव । पत्नीः । अभि । एति । रोरुवत् । ओजायमानः । तन्वः । च । शुम्भते । भीमः । न । शृङ्गा । दविधाव । दुःऽगृभिः ॥ ६ ॥ सः । सम्ऽस्तिरः । विऽस्तिरः । सं । गृभायति । जानन् । एव । जानतीः । नित्यः । आ । शये । पुनः । वर्धन्ते । अपि । यन्ति । देव्यं । अन्यत् । वर्पः । पित्रोः । कृण्वते । सचा ॥ ७ ॥ तं । अग्रुवः । केशिनीः । सं । हि । रेभिरे । ऊर्ध्वाः । तस्थुः । मम्रुषीः । प्र । आयवे । पुनः । इति । तासां । जरां । प्रऽमुञ्चन् । एति । नानदत् । असुं । परं । जनयन् । जीवं । अस्तृतं ॥ ८ ॥ अधिऽवासं । परि । मातुः । रिहन् । अह । तुविऽग्रेभिः । सत्वऽभिः । याति । वि । ज्रयः । वयः । दधत् । पद्ऽवते । रेरिहत् । सदा । अनु । श्येनी । सचते । वर्तनिः । अह ॥ ९ ॥ अस्माकं । अग्ने । मघवत्ऽसु । दीदिहि । अध । श्वसीवान् । वृषभः । दमूनाः । अवऽअस्य । शिशुऽमतीः । अदीदेः । वर्मऽइव । युत्ऽसु । परिऽजर्भुराणः ॥ १० ॥ ६ ॥

इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।
यत्ते शुक्रं तन्वो३रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥ ११ ॥
रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ॥ १२ ॥
अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः ।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ॥ १३ ॥ ७ ॥

॥ १४१ ॥ ऋषि – दीर्घतमा । देवता–अग्नि । छन्द –जगती ॥

॥१४१॥ बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि ।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥ १ ॥
पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥ २ ॥

---

इदं । अग्ने । सुऽधितं । दुःऽधितात् । अधि । प्रियात् । ऊं इति । चित् । मन्मनः । प्रेयः । अस्तु । ते । यत् । ते । शुक्रं । तन्वः । रोचते । शुचि । तेन । अस्मभ्यं । वनसे । रत्नं । आ । त्वं ॥ ११ ॥ रथाय । नावं । उत । नः । गृहाय । नित्यऽअरित्रां । पत्ऽवतीं । रासि । अग्ने । अस्माकं । वीरान् । उत । नः । मघोनः । जनान् । च । या । पारयात् । शर्म । या । च ॥ १२ ॥ अभि । नः । अग्ने । उक्थं । इत् । जुगुर्याः । द्यावाक्षामा । सिन्धवः । च । स्वऽगूर्ताः । गव्यं । यव्यं । यन्तः । दीर्घा । अहा । इषं । वरं । अरुण्यः । वरन्त ॥ १३ ॥ ७ ॥

बट् । इत्था । तत् । वपुषे । धायि । दर्शतं । देवस्य । भर्गः । सहसः । यतः । जनि । यत् । ईं । उप । ह्वरते । साधते । मतिः । ऋतस्य । धेनाः । अनयन्त । सऽस्रुतः ॥ १ ॥ पृक्षः । वपुः । पितुऽमान् । नित्यः । आ । शये । द्वितीयं । आ । सप्तऽशिवासु । मातृषु । तृतीयं । अस्य । वृषभस्य । दोहसे । दशऽप्रमतिं । जनयन्त । योषणः ॥ २ ॥

निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः ।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥ ३ ॥
प्र यत्पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति ।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद्घृणा शुचिः ॥ ४ ॥
आदिन्मातॄराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे ।
अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥ ५ ॥ ८ ॥
आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते ।
देवान्यत्क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥ ६ ॥
वि यदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः ।
तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥ ७ ॥

रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते ।
आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥ ८ ॥
त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः ।
यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुररान्न नेमिः परिभूरजायथाः ॥ ९ ॥
त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ॥ १० ॥
अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम् ।
रश्मीँरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः ॥ ११ ॥
उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः ।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरोऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥ १२ ॥

---

रथः । न । यातः । शिक्वऽभिः । कृतः । द्यां । अंगेभिः । अरुषेभिः । ईयते । आत् । अस्य । ते । कृष्णासः । धक्षि । सूरयः । शूरस्यऽइव । त्वेषथात् । ईषते । वयः ॥८॥ त्वया । हि । अग्ने । वरुणः । धृतऽव्रतः । मित्रः । शाशद्रे । अर्यमा । सुऽदानवः । यत् । सीं । अनु । क्रतुना । विश्वऽथा । विऽभुः । अरान् । न । नेमिः । परिऽभूः । अजायथाः ॥ ९ ॥ त्वं । अग्ने । शशमानाय । सुन्वते । रत्नं । यविष्ठ । देवऽतातिं । इन्वसि । तं । त्वा । नु । नव्यं । सहसः । युवन् । वयं । भगं । न । कारे । महिऽरत्न । धीमहि ॥ १० ॥ अस्मे इति । रयिं । न । सुऽअर्थं । दमूनसं । भगं । दक्षं । न । पपृचासि । धर्णसिं । रश्मीन्ऽइव । यः । यमति । जन्मनी इति । उभे इति । देवानां । शंसं । ऋते । आ । च । सुऽक्रतुः ॥ ११ ॥ उत । नः । सुऽद्योत्मा । जीरऽअश्वः । होता । मंद्रः । शृणवत् । चंद्रऽरथः । सः । नः । नेषत् । नेषऽतमैः । अमूरः । अग्निः । वामं । सुवितं । वस्यः । अच्छ ॥ १२ ॥

अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः ॥ १३ ॥ ९ ॥

॥ १४२ ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-अग्निः । छन्दः-अनुष्टुप् ॥

॥ १४२ ॥ समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥
घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् ।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ २ ॥
शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३ ॥
ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥ ४ ॥

---

अस्तावि । अग्निः । शिमीवत्ऽभिः । अर्कैः । साम्ऽराज्याय । प्रऽतरम् । दधानः । अमी इति । च । ये । मघऽवानः । वयम् । च । मिहम् । न । सूरः । अति । निः । ततन्युः ॥ १३ ॥ ९ ॥

समऽइद्धः । अग्ने । आ । वह । देवान् । अद्य । यतऽस्रुचे । तन्तुम् । तनुष्व । पूर्व्यम् । सुतऽसोमाय । दाशुषे ॥ १ ॥ घृतऽवन्तम् । उप । मासि । मधुऽमन्तम् । तनूऽनपात् । यज्ञम् । विप्रस्य । माऽवतः । शशमानस्य । दाशुषः ॥ २ ॥ शुचिः । पावकः । अद्भुतः । मध्वा । यज्ञम् । मिमिक्षति । नराशंसः । त्रिः । आ । दिवः । देवः । देवेषु । यज्ञियः ॥ ३ ॥ ईळितः । अग्ने । आ । वह । इन्द्रम् । चित्रम् । इह । प्रियम् । इयम् । हि । त्वा । मतिः । मम । अच्छ । सुऽजिह्व । वच्यते ॥ ४ ॥

स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे ।
वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥ ५ ॥
वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः ।
पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ॥ ६ ॥१०॥
आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा ।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥ ७ ॥
मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥ ८ ॥
शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।
इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना ।
त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥ १० ॥

---

स्तृणानासः । यतऽस्रुचः । बर्हिः । यज्ञे । सुऽअध्वरे । वृञ्जे । देवव्यचःऽतमम् । इन्द्राय । शर्म । सऽप्रथः ॥ ५ ॥ वि । श्रयन्ताम् । ऋतऽवृधः । प्रऽयै । देवेभ्यः । महीः । पावकासः । पुरुऽस्पृहः । द्वारः । देवीः । असश्चतः ॥ ६ ॥ १० ॥ आ । भन्दमाने इति । उपाके इति । नक्तोषसा । सुऽपेशसा । यह्वी इति । ऋतस्य । मातरा । सीदताम् । बर्हिः । आ । सुऽमत् ॥ ७ ॥ मन्द्रऽजिह्वा । जुगुर्वणी इति । होतारा । दैव्या । कवी इति । यज्ञम् । नः । यक्षताम् । इमम् । सिध्रम् । अद्य । दिविऽस्पृशम् ॥ ८ ॥ शुचिः । देवेषु । अर्पिता । होत्रा । मरुत्ऽसु । भारती । इळा । सरस्वती । मही । बर्हिः । सीदन्तु । यज्ञियाः ॥ ९ ॥ तत् । नः । तुरीपम् । अद्भुतम् । पुरु । वा । अरम् । पुरु । त्मना । त्वष्टा । पोषाय । वि । स्यतु । राये । नाभा । नः । अस्मऽयुः ॥ ११ ॥

अवसृजन्नुप त्मना देवान्यक्षि वनस्पते ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥
पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे ।
स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥ १२ ॥
स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।
इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥ ११ ॥

॥ १४३ ॥ ऋषि – दीर्घतमा । देवता – अग्नि । छन्द – अनुष्टुप् ॥

॥१४३॥ प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे।
अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ॥ १ ॥
स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥ २ ॥

---

अवऽसृजन् । उप । त्मना । देवान् । यक्षि । वनस्पते । अग्निः । हव्या । सुसूदति । देवः । देवेषु । मेधिरः ॥ ११ ॥ पूषण्ऽवते । मरुत्वते । विश्वऽदेवाय । वायवे । स्वाहा । गायत्रऽवेपसे । हव्यं । इंद्राय । कर्तन ॥ १२ ॥ स्वाहाऽकृतानि । आ । गहि । उप । हव्यानि । वीतये । इंद्र । आ । गहि । श्रुधि । हवं । त्वां । हवंते । अध्वरे ॥ १३ ॥ ११ ॥

प्र । तव्यसीं । नव्यसीं । धीतिं । अग्नये । वाचः । मतिं । सहसः । सूनवे । भरे । अपां । नपात् । यः । वसुऽभिः । सह । प्रियः । होता । पृथिव्यां । नि । असीदत् । ऋत्वियः ॥ १ ॥ सः । जायमानः । परमे । विऽओमनि । आविः । अग्निः । अभवत् । मातरिश्वने । अस्य । क्रत्वा । सम्ऽइधानस्य । मज्मना । प्र । द्यावा । शोचिः । पृथिवी इति । अरोचयत् ॥ २ ॥

अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते असंसन्तो अजराः ॥ ३ ॥
यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥ ४ ॥
न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते ॥ ५ ॥
कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत् ।
चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥ ६ ॥
घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥ ७ ॥

---

अस्य । त्वेषाः । अजराः । अस्य । भानवः । सुऽसंदृशः । सुऽप्रतीकस्य । सुऽद्युतः । भाऽत्वक्षसः । अति । अक्तुः । न । सिंधवः । अग्नेः । रेजंते । अससंतः । अजराः ॥३॥ यं । आऽईरिरे । भृगवः । विश्वऽवेदसं । नाभा । पृथिव्याः । भुवनस्य । मज्मना । अग्निं । तं । गीःऽभिः । हिनुहि । स्वे । आ । दमे । यः । एकः । वस्वः । वरुणः । न । राजति ॥ ४ ॥ न । यः । वराय । मरुतांऽइव । स्वनः । सेनाऽइव । सृष्टा । दिव्या । यथा । अशनिः । अग्निः । जंभैः । तिगितैः । अत्ति । भर्वति । योधः । न । शत्रून् । सः । वना । नि । ऋंजते ॥ ५ ॥ कुवित् । नः । अग्निः । उचथस्य । वीः । असत् । वसुः । कुवित् । वसुऽभिः । कामं । आऽवरत् । चोदः । कुवित् । तुतुज्यात् । सातये । धियः । शुचिऽप्रतीकं । तं । अया । धिया । गृणे ॥ ६ ॥ घृतऽप्रतीकं । वः । ऋतस्य । धूःऽसदं । अग्निं । मित्रं । न । संऽइधानः । ऋंजते । इंधानः । अक्रः । विदथेषु । दीद्यत् । शुक्रऽवर्णां । उत् । ऊं इति । नः । यंसते । धियं ॥ ७ ॥

अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥ ८ ॥ १२ ॥

॥ १४४ ॥ ऋषिः—दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्दः—जगती ॥

॥१४४॥ एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥ १ ॥
अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥ २ ॥
युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः ॥ ३ ॥
यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥ ४ ॥

---

अप्रऽयुच्छन् । अप्रऽयुच्छत्ऽभिः । अग्ने । शिवेभिः । नः । पायुऽभिः । पाहि । शग्मैः । अदब्धेभिः । अदृपितेभिः । इष्टे । अनिमिषत्ऽभिः । परि । पाहि । नः । जाः ॥ ८ ॥ १२ ॥

एति । प्र । होता । व्रतं । अस्य । मायया । ऊर्ध्वां । दधानः । शुचिऽपेशसं । धियं । अभि । स्रुचः । क्रमते । दक्षिणाऽआवृतः । याः । अस्य । धाम । प्रथमं । ह । निंसते ॥ १ ॥ अभि । ईं । ऋतस्य । दोहनाः । अनूषत । योनौ । देवस्य । सदने । परिऽवृताः । अपां । उपऽस्थे । विऽभृतः । यत् । आ । अवसत् । अध । स्वधाः । अधयत् । याभिः । ईयते ॥ २ ॥ युयूषतः । सऽवयसा । तत् । इत् । वपुः । समानं । अर्थं । विऽतरित्रता । मिथः । आत् । ईं । भगः । न । हव्यः । सं । अस्मत् । आ । वोळ्हुः । न । रश्मीन् । सं । अयंस्त । सारथिः ॥ ३ ॥ यं । ईं । द्वा । सऽवयसा । सपर्यतः । समाने । योना । मिथुना । समऽओकसा । दिवा । न । नक्तं । पलितः । युवा । अजनि । पुरु । चरन् । अजरः । मानुषा । युगा ॥ ४ ॥

तमीं हिन्वंति धीतयो दश व्रिशों देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजंद्भिर्वयुना नवांधित ॥ ५ ॥
त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।
एनी त एते बृहती अभिश्रियां हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥ ६ ॥
अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः सन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ॥७॥ १३ ॥

॥ १४५ ॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–अग्निः । छन्द–जगती ॥

॥१४५॥ तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।
तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः॥१॥
तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदपितः ॥ २ ॥

---

तं । ईं । हिन्वंति । धीतयः । दश । व्रिशः । देवं । मर्तासः । ऊतये । हवामहे । धनोः । अधि । प्रऽवतः । आ । सः । ऋण्वति । अभिव्रजत्ऽभिः । वयुना । नवा । अधित ॥ ५ ॥ त्वं । हि । अग्ने । दिव्यस्य । राजसि । त्वं । पार्थिवस्य । पशुपाःऽइव । त्मना । एनी इति । ते । एते इति । बृहती इति । अभिऽश्रिया । हिरण्ययी इति । वक्वरी इति । बर्हिः । आशाते इति ॥ ६ ॥ अग्ने । जुषस्व । प्रति । हर्य । तत् । वचः । मंद्र । स्वधाऽवः । ऋतऽजात । सुक्रतो इति सुऽक्रतो । यः । विश्वतः । प्रत्यङ् । असि । दर्शतः । रण्वः । संऽदृष्टौ । पितुमान्ऽइव । क्षयः ॥ ७ ॥ १३ ॥

तं । पृच्छत । सः । जगाम । सः । वेद । सः । चिकित्वान् । ईयते । सः । नु । ईयते । तस्मिन् । सन्ति । प्रऽशिषः । तस्मिन् । इष्टयः । सः । वाजस्य । शवसः । शुष्मिणः । पतिः ॥ १ ॥ तं । इत् । पृच्छंति । न । सिमः । वि । पृच्छति । स्वेनऽइव । धीरः । मनसा । यत् । अग्रभीत् । न । मृष्यते । प्रथमं । न । अपरं । वचः । अस्य । क्रत्वा । सचते । अप्रऽदपितः ॥ २ ॥

तमिद्गच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस्तुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥ ३ ॥
उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥ ४ ॥
स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।
व्यब्रवीद्वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ॥ ५ ॥ १४ ॥

॥ १४६ ॥ ऋषिः–दीर्घतमाः । देवता–अग्निः । छन्दः–त्रिष्टुप् ॥

॥ १४६ ॥ त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषेऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ॥ १ ॥
उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावितऊतिर्ऋष्वः ।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ॥ २ ॥

---

तं । इत् । गच्छन्ति । जुह्वः । तं । अर्वतीः । विश्वानि । एकः । शृणवत् । वचांसि । मे । पुरुऽप्रैषः । ततुरिः । यज्ञऽसाधनः । अच्छिद्रऽऊतिः । शिशुः । आ । अदत्त । सं । रभः ॥ ३ ॥ उपऽस्थायं । चरति । यत् । सम्ऽआरत । सद्यः । जातः । तत्सार । युज्येभिः । अभि । श्वान्तं । मृशते । नान्द्ये । मुदे । यत् । ईं । गच्छन्ति । उशतीः । अपिऽस्थितं ॥ ४ ॥ सः । ईं । मृगः । अप्यः । वनर्गुः । उप । त्वचि । उपऽमस्यां । नि । धायि । वि । अब्रवीत् । वयुना । मर्त्येभ्यः । अग्निः । विद्वान् । ऋतऽचित् । हि । सत्यः ॥ ५ ॥ १४ ॥

त्रिऽमूर्धानं । सप्तऽरश्मिं । गृणीषे । अनूनं । अग्निं । पित्रोः । उपऽस्थे । निऽसत्तं । अस्य । चरतः । ध्रुवस्य । विश्वा । दिवः । रोचना । आपप्रिऽवांसं ॥ १ ॥ उक्षा । महान् । अभि । ववक्षे । एने इति । अजरः । तस्थौ । इतःऽऊतिः । ऋष्वः । उर्व्याः । पदः । नि । दधाति । सानौ । रिहन्ति । ऊधः । अरुषासः । अस्य ॥ २ ॥

समानं वत्समभि संचरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके ।
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान्केताँ अधि महो दधाने ॥ ३ ॥
धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नॄन् ॥ ४ ॥
दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे ।
पुरुत्रा यदभवत्सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥ ५ ॥ १८ ॥

॥ १४७ ॥ ऋषि –दीर्घतमा. । देवता –अग्नि । छन्द –त्रिष्टुप् ॥

॥ १४७ ॥ कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्रणयन्त देवाः ॥ १ ॥
बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥ २ ॥

---

समानं । वत्सं । अभि । संचरन्ती इति संऽचरन्ती । विष्वक् । धेनू इति । वि । चरतः । सुमेके इति सुऽमेके । अनपऽवृज्यान् । अध्वनः । मिमाने इति । विश्वान् । केतान् । अधि । महः । दधाने इति ॥ ३ ॥ धीरासः । पदं । कवयः । नयंति । नाना । हृदा । रक्षमाणाः । अजुर्यं । सिसासंतः । परि । अपश्यंत । सिंधुं । आविः । एभ्यः । अभवत् । सूर्यः । नॄन् ॥ ४ ॥ दिदृक्षेण्यः । परि । काष्ठासु । जेन्यः । ईळेन्यः । महः । अर्भाय । जीवसे । पुरुऽत्रा । यत् । अभवत् । सूः । अह । एभ्यः । गर्भेभ्यः । मघऽवा । विश्वऽदर्शतः ॥ ५ ॥ १८ ॥

कथा । ते । अग्ने । शुचयंतः । आयोः । ददाशुः । वाजेभिः । आशुषाणाः । उभे इति । यत् । तोके इति । तनये । दधानाः । ऋतस्य । सामन् । रणयंत । देवाः ॥ १ ॥ बोध । मे । अस्य । वचसः । यविष्ठ । मंहिष्ठस्य । प्रऽभृतस्य । स्वधाऽवः । पीयति । त्वः । अनु । त्वः । गृणाति । वंदारुः । ते । तन्वं । वंदे । अग्ने ॥ २ ॥

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥ ३ ॥
यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥ ४ ॥
उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥ ५ ॥ १६ ॥

॥ १४८ ॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–अग्नि । छन्द–त्रिष्टुप् ॥

॥१४८॥ मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥ १ ॥
ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥

---

ये । पायवः । मामतेयं । ते । अग्ने । पश्यंतः । अंधं । दुःऽइतात् । अरक्षन् । ररक्ष । तान् । सुऽकृतः । विश्वऽवेदाः । दिप्संतः । इत् । रिपवः । न । अह । देभुः ॥ ३ ॥ यः । नः । अग्ने । अररिऽवान् । अघऽयुः । अरातिऽवा । मर्चयति । द्वयेन । मंत्रः । गुरुः । पुनः । अस्तु । सः । अस्मै । अनु । मृक्षीष्ट । तन्वं । दुःऽउक्तैः ॥ ४ ॥ उत । वा । यः । सहस्य । प्रऽविद्वान् । मर्तः । मर्तं । मर्चयति । द्वयेन । अतः । पाहि । स्तवमान । स्तुवंतं । अग्ने । माकिः । नः । दुःऽइताय । धायीः ॥ ५ ॥ १६ ॥

॥ १४८ ॥ मथीत् । यत् । ईं । विष्टः । मातरिश्वा । होतारं । विश्वऽअप्सुं । विश्वऽदेव्यं । नि । यं । दधुः । मनुष्यासु । विक्षु । स्वः । न । चित्रं । वपुषे । विभाऽवं ॥ १ ॥ ददानं । इत् । न । ददभंत । मन्म । अग्निः । वरूथं । मम । तस्य । चाकन् । जुषंत । विश्वानि । अस्य । कर्म । उपऽस्तुतिं । भरमाणस्य । कारोः ॥ २ ॥

नित्यें चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३ ॥
पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥ ४ ॥
न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥ ५ ॥ १७ ॥

॥ १४३ ॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–अग्नि । छन्द–विराट् ॥

॥ १४९ ॥ महः स राय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ ।
उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ॥ १ ॥
स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।
प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥ २ ॥

---

नित्ये । चित् । नु । यं । सदने । जगृभ्रे । प्रशस्तिऽभिः । दधिरे । यज्ञियासः । प्र । सु । नयंत । गृभयंतः । इष्टौ । अश्वासः । न । रथ्यः । ररहाणाः ॥ ३ ॥ पुरूणि । दस्मः । नि । रिणाति । जंभैः । आत् । रोचते । वने । आ । विभाऽवा । आत् । अस्य । वातः । अनु । वाति । शोचिः । अस्तुः । न । शर्या । असना । अनु । द्यून् । ॥ ४ ॥ न । यं । रिपवः । न । रिषण्यवः । गर्भे । संतं । रेषणाः । रेषयंति । अंधाः । ः । न । दभन् । अभिऽख्या । नित्यासः । ईं । प्रेतारः । अरक्षन् ॥ ५ ॥ १७ ॥
महः । सः । रायः । आ । ईषते । पतिः । दन् । इनः । इनस्य । वसुनः । आ । उप । ध्रजंतं । अद्रयः । विधन् । इत् ॥ १ ॥ सः । यः । वृषा । नरां । न । रोदस्योः । श्रवःऽभिः । अस्ति । जीवपीतऽसर्गः । प्र । यः । सस्राणः । शिश्रीत । योनौ ॥ २ ॥

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ ३ ॥
अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ ४ ॥
अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥ १८ ॥

॥ १५० ॥ ऋषि –दीर्घतमा । देवता–अग्नि. । छन्द –उष्णिक् ॥

॥ १५० ॥ पुरु त्वा दाश्वान्वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥
व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः ।
कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥
स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि ।
प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥ १९ ॥

---

आ । यः । पुरं । नार्मिणीं । अदीदेत् । अत्यः । कविः । नभन्यः । न । अर्वा । सूरः । न । रुरुक्वान् । शतऽआत्मा ॥ ३ ॥ अभि । द्विऽजन्मा । त्री । रोचनानि विश्वा । रजांसि । शुशुचानः । अस्थात् । होता । यजिष्ठः । अपां । सधऽस्थे ॥ ४ ॥ अयं । सः । होता । यः । द्विऽजन्मा । विश्वा । दधे । वार्याणि । श्रवस्या । मर्तः । यः । अस्मै । सुऽतुकः । ददाश ॥ ५ ॥ १८ ॥

पुरु । त्वा । दाश्वान् । वोचे । अरिः । अग्ने । तव । स्वित् । आ । तोदस्यऽइव । शरणे । आ । महस्य ॥ १ ॥ वि । अनिनस्य । धनिनः । प्रऽहोषे । चित् । अररुषः । कदा । चन । प्रऽजिगतः । अदेवऽयोः ॥ २ ॥ सः । चंद्रः । विप्र । मर्त्यः । महः । व्राधन्ऽतमः । दिवि । प्रऽप्र । इत् । ते । अग्ने । वनुषः । स्याम ॥ ३ ॥ १९ ॥

नित्यं चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३ ॥
पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥ ४ ॥
न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥ ५ ॥ १७ ॥

॥ १४९ ॥ ऋषिः–दीर्घतमा । देवता–अग्नि । छन्द–विराट् ॥

॥ १४९ ॥ महः स राय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ ।
उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ॥ १ ॥
स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।
प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥ २ ॥

---

नित्यं । चित् । नु । यं । सदने । जगृभ्रे । प्रशस्तिऽभिः । दधिरे । यज्ञियासः । प्र । सु । नयंत । गृभयंत । इष्टौ । अश्वासः । न । रथ्यः । ररहाणाः ॥ ३ ॥ पुरूणि । दस्मः । नि । रिणाति । जंभैः । आत् । रोचते । वने । आ । विभाऽवा । आत् । अस्य । वातः । अनु । वाति । शोचिः । अस्तुः । न । शर्यां । असना । अनु । द्यून् ॥ ४ ॥ न । यं । रिपवः । न । रिषण्यवः । गर्भे । संतं । रेषणाः । रेषयंति । अंधाः । अपश्याः । न । दभन् । अभिऽख्या । नित्यासः । ईं । प्रेतारः । अरक्षन् ॥ ५ ॥ १७ ॥

महः । सः । रायः । आ । ईषते । पतिः । दन् । इनः । इनस्य । वसुनः । पदे । आ । उप । ध्रजंतं । अद्रयः । विधन् । इत् ॥ १ ॥ सः । यः । वृषा । नरां । न । रोदस्योः । श्रवःऽभिः । अस्ति । जीवपीतऽसर्गः । प्र । यः । सस्राणः । शिश्रीत । योनौ ॥ २ ॥

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ ३ ॥
अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ ४ ॥
अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥ १८ ॥

॥ १५० ॥ ऋषि –दीर्घतमा । देवता–अग्निः । छन्द –उष्णिक् ॥

॥ १५० ॥ पुरु त्वा दाश्वान्वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥
व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः ।
कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥
स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि ।
प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥ १९ ॥

---

आ । यः । पुरं । नार्मिणीं । अदीदेत् । अत्यः । कविः । नभन्यः । न । अर्वा । सूरः । न । रुरुक्वान् । शतऽआत्मा ॥ ३ ॥ अभि । द्विऽजन्मा । त्री । रोचनानि । विश्वा । रजांसि । शुशुचानः । अस्थात् । होता । यजिष्ठः । अपां । सधऽस्थे ॥ ४ ॥ अयं । सः । होता । यः । द्विऽजन्मा । विश्वा । दधे । वार्याणि । श्रवस्या । मर्तः । यः । अस्मै । सुऽतुकः । ददाश ॥ ५ ॥ १८ ॥

पुरु । त्वा । दाश्वान् । वोचे । अरिः । अग्ने । तव । स्वित् । आ । तोदस्यऽइव । शरणे । आ । महस्य ॥ १ ॥ वि । अनिनस्य । धनिनः । प्रऽहोषे । चित् । अररुषः । कदा । चन । प्रऽजिगतः । अदेवऽयोः ॥ २ ॥ सः । चंद्रः । विप्र । मर्त्यः । महः । व्राधन्ऽतमः । दिवि । प्रऽप्र । इत् । ते । अग्ने । वनुषः । स्याम ॥ ३ ॥ १९ ॥

॥ १५१ ॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-मित्रावरुणौ । छन्द-जगती ॥

॥ १५१ ॥ मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥ १ ॥
यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥ २ ॥
आ वां भूषन्क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥
प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥ ४ ॥
मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्वीरिव ॥ ५ ॥ २० ॥

---

मित्रं । न । यं । शिम्या । गोषु । गव्यवः । सुऽआध्यः । विदथे । अप्ऽसु ।
जीजनन् । अरेजेतां । रोदसी इति । पाजसा । गिरा । प्रति । प्रियं । यजतं । जनुषां ।
अवः ॥ १ ॥ यत् । ह । त्यत् । वां । पुरुऽमीळ्हस्य । सोमिनः । प्र । मित्रासः । न ।
दधिरे । सुऽआभुवः । अध । क्रतुं । विदतं । गातुं । अर्चते । उत । श्रुतं । वृषणा ।
पस्त्यऽवतः ॥ २ ॥ आ । वां । भूषन् । क्षितयः । जन्म । रोदस्योः । प्रऽवाच्यं ।
वृषणा । दक्षसे । महे । यत् । ईं । ऋताय । भरथः । यत् । अर्वते । प्र । होत्रया ।
शिम्या । वीथः । अध्वरं ॥ ३ ॥ प्र । सा । क्षितिः । असुर । या । महि । प्रिया ।
ऋतऽवानौ । ऋतं । आ । घोषथः । बृहत् । युवं । दिवः । बृहतः । दक्षं । आऽभुवं ।
गां । न । धुरि । उप । युंजाथे इति । अपः ॥ ४ ॥ मही इति । अत्र । महिना ।
वारं । ऋण्वथः । अरेणवः । तुजः । आ । सद्मन् । धेनवः । स्वरंति । ताः । उपरऽ
ताति । सूर्यं । आ । निऽम्रुचः । उषसः । तक्वीःऽइव ॥ ५ ॥ २० ॥

आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥ ६ ॥
यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥
युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥ ८ ॥
रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ ॥ २१ ॥

---

आ । वाम् । ऋताय । केशिनीः । अनूषत । मित्र । यत्र । वरुण । गातुम् । अर्चथः ।
अव । त्मना । सृजतम् । पिन्वतम् । धियः । युवम् । विप्रस्य । मन्मनाम् । इरज्यथः ॥ ६ ॥
यः । वाम् । यज्ञैः । शशमानः । ह । दाशति । कविः । होता । यजति । मन्मऽसाधनः ।
उप । अह । तम् । गच्छथः । वीथः । अध्वरम् । अच्छ । गिरः । सुऽमतिम् । गन्तम् ।
अस्मयू इत्यस्मऽयू ॥ ७ ॥ युवाम् । यज्ञैः । प्रथमा । गोभिः । अञ्जते । ऋतऽवाना ।
मनसः । न । प्रऽयुक्तिषु । भरन्ति । वाम् । मन्मना । सम्ऽयता । गिरः । अदृप्यता ।
मनसा । रेवत् । आशाथे इति ॥ ८ ॥ रेवत् । वयः । दधाथे इति । रेवत् । आशाथे
इति । नरा । मायाभिः । इतःऽऊति । माहिनम् । न । वाम् । द्यावः । अहऽभिः । न ।
उत । सिन्धवः । न । देवऽत्वम् । पणयः । न । आनशुः । मघम् ॥ ९ ॥ २१ ॥

॥ १५२ ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-मित्रावरुणौ । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥१५२॥ युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥
एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥ २ ॥
अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥ ३ ॥
प्रयन्तमित्परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥ ५ ॥

---

युवं । वस्त्राणि । पीवसा । वसाथे इति । युवोः । अच्छिद्राः । मंतवः । ह । सर्गाः । अव । अतिरतं । अनृतानि । विश्वा । ऋतेन । मित्रावरुणा । सचेथे इति ॥ १ ॥ एतत् । चन । त्वः । वि । चिकेतत् । एषां । सत्यः । मंत्रः । कविऽशस्तः । ऋघावान् । त्रिःऽअश्रिं । हंति । चतुःऽअश्रिः । उग्रः । देवऽनिदः । ह । प्रथमाः । अजूर्यन् ॥ २ ॥ अपात् । एति । प्रथमा । पत्ऽवतीनां । कः । तत् । वां । मित्रावरुणा । आ । चिकेत । गर्भः । भारं । भरति । आ । चित् । अस्य । ऋतं । पिपर्ति । अनृतं । नि । तारीत् ॥ ३ ॥ प्रऽयंतं । इत् । परि । जारं । कनीनां । पश्यामसि । न । उपऽनिपद्यमानं । अनवऽपृग्णा । विऽतता । वसानं । प्रियं । मित्रस्य । वरुणस्य । धाम ॥ ४ ॥ अनश्वः । जातः । अनभीशुः । अर्वा । कनिक्रदत् । पतयत् । ऊर्ध्वऽसानुः । अचित्तं । ब्रह्म । जुजुषुः । युवानः । प्र । मित्रे । धाम । वरुणे । गृणंतः ॥ ५ ॥

आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ६ ॥
आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥ ७ ॥ २२ ॥

॥ १५३ ॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–मित्रावरुणौ । छन्द–त्रिष्टुप् ॥

॥ १५३ ॥ यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
घृतैर्घृतस्नू अध यद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥ १ ॥
प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।
अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥ २ ॥
पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥ ३ ॥

---

आ । धेनवः । मामतेयं । अवन्तीः । ब्रह्मऽप्रियं । पीपयन् । सस्मिन् । ऊधन् । पित्वः ।

उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥ ४ ॥ २३ ॥

॥ १५४ ॥ ऋषि–दीर्घतमाः । देवता–विष्णुः । छन्दः–त्रिष्टुप् ॥

॥१५४॥ विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥
प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥
प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥ ३ ॥
यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

---

उत । वां । विक्षु । मद्यासु । अंधः । गावः । आपः । च । पीपयंत । देवीः । उतो इति । नः । अस्य । पूर्व्यः । पतिः । दन् । वीतं । पातं । पयसः । उस्रियायाः ॥२३॥

विष्णोः । नु । कं । वीर्याणि । प्र । वोचं । यः । पार्थिवानि । विऽममे । रजांसि । यः । अस्कभायत् । उत्ऽतरं । सधऽस्थं । विऽचक्रमाणः । त्रेधा । उरुऽगायः ॥ १ ॥ प्र । तत् । विष्णुः । स्तवते । वीर्येण । मृगः । न । भीमः । कुचरः । गिरिऽस्थाः । यस्य । उरुषु । त्रिषु । विऽक्रमणेषु । अधिऽक्षियंति । भुवनानि । विश्वा ॥ २ ॥ प्र । विष्णवे । शूषं । एतु । मन्म । गिरिऽक्षिते । उरुऽगायाय । वृष्णे । यः । इदं । दीर्घं । प्रऽयतं । सधऽस्थं । एकः । विऽममे । त्रिऽभिः । इत् । पदेभिः ॥३॥ यस्य । त्री । पूर्णा । मधुना । पदानि । अक्षीयमाणा । स्वधया । मदंति । यः । ऊं इति । त्रिऽधातु । पृथिवीं । उत । द्यां । एकः । दाधार । भुवनानि । विश्वा ॥४॥

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ ५ ॥
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥ ६ ॥ २४ ॥

॥ १५५ ॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–विष्णुः । छन्दः–जगती ॥

॥१५५॥ प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥ १ ॥
त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥ २ ॥
ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ ३ ॥

---

तत् । अस्य । प्रियं । अभि । पाथः । अश्यां । नरः । यत्र । देवऽयवः । मदंति ।
उरुऽक्रमस्य । सः । हि । बंधुः । इत्था । विष्णोः । पदे । परमे । मध्वः । उत्सः ॥५॥
ता । वां । वास्तूनि । उश्मसि । गमध्यै । यत्र । गावः । भूरिऽशृंगाः । अयासः ।
अत्र । अह । तत् । उरुऽगायस्य । वृष्णः । परमं । पदं । अव । भाति । भूरि ॥६॥२४॥
प्र । वः । पांतं । अंधसः । धियाऽयते । महे । शूराय । विष्णवे । च ।
अर्चत । या । सानुनि । पर्वतानां । अदाभ्या । महः । तस्थतुः । अर्वताऽइव ।
साधुना ॥ १ ॥ त्वेषं । इत्था । संऽअरणं । शिमीऽवतोः । इंद्राविष्णू इति । सुतऽपाः ।
वां । उरुष्यति । या । मर्त्याय । प्रतिऽधीयमानं । इत् । कृशानोः । अस्तुः । असनां ।
उरुष्यथः ॥ २ ॥ ताः । ईं । वर्धंति । महि । अस्य । पौंस्यं । नि । मातरा । नयति ।
रेतसे । भुजे । दधाति । पुत्रः । अवरं । परं । पितुः । नाम । तृतीयं । अधि ।
रोचने । दिवः ॥ ३ ॥

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥ ४ ॥
द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥ ५ ॥
चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥ ६ ॥ २५ ॥

॥ १५६ ॥ ऋषि –दीर्घतमा । देवता–विष्णु । छन्द –जगती ॥

॥१५६॥ भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः ।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १ ॥
यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥ २ ॥

---

तत्ऽतत् । इत् । अस्य । पौंस्यं । गृणीमसि । इनस्य । त्रातुः । अवृकस्य । मीळ्हुषः । यः । पार्थिवानि । त्रिऽभिः । इत् । विगामऽभिः । उरु । क्रमिष्ट । उरुऽगायाय । जीवसे ॥ ४ ॥ द्वे इति । इत् । अस्य । क्रमणे इति । स्वःऽदृशः । अभिऽख्याय । मर्त्यः । भुरण्यति । तृतीयं । अस्य । नकिः । आ । दधर्षति । वयः । चन । पतयन्तः । पतत्रिणः ॥ ५ ॥ चतुर्भिः । साकं । नवतिं । च । नामऽभिः । चक्रं । न । वृत्तं । व्यतीन् । अवीविपत् । बृहत्ऽशरीरः । विऽमिमानः । ऋक्वऽभिः । युवा । अकुमारः । प्रति । एति । आऽहवं ॥ ६ ॥ २५ ॥

भव । मित्रः । न । शेव्यः । घृतऽआसुतिः । विभूतऽद्युम्नः । एवऽयाः । ऊं इति । सऽप्रथाः । अध । ते । विष्णो इति । विदुषा । चित् । अर्ध्यः । स्तोमः । यज्ञः । च । राध्यः । हविष्मता ॥ १ ॥ यः । पूर्व्याय । वेधसे । नवीयसे । सुमत्ऽजानये । विष्णवे । ददाशति । यः । जातं । अस्य । महतः । महि । ब्रवत् । सः । इत् । ऊं इति । श्रवःऽभिः । युज्यं । चित् । अभि । असत् ॥ २ ॥

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन ।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥
तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥ ४ ॥
आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।
वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥५॥२६॥२१॥

## ॥ द्वाविंशोऽनुवाकः ॥

॥ १५७ ॥ ऋषि-दीर्घतमाः । देवता-अश्विनौ । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥१५७॥ अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥

यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ४ ॥
युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतींरश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥
युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या३राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥ ६ ॥ २७ ॥ २ ॥

---

यत् । युंजाथे इति । वृषणं । अश्विना । रथं । घृतेन । नः । मधुना । क्षत्रं । उक्षतं ।
अस्माकं । ब्रह्म । पृतनासु । जिन्वतं । वयं । धना । शूरऽसाता । भजेमहि ॥ २ ॥
अर्वाङ् । त्रिऽचक्रः । मधुऽवाहनः । रथः । जीरऽअश्वः । अश्विनोः । यातु ।
सुऽस्तुतः । त्रिऽवंधुरः । मघऽवा । विश्वऽसौभगः । शं । नः । आ । वक्षत् । द्विऽपदे ।
चतुःऽपदे ॥ ३ ॥ आ । नः । ऊर्जं । वहतं । अश्विना । युवं । मधुऽमत्या । नः ।
कशया । मिमिक्षतं । प्र । आयुः । तारिष्टं । निः । रपांसि । मृक्षतं । सेधतं । द्वेषः ।
भवतं । सचाऽभुवा ॥ ४ ॥ युवं । ह । गर्भं । जगतीषु । धत्थः । युवं । विश्वेषु ।
भुवनेषु । अंतरिति । युवं । अग्निं । च । वृषणौ । अपः । च । वनस्पतीन् । अश्विना ।
ऐरयेथां ॥ ५ ॥ युवं । ह । स्थः । भिषजा । भेषजेभिः । अथो इति । ह । स्थः ।
रथ्या । रथ्येभिरितिरथ्येभिः । अथो इति । ह । क्षत्रं । अधि । धत्थः । उग्रा । यः ।
वां । हविष्मान् । मनसा । ददाश ॥ ६ ॥ २७ ॥ २ ॥

॥ द्वितीयाष्टके द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

## ॥ अथ द्वितीयाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ १५८ ॥ ऋषि –दीर्घतमा । देवता–अश्विनौ । छन्द –त्रिष्टुप् ॥

॥१५८॥ वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती ॥ १ ॥
को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः ।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरंधीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥ २ ॥
युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः ।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥ ३ ॥
उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक्प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥ ४ ॥

न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसंमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥ ५ ॥
दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ १५९ ॥ ऋषि – दीर्घतमा । देवता – द्यावापृथिव्यौ । छन्द – जगती ॥

॥१५९॥ प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥ १ ॥
उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥ २ ॥
ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥ ३ ॥

---

न । मा । गरन् । नद्यः । मातृऽतमाः । दासाः । यत् । ईम् । सुऽसंमुब्धम् । अवऽअधुः ।
शिरः । यत् । अस्य । त्रैतनः । विऽतक्षत् । स्वयम् । दासः । उरः । अंसौ । अपि ।
ग्धेति ग्ध ॥ ५ ॥ दीर्घऽतमाः । मामतेयः । जुजुर्वान् । दशमे । युगे । अपाम् । अर्थम् ।
यतीनाम् । ब्रह्मा । भवति । सारथिः ॥ ६ ॥ १ ॥

प्र । द्यावा । यज्ञैः । पृथिवी इति । ऋतऽवृधा । मही इति । स्तुषे । विदथेषु ।
प्रऽचेतसा । देवेभिः । ये इति । देवपुत्रे इति देवऽपुत्रे । सुऽदंससा । इत्था । धिया ।
वार्याणि । प्रऽभूषतः ॥ १ ॥ उत । मन्ये । पितुः । अद्रुहः । मनः । मातुः । महि ।
स्वऽतवः । तत् । हवीमऽभिः । सुऽरेतसा । पितरा । भूम । चक्रतुः । उरु । प्रऽजायाः ।
अमृतम् । वरीमऽभिः ॥ २ ॥ ते । सूनवः । सुऽअपसः । सुऽदंससः । मही इति ।
जज्ञुः । मातरा । पूर्वऽचित्तये । स्थातुः । च । सत्यम् । जगतः । च । धर्मणि । पुत्रस्य ।
पाथः । पदम् । अद्वयाविनः ॥ ३ ॥

ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥ ४ ॥
तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥ ५ ॥ २ ॥

॥ १६० ॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–द्यावापृथिव्यौ । छन्द–जगती ॥

॥१६०॥ ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥ १ ॥
उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।
सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥ २ ॥
स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥ ३ ॥

---

ते । मायिनः । ममिरे । सुऽप्रचेतसः । जामी इति । सयोनी इति सऽयोनी । मिथुना । समऽओकसा । नव्यंऽनव्यं । तंतुं । आ । तन्वते । दिवि । समुद्रे । अंतरिति । कवयः । सुऽदीतयः ॥ ४ ॥ तत् । राधः । अद्य । सवितुः । वरेण्यं । वयं । देवस्य । प्रऽसवे । मनामहे । अस्मभ्यं । द्यावापृथिवी इति । सुऽचेतुना । रयिं । धत्तं । वसुऽमंतं । शतऽग्विनं ॥ ५ ॥ २ ॥

अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा ।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥ ४ ॥
ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥ ३ ॥

॥ १६१ ॥ ऋषि–दीर्घतमा. । देवता–ऋभव । छन्द,–जगती ॥

॥१६१॥ किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यङ्कद्यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥ १ ॥
एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥ २ ॥
अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥ ३ ॥

---

अयं । देवानां । अपसां । अपःऽतमः । यः । जजान । रोदसी इति । विश्वऽशंभुवा ।
वि । यः । ममे । रजसी इति । सुक्रतुऽयया । अजरेभिः । स्कंभनेभिः । सं ।
आनृचे ॥ ४ ॥ ते इति । नः । गृणाने इति । महिनी इति । महि । श्रवः । क्षत्रं ।
द्यावापृथिवी इति । धासथः । बृहत् । येन । अभि । कृष्टीः । ततनाम । विश्वहा ।
पनाय्यं । ओजः । अस्मे इति । सं । इन्वतं ॥ ५ ॥ ३ ॥

किं । ऊं इति । श्रेष्ठः । किं । यविष्ठः । नः । आ । अजगन् । किं । ईयते ।
दूत्यं । कत् । यत् । ऊचिम । न । निंदिम । चमसं । यः । महाऽकुलः । अग्ने ।
भ्रातः । द्रुणः । इत् । भूतिं । ऊदिम ॥ १ ॥ एकं । चमसं । चतुरः । कृणोतन ।
तत् । वः । देवाः । अब्रुवन् । तत् । वः । आ । अगमं । सौधन्वनाः । यदि । एव ।
करिष्यथ । साकं । देवैः । यज्ञियासः । भविष्यथ ॥ २ ॥ अग्निं । दूतं । प्रति ।
यत् । अब्रवीतन । अश्वः । कर्त्वः । रथः । उत । इह । कर्त्वः । धेनुः । कर्त्वा ।
युवशा । कर्त्वा । द्वा । तानि । भ्रातः । अनु । वः । कृत्वी । आ । इमसि ॥ ३ ॥

चकृवांसं ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥ ४ ॥
हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या३नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥ ४ ॥
इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥
निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥ ७ ॥
इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् ।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥ ८ ॥

---

चकृऽवांसः । ऋभवः । तत् । अपृच्छत । क्व । इत् । अभूत् । यः । स्यः । दूतः ।
नः । आ । अजगन् । यदा । अवऽअख्यत् । चमसान् । चतुरः । कृतान् । आत् ।
इत् । त्वष्टा । ग्नासु । अन्तः । नि । आनजे ॥ ४ ॥ हनाम । एनान् । इति । त्वष्टा ।

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥ ९ ॥
श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतं ।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥१०॥९॥
उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥ ११ ॥
सम्मील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व । स्वित्तात्या पितरा व आसतुः ।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥ १२ ॥
सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥ १३ ॥

---

आपः । भूयिष्ठाः । इति । एकः । अब्रवीत् । अग्निः । भूयिष्ठः । इति । अन्यः । अब्रवीत् । वधःऽयन्तीं । बहुऽभ्यः । प्र । एकः । अब्रवीत् । ऋता । वदन्तः । चमसान् । अपिंशत ॥ ९ ॥ श्रोणां । एकः । उदकं । गां । अव । अजति । मांसं । एकः । पिंशति । सूनया । आऽभृतं । आ । निऽम्रुचः । शकृत् । एकः । अप । अभरत् । किं । स्वित् । पुत्रेभ्यः । पितरौ । उप । आवतुः ॥ १० ॥ ९ ॥ उद्वत्ऽसु । अस्मै । अकृणोतन । तृणं । निवत्ऽसु । अपः । सुऽअपस्यया । नरः । अगोह्यस्य । यत् । असस्तन । गृहे । तत् । अद्य । इदं । ऋभवः । न । अनु । गच्छथ ॥ ११ ॥ संऽमील्य । यत् । भुवना । परिऽअसर्पत । क्व । स्वित् । तात्या । पितरा । वः । आसतुः । अशपत । यः । करस्नं । वः । आऽददे । यः । प्र । अब्रवीत् । प्रो इति । तस्मै । अब्रवीतन ॥ १२ ॥ सुसुप्वांसः । ऋभवः । तत् । अपृच्छत । अगोह्य । कः । इदं । नः । अबूबुधत् । श्वानं । बस्तः । बोधयितारं । अब्रवीत् । संवत्सरे । इदं । अद्य । वि । अख्यत ॥ १३ ॥

दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥ १४ ॥ ६ ॥

॥ १-२ ॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अश्वस्तुति । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥१६२॥ मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन्।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ १ ॥
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २ ॥
एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः।
अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३ ॥
यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ ४ ॥

---

दिवा । यान्ति । मरुतः । भूम्या । अग्निः । अयम् । वातः । अन्तरिक्षेण । याति ।
अत्ऽभिः । याति । वरुणः । समुद्रैः । युष्मान् । इच्छन्तः । शवसः । नपातः ॥१४॥६
मा । नः । मित्रः । वरुणः । अर्यमा । आयुः । इन्द्रः । ऋभुक्षाः । मरुतः ।

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ ५ ॥ ७ ॥
यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ६ ॥
उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ७ ॥
यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८ ॥
यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ९ ॥

---

होता । अध्वर्युः । आऽवयाः । अग्निऽइन्धः । ग्रावऽग्राभः । उत । शंस्ता । सुऽविप्रः ।
तेन । यज्ञेन । सुऽअरंकृतेन । सुऽइष्टेन । वक्षणाः । आ । पृणध्वं ॥ ५ ॥ ७ ॥
यूपऽव्रस्काः । उत । ये । यूपऽवाहाः । चषालं । ये । अश्वऽयूपाय । तक्षति । ये ।
च । अर्वते । पचनं । सम्ऽभरंति । उतो इति । तेषां । अभिऽगूर्तिः । नः । इन्वतु ॥६॥
उप । प्र । अगात् । सुऽमत् । मे । अधायि । मन्म । देवानां । आशाः । उप ।
वीतऽपृष्ठः । अनु । एनं । विप्राः । ऋषयः । मदंति । देवानां । पुष्टे । चकृम ।
सुऽबंधुं ॥ ७ ॥ यत् । वाजिनः । दाम । सम्ऽदानं । अर्वतः । या । शीर्षण्या ।
रशना । रज्जुः । अस्य । यत् । वा । घ । अस्य । प्रऽभृतं । आस्ये । तृणं । सर्वा ।
ता । ते । अपि । देवेषु । अस्तु ॥ ८ ॥ यत् । अश्वस्य । क्रविषः । मक्षिका ।
आश । यत् । वा । स्वरौ । स्वऽधितौ । रिप्तं । अस्ति । यत् । हस्तयोः । शमितुः ।
यत् । नखेषु । सर्वा । ता । ते । अपि । देवेषु । अस्तु ॥ ९ ॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥ १० ॥ ८ ॥
यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥ ११ ॥
ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ १२ ॥
यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ १३ ॥
निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १४ ॥

---

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥ १५ ॥ ९ ॥
यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
सन्दानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥
यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ १७ ॥
चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥ १८ ॥
एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ १९ ॥

---

मा । त्वा । अग्निः । ध्वनयीत् । धूमऽगंधिः । मा । उखा । भ्राजंती । अभि । विक्त । जघ्रिः । इष्टं । वीतं । अभिऽगूर्तं । वषट्ऽकृतं । तं । देवासः । प्रति । गृभ्णंति । अश्वं ॥ १५ ॥ ९ ॥ यत् । अश्वाय । वासः । उपऽस्तृणंति । अधिऽवासं । या । हिरण्यानि । अस्मै । संऽदानं । अर्वंतं । पड्वीशं । प्रिया । देवेषु । आ । यमयंति ॥ १६ ॥ यत् । ते । सादे । महसा । शूकृतस्य । पार्ष्ण्या । वा । कशया । वा । तुतोद । स्रुचाऽइव । ता । हविषः । अध्वरेषु । सर्वा । ता । ते । ब्रह्मणा । सूदयामि ॥ १७ ॥ चतुःऽत्रिंशत् । वाजिनः । देवऽबंधोः । वंक्रीः । अश्वस्य । स्वऽधितिः । सं । एति । अच्छिद्रा । गात्रा । वयुना । कृणोत । परुःऽपरुः । अनुऽघुष्य । वि । शस्त ॥ १८ । एकः । त्वष्टुः । अश्वस्य । विऽशस्ता । द्वा । यंतारा । भवतः । तथा । ऋतुः । या । ते । गात्राणां । ऋतुऽथा । कृणोमि । ताऽता । पिंडानां । प्र । जुहोमि । अग्नौ ॥ १९ ॥

मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत्ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ २० ॥
न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥ २१ ॥
सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥ १० ॥

॥ १६३ ॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अश्वस्तुतिः । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥ १६३ ॥ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १ ॥
यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ ३ ॥
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४ ॥
इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ ५ ॥ ११ ॥
आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम्।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥
अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानळादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ ७ ॥

---

असि। यमः। असि। आदित्यः। अर्वन्। असि। त्रितः। गुह्येन। व्रतेन। असि। सोमेन। समया। विऽपृक्तः। आहुः। ते। त्रीणि। दिवि। बंधनानि ॥ ३ ॥ त्रीणि। ते। आहुः। दिवि। बंधनानि। त्रीणि। अपऽसु। त्रीणि। अंतरिति। समुद्रे। उतऽइव। मे। वरुणः। छंत्सि। अर्वन्। यत्र। ते। आहुः। परमं। जनित्रं ॥ ४ ॥ इमा। ते। वाजिन्। अवऽमार्जनानि। इमा। शफानां। सनितुः। निऽधाना। अत्र। ते। भद्राः। रशनाः। अपश्यं। ऋतस्य। याः। अभिऽरक्षंति। गोपाः ॥ ५ ॥ ११ ॥ आत्मानं। ते। मनसा। आरात्। अजानां। अवः। दिवा। पतयंतं। पतंगं। शिरः। अपश्यं। पथिऽभिः। सुऽगेभिः। अरेणुऽभिः। जेहमानं। पतत्रि ॥ ६ ॥ अत्र। ते। रूपं। उत्ऽतमं। अपश्यं। जिगीषमाणं। इषः। आ। पदे। गोः। यदा। ते। मर्तः। अनु। भोगं। आनट्। आत्। इत्। ग्रसिष्ठः। ओषधीः। अजीगरिति ॥ ७ ॥

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८ ॥
हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥
ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ १० ॥ १२ ॥
तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ ११ ॥
उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ १२ ॥

---

अनु । त्वा । रथः । अनु । मर्यः । अर्वन् । अनु । गावः । अनु । भगः । कनीनाम् ।
अनु । व्रातासः । तव । सख्यं । ईयुः । अनु । देवाः । ममिरे । वीर्यं । ते ॥ ८ ॥
हिरण्यऽशृङ्गः । अयः । अस्य । पादाः । मनःऽजवाः । अवरः । इन्द्रः । आसीत् ।
देवाः । इत् । अस्य । हविःऽअद्यं । आयन् । यः । अर्वन्तं । प्रथमः । अधिऽअति-
ष्ठत् ॥ ९ ॥ ईर्मऽअन्तासः । सिलिकऽमध्यमासः । सं । शूरणासः । दिव्यासः ।
अत्याः । हंसाःऽइव । श्रेणिऽशः । यतन्ते । यत् । आक्षिषुः । दिव्यं । अज्मं ।
अश्वाः ॥ १० ॥ १२ ॥ तव । शरीरं । पतयिष्णु । अर्वन् । तव । चित्तं । वातःऽ-
इव । ध्रजीमान् । तव । शृङ्गाणि । विऽस्थिता । पुरुऽत्रा । अरण्येषु । जर्भुराणा ।
चरन्ति ॥ ११ ॥ उप । प्र । अगात् । शसनं । वाजी । अर्वा । देवऽद्रीचा । मनसा
दीध्यानः । अजः । पुरः । नीयते । नाभिः । अस्य । अनु । पश्चात् । कवयः ।
यन्ति । रेभाः ॥ १२ ॥

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ १३ ॥ १३ ॥

॥ १६४ ॥ ऋषि–दीर्घतमाः । देवता–विश्वेदेवा । छन्द–त्रिष्टुप् ॥

॥१६४॥ अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥
को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥

---

उप । प्र । अगात् । परमं । यत् । सधऽस्थं । अर्वान् । अच्छ । पितरं । मातरं । च ।
अद्य । देवान् । जुष्टऽतमः । हि । गम्याः । अथ । आ । शास्ते । दाशुषे ।
वार्याणि ॥ १३ ॥ १३ ॥

अस्य । वामस्य । पलितस्य । होतुः । तस्य । भ्राता । मध्यमः । अस्ति ।
अश्नः । तृतीयः । भ्राता । घृतऽपृष्ठः । अस्य । अत्र । अपश्यं । विश्पतिं । सप्तऽ
पुत्रं ॥ १ ॥ सप्त । युंजंति । रथं । एकऽचक्रं । एकः । अश्वः । वहति । सप्तऽनामा ।
त्रिऽनाभि । चक्रं । अजरं । अनर्वं । यत्र । इमा । विश्वा । भुवना । अधि । तस्थुः ॥ २ ॥
इमं । रथं । अधि । ये । सप्त । तस्थुः । सप्तऽचक्रं । सप्त । वहंति । अश्वाः । सप्त ।
स्वसारः । अभि । सं । नवंते । यत्र । गवां । निऽहिता । सप्त । नाम ॥ ३ ॥ कः ।
ददर्श । प्रथमं । जायमानं । अस्थनऽवंतं । यत् । अनस्था । बिभर्ति । भूम्याः । असुः ।
असृक् । आत्मा । क्व । स्वित् । कः । विद्वांसं । उप । गात् । प्रष्टुं । एतत् ॥ ४ ॥

पाकः पृच्छामि मनसाविजानन्देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ५ ॥ १४ ॥
अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ६ ॥
इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥
माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥
युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥

तिस्रो मातृस्त्रीन्पितृन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥ १० ॥ १८ ॥
द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ ११ ॥
पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥ १३ ॥
सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

---

तिस्रः । मातृः । त्रीन् । पितृन् । बिभ्रत् । एकः । ऊर्ध्वः । तस्थौ । न । ईं । अव । ग्लपयंति । मंत्रयंते । दिवः । अमुष्य । पृष्ठे । विश्वऽविदं । वाचं । अविश्वऽमिन्वां ॥ १० ॥ १८ ॥ द्वादशऽअरं । नहि । तत् । जराय । वर्वर्ति । चक्रं । परि । द्यां । ऋतस्य । आ । पुत्राः । अग्ने । मिथुनासः । अत्र । सप्त । शतानि । विंशतिः । च । तस्थुः ॥ ११ ॥ पंचऽपादं । पितरं । द्वादशऽआकृतिं । दिवः । आहुः । परे । अर्धे । पुरीषिणं । अथ । इमे । अन्ये । उपरे । विऽचक्षणं । सप्तऽचक्रे । षट्ऽअरे । आहुः । अर्पितं ॥ १२ ॥ पंचऽअरे । चक्रे । परिऽवर्तमाने । तस्मिन् । आ । तस्थुः । भुवनानि । विश्वा । तस्य । न । अक्षः । तप्यते । भूरिऽभारः । सनात् । एव । न । शीर्यते । सऽनाभिः ॥ १३ ॥ सऽनेमि । चक्रं । अजरं । वि । ववृते । उत्तानायां । दश । युक्ताः । वहंति । सूर्यस्य । चक्षुः । रजसा । एति । आऽवृतं । तस्मिन् । आर्पिता । भुवनानि । विश्वा ॥ १४ ॥

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १५ ॥ १६॥
स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत् ॥ १६ ॥
अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात्क्व स्वित्सूते नहि यूथे अन्तः ॥ १७ ॥
अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥ १८ ॥
ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २० ॥ १७ ॥
यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥ २१ ॥
यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥
यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥ २३ ॥
गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २४ ॥

---

द्वा । सुऽपर्णा । सऽयुजा । सखाया । समानं । वृक्षं । परि । सस्वजाते इति । तयोः । अन्यः । पिप्पलं । स्वादु । अत्ति । अनश्नन् । अन्यः । अभि । चाकशीति ॥ २० ॥ १७ ॥
यत्र । सुऽपर्णाः । अमृतस्य । भागं । अनिऽमेषं । विदथा । अभिऽस्वरंति । इनः । विश्वस्य । भुवनस्य । गोपाः । सः । मा । धीरः । पाकं । अत्र । आ । विवेश ॥ २१ ॥
यस्मिन् । वृक्षे । मधुऽअदः । सुऽपर्णाः । निऽविशंते । सुवते । च । अधि । विश्वे । तस्य । इत् । आहुः । पिप्पलं । स्वादु । अग्रे । तत् । न । उत् । नशत् । यः । पितरं । न । वेद ॥ २२ ॥ यत् । गायत्रे । अधि । गायत्रं । आऽहितं । त्रैस्तुभात् । वा । त्रैस्तुभं । निःऽअतक्षत । यत् । वा । जगत् । जगति । आऽहितं । पदं । ये । इत् । तत् । विदुः । ते । अमृतऽत्वं । आनशुः ॥ २३ ॥ गायत्रेण । प्रति । मिमीते । अर्कं । अर्केण । साम । त्रैस्तुभेन । वाकं । वाकेन । वाकं । द्विऽपदा । चतुःऽपदा । अक्षरेण । मिमते । सप्त । वाणीः ॥ २४ ॥ १८ ॥

जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥ २५ ॥ १८ ॥
उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥ २६ ॥
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ २७ ॥
गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ २८ ॥
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ २९ ॥

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ३० ॥ १९ ॥
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३१ ॥
य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥ ३२ ॥
द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ३३ ॥
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ३४ ॥

---

अनत् । शये । तुरऽगातु । जीवं । एजत् । ध्रुवं । मध्ये । आ । पस्त्यानां । जीवः ।
मृतस्य । चरति । स्वधाभिः । अमर्त्यः । मर्त्येन । सऽयोनिः ॥ ३० ॥ १९ ॥
अपश्यं । गोपां । अनिऽपद्यमानं । आ । च । परा । च । पथिऽभिः । चरन्तं । सः ।
सध्रीचीः । सः । विषूचीः । वसानः । आ । वरीवर्ति । भुवनेषु । अंतरिति ॥ ३१ ॥
यः । ईं । चकार । न । सः । अस्य । वेद । यः । ईं । ददर्श । हिरुक् । इत् । नु ।
तस्मात् । सः । मातुः । योना । परिऽवीतः । अंतः । बहुऽप्रजाः । निःऽऋतिं ।
आ । विवेश ॥ ३२ ॥ द्यौः । मे । पिता । जनिता । नाभिः । अत्र । बंधुः । मे ।
माता । पृथिवी । मही । इयं । उत्तानयोः । चम्वोः । योनिः । अंतः । अत्र । पिता ।
दुहितुः । गर्भं । आ । अधात् ॥ ३३ ॥ पृच्छामि । त्वा । परं । अंतं । पृथिव्याः ।
पृच्छामि । यत्र । भुवनस्य । नाभिः । पृच्छामि । त्वा । वृष्णः । अश्वस्य । रेतः ।
पृच्छामि । वाचः । परमं । विऽओम ॥ ३४ ॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ३५ ॥ २० ॥
सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥
न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥ ३७ ॥
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥ ३८ ॥
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ३९ ॥

---

इयं । वेदिः । परः । अन्तः । पृथिव्याः । अयं । यज्ञः । भुवनस्य । नाभिः । अयं ।

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ ४० ॥ २१ ॥
गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥ ४१ ॥
तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः।
ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति ॥ ४२ ॥
शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ ४३ ॥
त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ ४४ ॥

---

सुयवसऽअत्। भगऽवती। हि। भूयाः। अथो इति। वयं। भगऽवन्तः। स्याम।
अद्धि। तृणं। अघ्न्ये। विश्वऽदानीं। पिब। शुद्धं। उदकं। आऽचरन्ती ॥४०॥२१॥
गौरीः। मिमाय। सलिलानि। तक्षती। एकऽपदी। द्विऽपदी। सा। चतुःऽपदी।
अष्टाऽपदी। नवऽपदी। बभूवुषी। सहस्रऽअक्षरा। परमे। विऽओमन् ॥ ४१ ॥
तस्याः। समुद्राः। अधि। वि। क्षरन्ति। तेन। जीवन्ति। प्रऽदिशः। चतस्रः।
ततः। क्षरति। अक्षरं। तत्। विश्वं। उप। जीवति ॥ ४२ ॥ शकऽमयं। धूमं।
आरात्। अपश्यं। विषुऽवता। परः। एना। अवरेण। उक्षाणं। पृश्निं। अपचन्त।
वीराः। तानि। धर्माणि। प्रथमानि। आसन् ॥ ४३ ॥ त्रयः। केशिनः। ऋतुऽथा।
वि। चक्षते। संवत्सरे। वपते। एकः। एषां। विश्वं। एकः। अभि। चष्टे।
शचीभिः। ध्राजिः। एकस्य। ददृशे। न। रूपं ॥ ४४ ॥

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ४५ ॥
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ४६ ॥ २२ ॥
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥ ४७ ॥
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥ ४८ ॥
यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ ४९ ॥

यज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन् ।
ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑ सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥ ५० ॥
स॒मा॒नमे॒तदु॑द॒कमुच्चैत्यव॒ चाह॑भिः ।
भूमिं॑ प॒र्जन्या॒ जिन्व॑न्ति॒ दिवं॑ जिन्वन्त्य॒ग्नयः॑ ॥ ५१ ॥
दि॒व्यं सु॑प॒र्णं वा॑य॒सं बृ॒हन्त॑म॒पां गर्भं॑ दर्श॒तमोष॑धीनाम् ।
अ॒भी॒प॒तो वृ॒ष्टिभि॑स्त॒र्पय॑न्तं॒ सर॑स्वन्त॒मव॑से जोहवीमि ॥ ५२ ॥ २३ ॥ २२ ॥

## ॥ त्रयोविंशोऽनुवाकः ॥

॥ १६५ ॥ ऋषि – मरुत । देवता – इन्द्र । छन्द – त्रिष्टुप ॥

॥१६५॥ कया॑ शु॒भा सव॑यसः॒ सनी॑ळाः समा॒न्या म॒रुतः॒ सं मि॑मिक्षुः ।
कया॑ म॒ती कुत॒ एता॑स ए॒तेऽर्च॑न्ति॒ शुष्मं॒ वृष॑णो वसू॒या ॥ १ ॥

---

य॒ज्ञेन॑ । य॒ज्ञं । अ॒य॒ज॒न्त॒ । दे॒वाः । तानि॑ । धर्मा॑णि । प्र॒थ॒मानि॑ । आ॒स॒न् । ते । ह॒ । नाकं॑ । म॒हि॒मानः॑ । स॒च॒न्त॒ । यत्र॑ । पूर्वे॑ । सा॒ध्याः । सन्ति॑ । दे॒वाः ॥ ५० ॥ स॒मा॒नं । ए॒तत् । उ॒द॒कं । उत् । च॒ । एति॑ । अव॑ । च॒ । अह॑ऽभिः । भूमिं॑ । प॒र्जन्याः॑ । जिन्व॑न्ति । दिवं॑ । जि॒न्व॒न्ति॒ । अ॒ग्नयः॑ ॥ ५१ ॥ दि॒व्यं । सु॒ऽप॒र्णं । वा॒य॒सं । बृ॒हन्तं॑ । अ॒पां । गर्भं॑ । द॒र्श॒तं । ओष॑धीनां । अ॒भी॒प॒तः । वृ॒ष्टिऽभिः॑ । त॒र्पय॑न्तं । सर॑स्वन्तं । अव॑से । जो॒ह॒वी॒मि॒ ॥ ५२ ॥ २३ ॥

कया॑ । शु॒भा । सऽव॑यसः । सऽनी॑ळाः । स॒मा॒न्या । म॒रुतः॑ । सं । मि॒मि॒क्षुः॒ । कया॑ । म॒ती । कुतः॑ । आऽइ॑तासः । ए॒ते । अर्च॑न्ति । शुष्मं॑ । वृष॑णः । व॒सु॒ऽया ॥ १ ॥

कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त ।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥ २ ॥
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥ ३ ॥
ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ४ ॥
अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः ।
महोभिरेताँ उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥ ५ ॥ २४ ॥

---

क्व१ स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये।
अहं ह्यु१ग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥ ६ ॥
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥ ७ ॥
वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान्।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥ ८ ॥
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ९ ॥

---

क्व। स्या। वः। मरुतः। स्वधा। आसीत्। यत्। मां। एकं। सम्ऽअधत्त। अहिऽहत्ये। अहं। हि। उग्रः। तविषः। तुविष्मान्। विश्वस्य। शत्रोः। अनमं। वधस्नैः ॥ ६ ॥ भूरि। चकर्थ। युज्येभिः। अस्मे इति। समानेभिः। वृषभ। पौंस्येभिः। भूरीणि। हि। कृणवाम। शविष्ठ। इंद्र। क्रत्वा। मरुतः। यत्। वशाम ॥ ७ ॥ वधीं। वृत्रं। मरुतः। इंद्रियेण। स्वेन। भामेन। तविषः। बभूवान्। अहं। एताः। मनवे। विश्वऽचंद्राः। सुऽगाः। अपः। चकर। वज्रऽबाहुः ॥ ८ ॥ अनुत्तं। आ। ते। मघऽवन्। नकिः। नु। न। त्वाऽवान्। अस्ति। देवता। विदानः। न। जायमानः। नशते। न। जातः। यानि। करिष्या। कृणुहि। प्रऽवृद्ध ॥ ९ ॥

एक॑स्य चिन्मे वि॒भ्व१॒॑स्त्वोजो॒ या नु द॑धृ॒ष्वान्कृ॒णवै॑ मनी॒षा ।
अ॒हं ह्यु१॒॑ग्रो म॑रुतो॒ विदा॑नो॒ यानि॒ च्यव॒मिन्द्र॒ इदी॑श एषाम् ॥१० ॥२५॥

अमं॑दन्मा मरुतः॒ स्तोमो॒ अत्र॒ यन्मे॑ नरः॒ श्रुत्यं॒ ब्रह्म॑ च॒क्र ।
इन्द्रा॑य॒ वृष्णे॒ सुम॑खाय॒ मह्यं॒ सख्ये॒ सखा॑यस्त॒न्वे॑ त॒नूभिः॑ ॥ ११ ॥

ए॒वेदे॒ते प्रति॑ मा॒ रोच॑माना॒ अने॑द्यः॒ श्रव॒ एषो॒ दधा॑नाः ।
सं॒चक्ष्या॑ मरुतश्चं॒द्रव॑र्णा॒ अच्छा॑न्त मे छ॒दया॑था च नू॒नम् ॥ १२ ॥

को न्वत्र॑ मरुतो मामहे वः॒ प्र या॑तन॒ सखीँ॒रच्छा॑ सखायः ।
मन्मा॑नि चित्रा अपिवा॒तय॑न्त ए॒षां भू॑त॒ नवे॑दा म ऋ॒ताना॑म् ॥ १३ ॥

---

आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।

ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥ १४ ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥ २६ ॥ ३ ॥

॥ इति द्वितीयाष्टके तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

---

आ । यत् । दुवस्यात् । दुवसे । न । कारुः । अस्मान् । चक्रे । मान्यस्य । मेधा ।

ओ इति । सु । वर्त्त । मरुतः । विप्रं । अच्छ । इमा । ब्रह्माणि । जरिता । वः ।

अर्चत् ॥ १४ ॥ एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयं । गीः । मान्दार्यस्य । मान्यस्य ।

कारोः । आ । इषा । यासीष्ट । तन्वे । वयां । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽ-

दानुं ॥ १५ ॥ २६ ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाष्टके तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

## ॥ अथ द्वितीयाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ १६६ ॥ ऋषिः-अगस्त्यः । देवता-मरुतः । छन्दः-जगती ॥

॥१६६॥ तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥ १ ॥
नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥ २ ॥
यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥ ३ ॥
आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥ ४ ॥

---

॥ अथ द्वितीयाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

यत्त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥५॥१॥
यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥ ६ ॥
प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥ ७ ॥
शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात्पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥ ८ ॥
विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयोऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ॥ ९ ॥

---

यत् । त्वेषऽयामाः । नदयंत । पर्वतान् । दिवः । वा । पृष्ठं । नर्याः । अचुच्यवुः । विश्वः । वः । अज्मन् । भयते । वनस्पतिः । रथियंतीऽइव । प्र । जिहीते । ओषधिः ॥ ५ ॥ १ ॥ यूयं । नः । उग्राः । मरुतः । सुऽचेतुना । अरिष्टऽग्रामाः । सुऽमतिं । पिपर्तन । यत्र । वः । दिद्युत् । रदति । क्रिविःऽदती । रिणाति । पश्वः । सुधिताऽइव । बर्हणा ॥ ६ ॥ प्र । स्कंभऽदेष्णाः । अनवभ्रऽराधसः । अलातृणासः । विदथेषु । सुऽस्तुताः । अर्चंति । अर्कं । मदिरस्य । पीतये । विदुः । वीरस्य । प्रथमानि । पौंस्या ॥ ७ ॥ शतभुजिऽभिः । तं । अभिऽह्रुतेः । अघात् । पूःऽभिः । रक्षत । मरुतः । यं । आवत । जनं । यं । उग्राः । तवसः । विऽरप्शिनः । पाथन । शंसात् । तनयस्य । पुष्टिषु ॥ ८ ॥ विश्वानि । भद्रा । मरुतः । रथेषु । वः । मिथस्पृध्याऽइव । तविषाणि । आऽहिता । अंसेषु । आ । वः । प्रऽपथेषु । खादयः । अक्षः । वः । चक्रा । समया । वि । ववृते ॥ ९ ॥

भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान्व्यनु श्रियो धिरे ॥ १० ॥ २ ॥
महान्तो मह्ना विभ्वो विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः सम्मिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥ ११ ॥
तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥ १२ ॥
तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत ।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥ १३ ॥
येन दीर्घं मरुतः शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरासः ।
आ यत्ततनन्वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ॥ १४ ॥

---

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥ ३ ॥

॥ १६७ ॥ ऋषि –अगस्त्यः । देवता–इन्द्रः । छन्द –त्रिष्टुप् ॥

॥ १६७ ॥ सहस्रं त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः ।
सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥ १ ॥
आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः ।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥ २ ॥
मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥ ३ ॥
परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ४ ॥

---

एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयं । गीः । मांदार्यस्य । मान्यस्य । कारोः । आ । इषा । यासीष्ट । तन्वे । वयां । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ १५ ॥ ३ ॥
सहस्रं । ते । इंद्र । ऊतयः । नः । सहस्रं । इषः । हरिऽवः । गूर्तऽतमाः । सहस्रं । रायः । मादयध्यै । सहस्रिणः । उप । नः । यंतु । वाजाः ॥ १ ॥ आ । नः । अवःऽभिः । मरुतः । यांतु । अच्छ । ज्येष्ठेभिः । वा । बृहत्ऽदिवैः । सुऽमायाः । अध । यत् । एषां । निऽयुतः । परमाः । समुद्रस्य । चित् । धनयंत । पारे ॥ २ ॥
मिम्यक्ष । येषु । सुऽधिता । घृताची । हिरण्यऽनिर्निक । उपरा । न । ऋष्टिः । गुहा । चरंती । मनुषः । न । योषा । सभाऽवती । विदथ्याऽइव । सं । वाक् ॥ ३ ॥ परा । शुभ्राः । अयासः । यव्या । साधारण्याऽइव । मरुतः । मिमिक्षुः । न । रोदसी इति । अप । नुदंत । घोराः । जुषंत । वृधं । सख्याय । देवाः ॥ ४ ॥

जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
आ सूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥ ५ ॥ ४ ॥
आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।
अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥ ६ ॥
प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥ ७ ॥
पान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥ ८ ॥
नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ॥ ९ ॥

वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून्तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥ १० ॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥ ५ ॥

॥ १६८ ॥ ऋषिः-अगस्त्य । देवता-मरुत । छन्द -जगती ॥

॥१६८॥ यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे ।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥
वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥
सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥ ३ ॥

---

वयं । अद्य । इंद्रस्य । प्रेष्ठाः । वयं । श्वः । वोचेमहि । सऽमर्ये । वयं । पुरा । महि । च । नः । अनु । द्यून् । तत् । नः । ऋभुक्षाः । नरां । अनु । स्यात् ॥ १० ॥ एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयं । गीः । मांदार्यस्य । मान्यस्य । कारोः । आ । इषा । यासीष्ट । तन्वे । वयां । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ११ ॥ ५ ॥

यज्ञाऽयज्ञा । वः । समना । तुतुर्वणिः । धियंऽधियं । वः । देवऽयाः । ऊं इति । दधिध्वे । आ । वः । अर्वाचः । सुवितायं । रोदस्योः । महे । ववृत्यां । अवसे । सुवृक्तिऽभिः ॥ १ ॥ वव्रासः । न । ये । स्वऽजाः । स्वऽतवसः । इषं । स्वः । अभिऽजायंत । धूतयः । सहस्रियासः । अपां । न । ऊर्मयः । आसा । गावः । वंद्यासः । न । उक्षणः ॥ २ ॥ सोमासः । न । ये । सुताः । तृप्तऽअंशवः । हृत्ऽसु । पीतासः । दुवसः । न । आसते । आ । एषां । अंसेषु । रंभिणीऽइव । ररभे । हस्तेषु । खादिः । च । कृतिः । च । सं । दधे ॥ ३ ॥

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥ ७ ॥

॥ १६९ ॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप् ॥

॥१६९॥ महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरूता ।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥ १ ॥
अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥ २ ॥
अम्यक्सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥ ३ ॥

---

असूत । पृश्निः । महते । रणाय । त्वेषं । अयासां । मरुतां । अनीकं । ते । सप्सरासः । अजनयंत । अभ्वं । आत् । इत् । स्वधां । इषिरां । परि । अपश्यन् ॥ ९ ॥ एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयं । गीः । मांदार्यस्य । मान्यस्य । कारोः । आ । इषा । यासीष्ट । तन्वे । वयां । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ १० ॥ ७ ॥

महः । चित् । त्वं । इंद्र । यतः । एतान् । महः । चित् । असि । त्यजसः । वरूता । सः । नः । वेधः । मरुतां । चिकित्वान् । सुम्ना । वनुष्व । तव । हि । प्रेष्ठा ॥ १ ॥ अयुज्रन् । ते । इंद्र । विश्वऽकृष्टीः । विदानासः । निःऽसिधः । मर्त्यऽत्रा । मरुतां । पृत्सुतिः । हासमाना । स्वःऽमीळ्हस्य । प्रऽधनस्य । सातौ ॥ २ ॥ अम्यक् । सा । ते । इंद्र । ऋष्टिः । अस्मे इति । सनेमि । अभ्वं । मरुतः । जुनंति । अग्निः । चित् । हि । स्म । अतसे । शुशुक्वान् । आपः । न । द्वीपं । दधति । प्रयांसि ॥ ३ ॥

त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥ ४ ॥
त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिदृतायोः ।
ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥ ५ ॥ ८ ॥
प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन्महः पार्थिवे सदने यतस्व ।
अध यदेषां पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥ ६ ॥
प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैरृणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥ ७ ॥
त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥ ९ ॥

॥ १७० ॥ ऋषिः-अगस्त्यः-। देवता-इन्द्रः । छन्द-अनुष्टुप् ॥

॥ १७० ॥ न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥ १ ॥
किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥ २ ॥
किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।
विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥ ३ ॥
अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः ।
तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४ ॥
त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।
इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥ ५ ॥ १० ॥

---

न । नूनं । अस्ति । नो इति । श्वः । कः । तत् । वेद । यत् । अद्भुतं । अन्यस्य । चित्तं । अभि । संऽचरेण्यं । उत । आऽधीतं । वि । नश्यति ॥ १ ॥ किं । नः । इंद्र । जिघांससि । भ्रातरः । मरुतः । तव । तेभिः । कल्पस्व । साधुऽया । मा । नः । संऽअरणे । वधीः ॥ २ ॥ किं । नः । भ्रातः । अगस्त्य । सखा । सन् । अति । मन्यसे । विद्म । हि । ते । यथा । मनः । अस्मभ्यं । इत् । न । दित्ससि ॥ ३ ॥ अरं । कृण्वंतु । वेदिं । सं । अग्निं । इंधतां । पुरः । तत्र । अमृतस्य । चेतनं । यज्ञं । ते । तनवावहै ॥ ४ ॥ त्वं । ईशिषे । वसुऽपते । वसूनां । त्वं । मित्राणां । मित्रऽपते । धेष्ठः । इंद्र । त्वं । मरुत्ऽभिः । सं । वदस्व । अध । प्र । अशान । ऋतुऽथा । हवींषि ॥ ५ ॥ १० ॥

॥ १७१ ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-मरुत । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥१७१॥ प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ १ ॥
एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान्हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥ २ ॥
स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शम्भविष्ठः ।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ ३ ॥
अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥ ४ ॥

येन॒ मानां॑सश्चि॒तय॑न्त उ॒स्रा व्यु॑ष्टिषु॒ शव॑सा॒ शश्व॑तीनाम् ।
स नो॑ म॒रुद्भि॑र्वृषभ॒ श्रवो॑ धा उ॒ग्र उ॒ग्रेभि॒ः स्थवि॑रः सहो॒दाः ॥ ५ ॥
त्वं पा॑हीन्द्र॒ सही॑यसो॒ नॄन्भवा॑ म॒रुद्भि॒रव॑यातहेळाः ।
सु॒प्र॒के॒तेभि॑ः सास॒हिर्दधा॑नो वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ ६ ॥ ११ ॥

॥ १७२ ॥ ऋषि –अगस्त्य । देवता–मरुत । छन्द –गायत्री ॥

॥ १७२ ॥ चि॒त्रो वो॑ऽस्तु॒ याम॑श्चि॒त्र ऊ॒ती सु॑दानवः ।
मरु॑तो॒ अहि॑भानवः ॥ १ ॥
आ॒रे सा वः॑ सुदानवो॒ मरु॑त ऋञ्ज॒ती शरुः॑ ।
आ॒रे अश्मा॒ यमस्य॑थ ॥ २ ॥
तृ॒ण॒स्क॒न्दस्य॒ नु वि॒शः परि॑ वृङ्क्त सुदानवः ।
ऊ॒र्ध्वान्नः॑ कर्त जी॒वसे॑ ॥ ३ ॥ १२ ॥

---

येन॑ । मानां॑सः । चि॒तयं॑ते । उ॒स्राः । विऽउ॑ष्टिषु । शव॑सा । शश्व॑तीनां । सः । नः॒ । म॒रुत्ऽभिः॑ । वृ॒ष॒भ॒ । श्रवः॑ । धाः॒ । उ॒ग्रः । उ॒ग्रेभिः॑ । स्थवि॑रः । स॒हः॒ऽदाः ॥ ५ ॥ पा॒हि॒ । इं॒द्र॒ । सही॑यसः । नॄन् । भव॑ । म॒रुत्ऽभिः॑ । अव॑यातऽहेळाः । सु॒ऽप्र॒के॒तेभिः॑ । स॒स॒हिः । द॒धा॑नः । वि॒द्याम॑ । इ॒षं । वृ॒जनं॑ । जी॒रऽदा॑नुं ॥ ६ ॥ ११ ॥

चि॒त्रः । व॒ः । अ॒स्तु॒ । याम॑ः । चि॒त्रः । ऊ॒ती । सु॒ऽदा॒न॒वः॒ । मरु॑तः । अहि॑ऽभानवः ॥ १ ॥ आ॒रे । सा । व॒ः । सु॒ऽदा॒न॒वः॒ । मरु॑तः । ऋ॒ञ्ज॒ती । शरुः॑ । आ॒रे । अश्मा॑ । यं । अस्य॑थ ॥ २ ॥ तृ॒ण॒ऽस्कं॒दस्य॑ । नु । वि॒शः॑ । परि॑ । वृं॒क्त॒ । सु॒ऽदा॒न॒वः॒ । ऊ॒र्ध्वान् । नः॒ । क॒र्त॒ । जी॒वसे॑ ॥ ३ ॥ १२ ॥

॥ १७३ ॥ ऋषिः-अगस्त्यः । देवता-इन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥१७३॥ गायत्साम नभन्यं१ यथा वेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत्सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥ १ ॥
अर्चद्वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात् ।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥
नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक् ॥ ३ ॥
ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥ ४ ॥

तमु॑ ष्टुहीन्द्रं॒ यो ह॒ सत्वा॒ यः शूरो॑ म॒घवा॒ यो र॑थे॒ष्ठाः ।
प्र॒ती॒चश्चि॒द्योधी॑या॒न्वृष॑ण्वान्ववव्रु॒ष॑श्चि॒त्तम॑सो विह॒न्ता ॥ ५ ॥ १३ ॥
प्र यदि॒त्था म॑हि॒ना नृभ्यो॒ अस्त्यरं॒ रोद॑सी क॒क्ष्ये॒३ नास्मै॑ ।
सं वि॑व्य॒ इन्द्रो॑ वृ॒जनं॒ न भूमा॒ भर्ति॑ स्व॒धावाँ॑ ओप॒शमि॑व॒ द्याम् ॥ ६ ॥
स॒मत्सु॑ त्वा शूर स॒तामु॑रा॒णं प्र॑प॒थिन्त॑मं परितंस॒यध्यै॑ ।
स॒जोष॑स॒ इन्द्रं॒ मदे॑ क्षो॒णीः सू॒रिं चि॒द्ये अ॑नु॒मद॑न्ति॒ वाजैः॑ ॥ ७ ॥
ए॒वा हि ते॒ शं सव॑ना समु॒द्र आपो॒ यत्त॑ आ॒सु मद॑न्ति दे॒वीः ।
विश्वा॑ ते॒ अनु॒ जोष्या॑ भू॒द्गौः सू॒रीँश्चि॒द्यदि॑ धि॒षा वेषि॒ जना॑न् ॥ ८ ॥
असा॑म॒ यथा॑ सुष॒खाय॑ एन स्वभि॒ष्टयो॑ न॒रां न शंसैः॑ ।
अस॒द्यथा॑ न॒ इन्द्रो॑ वन्दने॒ष्ठास्तु॒रो न कर्म॒ नय॑मान उ॒क्था ॥ ९ ॥

---

तं । ऊं इति॑ । स्तु॒हि॒ । इन्द्र॑ं । यः । ह॒ । सत्वा॑ । यः । शूरः॑ । म॒घऽवा॑ । यः । र॒थे॒ऽस्थाः । प्र॒ती॒चः । चि॒त् । योधी॑यान् । वृष॑ण्ऽवान् । व॒व॒व्रुष॑ः । चि॒त् । तम॑सः । वि॒ऽह॒न्ता ॥ ५ ॥ १३ ॥ प्र । यत् । इ॒त्था । म॒हि॒ना । नृऽभ्यः॑ । अस्ति॑ । अर॑ं । रोद॑सी॒ इति॑ । क॒क्ष्ये॒३॒इति॑ । न । अ॒स्मै॒ । सं । वि॒व्ये॒ । इन्द्रः॑ । वृ॒जन॑ं । न । भूम॑ । भर्ति॑ । स्व॒धाऽवा॑न् । ओ॒प॒शंऽइ॑व । द्यां ॥ ६ ॥ स॒मत्ऽसु॑ । त्वा॒ । शू॒र॒ । स॒ता॒ । उ॒रा॒णं । प्र॒प॒थिन्ऽत॑मं । प॒रि॒ऽतं॒स॒यध्यै॑ । स॒ऽजोष॑सः । इन्द्र॑ं । मदे॑ । क्षो॒णीः । सू॒रिं । चि॒त् । ये । अ॒नु॒ऽमद॑न्ति । वाजैः॑ ॥ ७ ॥ ए॒व । हि । ते॒ । शं । सव॑ना । स॒मु॒द्रे । आपः॑ । यत् । ते॒ । आ॒सु । मद॑न्ति । दे॒वीः । विश्वा॑ । ते॒ । अनु॑ । जोष्या॑ । भू॒त् । गौः । सू॒रीन् । चि॒त् । यदि॑ । धि॒षा । वेषि॑ । जना॑न् ॥ ८ ॥ असा॑म । यथा॑ । सु॒ऽस॒खाय॑ः । ए॒न॒ । सु॒ऽअ॒भि॒ष्टय॑ः । न॒रां । न । शंसैः॑ । अस॑त् । यथा॑ । नः॒ । इन्द्रः॑ । व॒न्द॒ने॒ऽस्थाः । तु॒रः । नः । कर्म॑ । नय॑मानः । उ॒क्था ॥ ९ ॥

विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः

मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ॥ १० ॥ १४ ॥

यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन् ।

तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥ ११ ॥

मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।

महश्चिद्यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ १२ ॥

एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।

आ नो ववृत्याः सुविताय देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १३ ॥ १५ ॥

---

॥ १७४ ॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप् ॥

॥१७४॥ त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन्पाह्यसुर त्वमस्मान् ।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥
दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥
अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥
शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥

---

त्वं । राजा । इंद्र । ये । च । देवाः । रक्ष । नॄन् । पाहि । असुर । त्वं । अस्मान् । त्वं । सत्ऽपतिः । मघऽवा । नः । तरुत्रः । त्वं । सत्यः । वसवानः । सहःऽदाः ॥ १ ॥ दनः । विशः । इंद्र । मृध्रऽवाचः । सप्त । यत् । पुरः । शर्म । शारदीः । दर्त् । ऋणोः । अपः । अनवद्य । अर्णाः । यूने । वृत्रं । पुरुऽकुत्साय । रंधीः ॥ २ ॥ अजः । वृतः । इंद्र । शूरऽपत्नीः । द्यां । च । येभिः । पुरुऽहूत । नूनं । रक्षो इति । अग्निं । अशुषं । तूर्वयाणं । सिंहः । न । दमे । अपांसि । वस्तोः ॥ ३ ॥ शेषन् । नु । ते । इंद्र । सस्मिन् । योनौ । प्रऽशस्तये । पवीरवस्य । मह्ना । सृजत् । अर्णांसि । अव । यत् । युधा । गाः । तिष्ठत् । हरी इति । धृषता । मृष्ट । वाजान् ॥ ४ ॥

॥ १७४ ॥ ऋषि –अगस्त्य । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप् ॥

॥१७४॥ त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन्पाह्यसुर त्वमस्मान् ।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥
दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥
अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥
शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥

---

त्वं । राजा । इंद्र । ये । च । देवाः । रक्ष । नॄन् । पाहि । असुर । त्वं । अस्मान् । त्वं । सत्ऽपतिः । मघऽवा । नः । तरुत्रः । त्वं । सत्यः । वसवानः । सहःऽदाः ॥ १ ॥ दनः । विशः । इंद्र । मृध्रऽवाचः । सप्त । यत् । पुरः । शर्म । शारदीः । दर्त् । ऋणोः । अपः । अनवद्य । अर्णाः । यूने । वृत्रं । पुरुऽकुत्साय । रंधीः ॥ २ ॥ अजः । वृतः । इंद्र । शूरऽपत्नीः । द्यां । च । येभिः । पुरुऽहूत । नूनं । रक्षो इति । अग्निं । अशुषं । तूर्वयाणं । सिंहः । न । दमे । अपांसि । वस्तोः ॥ ३ ॥ शेषन् । नु । ते । इंद्र । सस्मिन् । योनौ । प्रऽशस्तये । पवीरवस्य । मह्ना । सृजत् । अर्णांसि । अव । यत् । युधा । गाः । तिष्ठत् । हरी इति । धृषता । मृष्ट । वाजान् ॥ ४ ॥

वह॒ कुत्स॑मिन्द्र॒ यस्मि॑ञ्चा॒कन्त्स्यू॑मन्यू॒ ऋ॒ज्रा वात॒स्याश्वा॑ ।
प्र सूर॑श्च॒क्रं वृ॑हता॒द॒भीके॒ऽभि स्पृधो॑ यासिष॒द्वज्र॑बाहुः ॥ ५ ॥ १६ ॥
ज॒घ॒न्वाँ इ॑न्द्र मि॒त्रेरू॑ञ्चो॒दप्र॑वृद्धो हरि॒वो अदा॑शून् ।
प्र ये पश्य॑न्नर्य॒मणं॑ स॒चायो॒स्त्वया॑ शू॒र्ता वह॑माना॒ अप॑त्यम् ॥ ६ ॥
रप॑त्क॒विरि॑न्द्रा॒र्कसा॑तौ॒ क्षां दा॒सायो॑प॒बर्ह॑णीं कः ।
कर॑त्ति॒स्रो म॒घवा॒ दानु॑चित्रा॒ नि दु॑र्यो॒णे कुय॑वाचं मृ॒धि श्रे॑त् ॥ ७ ॥
सना॒ ता त॑ इन्द्र॒ नव्या॒ आगुः॒ सहो॒ नभो॒ऽवि॑रणाय पू॒र्वीः ।
भि॒नत्पुरो॒ न भिदो॒ अदे॑वीर्न॒नमो॒ वध॒रदे॑वस्य पी॒योः ॥ ८ ॥
त्वं धुनि॑रिन्द्र॒ धुनि॑मतीॠ॒णोर॒पः सी॒रा न स्रव॑न्तीः ।
प्र यत्स॑मु॒द्रमति॑ शूर॒ पर्षि॑ पा॒रया॑ तु॒र्वशं॒ यदुं॑ स्व॒स्ति ॥ ९ ॥

---

वह॑ । कुत्स॑म् । इ॒न्द्र॒ । यस्मि॑न् । चा॒कन् । स्यू॒म॒न्यू इति॑ । ऋ॒ज्रा । वात॑स्य । अश्वा॑ । प्र । सूरः॑ । च॒क्रम् । वृ॒ह॒ता॒त् । अ॒भीके॑ । अ॒भि । स्पृधः॑ । या॒सि॒ष॒त् । वज्र॑ऽबाहुः ॥ ५ ॥ १६ ॥
ज॒घ॒न्वान् । इ॒न्द्र॒ । मि॒त्रेरू॑न् । चो॒दऽप्र॑वृद्धः । ह॒रि॒ऽवः॒ । अदा॑शून् । प्र । ये । पश्य॑न् । अ॒र्य॒मण॑म् । सचा॑ । आ॒योः । त्वया॑ । शू॒र्ताः । वह॑मानाः । अप॑त्यम् ॥ ६ ॥ रप॑त् । क॒विः । इ॒न्द्र॒ । अ॒र्कऽसा॑तौ । क्षाम् । दा॒साय॑ । उ॒प॒ऽबर्ह॑णीम् । क॒रिति॑ कः । कर॑त् । ति॒स्रः । म॒घऽवा॑ । दानु॑ऽचित्राः । नि । दु॒र्यो॒णे । कुय॑वाचम् । मृ॒धि । श्रे॒त् ॥ ७ ॥ सना॑ । ता । ते॒ । इ॒न्द्र॒ । नव्याः॑ । आ । अ॒गुः॒ । सहः॑ । नभः॑ । अवि॑ऽरणाय । पू॒र्वीः । भि॒नत् । पुरः॑ । न । भिदः॑ । अदे॑वीः । न॒नमः॑ । वधः॑ । अदे॑वस्य । पी॒योः ॥ ८ ॥ त्वम् । धुनिः॑ । इ॒न्द्र॒ । धुनि॑ऽमतीः । ऋ॒णोः॒ । अ॒पः । सी॒राः । न । स्रव॑न्तीः । प्र । यत् । स॒मु॒द्रम् । अति॑ । शू॒र॒ । पर्षि॑ । पा॒रय॑ । तु॒र्वश॑म् । यदु॑म् । स्व॒स्ति ॥ ९ ॥

त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता ।
स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥ १७ ॥

॥ १७५ ॥ ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥१७५॥ मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥
आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥ २ ॥
त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

---

त्वं । अस्माकं । इंद्र । विश्वध । स्याः । अवृकऽतमः । नरां । नृऽपाता । सः । नः । विश्वासां । स्पृधां । सहःऽदाः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ १० ॥ १७ ॥

मत्सि । अपायि । ते । महः । पात्रस्यऽइव । हरिऽवः । मत्सरः । मदः । वृषा । ते । वृष्णे । इंदुः । वाजी । सहस्रऽसातमः ॥ १ ॥ आ । नः । ते । गंतु । मत्सरः । वृषा । मदः । वरेण्यः । सहऽवान् । इंद्र । सानसिः । पृतनाषाट् । अमर्त्यः ॥ २ ॥ त्वं । हि । शूरः । सनिता । चोदयः । मनुषः । रथं । सहऽवान् । दस्युं । अव्रतं । ओषः । पात्रं । न । शोचिषा ॥ ३ ॥

सुपाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।

वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥

शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।

वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।

तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १८ ॥

॥ १७६ ॥ ऋषि –अगस्त्यः । देवता–इन्द्र । छन्द –अनुष्टुप् ॥

॥ १७६ ॥ मत्सि नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।

ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥

---

सुपाय । सूर्यं । कवे । चक्रं । ईशानः । ओजसा । वह । शुष्णाय । वधं । कुत्सं । वातस्य । अश्वैः ॥ ४ ॥ शुष्मिन्ऽतमः । हि । ते । मदः । द्युम्निन्ऽतमः । उत । क्रतुः । वृत्रऽघ्ना । वरिवःऽविदा । मंसीष्ठाः । अश्वऽसातमः ॥ ५ ॥ यथा । पूर्वेभ्यः । जरितृऽभ्यः । इंद्र । मयःऽइव । आपः । न । तृष्यते । बभूथ । तां । अनु । त्वा । निऽविदं । जोहवीमि । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ६ ॥ १८ ॥

मत्सि । नः । वस्यःऽइष्टये । इंद्रं । इंदो इति । वृषा । आ । विश । ऋघायमाणः । इन्वसि । शत्रुं । अंति । न । विंदसि ॥ १ ॥

तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा ॥ २ ॥
यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥
असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥
आवो यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत् ।
आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १९ ॥

---

तस्मिन् । आ । वेशय । गिरः । यः । एकः । चर्षणीनाम् । अनु । स्वधा । यं । उप्यते । यवं । न । चर्कृषत् । वृषा ॥ २ ॥ यस्य । विश्वानि । हस्तयोः । पञ्च । क्षितीनां । वसु । स्पाशयस्व । यः । अस्मऽध्रुक् । दिव्याऽइव । अशनिः । जहि ॥ ३ ॥ असुन्वंतं । समं । जहि । दुःऽनशं । यः । न । ते । मयः । अस्मभ्यं । अस्य । वेदनं । दद्धि । सूरिः । चित् । ओहते ॥ ४ ॥ आवः । यस्य । द्विऽबर्हसः । अर्केषु । सानुषक् । असत् । आजौ । इंद्रस्य । इंदो इति । प्र । आवः । वाजेषु । वाजिनं ॥ ५ ॥ यथा । पूर्वेभ्यः । जरितृऽभ्यः । इंद्र । मयःऽइव । आपः । न । तृष्यते । बभूथ । तां । अनु । त्वा । निऽविदं । जोहवीमि । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ६ ॥ १९ ॥

॥ १७७ ॥ ऋषि –अगस्त्य । देवता–इन्द्र । छन्द –त्रिष्टुप् ॥

॥१७७॥ आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥ १ ॥
ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥ २ ॥
आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥ ३ ॥
अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥ ४ ॥

---

आ । चर्षणिऽप्राः । वृषभः । जनानां । राजा । कृष्टीनां । पुरुऽहूतः । इंद्रः । स्तुतः । श्रवस्यन् । अवसा । उप । मद्रिक् । युक्त्वा । हरी इति । वृषणा । आ । याहि । अर्वाङ् ॥ १ ॥ ये । ते । वृषणः । वृषभासः । इंद्र । ब्रह्मऽयुजः । वृषऽरथासः । अत्याः । तान् । आ । तिष्ठ । तेभिः । आ । याहि । अर्वाङ् । हवामहे । त्वा । सुते । इंद्र । सोमे ॥ २ ॥ आ । तिष्ठ । रथं । वृषणं । वृषा । ते । सुतः । सोमः । परिऽसिक्ता । मधूनि । युक्त्वा । वृषऽभ्यां । वृषभ । क्षितीनां । हरिऽभ्यां । याहि । प्रऽवता । उप । मद्रिक् ॥ ३ ॥ अयं । यज्ञः । देवऽयाः । अयं । मियेधः । इमा । ब्रह्माणि । अयं । इंद्र । सोमः । स्तीर्णं । बर्हिः । आ । तु । शक्र । प्र । याहि । पिब । निऽसद्य । वि । मुच । हरी इति । इह ॥ ४ ॥

ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥ २० ॥

॥ १७८ ॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–इन्द्र । छन्द–त्रिष्टुप् ॥

॥१७८॥ यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥ १ ॥
न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ २ ॥
जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥ ३ ॥

---

ओ इति । सुऽस्तुतः । इन्द्र । याहि । अर्वाङ् । उप । ब्रह्माणि । मान्यस्य । कारोः ।
विद्याम । वस्तोः । अवसा । गृणन्तः । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ ५ ॥ २० ॥

यत् । ह । स्या । ते । इन्द्र । श्रुष्टिः । अस्ति । यया । बभूथ । जरितृऽभ्यः । ऊती । मा । नः । कामम् । महयन्तम् । आ । धक् । विश्वा । ते । अश्याम् । परि । आपः । आयोः ॥ १ ॥ न । घ । राजा । इन्द्रः । आ । दभत् । नः । या । नु । स्वसारा । कृणवन्त । योनौ । आपः । चित् । अस्मै । सुऽतुकाः । अवेषन् । गमत् । नः । इन्द्रः । सख्या । वयः । च ॥ २ ॥ जेता । नृऽभिः । इन्द्रः । पृत्ऽसु । शूरः । श्रोता । हवम् । नाधमानस्य । कारोः । प्रऽभर्ता । रथम् । दाशुषः । उपाके । उत्ऽयन्ता । गिरः । यदि । च । त्मना । भूत् ॥ ३ ॥

एषा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।
समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥
त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

॥ १७९ ॥ ऋषि.-अगस्त्य । देवता-रति । छन्द -त्रिष्टुप् ॥

॥ १७९ ॥ पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥ १ ॥
ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २ ॥

---

एव । नृऽभिः । इंद्रः । सुऽश्रवस्या । प्रऽखादः । पृक्षः । अभि । मित्रिणः । भूत् ।
सऽमर्ये । इषः । स्तवते । विऽवाचि । सत्राऽकरः । यजमानस्य । शंसः ॥ ४ ॥
त्वया । वयं । मघऽवन् । इंद्र । शत्रून् । अभि । स्याम । महतः । मन्यमानान् । त्वं ।
त्राता । त्वं । ऊं इति । नः । वृधे । भूः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ५ ॥ २१ ॥

पूर्वीः । अहं । शरदः । शश्रमाणा । दोषाः । वस्तोः । उषसः । जरयंतीः ।
मिनाति । श्रियं । जरिमा । तनूनां । अपि । ऊं इति । नु । पत्नीः । वृषणः ।
जगम्युः ॥ १ ॥ ये । चित् । हि । पूर्वे । ऋतऽसापः । आसन् । साकं । देवेभिः ।
अवदन् । ऋतानि । ते । चित् । अव । असुः । नहि । अंतं । आपुः । सं । ऊं
इति । नु । पत्नीः । वृषऽभिः । जगम्युः ॥ २ ॥

ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥ २० ॥

॥ १७८ ॥ ऋषि –अगस्त्य । देवता–इन्द्र । छन्द –त्रिष्टुप् ॥

॥१७८॥ यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥ १ ॥
न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ २ ॥
जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥ ३ ॥

---

ओ इति । सुऽस्तुतः । इंद्र । याहि । अर्वाङ् । उप । ब्रह्माणि । मान्यस्य । कारोः ।
विद्याम । वस्तोः । अवसा । गृणंतः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ५ ॥ २० ॥

यत् । ह । स्या । ते । इंद्र । श्रुष्टिः । अस्ति । यया । बभूथ । जरितृऽभ्यः ।
ऊती । मा । नः । कामं । महयंतं । आ । धक् । विश्वा । ते । अश्यां । परि ।
आपः । आयोः ॥ १ ॥ न । घ । राजा । इंद्रः । आ । दभन् । नः । या । नु ।
स्वसारा । कृणवंत । योनौ । आपः । चित् । अस्मै । सुऽतुकाः । अवेषन् । गमंत् ।
नः । इंद्रः । सख्या । वयः । च ॥ २ ॥ जेता । नृऽभिः । इंद्रः । पृत्ऽसु । शूरः ।
श्रोता । हवं । नाधमानस्य । कारोः । प्रऽभर्ता । रथं । दाशुषः । उपाके । उत्ऽयंता ।
गिरः । यदि । च । त्मना । भूत् ॥ ३ ॥

एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।
समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥
त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

॥ १७९ ॥ ऋषि.–अगस्त्य । देवता–रति । छन्द –त्रिष्टुप् ॥

॥ १७९ ॥ पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥ १ ॥
ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २ ॥

---

एव । नृऽभिः । इंद्रः । सुऽश्रवस्या । प्रऽखादः । पृक्षः । अभि । मित्रिणः । भूत् । सऽमर्ये । इषः । स्तवते । विऽवाचि । सत्राऽकरः । यजमानस्य । शंसः ॥ ४ ॥ त्वया । वयं । मघऽवन् । इंद्र । शत्रून् । अभि । स्याम । महतः । मन्यमानान् । त्वं । त्राता । त्वं । ऊं इति । नः । वृधे । भूः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ५ ॥ २१ ॥

पूर्वीः । अहं । शरदः । शश्रमाणा । दोषाः । वस्तोः । उषसः । जरयंतीः । मिनाति । श्रियं । जरिमा । तनूनां । अपि । ऊं इति । नु । पत्नीः । वृषणः । जगम्युः ॥ १ ॥ ये । चित् । हि । पूर्वे । ऋतऽसापः । आसन् । साकं । देवेभिः । अवदन् । ऋतानि । ते । चित् । अव । असुः । नहि । अंतं । आपुः । सं । ऊं इति । नु । पत्नीः । वृषऽभिः । जगम्युः ॥ २ ॥

न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥
नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥ ४ ॥
इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥
अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः ।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥ ६ ॥ २२ ॥ २३ ॥

---

न । मृषा । श्रान्तं । यत् । अवन्ति । देवाः । विश्वाः । इत् । स्पृधः । अभि । अश्न-वाव । जयाव । इत् । अत्र । शतऽनीथं । आजिं । यत् । सम्यञ्चा । मिथुनौ । अभि । अजाव ॥ ३ ॥ नदस्य । मा । रुधतः । कामः । आ । अगन् । इतः । आऽजातः । अमुतः । कुतः । चित् । लोपामुद्रा । वृषणं । निः । रिणाति । धीरं । अधीरा । धयति । श्वसन्तं ॥ ४ ॥ इमं । नु । सोमं । अन्तितः । हृत्ऽसु । पीतं । उप । ब्रुवे । यत् । सीं । आगः । चकृम । तत् । सु । मृळतु । पुलुऽकामः । हि । मर्त्यः ॥ ५ ॥ अगस्त्यः । खनमानः । खनित्रैः । प्रऽजां । अपत्यं । बलं । इच्छमानः । उभौ । वर्णौ । ऋषिः । उग्रः । पुपोष । सत्याः । देवेषु । आऽशिषः । जगाम ॥ ६ ॥ २२ ॥ २३ ॥

## ॥ चतुर्विंशोऽनुवाकः ॥

॥ १८० ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-अश्विनौ । छन्द-त्रिष्टुप् ।

॥१८०॥ युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां पर्यर्णांसि दीयत् ।
हिरण्ययां वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥ १ ॥
युवमत्यस्याव नक्षथो यद्विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः ।
स्वसा यद्वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥ २ ॥
युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।
अन्तर्यद्वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥ ३ ॥
युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रयेऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद्वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥ ४ ॥

---

युवोः । रजांसि । सुऽयमासः । अश्वाः । रथः । यत् । वां । परि । अर्णांसि । दीयत् । हिरण्ययाः । वां । पवयः । प्रुषायन् । मध्वः । पिबंतौ । उपसः । सचेथे इति ॥ १ ॥ युवं । अत्यस्य । अव । नक्षथः । यत् । विऽपत्मनः । नर्यस्य । प्रऽयज्योः । स्वसा । यत् । वां । विश्वगूर्ती इति विश्वऽगूर्ती । भराति । वाजाय । ईट्टे । मधुऽपौ । इषे । च ॥ २ ॥ युवं । पयः । उस्रियायां । अधत्तं । पक्वं । आमायां । अव । पूर्व्यं । गोः । अंतः । यत् । वनिनः । वां । ऋतप्सू इत्यृतऽप्सू । ह्वारः । न । शुचिः । यजंते । हविष्मान् ॥ ३ ॥ युवं । ह । घर्मं । मधुऽमंतं । अत्रये । अपः । न । क्षोदः । अवृणीतं । एषे । तत् । वां । नरौ । अश्विना । पश्वःऽइष्टिः । रथ्याऽइव । चक्रा । प्रति । यंति । मध्वः ॥ ४ ॥

आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥ ५ ॥ २३ ॥
नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरंधिम् ।
प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ६ ॥
वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।
अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥ ७ ॥
युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत्सहस्रैः ॥ ८ ॥

---

आ । वां । दानाय । ववृतीय । दस्रा । गोः । ओहेन । तौग्र्यः । न । जिव्रिः । अपः । क्षोणी इति । सचते । माहिना । वां । जूर्णः । वां । अक्षुः । अंहसः । यजत्रा ॥ ५ ॥ २३ ॥ नि । यत् । युवेथे इति । निऽयुतः । सुदानू इति सुऽदानू । उप । स्वधाभिः । सृजथः । पुरंऽधिं । प्रेषत् । वेषत् । वातः । न । सूरिः । आ । महे । ददे । सुऽव्रतः । न । वाजं ॥ ६ ॥ वयं । चित् । हि । वां । जरितारः । सत्याः । विपन्यामहे । वि । पणिः । हितऽवान् । अध । चित् । हि । स्म । अश्विनौ । अनिन्द्या । पाथः । हि । स्म । वृषणौ । अंतिऽदेवं ॥ ७ ॥ युवां । चित् । हि । स्म । अश्विनौ । अनु । द्यून् । विऽरुद्रस्य । प्रऽस्रवणस्य । सातौ । अगस्त्यः । नरां । नृषु । प्रऽशस्तः । काराधुनीऽइव । चितयत् । सहस्रैः ॥ ८ ॥

प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्यन्द्रा याथो मनुषो न होता ।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ९ ॥
तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥ २४ ॥

॥ १८१ ॥ ऋषि –अगस्त्य । देवता–अश्विनौ । छन्द –त्रिष्टुप् ॥

॥१८१॥ कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम् ।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम् ॥ १ ॥
आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः ।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥ २ ॥
आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः ।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहम्पूर्वो यजतो धिष्ण्या यः ॥ ३ ॥

---

प्र । यत् । वहेथे इति । महिना । रथस्य । प्र । स्यन्द्रा । याथः । मनुषः । न । होता । धत्तं । सूरिऽभ्यः । उत । वा । सुऽअश्व्यं । नासत्या । रयिऽसाचः । स्याम ॥ ९ ॥ तं । वां । रथं । वयं । अद्य । हुवेम । स्तोमैः । अश्विना । सुविताय । नव्यं । अरिष्टऽनेमिं । परि । द्यां । इयानं । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ १० ॥ २४ ॥

कत् । ऊं इति । प्रेष्ठौ । इषां । रयीणां । अध्वर्यंता । यत् । उत्ऽनिनीथः । अपां । अयं । वां । यज्ञः । अकृत । प्रऽशस्तिं । वसुधिती इति वसुऽधिती । अवितारा । जनानां ॥ १ ॥ आ । वां । अश्वासः । शुचयः । पयःऽपाः । वातऽरंहसः । दिव्यासः । अत्याः । मनःऽजुवः । वृषणः । वीतऽपृष्ठाः । आ । इह । स्वऽराजः । अश्विना । वहंतु ॥ २ ॥ आ । वां । रथः । अवनिः । न । प्रवत्वान् । सृप्रऽवंधुरः । सुविताय । गम्याः । वृष्णः । स्थातारा । मनसः । जवीयान् । अहंऽपूर्वः । यजतः । धिष्ण्या । यः ॥ ३ ॥

इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा३नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥ ४ ॥
प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥ ५ ॥ २५ ॥
प्र वाँ शरद्वान्वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् ।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥ ६ ॥
असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुतावतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

---

इहऽइह । जाता । सं । अवावशीतां । अरेपसा । तन्वा । नामऽभिः । स्वैः । जिष्णुः । वां । अन्यः । सुऽमखस्य । सूरिः । दिवः । अन्यः । सुऽभगः । पुत्रः । ऊहे ॥ ४ ॥ प्र । वां । निऽचेरुः । ककुहः । वशान् । अनु । पिशंगऽरूपः । सदनानि । गम्याः । हरी इति । अन्यस्य । पीपयंत । वाजैः । मथ्ना । रजांसि । अश्विना । वि । घोषैः ॥ ५ ॥ २५ ॥ प्र । वां । शरत्ऽवान् । वृषभः । न । निष्षाट् । पूर्वीः । इषः । चरति । मध्वः । इष्णन् । एवैः । अन्यस्य । पीपयंत । वाजैः । वेषंतीः । ऊर्ध्वाः । नद्यः । नः । आ । अगुः ॥ ६ ॥ असर्जि । वां । स्थविरा । वेधसा । गीः । बाळ्हे । अश्विना । त्रेधा । क्षरंती । उपऽस्तुतौ । अवतं । नाधमानं । यामन् । अयामन् । शृणुतं । हवं । मे ॥ ७ ॥

उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८ ॥
युवां पूषेवाश्विना पुरंधिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ९ ॥ २६ ॥

। १८२ ॥ ऋषि -अगस्त्य । देवता—अश्विनौ । छ द —जगती ॥

॥१८२॥ अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः ।
धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १ ॥
इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥ २ ॥

---

उत । स्या । वा । रुशतः । वप्सः । गीः । त्रिऽबर्हिषि । सदसि । पिन्वते । नॄन् । वृषा । वां । मेघः । वृषणा । पीपाय । गोः । न । सेके । मनुषः । दशस्यन् ॥ ८ ॥ युवां । पूषाऽइव । अश्विना । पुरंऽधिः । अग्निं । उषां । न । जरते । हविष्मान् । हुवे । यत् । वां । वरिवस्या । गृणानः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ९ ॥ २६ ॥

अभूत् । इदं । वयुनं । ओ इति । सु । भूषत । रथः । वृषण्ऽवान् । मदत । मनीषिणः । धियंऽजिन्वा । धिष्ण्या । विश्पलावसू इति । दिवः । नपाता । सुऽकृते । शुचिऽव्रता ॥ १ ॥ इन्द्रऽतमा । हि । धिष्ण्या । मरुत्ऽतमा । दस्रा । दंसिष्ठा । रथ्या । रथिऽतमा । पूर्णं । रथं । वहेथे इति । मध्वः । आऽचितं । तेन । दाश्वांसं । उप । याथः । अश्विना ॥ २ ॥

किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३ ॥
जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।
वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥
युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥ ५ ॥ २७ ॥
अवविद्धं तौग्र्यमप्स्वन्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥ ६ ॥

---

किं । अत्र । दस्रा । कृणुथः । किं । आसाथे इति । जनः । यः । कः । चित् । अहविः । महीयते । अति । क्रमिष्टं । जुरतं । पणेः । असुं । ज्योतिः । विप्राय । कृणुतं । वचस्यवे ॥ ३ ॥ जंभयतं । अभितः । रायतः । शुनः । हतं । मृधः । विदथुः । तानि । अश्विना । वाचंऽवाचं । जरितुः । रत्निनीं । कृतं । उभा । शंसं । नासत्या । अवतं । मम ॥ ४ ॥ युवं । एतं । चक्रथुः । सिंधुषु । प्लवं । आत्मन्ऽवंतं । पक्षिणं । तौग्र्याय । कं । येन । देवऽत्रा । मनसा । निःऽऊहथुः । सुऽपप्तनि । पेतथुः । क्षोदसः । महः ॥ ५ ॥ २७ ॥ अवऽविद्धं । तौग्र्यं । अप्ऽसु । अंतः । अनारंभणे । तमसि । प्रऽविद्धं । चतस्रः । नावः । जठलस्य । जुष्टाः । उत् । अश्विऽभ्यां । इषिताः । पारयंति ॥ ६ ॥

कः स्विंद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषंस्वजत् ।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमंताय कम् ॥ ७ ॥
तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥ २८ ॥

॥ १८३ ॥ ऋषि –अगस्त्य. । देवता–अश्विनौ । छन्द –त्रिष्टुप् ॥

॥१८३॥ तं युंञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥ १ ॥
सुवृद्रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥ २ ॥

---

कः । स्वित् । वृक्षः । निःऽस्थितः । मध्ये । अर्णसः । यं । तौग्र्यः । नाधितः । परिऽअसंस्वजत् । पर्णा । मृगस्य । पतरोःऽइव । आऽरभे । उत् । अश्विना । ऊहथुः । श्रोमंताय । कं ॥ ७ ॥ तत् । वां । नरा । नासत्यौ । अनु । स्यात् । यत् । वां । मानासः । उचथं । अवोचन् । अस्मात् । अद्य । सदसः । सोम्यात् । आ । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ८ ॥ २८ ॥

तं । युंजाथां । मनसः । यः । जवीयान् । त्रिऽबंधुरः । वृषणा । यः । त्रिऽचक्रः । येन । उपऽयाथः । सुऽकृतः । दुरोणं । त्रिऽधातुना । पतथः । विः । न । पर्णैः ॥ १ ॥ सुऽवृत् । रथः । वर्तते । यन् । अभि । क्षां । यत् । तिष्ठथः । क्रतुऽमंता । अनु । पृक्षे । वपुः । वपुष्या । सचतां । इयं । गीः । दिवः । दुहित्रा । उषसा । सचेथे इति ॥ २ ॥

आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ३ ॥
मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥ ४ ॥
युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥ ५ ॥
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ २९ ॥ ४ ॥

---

आ । तिष्ठतं । सुऽवृतं । यः । रथः । वां । अनु । व्रतानि । वर्तते । हविष्मान् ।
येन । नरा । नासत्या । इषयध्यै । वर्तिः । याथः । तनयाय । त्मने । च ॥ ३ ॥
मा । वां । वृकः । मा । वृकीः । आ । दधर्षीत् । मा । परि । वर्क्तं । उत । मा ।
अति । धक्तं । अयं । वां । भागः । निऽहितः । इयं । गीः । दस्रौ । इमे । वां ।
निऽधयः । मधूनां ॥ ४ ॥ युवां । गोतमः । पुरुऽमीळ्हः । अत्रिः । दस्रा । हवते ।
अवसे । हविष्मान् । दिशं । न । दिष्टां । ऋजुयाऽइव । यंता । आ । मे । हवं ।
नासत्या । उप । यातं ॥ ५ ॥ अतारिष्म । तमसः । पारं । अस्य । प्रति । वां ।
स्तोमः । अश्विनौ । अधायि । आ । इह । यातं । पथिऽभिः । देवऽयानैः । विद्याम ।
इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ६ ॥ २९ ॥

इति द्वितीयाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

प्रथम अष्टक । प्रथम मण्डल ।

# ॥ ऋग्वेद ॥

प्रथम अध्याय ] [ प्रथम अनुवाक ]

॥ १ ॥ १–९ मधुच्छन्दा ऋषि ॥ अग्नि देवता ॥

अग्नि यज्ञ का अग्रणी है। यज्ञ का प्रमुख देव भी वही है। यज्ञ के हविर्भाग को इन देवताओं को पहुंचानेवाला सन्माननीय आचार्य भी वही है। उनके पास असंख्य रत्नों की अमूल्य निधि है। इस लिये ऐसे अग्निदेव को मैं भक्तिपुर.सर स्तवन करता हूं। १

पूर्व कालीन ऋषि प्रेम से इन अग्नि की स्तुति करते थे। और अर्वाचीन ऋषि भी उनके स्तवन को सर्वथैव योग्य समझते हैं। हमारे यज्ञ मे वह समस्त देवताओ को ले आते है। २

इन्ही अग्नि के कारण भक्तो को वैभव प्राप्त होता है। और वह वैभव भी कैसा, कि जो दिन प्रति दिन वृद्धिगत होता जाता है। वीरश्रेष्ठ पुरुषो को ही जो जयश्री प्राप्त हो सकती है वही जयश्री अग्नि की कृपा से पूजको को प्राप्त होती है। ३

हे अग्निदेव, जिस यज्ञ पर चारो ओर आपकी दृष्टि रहती है उसी यज्ञ को सब देव ग्रहण करते है। ४

सब देवो को उनके हविर्भाग अग्निद्वारा ही प्राप्त होते है। बुद्धिशाली पण्डितो को ज्ञानसामर्थ्य उन्हीसे प्राप्त होता है। उनके दिये हुए वर नि.संशय सफल होते ही है। कोई भक्त चाहे कितने ही स्थानो पर उनसे प्रार्थना करे, उसकी प्रार्थना उनके कानो तक नही पहुचे, यह असभव है। ऐसे अग्नि देवसमुदाय के साथ यहां पधारे हुए हैं। ५ (१)

हे अग्निदेव, हे अगिरस्, अपने उपासको को आप जो मङ्गल आशीर्वचन देगे, वह अवश्य ही सत्य होगा। इसमे तनिक भी शङ्का नही। ६

हे अग्निदेव, नित्य, रात और दिन, अन्त.करण से आपकी वंदना करता हुआ मैं आपके चरणों का आश्रय करता हूं। ७

क्यों कि प्रत्येक पुण्ययज्ञ में आप विराजमान होते है। सब विधियो का रक्षण करनेवाले आप ही है। आपका तेज अत्यंत देदीप्यमान है। आप यज्ञ मे जब स्थित होते है तभी आपको असीम आनन्द प्राप्त होता है। ८

हे अग्निदेव, हम आपके बच्चे है। हमारा लाड प्यार आप उत्तम रीति से पिता समान कीजिये। हमारे पास से दूर मत हो। इसी मे हमारा मङ्गल है। ९ (२)

## सूक्त २

मधुच्छन्दा ऋषि ॥ देवता, १-३ वायु, ४-६ इन्द्रवायु, ७-९ मित्रावरुण ॥

हे दर्शनीय वायुदेव, आप आइये। ये सोमरस हमने आप ही के लिये तय्यार करके रखे है। इन का सेवन कीजिये और हमारी प्रार्थना सुनिये। १

यागकाल के उत्तम ज्ञानी और स्तोत्रप्रबंध करनेवाले विद्वान् सोमरस सिद्ध करके आपका महत्व सुंदर सुंदर स्तोत्रोद्वारा गाते है। २

आपका शब्द विश्वसंचारी है। उसके सुनने से ही हमारी सब कामनाएं परिपूर्ण हो जाती है। आपकी सोमपान की इच्छा होते ही आपका शब्द आपके भक्तो के पास पहूंच जाता है। ३

हे इंद्रवायु, यहां सोमरस सिद्ध करके रखे हुए है। हमारे लिये वरप्रसाद ... आइये। इन सोमरसो की भी ऐसी इच्छा है कि आप उनका सेवन करे। ४

हे वायुदेव, वेगसामर्थ्य आपका और इन्द्र का वैभव है। आप दोनो ही शीघ्रतापूर्वक पधारिये। क्यो कि आप जानते ही है कि सोमरसो की कैसी रुचि है। ५ (३)

हे वीरश्रेष्ठ, इन सोमरसो को जिनको मैने भक्तिपूर्वक तय्यार किया है, पान करनेके लिये आप और इन्द्र दोनो ही पधारिये। ६

पवित्र कार्यो मे जिनका सामर्थ्य का आधार है, ऐसे मित्र को मै निमंत्रण करता हूं। दुष्टो को नष्ट करनेवाले जो वरुण है उनको भी मै भक्तिपूर्वक बुलाता हूं। उन दोनो की इच्छा से ही पृथ्वी पर पर्जन्यवृष्टि होती है। ७

विश्वके नियमो का पालन मित्र और वरुण के कारण ही होता है। और वे स्वयं भी उन नियमो के पालन करनेको श्रेष्ठ मानते है। वे अपनी सामर्थ्य को भी धर्मनीति से काम मे लाते है। ८

सर्वोपकारी और सर्वव्यापी मित्र और वरुण की बुद्धिसंपन्नता अपूर्व है। उनका बल कृतिरूपसे प्रगट होता है। ९ ( ४ )

## सूक्त ३

मधुच्छन्दा ऋषि ॥ देवता, १–३ अश्वी, ४–६ इद्र, ७–९ विश्वेदेव, १०–१२ सरस्वती ॥

हे अश्विन, दानकर्म से आपका हाथ आर्द्र हुवा है। जगत् मे जिसको शुभ कहते है उसके स्वामी आपही है। असंख्य भक्तो को आपही का आधार है। हमारे हवी को कृपापूर्वक स्वीकार कीजिये। १

हे अश्विन, आपके अनेक अद्भुत काम हमको मालूम है। आपका शौर्य जगप्रसिद्ध है और आपका धैर्य अप्रतिम है। हमारी स्तुति को आप कृपापूर्वक स्वीकार कीजिये। २

हे सत्यस्वरूप अश्विने, आप क्लेशनिवारक कहकर प्रसिद्ध है। आप भीषण पराक्रम करनेवाले है। आप यहां पधारिये। क्यो कि यह देखिये, हमने दर्भ के अग्र वगैरह निकाल कर और स्वादिष्ट पदार्थ मिश्रण करके, सोमरसो को तय्यार कर रखा है। ३

हे इन्द्र, आपकी कान्ति अलौकिक है। यहां आइये। ये सोमरस हमने आपके वास्ते उङ्गलिओ से निचोडकर रखे है। ये सदा ही शुद्ध है। ४

हे इन्द्र, वड़े वडे विद्वानो ने आपकी स्तुति की है और मै भी आपको भक्तिपूर्वक बुलाता हू। इस लिये मेरी प्रार्थना स्वीकार करनेके वास्ते आप यहां आइये। मैं आपकी अर्चना करनेवाला हू और ये सोमरस मैने सिद्ध करके रखे हुए है। ५

पीतवर्ण के अश्व पर आरूढ होनेवाले हे इन्द्रदेव, हमारे स्तवनको अङ्गिकार करनेके लिये आप यहा शीघ्र पधारिये और हमारे इन सोमरसो से संतुष्ट हो। ६ ( ५ )

हे विश्वे देवगण, आप जगत् की रक्षा करनेवाले और अखिल प्राणिमात्र का

पोषण करनेवाले है। मैं आप को हविर्भाग अर्पण करता हूं इसलिये आप यहां
आइये। आपकी औदार्यबुद्धि सर्व प्रसिद्ध है। ७

हे विश्वे देवगण, जगत् की रक्षा आप ही करते है। जैसी उत्सुकतासे, गौं
सायंकाल को घर की ओर दौड़ती है, वैसी ही उत्सुकता से आप हमारा सोम ग्रहण
करनेके लिये यहां आइये। ८

सब के चिन्ता रखनेवाले विश्वदेवों ने हमारे हवीको स्वीकार किया है। उनकी
माया अतर्क्य है। वे किसीका द्रोह नहीं करते, और उनका अहित करनेकी सामर्थ्य
भी किसी मे नहीं है। ९

जगत् को पावन करनेवाली सरस्वती हमारे यज्ञ के हविर्भाग की इच्छा प्रेमसे करे
का बुद्धिसामर्थ्य भी अपार है। १०

सत्य भाषण मे माधुर्य लानेवाली यही है, और उत्तम विचारों को उत्पन्न करने-
वाली भी यही है। यही सरस्वती हमारे यज्ञ को स्वीकार करती है। ११

वह अपने प्रकाश से ज्ञान के महासागर की स्पष्ट कल्पना हमको कर देती है।
इस संसार मे जहां जहां बुद्धि पाई जाती है वहां साम्राज्य करनेवाली देवी भी
यही है। १२ (३)

# अनुवाक २.

## सूक्त ४

मधुच्छन्दा ऋषि ॥ देवता, इंद्र ॥

उत्तम प्रकार के अन्न अर्पण करनेसे जैसे गौ प्रसन्न होकर भरपूर दूध देनेको
तय्यार होती है उसी तरह आप हमसे भी प्रसन्न हो, इस लिये हम सत्यही आपके
हवि अर्पण करते है। यह सुंदर विश्व आप ही ने उत्पन्न किया है। १

इन हमारे सोमरसों के हवि ग्रहण करनेको आप यहां आइये। आपको सोम
रस बहुत प्रिय है, इस लिये हमारे इस सोमरस को चाखिये। आपका वैभव अपार है
आपके प्रसन्न होनेसे गोधनादि ऐश्वर्य सहज ही प्राप्त होता है। २

आपका अन्तःकरण तो दयाशील है ही, पर अपने अन्तःकरणके अन्तर्भाग
की भी हमको पहचान होने दीजिये। हमको अपनेसे दूर मत कीजिये। आप
यहां पधारिये। ३

इन्द्र बुद्धिशाली, अजेय, और प्रज्ञावान है, तुझको अपने अत्यंत प्रिय से प्रिय मित्र से भी अधिक है, उनके पास जा कर जो मागना हो सो मांग। ४

इंद्र पर श्रद्धा रखने से कल्याण के इतर मार्ग तुम्हारे लिये वंद हो जायंगे ऐसा हमारे निंदक चाहे तो भले ही कहे, ५ (७)

अथवा आपके भक्त हमारे उपर ऐसे उद्गार ही निकालें कि आपकी भक्ति के कारण हम वडे भाग्यवान् हैं, परंतु हे अघटित कृत्य करनेवाले इंद्रदेव, हमारा निश्चय तो यही है कि हम आपके सौख्यमय आश्रय के नीचे रहेगे। ६

सर्वव्यापी इंद्र को सोमरस अर्पण करो। सोमरसपान शरीर के सब अङ्गो मे नयी स्फूर्ति उत्पन्न करनेवाला है। सोमरस ही यज्ञ की शोभा है। शूरो को पूरा संतोष इसी से होता है। इसी के कारण शरीर मे चैतन्य उत्पन्न होता है। हमारे परम प्रिय इद्र भी इसी से आनंदित होते है। ७

इन्ही सोमरसो को पान करके, हे महापराक्रमी इंद्रदेव, आप शत्रुओ को नष्ट करने वाले हुए, और शूरत्व के कृत्यो मे आप ने शूरो की रक्षा की। ८

हे महापराक्रमी इंद्रदेव, शौर्यके कामो मे आप अपना पराक्रम दिखाते है। वैभव प्राप्ति की इच्छा से हम आपके भय का वर्णन करते है। ९

जो संपत्ति का स्वामी है, जिसका महत्व अपार है, जो सहज ही संकट मे से पार कर देता है, और जो सोमरस अर्पण करनेवाले भक्तो का परम सखा है, ऐसे इंद्र का यशोगान करो। १० (८)

## सूक्त ५

मधुच्छन्दा ऋषि। देवता इन्द्र॥

स्तोत्र गाने मे कुशल मित्रो, यहा आओ, बैठो, और इंद्र के लिये गान करो। १

निचोडकर सोमरस को तय्यार करने के बाद तुम इंद्र का पाचारण करो। यह इंद्रदेव श्रेष्ठो के शिरोमणि और स्पृहणीय संपत्ती के स्वामी है। २

आपसे हमको वैभव प्राप्त हो। हमारे उत्कृष्ट लाभों में और हमारे नद्गिनागे में आप का वास हो। आप अपने पूरे सामर्थ्य से हमारे पास आइये। ३

जिन के सुसज्जित घोड़ों का भी शत्रु सामना नहीं कर सकते ऐसे इंद्र की महिमा गाओ। ४

अभी अभी जिनको निचोड कर रखा है और जो पवित्र है, जिनमें दही मिश्रित किया हुआ है, ऐसे सोमरस, इस इच्छा से कि इंद्र उनको चखे, सोमप्रिय इंद्र के पास जा रहे है। ५ (९)

हे पराक्रमी इंद्रदेव, जगत पर प्रभुत्व रखने की इच्छा से आप सोमपान करने के लिये एकदम प्रगल्भ रूप से प्रगट हुए। ६

स्तुति से आनंदित होने वाले हे इंद्रदेव, शरीर के सब अङ्गों को प्रमोदित करने वाले ये सोमरस आपके मुख में प्रवेश करें, और आपको आनंद दें। आप आनंमंडित हैं। ७

हे प्रज्ञानशाली इंद्र, स्तुति से आपके महत्व का बखान हुआ. स्तवनों से आप की महिमा सर्वत्र विदित हुई। हमारे स्तोत्रों से आपकी श्रेष्ठता बढ़े। ८

हे अखण्ड रक्षण करने वाले इंद्र, हमको एकही ऐसी सामर्थ्य दीजिये, जिस की बराबरी अन्य हजारो सामर्थ्यें भी न कर सकें, और जिससे यावत पराक्रमी के काम सहज हो सकें। ९

हे सर्वस्तुत्य इंद्रदेव, मर्त्यजन में कोई भी हमारे शरीर को हानि पहुचाने को समर्थ न हो। सर्वत्र आपकी सत्ता होने से एकाएक हमारा वध किसी के हाथ से
न हो। १० (१०)

## सूक्त ६

मधुच्छन्दा ऋषि। देवता १–३ इन्द्र, ४ ६ ८ ९ मरुत् ५ ७ मरुत और इन्द्र १० इन्द्र।

ये तेजोगोल आकाश में चमकते हैं। ये परिचारकों की भांति इस में रमते हैं

ता के यात्रा पर निकलने की तय्यारी करते है । यह मध्यवर्ती तेज सामर्थ्यवान् उज्वल और सर्वव्यापी है । १

ये परिचारकगण उसके रथ के दोनो तरफ घोडे जोड़ते है । ये घोड़े इतने सुंदर है कि देखतेही उनको प्राप्त करने की अभिलाषा होती है । वे कुम्मैत है. और इस पराक्रमी देवता की सवारी जब ले जाते है तब उन के अंगो का तेज दृष्टिगोचर होता है । २

अहा ! अचेतन को चेतन कर के और आकारहीन को साकार बनाकर तुम उषा के साथ साथ प्रगट हुए । ३

यज्ञकर्म के सर्व श्रेष्ठ नाम को धारण कर सृष्टिक्रम के अनुसार उनका गर्भवास हुआ । ४

हे इंद्रदेव, दुर्भेद्य पर्वत भेदनेवाले अशनि नामक शस्त्रद्वारा गुहा फोड़ कर आपने प्रभारूपी धेनुओ की खोज लगाई । ५ (११)

अभीष्ट वैभव देनेवाले इन्द्र के लिये भक्तोने बहुत से स्तोत्र कहे । इन्द्र का महत्व और यश सभी को मालूम है । ६

निर्भीक इन्द्रके साथ जब आप सचार करते दिखते है उस समय दोनो का तेज समान और दोनो ही आनदित मालूम होते है । ७

इन्द्र के अनुचर सब को प्रिय और अति तेजस्वी होते है । उन मे ढूंढने से भी कोई अवगुण नही मिल सकता । इन से विभूषित देवता के प्रीत्यर्थ हमारे यज्ञ मे उच्च घोष से अर्चन हो रहा है । ८

इस लिये हे सर्वव्यापी देव, द्युलोक से अथवा प्रकाशमान् अंतरिक्ष से आप यहा आइये । इस यज्ञ मे मै आपका दास आपके स्तोत्र गा गा कर अपनी वाणी को अलकृत करता हू । ९

इन्द्रदर्शन ही हमारा अभीष्ट है । वह दिव्यलोक मे, भू लोक मे, अथवा महान् अतरिक्ष मे, चाहे जहा हो हम को प्राप्त हो । १० (१२)

## सूक्त ७

मधुच्छन्दा ऋषि । देवता, इन्द्र ॥

गाथा गाने वाले ऋषियों ने अपनी अनेक गाथाओं में इन्द्र की स्तुति की । अर्क पाठक विद्वानों ने भी अर्चन किया । यों इन्द्र की स्तुति अनेक स्तोत्रों द्वारा हो चुकी है । १

पीत वर्ण अश्वों के स्वामी केवल इन्द्र है । यह वज्रधारी इन्द्र सब अविनाशी संपत्ति के प्रभु है । २

सब को दिखे, इस रीति से इन्द्र ने आकाश में सूर्य की स्थापना की । अपने वज्र से ( मेघरूपी ) पर्वत को उस ने हिला दिया । ३

हे इन्द्र, आप उग्ररूप है, इस लिये जहां साहस के कृत्य हो रहे है और जहां वीर युद्ध कर रहे है ऐसे स्थानों में अपने उग्र साधनों से हमारी रक्षा कीजिये । ४

शत्रुओं के आनेपर हम इन्द्र को पुकारते है । बडे बड़े युद्धों और छोटी छोटी लड़ाईयों में भी हम इन्द्रकी दोहाई देते है, क्यों कि वही वज्रधारी हमारी पूर्ण सहायता करने वाला है । ५ (१३)

वृष्टि के योग से सदा औदार्य प्रगट करने वाले हे इन्द्र, आप कुछ भी संकोच न करके मेघपटल को दूर कर दीजिये । ६

आपका पराक्रम वर्णन करनेवाली जितनी प्रार्थनाएं है उनमें भी हे इन्द्र, आपके योग्य कोई स्तुति मुझ को नहीं मिलती । ७

शानदार गतिवाला वृषभ जैसे वृषभसमुदाय का मार्ग प्रदर्शक बनता है, उसी प्रकार इस जगत् के स्वामी इन्द्र सर्व मानवों को संतुष्ट कर के उन को आगे बढ़ने को प्रवृत्त करते है । ८

संपूर्ण जगत, सर्व संपत्ति और पांचों लोक इन पर एक मात्र इन्द्रका स्वामित्व है । ९

संसार के हितार्थ हम प्रत्येक स्थान में तुम्हारे प्रिय इन्द्र का पाचारण करते है । वह इन्द्र केवल हमारा पक्षपाती हो । १० (१४)

# अनुवाक ३.

## सूक्त ८

मधुच्छन्दा ऋषि । देवता, इन्द्र ॥

हे इन्द्र, हमारा संरक्षण करके हमको ऐसा वैभव दीजिये, कि जिससे हमको संतोष हो, जिसके द्वारा हमको प्रभुत्व प्राप्त हो, जो अविनाशी है, और जो संसार में उत्कृष्ट हो। १

वह वैभव ऐसा हो, कि जब आप अश्वारूढ होकर हमारा संरक्षण करे तो केवल मुष्टिप्रहार से हम अपने शत्रुओं का नाश कर सके। २

आपके संरक्षण मे जब हम घन भी हाथ मे ले, तो वह वज्र बन जाता है, और हम युद्धस्थल मे अपने शत्रुओं को जीत सकते है। ३

आपकी सहायता होनेसे हम अपने शत्रुओं को, चाहे वे कितने ही संग्राम-निपुण हो, शूर अस्त्रवेत्ताओं की मदद से परास्त कर सकते है। ४

यह वज्रधारी इन्द्र श्रेष्ठ है, बल्कि इससे भी अधिक है। इन का महत्व ऐसे ही चिरकाल तक बना रहे। उनका बल आकाश की तरह अनंत है। ५ (१५)

शूर पुरुष युद्धस्थल मे जो कुछ प्राप्त करते है, बालबच्चों से मनुष्य को जो सुख प्राप्त होता है, अथवा, एकाग्र बुद्धि से स्तवन करनेसे विद्वान् लोग जो कुछ संपादन करते है, ६

या सोमरस के पान से भक्तों का जो उदर सागर की भांति भर जाता है, अथवा जिस कंठ मे विशाल नदी की भांति सोमरस प्रवाहित होता है, ७

ये सब इन्द्र के आशीर्वचन के प्रभाव से होता है। आपके उत्तम आशिर्वचन पक्वफलयुक्त वृक्ष की भांति आपके दासों को फल देते है, और गोधनादि संपत्ति और इतर अनेक सुख भी प्रदान करते है। ८

हे इन्द्र, आपकी सामर्थ्य और भक्तो के रक्षण करनेके मार्ग हमारे समान दासो के लिये सदा ही अनुकूल है। ९

इन्द्र के ये स्पृहणीय और प्रशंसनीय स्तोत्र इन्द्र को सोमपान के लिये प्रवृत्त करे। १० (१२)

## सूक्त ९.

मधुच्छन्दा ऋषि। देवता, इन्द्र ॥

हे इंद्र आइये, और जहा जहां हम सोमयाग करते है वहा हमारे हवि को मानपूर्वक स्वीकार कीजिये। अपनी सामर्थ्य से आप हमारे रक्षक हुए हैं १

इन विश्वकर्ता आनंदी इन्द्र को यह उत्साह वर्धक और आनंददायक सोमरस तय्यार होते ही अर्पण करो। २

हे दिव्यमुकुटधारी इन्द्र, हे सर्वद्रष्टा देव, इस प्रमोददायक स्तवन से आप आनंदित हो, और जहा हम हवि अर्पण करते हो वहा आपका वास हो ३

हे इन्द्र, जब हम आपके लिये स्तवनोक्तियो का उच्चारण करने लगते है तो वे इससे पहिले ही अधीर होकर आप के पास चली जाती है। आप उनके नाथ और उनकी कामनाएं पूर्ण करनेवाले स्वामी है। ४

हे इन्द्र हमको अप्रतिम और स्पृहणीय धन प्रदान कीजिये। सचमुच आपके पास ही अत्यन्त उत्कृष्ट और विपुल धन है। ५ (१७)

हे सहस्रकीर्ति इन्द्र हमको ऐसा वैभव दीजिये कि जिससे हम धनार्जन करनेको प्रवृत्त हों। इसके लिये हमारे हाथ से मन पूर्वक प्रयत्न हो, और उन-ने उन को यश मिले। ६

हे इन्द्र, गोधनादि वैभव हमारे पास बहुत है, हमारी सामर्थ्य बड़ी है, और हम दीर्घायुषी हैं, ऐसी हमारी कीर्ति का सर्वत्र प्रसार हो, और वह कभी खण्डित न हो। ७

हे इन्द्र हमारी कीर्ति बढा कर हमको अपार वैभव दीजिये, और हमको रथ प्राप्त हो ऐसी कृपा हम पर कीजिये। ८

अनेक प्रकार की स्तुतियों से अपने संरक्षणार्थ आओ, हम इन्द्रका पाचारण करे। वह इस वैभव के राजा है। उन्हीके विषय मे छंदोबद्ध कविताएं की जाती है। वह बुलाने के साथ ही आ उपस्थित होते है। ९

प्रत्येक सोमयज्ञ के स्थान मे वास करनेवाले इन श्रेष्ठ इन्द्रदेव की आराधना उनका यह भक्त उच्चस्वर से और मनकी तृप्ति होने तक करता है। १० (१८)

## सूक्त १०

मधुच्छन्दा ऋषि । देवता इन्द्र ॥

गायत्री वृत्त द्वारा उपासक गण आपका यशोगान करते है और अर्क नामक स्तोत्र रचनेवाले आपकी अर्चा अर्कों मे करते है । हे बलशाली इन्द्र, जैसे ध्वजा ऊंची खडी की जाती है वैसे ही विद्वानो ने आपको श्रेष्ठता दी है । १

इन्द्र के भक्त ने जब एक पर्वत शिखर पर से दूसरे पर्वत शिखर पर जाकर इन्द्र के अनाथ कृत्यों को देखा तब पर्जन्याधिपति इन्द्र ने उसके मन के भाव को समझ लिया, और अपने दल बल सहित वह वहां आने को तैयार हुए । २

हे इन्द्र, आपके अश्व वृष्टि उत्पन्न करनेवाले है । उनके अयाल लम्बे है और उनके शरीर के कारण उनके बन्धन तङ्ग हो रहे है । हे सोमप्रिय देव, ऐसे घोड़ों को अपने रथ मे जोड़िये और जहांसे हमारी प्रार्थना सुनाई दे, हमारे उतने निकट आ जाइये । ३

हे सम्पत्तिरूप इन्द्र, यहा आइये। हमारी प्रार्थना की बड़ाई कीजिये, उसको उत्तम बनाइये, उसके लिये प्रशंसनीय उद्गार निकाल कर उसका स्वीकार कीजिये और हमारे यज्ञ को कामप्रद बनाइये । ४

सब अर्थ पूर्ण करनेवाले इन्द्र के लिये उत्कृष्ट स्तोत्र को गाना चाहिये । ऐसा करनेसे हमारे पुत्रपौत्रो पर और हमारे इष्टमित्रों पर इन्द्र अपनी कृपादृष्टि रखेंगे । ५

इन्हीके प्रेम की वाञ्छा करके हम उनके पास जाते है । सम्पत्ति के लिये

भी हम उन्हीकी शरण मे जाते है। शौर्य प्राप्ति की इच्छा से भी हम उन्हीका आश्रय लेते है। इस लिये वही इन्द्र हमे वैभव देकर हमको कतृत्व शक्ति प्रदान करे। ६ (१९)

हे इन्द्र आपकी कृपा से प्राप्त होनेवाली कीर्ति का ही सर्वत्र प्रसार होता है। वही सहज मे प्राप्त हो सकती है। हे वज्रधर देव, धेनुसमुदाय को मुक्त कीजिये। यह कृपा हम पर कीजिये। ७

जब आपको क्रोध आता है तब भूलोक और द्युलोक दोनो ही आपके सामने आने का साहस नही कर सकते। स्वर्ग के जल पर स्वामित्व स्थापन कर के धेनुओं को हमारे पास भेज दीजिये। ८

हे इन्द्र, आपके कान चहूंओर लगे रहते है। मेरी प्रार्थना सुनिये और स्तुति स्वीकार कीजिये। आप मेरे मित्र है। आप अंतःकरण मे मेरा यह स्तवन रख लीजिये। ९

कामना परिपूर्ण करनेवाले देवताओं मे आप सब से श्रेष्ठ है, यह हम जानते है। हम यह भी जानते है कि आप ही प्रार्थना शीघ्र सुना करते है। पर्जन्यवृष्टि पर आपका अधिकार होने से हम आपकी कृपाकी याचना करते है। उस कृपा की योग्यता दूसरी से सहस्रगुणा अधिक है। १०

हे इन्द्र, हे कौशिक, सुप्रसन्न अन्त करण से हमारा सोमरस शीघ्र स्वीकार कीजिये। हमारी आयु की वृद्धि कीजिये और हमको दूसरो की अपेक्षा सहस्रगुणा श्रेष्ठ ऋषित्व अर्पण कीजिये। ११

हे सर्वस्तुत्य इन्द्र, ये हमारे स्तोत्र सर्वांश मे आप ही का स्तवन करे, ये स्वीकार किये जानेके योग्य हो, आपके हाथ से इनका आदर हो और आपकी अनन्त आयु की भांति ये स्तोत्र भी चिरकाल तक जीवित रहे। १२ (२०)

सूक्त [illegible]

[illegible] ऋषि । देवता इन्द्र ।

समुद्र को भी व्याप्त करनेवाले इन्द्र का यश जिसमें अखिल स्तुतियों [illegible] ष्ठित किया है । इन्द्र सब के राजा है । सब सामर्थ्यों के [illegible] | [illegible] महारथी वीरों से भी यह अत्यन्त श्रेष्ठ है ।

हे सामर्थ्याधिपति इन्द्र, आप हमारे रक्षणकर्ता हैं [illegible] सामर्थ्य पर भरोसा होनेसे भयका नाम भी नहीं रहता । आप [illegible] हैं । आपका पराजय करनेके लिये कौन समर्थ है ? हम आपको [illegible] करते हैं ।

इन्द्र के पास गोधनादि सम्पत्ति अपार है । भक्तों को [illegible] दार्य सदा ही वैभव अर्पण करता रहता है, तो भी उसके [illegible] शक्ति का कभी न्हास नहीं होता ।

शत्रुओं के सुदृढ नगरों का उच्छेदक यही इन्द्र है । उनकी [illegible] बनी रहती है । वह बुद्धिमानों में श्रेष्ठ है । यह आरम्भ में [illegible] हुए । सर्व कर्मों से इनका आधार है । [illegible] कों ने की है ।

हे वज्रधर इन्द्र गौओं का [illegible] कोट तोड दिया । तब देवताओं ने [illegible] आश्रय में आये ।

हे शूर इंद्र, आपके औदार्य के इन कामो पर मोहित होकर आपकी स्तुति गाता हुआ मैं आपके पास आया, क्यो कि आप कृपासिन्धु है । इतर स्तोत्रकर्ता-गण जो पास खडे थे उन्होने भी आपका वह पराक्रम अवलोकन किया । ६

शुष्ण इतना हिकमती है तो भी आपने युद्धचमत्कार से उसको परास्त किया बुद्धिमान पुरुषोने वह भी अवलोकन किया । इस लिये उनकी श्रवण करने योग्य स्तुति आप स्वादर कीजिये । ७

अपने सामर्थ्य से जगत पर सत्ता चलानेवाले इन इंद्र की आराधना अनेक स्तुतियो के योग से हुई। इंद्र के उपकारकृत्य सहस्रो है, बल्कि उनकी संख्या इससे भी अधिक है । ८ (२१)

सूक्त १२

# अनुवाक ४.

ऋषि मेधातिथि काण्व । देवता अग्नि ।

अग्नि देवताओ के दूत है । अग्नि के हाथ से देवताओ को हवि पहुंचती है । अग्नि सर्वज्ञ है । अग्नि ही हमारे इस यज्ञ के सच्चे ज्ञानसामर्थ्य है । इस लिये हम उनके आगमनकी इच्छा करते है । १

जिस देवता को पुन पुन बुलानेकी आवश्यकता पडती है वह यह अग्नि ही है। क्यो कि यह अखिल मानवो के राजा है। यह सर्व देवताओ को हवि पहुंचाते है । यह सब के प्रिय है २

हे अग्नि यह आपको मालूम ही है कि सोमरस मे से दर्भ के अग्र इत्यादिक निकाल कर सब सिद्धता कर रखी है । इस लिये सब देवताओ को यहा ले आइये । आप हवि पहुंचानेवाले है इस लिये आप हमारे अत्यन्त पूज्य है । ३

हे काष्ठोत्पन्न, जब आप दूत होकर देवताओ के पास जावे उस समय हमारे हवि के विषय मे उन के मनो मे इच्छा उत्पन्न करके उन को जागृत कीजिये । इस दर्भासन पर देवताओ के साथ आप विराजमान हो । ४

घृत की हवियों में उज्ज्वल होनेवाले हे अग्निदेव, हमारे शत्रुओं का नाश कीजिये। उन्होंने राक्षसों से मेल किया हुआ है। ५

अग्नि जहां एक बार प्रदीप्त हुई कि वह अपने सामर्थ्य से ही वृद्धिगत होती जाती है। अग्नि देव की बुद्धिमत्ता अपूर्व है। गृहों के सच्चे अधिपति यही हैं। उन की तरुणावस्था अबाधित है। इनके द्वारा सर्व देवताओं को हवि पहुंचती है। उनका मुख ज्वालामय है। ६ (२२)

यज्ञ में अग्नि की स्तुति किये जाओ। अग्नि परम ज्ञाता है। सत्यही उनका नियम है। सर्व रोगों का उच्चाटन अग्निदेव करते हैं। ७

हे अग्निदेव, जो यागकर्त्ता आपको देवताओं का दूत मान कर आपका पूजन करता है उस के रक्षण की चिन्ता कीजिये। ८

हे सबको पावन करनेवाले अग्निदेव, जो यागकर्त्ता देवताओं को सन्तुष्ट करने-के लिये आपकी सेवा करता है उसको आप सुख से रखिये। ९

हे सबको पावन करनेवाले दीप्तिमान अग्निदेव, हमारे यज्ञ और हवि के निकट देवताओं को ले आइये। १०

हे अग्निदेव, आप ऐसे ही सर्व विख्यात हैं, इस लिये हमने नवीन स्तोत्र रच-कर आपकी स्तुति की है। इस लिये हमको संपत्ति प्रदान कीजिये और आपके प्रसाद से हमको वीर्यशाली संतति भी प्राप्त हो। ११

हे अग्निदेव, आपका तेज अत्यन्त उज्ज्वल है। आप हमारे स्तोत्रों का स्वीकार कीजिये और जो हवि हम सब देवताओं को अर्पण करते हैं, उन का स्वीकार कीजिये। १२ (२३)

## सूक्त १३

१ समिद्ध अग्नि । २ तनूनपात् । ३ नराशंस । ४ इल । ५ बर्हि । ६ द्वाररूप देवताएं । ७ उषा और नक्त । ८ दो होता । ९ सरस्वती इला और भारति । १० त्वष्टा । ११ वनस्पति । १२ स्वाहा ॥

हे अग्निदेव, हमने अपने यज्ञ मे हवि सिद्ध करके रखा है । इसको स्वीकार करनेके लिये आप प्रदीप्त होकर सब देवताओं को ले आइये । हे पुण्यकृत् देव, हे हवि-दर्ता, हमारा यज्ञ पूर्ण कीजिये । १

हे प्रज्ञानशाली अग्निदेव, आप स्वयंजात है । हमारा हवि देवताओं को प्राप्त हो, इस लिये उनको इस यज्ञमे ले आइये और हवि उनको अर्पण कीजिये । यहां सोमरस सिद्ध करके रखे हैं । २

इस यज्ञ मे हम अग्निका पाचारण करते है । वह हमको बहुत प्रिय है । उनकी स्तुति करना योग्य है । उनकी जिव्हा मे माधुर्य है । हवि की पूर्णता उन्हीसे होती है । ३

हे अग्निदेव, आपका स्तवन सबने किया है । आप हवि पहुंचानेवाले है । आप मनुष्यजाति के हितकर्ता है । अत्यन्त सुखदायक रथ मे बैठकर आप सब देवताओं को ले आइये । ४

---

१. इस सूक्त को आप्री सूक्त कहते है ।
२. हविष्मते । ३. सुसमिद्ध । ४. होतः ॥
५. तनूनपात् । ६ कृणुहि । ७ मधुमन्तम ॥
८. नराशंसम । ९ मधुजिह्वम । १०. हविष्कृतम ॥
११ ईडित । १२. मनुर्हितः । १३. सुखतमे ॥

हे सुज्ञ ऋत्विज, जिनके पृष्ठभाग चमकते हैं ऐसे दर्भासनो को पास पास बिछाओ, उन्हींपर हमको अविनाशी रूप का दर्शन होगा। ५

यज्ञ की सिद्धि के लिये आज यज्ञ मंडप के पवित्र द्वार शीघ्र खोलो। यहां याग विधिओंका उत्तम परिपालन होता है। यह यज्ञमंडप इतना विशाल है कि उसमें प्रवेश करनेवालो को तनिक भी अड़चन नहीं होती। ६ (२४)

नक्त और उषस इन दोनो स्वरूपवान देवताओं का मैं इस यज्ञ में निमन्त्रण करता हूं। उनके बैठनेके लिये यहां दर्भ बिछाये हुए है। ७

उन दोनो दिव्य प्रज्ञायुक्त और मधुरभाषी होताओ को मैं बुलाता हूं। वे हमारा यज्ञ सिद्ध करे। ८

इला सरस्वती और मही ये तीनो सौख्यदायिनी अमर देवियां इस दर्भ पर विराजमान हों। ९

उस सर्वदर्शी और सर्वश्रेष्ठ त्वष्ट्र देवता का हम इस यज्ञ मे आमंत्रण करते हैं। उनका प्रेम केवल हम पर हो। १०

हे वनस्पतिदेव, देवताओ को हवि का दान कीजिये और यज्ञकर्ता को ज्ञानप्राप्ति कराइये। ११

यागकर्ता के घर मे इन्द्र को यज्ञ अर्पण करो। इस यज्ञ मे मै सब देवताओं को आमंत्रण करता हूं। १२ (२५)

---

१. स्तृणीत। २. चक्षणम्॥
३. असश्चतः। ४. ऋतावृधा॥
५. सुपेशसा। ६. आसदे॥
७. सुजिह्वा। ८. यक्षताम्॥
९. मयोभुवः। १०. अस्रिधः॥
११. विश्वरूपम्। १२. अग्रियम्॥
१३. सृज। १४. चेतनम्॥
१५. कृणोतन। १६. ह्वये॥

## सूक्त १४

ऋषि–मेधातिथि काण्व । देवता–विश्वेदेवा ।

हे अग्निदेव, सोमपान की इच्छा से और हमारे स्तवन तथा उपासना स्वीकार करनेके लिये सब देवताओ सहित यहां पधारिये और हमारा याग सफल कीजिये । १

कण्वोने आपका आमन्त्रण किया था । हे तीव्रशाली अग्निदेव, ये स्तोत्र भी आपकी स्तुति गाते है । सब देवताओ को लेकर यहां आइये । २

इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, भग, आदित्य और मरुद्गण, ३

इन सब देवताओ के लिये यह सोमरस यहां भरकर रखा हुआ है इसको चखनेसे बहुत सुख प्राप्त होता है । इससे चित्त बहुत आल्हादित होता है । यह बड़ा मधुर है, और पात्रो के किनारे तक भरा होनेसे बाहर गिरता मालूम होता है । ४

सोमवल्ली की जडे निकाल कर सुन्दर हवि तैयार करके यह कण्व आपका पूजन करनेके लिये बैठा है । उसकी इच्छा ऐसी है कि आप उसकी रक्षा करे । ५

जो अश्व को और सब देवताओ को सोमपान के लिये ले आते है, जिनकी पीठ चमकती है और जो आपके रथ मे अपनी प्रेरणा से ही जुड़ जाते है, ६ (२६)

---

१ दुवः ॥
२ अहूषत ॥
३ भ्रियन्त । ४ मत्सराः ५ चमूषदः । ६ द्रप्साः ॥
७ वृक्तबर्हिषः । ८. अवस्यवः ॥
९ घृतपृष्ठाः । १० मनोयुजः ॥

ऐसे पुण्यकारी अश्वों की भेट उनकी सहचरियों से कराइये। इन अश्वों के कारण सब विधि यथायोग्य चलती है, इस लिये, हे मधुरभाषी देव, इन अश्वों को सोमरस भी चखाइये। ७

हे अग्निदेव, जिन देवताओं को यज्ञ समर्पण करना उचित है और जो देवता स्तवन करने योग्य है, उन सबकी जिव्हाएं इस यज्ञ मे मधुर सोमरस का आस्वादन करे। ८

यह विद्वान होता उष काल मे जागृत होनेवाले देवताओं को सुप्रकाशित सूर्यलोक मे ले आता है। ९

हे अग्नि, भूतलपर जब मित्र की किरणे पडे, उसी समय आप इन्द्र और वायु सहित पधार कर इस मधुर सोमरस का पान कीजिये। १०

अग्ने, आप हव्यवाहक है। मनुष्यजाति के हितकर्ता भी है। प्रत्येक यज्ञ मे आप ही विराजमान होते है। आप हमारा यज्ञ सिद्ध कीजिये। ११

हे देव, आप अपने रक्तवर्ण और चपल घोड़ों[10] को रथ मे जोड़िये और उनके द्वारा देवताओं को यहां ले आइये। १२ (२७)

---

१. यजत्रान्। २ ऋतावृधः॥
३ वषट्कृति॥
४. विप्रः। ५ आर्का–सूर्यस्य रोचनात्॥
६. धामभिः॥
७ सीदसि। ८ यज॥
९ अरुषीः। १० हरितः॥

## सूक्त १५

ऋषि मेधातिथि काण्व ॥ देवता-ऋतु । १ इद्र । २ मरुत ३ त्वष्टा । ४ अग्नि । ५ इद्र । ६ मित्रा-वरुण । ७–१० द्रविणोदा । ११ अश्विन । १२ अग्नि ॥

हे इद्र, ऋतुओं सहित सोमपान कीजिये । ये सोमरस के उछलनेवाले बिन्दु[1] आपके उदर मे प्रवेश करे । इनका प्राशन करनेसे आपको हर्ष होगा[2] । आपका उदर ही उनके लिये योग्य स्थान है । १

हे मरुत, ऋतुओं सहित इन पात्रो[3] से सोमपान कीजिये । आपके हाथ से ही हमारा यज्ञ पवित्र हो । दानशूरता[4] के लिये आप ही बहुत प्रसिद्ध है । २

हे सपत्नीक नेष्टृदेव, हमारे यज्ञ की प्रशंसा कीजिये और ऋतुओ सहित पधारकर सोमपान कीजिये । उत्कृष्ट रत्नो की निधि[5] आप ही के पास है । ३

हे अग्निदेव, देवताओ को यहां ले आइये और तीनेनो आसनो पर उनको यहां विराजित कीजिये । उनको विविधरूप से अलंकृत कीजिये और ऋतुओ सहित सोमपान कीजिये । ४

हे इंद्र, ऋतुओ के सोमपान कर लेनेके वाद आप इन सुन्दर पात्रो मे सोमरस को चखिये । आपकी मित्रता चिरकाल तक टिकनेवाली है । ५

हे विधिपरिपालक मित्र वरुण, आप दोनो ऋतुओ सहित पधारकर इस यज्ञका अंङ्गीकार करते है । यहां सर्व सिद्धता उत्तम रीति से की हुई है और विघ्न डालनेके लिये कोई भी समर्थ नही है । ६ ( २८ )

---

१ इन्दवः । २ मत्सरासः ॥
३ पोत्रात् । ४ सुदानवः ॥
५ रत्नधा ॥
६ सादय । ७ भूष ॥
८ राधसः । ९ अस्तृतम् ॥
१० आशाथे । ११ धृतव्रता ॥

द्रविणोद के लिये इस यज्ञ में सोमरस निकालनेके अभिप्राय से वैभवकी इच्छा रखनेवाले ऋत्विज हाथों में ग्रावा लिये बैठे है। इस देवताका पूजन प्रत्येक यज्ञ मे करते है। ७

जिस वैभव का महत्व दूर दूर तक प्रसिद्ध हो ऐसा वैभव हमको यह द्रविणोद प्रदान करे। उसकी प्राप्ति के लिये हम सब देवताओं से प्रार्थना करते है। ८

अब नेष्टा और ऋतु के स्थान से आगे चलो। सोमरस की हवि तैयार करो, क्यो कि इन द्रविणोदस को सोमरस की इच्छा हुई है। ९

हे द्रविणोदस् देव, आप अनुक्रम से चौथे है। हम ऋतुओं सहित आपको हवि अर्पण करते है। इस लिये मन पूर्वक हमको प्रसाद दीजिये। १०

हे देदीप्यमान और पुण्यवन् अग्नि, यज्ञको सिद्ध करनेवाले इन ऋतुओं सहित आप मधुर सोमरस का सेवन कीजिये। ११

हे उदार देव, सच्चे गृहस्वामी आप ही है, इस लिये ऋतु प्रमाण से यज्ञ का ध्वर्युत्व आपको मिला है। हमारी विनती का आदर करके इस यज्ञमे सब देवताओं-को पहुंचाइये। १२ (२२)

---

१. द्रविणसः ॥
२ वनामहे ॥
३ जुहोत ।     ४ पिपीषति ॥
५ यजामहे ।     ६ ददिः ॥
७ दीद्यग्नी ।     ८ यज्ञवाहसा ॥
९. सन्त्य ।     १० यज्ञनीः ।

## सूक्त १६

ऋषि–काण्व। देवता इन्द्र।

हे इंद्रदेव, आप वृष्टि करनेवाले है। आपके लिये सोमरस तैयार करके रखा है। उसके लिये आपके हरिद्वर्ण अश्व सूर्य का दर्शन करते करते आपको यहां ले आये। १

इन लोनो मे इतना घी लगाया है कि टपका पड़ता है। उनका सेवन करनेके लिये सर्व सुखसामग्री से सुसज्जित रथ मे बैठे हुए इन्द्र को हरिद्वर्ण अश्व लिये आते है। २

प्रातःकाल मे हम इद्र को बुलाते है। यज्ञ प्रारंभ करके हम इंद्र का पाचारण करते है। सोमरस का पान करानेके लिये हम इंद्र का आव्हान करते है। ३

देखो, इद्र के घोडो की अयाल कैसी दीर्घ है। हे इंद्र, ऐसे अश्वो को जोड़कर हमारे सोमरस का पान करनेके लिये आइये। सोमरस निचोड़कर रखते ही हम आपको बुलाते है। ४

हमारी प्रार्थना सुननेके लिये आप यहां आइये। हमारे सोमरस के स्वीकार करनेके लिये आप यहा पधारिये। प्यासे हरिण की भांति उत्सुकतापूर्वक इस सोमरस को पीजिये। ५ (३०)

---

१ वृषणम्। २ हरयः। ३ सूरचक्षसः॥
४ धाना। ५ घृतस्नुवः॥
६ गौर॥

दर्भ पर रखे हुए पात्रो मे सोमरस के बिन्दु रखे हुए है। हे इन्द्र, आप श्रम-परिहार करनेके लिये इनको चखिये। ६

हमारी इस स्तुति से आप सन्तुष्ट हो। यह अति सुन्दर है। यह आपके अन्त करण मे प्रवेश करे। हमारे तैयार किये हुए सोमरस को आप पीजिये। ७

जिस जिस यज्ञ मे सोमरस निकालकर रखा होता है, वही यह शत्रुओं के संहारक इंद्र उसको चखनेके लिये जाते है। इंद्र को उसमे ही बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। ८

हे सामर्थ्यवान इंद्र, हमको धेनु अश्व इत्यादि वैभव प्राप्त हो, बस यही हमारी इच्छा है। उसे आप परिपूर्ण कीजिये। हम एकाग्र बुद्धि से आपका स्तवन करे। ९ (३१)

---

१ सहसं॥

२ मदाय ॥

३ स्वाध्यः॥

## सूक्त १७

ऋषि—मेधातिथि काण्व। देवता—इन्द्र वरुण।

जगत् पर साम्राज्य करनेवाले इन्द्र वरुण से मै कर[1]णा का प्रार्थी हूं। उनेकी शरण मे जानेसे ही वे हमको सुखी करते है। १

हे इन्द्र वरुण हमारे सरीखे भाविको के पुकारते ही आप हमारा रक्षण करनेको तैयाँर रहते है। अखिल प्राणी मात्रके पोषणकर्त्ता आप ही है। २

हे इन्द्र वरुण, हमको इतनी सम्पत्ति दीजिये, कि हम तृप्त हो जायं। आप दोनो ही उदार देवता हमारे अत्यन्त निकट रहे यही हमारी इच्छा है। ३

सामर्थ्य लाभ करानेवाली आपकी कृपा मे हम भी शरीक है और उत्कृष्ट कार्यक्षमता के भी हमी पात्र है। ४

सहस्रावधि दानकर्म करनेवालो मे इन्द्र ही श्रेष्ठ है। जो अत्यन्त स्तुत्य है। उनमे वरुण ही का मान सबसे बड़ा है। इन दोनो की सामर्थ्य प्रशंसनीय है। ५ (३२)

हम उनकी कृपा से सम्पत्ति प्राप्त करते है और अपनी पूर्ण इच्छानुसार उसे सग्रहित करते है तो भी उनके पास सम्पत्ति ज्यो की त्यो भरपूर बनी रहती है। ६

हे इन्द्र वरुण, अपूर्व सुखप्राप्ति की इच्छा से हम आपको बुलाते है। हमको सर्वत्र विजयशीली कीजिये। ७

---

१ अव। २ ईदशे॥
३ गन्तारा। ४ चर्षणीनाम्॥
५ ईमहे॥
६ वाजदाव्नाम्। ७ युवाकु॥
८ सहस्रदाव्नाम्॥
९ नि-धीमहि। १० प्ररेचनम्॥
११ सु-जिग्युषः॥

हे इन्द्र वरुण, हमारा मन अत्यन्त आतुर होकर सर्वदा आप ही का चिन्तन करता है, इस लिये आप हमारा कल्याण कीजिये । ८

हे इन्द्र वरुण, आप दोनों ही के लिये मैं एक ही सुन्दर स्तुति अर्पण करता हूं । आप ही उसको उत्तेजित करते है । इस लिये वह आप दोनों को सर्वथा मान्य होगी । ९ / ३३ ।

# अनुवाक ५.

## सूक्त १८.

ऋषि मेधातिथि काण्व । देवता १–३ ब्रह्मणस्पति । ४ ब्रह्मणस्पति, इन्द्र, सोम । ५ ब्रह्मणस्पति, दक्षिणा । ६–७ सदसस्पति । ८ सदसस्पति अथवा नराशंस ॥

हे ब्रह्मणस्पति, उशिजा के पुत्र कक्षिवान ने आपको सोम अर्पण किया है । उसको आप तेजस्विता अर्पण कीजिये । १

जो वैभवशाली और व्याधियों के हरनेवाले है, जिनके पास भरे हुए द्रव्य के कोष है जो जगत् का पालनपोषण करनेवाले है और भक्तों के लिये शीघ्रतापूर्वक आते है, ऐसे ब्रह्मणस्पति हम पर अनुग्रह करें । २

हे ब्रह्मणस्पति, शत्रु के शाप अथवा किसी भी मनुष्य के कपट से हमको कोई बाधा न पडे । आप हमारी रक्षा कीजिये । ३

---

१ सिषासतीषु ॥
२ सधस्तुतिम ॥
३ सोमानम् । ४ स्वरणम् ॥
५ तुरः । ६ सिसक्तु ॥
७ शंसः । ८ मा-प्रणक ॥

इन्द्र, ब्रह्मणस्पति और सोम जिस दुर्बल की रक्षा करनेका अभिमान करते है वह वीर्यवान हो जाता है और कभी भी उसका नाश नही होता । ४

हे ब्रह्मणस्पति, इन्द्र और दक्षिणा से मिलकर उस गरीब की रक्षा पातको मे कीजिये । ५ ( ३४ )

अद्भुत पराक्रम करनेवाले प्रज्ञारूप सदसस्पति के पास मै गया हू । वह उदार[2] है, भक्ति करनेके योग्य है और उनका मित्रत्व अगाध है । ६

जिनकी सहायता बिना ज्ञानी मनुष्यो के यज्ञ की भी सिद्धि होना अशक्य है, उन्हींसे हमको बुद्धिमत्ता की प्राप्ति[3] होती है । ७

हवि अर्पण करनेके कार्य को वह सफल करते है और यदि उसमे कोई त्रुटि रह जाती है तो उसको सभाल लेते हैं इसी लिये हमारा हविर्भाग देवताओ के पास पहुच जाता है । ८

नराशंस का आज मुझे दर्शन हुआ । वह बड़े पराक्रमी है और उनकी कीर्ति अत्यन्त विशाल है । उनकी कान्ति प्रत्यक्ष द्युलोक की भांति चमकती है । ९ ( ३५ )

## सूक्त १९.

ऋषि-मेधातिथि काण्व । देवता-अग्नि, मरुत ।

हे अग्निदेव, इस मनोहर यज्ञ मे सोम अर्पण करनेके लिये आपका निमंत्रण किया जाता है । इस लिये मरुद्गण सहित आप यहा आइये । १

१ हिनोति ।

२ सनि ॥

३ योग ॥

४ हविष्कृतिम् । ५ ऋध्नोति । ६ प्राञ्चं कृणोति ॥

७ सप्रथस्तमम् ॥

८ गोपीथाय ॥

आप इतने श्रेष्ठ है कि आपकी सामर्थ्य के सामने देवता या मनुष्य किसी को भी गति नही है । इस लिये हे अग्निदेव, आप मरुद्गण सहित यहां आइये । २

द्वेषविकार से सदा रहित रहनेवाले और रजोलोक के अगाध ज्ञानी मरुतों सहित हे अग्निदेव, आप यहा पधारिये । ३

जो उग्रकृति मरुत अपने तेज से किसी के पराक्रम की भी परवाह न करके अर्क की याचना करते है, उनके सहित हे अग्निदेव, यहां पधारिये । ४

जिनका अत्यन्त शुभ्र वर्ण है और शरीर बहुत दीर्घाकार है, जो महा पराक्रमी प्रसिद्ध है और दुष्टों का उन्मूलन करनेवाले है, ऐसे मरुत् देवो सहित हे अग्निदेव, यहां पधारिये । ५ (३६)

स्वर्ग के ऊपर देदीप्यमान द्युलोक मे वास करनेवाले मरुत देवो सहित, हे अग्निदेव, आप यहा आइये । ६

ऊंची ऊंची तरंगवाले समुद्रो मे जो पर्वतो को उलट पलट कर देता है ऐसे मरुतो के सहित हे अग्निदेव, आप यहां पधारिये । ७

जो अपनी सामर्थ्य से सम्पूर्ण समुद्र पर अपनी किरणों को व्याप्त कर देते है ऐसे मरुतो के साथ हे अग्निदेव, यहां आइये । ८

यह मधुर सोमरस मै आपको अर्पण करता हूं । मेरी इच्छा है कि सबके पहले आप उसका प्राशन कीजिये । इस लिये हे अग्निदेव, मरुद्गण को लेकर आप यहां आइये । ९ (३७)

---

१ परः ॥
२ घोरवर्पसः । ३ सुक्षत्रासः । ४ रिशादसः ॥
५ रोचने ॥
६ अर्णवम् । ७ तिरः । ८ ईंखयन्ति ॥
९ तन्वन्ति ॥
१० पूर्वपीतये ॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

# दुसरा अध्याय.

## सूक्त २०.

ऋषि—मेधातिथि कण्व । देवता ऋभु ।

जीवनमरण के बंधनो से जिन देवो[1] का छुटकारा नही हुआ उनके लिये यह स्तुति विद्वान उपासकों ने स्वमुख से गाई थी । इसके योग से उत्कृष्ट वैभव की प्राप्ति होती है । १

आज्ञा होते ही अपने आप रथ मे जुड़ जानेवाले दोनो अश्व देवताओंने अपनी कल्पना से इन्द्रके लिये निर्मित किये, जिन्होंने अपने अद्भुत कृत्यो से यज्ञो मे अपने को सन्मान का पात्र बनाया. २

जिन्होने अश्वी देवताओ के लिये सर्वत्र विचरनेवाला सुखकारक रथ बनाया और जिन्होने दूध देनेवाली गौ को भी उत्पन्न किया, ३

इन ऋभुओ के लिये जो प्रार्थना की जाती है वह निःसंशय सफल होती है । उनकी वृत्ति बडी सरल है । उन्होने अपने सामर्थ्य से मातापिता को पुनः तरुण बनाया । ४

---

१ मूल मन्त्रमें यह शब्द एकवचनही है । परन्तु यहा बहुवचन का उपयोग करना चाहिये । २ जन्मने ॥
३ शमीभिः ॥
४ परिज्मानम् ॥
५ विष्टी ॥

मरुद्गण से मंडित इन्द्र और राजश्री से विभूषित अग्नि के पास ऋभु कुमार लिये गये है। वे मूर्तिमान आनंद है। ५ (१)

इसके अतिरिक्त त्वष्टा देवता के बताये प्रसिद्ध चमसे के पुन चार चमसे इन्होंने बनाये। ६

आप ऐसे पराक्रमी है, इस लिये अपना उत्तम आशीर्वाद और इहलोक प्रकार के रत्न हम भक्तों मे से प्रत्येक को दीजिये। ७

अन्य देवताओं को जैसा यज्ञ का भाग मिलना है वैसा ही इन्होने अपने लिये भी प्राप्त किया हुआ है। यह श्रेष्ठ है। इन्होने यज्ञ हवी को स्वीकार किया। ८ (२)

## सूक्त २१.

ऋषि मेधातिथि काण्व। देवता इन्द्र, और अग्नि।

इन्द्र और अग्नि इन दोनो को मै यहां बुलाता हूं। उन्होकी स्तुति करने की मारी इच्छा है। वे सोमरस का प्राशन करे। उनको सोमरस भाता है। १

हे मनुष्य, यज्ञ मे इन्द्र और अग्नि का स्तवन कर। उनको स्तुतियों से अलंकृत कर। गीतो से उनका गायन कर। २

---

१ मदासः॥

२ एकमेकम्॥

३ अभजन्त॥

४ इश्मसि।

५ शुम्भत॥

मित्र के गौरव के लिये मै सोमपानार्थ सोमप्रिय इन्द्र और अग्नि का पाचारण करता हूं। ३

तैयार करके रखे हुए हवि के पास मै उन उग्र परन्तु उदार देवताओ को बुलाता हू। वह इन्द्र ओर अग्नि यहा पधारे। ४

हे सर्वश्रेष्ठ इन्द्राग्नि देव आप सर्व लोकसमुदाय का रक्षण करनेवाले है। राक्षसो का शासन कीजिये। दुष्ट नि सन्तान हो। ५

चैतन्य–तेज मे अतिशय उज्ज्वल स्थान मे विराज कर हे इन्द्राग्निदेव, आप अपने सुप्रसिद्ध सत्यत्व का ध्यान रखे और हमको सौख्य अर्पण करे। ६ ( ३ )

## सूक्त २२.

ऋषि मेधातिथि काण्व। देवता १–५ अश्वी। ५–८ सविता। ९–१० अग्नि। ११ देवी। १२इन्द्राणी वरुणानी, अग्नायी। १३–१४ द्यावा पृथ्वी। १६ विष्णु अथवा देव। १७–२१ विष्णु।

प्रात काल मे रथ जोड़कर सिद्ध होनेवाले अश्वी देवताओ के पास जाकर उनको जताओ। वे सोमरस का प्राशन करने के लिये यहां पधारे। १

जिनका रथ उत्कृष्ट है, जो महारथी योद्धाओ मे श्रेष्ठ है और जो द्युलोक पर्यन्त जाते है, ऐसे दोनो अश्वि देवो का मै पाचारण करता हूं। २

---

१ प्रशस्तयं ॥
२ सन्ता ॥
३ सदसस्पती ॥
४ प्रचेतुन पद ॥
५ युजा ॥
६ हवामहे ॥

आपके रथ के चाबुक की ध्वनि सुनते ही यज्ञकर्ताओं में आपके सम्मानार्थ मधुर सोमरस तैयार करनेकी उतावली पड़ जाती है और सत्य तत्व का मनोहर लाभ होने की सबको आशा होने लगती है। उसके योग से हमारे यज्ञ में सुखसमृद्धि की धारा प्रवाहित कीजिये। ३

हे अश्विन, सोमरस अर्पण करनेवाले जिस भक्त के घर अपने रथ द्वारा आने के लिये जब आप तैयार हो जाते है तो वह घर आपके लिये कुछ भी दूर नहीं है। ४

स्वर्ण की भांति कान्तिमान हाथवाले सविता देवता का आमन्त्रण मैं अपने संरक्षण के लिये करता हूं। सविता देवता परम पद के ज्ञाता है। ५।४।

जल में से अवतीर्ण होनेवाले सविता देवता की स्तुति अपने संरक्षण के लिये करो। उन्हीकी आज्ञा हमको मान्य है। ६

सविता देवता को हम भक्तिपूर्वक बुलाते है। सब मनुष्योंपर उनकी दृष्टि रहती है। यह आश्चर्यकारक और मन को आल्हादित करनेवाली सम्पत्ति सबको बांटते है। ७

आओ मित्रो, बैठो, क्या हमको सविता की स्तुति नहीं करना है? वह दानी है। मनोरम ऐश्वर्य को शोभायुक्त करते है। ८

हे अग्निदेव, सन्तोषपूर्वक यहां आनेके लिये तैयार बैठी हुई देवपत्नी तथा त्वष्टा देवता को सोमपानार्थ लेकर यहां आइये। ९

---

१ मिमिक्षतम् ॥
२ सोमिनः ॥
३ वेत्ता ॥
४ उश्मसि ॥
५ राधस ॥
६ राधांसि ॥
७ उशतीः ॥

होत्रा, भारती, वरुत्री और धिषणा इन अत्यन्त तरुण देवस्त्रियों को, हे अग्नि-
देव, हमारे संरक्षण के लिये यहां ले आइये। १० (५)

वीरपत्नी के मार्ग में कहीं भी विघ्न न पड़े, वह हमारे पास आकर हमको
कृपा, सौख्य और आनंद की प्राप्ति करावे। ११

अपने क्षेमके लिये हम इन्द्राणी, वरुणानी और अग्नायी को सोमपानार्थ
बुलाते हैं। १२

मही, द्यौ और पृथ्वी हमारे यज्ञ पर सुखसमृद्धि की धारा प्रवाहित करें। वह
हमारी भरपूर उन्नति करें। १३

उनके घृत परिपूर्ण दुग्ध की प्रशंसा गंधर्वों के लोक में विद्वान पुरुष अपने
स्तोत्रों द्वारा करते हैं। १४

हे पृथ्वी आप हम पर सन्तुष्ट हों। आप किसी का नाश नहीं होने देतीं
आपमें सबका समावेश होता है। हमको अतिशय सौख्य प्रदान कीजिये। १५ (६)

पृथ्वी के सप्त प्रदेशों सहित समस्त जग में विष्णु ने जहां जहां आक्रमण
किया, देवगण उन स्थानों परसे हमारी रक्षा करें। १६

---

१ ग्ना ॥
२ सचन्ताम ॥
३ स्वस्तये ॥
४ भरीमभिः ॥
५ रिहन्ति ॥
६ स्योना ॥
७ अत ॥

विष्णु ने सब स्थानों पर आक्रमण किया। उन्होंने तीन पग रखे। उनके पदरज में ही सब व्याप्त हो गये। १७

अजेय और जगत् संरक्षक विष्णु ने उन स्थानों में धर्म नियम स्थापित करके तीन पग से आक्रमण किया। १८

जिन अलौकिक पराक्रमी कृत्यों के योग से विष्णु ने जगत में अखिल कर्म अवलोकन किये उन कृत्यों पर तनिक दृष्टि डालो। विष्णु इन्द्र का सहायता और मित्र है। १९

ज्ञाता लोक विष्णु के परम पद का सदा निरीक्षण करते रहते हैं। ऐसे समग्र आकाश की ओर टक टकी लगी रहने की भांति उनकी दृष्टि विस्तीर्ण होती है। २०

सदा जागकर परम भक्ति से विष्णु के परम पद का स्तवन करनेवाले बुद्धिमान पुरुष सर्वत्र उसको प्रसिद्ध करते हैं। २१ (७)

---

१ समूढ़म ॥

२ अदाभ्य ॥

३ पस्पशे ॥

४ दिवीव ॥

५ विपन्यव ॥

## सूक्त २३.

ऋषि मेधातिथि काण्व। देवता १ वायु। २, ३ इन्द्र वायु। ४, ६ मित्र, वरुण। ७-९ मरुत्वान्। १०-१२ विश्वेदेवा। १३-१५ पूषा। १६-२२ आप। २३ २४ अग्नि

यह सोम तीव्र है। आप आइये। दही मिलाकर इनको तैयार करके रखा है हे वायुदेव, इनको चखिये वे आपहीके वास्ते रखे हुए हैं। १

इस सोमरसका प्राशन करनेके लिये मै इन्द्र और वायुका आव्हान करता हू। ये दोनो द्युलोक पर्यन्त चल जा सकते है। २

विद्वानोने अपने सरक्षणार्थ इन्द्र और वायु का ही पाचारण किया। मन की गति-की भाति इनकी गति भी शीघ्र है। उनके हजारो नेत्र है। वे सर्व बुद्धिमता के अधिपति है। ३

हम मित्र और वरुणको सोमपानार्थ निमंत्रित करते है। वे बडे ज्ञानी है और पवित्र कार्योमे अपने सामर्थ्य का उपयोग करते है। ४

नीति मार्गसे नीति नियमनका ज्ञान वृद्धिगत करनेवाले, तेजके अधिष्ठाता मित्र वरुणको मै हवि अर्पण करता हू। ५ (८)

---

१ आशीर्वन्त ॥
२ दिविस्टशा ॥
३ मनोजुवा ॥
४ पूतदक्षसा ॥
५ ज्योतिषस्पती ॥

हमारा रक्षण करने के जितने मार्ग है, उन सबसे मित्र हमारी रक्षा करे और
वरुणभी हमारे संरक्षक हो। वे दोनों हमको बहुत सुखी करें. ६

इंद्रको मरुद्देवों सहित हम सोमपानार्थ बुलाते है। हमारे पास आकर उनको
सन्तोष हो। ७

हे इन्द्रको प्रमुख रखनेवाले मरुद्देव, आप पूषाके स्नेही है। आप सब हमारा
पुकारको सुनिये। ८

हे अति उदार देव, अपने मित्र इन्द्रके पराक्रमकी सहायता लेकर वृत्रका नाश
कीजिये। वह अभद्रभाषी हमारा स्वामी न हो। ९

हम सोमपानार्थ सब मरुद्देवों का निमंत्रण करते है। वास्तवमे वे पृश्नीके पुत्र
बडे उग्र है। १० (२)

विजय पाकर आये हुए वीरोंकी भांति मरुद्देवोंकी गर्जना बडे जोरसे सुन पडती
है। हे शूर जिस मार्गसे हमारा कल्याण है उसका अवलम्बन कीजिये। ११

विद्युत-लताके प्रचंड हास्यसे से अवतीर्ण होनेवाले मरुद्देव हमारी रक्षा करें। वे
हमको सुखी रखे। १२

---

१ करताम् ॥
२ मरुत्वन्तम्॥
३ विश्वे ॥॥
४ दुःशंसः ॥
५ पृश्निमातरः ॥
६ याधना ॥
७ हस्कारात् ॥

हे अत्यत देदीप्यमान् पूपन् चित्रविचित्र रंगके मयूरपंखोसे सुसज्जित आकाशके [1]बालकको भटके हुए बछडेकी भांति ढूढकर ले आइये। १३

रंगबरंगे मयूरपखोसे सुसज्जित, परंतु गुहामे छिपाये जानेके कारण अदृष्ट[2], ऐसे हमारे राजा पुन देदीप्यमान् पूपणसे मिले। १४

जिस तरह कृपक बैलोके योगसे धानको उत्पन्न करके घर ले आता है, उसी तरह यह पूषण छ ऋतुओको सोमरस पानार्थ हमारे पास ले[3] आवे. १५ (१०)

अपने जलोको माधुर्यसे परिपूरित करके भाविक यज्ञ कर्ताओंकी ये प्रेममयी माताएँ अपने मार्गोसे वहती है। १६

जो सूर्यके पास है, अथवा सूर्य जिनके समीप है, वह सब यज्ञको यशस्वी करे। १७

जहां हमारे धेनु जल पीते है उन जलदेवताओंका मै आमंत्रण करता हूं इन नदीयोको हवि अर्पण करना योग्य है। १८

---

आकाशका बालक कौन है यह मूलमे स्पष्ट रीतिसे लिखा हुआ नही है।
१ धरुणम् ॥
२ अपगूळ्हम् ॥
३ अनुसेषिधत् ॥
४ जामय ॥ यह ऋचा नदीके विषयमे है।
५ हिन्वन्ति ॥
६ कर्त्वम् ॥

जल के बीच मे अमृत है जल के बीच मे औषधिके गुण है, जल का स्नान करनेके लिये हे देव शीघ्रता कीजिये. १९

सोमने हमको कहा है कि, जल के अंदर सब औषधिया वास करती है, और अग्निदेव सब लोगो का कल्याणकर्ता है। जल सब रोगो का नाश करनेवाला है। २० । ११ )

हे जलदेवताओ, हमारा शरीर प्रतिदिन स्वस्थ रहनेके लिये तथा हमको सूर्यका दर्शन होनेके लिये आप हमको अत्युत्कृष्ट औषध दीजिये। २१

हे जलदेवताओ हमारे शरीरमे यदि कोई दुष्टता वास करती हो, अथवा किसीके साथ हमने शत्रुत्व किया हो, अथवा किसीके साथ खराब बर्ताव किया हो, अथवा असत्य भाषण किया हो तो सब हमारे दुष्ट आचरण का नाश करो। २२

हे जल देवताओ, मै अभी आपके पास आया हूं और मै आपके मधुर रसमे सम्मीलित हुआ हू, हे जलमे रहनेवाले अग्निदेव, आप यहा पधारिये और हमारा मिलाप तेज के साथ कर दीजिये. २३

हे अग्निदेव, आप तेज, सन्तति और आयुष्य हमको दीजिये, वैसा करनेसे हमारा वैभव परमेश्वर को मालूम होगा, और ऋषी तथा इंद्र को भी मालूम पड़ेगा। २४ । १२)

---

१ वाजिन. ॥
२ विश्वशम्भुवम् ॥
३ वरूथम ॥
४ शपे ॥
५ पयस्वान् ॥
६ संसृज ॥

# अनुवाक ६.

## सूक्त २४.

ऋषि–शुनःशेप आजीगर्ति, कृत्रिम, विश्वामित्र देवरात,। देवता–१ प्रजापति, २ अग्नि, ३–५ सविता अथवा भग, ५–१५ वरुण

वह कौन सा सुन्दर नाम है–सर्व अमर देवताओ मे वह किस देवता का मनोहर नाम है–जिसके हम स्मरण करे? अदिती से पुनः मेरी कौन भेट करायेगा, जिससे मै जनक और जननी को देख सकूं। १

सब अमर देवताओ मे प्रमुख जो अग्निदेव है उन्हीके मोहक नामका मै स्मरण करता हूं। वह अदिति से पुन मेरी भेट करायेगे, जिससे मै जनक और जननी को देख सकूंगा। २

हे हमारा निरन्तर रक्षण करनेवाले सविता–देवता आप समस्त स्पृहणीय वस्तुओ के स्वामी है। हम अपने योग्य सम्पत्ति का भाग आपसे मांगते है। ३

इसी प्रकार वह प्रशसंनीय भाग भी आपके हाथमे है, जिसकी निंदा करनेकी किसीमे भी शक्ति नही है और जिसे दुष्ट जनभी कोई आघात नही पहुचा सकते। ४

ऐसा भाग्य आपही की कृपा से हमको प्राप्त हो और सम्पत्ति के सर्वोच्च शिखर पर हम सुस्थिर होकर बढे। सब मनुष्यो को भाग्य बाटनेवाले आप हो है। ५ ( १३ )

---

१ मनामहे ॥
२ अमृतानाम् ॥
३ ईमहे ॥
४ शशमान ॥
५ उदशेम ॥

ये अत्यंत ऊंचे उडनेवाले पक्षी, ये एक निमिष भी स्थिर न रहनेवाले जल या जो वायुका दर्प हरण करते है वे सब ही आपके पराक्रम, बल अथवा कोप की बरा-बरी नहीं कर सकते । ६

भला, आकाश का भी कोई आधार है ? पर वहांभी पवित्र पराक्रम करनेवाले राजा वरुण वृक्षका स्तंभ खड़ाकर देते है । खडा करते ही वृक्षकी जड ऊपर और शाखाएं नीचे हो गयी । इन्हींके अन्दर अवश्य ही हमारा निवासस्थान होगा । ७

सूर्यको दैनिक प्रवास करनेके लिये वरुणराजाने उनका मार्ग विस्तृत किया । जहां पग धरनेका स्थान नहीं था वहां उन्होंने चलने योग्य पथ बना दिया । कटु वचन बोलनेवालों का वरुण अत्यन्त तिरस्कार करते है । ८

हे राजा वरुण, आपकी औषधियां सैंकडो क्या, सहस्त्रावधि है । आपकी कृपा असीम और अविच्छिन्न हो । हमारे नाशकारक दुःखोंको मिटाकर उनका उन्मूलन कीजिये और हमारे हाथसे जो पाप हुए हो उनको दूर कीजिये. ९

जो नक्षत्र आकाशमें चमकते है वे केवल रात्रिमें दृष्टिगोचर होते हैं । दिनमें ने कहीं चले जाते है । वरुण की आज्ञा कभी उल्लंघन नहीं हो सकती । चन्द्रमा रात को [illegible] होकर उदय होता है. १० ( १४ )

---

१ हिंसन्ति ॥
२ स्तूपम् ॥ यह वनस्पति उसका वर्णन होगा ।
३ हृदयाविध ॥
४ प्रमुमुग्धि ॥
५ विचाकशत् ॥

इसी कारणसे स्तुति स्तोत्रों द्वारा आपको नमस्कार करनेके लिये मैं आपके पास आता हूं, इसी कारणसे याग करनेवाले भक्त हवि अर्पण करके आपसे याचना करते हैं। हे वरुण, कोप न करके यहां जागृत अवस्थामें रहिये और हमारी आयु कम न कीजिये। आपकी कीर्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है। ११

रात-दिन सब लोक मुझसे यही बात कहते हैं और मेरे हृदयका भी ऐसाही स्पष्ट उपदेश है कि बंधनोंसे जखडे हुए शुनःशेपने भक्तिपूर्वक जिन वरुण राजाका आव्हान किया था वही हमको बंधनोंसे मुक्त करेंगे। १२

तीन खम्भोंसे[3] जखडकर बांधे हुए शुनःशेपने आदित्यकी पुकार की। भला, ज्ञानवान वरुण-राजाको कौन हानि पहुंचा सकता है? वही शुनःशेपके बंधन शिथिल करे और उसको मुक्त करे। १३

नमस्कारसे, यागसे और हविसे आपका कोप शांत करनेके लिये हे वरुण, हम आपकी प्रार्थना करते हैं। आप शत्रुका नाश करनेवाले हो, और अत्यंत ज्ञानवान् हो, आप हमारे लिये यहां वास कीजिये, हे वरुण आप हमारे पातकका नाश कीजिये. १४

हे वरुण आप हमारे ऊपरके बाजूपर तथा पीछेके बाजूपर बंधे हुए पाश शिथिल करो, हे आदित्य, आपका आश्रय करके हम पापसे मुक्त होकर अदिती का आश्रय करनेके लिये योग्य होवे। १५ ( १५ )

---

१ अहेळमान ॥
२ अह्वत् ॥
३ द्रुपदेषु ॥
४ शिश्रथः ॥
५ अनागसः ॥

## सूक्त २५.

ऋषि-शुन शेप आजीगर्ति । देवता-वरुण ॥

हे वरुण, हम आपकी प्रजा है, यदि आपकी किसी आज्ञा का हम उल्लंघन करते हो, १

उसके बदले आप कोपायमान होकर यदि वधका दंड नियत किया हो, तो कृपया वह दण्ड हमको मत दीजिये। हमपर मन्नप्र होकर हमको अपने कोप का बली न दीजिये। २

हे वरुण, जैसे कोई महारथी घोडे को डोरीसे मजबूत बांध रखता है (जिससे घोडा भाग न जाय) वैसेही आपसे सुखप्राप्ति की इच्छासे अनेक स्तोत्रो द्वारा अपना मन आपके चरणोमे बद्ध रखते है। ३

जिस प्रकार पक्षी अपने निवास स्थान को लौटते है उसी तरह हमारी सारी उच्चतम मन कल्पनाएँ सुखलाभार्थ आपकी ओर दौडती है। ४

पराक्रम ही जिनका अलंकार है ऐसे सर्व साक्षी वरुण को अपनी सुख प्राप्ति के लिये भला हम कब ले आयेंगे। ५ (१६)

वास्तवमे ये दोनो ही अत्यन्त कृपा से उसका स्तोत्र एकसाथ स्वीकार करते है। आज्ञाधारक यागकर्ताओ को वे कभी निराश नही करते। ६

जो अन्तरिक्षमे परिश्रम करनेवाले पक्षीओ के मार्ग जानता है, जो समुद्र निवासी होनेके कारण जहाजो के पथ से परिचित है, ७

---

१ व्रतम् ॥
२ हत्नवे ॥
३ सदितम् ॥
४ विमन्यव ॥
५ क्षत्रश्रियम् ॥

जो अपनी आज्ञा का पालन सबसे कराते है जिनको बारह मासका—जिनमे प्रत्येकमे मनुष्योंकी लगातार वृद्धि होती है—ज्ञान है, और जिसको अधिक मास की भी ख़बर रहती है, ८

जो सर्व संचारी उत्तुगगामी सामर्थ्यवान् वायु की गति जानते है और वायुलोक के ऊपर जो कुछ है उससे भी जो परिचित है, ९

ऐसे सामर्थ्यवान वरुण, अपनी आज्ञाओ का पालन कराते हुए अपने साम्राज्य को जगप्रसिद्ध करनेके लिये सर्व लोकोंमे आकर विराजमान हुए है। १० ( १७ )

इस लिये वह ज्ञानवान देव उन सब आश्चर्यों का—जो उसने उत्पन्न किये है और जो वैसे ही अभी और उत्पन्न करनेवाला है—अवलोकन करता रहता है। ११

वह सर्व सामर्थ्यवान आदित्य हमको सुपथपर ले जावे । वह हमारी आयुष्य की वृद्धि करे। १२

अपना स्वर्णमय कवच पहनकर उन्होंने देदीप्यमान् वस्त्र धारण किये है । चारो ओर उनके दूत बैठे है । १३

इनको दुष्ट लोक डरा नही सकते, मनुष्य जाति के शत्रु इनको भयभीत नही कर सकते, पापी खल भी इनको भयचकित करनेमे समर्थ नही है । १४

---

१ उपजायते ॥
२ ऋष्वस्य ॥
३ पस्त्या ॥
४ चिकित्वान् ॥
५ तारिषत् ॥
६ द्रापि ॥
७ दिप्सव ॥

इसके अतिरिक्त उनका वैभव मनुष्य जाति भरमे प्रसिद्ध है। आ... और वैभव प्रसिद्ध हो सो बात नहीं पूर्ण रूपमे प्रसिद्ध है। यहा क्या, लोग अपने शरीरमे इन्होंने कीर्तिप्रद सुन्दर रचना की हुई है। १५ (१८)

गौ जिस प्रकार उत्सुकतासे अपने चारा रखे हुए स्थानको लौटती है वैसे ही इन सर्वदर्शी देवके विषयमे हमारी प्रेमपूरित प्रार्थना पुन उन्हीके पास जाती है। १६

हमारा मधुर हवि बिलकुल तैयार है। इस लिये अपने परस्पर अब कुछ सम्भाषण होने दो। यह हवि आपको बहुत प्रिय है। यागकर्ता की भाति आप उसका स्वीकार करते है। १७

अपने रूपके कारण सम्पूर्ण विश्वमे जिनकी ख्याति है उनका दर्शन आज हमको प्राप्त हुआ। इस पृथ्वीपर उनका रथ मैने देखा। हमारी इस स्तुतिका उन्होंने स्वीकार किया है। १८

हे वरुण, हमारी पुकार सुनिये, और हमको सुखमे रखिये। आपकी कृपा हमपर हो, इस इच्छासे हम आपसे याचना करते है। १९

हे प्रज्ञाशील देव सम्पूर्ण पृथ्वी और स्वर्गपर आप ही की सत्ता है। इसलिये ... समय हमको आश्वासन दीजिये। २०

हम चिरकाल पर्यन्त आयुष्यका उपभोग कर सके, इस लिये हमारे शरीरके ऊपरी भागका पाश शिथिल कीजिये, मध्य और नीचेके भागवाले पाश भी खोल दीजिये। २१ (१९)

१ असामि ॥
२ गव्यूती ॥
३ क्षदसे ॥
४ अविक्षमि ॥
५ आचके ॥
६ यामनि ॥
७ विप.शम् ॥

## सूक्त २६.

ऋषि–शुन शेप आजीगति । देवता–अग्नि ॥

हे सामर्थ्याधिपति देव, हे यज्ञार्ह अग्नि, अपने दिव्य वस्त्रोको धारण कीजिये। और यो विभूपित होकर हमारे को सिद्ध कीजिये। १

हे अत्यन्त तरुण अग्निदेव, हमारा वचन श्रवण कीजिये। आप दिव्य कान्तिसे युक्त है। अन्त करणपूर्वक किये हुए स्तवन आपही को शोभा देते है। आपही हमारे हविको पहुचाते है। २

सचमुच वह पुत्रोके लिये पिता समान है। आप्त संबंधी मनुष्यो के लिये कुटुम्बी की भाति है और मित्रो के लिये अत्युत्तम मित्र है। ऐसे वह ( अग्नि ) हमारे यज्ञको सिद्ध करते है। ३

जैसे मनुष्य दर्भके आसनपर बैठते है, उसी तरह खलें का नाश करनेवाले वरुण, मित्र और अर्यम देवभी प्रेमपूर्वक आकर दर्भासनोपर विराजमान हो। ४

देवताओको हवि अर्पण करनेवाले हे पुराण पुरुष, हमारे हविसे सन्तुष्ट हो, हमारे प्रेमसे आनदित हो और हमारी प्रार्थना श्रवण कर। ५ ( २० )

जो हवि हम नित्य अलग अलग देवताओ को देते है वह आपही को अर्पण होते है। ६

---

१ मियेध्य ॥
२ दिवित्मता ॥
३ आपये ॥
४ रिशादस ॥
५ श्रुधि ॥
६ शश्वता ॥

हम शुभकारक अग्निका पूजन करनेवाले उनको बहुत प्रिय है। उन पर ही हमारा सच्चा प्रेम है। वह प्रेम करने के योग्य है। वह आनद देनेवाले है। वह देवताओं को हवि पहुंचाते है। सर्व मानवोंके वह राजा है। ७

शुभकारक अग्निसे सरल रखनेवाले देवताओंने अपने लिये अत्यन्त स्पृहणीय वैभव तैयार करके[2] रखा है। हमभी कल्याणकारी अग्निके भक्त है, इस लिये उनका चिन्तन करते है। ८

और अब हे अमरदेव, यज्ञ के दोनों ओर बैठे हुए हम लोगोंमे परस्पर प्रेम-संभाषण होना चाहिये। ९

सामर्थ्यसे प्रादुर्भूत होनेवाले हे अग्निदेव, अन्य सर्व अग्नियो सहित यहां पधारकर इस यज्ञ और इस स्तोत्रको प्रेमपूर्वक स्वीकार कीजिये। १० (२१)

## सूक्त २७.

ऋषि–शुनःशेप आजीगर्ति। देवता–१–१२ अग्नि १३ विश्वेदेव ॥

कवचें पहनाकर सजाये हुए अश्वकी तरह, अनेक वार वन्दन करके, मुझे आप अपना सन्मान करने दीजिए, आप प्रत्येक यज्ञ मे विराजमान होते रहते है। १

यह दाता अपने सामर्थ्य के योगसे अनेक स्थानों मे गमन करता है। यह उत्तम सुख देनेवाला है। वह हमारे लिये कृपा की वर्षा करे। २

---

१ विश्पति. ॥
२ दधिरे ॥
३ प्रशस्तयः ॥
४ विश्वेभिः ॥
५ वारवन्तम् ॥
६ मीढ्वान् ॥

आप सबके प्राण[1] है। वे आप, हम चाहे आपके पास हो या दूर हो, पापी
मनुष्यो से सदैव हमारी रक्षा कीजिये। ३

हे अग्निदेव ! सब कामनाओ को परिपूर्ण करनेवाले ये नवीन स्तोत्र जो हमने
गाये[2] है उनकी आपने देव–समुदाय मे प्रशंसा की है। ४

सर्वोत्कृष्ट और मध्यम श्रेणीका सामर्थ्य प्राप्त होते समय आप हमारे पास रहे[3]
और हमे यह भी सिखाइये कि, अन्तिम श्रेणीमे जिस सम्पत्ति की गणना है वह कैसे
प्राप्त करना चाहिए। ५ ( २२ )

अलौकिक कान्तिसे दैदीप्यमान रहनेवाले हे देव ! आप सम्पत्ति का विभाग
करते है। आप कृपा के सागर है, अतएव आपकी प्रसाद–लहरो के पास जो भक्त
खडा रहता है उसके लिए आप तुरन्त ही सम्पत्ति के नद बहाते हैं। ६

सचमुच आप युद्ध मे जिस मनुष्य के संरक्षक बनते है और जिसको आप
शूरता के कामो मे प्रेरणा करते है उसकी सत्ता शाश्वत सम्पत्ति पर प्रस्थापित
होती हैं। ७

फिर वह चाहे जैसा हो, हे बलशाली देव ! उसे कोई रोक नही सकता।
चारो ओर उसके सामर्थ्य की कीर्ति छा जाती है। ८

यह सर्व संचारी देव हमसे हमारे अश्वो सहित, पराक्रम के कार्य पूर्ण करावे
और विद्वान् स्तोताओ सहित हमे सम्पत्ति[7] प्रदान करे। ९

---

१ विश्वायु. ॥
२ सानिम् ॥
३ आभज ॥
४ आअक ॥
५ इष ॥
६ अतिथ्रवाय्यः ॥
७ मानिता ॥

स्तवनोंमें जागृत होनेवाले हे देव ! आप यज्ञकर्म से सम्बन्ध रखनेवाले पर्
मनुष्य के लिए कोई ऐसा स्तोत्र चुनकर निकाल दें जो रुद्र को प्रिय हो । १०

ये अग्निदेव अत्यन्त श्रेष्ठ हैं । इनके गुणों की गणना ही नहीं । ये उन
ध्वजा के ऊपरका चिन्ह है । उनकी कान्ति बहुत विस्तृत है । वे बुद्धिमत्ता और
प्राप्त करनेमें हमारी योजना करें ।

किसी वैभवशील राजाकी भांति हमारी स्तुतियों से मोहित होकर वे अग्निदेव
हमारी प्रार्थना श्रवण करें । वे मानवों के राजा हैं, वे दिव्य सामर्थ्य ही
उनका तेज प्रखर है । ११

श्रेष्ठ व्यक्तियों को मेरा नमस्कार है, छोटों को मेरा नमस्कार है, तरुणों को
मेरा नमस्कार है और जो वृद्ध हैं उन्हें भी मेरा नमस्कार है । १२

तो हम सब लोग देवताओं के सन्मानार्थ याग करें । हे देवताओ ! जो स
में श्रेष्ठ है उसकी स्तुति करने में मैं कभी न चूकूं । १३ ( २३ )

## सूक्त २८.

ऋषि—शुनःशेप आजीगर्ति । देवता—इन्द्र, यज्ञ, सोम ॥

जो रस सोमवल्लियों से निकालने में बड़ी पेंदीवाला मूसला उपयोग में लाया जाता है,
उन, उलूखल से बहनेवाले, सोमरसों का, हे इन्द्र देव, आप उत्सुक होकर
स्वीकार करें । १

जिन सोमरसों के लिये, युगुल जंघाओं की भांति परस्पर संलग्न होनेवाले,
रस–निष्पादक पाषाण तैयार किये जाते हैं, उन, उलूखल से बहनेवाले सोमरसों को,
हे इन्द्र महाराज, आप बड़ी उत्सुकता से स्वीकार करें । २

१ हवीकृत ॥
२ अतिमान. ॥
३ रेवान् ॥
४ आशिनेभ्य. ॥
५ पृथुबुध्नः ॥
६ जघ्गुल. ॥

जिसके योग से स्त्री को, हाथ आगे[1]-पीछे कर के मन्थन करनेका पाठ मिलता है उस उलूखल से बहनेवाले सोमरसो का, हे इन्द्र देव, आप बडे उत्साह से स्वीकार करें। ३

जो सोमरस निकालते समय मानो मथानी ( रई ) को जलदीसे न दौडने देनेही के लिए उसके डोरिया बाधते है, उन, उलूखल से बहनेवाले सोमरसो का, हे इन्द्रजी, आप बड़े उत्साह से स्वीकार करें। ४

हे उलूखल प्रत्येक घर मे चलते समय तुम ऐसी गम्भीर ध्वनि किया करो जैसे बिजयी सेना का सन्मान करने के लिए दुदुभी गर्जती हो। ५ ( २५ )

हे उत्तम काष्ठ[?] यह वायु तुह्मारे सामनेंही वह रही है। हे उलूखल इन्द्र को सोमपान मिलने के लिए तुम सोमरस तैयार करो। ६

ये दो यज्ञ-सम्बधी उपकरण जिनके कारण सामर्थ्य का अत्यन्त लाभ होता है, इस प्रकारकी ध्वनि उत्पन्न करते है जैसे घास चरते समय घोडे। ७

अतएव हे उच्चता से शोभनेवाले काष्ठ के उत्तम उपकरणो, सोम निकालने मे निपुण ऋत्विजो की सहायता लेकर, तुम इन्द्र के लिए मधुर सोमरस तयार करो। ८

नीचे गिरे हुए सोमरस को दो चमसो मे भरो और पवित्र दर्भो से टपकने के लिए डालो। वृषभ-चर्म पर उसे ला कर रखो। ९ ( २६ ]

---

१ अपच्यवम्-उपच्यवम् ॥
२ यमित वा ॥
३ उलूखलम् ॥
४ अग्रामित् ॥
५ बप्सता ॥
६ ऋष्व ॥

## सुक्त २९.

ऋषि—शुन शेप आजीगर्ति । देवता-इन्द्र ।

हे सत्यस्वरूप और अत्यन्त उदार इन्द्र, जब कि हमारा यह हाल है कि कहीं भी हमारा मान नहीं है, तब आप ऐसा करें कि जिससे धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन, और सहस्रो भोग-वस्तुओं की हमारी श्रेष्ठता शीघ्र ही बढ़े । १

हे सुन्दर मुकुट धारण करनेवाले अत्यन्त उदार इन्द्र, हे सामर्थ्याधिपति, हे पराक्रमी देव, अपनी अद्भुत कृति से ऐसा कीजिए कि जिससे धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन और सहस्रो भोग—वस्तु ओंकी हमारी श्रेष्ठता शीघ्र ही बढ़े । २

एक दुसरे की ओर बराबर दृष्टि डालनेवाली उन दोनो को निद्रित करिये । ऐसा कीजिए कि जिससे वे जगने न पावे और पड़ी ही रहे । हे अत्यन्त उदार इन्द्र ! ऐसा कीजिए कि जिसमे धेनु, अश्व उज्ज्वल धन और सहस्रो भोग्य वस्तुओं मे हमारी श्रेष्ठता शीघ्र ही बढ़े । ३

वे हमारे शत्रु निद्रित हों, परन्तु हे शूर, हमारे स्नेही अवश्यही जागृत रहे हे अत्यन्त उदार इन्द्र, ऐसा कीजिए कि धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन, और सहस्रो भोग्य वस्तुओं मे हमारा सामर्थ्य शीघ्र ही बढ़े । ४

ऐसी अभद्र भाषा बोलनेवाले गधे को मार डालिये । हे अत्यन्त उदार इन्द्र, कीजिए कि धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन और सहस्रो भोग्य पदार्थों का हमारा सा- शीघ्र ही बढ़े । ५

---

१ अनाशस्ता ॥
२ तुवीमघ ॥
३ अबुध्यमाने ॥
४ शुभ्रिषु ॥
५ नुवन्तम् ॥

वक्रमार्ग[1] से जानेवाली वायुका, बहुत दूरवाले वन से भी आगे, पतन हो। हे अत्यन्त उदार इन्द्र, ऐसा कीजिए कि जिससे धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन और सहस्रो भोग्य पदार्थों मे हमारी श्रेष्ठता शीघ्र ही बढ़ जाय। ६

सब शोको का संहार कीजिए। और हमारा नाश करने के लिये जो कोई ताके[2] बैठा हो उसे मार डालिये। हे अत्यन्त उदार इन्द्र, ऐसा कीजिए कि जिससे धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन और सहस्रो भोग के पदार्थों मे हमारा सामर्थ्य शीघ्र ही बढ़े। ७ ( २७ )

## सूक्त ३०.

ऋषि शुनःशेप। देवता १–१६ इन्द्र, १७–१९ अश्वि, २०–२२ उषा ॥

जिनका सामर्थ्य शतगुण बड़ा है, और जो तुझे प्रिय है, ऐसे इन्द्र देव की स्तुति मे निमग्न हुए हे ऋत्विजो, जिस प्रकार कोई कुआं पानी से लबालब भर दिया जाय उसी प्रकार मानो हम उन अति उदार[3] इन्द्र को सोमरस से भरे देते है। १

जिस प्रकार जल ढालू भाग की ओर बहता जाता है उसी प्रकार सोमरस की ओर इन इन्द्र महाराज की स्वाभाविकही प्रवृत्ति होती है—फिर चाहे वे दुग्ध मिश्रित सोम के सहस्र चमसे हो अथवा, जिसमे कुछभी मिश्र नहीं किया ऐसे शुद्ध सोम के सौ ही चमस हो। २

---

१ कुण्डृणाच्या॥

२ कृकदाश्वम्॥

३ क्रिवि॥

४ समाशिरां॥

जो सोमरस सामर्थ्यवान इन्द्र महाराज को सन्तुष्ट करता है उस से उन का उदर समुद्र की भांति भर जाता है । ३

यह सोम आपके लिए तैयार कर रखा है । जिस प्रकार कपोत पक्षी अपने छोटे बच्चों की ओर प्रेम से जाता है उसी प्रकार आप बड़े प्रेम से इस सोम रस की ओर आ रहे हैं । और इसी लिये आप हमारी स्तुति को भी स्वीकार करते हैं । ४

हे इन्द्र, आप सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओं के स्वामी हैं और स्तुति करने पर आप अपने भक्तों की ओर आते हैं । हे वीर, हम आपका स्तोत्र गाते हैं, अतएव आपकी ओर से हमें सत्यप्रेम से परिपूर्ण वैभव प्राप्त हो । ५ (२८)

हे अत्यन्त बलशाली इन्द्र, पराक्रम के इस कार्य में हमारी रक्षा करने के लिए आप उठ कर खड़े हो जाइये । अन्यों को छोड़ कर, आइये, हम एक दूसरे से सम्भाषण करें । ६

जब वैभव प्राप्त करलेने का अवसर आता है, अथवा जब जब शत्रुता के कर्म दिखलाने का मौका आता है तब तब, अपनी सरक्षा के लिए, हम इन्द्र के स्नेह पात्र भक्त, उन अत्यन्त बलाढ्य इन्द्र का आह्वान करते हैं । ७

यदि हमारी स्तुति उन्हें सुन पड़ती है तो अपने हजारों प्रकार के रक्षा के मार्ग प्रकट करते हुए और अपना सामर्थ्य सब को दिखलाते हुए वे इन्द्र हमारी पुकार के अनुरोध से निस्सन्देह यहां प्राप्त होते हैं । ८

१ व्यचो दधे ॥
२ गर्भधि ॥
३ गिर्वाहः ॥
४ अन्येषु ॥
५ योगेयोगे ॥
६ यदि श्रवत ॥

जिन इन्द्र को पहले तुम्हारे पिता ने पुकारा था उन्हीं, अनेक शत्रुओं की भी परवा न करनेवाले, शूर इन्द्र से, अपने पुरातन दिव्य स्थान से यहां आने के लिए, मैं विनती करता हूं। १

हे हमारे प्रिय इन्द्र, आज हम आपकी स्तुति करते हैं। सम्पूर्ण विश्वमें, आपके सिवाय, प्रेम करने योग्य, कोई नहीं है ! अनेक विद्वानों ने आपका स्तवन किया है। जो भक्त आपके स्तोत्र गाते हैं उनके आप मूर्तिमन्त भाग्य हो हैं १० ( २९ )

हे वज्रधारी इन्द्र, आप हमारे और हमारी सहचारिणियों के हितकर्त्ता हैं। सब सोमरस-प्रिय देवताओं में आपही का सोम पर अत्यन्त प्रेम है। ११

हे वज्रधारी देव, हे हमारे मित्र, आप ऐसा कीजिए—आपकी इच्छा से ऐसा हो—कि हम आपही की कृपा की इच्छा करें। १२

हमारे सहवास में इन्द्रको आनन्द हो और वैभवयुक्त तथा समृद्धि—परिपूर्ण ऐसा अतिशय सामर्थ्य हमें प्राप्त हो कि जिससे हमें हर्ष हो १३

आपको आपही की उपमा देनी चाहिए, आप हमारे आप्त हैं। आपकी प्रार्थना करने से, हे शूर देव, आप भक्तोंके लिए ( रथचक्रके ) अक्षकी तरह दौड़ते रहे हैं। १४

---

१ तुविप्रति ॥
२ विश्ववार ॥
३ शिप्रिणीनां ॥
४ इष्टये ॥
५ सधमादे ॥
६ त्वावान् ॥

हे अत्यन्त बुद्धिशाली इन्द्र, अपने सेवको का हव्य ग्रहण करने के लिए और उनकी इच्छाए परिपूर्ण करने के लिए, आप अपने सब सामर्थ्यो सहित (रथ-न ते ते) अक्षकी भांति दौड़ें हैं। १९ (३०)

अपने अत्यन्त फड़कनेवाले, ठहनानेवाले और वेग से श्वासोच्छास करनेवाले अश्वो के योगसे इन्द्र सदैवही सम्पत्ति जीतकर लाते रहे है। ऐसे अद्भुत काम करनेवाले और हमपर उदारता दिखलानेवाले उन इन्द्रदेवने हमारे वैभव की वृद्धि करनेके लिए हमे सुवर्णरथ दिया है! १६

हे अश्विनो, आप अश्वादिकोसे परिपूर्ण और कल्याणप्रद सम्पत्ति लेकर आइये। अहो सुन्दर देवताओ, आप हमे जो वैभव दे उसमे धेनु और सुवर्ण का संग्रह भरपूर हो। १७

हे सुन्दर अश्विनो, आप जो अविनाशी रथ दोनों के लिए मिलकर जुटाते हो वह सचमुच समुद्र मे भी गमन करता है। १८

आपने अपने रथ का एक चक्र ऐसे पर्वत के मस्तकपर, जो अभेद्य है, टिकाया था। दूसरा चक्र द्युलोक के आसपास भ्रमण करता रहता है। १९

हे स्तुतिप्रिय, उषे! हे अमर देवते! आपके बाहु-बन्धन मे किस मानव का स्थान मिलेगा? हे देदीप्यमान देवी! किसके लिए आपका आगमन हो ९ है? २०

---

१ आ-ऋणोः ॥
२ पोप्रुथद्भिः ॥
३ शर्वारया ॥
४ समानयोजनः ॥
५ अध्न्यस्य ॥
६ नक्षसे ॥

चित्रविचित्र वर्णकी किसी तुरंगी के समान सुशोभित दिखनेवाली हे प्रकाशमान उषादेवते ! हम, दूर अथवा निकट रहते हुए, वास्तव मे, आपही का ध्यान करते रहते थे। २१

हे आकाशकन्या उषे, आप अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य सहित इधरके लिए पधारिये, और हमारे लिए वैभव भी लेते आइये। २२ ( ३१ )

## अनुवाक ७.

### सूक्त ३१.

ऋषि–हिरण्यस्तूप आंगिरस। देवता–अग्नि ॥

हे अग्निदेव ! पहले अंगिराऋषि और देव आप ही है। देवताओं के कल्याण-कारक मित्र भी आपही थे। दैदीप्यमान शस्त्रो को धारण करनेवाले और ज्ञान-सामर्थ्य–युक्त बुद्धिमान मरुद्गण आपही के आज्ञानुसार अवतीर्ण हुए। १

हे अग्निदेव ? सब से पहले और प्रमुख अंगिरा आपही है। आपका ज्ञान अतिशय है। देवताओं की पवित्र आज्ञाओंको आपही सुशोभित करते है। आप सर्व-व्यापी है। आपमे विलक्षण बुद्धिमत्ता है। आपको दो माताओं ने जन्मा था। सचमुच प्राणीमात्र और मनुष्य के हितके लिए आप कितनेही स्थानो मे वास करते है। २

---

१ अश्वे ॥
२ दुहितर्दिव ॥
३ अपसा ॥
४ द्विमाता ॥

हे अग्निदेव, आपही सब के पहले थे। आप अपने मातरिश्वसहित विमान और मातरिश्वा के लिए प्रकट हो। आप तो मूर्तिमान वैभवही है। होतृस्थान मे जब सबने आपको नियुक्ति की तब आपने वह कार्यभार सहन किया और सब श्रेष्ठ देवताओं को यज्ञ पहुंचाया। उसे देखकर आकाश और पृथ्वी ... पापसे ) कम्पित हो गये। ३

हे अग्निदेव, मनुके लिए आपने द्युलोक मे प्रवेश किया और सत्कर्मों मे प्रख्यात पुरूरवाके लिए आपने अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किये। जिस समय मंथन किया मे आपके मातापिता की ओर से आपको प्रेरणा होती है उस समय ऋत्विज लोग आपको प्रथम पूर्व ओर और फिर पश्चिम ओर लिये फिरते है। ४

हे अग्निदेव आप के हव्य अर्पण करने के लिए जो मनुष्य यज्ञ-चमस उठाता है उसकी सम्पत्ति की आप वृद्धि करते है। आप अत्यन्त बलिष्ठ और कीर्तिमान है। वषट्, इस शब्द से जो आहुति दी जाती है उसका ज्ञान रखनेवाले ऋत्विज को आप सब से पहले अखंड आयु अर्पण करते हुए इस जगत् मे वास करते है। ५ ( ३२ )

हे सर्वव्यापी अग्निदेव, जो मनुष्य पापमार्गका अवलम्बन करता है, उसे आप योग्य कर्ममे प्रवृत्त करते है। शूरोंके ही प्राप्त करने योग्य सम्पत्ति के लिए जब युद्ध होने लगता है तब आप थोडेही लोगों के हाथ से अनेक शत्रुओं को मरवा डालते है। ६

हे अग्निदेव, आप उस मनुष्यकी दिन-प्रति-दिन कीर्ति बढ़ाते है। और उसे उत्तम अविनाशी पद पर आप चढ़ाते है। विद्वान भक्तके लिए आपका अन्तःकरण अत्यन्त उत्कंठित होता है और आप उसे इतनी समृद्धि तथा सौख्य अर्पण करते है कि जितनी उसे दोनो जन्मो के लिए बस होती है। ७

---

१ अरेजेतां ॥
२ अवाशय ॥
३ श्रवाय्य ॥
४ शूरसाता ॥
५ तातृषाणः ॥

हे अग्निदेव, हम धनप्राप्ति के लिए आपका स्तवन करते है, अतएव आप हमे कल्याणकारी कीर्ति अर्पण कीजिए, नवीन कर्मोका आचरण कर के हम सांगोपांग आपका भजन कर्म करे। हे द्यावापृथ्वीयो, सब देवताओ सहित आप हमारी रक्षा करे। ८

हे निष्कलक अग्निदेव, आप सब देवो मे श्रेष्ठ है। माता पिता के बिलकुल निकट ही आपका निवास रहता है। आप हमारे लिए जागृत रहे। आप, जो सबके शरीर निर्माण करनेवाले है, अपनी भक्ति करनेवाले पर मनमे अत्यन्त प्रेम रखिये और जागरूक रहिये। आप प्रत्यक्ष कल्याण ही है। आप सब प्रकारका द्रव्य सर्वत्र बो रखते है। ९

हे अग्निदेव, आपका अन्त करण अत्यन्त दयाशील है। आप हमारे पिता है। हम आपके आप्त है, हे अजित देव, सैकड़ो, प्राय, हजारो सुखो से परिपूर्ण सम्पत्ति, आपकी ओर आपही आप चली आती है। आप अतिशय शूर और अपनी आज्ञाओ का परिपालन करा लेनेवाले है। १० ( ३३ )

हे अग्निदेव, सारे संसारका जीवन आपही पर अवलम्बित है। सबकी आयुर्वृद्धि होने के लिए ही देवताओ ने प्रथम आपको उत्पन्न करके नहुप का सेनापति बनाया। तथा जिस समय मेरे पिताको पुत्रप्राप्ति हुई उस समय मनुष्य मात्र को सज्ञान करने वाली इला भी आपने उत्पन्न की। ११

हे वन्दनीय अग्निदेव, आप अपनी सर्व संरक्षक शक्तियो के योगसे हमारा, और हमपर उपकार करनेवालोका, प्रतिपालन कीजिए। आप अपने नियमानुसार, एक निमिप भी न भूलते हुए, जगत् की रक्षा करते है। हमारा यह कौटुम्बिक वैभव परम्परा मे ऐसाही स्थिर रहने के लिए आप हमारे लड़केबच्चो और गाई बैलो को संभालते रहते है। १२

---

१ सनये ॥
२ ओपिषे ॥
३ अदाभ्य ॥
४ विश्पति ॥
५ पायुभि ॥

हे अग्निदेव, यज्ञ करनेवाले भक्त के आप, बिलकुल हृदय से सहायकारी है। और हे चार नेत्रो से विभूषित रहनेवाले देव, जो कभी किसीपर शस्त्र नही उठाता उसके लिए आप प्रेमसे उद्दीपित होते है। आप सबका पोषण करते है आप के हाथ से किसीका भी नाश नहीं होता। जो स्तुति कर्ता आपको हवि अर्पण करता है वह चाहे जितना गरीब हो, आप उसकी स्तुति को हृदय पूर्वक स्वीकार करते है। १३

हे अग्निदेव जो उपासक आपका अत्यन्त स्तवन करता है उसके लिये आप सब वैभव—वह वैभव जो अत्यन्त स्पृहणीय है,—सिद्ध कर रखते है। सब लोग कहते है कि आपका भक्त चाहे स्वय अपना पोषण करने मे भी सब प्रकार से असमर्थ हो, तथापि आप अत्यन्त प्रेमसे उसको सभालनेवाले पिताही बन जाते है। आपका ज्ञान तो अलौकिक ही है, तथापि आप इतने वत्सल है कि छोटे छोटे बच्चो को आप दिशा और उपदिशा सिखाते रहते है। १४

जैसे अच्छी तरह सजा हुआ कवच शूरो की रक्षा करता है वैसे ही पवित्र और सदाचारी पुरुष का आप सब प्रकार से परिपालन करते है। स्वादिष्ट भोजन तैयार करके जो अपने घरमे (अतिथियो को) सन्तुष्ट करता है और इस प्रकार जो प्राणि मात्र के लिए मानो कुछ अनुष्ठान ही करता है उसे श्रेष्ठता मे स्वर्ग की भी उपमा भली लगती है। १५ (३४)

हे अग्निदेव, जिस कुमार्ग मे हम दूर तक गये थे उसके लिए-उस पातक के लिये आप हमे क्षमा करे। आप हमारे आप्त, हमारे पिता, सोमरस अर्पण करनेवाले भक्तो के हितकर्ता सब के पोषणकरने वाले, और अज्ञ मानवको श्रेष्ठ ऋषि—पदवी ५ पहुंचाने वाले है। १६

मनु, अंगिरस और ययाति के पास जिस प्रकार आप पहले जाते थे उसी प्रकार हे पवित्र अग्निदेव, हे आंगिरस, आप हमारे सदन की ओर आइये, और दिव्यलोक के सब लोगो को भी साथ लेते आइये। उनको आसन पर बिठाइये और उनका प्रिय हव्य उन्हे अर्पण कीजिए। १७

---

१ यज्यवे ॥
२ स्पार्ह ॥
३ प्रयतदक्षिण ॥
४ शरण ॥
५ दैव्य जन ॥

हे अग्निदेव, हमने अपने सामर्थ्य और बुद्धि का उपयोग करके यह जो स्तोत्र बनाया है उसके योग से आप आनन्दित हो और हमे शक्ति तथा उत्तम बुद्धिमत्ता प्रदान करे। हमे अत्यन्त स्पृहणीय वैभव की ओर ले जाने वाले आपही है। १८(३५)

## सूक्त ३२.

ऋषि हिरण्यस्तूप आंगिरस । देवता–इन्द्र ॥

मैने यहा वज्रधारी इन्द्र के पराक्रम प्रेमपूर्वक गाये है । अखिल पराक्रम के कर्मो मे पहला स्थान इन्हींको देना पड़ेगा। इन्हीं इन्द्रदेव ने अहि का वध किया, उदको के लिए मार्ग निकाल दिया और पर्वतो के हृदय विदारण किये। १

त्वष्टा देव ने उन्हे वज्र तैयार कर दिया था। ( उसे धारण करके ) उन्हो ने, पर्वतो मे दबाव जमा कर बैठे हुए अहि का वध किया। ( उसके साथ ) और वत्स के लिए जैसे गौवे रांभती है वैसे ही भारी शब्द करते हुए पानी के नद के नद बहने लगे और बडे वेग से समुद्र मे जा मिले। २

शूरता की तेजी मे आने पर इद्रको सोमकी इच्छा हुई और तीन यज्ञो मे उन्हो ने वह पान किया। उन्हीं उदार इन्द्र ने वज्र को अपना आयुध बनाकर सब अहियो मे ज्येष्ठ अहि वृत्र का वध किया। ३

हे इन्द्र, जिस समय आपने सब अहियो से ज्येष्ठ अहि का वध किया और कपटकर्मो मे प्रवीण रिपुओ के कपट व्यूहो का विध्वस किया उस समय सूर्य, उषा और द्युलोक को जन्म प्राप्त हुआ और आपका हाथ पकड़नेवाला कोईभी शत्रु आपके लिए नहीं बचा। ४

---

१ अभि–वस्य ॥
२ वक्षणा ॥
३ वाश्रा.॥
४ प्रथमजाम ॥
५ मायिनाम ॥

वृत्र नामका अहि क्रूर अवश्य था, परन्तु वास्तव मे उसकी क्रूरता उसके नाममेभी अधिक थी परन्तु इन्द्रने अपने अत्यन्त उग्र वज्रसे उसके बाहु काटकर उसे मार डाला। जिस प्रकार कुल्हाड़ी से किसी वृक्षकी डाले काट डाली जायं उसी प्रकार छिन्न विच्छिन्न होकर मरा हुआ अहि पृथ्वी पर गिर पड़ा। ५ (३६)

इस व्यर्थ अभिमान मे आकर, कि हमारा प्रतिस्पर्धी कोई भी नहीं है, अहि ने महापराक्रमी, अजित, और अनेक शत्रुओ के लिए भी भारी इन्द्र का आह्वान किया। परन्तु उनके अत्यन्त उग्र शस्त्रो के सामने वह टिक नहीं सका। पर इन्द्रसे वह इतनी शत्रुता रखता था कि बड़े बडे दुर्गो को भी उसने बिलकुल चूर चूर कर डाला। ६

हाथ और पैर टूट गये, तथापि अहि इन्द्र से युद्ध करता ही रहा। इन्द्रने उसकी पर्वतप्राय भुजाओ पर अपना वज्र चलाया। निस्सत्व हो जाने पर भी पराक्रमी पुरुष की ऐंठ दिखलानेवाला अहि अस्तव्यस्त हो छार छार होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। ७

पृथ्वीपर फैले हुए किसी महानदकी तरह जब कि वृत्र भूमिपर पड़ा हुआ था तब जलोके प्रवाह धैर्य से उमड कर उसके शरीर पर से बहने लगे। अपनी सामर्थ्य से जिन उदको को वृत्र ने बन्द कर रखा था उन्हीं के पैरो पर वह मर कर गिर पड़ा! ८

वृत्र की माता उसके शरीर पर आड़ी गिर पड़ी। इन्द्रने अपना उग्र वज्र उसके ... के नीचे से चलाया। अर्थात् माता ऊपर पड़ी हुई थी और उसके नीचे उसका पुत्र वृत्र पड़ा हुआ था। इस दशा मे वह दानु ऐसी जान पड़ने लगी जैसे कोई धेनु अपने बछड़े को पेटके नीचे लिये हुए हो? ९

---

१ व्यंसम ॥
२ तुविबाधम ॥
३ वृष्णा ॥
४ पत्सुत शी ॥
५ नीचावया ॥

वृत्रका शरीर ऐसे जलप्रवाहो मे डूब गया था जिन्हे कभी रुकावट और विश्रान्ति नही थी। उसके शरीर पर जलके प्रवाह आनन्दपूर्वक बहते थे और वह इन्द्र शत्रु बड़े अंधकार मे जा पडा था, १० ( ३७ )

अहि ने जिन जलो को प्रतिबन्ध मे रखा था और इस कारण जो जल उस दुष्ट के दास हुए थे वे, पणि की प्रतिबन्ध मे रखी हुई गौओं की तरह बन्दिवान हो गये थे। उदको के निवासस्थान, जो पहले बन्द हो गये थे, इन्द्र ने वृत्र को मार कर, खोल दिये। ११

हे इन्द्र, आपही एक श्रेष्ठ देवता है। जिस समय आपके आयुध पर अहि ने प्रहार किया उस समय, अश्व के लिए तैयार किये हुए कवच की तरह आपने उसकी कुछ परवा नहीं की। आपने गौओं को प्राप्त कर लिया, हे शूर आपने सोमरस भी प्राप्त कर लिया और सप्त नदियो का प्रवाह जारी करने के लिए आपने उन्हे बन्धमुक्त किया। १२

विद्युत्प्रयोग अथवा गर्जना, इन दोनो मे से एक का भी वृत्र के लिए कोई उपयोग नहीं हुआ। तथा उन्हो ने जो पर्जन्य वृष्टि की और जो वज्र चलाये उनका भी उसके लिए कोई उपयोग नहीं हुआ। जिस समय इन्द्र और अहि का युद्ध हुआ उस समय उन्ही दान शूर इन्द्र ने चिरकालीक विजय सम्पादन किया। १३

हे इन्द्र, जब कि वृत्र को मारने के बाद आपके हृदय मे भय ने प्रवेश किया तब ऐसा कौन आपको देख पडा, जो वृत्रवध का बदला आपसे ले सकता हो ? क्योंकि जैसे कोई भयचकित श्येन पक्षी ( फर फर ) आकाश मे उड जाता है उसी प्रकार आप ( जल्दीसे ) निन्नानवे नदिया लांघते हुए पार निकल गये। १४

---

१ निण्यम् ॥
२ बिलम् ॥
३ सर्तवे ॥
४ मिहम् ॥
५ अतर ॥

इन्द्र सम्पूर्ण चराचर सृष्टिके स्वामी है। जो प्राणी शृंगयुक्त है और जो निरुपद्रवी है उन दोनोंपर उनकी सत्ता है। उनके बाहु वज्रके समान है, सब मानवोंके राजा वही है। जिस प्रकार रथचक्रकी दौड़ पहियेके आरोंको घेर लेती है उसी प्रकार इन्द्रने यह सब वेष्टित कर लिया है। १५ (३८)

॥ दुसरा अध्याय समाप्त ॥

---

# तिसरा अध्याय.

---

## सूक्त ३३.

ऋषि—हिरण्यस्तूप आंगिरस। देवता—इन्द्र।

आइये, गोधनकी इच्छा से हम इन्द्रके पास चलें। वही हमारी बुद्धिमत्ता की अत्यन्त वृद्धि करते हैं। वे अमर हैं। क्या वे वैभव और गोधन प्राप्त करने का मुख्य साधन हमें बतला देंगे? १

---

१ चर्षणीनाम ॥

२ गव्यन्त ॥

जिस प्रकार श्येनपक्षी अपने सदा के रहने की जगह की ओर उड़जाता है उसी प्रकार, मार्गमे उत्तमोत्तम स्तोत्रोंसे इन्द्रकी वन्दना करते हुए, मैंने उसके पास गमन किया। ये इन्द्र सम्पत्ति देनेवाले, शत्रुओंसे कभी हार न जानेवाले और भक्तोंद्वारा अर्चन करने योग्य है। २

अपनी सब सेना साथ मे लेकर इन्होंने वाण के तरकश ( पीठ पर ) बांधे है। ये बहुत[2] श्रेष्ठ है। जिसे उनकी इच्छा होती है उसे देने के लिए वे उसके पास गाई ले जाते है। हे अत्यन्त श्रेष्ठ इन्द्र, अनेक प्रकारकी उत्कृष्ट सम्पत्ति लेकर आइये और हमारे लिए कृपणता न धारण कीजिए। ३

हे इन्द्र, यद्यपि आप अपने अनुचरो सहित चले थे तथापि घन के समान अपने शस्त्रसे आप अकेले ही सम्पत्तिमान् दस्युका वध कर डाला! वे चारो ओर[3] से आपके धनुष पर एकदम टूट पड़े तथापि उन्हीं सनकों का ही नाश हुआ। आपका यजन करना उन्हे कभी मालूम ही न था। ४

हे उग्र इन्द्र, आपकी स्थिरता वखानने योग्य है और आपके अश्व पीतार्वर्ण के है। जब आपने, अपनी आज्ञा न माननेवाले दुष्टो को अन्तरिक्ष, पृथिवी और स्वर्ग से निकाल दिया तब उन्होंने अपने मस्तक ( लज्जासे ) पीछे फेर लिये। वे स्वयं तो आपका यजन कभी करते न थे, किन्तु अन्य यजन करनेवाले लोगो से स्पर्धा अवश्य किया करते थे। ५ (१)

इन्द्र, जो सर्वतोपरि दोषरहित है, उनकी सेना से भी इन्होंने युद्ध मचाया! नवग्वों ने खड़े होकर इन्द्रको उत्तेजना दी। सामर्थ्यवान् पुरुषोंसे लड़नेमे निर्वल लोगो की जैसी दुर्गति होती है वैसी ही जब उनकी भी दशा हो गई तब उन्हे इन्द्र की शक्ति का पूरा परिचय मिला और वे ( जो मार्ग उन्हे सूझ पड़े उन ) मार्गों से भग गये। ६

---

१ धनदाम् ॥
२ समर्य- ॥
३ विपुणक् ॥
४ हरिवः ॥
५ अनवद्यस्य ॥

उनके हँसने या रोने की कुछ भी परवा न करते हुए, हे इन्द्र, आपने उनसे युद्ध किया और उन्हें रजोलोक के बाहर निकाल दिया। दस्यु जो उन गुफाओं में था तब आपने उसे दग्ध किया और जिसने, आपके लिए सोमरस तैयार करके आपका स्तवन किया उसके स्तोत्रका आपने स्वीकार किया। ७

सुवर्ण-भूषणों से सज्जित होकर उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी का परिवेष्टन किया। उन्होंने बहुतसा अपना पराक्रम प्रकट किया, तथापि वे इन्द्रका पराभव नहीं कर सके। उनके दूतों को इन्द्रने सूर्य के द्वारा हतवीर्य किया। ८

हे इन्द्र, जिस समय आपने, अपने सामर्थ्य से पृथ्वी और स्वर्ग पर, सब प्रकारसे, अपनी सत्ता प्रस्थापित की उस समय आपने अपना अपमान करनेवालों का अपने भक्तों के द्वारा पराभव करवाया और अपने तीव्र शस्त्रों से दस्यु को पराजित किया। ९

स्वर्ग और पृथ्वीका जिन्होंने अन्त लगाया वे भी अपने कपटजालों से दान दाता इन्द्रको नहीं घेर सके। सामर्थ्यवान इन्द्रने अपने वज्र को ही अपना सहायक माना और अपने तेज के योग से धेनुओं को अन्धकार से निकाला। १० (२)

इन्द्रने जो मार्ग निकाल दिया उस मार्ग से जल के प्रवाह बहने लगे। परन्तु वृत्र ने, ऐसी महानदी में पैठकर, विशालरूप धारण किया, जिसमें नौका भी चल सकती है। फिर इन्द्रने वृत्र के वध में ही अपना सारा ध्यान लगाया और उसे सदा के लिए पृथ्वी में मिला दिया। ११

---

१ अदह ॥
२ स्पश ॥
३ महिना ॥
४ वृषभ ॥

इलीविशा के दुर्गम दुर्ग आपने ढहा दिये और शृंगयुक्त शुष्ण का आपने विदारण किया। आपके साथ जिस शत्रु ने युद्ध किया उसी का आपने, अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य और वेग का उपयोग करके, वज्र से वध किया। १२

उनका सहायक वज्र उनके शत्रुओंको ताक कर चला। अपने तीव्र शस्त्रों से उन्होंने शत्रुओं के नगर ढहा दिये। इन्द्रने अपने वज्रको वृत्रसे मिला दिया और उसका संहार करके अपने मन का हौसला पूरा किया। १३

हे इन्द्र, जिस कुत्सपर आपका अत्यन्त प्रेम था उसकी आपने रक्षा की और वीर्यशाली दशद्यु जब युद्धमें भिड़ा था तब उसकी सहायता करने को आप दौड़े। घोड़ों की टापों से उड़ी हुई धूल आकाशतक पहुँची, श्वैत्रेय को भी ऐसी योग्यता प्राप्त हुई कि जिससे लोग फिर उसकी सत्ता को स्वीकार कर सके १४

तुग्रियों के समुदाय में आपने उसके शान्तस्वभाव वाले वृषभोंकी रक्षा की और जब कि भूमि-सम्पादन की ईर्ष्या से युद्ध हो रहा था तब, हे उदार इन्द्र, आपने उसकी धेनुओंको सम्हाला। यहां बहुत कालपर्यन्त जमकर जिन्हों ने शत्रुताका वर्ताव किया उन अपने रिपुओं को आपने अत्यन्त अमंगल वेदना सहन कराई। १५ ( ३ )

---

१ शतन्युम ॥

२ शाशदान ॥

३ वृषभम् ॥

४ ज्याक ॥

## सूक्त ३४.

ऋषि—हिरण्यस्तूप आङ्गिरस। देवता- अश्वि०॥

हे सर्वज्ञ अश्विनो, आज आप तीनोंवार हमारे ही हूजिये। आपकी गति[1] सर्वत्र है। आपकी दानशूरता भी चारों ओर प्रसिद्ध है। जिस प्रकार वस्त्र और जाड़े की रात का अत्यन्त निकट सम्बन्ध रहता है उसी प्रकार आप दोनों एक दूसरे से संलग्न है। मुझ भक्त के आप वश हूजिये। १

यह सब को विदित हो है कि आप के जिस रथ के द्वारा मधुररस प्राप्त होता है उसके तीन पहिये है और वह सोम के मार्ग में गमन करता है। उस रथ का तोल सम्हालने के लिए उस पर तीन स्तम्भ खड़े किये गये है। हे अश्विनो, आप तीन बार रात को और तीन ही बार दिन को परिभ्रमण करते है। २

एक ही दिन मे तीन बार आप (भक्तों के) पातक नष्ट करते है। आज आप तीन बार हमारे यज्ञ पर माधुर्य की वर्षा कीजिए। हे अश्विनो, आप (प्रतिदिन) सुप्रभात और संध्या के समय, हम पर ऐसे कृपा प्रसाद की रेल-पेल करते रहिए कि जिससे हमें सामर्थ्य प्राप्त हो। ३

आप तीन बार अपने निवासस्थान की ओर जाइये, तीन बार आप अपने आज्ञापालक भक्तों की ओर गमन कीजिए। और ऐसा कीजिए कि, जिससे जो पुरुष अत्यन्त रक्षा करने योग्य है उन्हे मानो, तीन बार से तीन ही प्रकार की कोई शिक्षा मिलती हो। हे अश्विनो, आप हमें तीन बार ऐसा धन अर्पण कीजिए कि जिससे हमारे मन को आनन्द हो। और हमारे पोषण का ऐसा उत्तम प्रबन्ध कीजिए कि सब लोग कहने लगे कि, "हमारा ऐसा अदभुत सौभाग्य है।" ४

---

१ विभुः॥
२ पवयः॥
३ अवद्यगोहना॥
४ पृक्ष॥

हे अश्विनो, तीन बार सम्पत्ति लेकर हमारे पास आइये, जब कि तीन बार देवों का यजन हो रहा हो तब आप हमारे सद्विचारो को तथा सौभाग्य और सत्कीर्ति को भी तीन बार बढ़ाइये। ( आकाश की ) दुहिता ने आप के त्रिचक्री रथ मे स्वर्ग मे आरोहण किया था। ५

हे अश्विनो, स्वर्ग, पृथ्वी और उदक, तीनो से प्राप्त की हुई, तीनो प्रकार की, औषधे तीन तीन बार हमे दीजिए। कल्याण कारी सम्पत्ति के आप अधिपति है, और हमे कल्याण की इच्छा है, अतएव अपने तीनो महातत्वो से हमारे पुत्र को निर्भय कीजिए और, साथ ही, उस पर अपनी कृपादृष्टि भी रखिये। ६ ( ४ )

हे अश्विनो, प्रति दिन तीन बार आपका यजन करना ठीक है। तीनो महातत्व साथ लेकर, आपने पृथिवी के चारो ओर विश्रान्ति ली है। हे सत्यस्वरूप अश्विनो, आप अत्यन्त दूर प्रदेश से रथ पर बैठ कर आइये, और जिस प्रकार प्राणवायु शरीर मे प्रवेश करती है उसी प्रकार आप अपने तीन ( निवासस्थानो को ) गमन कीजिए। ७

हे अश्विनो, सप्तजननी के समान शोभा देनेवाली ( सप्त ) नदियो के साथ आप यहा आइये। यहा तीन यज्ञपात्र तैयार है और तीन प्रकारका हव्य बना रखा है। पृथिवी के तीन प्रदेश है। आप स्वर्ग के ऊपर परिभ्रमण करके स्थिर अन्तरिक्ष की रात दिन रक्षा करते रहते है। ८

आपके त्रिकोणाकृति रथ के तीन चक्र कहां है? जिस पर रथवान् के बैठने की उत्तम जगह बनी हुई है उस तुह्मारे रथ के बन्धुरा कहां है? हे सत्यस्वरूप अश्विनो, जिस पर आरूढ़ होकर आप यज्ञ मे पधारते है उस शक्तिवान रासभ को आप कब जोतेंगे? ९

---

१ त्रिष्ठम् ॥
२ शुभस्पती ॥
३ त्रिधातु ॥
४ आहावा ॥
५ बन्धुर ॥ ( बैठनेवाले [illegible] रहते है )

हे सत्यस्वरूप अश्विनो, इधर आइये। यह हव्य आपको अर्पण किया जाता है। आपका मुख मधुपान करने के लिए तैयार ही रहता है अतएव आप स्वमुख से मधुर सोमरस पान कीजिए। आपका अतर्शनीय और घृतसमृद्ध रथ सविता देव, उषा के भी पहले, हमारे गज में भेज देते है। १०

हे सत्यस्वरूप अश्विनो तेतीस देवो को साथ लेकर इस मधुर पेय के लिए आइये। हमारी आयु की वृद्धि कीजिए, पातको का क्षालन कीजिए, हमारे शत्रुओंका निरोध कीजिये और हमे सदा अपने समागमका लाभ दीजिए। ११

हे अश्विनो, अपने त्रिकोणाकृति रथके द्वारा, नीरोगतारूप सन्ततिसे युक्त, सम्पत्ति हमारे पास ले आइये। आप हमारी प्रार्थना सुननेके लिए तैयार है, है, अतएव अपनी रक्षाके लिए हम आपको बार बार पुकारते है। जब पराक्रम के योग से सम्पत्ति प्राप्त होनेका सम्भव हो तब आप ऐसा कीजिए कि जिससे हमारे वैभवमें वृद्धि हो। १२ (५)

## सूक्त ३५.

ऋषि–हिरण्यस्तूप आंगिरस। देवता–अग्नि मित्र वरुण, रात्रि, सविता। २–११ सविता॥

हम अपने कल्याण के लिए पहले अग्निका पाचारण करते है। हम अपनी रक्षा के लिए मित्र–वरुण को भी यहा बुलाते है। सारे जगत को अपने अपने स्थानपर पहुँचानेवाली रात्रि को भी हम आमत्रण देते है। हम अपना प्रतिपालन होने के लिए सविता देव को भी पुकारते है। १

१ नामभि ॥
२ नारिष्टम ॥
३ शृण्वन्ता ॥
४ निवशनीम ॥

सम्पूर्ण भुवनोका अवलोकन करनेवाले सवितादेव अपने सुवर्णमय रथ मे बैठकर कृष्णवर्ण आकाश से मार्ग आक्रमण करते हुए, और अमर्त्य तथा मर्त्य सबको अपने अपने उद्योग मे प्रवृत्त करते हुए, चले आ रहे है। २

सवितादेव उच्च और पुरोगामी मार्गसे गमन करते है। वे यजनीय है। वे अपने शुभ्र अश्वोंपर आरोहण करके चलते है। सवितादेव सम्पूर्ण पापोंका नाश करते हुए बहुत दूरवाले प्रदेशसे इधर आ रहे है। ३

सवितादेव हमारे लिये पूज्य है। उनके किरण चित्रविचित्र रंग के है। उनमे कृष्णवर्ण अंधकार को दूर करने का सामर्थ्य है। वे देखिये अपने सुवर्णभूषित रथ मे बैठे हुए है। इस रथ का आड़ा डण्डा भी सुवर्ण का बना हुआ है। रथ के जितने भिन्न भिन्न आकार होते है वे सब इस रथ मे पाये जाते है। ४

जिसका जुआ सुवर्णका है, ऐसे रथ को वहन करनेवाले सवितादेव के अश्व जिनके पैर सफेद शुभ्र है—उन्होंने सब लोकोंपर स्वच्छ प्रकाश डाला है। सारे लोक और मनुष्य निरन्तर सवितादेव के समीपही वास करते है। ५

कुल द्युलोक तीन है। इनमे से दो सवितादेव के सन्निध रहते है और एकका स्थान यम के प्रदेश मे है। सम्पूर्ण अमर विश्व, पहिये के अवन (अक्ष) की तरह, सवितादेव पर अवलम्बित है। जिसे इस बात का ज्ञान हो उसे बोलनेके लिए आगे बढ़ने दीजिए। ६ (६)

---

१ रजसा ॥

२ परावत ॥

३ तविषीम ॥

४ अख्यन ॥

५ निकृतत ॥

जिनकी गति बहुत सुन्दर है, जिनकी प्रयाणपद्धति में बहुत गम्भीरता है, जो ( शत्रुओं के ) संहारकर्ता हैं और जिनमें उत्तम मार्गदर्शकता है उन्हीं सवितादेव ने सम्पूर्ण अन्तरिक्ष पर प्रकाश फैलाया है। इस समय सूर्य भला कहां होंगे ? किसे मालूम होगा कि उनकी रश्मियोंने कौन से द्युलोक तक सैर मारी है ? ७

उन्होंने पृथ्वी की आठों दिशा, तीनों निर्जल प्रदेश और सातों नदियों को सुप्रकाशित किया है। जिनके नेत्र सुवर्णकी तरह चमकदार हैं वे सवितादेव, अपने उपासकों के लिए उत्तमोत्तम रत्न साथ लिये हुए, बिलकुल पासही आ पहुंचे हैं। ८

दूर ऊपर तक संचार करनेवाले और कांचनकी तरह सुन्दरवर्णके हस्तों से सुशोभित सविता स्वर्ग और पृथिवी के बीच में अपना मार्ग आक्रमण करते रहते हैं। वे रोगों का निर्मूलन करते हैं, सूर्यकी ओर गमन करते हैं और कृष्णवर्ण अन्तरिक्ष में द्युलोकतक जा पहुंचते हैं। ९

जिनके हस्त सुवर्णकी तरह सुन्दर हैं, जो शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं जो उत्तम मार्गदर्शक हैं, जिनकी कृपासे सारे सुख प्राप्त होते हैं, और जो स्वकीयों का अभिमान रखनेवाले हैं वे सविता हमारी ओर आवें। प्रत्येक सायंकालमें जिनकी कीर्ति गाई जाती है वे सवितादेव, राक्षसों और यातुधानों का संहार करते हुए, यहां आने के लिए तैयार हुए हैं। १०

हे सवितादेव धूल आदि निकाल कर जो अन्तरिक्ष के प्राचीन मार्ग स्वच्छ कर रखे गये हैं उन सुगम मार्गों से आज ( यहां आकर ) हमारी रक्षा कीजिए और हमें आशीर्वाद दीजिए। ११ ( ७ )

---

१ सुनीथः ॥
२ दाशुषे ॥
३ अर्माचाम ॥
४ सुमृळीकः ॥
५ पुष्याम ॥

## सूक्त ३६.

# अनुवाक ८.

ऋषि-घोर । देवता-अग्नि ॥

देवके दर्शनकी उत्कठा रखनेवाले तुह्मारे समान जो अनेक लोग है उनका अभि-
मानं रखनेवाले अग्निदेव की प्रार्थना मै सौन्दर्य-परिप्लुत स्तोत्रो से करता हूं । अन्य
मनुष्य भी इन्हींका स्तवन करते रहते है। १

सामर्थ्य की वृद्धि करनेवाले अग्निकी लोगो ने संस्थापना की है । हम भी
उन्हे हव्य अर्पण करके प्रकट कराते है । हे अति उदार अग्निदेव, आप, इस जगह
पराक्रमके कार्यो मे प्रसन्न चित्तसे, हमारे रक्षक हो। २

आप सब देवोका हव्य पहुँचानेवाले और अखिल ज्ञान सम्पूर्ण है, आपको
हम अपना प्रतिनिधि चुनते है। आप बड़े है । आपकी दीप्ति सर्वत्र सचार
करती है और आपके प्रकाशरश्मि स्वर्ग तक जा पहुँचते है। ३

आप ( देवोंके ) अत्यन्त पुरातन प्रतिनिधि है। वरुण, मित्र, और अर्यमा
सब आपको प्रज्ज्वलित करते रहते है। हे अग्निदेव, जो मानव आपको धन अर्पण
करता है वह आपकी सहायता से सम्पूर्ण विश्व पर विजय प्राप्त
करता है। ४

---

१ पद्वम् ॥
२ सहोवृधम् ॥
३ प्र-हुतम् ॥
४ दूताः ॥

हे अग्निदेव, आप हमारे हवि आनन्द से देवों तक पहुँचा देते हैं। आप हमारे गृहोंके स्वामी और सब लोगोंके प्रतिनिधि हैं। देवोंने जितने सनातन नियम बनाये हैं वे सब आपके यहां एकत्र हुए हैं। ५

हे अत्यन्त तरुण अग्निदेव, आप उत्तम भाग्य से युक्त हैं। आप में समस्त हवि अर्पण किये जाते हैं। इस लिए आज, और उसके आगे भी हमें अत्यन्त सामर्थ्य प्राप्त कराकर, ऐसा कीजिए कि जिससे हमारा यज्ञ प्रसन्न हृदय से देवों को प्राप्त हो। ६

भक्तिनम्र उपासक, स्वयं अपने तेजसे देदीप्यमान अग्निका अर्चन करते हैं। जिन पुरुषों ने शत्रुओं पर जय प्राप्त किया है वे अग्निको हव्य अर्पण करके प्रदीप्त करते हैं। ७

अपने शत्रुओं का नाश करके वे उस संकट से पार हुए। स्वर्ग, पृथ्वी और जल प्रवाहों को अपना निवासस्थान बनाने के लिए उन्होंने उनका विस्तार किया। सामर्थ्यवान अग्नि को पुकार करने पर वे कण्व के लिये सम्पत्तिदायक हों और गोधन आदि वैभव के विषय में हमें इच्छा उत्पन्न होने पर (न कि सिर्फ गौओं का ही शब्द, किन्तु) अश्वों का भी ठेहनाना सुनाई दे। ८

हे अग्निदेव, आप श्रेष्ठ हैं। आप अपने आसन पर विराजमान होइये। देव समुदाय की ओर आप सदैव पधारते रहते हैं। अपना तेज प्रकट होने दीजिए। आप यज्ञ के योग्य हैं। आपका स्तवन बहुत होता रहता है। आप अपने शीघ्र संचारी और रमणीय आकार धारण करनेवाले धुएं के टोल छोड़ दीजिए। ९

सब देवों को हव्य पहुंचानेवाले हे अग्ने, आप अत्यन्त पवित्र हैं। मनु के लिए देवों ने यहां आपकी स्थापना की और कण्व, मेध्यातिथी, वृषा और उप स्तुत ने आप से उदारता प्रकट करने की, स्फूर्ति उत्पन्न की। १० (९)

---

१ मन्द्र· ॥
२ सुवीर्या ॥
३ स्वराजम् ॥
४ गविष्टिषु ॥
५ देववीतम ॥
६ धनस्पृतम ॥

जिन्हे मेध्यातिथी और कण्व नियम से भी अधिक प्रज्वलित करते हैं उन्हीं अग्नि की ज्वालाओं ने अपना प्रखर तेज प्रकट किया है। ये स्तोत्र उन्हीं अग्निदेव की महती वर्णन कर रहे हैं। उन्हीं की हम भी स्तुति करते है। ११

हे हवियों से शोभित होनेवाले अग्निदेव, आप हमारे वैभव को पूर्ण कीजिए। सचमुच आप देवों के अत्यन्त समीपीय सम्बन्धी है। जो सामर्थ्य कीर्ति होने योग्य है, उसके स्वामी आपही है। आप श्रेष्ठ हैं, आप हमें सौख्य अर्पण कीजिए। १२

सविता देव की तरह आप हमारी रक्षा के लिए सज्ज होकर खड़े हो। जो कि अंजली बाध कर आपका स्तवन करनेवाले भक्तों के साथ हम आपको पुकारते है, इस लिए आप उठकर खड़े हो जाइये और हमें सामर्थ्य दीजिए। १३

हमारे लिए खडे होकर हमें पापों से बचाइये और अपनी ज्वलन शक्ति से सब खलों को दग्ध कर डालिये। हमें उठाकर खडा कीजिए, जिससे हम संसार में सुख पूर्वक संचार कर सकें। देव समुदाय में आपने हमारा हव्य ग्रहण किया है। १४

हे अग्निदेव, राक्षसो से हमारी संरक्षा कीजिए। लोग द्रव्य डुबाने के मिस से जो कपट करते हैं उनका उपसर्ग हमें न पहुँचने दीजिए। जो हमारी हत्या या वध करने के लिए उत्तेजित हुआ हो उस से भी, हे अत्यन्त तरुण और प्रकाशवान् देव, हमें बचाइये। १५ ( १० )

---

१ ईधे ॥

२ स्वधावः ॥

३ ऊतये ॥

४ विदा ॥

५ अराव्ण ॥

हे अग्निदेव, आपकी दंष्ट्रा मानो ज्वालों ही से बनी हुई जान पड़ती है। जो हमारा धन डुबानेवाला हो उसे, घन के सदृश किसी शस्त्र से, बिलकुल ही मार डालिये। जो ( नीच ) मनुष्य रात भर जाग कर हमारे विरुद्ध समालोचन करता हो उस हमारे शत्रु का हम पर अधिकार न चले। १६

अग्निदेव ने स्वयं पसन्द करके उत्तम सामर्थ्ययुक्त और उत्कृष्ट भाग्य कण्व को प्राप्त करा दिया। अग्नि ने मित्रों की रक्षा की। तथा उन्होंने, द्रव्योपार्जन के समय, मेध्यातिथी और उपस्तुत का भी प्रतिपाल किया। १७

हम तुर्वश, यदु, और उग्रदेव को, उनके अत्यन्त दूरस्थान से, यहां लाने के लिये, अग्नि के द्वारा, प्रार्थना करते हैं। दस्यु का निग्रह करनेवाले ये अग्निदेव नववास्त्व बृहद्रथ और तुर्वीति को यहां ले आवें। १८

हे अग्निदेव, मनु ने इस नाते से, कि आप लोकहित के लिए प्रकाश करनेवाली ज्योति हैं, सदैव के लिए आप की स्थापना की। आप न्याय नीति के साथ प्रकट हुए। घृत का हव्य आप को सदा अर्पण किया जाता है। जिन्हें लोग के सम्पूर्ण लोग नमन करते हैं वही आप कण्व के लिए प्रदीप्त हुए हो। १९

अग्नि की ज्वालाएं उज्ज्वल, प्रबल, भयप्रद और ऐसी हैं कि जिनके पास जाना असम्भव है। ( हे अग्निदेव ) राक्षस, पिशाच और सम्पूर्ण दुष्ट लोगों को सदा के लिए दग्ध कर डालिए। २० । ११ )

---

१ अत्यक्तुभिः ॥
२ सानौ ॥
३ परावत ॥
४ ऋतजात ॥
५ समवन्त ॥

## सूक्त ३७.

ऋषि कण्व घोर। देवता-मरुत॥

हे कण्व, मरुद्गणों को सम्बोधन करके गायन कीजिए। ये मरुद्गण सुन्दर रीति से रथ पर विराजमान हुए हैं। परन्तु वे अपने रथ में अश्व नहीं जुडाया करते। इन्हें क्रीड़ा बहुत अच्छी लगती है। १

ये मरुद्गण स्वयप्रकाशित हैं। ये अपनी चित्तेल हरिनी, अपनी तलवारें, अपने भाले, और अपने आभरण साथ लेकर इस जगत में प्रकट हुए। २

जिस समय वे अपने हाथ से अपनी चाबुक की आवाज करते हैं उस समय वह मुझे ऐसी सुनाई देती है मानो वह चाबुक यहीं बज रही हो। मार्ग में चलते समय वे उसे बड़ी सुन्दर रीति से (अपने हाथ में) रखते हैं। ३

अपने प्रिय इन मरुद्गणों की प्रसन्नता के लिए किसी दैविक स्तोत्र का गान करो। ये मरुद्गण (शत्रुओंको) कुचल डालनेवाले, तेजोवैभव से युक्त और अत्यन्त प्रबल हैं। ४

धेनुओं को प्राप्त करने के लिये, पराक्रमी और क्रीडा निपुण मरुद्गणों का स्तवन करो। स्वादिष्ट रसोंका सेवन करके ये वीर्यवान हुए। ५ (१२)

स्वर्ग और पृथिवी को हिला डालनेवाले हे मरुद्देवताओ, (इस विश्व में) ऐसा कौन श्रेष्ठ है कि जिसे तुम (पृथ्वी के) सिर तक फेंक नहीं दे सके? ६

---

१ अनर्वाणम् ॥
२ पृषतीभिः ॥
३ वदान् ॥
४ देवत्तम् ॥
५ जम्भे ॥
६ धूतय ॥

आपके गमन करते समय, आपके उग्र कोप से भयभीत होकर मनुष्य प्रत्येक बार आधार ढूंढ़ने लगे हैं। कठोर शिखरों वाला पर्वत तक ( आपका कोप देखकर ) भय कम्पित होगा। ७

इन मरुदेवों का सचार आरम्भ होते ही, यह पृथ्वी, उनके आगमन के समय, डर से, इस प्रकार थर थर कांपने लगती है जैसे वार्धक्य से जीर्ण हुआ कोई नृपति। ८

इनका जहां जन्म हुआ वह स्थान अत्यन्त स्थिर है। अपनी माता के पेट से बाहर निकलने के लिए वे पक्षी ही बन गये। क्यों कि उनका सामर्थ्य द्विगुणित था। ९

इसके अतिरिक्त इन वाग्देवों के पुत्रों ने विश्व की सीमाएं बहुत दूर तक बढ़ाई, ताकि धेनु अपने वत्स के पास अच्छी तरह जा सकें। १० ( १३ )

अपने मार्ग से जाते समय वे मेघ के बालक को नीचे गिरा देते हैं। इस मेघ बालक का आकार दीर्घ और विस्तृत है। उसे प्राय कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। ११

हे मरुद्देवताओ, आपका सामर्थ्य इतना बड़ा है कि उससे आप सब लोगों को हिला डालते हैं और पर्वतों को भी कम्पित करते हैं। १२

जिस समय मरुद्देव गमन करते हैं उस समय मार्ग में आपसमें उनका ... होता है। वह क्या किसी ( भाग्यवान ) पुरुष को सुनाई देता होगा? १३

---

१ यामाय ॥
२ जुजुर्वान् ॥
३ निर्ऋत्तं ॥
४ नम्भ्सु ॥
५ पृथुम् ॥
६ अच्युच्यवातन ॥
७ अध्वन ॥

अपने शीघ्रसचारी वाहन पर बैठ कर तुरन्त ही यहां आइये । कण्व-मण्डली मे आपके लिए हव्य रखा है, उसमे आनन्द मानिये । १४

वास्तव मे आनन्द होने ही के लिए यह यहा रखा हुआ है । हम मनोभाव से केवल इन्हींके भक्त है । इन्होंने सम्पूर्ण जीवन हमारे अधीन कर रखा है, जिससे हम दीर्घकाल तक इस जगत् मे रह सकें । १५ (१४)

## सूक्त ३८.

ऋषि—काण्व घोर । देवता— मरुत् ॥

जिस प्रकार अपने पुत्र के तोतले वचन सुनने के लिए लोलुप होकर पिता उसका हाथ प्रेममे आकर पकडता है उसी प्रकार, हे मरुद्देवताओ, आप हमे वास्तवमे कब अपने हाथ मे लेगे ? सोमरसमे पड़े हुए दर्भ के टुकड़े निकालकर हमने उसे आपके लिए तैयार कर रखा है । १

वास्तवमे आप किस ओर को—किस प्रदेशको मन करके—जाने के लिए स्वर्ग से चले है ? क्या आप पृथ्वीकी ओर से नहीं आये ? आपकी गौएं कहा है ? उनका रांभना नही सुनाई देता । २

हे मरुद्देवताओ, आपके लाये हुए अपूर्व वैभव कहा है ? आपसे प्राप्त होनेवाली सम्पत्ति कहा है ? आपसे हमे जो सर्वसुन्दर सौभाग्य प्राप्त होनेवाले है वे कहां रखे है ? ३

---

१ शीभम ॥
२ जीवसं ॥
३ कवप्रिय
४ रण्यन्ति ॥
५ सुम्ना ॥

हे पृश्नियों के पुत्रो, यदि मर्त्यों से ही आप गिने जाते होंगे और आपका स्तुति करनेवाला आपका उपासक मात्र अमरत्व पाता होगा, ४

तो सचमुच ही, जैसे किसी हरिनके घास चरनेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं हो सकता, वैसेही आपके सेवक पर भी किसीकी अप्रकृपा नहीं हो सकती और यम के मार्ग में जाने के लिए वे कभी बाध्य नहीं हो सकते। ५ (१५)

निर्दयता से हानि करनेवाली और बराबर बढ़ते जानेवाली सत्यानाशी (आपत्) देवता हमें नाश करने में समर्थ न हो। महत्वाकांक्षा के साथही साथ उसका भी निःपात हो। ६

सचमुच, ये बलशाली, परन्तु भय उत्पन्न करनेवाले देवता, बिलकुल ऊसर प्रदेशमें भी, वृष्टि करते हैं, और वायुकी ओर से वह वृष्टि खंडित नहीं होने देते। ७

जब इनके द्वारा पर्जन्य की वृष्टि होती है तब बछड़े के लिए रंभानेवाली गौ की तरह बिजली गर्जना करती है और माता जैसे अपने बच्चे को पेट से लगा लेती है उसी प्रकार (मार्ग जगतको) यह जोर से लिपटा लेती है। ८

जिस समय ये पृथ्वी को पानी से तलातल कर देते हैं उस समय उदक की वृष्टि करनेवाले पर्जन्य के द्वारा ये दिन में भी घना अन्धकार [illegible] है। ९

---

१ स्यातन ॥
२ अजोष्य ॥
३ दुर्हणा ॥
४ अवाताम् ॥
५ मिमाति ॥
६ व्युन्दन्ति ॥

मरुतो की गर्जना सुनते ही इस पृथ्वी पर का एक एक घर हिल जाता है। यही नहीं, बल्कि मनुष्य तक थरथर कापने लगता है। १० (१६)

हे मरुतदेवताओ, मार्गमे क्लेश न पाते हुए, नाना प्रकार की मनोहर नदियो के किनारे किनारे अपनी सामर्थ्यवान भुजाओ का प्रताप प्रकट करते हुए गमन कीजिए। ११

आपके रथो के पहियो की दौड़ अभग हो। आपके रथ और उनके घोडे भारी हो। आपके हाथ की लगामे चित्रित हो। १२

स्तुति करने की इच्छासे, ब्रह्मणस्पति को सम्बोधित करके, और उसी प्रकार अग्नि तथा इस सुन्दर मित्र को भी ध्यान मे रखकर, निरन्तर स्तोत्रो से प्रार्थित करते रहो। १३

सतत झरनेवाली वृष्टि की तरह उच्च घोष करके स्तोत्र पाठ करो। स्तुतियो से परिपूर्ण किसी सुन्दर गीत का गान करो। १४

जो सामर्थ्यवान तथा स्तुति[6] करने योग्य है और अनेक स्तोत्रो से जिनका महात्म्य वर्णन किया गया है उन मरुतों के समुदाय को वन्दन करो। वे श्रेष्ठ मरुत यहा हमारे ऊपर अनुग्रह करने के लिए, बैठे हुए हो। १५ (१७)

---

१ सद्म ॥

२ असिदयामभिः ॥

३ अभीशवः ॥

४ दर्शतम् ॥

५ ततन ॥

६ पनस्युम ॥

## सूक्त ३९.

ऋषि-कण्व घोर । देवता-मरुत ॥

सम्पूर्ण जगत को हिला देनेवाले हे मरुतो, जो कि आप अग्निज्वाला की तरह अपना प्रतिबिम्ब, इस प्रकार दूरके प्रदेश मे, आगे की ओर डाल रहे हो, इस लिए किसकी करामत[1] से—किसके आग्रहसे—किसको मन से चाहकर—सामर्थ्य से किस पर अनुग्रह करने के लिए—आप चले हैं ? १

शत्रुओं का सत्यानाश करने के लिए आपके आयुध बराबर सजते रहे, और आपका बल उनका योग्य प्रतिकार करे। प्रशंसनीय सामर्थ्य केवल आपही के पास हो, कपटी मनुष्य के पास कभी न हो। २

हे वीरो, जब स्थिर पदार्थों को आप उनके स्थान से हिलाते हो, और अत्यन्त जड़ वस्तुओं को भी जब आप ( बंगी की तरह ) फिराते हो, तब पृथ्वीपर के वनो और पर्वत की दरीखोरियो मे आपका गमन होता रहता है। ३

हे शत्रुसंहारक मरुद्देवताओ, वास्तव मे स्वर्ग अथवा पृथ्वी पर अब आपका कोई [3] नही बचा। हे भयप्रद देवताओ आपको सदैव सामर्थ्य[4] प्राप्त हो, ताकि आप [3] पर आक्रमण कर सके। ४

---

१ क्रत्वा ॥

२ पर्तीयसी ॥

३ व्याशाः ॥

४ तविषी ॥

ये पर्वतोको कंपाते हैं और बडे बड़े वृक्षो को भग्न करते हैं। ये मरुद्देव, मदोन्मत्त मनुष्य की तरह, अपने परिवार के साथ, इतस्तत. संचार करते रहते है। ५ ( १८ )

आपने चित्रविचित्र रंग की हरिनियोको अपने रथ मे जुटाया है और उन सब के आगे एक लाल रंग का हरिन रथ को खींच रहा है। पृथ्वी ध्यानपूर्वक आपके आने की आहट ले रही है और मनुष्य भय से व्याकुल हो रहे है। ६

हे रुद्रो आप जिस प्रकार हमारी रक्षा करते है उस प्रकार की रक्षा की याचना, हम, सदैव, और वह भी तुरन्त ही किससे करें? आप पहले जिस प्रकार हमारी रक्षा की लालसा से आते थे उसी प्रकार अब भी इस भयातुर कण्व को प्रसन्न करने के लिए यहां आइये। ७

कोई भी मनुष्य, फिर वह चाहे आपका भेजा हुआ हो, चाहे अन्य मनुष्यो का चिताया हुआ हो, यदि हम पर आक्रमण करने के लिए आता हो तो आप अपने सामर्थ्य से, शक्ति से, अथवा अपने भक्तजन-संरक्षक शस्त्रों से उनके दो टुकडे कर डालिये। ८

हे अत्यन्त ज्ञानशील और यज्ञार्ह मरुद्देवताओ, आप कण्व को जो कुछ ( वैभव ) अर्पण करनेवाले हो वह सम्पूर्ण अर्पण कीजिए और जिस प्रकार विद्युल्लता का आकर्षण पर्जन्य वृष्टि की ओर होता है उसी प्रकार आप, हमारी सरक्षा के सम्पूर्ण साधन लेकर, हमारी ओर आइये। ९

---

१ विश्चन्ति ॥
२ रोहित. ॥
३ मक्षु ॥
४ शवसा ॥
५ प्रयज्यव ॥

सम्पूर्ण जगत् को हिला डालनेवाले और दानकर्मनिपुण मरुद्देवताओ, आप अपना सब सामर्थ्य और शक्ति अपने पास रखिये, और जो कोपाविष्ट पुरुष ऋषियों का भी द्वेष करता हो उस पर, बाण की तरह, छोड़ दीजिए। १०

## सूक्त ४०.

ऋषि—कण्व घोर । देवता ब्रह्मणस्पति ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव, उठिये, देवताओं की भक्ति करनेवाले उपासक आपके दर्शन की इच्छा करते हैं। अत्यन्त उदार मरुत यहां आवें। हे इन्द्र, उनके साथ आप (सोमरस) का आस्वाद लीजिए। १

सामर्थ्यसे प्रादुर्भूत होनेवाले हे देव, धन की राशि प्राप्त करने के अवसर पर (प्रत्येक) मनुष्य आपही को बुलाता है। हे मरुतो, जो (भक्त) आपको पुकारे उसके लिए सुन्दर अश्वों से युक्त उत्तम सामर्थ्य तैयार कर रखिये। २

ब्रह्मणस्पति यहां आवें, देवी सूनृता इधर आगमन करें। देवता लोग हमें ऐसा यज्ञ करने की स्फूर्ति दें कि जो उत्साह से हुआ करे, जो मनुष्यों के लिए हितकारी हो और जिससे अनेकों को सन्तोष प्राप्त हो। ३

वह धन, जो मनुष्य जाति के लिए अत्यन्त उपयोगी है, याचक पुरुष को जो कोई अर्पण करता है वह अक्षय कीर्ति पाता है। उसके कल्याणार्थ हम इला देवी को हव्य अर्पण करते हैं। इला देवी ऐसी है जो वीरों का लाभ कराती है, शत्रुओं का निःपात करती है और जिन्हें कोई हानि नहीं पहुंचा सकता। ४

---

१ परिमन्यवे ॥
२ प्राशुः ॥
३ आचक्रे ॥
४ पङ्क्तिराधसम् ॥
५ सुप्रतूर्तिम् ॥

सचमुच जिसमे इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा देवता वास करते है वह अत्यन्त प्रशंसायोग्य मंत्र ब्रह्मणस्पति पढ रहे है। ५ ( २० )

यज्ञ मे हम हे देवताओ, वही कल्याणकारी और अविनाशी मंत्र पढ़ते जायं। हे वीरो, आप इस स्तुतिको भी अंगीकार कर रहे है, अतएव आपके भक्तको आप से प्राप्त होनेवाले सम्पूर्ण सुख ( निस्सन्देह ) भोगने को मिलेगे। ६

भक्तिमान मनुष्य को कौन ग्रस सकता है ? सोमरस से दर्भो के अग्र निकाल डालनेवाले उपासक को कौन पराभूत करेगा ? हव्य अर्पण करनेवाले मनुष्यका, उसके सम्पूर्ण परिवार सहित ( आज तक सदैव ) उत्कर्ष ही होता रहा है और उसने ( सदाही ) सम्पूर्ण समृद्धि से भरे हुए भवन खड़े किये है। ७

वे ( ब्रह्मणस्पति ) अपना सम्पूर्ण बल एकत्र करेगे, क्योंकि राजाओ के द्वारा वही ( शत्रुका ) वध कराते रहते है। भय के अवसर पर भी वे ( निर्भय ) निवासस्थान तैयार कर रखते है। छोटे, अथवा बडे युद्धमे भी, इन्ही वज्रधारी देव का सामना करनेवाला अथवा उनका पराभव करनेवाला कोई नही। ८ ( २१ )

## सूक्त ४१.

ऋषि कण्व घोर। देवता-१-३, ७-८ वरुण, मित्र अथवा। ४-६ आदित्य ॥

अत्यन्त प्रज्ञावान मित्र, वरुण और अर्यमा देव जिसकी रक्षा करते है उस मनुष्य के लिए क्या किसी के द्वारा हानि होना सम्भव है ? १

---

१ उरुक्षयम् ॥
२ प्रतिहर्यथ ॥
३ परस्याभि
४ सुशिलिम ॥
५ दश्यते ॥

जिन मनुष्यों का, मानो अपनी भुजा पर उनका सब भार लिये हुए हो, पोषण और शत्रु से रक्षण करते है वे मनुष्य सम्पूर्ण भय से मुक्त होकर वैभवशाली बनते है। २

ये (सम्पूर्ण विश्व के) राजा अपने सामने उनके (अर्थात भक्तों के) संकटों का और शत्रुओं का नाश करते है और उनके अरिष्ट समूल नष्ट करते है। ३

हे आदित्यो, जो नीतिपथ की ओर जाता है उसका मार्ग सुगम और निष्कंटक होता है। अतएव, आपको भी बुरे (मनुष्य) का हानि मिलना कभी सम्भव नहीं। ४

हे शूर आदित्यो, जिस यज्ञ के लिए आप सरल मार्ग दिखलाकर मार्गोपदेशक बनते है वह क्या कभी आपका स्तवन करना भूलेगा? ५ (२२)

वह मनुष्य कहीं पराभव न पाते हुए उत्तम सम्पत्ति, सब प्रकार का वैभव और सन्तति को आपही आप प्राप्त करता है। ६

प्राणप्रिय स्नेहियो, मित्र और अर्यमा का स्तोत्र और वरुण का उत्कृष्ट ... हमें भला किस प्रकार सजाना चाहिए? ७

जो मनुष्य आपको गाली गलोज करे अथवा आपकी घृणा करे—फिर वह चाहे भाविक ही क्यों न हो तथापि—उसके साथ मेरा सम्भाषण न हो। आपही की दी हुई सम्पत्ति पर मैं सन्तोष मान कर चलता हूँ। ८

---

१ बाहुतेव ॥
२ दुर्गा ॥
३ अवस्रादः ॥
४ नशत् ॥
५ अस्तृत ॥
६ स्मर ॥
७ सुम्नं ॥

जो चारो ( पुरुषार्थ ) देनेवाला है और जिसके पास सम्पत्ति का कोश है, उसका भय सदा रखना चाहिए। उसके विषय मे दुरुक्ति बोलने की लालसा न रखनी चाहिए। ६ ( २३ )

## सूक्त ४२.

ऋषि-कण्व घोर । देवता–पूषा ॥

हे पूषा, हमे मार्ग से ले जाइये, हे विमोचन पुत्र, हमे सकटो से मुक्त कीजिए, हे देव हमारे पास ही चलिये। १

हे पूषा, जो घृणायोग्य और दुष्ट भेड़िया हमारा मार्गोपदेशक बनना चाहता हो उसे मार्ग से निकाल डालिये। २

जो कपटी चोर हमारे मार्ग मे विघ्न करता है उसे मार्ग से दूर भगा दीजिए। ३

दुर्वचनी और दुष्पापी मनुष्य के तापदायक शरीरपर—फिर वह कोई भी हो—पैर रखकर खडे हो जाओ। ४

हे सुन्दर प्रज्ञावान पूषा, जिस अपने कृपाप्रसाद के योग से आपने हमारे पितरो को वैभव सम्पन्न किया उसी आपके कृपाप्रसाद की हम इच्छा करते है। ५ ( २४ )

---

१ निधाता ॥
२ तिर ॥
३ दुःशेव ॥
४ दुरश्चितम् ॥
५ तपुषिम् ॥
६ मन्तुम ॥

हे सकलसौभाग्यवन्त, हे सुवर्णशस्त्रों से विभूषित देव, हमें सकल सम्पत्ति सुलभ कीजिए। ६

जो हमारा पीछा करनेवाले हों उनके बीच से हमें बचा ले जाइये और हमारे मार्ग जाने के लिए सुलभ कर दीजिए। हे पूषा, यह आपको विदित ही है कि यहां क्या करना उचित है। ७

हमें ऐसे प्रदेश में ले जाइये जहां तृणकी विपुलता हो और मार्ग में कोई भी नवीन ताप उत्पन्न न हो। हे पूषा, यह आपको विदित ही है कि यहां क्या करना उचित है। ८

हे पूषा, आप सामर्थ्यवान हैं (इस लिए) हमारी (इच्छाएं) परिपूर्ण कीजिए हमें (सम्पत्ति) दीजिए। हमें तृप्त कीजिए। यह आपको विदित ही है कि यहां क्या करना उचित है। ९

हम पूषा की निन्दा कदापि नहीं कर सकते, किन्तु उत्तम स्तोत्रों से उनका स्तवन करेंगे। इस सुन्दर देवता से हम वैभव की याचना करते हैं। १० (२५)

## सूक्त ४३.

ऋषि—कण्व घोर। देवता १, २, ४, ६ रुद्र, ३ मित्र और वरुण, ७-९ सोम ॥

अत्यन्त प्रज्ञाशील, अतिशय उदार, अतिशय बलवान और हृदय को अत्यन्त प्रमोददायक रुद्रको प्रसन्न करने के लिए हम भला स्तोत्र कब पढ़ें? १

---

१ सुषणा ॥
२ सश्चतः ॥
३ क्रतुम् ॥
४ विद ॥
५ मेधामसि ॥
६ मीढुष्टमाय ॥

इसके योग से अदिति देवी हमारे बालबच्चो[1] के लिए, गौओ के लिए, सेवक जनो के लिए और पशुओ के लिए रुद्र के उत्तम आशीर्वाद लावेगी । २

( और ) इसके योग से मित्र, वरुण, रुद्र, और उनके साथवाले[2] सब ( देवो ) को हमारी पहचान रहेगी । ३

अपने कल्याण की इच्छा रखनेवाला भक्त, सब स्तुतियो के नाथ, सब यागो के स्वामी, और जलोपधियो के प्रभु रुद्र से जो धन[3] मागता है उसी धन की हम याचना करते है । ४

रुद्र देवताओं के श्रेष्ठ वैभव है और इनका तेज[4] दैदीप्यमान सूर्य के समान और कान्ति सुवर्ण के समान है । ५ ( २६ )

ये ऐसा करते है कि जिससे हमारा अश्व, मेढी, मेढा, हमारे दास, दासी और धेनु उत्तम रीतिसे[5] आनन्द में रह सकती है । ६

हे सोम हमारे लिए सैकडो मनुष्योका धन और अनेक शूरोका[6] यश संचित कर रखिये ७

सोमको सतानेवाले अथवा हम से शत्रुता रखनेवाले लोग हमारे साथ उपद्रव न करे । हे इन्द्र, सामर्थ्यका कृत्य[7] होते समय आप हमारे निकट रहिए, ८

---

१ तोकाय ॥
२ सजोषसः ॥
३ सुम्नम् ॥
४ शुक्र ॥
५ सुगम् ॥
६ तुविनृम्णम् ॥
७ वाजे ॥

आप अमर है। आपका जो प्रजाजन नीतिमत्ता के अत्युच्च स्थल पर प्रतिष्ठित
ता है उसे, हे सोम, आपने अपने पेट मे लगाया है—उसे आपने अपने मस्तक
: धारण किया है, आपको यह मालूम है कि वे (दिव्य तेजसे)
पुष्पित हुए। ६ (२

# अनुवाक १.

## सूक्त ४४.

ऋषि—प्रस्कण्व। देवता—अग्नि॥

हे अमर अग्निदेव, आप उषा देवी के आश्चर्यकारक और उज्वल वरदान है। हे अखिल ज्ञानवन्त, आप प्रातःकाल मे प्रबुद्ध होनेवाले देवो को, आज हव्य अर्पण करनेवाले भक्त के पास ले आइये। १

हे अग्निदेव, आप सत्वर यज्ञो की सांगता करानेवाले और देवो को हव्य पहुँचानेवाले है। अतएव, आप सचमुच हमारे प्रिय प्रतिनिधि है। अश्विन और उषा के साथ आकर आप हमे उत्तम पराक्रम से युक्त विपुल कीर्ति का अधिकारी बनाइये। २

अग्निदेव मानो यज्ञो के वैभव ही है। वे तेजःस्वरूप, धूम्र की ध्वजा से युक्त, अनेको को प्रिय, और मूर्तिमान सम्पत्ति ही है। उनका हम उषःकाल का स्वच्छ प्रकाश पड़ते ही अपना प्रतिनिधि नियत करते है। ३

१ नाभा॥
२ उषर्बुधः॥
३ श्रव॥
४ भानुर्जीका॥

जो श्रेष्ठ और अत्यन्त तरुण है, तथा जो उत्तम हवियों का सन्मान प्राप्त करनेवाले अतिथि, और हव्य अर्पण करनेवालों भक्तजनों को प्रिय है, उन सर्वज्ञ अग्निदेव की उष काल का स्वच्छ प्रकाश पड़ते ही, मै स्तुति करता हू। ४

विश्व को पालनकरनेवाले हे अमर अग्नि, हव्य पहुँचानेवाले यज्ञार्ह देव, आप हमारे अत्यन्त पूज्य संरक्षणकर्ता है, अतएव मै आपका स्तवन करूगा। ५ (२८)

आप मधुरभाषी, और सुन्दर हवियों का सन्मान पानेवाले है। हे अत्यन्त तरुण देव, आपके स्तवन भी उत्तमोत्तम हुए है। इस लिए स्तुति करनेवाले भक्तो के लिए आप जागरूक रहिये। आप **प्रस्कण्व** की आयु बढ़ाइये, ताकि वे दीर्घकाल तक जगत मे रहे, और देवसमुदाय को हमारी प्रणति अर्पण कीजिए। ६

आप देवताओं को हव्य पहुँचानेवाले और सर्वज्ञ है। सचमुच आपही को सब लोग प्रदीप्त करते है। इस लिए सबकी ओर से निमन्त्रित होनेवाले हे अग्निदेव, आप अत्यन्त प्रज्ञाशील देवताओं को सत्वर यहां ले आइये। ७

रात्रि के समाप्त होने पर स्वच्छ प्रात काल होते ही **सविता, उषा, अश्वि, भग** और **अग्नि** को (यहा ले आइये)। हे यज्ञ के सिद्धिदाता अग्निदेव, आप देवताओं को हव्य पहुँचानेवाले है। अतएव ये कण्व सोमरस तैयार करके, आपको प्रज्वलित कर रहे है। ८

---

१ व्युष्टिषु ॥
२ प्रियेध्य ॥
३ स्वाहुत ॥
४ इन्धते ॥
५ सुतसोमास. ॥

हे अग्निदेव, सचमुच आप यज्ञो के स्वामी और मनुष्यों के प्रतिनिधि है। प्रभातकाल मे ही जागृत होनेवाले और स्वर्गलोकको अपनी दृष्टि मे रखनेवाले–देवो को आज सोमपान के लिए ले आइये। ९

दीप्तिवैभवो से युक्त रहनेवाले हे अग्निदेव, आप सम्पूर्ण विश्व मे अत्यन्त सुन्दर है। आप पूर्वकालीन उषाओ के पीछे पीछे प्रकाशित होते रहते थे। ग्रामो मे आपही सबो के संरक्षण करनेवाले है और यज्ञो मे जो ( यज्ञ ) मनुष्यो को प्रिय है उसके अग्रणी भी आप ही है। १० ( २० )

आप यज्ञो के साधनीभूत, देवताओ को हव्य पहुँचानेवाले आचार्य, अत्यन्त प्रज्ञाशील, सत्वर गमन करनेवाले प्रतिनिधि और मृत्युरहित है। हे देव, आपही को हम जन समुदाय मे ( लेजाकर ) प्रस्थापित करते है। ११

आप स्वामित्रो को आनन्ददायक ( यज्ञ के ) आचार्य और हमारे अन्तरग है। आप जब देवो के दूतकर्म के लिए गमन करते है तब आपकी ज्वाला, बडी बडी गर्जना करनेवाले सिंधु की लहरो की तरह, शोभित होती है। १२

हे अग्निदेव, आपके कान प्रार्थना सुनने के लिए बिलकुल तत्पर रहते है। अपने साथ संचार करनेवाले और भक्तो की चिन्ता रखनेवाले देवताओ के साथ आप ( हमारी स्तुति ) सुनिये, हमारे यज्ञ मे पधारनेवाले मित्र और अर्यमा प्रातः-कालही दर्भासन पर विराजमान हो जावे। १३

---

१ स्वर्दृशः ॥

२ विभावसो ॥

मरुद्देव, जो अतिशय उदार है—और जो नीतिनियमों को उत्तेजना देते है तथा अग्नि के द्वारा जिनकी जिह्वा तृप्त होती है—वे हमारी स्तुति श्रवण करे। अपने अनुशासन को कार्यरूप मे परिणत करनेवाले **वरुण, अश्विन** और उषा के साथ, सोम का पान करे। १४ ( ३० )

## सूक्त ४५.

ऋषि-प्रस्कण्व काण्व । देवता-अग्नि, देव ॥

हे अग्निदेव, वसु, रुद्र और आदित्यों का सन्मान कीजिए। घृत का हव्य देनेवाले, उत्तम यज्ञ करनेवाले और मनु से जन्मे हुए जो पुरुष हो उनका भी इस यज्ञ मे सन्मान कीजिए। १

रक्तवर्ण अश्वो से युक्त रहनेवाले हे स्तुतिप्रिय अग्निदेव, ( सब ) देवता अत्यन्त प्रज्ञावान है और हवि अर्पण करनेवाले भक्त की प्रार्थना सुनने मे सचमुच ही वे अत्यन्त तत्पर रहते है। ( इस लिए ) उन्हे यहा ले आइये। उनकी कुल सख्या तेतीस है। २

हे जातवेद अग्निदेव, आपकी आज्ञाएं बहुत श्रेष्ठ है। आप **प्रियमेध** की तरह, **अत्रि** की तरह, **विरूप** की तरह और **अंगिरा** की तरह, प्रस्कण्व की भी पुकार सुनिये। ३

बडे बडे स्तोत्र गानेवाले प्रियमेधों ने अपनी रक्षा के लिए, स्वतेज से यज्ञ मे प्रकाशमान होनेवाले देदीप्यमान अग्नि को ही आमन्त्रण दिया था। ४

---

१ अग्निजिह्वा ॥
२ घृतप्रुषम् ॥
३ श्रुष्टीवान ॥
४ श्रुधि ॥
५ महिकेरव ॥

घृत की हवियो का स्वीकार करनेवाले हे उदार देव, जिन स्तुतियो के द्वारा कण्व के पुत्र आपको हवन करते है उन्हे आप श्रवण कीजिए। ५ (३१)

प्रार्थना श्रवण करने मे आपकी शक्ति आश्चर्यकारक है। आप अनेक जनो को प्रिय है। आपके केश ज्वालारूप है। हे अग्निदेव, (देवो के पास) हव्य ले जाने के लिए, इस जगत् के लोग, आपका पूजन करते रहते है। ६

आप हवि अर्पण करनेवाले, यज्ञ के आचार्य, अत्यन्त सम्पत्तिमान, भक्तो की पुकार सुननेवाले और अत्यन्त कीर्तिमान है। विद्वान लोग यज्ञ मे आपही की संस्थापना करते है। ७

हे अग्निदेव, जिन्हो ने सोमरस तैयार कर रखा है, जो अतिशय कान्ति से युक्त है और जिन्होने हव्य हाथ मे लिया है उन विद्वान लोगोने भक्तिशील मनुष्यो के लिए, आपका मन हवि के अन्न की ओर आकर्षित किया है। ८

सामर्थ्यो से जन्म पानेवाले हे उदार अग्निदेव, हे मूर्तिमन्त वैभव, प्रातःकाल मे ही (बाहर गमन करनेवाले देव समुदायो को, आज, इस यज्ञ मे सोमपान के लिए, दर्भासनो पर, ला बैठाइये। ९

हे अग्निदेव, देवसमुदायो को यहा ले आइये और उन सब को एक ही स्तुति देकर तृप्त कीजिए। हे अत्यन्त उदार देवो, यहा यह सोम रखा है। पान कीजिए। यह कल का तैयार किया हुआ है। १० (३२)

---

१ घृताहवन ॥
२ विश्रु ॥
३ दिविष्टिषु ॥

## सूक्त ४६.

ऋषि-प्रस्कण्व काण्व; देवता-अश्विन ॥

वह अपूर्व[1] तेजोयुक्त उषादेवी, जो द्युलोकों को प्रिय है, अपना प्रकाश डाल रही है। हे अश्विनो, मैं हृदयसे आपकी स्तुति करता हू । १

ये अश्विनीदेव सुन्दर है । सिन्धु उनकी जननी है । जब हम वेगवान पुरुषोंसे इनकी तुलना करते है तब जान पडता है कि ये अपने वेगसे मनको भी पीछे कर देते है। ये हृदयपूर्वक ( भक्तो को ) धन अर्पण करते है। २

आपके उन अश्वोके योगसे, जो वेगसे दौड़नेमे मानो पक्षी[3] ही है, जब आपका रथ सटासट उडता जाता है उस समय अति पुरातन स्वर्गलोकमे भी आपके स्तोत्र गाये जाते है। ३

ये सर्वसचारी और सर्वतृप्तीकारक ( सूर्य ) देव, कि जिनपर उदकोका प्रेम है और जिनमे पानीके बादल उत्पन्न होते है, आपको हवियोसे सन्तुष्ट करते है। ४

हे स्तुतिप्रिय और सत्यस्वरूप अश्विनीदेवताओ ! ( सोमरस ) आपके मनके कपाट खोलता है। अतएव, आप मनमानी रीतिसे सोमरस पान कीजिए। ५ ( ३३ )

---

१ अपूर्व्या ॥

२ मनोतरा ॥

३ विभिः ॥

४ वृदम्य ॥

५ धृष्णुया ॥

अहो अश्विनो, आप हमें अपनी उस कृपा का लाभ करा दीजिए कि जो उज्ज्वल प्रकाश डालकर हमें अंधकार से निकाले । ६

आप यहां पधारिये, ताकि आपकी कृपारूपी नौका में बैठकर हम ( दुःखसागर ) से पार हो सकें । हे अश्विनो आप अपना रथ जोतिये । ७

जब कि नदियों के किनारे से आप गमन करते हैं तब आपका रथ ही, स्वर्गलोक से भी विस्तीर्ण, आपकी नौका होती है । आपके लिए भक्तिपूर्वक हमने यहा सोमरस तैयार कर रखे हैं । ८

हे कण्वो ! स्वर्ग के प्रदेश में आल्हाददायक तेज भर रहा है और नदियों के निवासस्थान में तेजःपुंज वैभव दृग्गोचर हो रहा है । अतएव, ( हे अश्विनो, ) आप अपने दिव्य देह भला कौनसी जगह ले जाइयेगा ? ९

यह देखिये, चारों ओर अपने रश्मि फेंकने के लिए प्रभा मग्न हुई है । और यह देखिये, इधर सूर्य ( उदय हुआ ) । यह कांचन की ही प्रतिमा है । कृष्णवर्ग ( अग्नि ने भी ) अपनी जिव्हा बाहर निकालकर अपनी दीप्ति प्रकट की है । १०

हमें दुःखसे पार लगाने के लिए धर्मनीति का मार्ग स्पष्ट देख पड़ने लगा है और—स्वर्ग की बाटभी दृष्टि पड़ने लगी है । ११

---

१ रासाथाम् ॥

२ तीर्थे ॥

३ वत्रिम् ॥

४ अश्विना ॥

सोमपानसे आनन्द होते ही जो अश्विनदेव भक्तोंको भरपूर वैभव देते है उनके उस कृपा प्रसादका स्तोतृजन सदा बखान करते रहता है। १२

जिस प्रकार ( पहले ) आप मनुकी भेटको गये थे उसी प्रकार हमारी प्रार्थनाओंसे और सोमरसपान से प्रेरित होकर, विवस्वत के लिए अपना तेज प्रकट करते हुए हमारे कल्याणकर्ता आप यहां आइये। १३

आपके परिभ्रमण करते समय आपके मार्गके अनुरोधसे उषाने भी अपना मार्गक्रमण आरम्भ किया। रातमे किये हुए यागकर्म आपको बहुत अच्छे लगते है। १४

हे अश्विनो, आप दोनो अपनी अखण्ड कृपासे हमे सौख्य अर्पण कीजिए और दोनो सोमरस का पान कीजिए। १५ ( ३५ )

# चौथा अध्याय

## सूक्त ४७.

ऋषि-प्रस्कण्व काण्व देवता-आश्विन ॥

नीतिधर्म-परिपालनमे आनन्द माननेवाले हे अश्विनीदेवताओ, यह अत्यन्त माधुर्ययुक्त सोमरस आपके लिए निकाल रखा गया है। वह कलका ही तैयार किया हुआ है —उसका पान कीजिए और अपने भक्तोंके लिए उत्तम सम्पत्तिका भाण्डार भर रखिये। १

---

१ जग्ता ॥
२ शम्भू ॥
३ त्रियम् ॥
४ अविद्रियासि ॥

हे अश्विनो, जिस आपके रथमें तीन बन्धुरा हैं, जो त्रिकोणाकृति हैं और जो देखनेमें सुन्दर[1] हैं उस अपने रथमें बैठकर यहां आइये। इस यज्ञमें कण्व आपकी स्तुति करते हैं। उनकी पुकार आप श्रवण कीजिए। २

न्यायनीतिके उत्तेजना देनेवाले हे अश्विनीदेवताओ, इस अत्यन्त मधुर सोमरस का पान कीजिये और हे सुरूपवान देवो, अपने रथ के द्वारा बहुतसी सम्पत्ति ले आकर भक्तजनोंके[2] पास पधारिये। ३

इस रीतिसे बिछे हुए दर्भासनपर, कि जिसपर आप तीनों[3] एकदम बैठ सकेंगे, ( आरूढ होकर ) हे सर्वज्ञ देवो, आप हमारे यज्ञको माधुर्य से परिप्लुत कीजिए। हे अश्विनो, ये तेजस्वीपन से सुशोभित होनेवाले कण्व सोमरस तैयार करके आपको निमन्त्रण दे रहे हैं। ४

हे अश्विनो, आपने जिस अपनी कृपा[4] के सामर्थ्यसे कण्वकी रक्षा की उसी सामर्थ्यसे युक्त होकर हमारी भी रक्षा कीजिए, क्योंकि आप सम्पूर्ण मंगलताके स्वामी और न्यायनीति को उत्तेजना देनेवाले हैं। ५ ( १ )

अहो सुन्दर अश्विन देवो, जो कि आप सुदास के लिए सम्पत्ति ले आये, इस लिए अपने रथके द्वारा ( हमारे लिए भी ) जीवन-सामग्री ले आइये। जिसे बहुत लोग ताकते रहते हैं वही वैभव हमें अर्पण कीजिए। फिर उसे आप चाहे महासागरसे लावें, चाहे स्वर्गके आसपासवाले प्रदेश से लावें। ६

---

१ सुपेशसा ॥
२ दाश्वांसम् ॥
३ त्रिषधस्थे ॥
४ अभिष्टिभिः ॥

हे सत्यस्वरूप अश्विनदेवताओ, आप तुर्वश के समीप रहिए अथवा बहुत दूर रहिए। वहां से, अपने सुन्दर रथ में बैठकर यहां आइये और आते समय सूर्य के किरणों को भी साथ लेते आइये। ७

आपके अश्व, जो यज्ञ के लिए लजामभूत हैं, आपको हमारे हव्यों की ओर ले आवें। अहो शूरो, जो सदाचारी भक्त आपको प्रेम से हव्य अर्पण करता है उसे पूर्ण समृद्धि प्रदान करके आप इस कुशासन पर विराजमान हूजिए। ८

हे सत्यस्वरूप अश्विनी देवताओ, सूर्य को भी आच्छादित करदेनेवाले अपने रथ में बैठकर इधर आइये। जब जब आपको मधुर सोमरस पान करने की इच्छा होती है तब तब आप सदा इसी रथ के द्वारा अपने भक्तों के लिए सोमरस लाते रहते हैं। ९

अनेक वैभवों से सम्पन्न अश्विनीदेवोंको हम स्तुतिस्तोत्र गाकर अपनी ओर पाचारण करते हैं। हे अश्विनो, आपने अपने प्रिय कण्वों के सदन में जाकर सचमुच सदा सोमपान किया है। १० (२)

## सूक्त ४८.

ऋषि-प्रस्कण्व देवता-उषा ॥

हे द्युलोक-दुहिते उषादेवी, आप अपनी अत्यन्त सुन्दर कान्ति के साथ यहां हमारे लिए सुप्रकाशित हूजिए। हे देदीप्यमान देवी, आप दानेशूर हैं, अतएव विपुल सम्पत्ति और वैभव साथ लेकर ( यहां प्रकाश फैलाइये )। १

---

१ सुरता ॥
२ इषम् ॥
३ सूर्यत्वचा ॥
४ पपथु ॥
५ दास्वती ॥

हे उषादेवी, सम्पूर्ण देवताओंको अन्तरिक्ष से, सोमपानके लिए, यहां ले आइये, और, हे उषे, हमारे शरीरमें ऐसा सामर्थ्य लाइये कि जिसके द्वारा हम अपना वीर्य दिखला सकें, जिसकी बहुत प्रशंसा हो और जिसके कारण हम धेनुओं और अश्वोंका लाभ कर सकें। १२

यह उषा, कि जिसके उज्ज्वल और कल्याणकारक किरण देख पड़ने लगे हैं, हमको प्रयास न पड़ते हुए ऐसी उत्तम प्रकारकी सम्पत्ति अर्पण करे कि जिसे सब लोग चाहते हों। १३

जिन प्राचीन ऋषियों ने, हे श्रेष्ठ उषादेवी, अपनी रक्षाके लिए आपको पाचारण किया (उनकी पूजा की आप पात्र हुई) हे उज्ज्वल कान्तिसे (युक्त रहनेवाली) उषा, आप हमपर अपनी कृपा कीजिये और हमारे स्तोत्रों पर अपनी प्रशंसाबुद्धि व्यक्त कीजिए। १४

हे उषादेवी, जो कि आज आपने अपने तेजसे स्वर्गके द्वार खोल दिये हैं, इस लिए, हे देवी, ऐसा कीजिये कि जिससे हमें ऐसा विशाल मन्दिर मिले कि, जहां शत्रुओं का भय न हो, और हमारे विषय में ऐसी कृपा रखिये कि जिससे हमें धेनु प्राप्त हों। १५

हे सामर्थ्यवान श्रेष्ठ उषादेवी, हमें अखिल प्रकारकी सम्पत्तियोंसे, समृद्धियोंसे, सर्वत्र फैलनेवाले कीर्तिवैभवसे और बलसे परिपूर्ण कर दीजिए। १६ (५)

---

१ उश्थम ॥

२ रुशतः ॥

३ अभिगृणीहि ॥

४ अनूकम ॥

५ विश्वपेशसा ॥

## सूक्त ४९.

ऋषि-प्रस्कण्व काण्व, देवता–उषा ।

हे उषादेवि, देदीप्यमान द्युलोक के ऊपरवाले भागकी ओरसे, अपनी कल्याण-प्रद कान्तिसे ( विभूषित होकर ) यहा आइये । आपके रक्तवर्ण[1] अश्व, सोमरस अर्पण करनेवाले भक्त के भवन की ओर आपको ले आवे । १

हे उषादेवी, जिस सुखदायक और सुन्दर रथपर आप विराजमान हुई है उसके द्वारा आकर, हे द्युलोक कन्ये, उत्तम कीर्ति की इच्छा करनेवाले इन मनुष्यो की रक्षा कीजिये । २

हे देदीप्यमान देवि, द्युलोक के आसपासवाले भागोसे आपका आगमन[2] होते ही, उड़नेवाले पक्षी, तथा द्विपाद और चतुष्पाद प्राणी, वाहर निकलने के लिए तैयार हुए । ३

जो कि आप अपने किरणो से प्रकाश फैलाकर सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशमय[3] कर डालती है उन्हीं आपकी, हे उषे, कण्वों ने, सम्पत्ति की इच्छा धारण करके, स्तोत्रोंके द्वारा, पुकार की है ४ ( ६ )

## सूक्त ५०.

ऋषि–प्रस्कण्व काण्व, देवता–सूर्य ।

उस सर्वज्ञ सूर्य को उसके रश्मि यहा ले आ रहे है, ताकि सवको उसका दर्शन हो जाय । १

---

१ अरुणप्सव ॥

२ ऋतून् ॥

३ रोचनम् ॥

इस सर्वदर्शी सूर्य को देखकर नक्षत्र, रातके साथ, चोरों की तरह भागते है। २

जब यह सम्पूर्ण लोकों पर प्रकाश फैलाने के लिए आता है तब अग्नि की तरह तेजस्वी इसके उज्ज्वल रश्मि दिखाई देते है। ३

हे सूर्य, आप प्रकाश देनेवाले, सब मे अत्यन्त सुन्दर और सर्व-मनोरी है। इस अखिल जगत् पर प्रकाश फैलाकर आप उसमे उज्ज्वलता लाते है। ४

देवसमुदाय, मनुष्य, ( किंबहुना ) सम्पूर्ण विश्व के सामने आप स्पष्ट रीती मे प्रकाशमान होते है, ताकि आपका प्रकाश सब को दिखाई दे। ५ ( ७ )

इस के द्वारा हे वरुण, हे जगत को पालन करनेवाले देव, आप सब लोगो का भार सहन करनेवाले इस जगत की ओर, अपने नेत्रो से देख सकते है। ६

हे सूर्य, आप, सब प्राणिमात्र का निरीक्षण करते हुए, और रात्रि के द्वारा दिनका मापन करते हुए, द्युलोकपर, तथा विस्तीर्ण रजोलोकपर, आगमन करते है। ७

---

१ तायवः ॥

२ तरणि. ॥

३ प्रत्यङ् ॥

४ भुरण्यन्तम ॥

५ मिमान. ॥

हे सर्व निरीक्षक सूर्यदेव, आपके केश[1] दीप्तिमय है, आपको सात रक्तवर्ण अश्व रथ के द्वारा लाते रहते है। ८

जो ( रथ के अगले भाग मे जुटाये जाने के कारण ) [illegible] हुए से भासते है। ऐसे सात घोड़े[2] सूर्यने अपने रथ मे जुटाये है, वे रथ का जुआ आपही आप गर्दन पर लेनेवाले है, अतएव उन्हे सज्ज करके वह बाहर प्रयाण करता है। ९

हम इस उत्तम तेज को ढूंडते हुए, कि जो सम्पूर्ण अंधकार पर अपनी प्रबलता प्रकट कर सकता है, इस उत्कृष्ट ज्योति की ओर–सूर्य की ओर–आये। यह देव[3] सम्पूर्ण देवों मे श्रेष्ठ है। १०

स्वमित्रों[4] को आनन्द देनेवाले हे सूर्य, आज ( यहां ) उदय होकर और इस ऊपर देख पडनेवाले आकाश पर आरोहण करके मेरा हृद्रोग और कोविल नष्ट कीजिए। ११

हम अपने कोवल तोते पर और रोपणा का नामक पक्षियो पर छोड़ते[5] है। अथवा हम ऐसा करते है कि जिससे हमारे कोवल हारिद्रव पक्षियो पर चले जायेंगे। १२

अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य से सज्ज होकर, मेरे शत्रुओको मेरे शरण मे आने के लिए बाध्य करता हुआ, यह आदित्य यहा उदय हुआ है। मै शत्रु के पंजे[6] मे कभी न जाऊ। १३ ( ८ )

---

१ शोचिष्केश ॥
२ शुन्ध्युव ॥
३ देवत्र ॥
४ मित्रमह ॥
५ हरिमाणम् ॥
६ दध्मसि ॥
७ रधम ॥

# अनुवाक १०

## सूक्त ५१.

ऋषि- सव्य आंगिरस, देवता–इन्द्र ॥

उस मेषरूपधारी इन्द्र को स्तुति से सन्तुष्ट करो। इसे (संकट के समय) अनेकों ने पाचारण किया है, इसके स्तोत्र सर्वत्र गाये जाते हैं और यह सम्पत्ति का महोदधि है। मानवोंके कल्याणार्थ किये हुए जिसके कार्य, जहां जाइये वहाँ, किरणों के समान ही दृग्गोचर होते हैं उस अत्यन्त उदार और प्रज्ञाशाली इन्द्र को अर्चा करो। १

सामर्थ्यवान ऋभु, (भक्तों की) रक्षा करने में सब प्रकार से समर्थ, अन्तरिक्ष में व्याप्त रहनेवाले, (अखिल) सामर्थ्यों से युक्त और (शत्रुओं के) आनन्द में विघ्न डालनेवाले इन्द्रके पास, साहाय्यभूत होकर, आये। इस अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र को उनके उत्तेजनाप्रद शब्दोंने स्फूर्ति चढ़ाई। २

जहां धेनुओं को बन्दकर रखा था वह किला आपने अंगिरस के लिए खोला। और सैकड़ों दरवाँजों में आपने अत्रि के लिए मार्ग ढूंढ़ निकाला। वायमान, युद्ध में अपना वज्र (शत्रुसमुदाय में) नचाते हुए आपने विमद को धनधान्य अर्पण किया। ३

---

१ मादृषा ॥

२ मदच्युतम् ॥

३ शतदुरेषु ॥

आपने उदक के ऊपरका आवरण निकाल डाला और पर्वतो मे पैठकर विपुल सम्पत्ति हस्तगत कर ली। हे इन्द्र जब आपने अपने सामर्थ्यसे वृत्र–अहि को मार डाला तब आपने इस रीतिसे द्युलोक मे सूर्यकी स्थापना की कि जिससे वह अच्छी तरहसे सबको दिखाई दे। ४

युक्ति प्रयुक्तियो के बल पर आपने कपटी शत्रुओ को खूब ही छकाया, तथा जो लोग आपकी हँसी[1] करने के लिए आपको हवि अर्पण करनेका ढोंग करते उनको भी आपने अपनी युद्धप्रणालीसे जीत लिया। मानवो के कल्याणकी इच्छा धारण करने वाले (हे इन्द्र) आपने पिप्रुके पुरोका विध्वंस किया, और दस्यु जब मारने को आये तब ऋजिश्वान की आपने रक्षा की। ५ (९)

शुष्ण जब मारने को दौडा तब आपने कुत्स की रक्षा की और अतिथिग्व का पक्ष लेकर आपने शम्बर को चूरचूर कर डाला। अर्बुद के समान बडा होनेपर भी आप उस पर पैर रखकर खडे हो गये। दस्युओं का हनन करने के लिए ही आप पुरातन काल मे जन्म लेते आये है। ६

आप मे सम्पूर्ण सामर्थ्य पूर्णतया सुस्थापित हुआ है, सोमपान के लिए आपके आनन्द मे उल्लास आता रहता है। भुजाओ पर रखे हुए आपके वज्र की (सब को) पहचान है। (उसे लेकर) आप शत्रु के अखिल सामर्थ्यों का विदारण कीजिए। ७

---

१ शुभौ ॥

२ हत्येषु ॥

३ हर्षंत ॥

आर्य कौन है और दस्यु कौन है, यह अच्छी तरह पहचान रखिये और जो आपकी आज्ञा पालनेवाले नहीं हैं उनका शासन करके उन्हें अपने उपासकों के शरणमें आनेके लिये बाध्य कीजिये। आप सामर्थ्यवान हैं। अपने भक्तों को आप (उत्कर्षपर) पहुँचाइये। आपके सर्व पराक्रम यज्ञमें (गाते समय मुझे आनन्द देते हैं। ८

जो इन्द्र की आज्ञा मानते हैं उनके आगे, आज्ञा न मानने वाले लोगों को नम्र होनेके लिये, बाध्य करके इन्द्र भक्तों की ओर से भक्तिहीनों का नाश कराते रहते हैं। वम्र आपका स्तवन करता रहा, इसी लिये वह अपने शत्रु की एकत्रित की हुई सम्पत्ति का विध्वंस कर सका। यह उसका शत्रु पहले ही से बहुत बलवान हो गया था, तिस परभी उसका बल बढ़ ही रह था और वह स्वर्गतक जा भिडा था। ९

उशन ने अपनी शक्ति के योग से जो सामर्थ्य आपके लिए निर्माण किया उसमें इतना बल है कि वह द्युलोक और भूलोक दोनों के लिए भारी हो रहा है। मानवो के हित करने की बुद्धि रखने वाले (हे इन्द्र,) अपने को स्वयं रथ में जुटा लेने वाले वायु के अश्वो ने, सर्वत्र भर रहनेवाले आपको, विपुल कीर्ति प्राप्त करा दी है। १० (१०)

जिस समय उशनाकाव्या के सहित इन्द्र संन्तुष्ट हुए उस समय, गति में टेढे टेढे चलनेवाले अश्वों में से अत्यन्त उत्कृष्ट अश्वो पर, उन्होंने आरोहण किया। उस प्रतापी देवता ने प्रवाहरूप से जलों को बिलकुल छोड कर उन्हें शीघ्र गति दी और-शुष्ण के दृढ़ दुर्ग का उन्हों ने विदारण किया। ११

---

१ शाकी ॥

२ अनाभुव ॥

3 नृमण ॥

४ वकुतरा ॥

सामर्थ्यवान पुरुष जिसका पान करते है उस सोमरस का आस्वाद लेते हुए आप रथ पर आरूढ होते है। शार्याता के सोमरस के चमस तैयार है। इससे आपको भी बडा आनन्द होता है। हे इन्द्र, ( हमारे ) तैयार किये हुए सोमरस के विषय मे जैसे जैसे आपकी प्रीति¹ बढ़ती जाती है वैसे वैसे आप द्युलोक मे आप ही आप कीर्ति के पात्र होते जाते है। १२

हे इन्द्र, आपके स्तोत्र गानेवाले और आपको सोमरस अर्पण करनेवाले वृद्ध कक्षिवान को आपने कोमल वयवाली वृचया अर्पण की। हे बुद्धिसामर्थ्यवान देव, वृषणश्व की कन्या मेना भी आपही बने। आपके ये सब कार्य यज्ञ मे गाते योग्य है। १३

विपत्काल मे सदाचारी लोगो ने इन्द्र का ही आश्रय किया है। जैसे दरवाजे का खम्भ नहीं टलता वैसेही पंजो के कुल मे इन्द्र की पूजा कभी रुक नहीं सकती। धेनु, रथ और वित्त से प्रीति रखनेवाले और दानकर्म मे शूर एक इन्द्र ही सारे वैभवो के स्वामी है। १४

सामर्थ्यवान, स्वतेज से युक्त, सत्यकार्य मे बलका विनियोग करनेवाले और शक्तिसम्पन्न इन्द्रके सन्मानार्थ हमने यह नम्र स्तुति गाई है। हे इन्द्र, हम अपने यहा के सब पराक्रमी पुरुष और विद्वान लोगो के सहित इस संकट के समय मे आपकी कृपा का आधार मान कर रहे। १५ ( ११ )

---

१ चाकन् ॥

२ अर्भाम् ॥

३ निरेके ॥

## सूक्त ५२.

ऋषि-सव्य आंगिरस देवता-इन्द्र ॥

प्रकाश को प्राप्त कर लेनेवाले मेष की अच्छी तरह अर्चना करो। सैकड़ों स्तोता एकत्र बैठकर इसीकी कीर्ति गाते रहते है जिस प्रकार किसी जोशीले घोड़े को, यज्ञ के लिए जानेवाले रथ मे, (जुटाने के लिए प्रयत्न पूर्वक) खींच कर लाना होता है उसी प्रकार इन्द्र को, अपनी रक्षा के लिए, हम, सुन्दर स्तोत्रों के द्वारा, खींच-लाने मे समर्थ हो। १

जिस समय हवियों से सन्तुष्ट होकर इन्द्र ने, नदियों का मार्ग खोलते हुए, जलों को प्रतिबन्ध करनेवाले वृत्र का वध किया उस समय, अपने ही सामर्थ्य मे (परिवेष्टित होकर) और कठिन भूभाग पर रहनेवाले पर्वत की तरह स्थिर रह कर, हजारों प्रकार से भक्तों की रक्षा करनेवाले इन्द्र अधिकाधिक बड़े ही होते गये। २

शत्रुओं मे शत्रु की तरह रहनेवाले, और (गाईके) थन की तरह दिखनेवाले (इस अन्तरिक्ष मे) व्याप्त हो रहनेवाले इन्द्र का मुख्य निवासस्थान आल्हाददायक प्रकाश मे है और विद्वान लोगोंने (सोमरस अर्पण करके) उनका आनन्द बढाया है। मनमे बहुत तत्परता रख कर, परम उदार इन्द्राको मै आव्हान करता हू। अन्न की समृद्धि करनेवाले वही है। ३

यज्ञगृह मे आसनपर विराजमान होनेवाले जिन के उत्साही सेवक जिन्हें द्युलोक मे, समुद्र की तरह सोमरस से भर डालते है उन्ही इन्द्र के समीप, उनके सामर्थ्यवान, किसी के प्रतिरोध की परवा न करनेवाले, और सरलाकृति सहायक, वृत्रवध के अवसर पर खड़े थे। ४

---

१ स्वर्विदम ॥
२ सहस्रमूति ॥
३ ऊधिषु ॥
४ अहुतप्सवः ॥

जिस समय सोमरस से उत्साह परिप्लुत होनेवाले वज्रधर इन्द्र ने त्रिता की भांति वल के आसपास के दुर्ग तोड़ डाले उस समय हर्ष के आवेश मे युद्ध करनेवाले उस देव के सहायक, पर्जन्यवृष्टि को प्रतिबन्ध करनेवाले उस ( वृत्र ) पर इस प्रकार टूट पडे जैसे नदिया ढालू जगह से वेग के साथ दौड़ते जाती है। ५ ( १२ )

हे इन्द्र, जिस समय आपने, पराजय करने मे दुष्कर वृत्र की ठुड्डी के नीचे अपना वज्र फेक कर मारा उस समय आपका तेज आपके चारो ओर फैल गया, आपके सामर्थ्य का प्रकाश पड़ा और उदको को प्रतिबन्ध करनेवाला ( वृत्र ) रजोलोक के तल पर मर कर गिर पड़ा. ६

जो स्तोत्र आपकी महत्ती बढ़ाते है वे इस प्रकार आपकी ओर दौडते आते है जैसे उदक के प्रवाह किसी दह की ओर दौड़ते हुए जाते है । त्वष्ट्र ने ही आपके लिए उपयोगी आपका सामर्थ्य बढ़ाया और ऐसा वज्र आपके लिए तैयार किया जो शत्रुओ का पराभव करने मे समर्थ है। ७

हे सामर्थ्य परिप्लुत रहनेवाले इन्द्रदेव ! मानवो के हित के लिए उदको के वहने का मार्ग खोलने के लिए आपने अपने अश्वो के द्वारा वृत्र का वध किया। आपने अपनी भुजाओ पर लोहे का बना हुआ वज्र धारण किया और सूर्यदेव की द्युलोक मे इस रीति से स्थापना की कि जिससे वह सब की दृष्टि पड़े। ८

जिस समय मनुष्यो ने डर से आपका प्रभावशाली, आपकी आप आल्हाद उत्पन्न करनेवाला, दीर्घ और स्वर्गलोक तक प्रवेश करनेवाला स्तोत्र गाया जिस समय मनुष्यो के हित के लिए युद्ध मे प्रवृत्त होनेवाले, स्वर्ग मे सदा शूरो का सहवास करनेवाले और इन्द्र के साह्यभूत होनेवाले मरुतो ने इन्द्र को प्रोत्साहन दिया, ९

और जिस समय, हे इन्द्र, द्युलोक और भूलोक दोनो मे पीड़ा उत्पन्न करनेवाले वृत्र का शिर, सोमरस की आनन्ददायक स्फूर्ति मे, आपके वज्रने अपने सामर्थ्य से, काट डाला, उस समय, भय के कारण बलिष्ठ स्वर्गलोक भी, उस अहि की गर्जना से थर थर कापने लगा। १० ( १३ )

यदि सचमुच, हे इन्द्र ! पृथिवी दसगुनी बड़ी हो जायगी और मनुष्य की आयु चिरकाल तक टिकनेवाली हो जायगी, तभी हे उदार ( देव, ) आपका विख्यात सामर्थ्य, शक्ति और पराक्रम के विषय में, द्युलोक में समा सकेगा। ११

मन में अत्यन्त उत्साह रखनेवाले हे इन्द्र, जो कि आप अपने ही पराक्रम से अपनी रक्षा करने में समर्थ हैं वही आपने रजोलोक और आकाश के उस पार ( रहकर ) इस पृथिवी को अपने सामर्थ्य के मापने का माप ही बनाया है। आप उदक और प्रकाश को व्याप्त करके द्युलोक में भी प्रवेश करते हैं। १२

आपने इस पृथिवी को माप डाला है और जिसमें अति उच्च योग्यता के शूर पुरुष हैं ऐसे विशाल ( स्वर्गलोक ) के आप स्वामी हो बैठे हैं। आपने अपने सामर्थ्य से सब अन्तरिक्ष व्याप्त कर डाला है। सचमुच आपके समान इस जगत में दूसरा और कोई भी नहीं। १३

जिनकी व्यापकता की बराबरी द्युलोक अथवा भूलोक दोनों नहीं कर सके और अन्तरिक्ष की नदियां भी जिनका अन्त नहीं पा सकीं, तथा सोमरस के आनन्द के आवेश में, उदकों का प्रतिबन्ध करनेवाले वृत्र से युद्ध करते समय भी ( जिनका पूर्ण ज्ञान किसी को भी नहीं हुआ ) उन्हीं आपने अकेले, आत्म-व्यतिरिक्त सम्पूर्ण जगत् को, अपने वश में कर रखा है। १४

हे इन्द्र, जिस समय आपने अपने तीक्ष्ण शस्त्र से वृत्र के मुखपर वार किया उस समय, उस युद्ध के प्रसंग में, मरुतों ने आपकी पूजा की और सब देवताओं ने आपको प्रोत्साहन दिया। १५ ( १४ )

## सूक्त ५३.

ऋषि-सव्य आंगिरस, देवता-इन्द्र ॥

इन श्रेष्ठ इन्द्र को सम्बोधन करके हम स्तोत्र गाने को बैठते हैं। विवस्वान के भवन में हम उन्हें स्तुति अर्पण करते हैं। सोते सोते ( जैसे किसी को ) कोई द्रव्य ला दे, वैसे ही उन्होंने हमें सम्पत्ति प्रदान की है। ( ऐसे ) धनदाता की कोई कर्माचुरी स्तुति नहीं करते। १

आप अश्व, धेनु और धान्य देनेवाले है। सब सम्पत्ति के स्वामी और प्रभु आपही है। पुरातन काल से आप मानवो के मार्गदर्शक है, आपने किसी की आशा को कभी भंग नहीं किया, आप अपने मित्रो के (प्राणप्रिय) मित्र है, आप के ऐसे बडे होने के कारण हम आप के सन्मानार्थ यह स्तोत्र गाते है। २

हे ज्ञानसामर्थ्ययुक्त इन्द्र, हे अनेक महन् कार्य करनेवाले और अत्यन्त दीप्तिशाली देव, यह जो वैभव आसपास प्रकाशमान हो रहा है वह आपहीका है। इस लिए, शत्रुको पराभूत करनेवाले हे इन्द्र, वह हमे ला दीजिए। आप अपने भक्ति करनेवाले स्तोता का मनोरथ भग्न न होने दीजिए। ३

इन (यज्ञ की) अग्निज्वालाओ से और इस सोमरस के बिन्दुओ से मन मे सन्तुष्ट होकर आप धेनु और अश्व हमे देकर हमारी दरिद्रता नष्ट कीजिए। सोमरस अर्पण कर के इन्द्र के हाथ से दस्युओं का वध कराकर हम शत्रुओ से बिलकुल निर्मुक्त होगे और धन धान्य से समृद्ध बनेगे। ४

हम सम्पत्ति से, धान्यसचय से, और अनेक तरह से आनन्दकारक और तेजस्विता से युक्त सामर्थ्य से सुसमृद्ध होगे। तथा जिसके कारण हमारे यहां के शूर पुरुषो का बल द्रष्टि पड़ेगा और जिससे गौओका लाभ प्रमुख है तथा अश्व भी मिल सकते है, ऐसी आपकी दिव्य कृपा भी हमे प्राप्त होगी। ५ (१५)

वृत्रवध के मौके पर, हे सज्जनो के नायक (इन्द्र), उन आनन्दकारक पेयो से, उन उत्साहवर्धक हवियो से, और उन सोमरसो से, आपको (अवश्य ही) नवीन आवेश आया। क्योकि (उसके जोर मे) आपने किसी के प्रतिरोध की परवा न करते हुए, आपके लिए दर्भासन लगा कर आप की कीर्ति गानेवाले भक्तो के लिए दस हजार वृत्रोको काट डाला। ६

जिस समय हे इन्द्र, आपने अपने प्राणप्रिय भक्त नमी को साथ ले कर नमुचि नामक कपटी (राक्षस को) अत्यन्त दूर प्रदेश मे जाकर काट डाला उस समय, (रणसग्राम मे) बडे आवेश से घुसनेवाले आपको युद्ध के पिछे युद्ध करना पडा और अपने सामर्थ्य से आप पुरो के पीछे पुरो का विध्वंस करने लगे। ७

अतिथिग्व के अत्यन्त तेजस्वी चक्र के द्वारा आपने करंज और पर्णय का वध किया। ऋजिश्वान के घेरे हुए वृंगद के सौ पुर आपने उध्वस्त कर डाले। आपके दातृत्व से (सचमुच) किसी की बराबरी नहीं की जा सकती। ८

आप सत्कीर्तियोंसे मंडित हैं। जिस समय सुश्रवस को असहाय देखकर बीस राजाओंने उस पर चढ़ाई की उस समय एक ऐसा रथचक्र लेकर, कि जिसके सामने कोई टिक नहीं सकता था, आपने उनका (साथही) उनके साठ हजार निन्नानवे लोगों का उच्छेद कर डाला। ९

हे इन्द्र, आपने अपने कृपाछत्र से सुश्रवस की रक्षा की और अपनी सहायता देकर तुर्वयाण का बचाव किया। आपने इस श्रेष्ठ और तरुण नृपति के सामने कुत्स अतिथिग्व, और आयुको शरण आनेके लिए बाध्य किया। १०

हम सब देवताओं की रक्षा में रहनेवाले हैं। हम को आप अपना प्राणप्रिय भक्त बनाकर अब आगे भी सौख्य में ही रखिये। अत्यन्त दीर्घ और चिरकालिक आयु का भोग करते हुए, अपनी कृपा से प्राप्त हुए हमारे यहां के शूर मनुष्यों के सहित, अपना स्तवन करते हुए हमें बैठने दीजिए। ११ (१३)

## सूक्त ५४.

ऋषि—सव्य आंगिरस, देवता—इन्द्र ॥

हे उदार देव, इस युद्धमें, ऐसे कठिन अवसर में, हमें न छोड़िये। सचमुच आपके सामर्थ्य का अन्त लगना असम्भव है। आपने अपनी गर्जना करते ही नदियों और वृक्षों को जोर से चिल्लाने के लिए बाध्य किया। (ऐसी दशा में) आपके डर से भला मनुष्य क्यों नहीं एकत्र हो सकते ? १

सामर्थ्यवान पराक्रमी और बलवान इन्द्रकी अर्चा करो (भक्तों की पुकार) सुनने के लिए तैयार रहनेवाले इन्द्र का गौरव करके उनका स्तवन करो। शक्तिसामर्थ्य युक्त इन्द्र अपनी दृढ शक्ति और वीर्य के द्वारा द्युलोक और भूलोक दोनों को २
संतापित करते हैं।

जिस शूर के अन्त करण मे अपने सामर्थ्य के विषय मे विश्वास है और साहस की ओर जिसकी प्रवृत्ति है उस देदीप्यमान और श्रेष्ठ ( इन्द्र को ) सम्बोधन कर के कोई प्रभावशाली स्तोत्र पढो। उस की कीर्ति विशाल है, वह शत्रुओ का नाश करनेवाला है, वह पराक्रमी है, वह हरिद्वर्ण अश्व रथ के आगे जुटाता है। वह सामर्थ्यवान है और ( भक्तो की ओर जानेवाला ) वह ( मानो ) रथ ही है। ३

जिस समय हाथ मे दृढता से पकड़े हुए तीक्ष्ण वज्र से आपने, आनन्द देनेवाले सोमरस के योग से स्फूर्ति चढने के कारण, कपटी ( राक्षसो की ) चमू से युद्ध किया उस समय विस्तीर्ण द्युलोक का शिखर भी आपने हिला डाला और अपने वज्र के प्रहार से शंबर का शरीर विदीर्ण किया। ४

जब कि वृक्षो को रुलाकर शुष्ण की भी सेना को आपने वायु के शिखर पर ले जाकर काट डाला और जब कि अपने उत्साही मन की प्रवृत्ति ( ऐसेही पराक्रम की ओर ) रख कर अब भी आप ( ऐसे पराक्रम ) दिखलाते रहते है तब फिर आपसे अधिक श्रेष्ठ और कौन है? ५ ( १७ )

आपने नर्य, तुर्वश और यदु की रक्षा की। हे सामर्थ्यवान् ( इन्द्र ) आप ने वय्य तुर्वीति की भी रक्षा की। संग्राम का प्रसंग आने पर आपने रथ और एतश की रक्षा की और ( शत्रुओ के ) निन्नानवे पुर ढहा दिये। ६

इन्द्र को हव्य अर्पण करके जो उनके अनुशासन पर चलता है वह सज्जनो मे प्रमुख मनुष्य, राजा बन कर, अभिवृद्धि को प्राप्त होता है। अथवा जो सन्तोषदायक हव्य अर्पण कर के उनको सम्बोधन कर के स्तोत्र पढ़ता है उसके लिए ऊपर से, द्युलोक से, विपुल ( धन की ) वृष्टि होती है। ७

आपके बल की सीमा नहीं, आप की बुद्धिमत्ता की भी सीमा नहीं। जो सोमपान करनेवाले आप के उपासक आप के, जो दान कर्म मे प्रवीण है, श्रेष्ठ सामर्थ्य की और विशाल शक्ति की बडाई गाते है वे अपने सत्कृत्यो से अभिवृद्धि को प्राप्त होते है। ८

पाषाण के बने हुए उलूखल में डालकर निचोये हुए, पात्र में भर रखे हुए और (हे इन्द्र,) आपके पान करने के ही हेतु से तैयार किये हुए ये सोमरस के अनेक चमस आप ही के लिए रखे हुए है। आप उनका पान कीजिए, इन के विषय में आपकी जितनी वांछा हो उतनी सब पूर्ण कर लीजिए और हमें सम्पत्ति देने में अपने मन की प्रवृत्ति कीजिए। ९

अंधकार, उदकों के प्रवाह को बन्द करके, बैठा था और पर्वत भी वृत्र के जठर में था। परन्तु इन्द्र ने उन (जलों को) प्रतिबन्ध करनेवाले राक्षस की रोकी हुई नदियों के लिए मार्ग निकाल दिया, ताकि वे सब अवरुद्ध प्रदेश में, एक की तरह दूसरी, दूसरी की तरह तिसरी बहने लगे। १०

तो अब हमें हे इन्द्र, ऐसा वैभव अर्पण कीजिए कि जिस से हमारा सौभाग्य बढ़े, और लोगों की अपेक्षा बढ़ा चढ़ा हुआ विपुल शौर्य तथा बल भी हमें दिजिए। हे औदार्यशाली देव, हमारी रक्षा, और हमारे यहां के विद्वान लोगों का भी परिपालन कीजिए और हमें ऐसा वैभव तथा समृद्धि दीजिए कि जिसमें उत्तम सन्तति का भी समावेश हो। ११ (१८)

## सूक्त ५५.

ऋषि—सव्य आंगिरस, देवता—इन्द्र।

इसकी श्रेष्ठता द्युलोक से भी अधिक है। पृथ्वी भी अपनी बड़ाई में इन्द्र की बराबरी नहीं कर सकती। यह (शत्रुओं को) भीतिप्रद, सामर्थ्यवान है। मानवों के लिए अपना प्रताप दिखलानेवाला है और, (कोई वृषभ जैसे अपने सींगों में तीक्ष्णता लाने के लिए) उन्हें पैनाता है वैसे ही अपना वज्र अधिक तीक्ष्ण होने के लिए वह उसकी धार तेज करता है। १

समुद्र में निवास करके, किसी महासागर की तरह, अपने आश्रय में आनेवाली सब नदियों का, वह अपने श्रेष्ठ सामर्थ्य के द्वारा स्वीकार करता है, सोमपान करने की इच्छा से वह किसी वृषभ की भांति अपनी शक्ति प्रदर्शित करता है। अपने (अलौकिक) बल के कारण यह योद्धा सनातन काल से स्तवन का पात्र हुआ है। २

हे इन्द्र ! उस पर्वत को मानो ग्रस लेने के लिए ही आप अत्यन्त पौरुष और पराक्रम अपने लिए प्राप्त कर लेते है, ( सब अद्भुत कृत्यो मे ये उग्र ( इन्द्र ) अगुआपन लेते है और अपने सामर्थ्य मे सब देवताओ को पीछे कर देते है। ३

सब लोगो मे अपने कल्याणप्रद सामर्थ्य की प्रसिद्ध करनेवाले सिर्फ इन्द्र की ही नमस्कृति पूर्वक स्तुति होती रहती है । जिस समय हव्य अर्पण करनेवाला भक्त अपने कल्याण की इच्छा से ( इन्द्र की ) स्तुति मे प्रवृत्त होता है उस समय पराक्रमी इन्द्र उन पर सन्तुष्ट होते है, उसके आगे वे अपना रमणीयत्व प्रकट करते है। ४

यही योद्धा अपने बल और सामर्थ्य के द्वारा जनहित के लिए बड़े बडे युद्ध करता है, और इसी लिए, तेजस्वी तथा घातक वज्रसे शत्रुओ पर बार बार प्रहार करनेवाले इन्द्र पर ( सब लोग ) श्रद्धा रखते है । ५ ( १९ )

सचमुच कीर्ति की इच्छा रखनेवाले इस सामर्थ्यवान् इन्द्रने, पृथ्वी की तरह विशाल रूप धारण करके, अपने पराक्रम से ( शत्रुओ के ) बनाये हुए भवनो का विध्वस करके और यजन करनेवाले भक्तो के लिए ( आकाशस्थ ) ज्योतियो को सकटसे विमुक्त करके जलो के प्रवाहो को बन्धमुक्त किया ताकि वे फिर बहने लगे । ६

हे सोमपान करनेवाले इन्द्र ! आपका मन हमारे विषय मे दातृत्व बुद्धि धारण करे और हमारी नम्र स्तुति सुननेवाले हे देव, आप अपने पीतवर्ण अश्व हमारी ओर घुमाइये । हे इन्द्र, आपके सारथी आपके अश्वो को वश मे रखने मे अत्यन्त कुशल है और इस लिए आपके अश्व चाहे जितने चपल हो, वे आपको इधर उधर नही ले जाते । ७

हे इन्द्र, आप विख्यात है, आप ऐसा वैभव अपने हाथ मे रखते है जिसका कभी विनाश नही । आपने ऐसा सामर्थ्य अपने शरीर मे धारण किया है जो शत्रुओ को टिकने नही देता । कर्तृत्ववान पुरुष जिसके आसपास खड़े है ऐसे कुए की तरह शोभित होनेवाली आपकी अनेक शक्तिया, हे इन्द्र ! आपके शरीर मे निवास कर रही है । ८ ( २० )

## सूक्त ५६.

ऋषि–सव्य आंगिरस, देवता–इन्द्र ।

जिस प्रकार कोई तुरग तुरगी के लिए उत्सुक होता है, उसी प्रकार, इस उपासक ने चमसों में जो सोमरस भरपूर भर रखा है उसे पीने के लिए, यह उतावली से उद्युक्त हुआ है। जिस में पीतवर्ण अश्व जुटे हुए हैं ऐसा अपना बड़ा रथ इधर को घुमाकर यह इन्द्र महत्कार्य के लिए अत्यन्त आवश्यक सामर्थ्य-दायक सोमरस पान करता है। १

जिस प्रकार प्रवास के लिए जाते समय धनार्जनेच्छु (साहसी) लोगों की समुद्र पर भीड़ लगती है उसी प्रकार हव्य बनाकर तैयार कर रखे हुए स्तोता जनों की इसके आसपास भीड़ लगती है। जिस प्रकार से सुन्दर गुर्वतिगा (अर्थात् उषा) पर्वत पर आरूढ़ हुई है उसी प्रकार (हे देव,) आप इस सामर्थ्याधिपति (सूर्य) को पर्वत पर संस्थापित कीजिए, क्यों कि यह यज्ञ का केवल बल ही है। २

वह शत्रुओं का नाश करनेवाला और श्रेष्ठ है। उसका अत्यन्त शुभ्र बल अपने सामर्थ्य से प्रत्येक युद्ध में गिरि शिखर की भांति चमकता रहता है। इस बल के द्वारा इस अजित देव ने, (सोम रस के कारण उत्पन्न हुए) आनन्द के वेग में, अपना लोहेका वज्र ले कर, कपटी शुष्ण का (पराभव किया और उसे) शृंखलाबद्ध कर के कारागृह में डाल दिया। ३

जिस समय तू ही छुटपन में बढ़ाई हुई शक्तिरूपी देवी, जैसे सूर्य उषा पर आसक्त होता है वैसेही, स्वसंरक्षणार्थ इन्द्र का आश्रय करती है उस समय अपने प्रतापी सामर्थ्य से अंधकार का नाश करने वाला यह देव नवयश हार्त हुए सारी मलीनता को दूर कर देता है। ४

जिस समय आपने अपने सामर्थ्य से द्युलोक की सीमा पर रजो-लोक की दृढ़ता और सुस्थिरता से संस्थापना की और जब (सोमरस से उत्पन्न हुए) हर्ष के वेग में आपने बड़े आवेश में युद्ध में वृत्र का वध किया, तब आपके हाथ से उदक का सचय बन्धमुक्त हुआ। इन्द्र, आप श्रेष्ठ हैं, आप पृथ्वी के प्रदेश में अपने सामर्थ्य से आकाश के बालक को ले आते हैं। सोमरस के कारण उत्पन्न होनेवाले हर्ष के वेग में आपने उदकों के लिए मार्ग खोल दिया और वृत्र के पत्थरों

## सूक्त ५७.

ऋषि-सव्य आंगिरस, देवता इन्द्र ॥

अत्यन्त उदार, श्रेष्ठ, अत्यन्त वैभवशाली, सत्य, सामर्थ्यवान् और पराक्रम के पुतलेही ( इस देव ) को प्रसन्न करने के लिए मै स्तुति अर्पण करता हूं । जिस प्रकार, ढालू जमीन की ओर जो पानी फूट जाता है वह किसी प्रतिबन्ध को भी न मानते हुए सर्वत्र फैल जाता है उसी प्रकार, इसके सर्वत्र दृग्गोचर होनेवाले और अखंड जारी रहनेवाले कृपाप्रसाद के कपाट ( भक्तो के शरीर मे ) सामर्थ्य लाने के लिए सदैव खुले रहते है। १

जिस समय सुवर्णमय, सुन्दर परन्तु प्राणघातक, वज्र पर्वत पर फेकने की तरह ( वृत्र के शरीर पर जा गिरा उस समय सम्पूर्ण विश्व आपकी पूजा करने मे प्रवृत्त हुआ और ढालू जमीन की ओर जैसे पानीका प्रवाह ) सरासर वहता जाता है ( उसी प्रकार भक्तो के हव्य बराबर आपकी ओर आने लगे )। २

जिसके तेज, नाम, बल और प्रकाश की चारो ओर प्रशंसा होने के लिए आपने उन्हे सर्वत्र प्रवृत्त होने मे, इन्द्र के पीतवर्ण अश्वो को भांति ही, प्रवृत्त किया उस भीतिप्रद परन्तु स्तुतिस्तोत्र गाने योग्य इन्द्रको, उषा की भांति, कान्तिमान देख पड़नेवाली हे युवति, । इस यज्ञ में, नमस्कृति अर्पण करके ले आइये । ३

अनेको ने जिनकी स्तुति की ऐसे हे वैभवशाली इन्द्र, हम सब प्रकार से आप ही के है, क्योकि आपका आश्रय करके हम इस जगत् मे सुखपूर्वक रहते है । हे स्तुति-प्रिय देव, आपके अतिरिक्त अन्य किसी को भी स्तुति नहीं प्राप्त होती, इस लिए जिस प्रकार पृथ्वी ( जीव मात्र को ) जगह देती है वैसे ही आप भी हमारे स्तोत्रो का स्वीकार कीजिए। ४

हे इन्द्र ! आप का बल विपुल है, हम आप ही के है। आप अपने इस भक्तकी इच्छा पूर्ण कीजिए । इस विशाल द्युलोकने आपके सामर्थ्य से अपने सामर्थ्य की तुलना कर देखी है और यह पृथ्वी भी आप के पराक्रम के सामने नम्र हो गई है। ५

हे वज्रधारी इन्द्र, आपने अपने वज्र से उस बडे और विशाल पर्वत के टुकड़े टुकड़े कर डाले । रोक डाले हुए जल-प्रवाह फिर जारी होने के लिए आप ही मार्ग निकाल दिया । सचमुच जितना कुछ सामर्थ्य है, सब आप ही अकेले धारण करते है । ६ ( २२ )

# अनुवाक ११

## सूक्त ५८.

ऋषि–नोधा गोतम, देवता–अग्नि।

यह ( देवताओं को ) हव्य पहुंचानेवाला अग्नि विवस्वान का दूत हुआ है। इसी लिए यह सामर्थ्य से जन्म लेनेवाला अमर्त्य देव कभी थक नहीं जाता। वह उत्तम मार्गों से रजोलोक का आक्रमण करता है और यज्ञ मे ( देवताओं को ) हव्य अर्पण करके उनका आदरातिथ्य करता है। १

यह जरा–भय–रहित अग्नि देव अपने अन्न को सत्वर और आतुरता से स्वीकार करके काष्ठ मे ( प्रज्वलित होकर ) रहता है। जब इसको घृत अर्पण किया जाता है तब उसका पृष्ठ भाग किसी ( ताजे तवाने ) अश्व की भांति प्रफुल्लित देख पड़ता है। इसने मानो स्वर्ग के भी सिर तक प्रतिशब्द उत्पन्न करते हुए गर्जना की है। २

जो कर्तृत्वशील है, रुद्र और वसु ने जिसे प्रमुखता दी है जिसने वैभव जित लाया है और जिसे मृत्युभय नही है ऐसा यह हविर्दाता ( अग्नि ) ( यहां ) आकर विराजमान् हुआ है। यह देव इस जगत् मे रहनेवाले सब मनुष्यों में प्रतिष्ठा प्राप्त करके किसी रथ की तरह बराबर सम्पत्ति ले आता रहता है। ३

वायुसे प्रेरित होते ही यह बडी गर्जना करके अपनी जिव्हारूप लपट साथ लिये हुए काष्ठ समुदाय मे सहज रीति से जा बैठता है। ज्वलज्ज्वालाओं परिवेष्टित और वार्धक्य पीडा से निर्मुक्त रहनेवाले हे अग्निदेव, जब आप काष्ठ समुदाय मे अपना सामर्थ्य एकदम प्रकट करते है तब आपका मार्ग ( धुए से ) काला हो जाता है। ४

यह अग्नि, जिसकी दंष्ट्रा ज्वालामय है, वायु से प्रेरित होकर जब काष्ठ समुदाय मे प्रवेश करता है तब, कोई शक्तिमान वृषभ जैसे अपने समूह में निर्भय संचार करता है वैसे ही, यह संचार करने लगता है। जब यह अविनाशी रजोलोक से अपने सामर्थ्य के द्वारा गमन करता है तब सम्पूर्ण चराचर सृष्टी को इस पक्षिराज का भय मालूम होने लगता है। ५ ( २३ )

सम्पत्ति की तरह सुन्दर रहनेवाले, सब लोगो को पुकारने मे सुलभ लगनेवाले, और दिव्य लोक के पुरुषो को मित्र की भांति सुखदायक होनेवाले हे श्रेष्ठ हविर्दाता अग्निदेव, जब आप भृगुओ के अतिथि हुए तब उन्होने मानव समुदाय मे आपको सन्मान से जगह दी। ६

( भक्तो को ) सब सम्पति अर्पण करनेवाले अग्निका मै हवियो से पूजन करता हू और इस कारण मुझे उत्कृष्ट सम्पति भी प्राप्त होती है। यह अग्नि ( देवो को ) हव्य पहुचानेवाला है, इस लिए हव्य अर्पण करनेवाले सप्त ऋत्विज ( सदा ) यह इच्छा करते रहते हैं कि इस यज्ञार्ह अग्नि का यज्ञ मे आगमन हो। ७

सामर्थ्य से जन्म पानेवाले और स्वामित्रो को आनन्द देनेवाले हे अग्निदेव, जो भक्त आपका स्तवन करते है उन्हे आज आप अक्षय सुख प्राप्त करा दे। हे शक्ति-पुत्र अग्ने, जो आपकी स्तुति गाते है उन सेवको के लिए लोहे के नगर बनाकर आप सकट मे उनकी रक्षा कीजिए। ८

हे दीप्तिमान् अग्निदेव, आप स्तुति करनेवाले अपने भक्तो के कवच बन जाय, हे उदार देव, जो आपको हव्य अर्पण करते हैं उनके आप प्रत्यक्ष कल्याण ही हो जाय। अग्ने, आप अपने स्तोतृजनो की संकट से रक्षा करते ही रहते है, अतएव असख्य स्तुति-स्तोत्रो से मडित यह ( अग्निदेव ) प्रातःसमय शीघ्र ही ( हमारे यज्ञ की ओर ) पधारे। ९ ( २४ )

## सूक्त ५९.

ऋषि-नोधा गोतम. ॥ देवता-अग्नि वैश्वानर ॥

हे अग्निदेव अन्य सम्पूर्ण अग्नि आपकी शाखा है। सम्पूर्ण अमर ( देवता ) आपही मे अत्यन्त सन्तोष पाते है। सम्पूर्ण विश्व के विषय मे मित्रता धारण करनेवाले हे अग्निदेव, आप सम्पूर्ण पृथ्वी के मध्यबिन्दु ( केन्द्र ) हैं। १

अग्नि द्युलोक का मस्तक और पृथिवी की नाभि है, इसके सिवाय यह द्युलोक और भूलोक का अधिपति हुआ है। सम्पूर्ण विश्वके विषय मे मित्रता धारण करनेवाले हे अग्निदेव, आप ऐसे श्रेष्ठ देव है, इसी कारण आपको देवताओ ने इस हेतु से निर्माण किया है, ताकि आप आर्यजनो की ( मार्गदर्शक ) ज्योति ही हो। २

जिस प्रकार सूर्य मे निरन्तर रश्मियो का वास रहता है उसी प्रकार सम्पूर्ण विश्व के विषय मे मित्रता धारण करनेवाले इस अग्नि मे सब वैभव संस्थापित हुए है। जिन द्रव्यनिधियो का पर्वतो, वनस्पतियो अथवा मर्त्यलोक मे निवास रहता है उन सब के आप अकेले ही राजा है ३

मानो इस उदार अग्नि के लिए ही द्युलोक और भूलोक इतने विस्तीर्ण हो गये है। इस प्रकाशमान सत्यबल से युक्त, सम्पूर्ण विश्व के विषय मे मित्रभाव धारण करनेवाले और सब शूरो मे श्रेष्ठ ( अग्निदेव को ) यह उपासक, किसी प्रज्ञावान पुरुष की तरह, बडे बडे असंख्य स्तोत्र अर्पण कर रहा है। ४

सम्पूर्ण विश्व के विषय मे मित्रता धारण करनेवाले हे सर्वज्ञ अग्निदेव, आपकी महिमा इस विस्तीर्ण द्युलोक से भी अधिक है। आप सम्पूर्ण मानव समुदाय के राजा है। राक्षसो से युद्ध करके आपने देवताओ को सुरक्षित कर दिया। ५

वृत्र का वध करनेवाले जिस ( अग्नि ) का आश्रय सब लोग ढूँढते है उस सामर्थ्यवान् देवकी महिमा ( इस स्तोत्र मे ) मैंने गाई है। सम्पूर्ण विश्व के विषय मे मित्रता रखनेवाले इस अग्निने दस्युओं का वध करके ( उदको के मार्ग का ) प्रतिबन्ध नष्ट किया और शम्बर को छिन्नविच्छिन्न कर डाला। ६

सम्पूर्ण विश्व के विषय मे मित्रता धारण करनेवाला और अपने सामर्थ्य से सर्वत्र वास करनेवाला यह पूज्य और दीप्तिमान अग्नि भारद्वाज कुल के पुरुषो मे ( आकर विराजमान हुआ है। ) जिसकी वाणी मधुर परन्तु सत्यपरिप्लुत है उसी अग्नि की, शातवनेय और पुरुणीथ के यज्ञ मे, सैकडो स्तोत्रो से स्तुति हुई है। ७ ( २५ )

## सूक्त ६०.

ऋषि–नोधा गोतम ॥ देवता अग्नि ॥

जो ( हमारा हव्य देवताओं तक ) पहुँचानेवाला है, वह मूर्तिमान् कीर्ति ही है, यज्ञ की जो केवल ध्वजा ही है, जो यज्ञगृह में अत्यन्त रखने योग्य है, जो हमारा दूत बनकर देवताओं के पास तुरंत ही गमन करता है, जो दो बार जन्मता है, उत्कर्ष की भांति जो प्रशंसनीय है और जो केवल वैभव की मूर्ति ही है, ऐसे उस अग्नि को भृगुओं के लिए मातरिश्वा ले आया । १

हव्य ग्रहण करने के लिए उत्सुक होनेवाले ( जो देव ) और जो मर्त्यलोक के ( मानव हैं वे ) इस प्रकार उभयलोक इसकी आज्ञा मान्य करते रहते हैं ( सम्पूर्ण लोगों के लिए ) जो सन्मानपूर्वक सत्कार करने योग्य है, जो सम्पूर्ण मानवों में उनका राजा बन कर रहता है और जिसका कर्तृत्व विलक्षण है वही यह हविर्दाता सूर्योदय के पूर्व ही यहां आकर स्थानापन्न हुआ है । २

जिसे उसकी उपासना करनेवाले इस जगत् के मानव अपने संकटसमय में हवियों से प्रज्वलित करते आये हैं उसी ( भक्तों के ) हृदय में प्रकट होनेवाले और मधुर भाषण करनेवाले अग्नि को, हमारा यह हृदय–पूर्वक गाया हुआ नवीन स्तोत्र, जा मिले । ३

( हवियों के लिए ) उत्सुकता रखनेवाला ( सपूर्ण जगत् को ) पावन करनेवाला और जो ( मानो ) प्रत्यक्ष वैभवही है उसी हविर्दाता अग्नि की यहा इन मर्त्य–मानवों के समुदाय में स्थापना की गई है । अपने भक्तों के गृह में निवास करनेवाले और गृह में गृहाधिपति कहलाकर शोभनेवाले इस अग्नि ही की ओर सम्पूर्ण सम्पत्तियों की प्रभुता आज तक ( निर्बाध रूप से ) रहती आई है । ४

हे अग्निदेव, अश्व की पीठ पर जैसे ( कोई साईस ) हाथ फिराता है उसी प्रकार आप, जो सामर्थ्य प्राप्त करा देनेवाले हैं, उन पर वायु डुलाते हुए हम गोतम–कुलोत्पन्न ( आप के भक्त ), सर्व सम्पत्तियों के स्वामी आप की, अनेक स्तोत्रों के द्वारा, स्तुति करते हैं । स्तुति स्तोत्र ही इन अग्निदेव का वैभव है । ये प्रातःकाल शीघ्रही यहां पधारें । ५ ( २६ )

## सूक्त ६१.

ऋषि–नोधा गोतम ॥ देवता इन्द्र ॥

प्रबल, वेगवान और श्रेष्ठ (इन्द्र को) सम्बोधन करके ही मैं यह हव्य तथा यह स्तवन अर्पण करता हूं। मैं उस स्तवनीय और निर्विघ्न रीति से संचार करनेवाले इन्द्र का ध्यान कर के ऐसी स्तुति (गाता हूं) कि जो उसे अर्पण करने योग्य है और ऐसे स्तोत्र गाता हूं कि जो आजतक उसके सन्मानार्थ रचे हुए स्तोत्रों में उत्कृष्ट है। १

सचमुच इस देवता को मानो मैं हव्य ही अर्पण कर रहा हूं। इस (शत्रु) विनाशक देवता को मैं एक सुन्दर स्तवन अर्पण करता हूं। इन्द्र जो (इस विश्व का) पुरातन प्रभु है उसके प्रीत्यर्थ (विद्वान उपासकोंने) अपना अन्तःकरण, मन, बुद्धि लगा कर (अनेकानेक) स्तोत्र गाये है। २

सचमुच जिसकी उपमा दूसरे स्तोत्रों को दी जानी चाहिए और जो प्रकाश का लाभ करा देनेवाला है वही स्तोत्र मैं उस (इन्द्र) की प्रसन्नता के लिए ही गाता हूं। उस अत्यन्त उदार और प्रज्ञाशाली देव का माहात्म्य मैं अपनी मनमानी सुन्दर स्तुतियों से वर्णन करना चाहता हूं। ३

जिस मनुष्य को रथ की आवश्यकता होती है उसके पास जैसे कोई बढ़ई रथ तैयार करके भेजता है उसी प्रकार सचमुच इस (इन्द्र के पास) मैं अपनी स्तुति [illegible] हूं। उसी प्रकार सुन्दर सुन्दर स्तवन और ऐसा (एक स्तोत्र) जो सर्वत्र स्वीकार किया जायगा, भक्तों के स्तवनों का स्वीकार करनेवाले इस इन्द्रके पास मैं भेज देता हूं। ४

जैसे कोई अश्व सजाकर तैयार करते है वैसे ही मैं सचमुच, कीर्ति प्राप्त करने की इच्छा रखकर, स्ववाणी से इन्द्र के प्रीत्यर्थ एक स्तोत्र भली प्रकार से सजाता हूं। उसके द्वारा, मेरी यह इच्छा है कि, वीर्यशाली, सर्व दानशूरता के आगार, (शत्रुओं के) पुरों का विध्वंस करनेवाले और–जिनकी कीर्ति सर्वत्र गाते रहते है उस इन्द्र को अपनी प्रणति अर्पण की जाय। ५ (२७)

शत्रु पर ) प्रहार करनेवाले जिस वज्र से शत्रुओं का संहार करते हुए इस बलशाली विश्वाधिपतिने वृत्र के मर्मस्थल ही की खबर ली वह उज्ज्वल और वधकर्म के लिए अत्यन्त उपयोगी वज्र सचमुच इस ( इन्द्र के प्रीत्यर्थ ही त्वष्टा देव ने तैयार कर दिया। ६

सचमुच अपनी माता के किये हुए याग में ही इसने एकदम उत्कृष्ट पेय पान किया और हवियों का उत्कृष्ट ( आस्वाद लिया ) बलवान विष्णु भी ( इसके लिए ) ऐसे हवि हरण कर लाया जिनकी पाकसिद्धि उत्तम हुई थी। ( उनका भोजन करके ) अस्त्रविद्या में प्रवीण देवने, उस सुअर के शरीर पर अपना तिरछा वज्र फेककर, उसे छिन्न-विच्छिन्न कर डाला। ७

अहि का वध करनेवाले इस इन्द्रकी प्रसन्नता के लिए ही स्त्रियों ने भी—स्वयं देवपत्नियों ने—एक सुन्दर स्तोत्र रचा। विस्तीर्ण द्युलोक और भूलोक का उसने आकलन किया है। परन्तु हां, उनकी महिमा आकलन करने का सामर्थ्य उनके शरीर में नहीं है ७

सचमुच इसकी महिमा द्युलोक भूलोक और अन्तरिक्ष, इन सब से भी अधिक है। स्वतेज से विराजमान होनेवाले इन्द्र का घर घर स्तवन होता रहता है। यह सामर्थ्यवान इन्द्र ( शत्रुओं से लड़ने के लिए; उच्च घोष करके ( एकदम ) बढ गया। ८

जगत का शोषण करनेवाले वृत्र को इन्द्रने स्वसामर्थ्य से वज्र लेकर छिन्नभिन्न कर डाला। अपनी कीर्ति फैलाने के लिए दानकर्म की ओर मन की प्रवृत्ति रखनेवाले इस इन्द्र ने, धेनु की तरह प्रतिबन्ध में पड़े हुए जल प्रवाह के लिए मार्ग खोल दिया। १० ( २८ )

जिस समय अपने वज्र से उस ( वृत्र को ) जीता उस समय, यह उस सामर्थ्य का प्रताप कि नदियां आनन्द से दौड़ने लगीं। सम्पूर्ण विश्वपर आधिपत्य स्थापन करनेवाले और, हवि अर्पण करनेवाले भक्तों के विषय में मातृवत् बुद्धि धारण करनेवाले, और ( शत्रुओं का ) संहार करनेवाले इन्द्र ने ही तुर्वीति के लिए पानी को उतार दिया। ११

आप जगत् के प्रभु और सामर्थ्यवान् हैं, अतएव इस वृत्र पर निशाना लगा कर सत्वर वज्र फेंकिये। उदकों के प्रवाहों को पुन प्रवाहित करने के लिए इन मे गति उत्पन्न कीजिए और इस (वृत्र के शरीर की) प्रत्येक संधि पर प्रहार कर के, किसी बैल की देह की संधियों की तरह, उनका विदारण कीजिए। १२

सचमुच वेग से (शत्रु पर टूट) पड़नेवाले इस देवता के, पुरातन काल से लेकर, पराक्रम गाने लगो। स्तुतियों के द्वारा यह शरण जाने योग्य है, क्योंकि लड़ाई करने के लिए अपने आयुध बढ़ा कर और [शत्रुओं को] मार कर वह उनका सत्यानाश कर डालता है। १३

सचमुच इसके जगत मे अवतीर्ण होते ही इसके डर से अत्यन्त स्थिर प्रस्थान पर्वत तक—यही क्यों, किन्तु भूलोक और द्युलोक भी कांपने लगते है। [इस सुन्दर देव के भक्त संरक्षण—सामर्थ्य की प्रशंसा करनेवाला नोधा एकाएक बहुतसा पराक्रम कर दिखलाने लगा। १४

सचमुच यह इन्द्र, जो विपुल (सम्पत्ति का) अकेला ही मालिक है, उस सकल वस्तुओं मे से जिस जिस वस्तुकी इच्छा करता गया वह वह उसे अर्पण होती गई। जब सूर्य से एतशा की यह स्पर्धा हुई, कि अश्व पर अच्छा बैठनेवाला कौन है, तब एतशा चूं कि सोमरस के उत्तम हवि अर्पण करनेवाला इन्द्र का भक्त था, इस कारण उसने एतशा की रक्षा की। १५

हे पीतवर्ण अश्वोंपर आरोहण करनेवाले इन्द्र, इस प्रकार गोतमों ने ये स्तोत्र इतनी सुन्दर रीति से, सचमुच आप ही के प्रीत्यर्थ बनाये है। इन स्तोत्रों पर आप सब प्रकार से कृपादृष्टि रखिये। स्तुति स्तोत्रों के वैभव से परिपूर्ण यह [इन्द्र] हमारे यहां प्रात:काल शीघ्र ही आगमन करे। १६ (२९)

# अध्याय ५.

## सूक्त- ६२

॥ ६२ ॥ ऋषि–गौतम नोधा । देवता–इन्द्र ॥

सामर्थ्यवान्[1] और स्तुतिप्रिय इन्द्र के लिए अंगिरस की तरह प्रभावशाली स्तोत्र हम स्मरण कर रखते हैं। स्तुति करनेवाले भक्तों के लिए अत्यन्त स्तवनीय और अतिशय कीर्तिमान् इस वीर के सन्मानार्थ आइये हम लोग, सुन्दर शब्दरचना कर के स्तोत्र पढे। १

पैर[2] पहचान लेने मे अतिदक्ष अंगिरस नामक हमारे भक्तिमान प्राचीन पूर्वजों को जिनकी कृपा से धेनुओं की प्राप्ति हो सकी उन श्रेष्ठ इन्द्र को तुम अत्यन्त नम्रता से वन्दन करो और उन्हीं सामर्थ्यवान इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए तुम स्तुति से परिपूर्ण कोई गान करो। २

इन्द्र और आंगिरस की इच्छा से सरमा को अपने पुत्र के लिए उत्तम पेय[3] मिला। बृहस्पति ने पर्वत तोडा और गौओं को प्राप्त किया, तथा शूर लोगों ने धेनुओं के सहित आनन्द की गर्जनाए की। ३

आप तेजस्वी है। आपको सप्त विप्रों ने और अत्यन्त चपल नवग्वो ने और दशग्वो ने स्तुति-स्तोत्र और [illegible] ( प्रोत्साहित किया, तब ) हे पराक्रमी इन्द्र, आपने बड़ी गर्जना कर के पर्वत, मेघ[4] और वल का ध्वंस किया। ४

हे सौन्दर्यवान इन्द्रदेव, जब अंगिरसों ने आपकी स्तुति की तब उषा, सूर्य और धेनुओं [illegible] लेकर आपने अंधकार[5] का उच्छेद किया। हे इन्द्र, आपने भूलोक की मर्यादा विस्तृत [illegible] और रजोलोक[illegible] ऊपर द्युलोक की संस्थापना की। ५ (१

---

१–[illegible] [illegible] ( इन्द्राय ) अङ्गिरस्वत् शूषम् आगूष, प्रमन्महे। सुवृक्तिभि, स्तुवते ऋग्मिया[illegible] [illegible] अर्चाम ॥

२–[illegible] [illegible] न पूर्वे पितर. अङ्गिरस येन गा अविन्दन्, तस्मै महे शवसानाय ( इन्द्राय [illegible] [illegible] प्रभरध्वम् ॥

३–इन्द्रस्य [illegible] वेष्टो, सरमा तनयाय धासिं विदत्। बृहस्पति अद्रिं भिनत् गाः विदत्। न[illegible] [illegible] ( सह ) [illegible] .

४–[illegible] [illegible], [illegible], त्वम्, विप्रै, इष्टुना, स्वरेण, स्तुभा, स्वर्यः स, ( त्व ) ( हे ) [illegible] [illegible] दरय ॥

५–( हे ) [illegible] [illegible], [illegible] उषसा सूर्येण गोभि अप [illegible] वित्र, भूम्याः सानु, व्यप्रथय, [illegible] [illegible] [illegible] ॥

इस सौन्दर्यवान् देवता का यह कर्म अत्यन्त सन्माननीय है-यह उसका अद्भुत कृत्य सचमुच ही अत्यन्त सुन्दर है-कि क्षितिज के पास उसने मधुर जल की चार नदियां, एक के ऊपर एक, उपटापाट भर दी। ६

स्तुतियों से परिपूर्ण स्तोत्र होते हुए, कदापि श्रान्त न होनेवाले इस देवता ने प्राचीन काल से एकत्र[८] रहनेवाली जोड़ी फोड़कर उनके दो भाग किये। अनेक सुन्दर आश्चर्यकारक पराक्रम करनेवाले इस देवता ने भग की तरह स्वर्गभूमि और पृथिवी, इन दो युवतियों को, इस विशाल आकाश भाग में, स्थापना की। ७

सनातनकाल से रात्र और उषा, ये दो युवतियां, कि जिनके रूप भिन्न हैं, परन्तु जो पुनः पुनः जन्म लेती रहती हैं, अपनी अपनी गमनरीति से द्युलोक और पृथिवी के आसपास, क्रमशः कृष्ण और उज्ज्वल रूप धारण कर के, अकेले अकेले, परिभ्रमण करती रहती हैं। ८

सुन्दर सुन्दर चमत्कार करनेवाले और अत्यन्त उदार इन्द्र ने अपने सामर्थ्य से श्रेष्ठ कार्य कर के (सम्पूर्ण विश्व के विषय में) चिरकालिक प्रेमबुद्धि धारण की है। (हे इन्द्र,) गौओं का रंग लाल हो चाहे काला हो, किंबहुना, चाहे वे बिलकुल नवीन धेनु[९] की ही क्यों न हों, आप उनमें बलदायक, सफेद और मधुर[१०] दुग्ध रखते हैं। ९

जिनकी गति एक ही जगह की ओर है, और जिन्हें प्रत्यवाय अथवा नाश[११] होने का डर नहीं वही ये नदियां पुरातन पुरातन काल से, अपने सामर्थ्य के अनुसार (इस देवता की) आज्ञाओं का परिपालन कर रही हैं। जैसे एक ही पुरुष की हजारों विवाहित स्त्रियां हों उसी प्रकार ये बहिनी बहिनी इस एक ही की सेवा करती रहती हैं। और वह भी दिल खोलकर उस सेवा[१२] का स्वीकार करता है। १० (२)

---

६-दस्मस्य अस्य (इन्द्रस्य) तत् उ कर्म प्रयक्षतमम्, दंस चारुतमम् यत् उपह्वरे, उपराः मध्वर्णसः चतस्रः नद्यः अपिन्वत् ॥

७-स्तवमानेभिः अर्कैः अयास्यः (इन्द्रः) सनजा सनीळे[८] द्विता विवव्रे। परमे व्योमन्, भगः न, सुदंसा मेने रोदसी अधारयत् ॥

८-सनात् विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वभिः एवैः भूमा दिवः परि, अक्ता, कृष्णेभिः, उषाः, रुशद्भिः, वपुर्भिः अन्यान्या आचरत ॥

९-सुदंसाः, सूनुः, शवसा स्वपस्यमानः सनेमि सख्यं दाधार। आमासु चित्[९], कृष्णासु रोहिणीषु च, पक्वं[१०] रुशत् दधिषे ॥

१०-सनात् सनीळाः, अवाताः, अमृताः,[११] अवनीः सहोभिः व्रता रक्षन्ते। स्वसारः अद्वयाः पुरु सहस्रा, जनयः पत्नीः न, दुवस्यन्ति[१२] ॥

आप नमस्कृतियों और स्तोत्रों से अर्चन करने योग्य हैं। हे सौन्दर्ययुक्त देव, धन और लाभ की इच्छा रख कर हमारे मन की स्फूर्ति आपकी ओर दौड़ती रहती है। हे बलशाली देव, जैसे अनुरक्त[11] पत्नी अनुरक्त पतिको आलिंगन देती है वैसे ही हमारी स्तुतिया आपसे मिलने आती है। ११.

हे लावण्यवान् देव, सनातन कालसे आपके हाथमें सम्पत्ति है। उसका क्षय अथवा ह्रास कदापि नहीं होता। हे इन्द्र, आप कान्तिवान्, बुद्धिमान् और प्रज्ञावान् हैं। हे सामर्थ्यवान् देव, अपनी शक्तिके योगसे, आप हमे सत्मार्गमे लगाइये। १२

हे इन्द्र, यह गौतम प्राचीन[12] ऋषियोंका अनुकरण करता है। हरिद्वर्ण अश्वपर आरोहण करनेवाले आपके लिए उसने नवीन स्तोत्र रचा है। हे सामर्थ्यवान् देव, आप हमारे सन्मार्गदर्शक हैं। आपके लिए नोधा ऋषिने स्तुति बनाई है। इस देवता के पास स्तोत्रसम्पत्ति भरपूर है। प्रातःकालमे ही हमारे यहा उसका सत्वर आगमन हो। १३ (३)

## सूक्त. ६३

॥ ६३ ॥ ऋषि-गौतम नोधा ॥ देवता-इन्द्र ॥

हे इन्द्र, जबकि प्रत्यक्ष सम्पूर्ण पर्वत, और भूमिपर दृढ संस्थापित अन्य भारी वस्तुएं भी, आपके डरसे (सूर्यकी) किरणोंकी तरह लच लच हिलने लगी तब आप अवश्य ही बहुत बड़े हैं—इतने बड़े हैं कि, आप सर्वज्ञ है, और द्युलोक तथा भूलोकको भी अपने सामर्थ्य से आपने अपनी धाक[1] मे रखा है। १

११-नमसा अर्कैः त्व नव्य.। दस्म, सनायुव वसूयव मतय दद्रु। शवसावन्, उशन्त पति "उशती. पत्नी न मनीषा त्वा स्पृशन्ति॥

१२-सनात् एव राध एव गभस्तौ। दस्म, न क्षीयन्ते न उपदस्यन्ति। इन्द्र, द्युमान् क्रतुमान् धीर. असि। शचीव, तव शचीभि न. शिक्ष॥

१३-इन्द्र, गौतम सनायते"। हरियोजनाय नव्य ब्रह्म अतक्षन्। शवसान न सुनीथाय नोधाः। (स) यावद्य प्रात मक्षु जगम्यात्॥

१-यत् ह त्यत् इन्द्र गिरयः चित् (दृळ्हा) अन्या ते भिया किरणा न ऐजन्, इन्द्र, त्व महान्—य. [illegible]

हे इन्द्र, जब आपने, अनेक प्रकार से [illegible] नाचनेवाले अपने [illegible] भुजाओं पर आपका स्तवन करनेवाले भक्त ने आपका [illegible] भुजाओं पर रख दिया। आपकी बुद्धि से चलनेवाले,[2] और अनेक भक्तों के द्वारा [illegible] पारायण किये हुए हे इन्द्र, वहाँ वज्र लेकर आप शत्रुओं का और सम्पत्ति से समृद्ध उनके नगरों का उच्छेद करते हैं। २

हे इन्द्र, आप सत्यस्वरूप हैं, आप इन (शत्रुओं के) उच्छेदक हैं, आप ऋभुओं के स्वामी हैं, आप मनुष्यों के कल्याणकर्त्ता हैं, आप अपने साथ युद्ध में प्रवृत्त होनेवाले को पराभूत करनेवाले हैं। आपने तेजस्वी और तरुण कुत्स का पक्ष[3] लेकर संग्राम में, युद्ध[4] में और लड़ाई में शुष्ण का हनन किया। ३

दीप्तिमान् [illegible] मन की प्रवृत्ति रखनेवाले हे शूर इन्द्र, सत्यगुण [illegible] दस्युओं पर सहसा ही [illegible] और उन्हें भगाकर[5] आपने [illegible] निवासस्थल से उन्हें [illegible], और जिस समय, हे [illegible] पुरुष की तरह [illegible] करनेवाले [illegible] इन्द्र, (कुत्स के) [illegible] आपने [illegible] का वध किया, उस समय [illegible] कार्य के [illegible] था। ४

हे वज्रधारी इन्द्र, इसी कारण से आपने कुत्स के लिए युद्ध किया और सप्त पुरों का विध्वंस किया। जिस समय आपने सुदास के लिए उसके शत्रुओं को, कुछ भी श्रम न करते हुए, घास की तरह काट डाला उस समय हे राजन्, आपने पुरु की सम्पत्ती से रक्षा[11] की। ७

हे सर्वसंचारी[12] इन्द्र देव, आपने हम पर जल की तरह अपनी उस कृपादृष्टि की वृष्टि की कि जिसके भोग से, हे शूर, इस रीति से हमें आप से उत्तम सामर्थ्य[13] का लाभ हुआ जैसे सब जगह जल गिरते जाता हो। ८

हे इन्द्र, गोतमों ने आपका स्तवन किया है और आपके अश्वों को वन्दन करके उनको सन्मानार्थ भी उन्होंने स्तोत्र गाये हैं। हमें उत्तम प्रकार का सामर्थ्य दीजिए। उत्तम स्तुतियों से प्रार्थित किया हुआ यह देवता प्रातःकाल शीघ्रही हमारी ओर गमन करे। ९ (५)

## सूक्त. ६४

॥ ६४ ॥ ऋषि–गोतम नोधा । देवता–मरुत् ॥

हे नोधा, मरुदेवों के सन्मानार्थ, उनके सामर्थ्यवान्, अत्यन्त पूज्य और अत्यन्त कर्तृत्ववान् गणोंको सम्बोधित कर के एक सुन्दर स्तोत्र अर्पण करो। ध्यानपूर्वक और शोभा से पूर्ण सुरचना[1] के साथ में यज्ञ के प्रसंग पर पानी की तरह प्रभावशाली स्तोत्रों की वृष्टि करता हूं। १

---

७–वज्रिन् इन्द्र, त्वत् ह त्य पुरुकुत्साय युध्यन् सप्त पुर दर्द । यत् सुदासे वार्हि न वृथा वर्क्, राजन्, पूरवे वरिवः क ॥

८–परिज्मन् इन्द्र, त्व न , आपो न त्या चित्रा इष पीपय यया, शूर, विश्व क्षरध्ये अस्मभ्यं प्रति ऊर्ज त्मन यसि ॥

९–इन्द्र, गोतमेभि ते ब्रह्माणि अकारि हरिभ्या नमसा ब्रह्माणि उक्ता । सुपेशस वाज न. आ भर । धियावसु प्रात मक्षु जगम्यात् ॥

१ नोधः, मरुते वृष्णे सुमखाय वेधसे शर्धाय सुवृक्ति प्र भर । नमसा धीर सुहस्त्य[1] विदथेषु आभुव. गिर अपो न ऋञ्जे.

रुद्रों के पुत्र, (शत्रुओं का) नाश करनेवाले सम्पूर्ण अवगुणों[२] से अजित, जगत् को पालन करनेवाले, सूर्य की तरह तेजःपुञ्ज और वृष्टि करनेवाले हैं, तथा सामर्थ्यवान् पुरुषों की तरह भयप्रद ये ऊँचे शरीर के पराक्रमी वृषभ द्युलोक में जन्मे हैं। २

तारुण्ययुक्त, जरारहित, भक्तिहीन, कृपण पुरुषों का विनाश करनेवाले और किसी के प्रतिरोध[३] को न माननेवाले ये रुद्र पर्वत की तरह बलवान् होते गये। ये स्थिर लोकों और पृथ्वीतल के प्रदेशों को फिर वे चाहे जितने अचल क्यों न हों, अपने सामर्थ्य के योग से हिला डालते हैं। ३

सुन्दर देख पड़ने के लिए वे अपने को चित्रविचित्र आभरणों[४] से आभूषित कर रहे हैं। शोभा के लिए उन्होंने अपने वक्षस्थल पर सुवर्णालंकार धारण किये हैं। उनके कंधों पर चमकते हुए भाले देख पड़ रहे हैं और ये वीर अपना ही मार्ग धारण कर के द्युलोक से उत्पन्न हुए हैं। ४

विश्व पर आधिपत्य सम्पादन करनेवाले, सम्पूर्ण जगत् को हिला डालनेवाले और दुष्टों का संहार करनेवाले इन मरुतों ने हवा और बिजली उत्पन्न की। वे सर्वभूमि के मेघ का दोहन करते हैं और सर्वत्र संचार कर के दुग्ध से पृथ्वी को पुष्ट करते हैं। ५ (६)

शरीर में कर्तृत्व[५] रखनेवाले ये दानशूर मरुत् जल, और घृतपरिपूर्ण दुग्ध की समृद्धि करते हैं। वे सामर्थ्यवान् अश्व[६] को मानो कुद्ध वृष्टि करने की ही शिक्षा देते हैं और गर्जना से शब्द करनेवाले अविनाशी झरने का दोहन करते हैं। ६

---

२ रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः पावकासः सूर्या इव शुचयः द्रप्सिनः सत्वानो न घोरवर्पसः (यथा) प्यासः उक्षणः ते दिवो जज्ञिरे.

३ युवानः अजरा अभोग्घनः अध्रिगावः हस्ता पर्वता इव ववक्षुः। मरुतवा दिव्यानि पार्थिवानि च विश्वा भुवनानि प्रच्यावयन्ति.

४ वपुषे चित्रैः अञ्जिभिः व्यञ्जते। शुभे वक्षःसु रुक्मान् अधियेतिरे। एषां अंसेषु ऋष्टयः निमिमृक्षुः। नरः स्वधया साकं दिवः जज्ञिरे.

५ ईशानकृतः धुनयः रिशादसः वातान् विद्युतः तविषीभिः अक्रत। दुहन्ति दिव्यानि ऊधनि, धूतयः पयसा भूमिं पिन्वन्ति.

६ आयुवः सुदानवः मरुतः अपः घृतवत् पयः पिन्वन्ति। ... अत्यं न मिहे वि नयन्ति, ... स्तनयन्तं अक्षितं उत्सं दुहन्ति.

जिस समय सामर्थ्यवान्[७] सम्पूर्ण युक्तिप्रयुक्तियो मे निष्णात, आश्चर्यकारक तेज से युक्त, पर्वत की तरह स्वसामर्थ्य से परिपूर्ण और शीघ्रसंचारी आप अपनी रक्तवर्ण हरिनियों मे से बलिष्ठ हरिनी को अपने रथ मे जुटाते है उस समय (मानो ऐसा भास होता है कि) आप किसी वनैले[८] हाथी की तरह सब पेड पौधे खा ही डालते हैं। ७

अत्यन्त प्रज्ञाशील, रुरु[९] नामक मृग की तरह सुन्दर, सर्वत्र अपनी चित्तल हरिनी जुटाकर और भाले ले कर, रात को भगा देनेवाले, शत्रु को एकदम एक ही समय पीड़ा देनेवाले और बलिष्ठ होने के कारण सर्प की तरह क्रोधित ये मरुत् सिंह की तरह गर्जना करते हैं। ८

समुदाय मे शोभित दिखनेवाले, मनुष्यों[१०] के सहायक होनेवाले और शरीर मे सामर्थ्य होने के कारण सर्प के समान कुपित होनेवाले हे शूर मरुदेवता ओ, आप स्वर्ग और पृथिवी दोनो लोकों से सम्भाषण कीजिए। आपके रथ के बन्धुरों पर क्या सुन्दर तेज दृग्गोचर नहीं होता ? और आपके रथोंपर क्या विद्युत्[११] विराजमान नहीं हुई ? ९

सर्वज्ञ, स्वैश्वर्य धारण कर के एकत्र निवास करनेवाले, एक दूसरे से बिलकुल संलग्न रहनेवाले स्वसामर्थ्य के योग से श्रेष्ठता पाये हुए, अस्त्रविद्यानिपुण, शरीर मे अपार बल रखनेवाले और आयुध[१२] धारण करनेवाले इन शूर मरुतो ने हाथ[१३] मे बाण लिया है। १०

पवित्र चरण, सुमार्ग से गमन करनेवाले, स्थिर पदार्थों को चलानेवाले, शत्रुओं की ओर से अपने ने प्रतिभर्त्सना[१४] लानेवाले, हाथ मे भाले चमकानेवाले ये मरुत् दुग्धपान से सामर्थ्यवान् बन कर अपने सुवर्णमय पवियो से, मार्ग के किसी क्षुद्र पदार्थ की तरह, पर्वतों को दूर दूर कर डालते है। ११

---

७ [illegible] निभानव गिरयो न स्वतवस रघुष्यद आरणीपु तविषी यत् अयुग्ध्व (तदा) [illegible]

८ [illegible] हरिणा, विश्ववेदस, पृषतीभि [illegible] क्षप जिन्वन्त, सम् इन् सवाध, [illegible]

९ [illegible] शूरा मरुत रोदसी आवदत। वन्धुरेषु दर्शता अमति." न [illegible]

१० [illegible], अस्तार, अनन्तशुष्मा, "वृष- [illegible]

११ [illegible] मरुत प्रनोदुष. सन्तः हिरण्ययेभि. पविभिः [illegible]

युद्धघर्षण मे चतुर, पवित्र, वन मे सचार करनेवाले, और सो[illegible] रुद्र के पुत्रों को पुकार कर हम उनका स्तवन करते है। रजोजो[illegible] सरल गति से दौडनेवाले और अतिशय शक्तिमान् मरुद्गणो का तुम, [illegible] भजन करो। १२

अपनी सहायता देकर आप जिस की रक्षा करते हो वह मनुष्य अपने [illegible] लोगो मे अधिक बलवान होता है। वह अपने अश्वों के योग से [illegible] वह अपने यहा शूर मनुष्यो के द्वारा सम्पत्ति कमाता है, उसे, [illegible] जिसके विषयमे लोग पूछपाछ[11] करते है और उसकी उन्नति होती जाती है। १३

धनकी प्राप्ति करानेवाले, प्रशसनीय, स[illegible] मे [illegible] होनेवाले, [illegible] युद्ध मे हार न जानेवाले और [illegible] शक्ति, हे मरुतो, आप अपने ही [illegible] लाइये। हमे शाश्व[illegible] पुत्र पौत्र भी प्राप्त हो। १४

हे मरुद्देवताओ, हमे ऐसा वैभव दीजिए जो स्थिर रहे, जिसके योग से शूर [illegible] यहा रहे, जिसके योग से शत्रु पराजित[12] हो, जिसकी गिनती [illegible] और [illegible] पड़े और जो सदैव बढता रहे। यह मरुद्गण, जिसकी [illegible] हमारे यहा सत्वर गमन करे। १५

---

६५ ॥ ऋषि-शक्तिपुत्र पराशर । देवता अग्नि ॥

अनुवाक. १२

सूक्त. ६५

गुहा में जाकर जब कोई चोर गुहा में छिपकर[1] जा बैठता है तब उसके
लगाते हैं, उसी प्रकार प्रज्ञाशील पुरुषों ने आपस में एकमत कर के, सब
कार कर के, उन देवों के पास पहुँचनेवाले आपका पता आपके पैरों से
पूजनीय पुरुष आपके समीप विराजमान् हुए। १
उत्पन्न होनेवाले अनुशासनों का देवों ने परिपालन किया। स्वर्ग की
सत्यनियमों का आश्रयस्थान हुई। प्रत्यक्ष सत्य ने जहां जन्म लिया
ठाटबाट के साथ, जिसका जनन हुआ वह अग्नि जब वृद्धि[2] पाने लगा
उसका स्तवन कर के उसके वर्धन को उत्तेजना दी। २
पोषक होता है, पृथ्वी जैसी विस्तीर्ण है, गिरि जैसा (पुष्प फलादिक)
देनेवाला होता है उदक[3] जैसा हितकारक होता है, दौड़ते समय भी अधिक
घोड़ा जिस प्रकार और भी दौड़ता है, अथवा जैसे कोई नदी ऐसी
कि अपने तट तोड[4] डाले, वैसा ही यह अग्नि है। वास्तव में इसे कौन
है? ३
ऐसा प्यारा आप्त है कि मानो वे बहिनी है और यह उनका भाई ही
शत्रुओं[5] का संहार करता है उसी प्रकार यह सम्पूर्ण वन का भक्षण
से प्रेरित होकर इसका मोर्चा वनों की ओर फिरा होता है उस
(जैसे कि) पृथिवी के केश ही काट डालता है। ४
वह जल में बैठ कर श्वासोच्छ्वास करता है। यह होने बुद्धिमान् के
बीज है। यह सब लोगों को प्रभात के समय जागृत करता है। इसके
में नवीनता है। इसका जन्म सत्य से हुआ है। जैसे कोई पुष्ट[6] जानवर
वैसा ही यह देख पडता है। यह सर्वव्यापी है। इसकी कान्ति दूर
५ (१०)

॥ ६६ ॥ ऋषि-पराशर [illegible] । देवता-अग्नि ॥

सूक्त ६६

यह तेजस्वी और प्रभावशाली अग्नि आश्चर्यजनक सम्पत्ति की तरह, [illegible] की तरह, जीवनप्रद आयु की तरह, निज के औरस पुत्र की तरह और [illegible] की तरह है और जिस प्रकार धेनु दुग्ध को दृढ़ शक्ति से धारण करती है उसी प्रकार यह वन के वृक्षों को दृढ़ता से पकड़ रखता है। १

सम्पूर्ण लोकों पर विजय प्राप्त करनेवाला वह अग्नि पके हुए [illegible] की तरह अथवा किसी सुशोभित मन्दिर की तरह है और [illegible] कि जिससे प्रजा का क्षेम रहे। [illegible] में मग्न हुए ऋषि अथवा किसी [illegible] की तरह समस्त जनों में प्रशंसा होती है वैसी ही जगत् में उसकी प्रशंसा होती रहती है। और यह [illegible] को उनका जीवन अर्पण करता है। २

शान्ति देनेवाले सामर्थ्य की तरह अथवा अपने घर [illegible] की तरह यह [illegible] को पूज्य और प्रिय है और इसका तेज दूर तक फैलनेवाला है और [illegible] तृप्त करनेवाला है। [illegible] अपनी [illegible] से [illegible] विराजमान होता है उस समय सुवर्णमय रथ की तरह अथवा जन समुदाय में अपने तेज से चमकनेवाले किसी तेजस्वी पुरुष की तरह यह शोभित करता है। संग्राम में इसका तेज [illegible] होता है। ३

शत्रु के विरुद्ध भेजी हुई सेना की तरह अथवा किसी अस्त्रकुशल वीर के द्वारा [illegible] फेंके हुए दीप्तिमान बाण की तरह यह भय उत्पन्न करता है। यह मूर्तिमान यम ही है। फिर चाहे इसने जन्म धारण किया हो अथवा चाहे इसका मन जन्म लेने की तैयारी में हो। यह कुमारिकों का रक्षक और विवाहित स्त्रियों का नाथ है। ४

जिस प्रकार धेनु अपने गृह की ओर गमन करती है उसी प्रकार हम, अपनी स्थावर और जंगम सम्पत्ति के साथ, उस प्रज्वलित अग्नि की ओर जो तुम्हें प्रिय है, गमन करते हैं। जल के प्रवाहों को, दाहक मार्ग से, किसी महानदी की तरह, इसी ने बहाया। [illegible] [illegible] ऊपर, सर्वत्र और, देखकर गर्जने लगी। ५ (१०)

॥ ६७ ॥ ऋषि-शक्तिपुत्र पराशर । देवता-अग्नि ॥

## सूक्त. ६७

वन (दग्ध करके) विजय सम्पादन करनेवाला यह, मनुष्यजाति के कल्याणकर्ता किसी राजा की तरह, जो उपासक सेवा से शिथिल¹ नहीं होता उसी सेवक को चाहता है। जैसे मनुष्य का क्षेम उसे सुखदायक होता है अथवा जैसे बुद्धि का सामर्थ्य मनुष्य के लिए उपयोगी होता है उसी प्रकार सौख्यकारक होनेवाला यह अत्यन्त प्रज्ञाशील अग्नि हमारा हव्य देवों के पास ले जाकर उन्हें अर्पण करे। १

सम्पूर्ण वैभव अपने हाथ में रखनेवाले इस देव ने गुहा में (छिपकर) बैठ कर देवताओं को बड़े गडबड़² में डाला। मन तल्लीन करके रची हुई प्रार्थना जब बुद्धिमान् (भक्त) जन (प्रेमसे) बैठे हुए गाया करते हैं उस समय उन्हें जगत् में इस देवता का ज्ञान होता है। २

जन्मरहित परमेश्वर की तरह इसने इस विस्तीर्ण पृथिवी का पोषण किया है, सत्यरूप-ग्नि प्रार्थनाओं के योग से उसने द्युलोक को सम्हाल रखा है। हे अग्निदेव, आप विश्व के प्राण हैं। आप प्रत्येक गुहा में परिभ्रमण करते रहते हैं, (परन्तु) हमारे पशुओं के जितने प्यारे (चरने के) स्थान हों उनकी आप (अवश्य) रक्षा कीजिए। ३

गुहा में निवास करनेवाले इस अग्निदेव का ज्ञान प्राप्त करने की जिसको इच्छा है, सत्यरूपी अमृतकी धारा पान करनेके लिए जो उसके आसपास ताके बैठा है, और जो अग्नि के सत्यनियमों का परिपालन करके उसको उसके निवासस्थान से बाहर लाते हैं उनको उनको वह सम्पत्ति प्राप्त होने के लिए आशीर्वाद देता है। ४

जो अपने सामर्थ्य से लतासमुदाय में बढ़ता जाता है, जो उनका अपत्य ही है और जो अपनी जननियों में रहता है, जो प्रज्ञाशील है और जो विश्व का मानो प्राण ही है, वह अग्निदेव जलों के गृह में वास करता है। सुज्ञ लोगों ने उस गृह का माप ले कर उसे मानो उसका मन्दिर ही बना दिया है। ५ (११)

॥ ६८ ॥ ऋषि–शक्तिपुत्र पराशर । देवता–अग्नि ॥

## सूक्त. ६८

सब वस्तुओं को परिपक्व[1] करते हुए यह चंचल अग्नि द्युलोक पर आरूढ़ हुआ है। स्थावर[2] से लेकर जंगम[3] तक सब वस्तुओं को–(किंबहुना रात्रियों को भी) उसने प्रकाशित किया है। यह देवता इन सब वस्तुओं को अकेले ही घेर कर अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण देवों में प्रमुख देव हो बैठा है।

जिस समय, हे देव, आपने जीव बनकर शुष्क काष्ठ से जन्म लिया उस समय आपकी बुद्धिविषयक सामर्थ्य की उन सब ने प्रशंसा की। आपने अपने मार्गों से, आपके आधार सत्यनियमों का जब उन्होंने परिपालन किया उस समय उन सब को 'देव' संज्ञा प्राप्त हुई।

सत्यनियमों का यह प्रेरक है, सत्यनियमों का यह रक्षक है, सम्पूर्ण विश्व का यह प्राण है। इसी के कारण सब लोग अपने अपने कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। आप ज्ञाता हैं, अतएव, आपको जो हव्य अर्पण करे, अथवा जो आपकी सेवा करे, उसे आप सम्पत्ति दीजिए।

मनु की सन्तानों के समुदाय में यह 'हविर्दाता' बनकर बैठा है। वास्तव में सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी यही है। जब स्त्री पुरुषों को परस्पर यह इच्छा हुई कि हमारे सन्तान वीर्यवान् हों तब वे अपनी शक्तियों के योग से सन्तति–लाभ कर सके और उन पर [illegible] होने का प्रसंग नहीं आया।

जिन्होंने तत्काल इसकी आज्ञाएं सुनी हैं उन्हें इसका सामर्थ्य ऐसे ही प्राप्त हुआ जैसे पुत्र को पिता का अधिकार प्राप्त होता है। सब के पोषणों[4] का प्रबन्ध करनेवाले अग्नि ने इस प्रकार अपनी सम्पत्ति खोल रखी है जैसे कोई अपने घर के द्वार खुले रखता है। सब के गृहस्वास्थ्य[5] में आनन्द माननेवाले इस अग्नि ने नक्षत्रों के योग से द्युलोक को सुशोभित किया है।

॥ ६९ ॥ ऋषि—शक्तिपुत्र पराशर । देवता—अग्नि ॥

## सूक्त ६९.

उषा के वल्लभ की तरह यह उज्ज्वल और देदीप्यमान्[1] है। और स्वर्ग की ज्योति की तरह द्युलोक और पृथिवी का आक्रमण करता है। जन्म लेतेही इसने अपने सामर्थ्य से सम्पूर्ण जगत् घेर लिया और पुत्र होते हुए भी वह देवताओं का पिता हुआ। १

उस अग्नि मे कर्तृत्वशक्ति बहुत है। यद्यपि इसका ज्ञान विशाल है, पर इसमें गर्व की छूत नहीं। धेनुओं के दुग्ध की तरह पेय[2] पदार्थों का यह मूर्तिमन्त माधुर्य[3] ही है। यद्यपि इसका नाम दुर्ग[4] है, तथापि, प्रत्यक्ष सौख्य की तरह, यह लोगो को आनन्द देनेवाला है; जब यह घर[5] के मध्य भाग मे स्थित होता है, तब अत्यन्त रमणीय जान पड़ता है। २

पुत्र का जन्म होने पर जैसे वह घर मे पिता को रमणीय देख पड़ता है वैसे ही यह भी घर मे रमणीय मालूम होता है। प्यारे घोडे की तरह यह कठिन प्रसंग से, निर्वाह करा लेता है। मनुष्यों से सहवास करने मे जिस देव—समुदाय को आनन्द मालूम होता है उन्हें जब जब मे (अपने यज्ञ मे) बुलाता हूं तब तब यही उन सब का देवत्व धारण कर के आता है। ३

जो कि इन सब मानवो की ओर आपने (आज तक) उत्तम ध्यान[6] दिया है, इस लिए आपकी यह आज्ञा भंग करने का साहस कोई नहीं कर सकता। सचमुच यह आपही का पराक्रम है कि अपने समबल देवताओं की सहायता से आपने शत्रुओं का वध किया और वीर पुरुषों को हाथ मे लेकर आपने दुर्भाषणी निन्दकों[7] का सत्यानाश कर दिया। ४

उषा के वल्लभ के समान देदीप्यमान् और तेजस्वी रहनेवाले इस अग्नि की कान्ति से सब परिचित है। स्वयं अपनी ही प्रेरणा से रथ खींच ले जानेवाले अग्नि के अश्व ने द्वार खोल दिये और सूर्य दर्शन होते ही आनन्द का शब्द किया। ५ (१३)

---

१ उप जार न शुक्र शुशुक्वान्' दिव ज्योति न समीची पप्रा प्रजात क्त्वा परिभूष पुत्र' सन् देवाना पिता भुव

२ ... विजानन् अग्नि अद्म गोना ... न पितूना' स्वाद्म' आहर्य' सन् जने शेव न दुरोणे' ...

३ ... जात न दुरोणे रण्व प्रीत वाजी न विश वितारीत् यन नृभि सनीळा विश अदे अग्नि ... देव ना ...

४ ... एता ते व्रता नकि मिनन्ति ... तु ते दस यत् समानै (रपासि) ... रपासि' दिवे

५ ... जार न विभाना ... अत्ले चिकेतन् ... दुर ... स्वर्दृशीके ... नयन्त

॥ ७० ॥ ऋषि–शक्तिपुत्र पराशर । देवता–अग्नि ॥

## सूक्त ७०.

अग्नि की उपासना करनेवाले हम हृदय से उसकी स्तुति करके प्रचुर [illegible] के लिए याचना करें, क्योंकि यह अत्यन्त तेजःपुंज अग्नि सम्पूर्ण [illegible] डालनेवाला है। देवलोक के नियमों का इसको पूर्ण ज्ञान है और यह, उत्पत्ति [illegible] इस बातको जानता है कि मनुष्यजाति के प्राणी कैसे जन्म पाते हैं।

जलों का जो गर्भ है, जो चर और अचर सृष्टि का भी गर्भ है उस अग्नि के [illegible] लिए चाहे वह पर्वतों के अन्तर्भाग का हो अथवा गृहों के अन्तर्भाग का हो–[illegible] का प्रत्येक मनुष्य, तथा अमरों का समुदाय भी प्रसन्नतापूर्वक नम्र होता है।

जो इस अग्नि को, उत्तम स्तोत्रों सहित, जब तक यह तृप्त नहीं होता तब तक [illegible] अर्पण करता है उसके लिए यह रात्रिका स्वामी अग्नि धनका भाण्डार देता है। [illegible] के जन्म और सन्ततों का ज्ञान रखनेवाले हे ज्ञानशील अग्निदेव, आप [illegible] भूप्रदेशों की रक्षा कीजिए।

स्वर्ग में अधिष्ठित होनेवाला यह हविर्दाता अग्नि जब सत्य से परिपूर्ण [illegible] था तब हमारी ओर से इसकी आराधना हुई है। यह सत्य से परिपूरित है। [illegible] स्वरूप की अनेक रात्रियों ने तथा स्थावर जंगम सम्पूर्ण पदार्थों ने इसका वर्धन किया है। [illegible]

आप हमारी स्तुओं की प्रशंसा कराते हैं। जो कुछ हमारे अधिकार में है [illegible] प्रशंसा करते हैं। हमारे कुलके सब मनुष्य आपको स्वर्गीय बलि अर्पण करते हैं। [illegible] वृद्ध पिता की सम्पत्ति जिस प्रकार उसके पुत्र को प्राप्त होती है उसी प्रकार आपकी [illegible]
से उन्हें सम्पत्ति मिली है। ५

यह कार्यसाधु मनुष्य की तरह अपना स्वार्थ देखनेवाला, अलङ्कृता [illegible] मनुष्यों की [illegible] शूर, बदला लेनेवाले क्रूर मनुष्य की तरह भयप्रद और संग्राम में उज्ज्वल [illegible]
वाला है। ६ (१४)

॥ ७१ ॥ ऋषि–शक्तिपुत्र पराशर । देवता–अग्नि ॥

## सूक्त ७१.

जिस प्रकार प्रेमी[1] स्त्रियां अपने प्रेमी पति को प्रसन्न करती है उसी प्रकार एक ही जगह रहनेवाली इन स्त्रियों ने इसको प्रसन्न किया है । जैसे उषा को देखकर गौओंको आनन्द होता है उसी प्रकार आश्चर्यकारक तेज के योग से प्रकाशमान् होनेवाले शुभ्रवर्ण दिवस और कृष्णवर्ण रात्रि को देख कर इसने आनन्द से उनका स्वागत किया है । १

हमारे पितरों ने सिर्फ स्तोत्र सामर्थ्यों से अत्यन्त दुर्भेद्य दुर्ग भी तोड़ डाले; उसी प्रकार अंगिरसों ने स्तोत्रघोषों से पर्वतोंका भग किया । उन्होंने हमारे लिए, विस्तीर्ण द्युलोक को पार जाने को, मार्ग[2] तैयार किया और दिवस, स्वर्ग, दीप्ति और प्रकाश को प्राप्त कर लिया । २

प्रेमपूर्वक उसकी उपासना करनेवाले उसके किंकरों ने उसके सत्यनियमों का अवलम्बन किया और उसकी प्रार्थनाए[3] सफल कर ली । देवसमुदाय को सन्तुष्ट करनेवाले कर्मव्यापृत जन्तु निरालस अग्नि की ओर गमन करते रहते है । ३

जब से इसे सर्वव्यापी मातरिश्वा ने मंथन कर के उत्पन्न किया तब से यह देदीप्यमान्[4] अग्नि प्रत्येक घर मे प्रादुर्भूत होने लगा । किसी बलवान् राजा का कार्य अपने ऊपर लेनेवाले की तरह, इस भृगु के समान देख पडनेवाले अग्नि देव ने, प्रत्येक स्थल में उपस्थित रहकर, सब का प्रतिनिधित्व स्वीकार किया है । ४

यह अग्निदेव चित्रविचित्र कान्ति से युक्त और प्रज्ञावान् है । इसने अपने पिता श्रेष्ठ द्युलोक की लालसा पूर्ण की और फिर वह नीचे चला गया । (तुरन्त ही) इस पर अलौकिक पराक्रमी पुरुष ने क्रोध मे आकर प्रज्वलित बाण चलाया और उस दिव्य द्युलोक ने अपनी कन्या में नई प्रकाश उत्पन्न किया । ५ (१५)

---

१ उशतीः उशन्तं नित्यं पतिं न सनीळा जनयः उप प्र जिन्वन् गावः उषसं न स्वसारः श्यावीं चित्रं उच्छन्तीं अरुषीं अजुष्रन्.

२ पितरः नः उक्थैः वीळु चित् दृळ्हा न अंगिरसः रवेण अद्रिं रुजन्, अस्मे बृहत दिवः अस्मे गातुं चक्रुः, अहः, स्वः, केतुं, उस्राः विविदुः

३ अस्य दिधिष्वः विभृत्राः ऋतं दधन् आत् इत् अर्यः धीतिं धनयन् इत् आत. देवान् जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः अतृष्यन्तीः अपसः अच्छ यन्ति

४ यत् विभृतः मातरिश्वा ईं मथीत् श्येतः गृहेगृहे जेन्यः भूत् सचा सन् भृगवाणः ई सहीयसे राज्ञे न दूत्यं आ विवाय

५ महे पित्रे दिवे यत् ईं रसं कः अव त्सरत् अस्ता धृषता अस्मै दिद्युं सृजत्, देवः स्वायां दुहितरि त्विषिं धात्

## सूक्त ७२.

॥ ७२ ॥ ऋषि–शक्तिपुत्र पराशर । देवता–अग्नि ॥

अनेक प्रकारसे लाभकारक[1] अग्निके हाथमें होनेके कारण कई कवीयोने उसकी स्तुति की है. अग्निने शाश्वत् सम्पत्ति उत्पन्न की है; और स्वयं वैभवका स्वामी बन गया है। १

आस-पास बहुत कुछ ढूंढनेपर भी हमारा बालक हमको नहीं मिलता? यह सब ज्ञानी देवोंको मालूम हुआ। उसके पैरके[2] पीछे पीछे जानेपर सब ज्ञानी देव थक गये और उनकी स्तुति की। तब अग्निने उनपर कृपा की और वे (सब ज्ञानी देव) अग्निके उच्च स्थान पर पहुंचे। २

हे अग्निदेव, आप देदिप्यमान हैं। जिस समय उन देदिप्यमान पुरुषोने आपकी तीन वर्षतक घृतसे पूजा की तब वे यज्ञके पूजनीय पद धारण करने योग्य बने, और महत्कार्य करने की शक्ति[3] उनमें उत्पन्न हुई। ३

जब विशाल द्युलोक और भूलोक में वे सहाई पुरुष ढूंढने लगे तब उनको रुद्र के नामसे अग्नि का लाभ हुआ। जब सभी मनुष्यों को यह बात विदित हुई तब श्रेष्ठ पद पर चढ़े हुए अग्निको उस स्थान पर मिलनावालेने इसी को जानने लगे। ४

जब ये सर्व मनुष्य अग्निको जानने लगे तब वे उसके पास बैठे और अपनी स्त्रीयो के साथ उनकी पूजा की। उन्होंने अग्निको नमस्कार किया। जैसे एक मित्र सोते हुए दूसरा,

हे अग्निदेव, जो इक्कीस गुह्य पद (यज्ञ) आपके शरीरमें रखे हुए हैं उन्हींके द्वारा यज्ञार्ह पुरुषों को ज्ञान हुआ। उन इक्कीस पदके कारण ही वे एकताके भाव से रहते हैं, और अपने अमरत्वको रक्षा करते हैं। हे अग्निदेव, हमारे पशु, वाजरके स्थिर और अस्थिर धनकी रक्षा कीजिये। ६

हे अग्निदेव, सब मनुष्योंके विचारों को आप जानते हैं। उनके प्राणों की रक्षा करनेका प्रबन्ध आपने हमेशाके लिये किया है। देवोंके जाने आनेके गुप्त मार्ग भी आप जानते हैं। इस लिये आप उनको हवि पहुँचानेवाले दूत बन गये हैं। आप आलसी नहीं हैं। ७

तुम्हारा ध्यान करनेवाले और सत्य-नियम पालनेवाले पुरुषोंको द्युलोकमें जो सात नदियां और संपत्ति है उन सबका ज्ञान हुआ। जिस जगह गौओंको बन्द कर रखा था वह गुप्त स्थान भी सरमाको मालूम हुआ। इसीके कारण मानव जाति आनन्दमें रहती है। ८

अपनी भावी प्रजाको सुख प्रदान करानेके लिये जो महान पुरुष नीतिमार्गका अवलम्बन करते हैं उनको पृथ्वी माता उदारतासे सहारा देती है। अपने मातारूपी पक्षीकी (क्षुधा बुझानेके लिये) वृद्धि (रक्षा) करनेके लिये अदिति माता आकाशमें विस्तृत रूपसे प्रकाशित होने लगी। ९

अमर देवोंने जिस समय द्युलोकमें दो आंखें उत्पन्न की उस समय उन्होंने अग्निमें सुन्दर तेज उत्पन्न किया और अग्निमें तेजोरूपी नदियां बहने लगीं, जब तेजोरूपी नदियां बहने लगीं तब सब मानव जातिको उनका ज्ञान हुआ १० (१८)

---

सत्य और नीतिका अभिमान रखनेवाले सबके साथ मनुष्यों को रक्षके लिये उत्सुकता से श्रेष्ठ दूध पिलाना। आपकी कृपासे प्राप्त होनेवाली मधुर वाणी भी प्रदेशों से पर्वतके पास आती है।

७ हे अग्निदेव, पवित्र देवोंने भी आपकी कृपाकी प्रार्थना की, और स्वर्ग लोकके प्रदान की। उन्होंने रात्रि और उषा इन दोनों अलग अलग रूपके (देवताओं को) किया और इस तरह उन्होंने काला और लाल रंगोंको एकत्रित किया।

हे अग्निदेव, आपने सब मानव जातिके लिये धन-धान्य उत्पन्न करनेका साधन किया इस कारण हम भी आपको हवि अर्पण करते हैं। आकाशको व्याप्त करके पृथ्वीलोकको भी आपने व्याप्त किया है। इस तरह सब विश्वको आप [illegible] रहते हैं।

हे अग्निदेव, नित्य आपकी कृपा हमपर हो और आप हमारे रक्षा करनेवाले हों हमारे और शत्रुओंके [illegible] करेंगे हमारे वीर पुरुष शत्रुओंके वीरोंका [illegible] हमारे कुलमें उत्पन्न होनेवाले विद्वान पुरुषों को हमारे पुरोंका [illegible] प्राप्त हों। और [illegible] सब वंशकी आयु प्राप्त हों।

हे वीर्यशाली अग्निदेव, ये हमारे स्तोत्रकी गीत आपके हृदयको आनन्द दें। [illegible] आपने हमें कीर्तिमान होवें। आप सब वैभवको अपने स्वाधीन रखनेवाले हैं। हम [illegible] नियमों के अनुसार रहेंगे। १० (

---

## सूक्त ७४.

## अनुवाक १३.

॥ ७४ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-अग्नि ॥

दूर[1] होनेपर भी जो हमारी पुकार सुनता है उस अग्निके लिये हम एक स्तोत्र गाते है । १

जब मनुष्य आपसमें लड़ाई करते है तब वह पुराणा अग्निदेव अपने भक्तो के धन और घरकी रक्षा करता है । २

अब सचमुच ही यह बात मालूम होती है कि हरएक युद्धमे अग्निदेव धनकी लूट ले आये और वृत्र का वध करने के लिये ही आपने जन्म लिया । ३

हे अग्निदेव, जिनके घरमे आप देवोका प्रतिनिधी बनकर रहते है, जिसके यज्ञमे आपको हवि अर्पण किया जाता है और जिनके यज्ञका प्रबन्ध आपकी ओरसे अच्छी[2] तरहसे किया जाता है, ४

उसी को लोग, हे सामर्थ्यसे उत्पन्न हुए अग्निदेव, अच्छा हवि अर्पण करनेवाला, अच्छा यज्ञ करनेवाला और हे तेजस्वी कहते है । ५ (२१)

हे आनन्द देनेवाले अग्निदेव, हविओंका आस्वाद लेनेके लिये और स्तुतियोंका स्वीकार करनेके लिये आप देवोंको यहां ले आते है । ६

---

१ आरे च अस्मे शृण्वते अग्नये अध्वरं उपप्रयन्त मन्त्र वोचेम.

२ स्नीहितीषु कृष्टिषु संजग्मानासु, पूर्व्यः च दाशुषे गयं अरक्षत्.

३ उत, [illegible] [illegible] वृत्रहा अग्नि अजनि [illegible]

४ यस्य [illegible] [illegible] [illegible]

५ [illegible]

६ सुश्चन्द्र, [illegible] प्रशस्तये [illegible]

हे अग्निदेव, आपका कौन सगा है, आपको यज्ञ कौन अर्पण[3] करता है, सचमुच आप कौन है, और आप किसके पास रहना चाहते है? । ३

हे अग्निदेव, आप सबके नातेदार[4] है, आप हमारे मित्र है; और जो आपपर प्रेम करता है उसके आप प्यारे मित्र है। ४

मित्र और वरुणको हमारा यज्ञ आप पहुँचाइये। हमारे तरफसे अपने सत्य नियमके अनुसार देवोंको हमारी पूजा अर्पण कीजिये । हे अग्निदेव, आप हमारा यज्ञ अपने घर ले जाते हैं। ५ (२३)

## सूक्त ७६.

॥ ७६ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-अग्नि ॥

हे अग्निदेव, आपको कौनसा स्तोत्र प्यारा[1] है जिसके गाने से आपको आनन्द होगा? कौनसी स्तुति आप चाहते है जिससे आप सन्तुष्ट होंगे? आपको यज्ञ अर्पण करके किसने बल प्राप्त किया? और हम आपको किस तरहसे हवि अर्पण करे? १

हे अग्निदेव, आप आईये, हमारा हविर्दाता बनकर आप यहां विराजमान् हूजिये। आप हमारे नेता हैं। आपको कोई भी किसी तरह नहीं सता[2] सकता है। द्युलोक और पृथ्वीलोक-जिनसे सब विश्व[3] व्याप्त है-आपकी रक्षा करे। सब देवोंको हमारा यज्ञ पहुँचाइये जिससे उनकी बडी[4] कृपा हमारेपर बनी रहे। २

वही बुद्धि का खजाना है, वही कार्य करनेवाला सच्चा मनुष्य है, मनुष्य के अच्छे गुणों का वही आदर्श है, मित्र की तरह आराम पैदा करनेवाले रथपर वही आरूढ होता है। देवों के श्रद्धालु[2] भक्त इस सुन्दर देव को यज्ञ मे पहले पहल बुलाते है। ३

सब मनुष्यों मे अग्नि बहुत श्रेष्ठ है। शत्रुओं का नाश करनेवाला अग्नि हमें सहारा देनेवाला होवे और हमारे स्तुतिओं का वह स्वीकार करे। जो मनुष्य अग्नि को हवि अर्पण करता है वही बलवान् और पराक्रमी बनता है। इस प्रकार की[3] हुई स्तुतिओं[4] का भी अग्नि स्वीकार करे। ४

विद्वान् गोतमोंने सत्यधर्म का पालन करनेवाले और सर्वदा अग्निकी स्तुति की है। आपने (अग्निने) गोतमोंको वैभव, यश, और बल दे दिया है, आप प्रकाशील है। और आपपर सब प्रेम करते है। ५ (२५)

## सूक्त ७८.

॥ ७८ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-अग्नि ॥

हे अग्नि, आप सर्वज्ञ और सर्वसंचारी है। हम गोतम, आपको हवि[1] अर्पण करके आपको बार बार नमस्कार करते है। १

धन की कामना करनेवाले हम, गोतम आपकी सेवामें[2] हवि अर्पण करके आपको बार बार प्रणाम करते हैं। २

हे अग्नि, आप शक्ति के पुत्र है, आप गोओं के स्वामी है। हे सर्वज्ञ देव, आप हम को वैभव और धन अर्पण कीजिये। ४

(हे अग्नि,) आप देदिप्यमान, दयालु, धनवान् और सर्वज्ञ हैं। आप स्तुति के योग्य है। अनेक सेवकों[५] पर अधिकार चलानेवाले, हे अग्निदेव, आप इस तरह प्रकाशित हूजिये जिस से हमे बहुत धन मिले। ५

हे तीक्ष्ण-दंष्ट्र अग्निदेव, रात्रि और प्रात काल के समय आप अपने[६] ज्वालाओं से राक्षसोका नाश कीजिये। ६ (२७)

हे अग्निदेव, आपकी स्तुति सब लोगों मे गायी जाती है। इसलिये आप वन्दनीय है। हम गायत्री लोग आपको अर्पण[७] करते है। इस लिये आप हमारी रक्षा कीजिय। ७

हे अग्नि, हमे ऐसा वैभव और धन दीजिये जो हमेशा के लिये हमारे पास रहे और जो, हमारे शत्रु, किसी युद्धमें[८] छिन नही सकते। ८

---

सौ जगह टूटा हुआ वज्र अपने हाथमें लेकर इन्द्र वृत्रका सिर तोड़ डालता है। अपना साम्राज्य स्थापित करनेके लिये इन्द्र अपने भक्तों के हवियों से सन्तुष्ट होकर उनको धन देकर उनकी उन्नति करता है। ६

हे शस्त्र-अस्त्र पास रखनेवाले इन्द्र, हे वज्रधारी इन्द्र, आपके सामर्थ्य का कोई नाश नहीं कर सकता है। अपना साम्राज्य स्थापित करने के हेतु आपने बड़े कुशलता से और युक्तिप्रयुक्ति से उन दुष्ट पशु (राक्षस) ओंका नाश कर डाला। ७

आपका वज्र नव्वे महानदियों की रक्षा करने के लिये तैयार था। आपका बाहुबल बड़ा श्रेष्ठ है। इस लिये आप अपना साम्राज्य स्थापित करते हैं। आपके बाहुबलसे लोगों को लाभ होता है। ८

हजारों मनुष्य एकत्रित होकर इन्द्रकी पूजा करनी चाहिये। सैकड़ों मनुष्य आपका स्तुतिस्तोत्र गाते हैं। इन्द्र के लिये अब एक अच्छा स्तोत्र तैयार है। इन्द्र साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा करता है। ९

---

इन्द्रने वृत्रके सामर्थ्यका नाश किया। इन्द्रके वज्रके सामने वृत्रके बलका कुछ नहीं चला। यह बड़ी वीरताकी बात है कि इन्द्रने वृत्रको मार डालकर जलोंको उनके प्रतिबन्धसे छुड़ा लिया। निजका साम्राज्य स्थापित करनेकी आपकी बड़ी इच्छा थी। १० (३०)

हे इन्द्र, जब आप युद्धमें आते हैं तब दोनों भू और द्युलोक डरके मारे कांपने लगते हैं। अपना साम्राज्य स्थापित करनेके लिये आपने मरुत् गणों के सहायता से वृत्रको मार डाला। ११

वृत्रने पृथ्वीको हिलाया और बड़ी गर्जना की, तथापि इन्द्र बिलकुलही नहीं डरा। बलिक अपना साम्राज्य स्थापित करनेके हेतु इन्द्रका पैनेधार लोहेका वज्र वृत्रके सिरपर गिर पड़ा। १२

जब इन्द्रका वज्र वृत्रके सिरपर गिर पड़ा तब इन्द्रकी वीरता द्युलोकमें भी मालूम हुई। इस तरह पराक्रम करके वृत्रको मार डालके इन्द्रने अपना साम्राज्य स्थापित किया। १३

[illegible]

लगता है। केवल इतना ही नहीं, बल्कि साम्राज्य स्थापित करनेवाले इन्द्रसे [illegible] त्वष्टा देव भी डरके मारे कांपने लगता है। ११

इन्द्र से किसीका भी बल अधिक नहीं है। आपके बलको [illegible] नहीं [illegible] जिनका साम्राज्य स्थापित करने के लिये सब देवों ने अपना बल और स्फूर्ति इन्द्र [illegible] कर दी। १५

अथर्वा, सब मनुष्योंका पिता मनु और दध्यङ्ने इन्द्र के लिये जो स्तुतियां [illegible] साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा करनेवाले इन्द्र को जा पहुंचे। १६ ([illegible]) ([illegible])

---

# अध्याय ६.

## सूक्त ८१.

॥ ८१ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-इन्द्र ॥

वृत्र का वध करनेवाले इन्द्रको आनन्दित और उत्साहित करनेके लिये मनुष्य उसकी स्तुति करता है। जिस समय लडाई उपस्थित होती है उस समय हम इन्द्र को पुकारते है और उनका सहारा लेते है। छोटी लड़ाई मे भी हम उनको बुलाते है। वीरता के काम मे आपने हमारी रक्षा[1] की है। १

हे शूर पुरुष, सचमुच, आपही सेना के नेता है । अनेक तरह से (भक्तो को) (वैभव) अर्पण करनेवाले आपही है। संसारमे जो छोटा[2] (दीन) मनुष्य है उसकी भी आप उन्नति करते है। जो भक्त आपको सोमरस अर्पण करता है उसको आप बहुत धन-जो आपके पास है-देते है और उसको ज्ञानी बनानेवाले आपही है। २

जिस समय लड़ाई उपस्थित होती है उस समय साहसी पुरुषो को आप चाहे जितनी सम्पति देते है। लडाईमे शत्रुओंको हटानेवाले अश्वोंको आप अपने रथको जोतिये। आपने किसका वध कर डाला? आपने वैभवका किसको स्वामी बनाया है? सचमुच हे इन्द्र, आपने वैभव का स्वामी हमे बना दिया है। ३

हे इन्द्र, आप बलवान् होनेके कारण बडे श्रेष्ठ बन गये है। आपका लड़ने का ढङ्ग[3] कुछ और ही है। इस कारण शत्रु आपको डरते है । आपका बल बहुत बढ़ गया है। आपका सिर बहुत सुन्दर है । आपके पास पीले रग के अश्व है। आप जैसे बडे[4] देवने अपने दोनो कन्धोपर लोहेका वज्र रखा है। ४

आपने भूलोक और रजो लोको को भी व्याप्त किया हैं । द्युलोक मे जो देदीप्यमान प्रदेश है उसको भी आपने व्याप्त[5] किया है। हे इन्द्र, आप सरीखे (इस जगतमे) दूसरा कोई भी नही। (इतनाही नही) किन्तु भूतकाल मे भी आप सरीखा दूसरा कोई नही था। और भविष्यत् काल मे भी आप सरीखा दूसरा कोई नही होगा। आप सबसे बलवान है। ५ (१)

---

१ [illegible] मदाय शवसे [illegible] वावृधे नरः [illegible] आजिषु त इत् [illegible] ईमर्भे हवामहे स. वाजेषु न [illegible]।

२ [illegible] असि [illegible] पराददि: असि दभ्रस्य चित् वृध: [illegible] सुन्वते यजमानाय [illegible] भूरि [illegible]।

३ [illegible] पृष्णवे धना [illegible] मदच्युता हरी [illegible] कं हनः? कं वसौ दधः? इन्द्र, [illegible]।

४ [illegible] हरिवान् [illegible] उपाकयो: [illegible]।

५ [illegible] त्वावान् [illegible]। न जात, न जनिष्यते [illegible]।

जो इन्द्र अपने भक्तोंपर प्रीति करता है और अपने उपासकों के पोषणका प्रबन्ध करता है वह इन्द्र धन प्राप्त करनेकी हमे शिक्षा देवे । आपके पास जो बहुत धन है वह हमे दीजिये। हमपर आप कृपा रखिये। ६

अपने बलका सचे[६] अतःकरणसे उपभोग करनेवाला इन्द्र जब प्रसन्न होता है तब सचमुच वह हमे चाहे जितनी गौएँ दे देता है । हे इन्द्र देव, सैकडों प्रकारके धनके आप स्वामी बन जाइये। हमारी स्फूर्ति बढाइये। और हमे सम्पत्ति दीजिये। ७

हे शूर इन्द्र, जब तैयार किया हुआ सोमरस आपको दिया जाता है तब आप सन्तुष्ट होकर हमे बल प्रदान करते हैं और हमपर कृपा रखते हैं । सचमुच हमे यह मालूम है कि आपके पास बहुत धन है । हमारी जो इच्छा है वह हमे स्पष्ट दीजिये और देते हैं इस कारण आप हमारी रक्षा कीजिये। ८

हे इन्द्र, जो मनुष्य आपके सहारेपर धनसम्पन्न है वे दिनपर दिन अपनी सब प्रकारकी सम्पत्ति[७] बढाते है। आप भक्त-वत्सल[८] होनेके कारण भक्तिहीन (पापी) मनुष्योंके पास जो सम्पत्ति है उसको भी आप जानते हैं । उन पापी मनुष्योंका धन छीनकर हमे ला दीजिये। ९ (२)

## सूक्त ८२.

॥ ८२ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-इन्द्र ॥

हे उदार इन्द्रदेव, आप इधर आइये, और हमारी पुकार सुनिये। हमारे साथ आप (विरोध) भिन्न[१] भाव नहीं रखिये। मधुर वचनसे प्रार्थना करनेका तरीका आपने हमे सिखलाया है। इस लिये अब हम आपकी प्रार्थना करेंगे । हे इन्द्र, सचमुच आप अपने अश्व (जोतनेके लिये) तैयार कीजिये। १

वे आनन्द मे रहे। उन्होंने अपना समय आनन्दमे व्यतीत किया। आपकी उनपर कृपा थी। इस लिये उन्होंने (आनन्द के साथ) अपना मस्तक हिलाया। उन विद्वान् लोगोंमे निजका तेज था, इस लिये उन्होंने नये स्तोत्र बनाये। और आपकी स्तुति की। इस लिये हे इन्द्र, आप अब अपने अश्व जोतिये। २

हे उदार इन्द्रदेव, आपका दर्शन बहुत मनोहर है। इस लिये हम आपकी स्तुति करते है। आप अपने रथमे[२] सब प्रकारका वैभव भरकर रख दीजिये। उस वैभव के साथ आप अपने भक्तों के पास आजाइये। हे इन्द्र, आप अपने अश्व अब जोतिये। ३

हे इन्द्रदेव, यह यज्ञपात्र सोमरस से भरा हुआ है जो आपको अश्व जोतनेके लिये तैयार करता है। जो मनुष्य सोमरस की रुचि जानते है उनको धेनुएँ[३] प्राप्त होती है। वे रथपर बैठनेके लिये तैयार होते है। इस लिये आप अपने अश्व (जोतनेके लिये) सिद्ध करके रखिये। ४

हे इन्द्र, आप अपने दहने तरफका घोडा रथ को जोतिये अथवा बाये तरफका घोडा रथको जोतिये। अपने रथ मे बैठकर हमारा हवी आप स्वीकार कीजिये और आनन्द मनाकर अपनी पत्नी की ओर जाइये। सचमुच हे इन्द्र, आप अपना अश्व जोतिये। ५

आपकी स्तुति करके हम आपके अश्वो को आपही आप जोतनेकी स्फूर्ति कराते है। उनके गर्दन के बाल बहुत लम्बे है। आप इधर आइये। आप सब सम्पति अपने स्वाधीन रखते है। हृदय को प्रसन्न[४] करनेवाले सोम रस ने आपको आनन्दित किया हैं। हे वज्रधारी इन्द्र, पुषादेव और उसकी पत्नी के साथ आप प्रसन्न रहते है। ६ (३)

---

॥ ८३ ॥ ऋषि–रहूगणपुत्र गोतम । देवता–इन्द्र ॥

हे इन्द्रदेव, जिन मनुष्योंपर आपकी कृपा बनी रहती है और जिनकी आप रक्षा करते हैं उनको सबसे पहले अश्व और धेनु मिलती हैं । जिस तरह शीघ्र बहनेवाला जल समुद्रमें जा मिलता है उस तरह सचमुच आप उन मनुष्यो को बहुत धन देते हैं । १

जिस तरह समुद्र की चारों ओर पुण्यवती नदीया फैलती है उसी तरह इन्द्र देव के आस पास उनके उपासक जम जाते हैं और भूलोक और रजोलोक की रक्षा करनेका आप का [illegible] वे देखते हैं। भक्तिमान् मनुष्योंको सब देव उच्च पद को पोहचाते हैं । जिस तरह स्त्री का इच्छा करनेवाला पुरुष स्त्री को ढूंडता है उसी तरह देवो की स्तुति करनेवाले भक्तों को स[ब] (देव) ढूंडते हैं। २

यज्ञचमस तैयार करके जो पुरुष अपने स्त्री के साथ इन्द्रकी पुजा करते हैं उन दोनोंपर आप कृपा करते हैं। जो मनुष्य आपकी आज्ञा मानते है उनको कोई भी नही सताता[3] और उनकी उन्नति होती है । जो उपासक आपको सोमरस अर्पण करता है उसको आप कल्याण करनेवाला बल प्रदान करते हैं। ३

भक्ति से[4] पुण्यकर्म करनेवाले अंगिरसों ने अग्नि को प्रदिप्त किया। वे सबसे पहले दीर्घायु बन गये। उनको पणी (राक्षस) की अनाज, अश्व धेनु और पशु आदि [illegible] मिली। ४

पहिले पहल अथर्वणने यज्ञ करके धन कमानेका मार्ग बनाया। उसके बाद नीतिनियमके अनुसार बर्ताव करनेवाले तेजस्वी सूर्यने जन्म लिया। उशनाकाव्य धेनुओं को [illegible] ले आया। हम अब यम देव की पूजा करते हैं। यम देव को मृत्यु से आना नहीं है। ५

---

१ इन्द्र, तव ऊतिभि सुप्रावी.' मर्त्य प्रथम अश्ववति गोषु गच्छति यथा [illegible] आप [illegible] सिन्धु, भवीयसा वसु न इत् पृणक्षि ।

२ देवी. आप न होत्रं [illegible] उपयन्ति, रज यथा वितत [illegible] पश्यन्ति देवयु [illegible], वधु इव ब्रह्मप्रिय जोषय ते ।

३ या यज्ञचा मिथुना सपर्यत [illegible] वच [illegible] ते [illegible] सुन्वते यजमानाय भद्रा शक्ति ।

४ सुकृत्यया सन्त्या ये रहूगण. अंगिरा प्रथम [illegible] न पशु [illegible] अविन्दन्त ।

५ [illegible] प्रथम यज्ञे पथ तने. [illegible] [illegible] यमस्य [illegible] यजामहे ।

अच्छा सन्तान पैदा होनेके लिये उपासक लोक यज्ञकी तैयारी करते हैं । वे पहले दर्भघास को काटते है । उसके बाद वे स्तुति करते है । और वडे जोरसे गाते हैं जिस गानेका ध्वनि द्युलोक तक पहुँचता है। उसके बाद सोमवल्लीको शील वट्टेसे कूटकर और निचोडकर उसका रस निकाल लेते है । इस तरह जो यज्ञ किया जाता है उसको देखकर इन्द्र प्रसन्न होता है। ६ (४)

## सुक्त ८४.

॥ ८४ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-मरुत् ॥

हे इन्द्र, आपके लिये यहा सोमरस तैयार[१] करके रखा है। इस लिये आप इधर आइये । आप वलवान् और धैर्यवान है। जिस तरह सूर्य अपने किरणो से द्युलोक और भूलोको को व्याप्त करता है उस तरह मूर्तिमान स्फूर्ति[२] आपके शरीरमे घुस जाती है। १

जिसके वलका कोईभी प्रतिरोध नही कर सकता ऐसे इन्द्रके अश्व, ऋषिजनोंकी स्तुति सुननेके लिये और मनुष्यो के यज्ञो का स्वीकार करनेके लिये आपको यहा ले आते है। २

हे वृत्रका वध करनेवाले देव, आप अपने रथ पर सवार हो जाइये । स्तोत्र गाकर अपने रथको अपने अश्व जोतनेके लिये हम प्रार्थना करते है । यह सोमरस अपने मधुर[३] आस्वादसे हमारे तरफ आपका मन आकर्षित करे। ३

हे इन्द्रदेव, अमरत्व प्राप्त करनेवाले, और मूर्तिमान् आनन्द देनेवाले, उत्कृष्ट सोमरस का आप पान कीजिये। ४

सचमुच इन्द्रको उद्दिश्य पूजा अर्पण कीजिये । आपका सन्मान करनेके लिये हम स्तोत्र गाते है। इस सोमवल्ली को निचोडकर निकले हुए सोमरस ने आपको आनन्दित किया है। इस लिये आपके श्रेष्ठ वल को हम नम्रतासे प्रणाम करते है। ५ (५)

---

जिस समय हे इन्द्र, आप रथ को अपने अश्व जोतते हैं उस समय रथ चलानेके लिये आपसे बढ़कर चतुर पुरुष कोई भी नहीं है । और यह बात भी सच है कि रथ के अश्व दौड़ानेमें आपसे बढ़कर दूसरा कोई भी मनुष्य नहीं है। ६

भक्ति से हवि अर्पण करनेवाले मनुष्यों को धन देनेवाले केवल आप ही हैं। आपका बल बहुत बड़ा है आपके बल को कोई रोक नहीं सकता। ७

इन्द्र की पूजा न करनेवाले मनुष्यों को आप पैरके नीचे घास की तरह दबाकर कुचल डालते हैं। सचमुच आप हमारी प्रार्थना कब सुनेंगे? ८

और सब अन्य देवताओंको छोड़कर मनुष्य आपको सोमरस अर्पण करके आपकी पूजा करते हैं। सबको डरानेवाला बल केवल आपहीके पास है। ९

जो उज्ज्वल धेनुएं इन्द्र के साथ रहती हैं वे बड़ी सुन्दर दिखाई देती हैं। वे सुख और शान्ति में रहती हैं। वे भी स्फूर्ति उत्पन्न करनेवाले मधुर सोमरस का पान करती हैं। (१०।१२)

---

६ इन्द्र, यत् हरी यच्छसे त्वत् रथितर. नकि मज्मना त्वा अनु नकि, स्वश्व. नकि आनशे।

७ य दाशुषे मर्ताय वसु विदयते अप्रतिष्कुत इन्द्र ईशान एक इत् अङ्ग।

८ अराधस मर्तं क्षुम्पं इव कदा पदा स्फुरत् अङ्ग, इन्द्रः कदा नः गिरः शुश्रवत्।

९ य चित् हि त्वा सुतवान् बहुभ्य. आ विवासति तत् उग्र शव इन्द्र. पत्यते अङ्ग।

१० या इन्द्रेण सयावरी, वृष्णा शोभसे मदन्ति, स्वराज्य अनु वस्वी. गौर्य स्वादो विषूवत., मध्व. पिबन्ति।

वे चमकदार[1] धेनुए इन्द्र के साथ रहना बहुत पसन्द करती हैं । इन्हींका दूध सोमरसमें मिलाया जाता है जिससे सोमरस अच्छा बनता है। इन्द्र इन धेनुओंपर प्यार करता है। सब विश्वपर इन्द्र का साम्राज्य है। इस कारणसे इन्द्र की धेनूभी वडी तेजस्वी दिखाई देती है। इन्द्र का वज्रभी फूर्तिला[11] और चमकदार दिखाई देता है। -११

वे ज्ञानी धेनुए इन्द्र को नमस्कार करती है। और आपकी पुजा करती है। सबसे पहिले ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे वे तेजस्वी धेनुए इन्द्र की हरएक आज्ञा को मानती है। १२

जिसके वल के सामने डरके मारे शत्रु खडे भी नहीं रह सकते ऐसे इन्द्र ने दधिचि ऋषिकी अस्थि द्वारा नव्यान्नवे वृत्रोंका वध किया। १३

जो अश्वका शिर पर्वत की गुहामे छिपा हुआ था वह इन्द्रको शरणाद्भुतके बीचमे मिला। १४

त्वष्टादेव के वृषभ का नामभी मालूम नहीं था। तथापि उसी गुहामे उसका पता मालूम हुआ। चन्द्र के घरमे भी वह मिला। १५ (७)

वे वृषभ सामर्थ्यवान्[13] और तेजस्वी है। वे किसीके काबूमे[14] रह नहीं सकते। उनका मुख[15] और वदन[16] पैनेदार होनेपर भी वे लोगो को सुख देते है । वे इन्द्र की आज्ञा और सत्यनियमो को मानते है । सचमुच जो कोई उनकी सेवा[17] करते है वे दीर्घआयु बन-जाते है। १६

( इन्द्र को पास देखकर ) ( शत्रुसे ) कौन डरेगा ? किसको भीति उत्पन्न होगी ? ( किसीको नहीं। ) जब इन्द्र अपनी पूजा करनेवाले भक्तोंके पास होता है तब आप स्वय उनको सम्पत्ति और सन्तति देते है। आप बिना प्रार्थना किये उनको सेवकजन[18] देते है। उनके शरीर और चीजो की रक्षा आप करते है। किसीके लिये प्रार्थना करनेकी किसीको आवश्यकता नहीं होती। १७

हवि और घी से अग्नि की पुजा कौन करता है? नियत समयपर यज्ञयजन ने आपको कौन हवि अर्पण करता है? देव यज्ञ का सामान किनके लिये ले जाते है? (आपके लिये) कौनसा उपासक यज्ञ अर्पण करके आपका ध्यान नहीं करता है। १८

हे देव, आप बड़े पराक्रमी है और बडे श्रेष्ठ है। आपने मनुष्यों का बड़ापन बढ़ाया है। हे उदार इन्द्र, हम निश्चय से कह सकते है कि आपके बिना सुख देनेवाला दूसरा कोई भी नहीं है। १९

हे बलवन्त देव. आपकी कृपा हमारेपर हमेशा के लिये बनी रहे, और आप हमारी रक्षा कीजिये। इस व्रत का भंग कभी नहीं कीजिये। मनुष्य जाति की रक्षा करनेवाले हे देव, सब सम्पति हमारे पक्षमें फेंक दीजिये। २० (८) (११)

## अनुवाक १४.

## सूक्त ८५.

॥ ८५ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-मरुत् ॥

जब अद्भुत पराक्रम करनेवाले और शीघ्रगामी रुद्र के पुत्र अपने मार्गसे चले जाते हैं तब वे अपनी भार्या स्त्रियों की तरह सजते हैं। सचमुच उन मरुत् देवों ने स्वर्ग और पृथ्वी को उच्च (श्रेष्ठ) स्थानपर पहुंचाया है। वे बड़े होशियार और शूर है। वे यज्ञ के समय आनन्दित होते है। १

बढ़ते बढ़ते वे श्रेष्ठ हुए। उन रुद्रों ने द्युलोक में अपना स्थान नियत किया। अर्क की उपासना करके और शरीर हृष्टपुष्ट करके उन पृश्नि के पुत्रों ने बहुत बल और तेज सम्पादन किया। २

जिस समय ये धेनुओं के देदीप्यमान् पुत्र निजको सजाते है उस समय वे अपने शरीरपर उज्वल अलकार पहिनते है। वे दुष्टलोगोंका[3] नाश करते है; और उनके मार्गोंपरसे घी का प्रवाह बहता है। ३

ये परमपूज्य मरुत्-देव निजके बल से अचल[4] वस्तुओं को भी चल करते हैं और अपने आयुधों से शोभायमान दिखाई देते है। जिस समय वे बलवान् मरुत्-देव एकत्र हो जाते है और अपने रथ को चित्र विचित्र रंग की हरिन जोतते है उस समय उनकी गति मे मनकासा वेग आ जाता है। ४

जिस समय वे मरुत्-देव अपने रथ को चित्र-विचित्र रंग की हरिनी जोतते है और बड़े वेग से अपना आयुध फराते[5] है उस समय तेजो की लहरे पृथ्वीपर सब दूर फैलती है और भीस्तीके भिगो हुए चमडे की तरह वे पृथ्वी को अपने प्रवाहो मे डुबाते है। ५

हे मरुत्-देव, शीघ्रगामी और वेग से कूदनेवाले[6] आपके अश्व आपको हमारे तरफ ले आवे। जब आप आते है तब (सोमरस पीनेके लिये) तैयार होकर आइये। हमारे आसनपर बैठिये। आपके लिये अच्छी जगह तैयार की गयी है। हमारे मधुर हवियों का आस्वाद लीजिये। ६ (६)

निजके बल[7] के कारण मरुत्-देवों की उन्नति हुई। स्वर्गतक वे उपर जा पहुँचे। उन्होंने निज के लिये एक विस्तीर्ण घर बनाया। जिस समय शत्रुओं के गर्वका खण्डन करनेवाले मरुत्-देवों को विष्णु ने सहायता दी उस समय वे देव पक्षीकी तरह अपने प्रिय कुशासनपर जाकर बैठे। ७

शत्रुओंपर जोरसे चढ़ाई करनेवाले वीर पुरुषों की तरह और लड़ाई में इज्जत कमानेवाले शूर पुरुषों की तरह वे मरुत्-देव बड़े जोरसे लड़कर परम कर्म करते हैं। संसार के सब लोक इन मरुत्-देवों से डरते हैं। राजाओं की तरह उनके शरीर में जोर दिखाई देता है। ८

जिस समय कुशल त्वष्टा देव ने सुवर्ण का सुन्दर पैनेदार वज्र बनाया उस समय का काम करनेके लिये इन्द्र ने उसका स्वीकार किया, उससे वृत्र का वध किया और के प्रवाह का मार्ग खुला कर दिया। ९

वे बलवान मरुत् कुएँको नीचेसे ऊपर ले आये। दृढ पहाड को भी उन्हों ने तोड सोमरस का पान करके और उसी में मग्न होकर उन उदार मरुतों ने मीठी और कई आश्चर्यकारक काम किये। १०

उस कुएंको ऊपर ले गये। और प्यारे गोतमों के लिये उन्होंने पानी का बहा दिया। सुन्दर मरुत अपने बल से अपने उपासकों की रक्षा करने चले गये। और अपने तेज से उन (मरुतोंने) उन विद्वान् ऋषिओं की इच्छा पूर्ण की। ११

आपकी स्तुति करनेवालों को जो वैभव आप देते हैं उससे तिगुना वैभव आपकी स्तुति करनेवालों को दीजिये और हमें भी उसका लाभ मिले। हे शूर मरुत्-देवो, और वैभव हमें दीजिये। १२ (७

## सूक्त ८६.

॥ ८६ ॥ ऋषि–रहूगणपुत्र गोतम । देवता–मरुत ॥

हे तेजवान्[1] मरुत, द्युलोक से आकर जिसके घर[2] में आप सोमरस का पान करते हैं
उसके, आप रक्षा करनेवाले बन जाते हैं। १

यज्ञ करनेवाले भक्तों के तरफ दृष्टि देकर और विद्वान् उपासकों की स्तुति[3] का स्वीकार
करके, हे मरुत्–देव, आप हमारी पुकार सुनिये। २

आप अपने भक्तों को बलवान् बनाते हैं और उनका सन्मान करते हैं। जहां धेनुएं
बहुत है वहां उनको आप रहने के लिये स्थान[4] देते हैं। ३

वे यज्ञमें[5] इन पवित्र दर्भ–घासपर सोमरस निकालके रख देते है और वे स्तुति और सुन्दर
गायन गाते हैं। ४

सब मनुष्यों[6] में जो भक्त श्रेष्ठ है उसकी पुकार मरुत्–देव सुने। उनका वैभव इतना
बड़ा है कि वह सूर्यतक पहुँचता है। ५ (११)

---

ध्यान-पूर्वक आप मनुष्यों की रक्षा करते हैं। इस लिये बहुत दिनोंसे हम आपको हवि अर्पण करते हैं। ६

हे पूजनीय मरुत्-देव, जिन मनुष्यों के हवी का आप स्वीकार करते हैं वे नितान्त भाग्यवान् होते हैं। ७

हे बलवान् मरुत्-देव, आपको विदित ही है कि आपके भक्तजन कितने परिश्रम उठाकर आपकी स्तुति करते हैं, आपके उपासकों की आपपर कितनी प्रीति है और वे किस भाव से इच्छा करते हैं। ८

हे बलवान् मरुत्-देव, विद्युत्-प्रहार से राक्षसों का नाश करके आप हमें आप के बल का अनुभव दिखलाइये। ९

इस गाढ़े अन्धकारको हटा दीजिये। और सब राक्षसों को भगा दीजिये। जो प्रकाश हम चाहते हैं वही हमें दीजिये। १० (१२)

## सूक्त ८७.

॥ ८७ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-मरुत् ॥

जब (द्युलोक मे) प्रकाश[1] दिखाई देता है तब (अन्तरिक्ष में) ज्योतिः भी दिखाई देती है। उसी तरह मरुत्-देव भी अपने बलसे दिखाई देते हैं (प्रकट होते हैं)। इनका बल बहुत बड़ा है। इनका तेज बड़ा सुन्दर है। और वे बड़े पराक्रमी हैं। वे किसीके सामने अपना सिर नहीं नमाते। वे अपने स्थानसे हिलनेवाले नहीं हैं। इनका स्वभाव भी बड़ा सीधा है। इस कारण से सब लोक उनपर प्रेम करते हैं। १

हे मरुत्-देव, जब पक्षी की तरह किसी अद्भुत् मार्गसे आकर आप भागनेवाले[3] मेघो को पृथ्वी के पास[2] रोकते हैं तब आप के रथपर जल का सिञ्चन होता है और पृथ्वीपर पानी गिरता है। अपने भक्तो की विनती का स्वीकार करके मधु-सदृश उदको की वृष्टि कीजिये २

जब वे बाहर चले जाते हैं तब सुन्दर दिखाई देनेके लिये वे अपने अलंकार पहिनते हैं। जब वे गमन करते हैं तब अस्थिर वस्तुकी तरह पृथ्वी हिलने लगती है। खेलने और कूदनेवाले, पृथ्वी को हिलानेवाले, चमकीले शस्त्रो को पास रखनेवाले और सब शत्रुओ को भगानेवाले, हे मरुत्-देव, अपना प्रभाव गाने के लिये लोगो को बाध्य कराते हैं। ३

स्वय-संचार[4] करनेवाले, रक्तवर्ण के अश्वोपर आरूढ होनेवाले, और जवान मरुद्गण सब वस्तुओपर अपनी सत्ता चलाते हैं। वे मरुत्-देव नानाप्रकार के बल के स्वामी हैं। ४

पुराने काल मे जन्म पाये हुए पितरो का नाम लेकर हम कह सकते हैं कि सोमरस का दर्शन[5] होते ही उसका पान करनेके लिये मरुत्-देव पीने के लालच से आगे बढ़ते हैं। युद्ध के समय बड़ी पुकार करके इन्द्र की सहायता करने के कारण उन्होंने यज्ञ मे बड़ा नाम पाया है। ५

---

१ प्रत्वक्षस प्रतवस विरप्शिनः अनानता अविथुराः ऋजीषिण जुष्टतमास नृतमास. के चित् उस्रा इव स्तृभि अञ्जिभि. वि आनज्रे।

२ मरुत यत् वय इव केन चित् पथा उपह्वरेषु यथि अचिध्व, श्चोतन्ति कोशा वः रथेषु उप आ घृत उक्षत मधुवर्णं अर्चते।

३ यत् यामेषु शुभे युजते ह एषा अज्मेषु भूमि विथुरा इव प्र रेजते क्रीळय, धुनय भ्राजदृष्टय धूतय ते स्वय महित्व पनयन्त।

४ स्वसृत् पृषदश्व युवा गणः ईशान. स तविषीभि आवृत हि सत्य ऋणयावा अनेद्य अस्य धिय प्राविता अथ वृषा गणः।

५ पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा यत् ई इन्द्र शमि ऋक्वाण आशत आत् इत् नामानि यज्ञियानि दधिरे।

हमेशा उत्तम हवि देनेवाले मरुत्-देव, आप किसकी सुन्दरता और तेजस्विता देखेंगे? किस का प्रकाशक लाभ दे देंगे? और किसकी प्रशंसा करेंगे? (अपने भक्तों की)। शीघ्र-गामी, निडर और शस्त्र-अस्त्र धारण करनेवाले मरुत्-देव अपने प्रिय स्थानों की ओर चले गये। ६ (११)

## सूक्त ८८.

॥ ८८ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-मरुत् ॥

जिस रथ के अश्व पंखों की भाँति उड़ते हैं, जिसमें बहुतसे आयुध भरे हुए हैं, जिसकी बहुत स्तुति की गयी है और जिसमें बिजली चमकती है ऐसे रथ में बैठकर, हे मरुत्-देव, आप इधर आइये। हे कुशल और चतुर मरुत्-देव, बहुतसा पोषण का सामान साथ लेकर पक्षी की तरह वहाँ से उड़कर यहाँ आइये। १

रथ को वेग से ले जानेवाले अपने लाल और पीले घोड़ों पर आरूढ़ होकर ये मरुत्-देव, किस पुरुष का घर शोभायमान करने के लिये चले जाते हैं। बिजली के हाथों में आयुध धारण करके, यह मरुत्-गण सुवर्ण की तरह सुन्दर दिखाई देता है। इन मरुत् देवों ने रथचक्रों से जमीन चीर डाली है। २

किसको पुष्ट करने के लिये आपके शरीरपर शस्त्रास्त्र चमकते हैं? जिस तरह जल-धारा अपना सिर ऊपर उठाती है उसी तरह आपके भक्त आपकी ओर (आप) अपना स्तोत्र भेज देते हैं। जिनका जन्म बड़े वैभव में हुआ है और जिनमें तेज और बल भरा हुआ है ऐसे मरुत्-देव, केवल आपही के लिये आपके उपासक यज्ञ-कर्म का (सोमरस निकालनेका) काम शुरू करते हैं। ३

उदक की वर्षा करनेका सामर्थ्य रखनेवाली दिव्य स्तुति की ओर, हे गौतम, प्रकाशमान दिन आकर्षित होते हैं। स्तुति करनेवाले गोतम भी अपने स्तवन के बल से जल पीने के लिये न बहनेवाले कूएँ को भी ऊपर ले आये। ४

सुवर्ण चक्र को हाथ मे पकडनेवाले और लोहे की तरह मज़बूत दातवाले वराह[9] सब
जगह संचार करते है और प्रत्यक्ष दिखाई देते है। हे मरुत्-देव, गोतमो ने जो स्तोत्र गाया[10]
वह बहुतही यश देनेवाला है । और दूसरी कोई भी स्तुति उसकी बराबरी[11] नही कर
सकती। ५

हे मरुत्-देव, यह हमारी स्तुति आपके मन को संतोष[12] देवे । अन्य भक्तों की तरह
हमारी स्तुति आपका स्तोत्र गाने मे उद्यत हुई है । सब प्रकार के वैभव के आप स्वामी है।
इस कारण यह सर्व साधारण[13] बात है कि सब उपासक लोग आपकी स्तुति करते है। ६ (१४)

## सूक्त ८९.

॥ ८९ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-विश्वेदेव ॥

जिस सामर्थ्य का प्रतिरोध कोई नहीं कर सकता जिसका पराभव कोई नही कर सकता
ऐसा कल्याण-करनेवाला और यश-देनेवाला बल हमेशा हमे प्राप्त होवे। हम देवोकी स्तुति
करते है। इस लिये वे हमारी कीर्ति बढावे और हमारी हमेशा[1] रक्षा करें। १

सीधे स्वभाव के देवोकी कृपा और उदारता[2] हमेशा हमारे तरफ दौडे। देवो की मित्रता
का हमे कुछ उपयोग होवे। देव हमारी आयु बढावे जिससे हमारे प्राण बहुत दिनतक
जीवित रहे। २

भग, मित्र, अदिति, विजयी दक्ष और अर्यमा, वरुण, सोम, और दोनो अश्विनों को
[illegible] पुराण स्तोत्र[3] गाकर हम बुलाते है। दयालु सरस्वति हमे सौख्य[4] अर्पण करे। ३

वायु, लाभ देनेवाली औषधि हमारे तरफ ले आवे। उसी तरह माता-पृथ्वी, और पिता-द्युलोक, वह औषधि हमारी ओर ले आवे। सोम उत्पन्न करनेवाले और सुख देनेवाले पत्थर और अश्विनी देव वह औषधि हमारी ओर ले आवे। हे अश्विनी देव, हमारी पुकार सुनिये। ४

बुद्धि को प्रेरणा करनेवाले और स्थिर और अस्थिर वस्तुओंपर अधिकार रखनेवाले [illegible] इन [illegible] रक्षा के लिये प्रार्थना करते हैं। इसी कारण से पूषा [illegible] हमारा [illegible] और हमें सुख देवे। आप सब को जाननेवाले हैं हमारी रक्षा करनेवाले और हमारा पालन करनेवाले हैं। ५ (१५)

इन्द्र, जिनकी कीर्ति सब दूर फैली हुई है हमें शान्ति प्रदान करें। सर्वज्ञ पूषा-देव हमें शान्ति प्रदान करें। तार्क्ष्य-देव जिसके रथचक्र की गति को कोई रोक नहीं सकता हमें शान्ति प्रदान करें। और बृहस्पति भी हमें शान्ति प्रदान करें। ६

मरुत्-देव-जिनके घोड़ों का रंग [illegible] है, जिनकी माता पृश्नि ही है, जिनके [illegible] [illegible] कल्याण की ओर है और जो यज्ञ के समय हमेशा उपस्थित रहते हैं, और जिनकी जिह्वा है,- जो सूर्यकी ओर ताकते रहते हैं, और मनु आदि सब [illegible] हमारी रक्षा करें और अपने रक्षक साथ हमारी ओर आवें। ७

हे मरुत्-देव, आपकी कृपा से हम अपने कानों से सुन सकेंगे। हे यज्ञार्ह पूज्य, आपकी कृपासे हम अपने नेत्रोंसे अच्छी तरह देख सकेंगे। सचमुच जो आयु [illegible] प्रदान की है उस (आयु) में हमारा शरीरस्वास्थ्य अच्छा रहे और शरीर के [illegible] मजबूत रहें। उस आयु में आप के नाम का उच्चारण और स्तुति करके हम सब (समान [illegible]) सब वस्तुओं का उपभोग ले लेवें। ८

हे देव, हमारी आयु केवल सौ बरस की है। उसीमें हम बुड्ढे हो जाते हैं। जो आज छोटे लडके दिखाई देते हैं वे कुछ दिनोंके बाद बच्चेवाले बाप होंगे, इस लिये हमारी सौ बरस की आयु में सन्तति उत्पन्न होकर हमारे वंश की वृद्धि होवे। ९

अदिति ही द्युलोक है। अदिति ही आकाश है। अदिति ही माता पिता और पुत्रही है। अदिति ही सब देव हैं। अदिति ही सब मानव है। जो कुछ उत्पन्न हुआ है वह सब अदिति ही है। और जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है वह सब कुछ अदिति ही है। जो कुछ है सो सब अदिति ही है। १० (१६)

## सूक्त ९०.

॥ ९० ॥ ऋषि–रहूगणपुत्र गोतम । देवता–विश्वेदेव ॥

वरुण, प्रज्ञावान् मित्र और अर्यमा जिसके साथ सब देव रहते हैं हमे सरल मार्ग[1] से ले जावें। १

वैभव को इकट्ठा करनेवाले वे देव, अपने बल से और सावधानी से[2] अपने शासन काम की रक्षा करने मे हमेशा जागृत रहते हैं। २

दुष्ट लोगो का नाश करनेवाले अमर देवो ने–जिन को मृत्यु की बाधा नहीं है–हमे सौख्य अर्पण किया। ३

वे इन्द्र, मरुत्, पूषा, और भग-देव पूजा करने योग्य हैं। वे हमारे कल्याण के लिये अच्छा मार्ग ढूँढते हैं। ४

अपने अपने मार्गों से गमन करनेवाले हे पूषा और विष्णु-देव, हमारी प्रार्थना सुनो और ऐसा काम कीजिये जिससे हमें विशेषकरके धेनुओंका लाभ होवे। और आप हमें सुख प्रदान कीजिये। ५ (१७)

जो नीति-नियमोंका योग्य रीतिसे पालन करते हैं उनके लिये कल्याणकारक वायु बहती है, और नदियोंका पानी भी मधुर होकर बहता है। हमारी ओषधि हमारे लिये मधुर होवें। ६

रात और प्रातःकाल हमारे लिये मधुर होवें। हमारे लिये भूलोक और द्युलोक मधुरतासे भरे हुए रहें। हमारा पिता द्युलोक हमें सुख प्रदान करे। ७

हमारे लिये वनस्पति मधुर होवें और सूर्य भी अच्छी तरह प्रकाशित होवे। धेनुएँ हमें मधुर दूध देवें। ८

मित्र हमें सुख देनेवाला होवे। वरुण भी हमें सुख देनेवाला होवे। अर्यमा भी हमें सुख देनेवाला होवे। इन्द्र और बृहस्पति हमें सुख प्रदान करें। सब प्रदेशोंमें गमन करनेवाला विष्णु हमें सुख देनेवाला होवे। ९ (१८)

---

## सूक्त ९१.

॥ ९१ ॥ ऋषि–रहूगणपुत्र गोतम । देवता– सोम ॥

हे सोम–देव, आप बड़े ज्ञानी और विचारवान् है। आप ही (सब जगत् को) सीधे मार्ग की तरफ ले जाते है। हे, इन्दो, आप ही सरल मार्ग बतलानेवाले[1] होने के कारण हमारे ज्ञानी पुरखो को देवगण की ओरसे बड़े बड़े पारितोषिक मिले हुए है। १

हे सोम–देव, नाना प्रकार के बल आप मे एकत्रित होने के कारण आप बड़े बलवान् हुए है। आप सर्वज्ञ है। आपमे भिन्न भिन्न शक्तिया[2] एकत्रित होनेके कारण आप बडे शक्तिमान बने हुए हैं। आप बडे होनेके कारण नाना प्रकार के बलो के आप स्वामी बन गये। नाना प्रकारके बल एकत्रित होनेके कारण आप बड़े बलवान् बन गये। नाना प्रकार– की उज्ज्वल सम्पत्ति आपको प्राप्त हुई। इसके कारण आप सम्पत्तिमान् बन गये। आप सब मानवोपर (कृपा) दृष्टि रखते है। २

जो जो नियम[3] पृथ्वीपर जारी है वे सब राजा वरुण के बने हुए है। हे सोम आपका रहनेका ठिकाना बहुत ही बड़ा है। आप बड़े दैदीप्यमान् है। हे सोम–देव, आप मित्र–देव की नाई सबको प्रिय है और अर्यमा–देव की नाई सामर्थ्यवान् है। ३

द्युलोक, पृथ्वी, और पहाडोपर औषधि और उदक मे जहा जहा आपकी रहनेकी जगह होगी वहा वहा सब जगह, हे सोमराज, गुस्सा[4] छोडकर और प्रसन्न होकर, हमारे हविर्यो का स्वीकार कीजिये। ४

हे सोम, आप ही (सबके) दयालु स्वामी है। आप राजा है। आप वृत्र का वध करनेवाले है। और आप ही कल्याण करनेवाली श्रेष्ठ शक्ति है। ५ (१९)

---

हे सोम, यदि आप के मन[5] में आवे कि हम सौ बरस तक जीते रहें तो हम सौ बरस के अन्दर नहीं मरेंगे। आप वन के वृक्षों के स्वामी हैं। आप स्तुति-प्रिय हैं। ६

हे सोम, आप के नीति[6]-नियमों को पालन करनेवाले उपासकों को—चाहे जवान् हो या वृद्ध हो—आप सुख अर्पण करते हैं। उनकी आयु की वृद्धि होने के लिये आप उनको श्रेष्ठ बल प्रदान करते हैं। ७

हे सोम-राज, पापी[7] मनुष्यों से चारों ओर से हमारी रक्षा कीजिये। जिन भक्तों के आप रक्षा करनेवाले बन गये हैं उनका नाश कभी होनेवाला नहीं है। ८

हे सोम, आपको हवि अर्पण करनेवाले भक्तों के लिये आपने जो सुख के साधन तैयार कर रखे हुए हैं उनको साथ लेकर हमारी रक्षा करने के लिये आइये। ९

इस यज्ञ और स्तुति का स्वीकार[8] करके हमारी ओर चल आइये। हे सोम, हमारी उन्नति करनेवाले आप ही हूजिये। १० (२०)

हे सोम, स्तुति[11] करनेका तरीका जानकर हम आपको स्तोत्रो से सन्तुष्ट करते हैं। इसलिये प्रसन्न होकर आप हमारी ओर आइये। ११

हे सोम, आप हमारे वैभवो की वृद्धि[12] कीजिये। हमारे रोगों का नाश कीजिये। हमे सम्पत्ति दीजिये। हमारे घर मे धन और अनाज की वृद्धि होवे और आप हमारे उत्तम मित्र बन जाइये। १२

हे सोम, जिस तरह मनुष्य निजके घर[13] मे आनन्द मे रहता है अथवा धेनुएं तृण (घास) को देखकर सन्तुष्ट होती है उसी तरह हमारे हृदय मे आनन्द उत्पन्न कीजिये। १३

हे सोम-देव, जो मनुष्य आपका मित्र होने के कारण आनन्द[14] मनाता है उसी के साथ रहनेकी ज्ञानी और सामर्थ्यवान् लोक इच्छा करते है। १४

हे सोम, दुष्ट वचनो से और पापो से हमारी रक्षा[15] कीजिये आप हमे सौख्य अर्पण कीजिये। और आप हमारे मित्र हूजिये। १५ (२१).

---

११ सोम, वचोविद: गीर्भि: त्वा वर्धयाम. सुमृळीक: न: आ विश।

१२ सोम, गयस्फान:, अमीवहा, वसुवित, पुष्टिवर्धन, न: सुमित्र: भव।

१३ सोम, स्वे ओक्ये मर्य इव गाव: यवसेषु न, न: हृदि आ रारन्धि।

१४ सोम देव, य: मर्त्य: तव सख्ये रारणत्, तं दक्ष: कवि: सचते।

१५ सोम, अभिशस्ते: न: उरुष्य, अंहस: नि पाहि न: सुशेव: सखा एधि।

हे सोम, आप बढ़[१६] जाइये। आपके बल की (दिनपर दिन) वृद्धि होवे। जहां नानाप्रकार का बल एकत्रित किया जाता है वहां आप का रहनेका स्थान होवे। १६

हे आनन्द[१७] देनेवाले सोम, अपने प्रकाश किरणों से आप बढ़ जाइये। आपकी सुन्दर कीर्ति सब जगह विदित है। आप हमारे सच्चे मित्र है, इस लिये आप हमारी उन्नति कीजिये। १७

दुष्ट[१८] लोगों का नाश करनेवाले हे सोम, (इस जगत् में) जितना दूध है उतना सब आपके पास आवे। संसार भरका सामर्थ्य आपमे एकत्रित होवे। संसार का सब बल आपकी ओर आवे। हे सोम, आप निजको अमर बनाकर अपनी कीर्ति द्युलोक मे फैलाइये। १८

आप की निवास स्थान की ओर जो मनुष्य हवि पहुंचाते है वे सब हमारे यज्ञों के ऊपर कृपा दृष्टि रक्खे। हे सोम, आप हमारे पशुओं की वृद्धि कीजिये। हमे धन प्रदान कीजिये। अपनी वीरता दिखाकर अधार्मिक लोगों का नाश कीजिये। और आप हमारे घर[१९] की ओर आइये। १९

जो (मनुष्य) सोम-देव को हवि अर्पण करता है उसको सोम-देव धेनुएं दिलाता है। और वेग से दौड़नेवाले अश्व दिलाता है आप हवि अर्पण करनेवाले को विचारवान, कुशल, यज्ञकर्म करनेवाला, अच्छा बर्ताव करनेवाला और अपने पिता की कीर्ति बढ़ानेवाला सभ्य सन्तान दिलाते हैं। २० (२२)

---

सोम, आ प्यायस्व,[१६] ते वृष्ण्यं विश्वतः समेतु वाजस्य संगथे भव।

मदिन्तम[१७] सोम, विश्वेभिः अंशुभिः आ प्यायस्व सुश्रवस्तमः सखा नः वृधे भव।

अभिमातिषाह[१८] सोम, पयांसि ते सं (यन्तु), वाजाः सं यन्तु, वृष्ण्यानि सं (यन्तु). आप्यायमानः अमृताय दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व।

१९ या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूः अस्तु यज्ञम्, गयस्फानः, प्रतरणः, सुवीरः, अवीरहा, दुर्यान्[१९] प्र चर।

२० यः अस्मै ददाशत्, सोमः धेनुं, सोमः आशुं अर्वन्तं, सोमः कर्मण्यं, सादन्यं, विदथ्यं, सभेयं, पितृश्रवणं, वीरं ददाति।

आपको युद्ध मे कोई जीत नही सकता। युद्ध मे उपासको को आप सहायता देते है। आप द्युलोक से जल को नीचे लाते है। कठिन[18] समय मे आप सब की रक्षा करते है। आप यज्ञ मे उपस्थित होते है। आप सजे हुए मंदिर मे रहते है। हे सोम, आप जैसे कीर्तिवान् और विजयी देव को देखकर हम आनन्दित होते है। २१

हे सोम, आपने सब वनस्पतिया उत्पन्न की। आपने ही जल को उत्पन्न किया। और आपने ही धेनुएं निर्माण की। इस विशाल आकाश को आपने फैलाया है और प्रकाश उत्पन्न करके अन्धकारका नाश[19] किया। २२

हे सामर्थ्यवान् सोम-देव, हमारे लिये धन का संचय करनेके हेतु आप युद्ध कीजिये। आपको कोईभी न रोके[20]। सब बल के स्वामी आप ही है। धेनुओ का लाभ होने के लिये जब युद्ध शुरू होता है तब दोनो पक्षो को आपका प्रभाव विदित[21] होता है। २३ (२३)

## सूक्त ९२.

॥ ९२ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-उषा ॥

उषा-देवी अपनी ध्वजा फैला रही है। अन्तरिक्ष के पूर्वीय आधे भाग मे उषा अपने सुन्दर किरण फैलाती है। जिस तरह वीर पुरुष अपना शस्त्र फर्राता है उसी तरह उषा अपना चमकीला[1] प्रकाश प्रकट करती है। धेनुएं-माताएं इस तरफ आ रही हैं। १

---

२१ सोम, युत्सु अषाढं, पृतनासु पप्रिं अप्सां स्वर्षां, वृजनस्य[18] गोपां, भरेषुजां, सुक्षितिं, सुश्रवसं जयन्तं त्वां अनु मदेम।

२२ सोम, त्वं इमाः विश्वाः ओषधीः, त्वं अपः, त्वं गाः अजनयः, त्वं उरु अन्तरिक्षं आ ततन्थ. त्वं ज्योतिषा तमः वि ववर्थ[19]।

२३ सहसावन् देव सोम, देवेन मनसा, नः राय भागं अभि युध्य. त्वा मा आतनत्[20] वीर्यस्य ईशिषे. गोष्टौ उभयेभ्यः प्र चिकित्स[21]।

१ एताः त्याः उषसः केतुं अक्रत रजसः पूर्वे अर्धे भानुं अञ्जते. धृष्णवः आयुधानि इव निष्कृण्वानाः अरुषीः गावः मातरः प्रति यन्ति।

उषाओं की लाल किरण कूद कूदकर सहज रीति से इधर आ रहे हैं। उषाओं ने प्रकाशरूप गौओं को ( अपने रथ को ) जोता हैं। सब दिशाओं पर अपना प्रकाश फैलाने का विचार उषाओं ने किया है। उषाओं का तेज बहुत चमकीला है। २

सच्चा वर्ताव करनेवाले, हवि अर्पण करनेवाले और सोमरस तैयार करके रखनेवाले भक्तों के लिये उषाएं बहुत सम्पत्ति ले आती है। सुन्दर और जवान उषाएं एक ही रथ में बैठकर अपना प्रकाश फैलाकर दूर से आती है। मानो बड़े वेग[3] से आकर अपने प्रकाश का घमण्ड ही करती हैं। ३

जिस तरह नटी[4] हरसमय अपना पोशाक बदलती रहती है उसी तरह यह उषा हरसमय अपना स्वरूप[5] बदलती है। जिस तरह धेनु का स्तन[6] सबको दिखाई देता है उसी तरह उषा का बदन खुला हुआ होनेके कारण सबको दिखाई देता है। जिस तरह धेनुएं [illegible] अपना स्थान छोडकर चली जाती है उसी तरह उषा सबेरे अन्धकार को छोडके [illegible] चली आती है। ४

उषा का उज्ज्वल प्रकाश दिखाई देने लगा। वह प्रकाश चारों ओर फैलता है और गहरा अन्धकार का नाश करता है। यज्ञ में जिस तरह यज्ञस्तम्भ को सजाते है उसी तरह उषा ने अपने शरीर को सुशोभित किया है। द्युलोक दुहिता उषा अपने साथ प्रकाश [illegible] आती है। ५ (२४)

हम अन्धकार से बाहर हम अभी निकले हैं। अपना प्रकाश चारों ओर फैलाकर उषा अपना उद्देश प्रकट कर रही है। दीप्तिमान् उषा ने कविता की नाई सौन्दर्य धारण किया है। इसीके कारण इसका हास्य-वदन दिखाई देता है। आप बहुत ही सुन्दर हैं और आप हमारे ऊपर कृपा करनेके लिये आई है। ६

---

२ [illegible] भानवः वृथा उत् अपप्तन् स्वायुजः अरुषीः गाः अयुक्षत पूर्वथा उषासः वयुनानि [illegible] रुशन्तं भानुं अशिश्रयुः।

३ सुकृते सुदानवे सुन्वते यजमानाय विश्वा इत अह इषं वहन्ती नारी [illegible] अपसः न अर्चन्ति।

४ नृतूः इव पेशांसि अधि वपते उस्रा इव वक्षः अप ऊर्णुते [illegible] उषा, [illegible] तमः वि आवः।

५ अस्याः रुशत् अर्चिः प्रति अदर्शि वि तिष्ठते [illegible] दिवः दुहिता चित्रं ज्योतिः अश्रेत्।

६ [illegible] तमसः पारं अतारिष्म उषा उच्छन्ती वयुना कृणोति [illegible] सुमनस्त्वाय अशिश्रेत्।

देदीप्यमान उषा सत्य और माधुर्य की प्रेरणा करती है। द्युलोक कन्या–उषा की स्तुति गोतमो ने की है। हे उषा–देवी, आप हमे ऐसा सामर्थ्य दीजिये जिसे हमे शूर और पराक्रमी सन्तति उत्पन्न होवे और जिससे अश्व और धेनुएं हमे मिले। ७

(सूर्य के) सामर्थ्य से उषा उत्पन्न हुई है। अपनी आश्चर्यकारक कीर्ति और पराक्रम दिखाकर उषा अत्यन्त उज्वल तेज से प्रकाशित होती है। हे दयालु उषा–देवी, आपकी कृपा से वीर पुरुष हमारे वंश मे उत्पन्न होगे। बहुतसे अश्व आदि हमारी सेवा में रहेगे। और इस तरह हमारा वैभव आप की कृपा से बहुत ही बढेगा। ८

उषा–देवी, प्रातःकाल के समय अपनी दृष्टि पृथ्वी की ओर फेक देती है, और उसके बाद उज्वल प्रकाश देती है। सब प्रजा को उषा जागृत करती है और विद्वान् कवियो की स्तुतियो को अपनी ओर खीचती है। ९

उषा–देवी वारम्वार जन्म लेती है, फिर भी आप पुराणी कही जाती है। उषा–देवी वार वार एकही रगका पोशाक पहिनकर निजको सुशोभित करती है। आप हथियार चलाकर[१३] श्वानों[१२] को मार डालती है और इस तरह आप सबको डराती[१४] है। दुष्ट मनुष्यो की तरह आप उनकी आयु को घटाती है। मनुष्यो की आयु का इस तरह (दिनपर दिन) नाश करके फिर आप वहांही उपस्थित है। १० (२५)

द्युलोक की सीमातक उषा–देवी प्रकाश फैलाकर जागृत होती है। आपकी बहिन–रात्रि को उषा–देवी पृथ्वीपरसे दूरतक[१५] निकाल देती है। मनुष्यो की आयु को घटाकर अपने वल्लभ (सूर्य) की कान्ति से भरी हुई जवान उषा चारो ओर प्रकाश फैलाती है। ११

---

७ भास्वती सूनृताना नेत्री दिव. दुहिता गोतमेभि स्तवे उष, प्रजावत., नृवत, अश्वबुध्यान्, गोअग्रान् [illegible] उप मासि।

[illegible] विभासि सुभगे उष, त सुवीर यशन दासप्रवर्ग अश्वबुध्य [illegible] अश्याम्।

९ [illegible] देवी चक्षु प्रतीची उर्विया वि भाति [illegible] जीव चरसे बोधयन्ती विश्वस्य [illegible]

१० [illegible] पुराणी, [illegible] वर्णं अभि शुम्भमाना, इत्नु "विज" स्वघ्नी" इव [illegible]

११ [illegible] मनुष्या युगानि [illegible]

जिस तरह उदधि अपने जल को स्पष्टरूप से सब को दिखाता है उसी तरह उषा प्रातःकाल के समय, सब पशुओं को उनके स्थान से बाहर ( खुली जगह में ) लाकर और सब दूर प्रकाश[१७] फैलाकर, मानो प्रकटरूप से प्रदर्शनी ही दिखाती है। उषा, देवों की आज्ञाओं को हमेशा मानती रही। सूर्य के किरणों से प्रकाशित हुई उषा यहां प्रकटरूप से ( दृग्गोचर[१८] ) होती है। १२

हे सामर्थ्यवान् उषादेवी, हमें ऐसा अपूर्व वैभव दीजिये जिस से हमें सन्तति का लाभ वंशानुवश होवे। १३

सत्य और मधुर वचन बोलनेवाली हे उषादेवी, आपके पास बहुत धेनुएं और अश्व हैं। हमें सुख प्रदान करनेके लिये हमारे ऊपर प्रकाश फैलाइये। १४

हे सामर्थ्यवान उषा-देवी, अपने लाल रंग के अश्व आज रथ को जोतकर सुख प्रदान करनेके लिये हमारी ओर आइये। १५ (२६)

शत्रुओं का नाश करनेवाले, हे अश्विनी देव, हमारा घर धेनुओं और सुवर्ण से भरने के लिये आपस में मिलकर अपना रथ हमारी ओर लाइये। १६

---

१२ सिन्धुः न क्षोदः पशून् न प्रथाना सुभगा चित्रा उर्विया[१७] वि अश्वैत्[१८]। दैव्यानि व्रतानि अमिनती सूर्यस्य रश्मिभिः दृशाना चेति[१८]।

१३ वाजिनीवति उषः येन तोकं च तनयं च धामहे तत् चित्रं अस्मभ्यं आ भर।

१४ सूनृतावति गोमति अश्वावति विभावरि उषः अद्य इह अस्मे रेवत् वि उच्छ।

१५ वाजिनीवति उषः, अद्य अरुणान् अश्वान् युक्ष्व हि, अथ नः विश्वा सौभगानि आ वह।

१६ दस्रा अश्विना, समनसा रथं अर्वाक् वर्तिः गोमत् हिरण्यवत् अस्मत् नि यच्छतम्।

हे अश्विनी-देव, बहुतसा सामर्थ्य[20] इकट्ठा करके हमारी ओर लाइये। (संसार के) सब मनुष्यों के लिये प्रशंसा[21] योग्य (उज्ज्वल) तेज द्युलोक से आप इस तरह इधर ले आइये। १७

सुख देनेवाले, शत्रुओं का नाश करनेवाले सुवर्ण से बने हुए मार्ग[22] से जानेवाले ये दोनो अश्विनी-देव, प्रातःकाल के समय जागृत होनेवाले देवों को, सोमपान के लिये इधर ले आवे। १८ (२७)

## सूक्त ९३.

॥ ९३ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-अग्नि, सोम ॥

हे सामर्थ्यवान् सोम, और अग्नि, मेरी पुकार सुनिये। मेरे सुन्दर स्तोत्रों का स्वीकार कीजिये। और आपको हवि अर्पण करनेवाले उपासकों को आप सौख्य (अर्पण करनेवाले) हूजिये। १

हे अग्नि और सोम, जो उपासक आज स्तुति करके आपकी प्रार्थना करते हैं उनको शूर और पराक्रमी बनाकर आप ऐसा कीजिये जिससे उनको बहुत सुन्दर अश्वों और धेनुओं का लाभ होवे। २

हे अग्नि और सोम, जो भक्त आपको आहुति अर्पण करते हैं और जो आपके लिये यज्ञ करते हैं उनको सन्तति और वीरता का लाभ होवे और उनकी आयु भी पूर्ण रीतिसे बढ़े। ३

---

१७ अश्विना, यौ जनाय श्लोक[21] ज्योतिः दिवः इत्था आ चक्रथुः, युवं नः ऊर्जं[20] आ वहतं।

१८ मयोभुवा, दस्रा, हिरण्यवर्तनी,[22] देवा उषर्बुधः सोमपीतये इह आ वहन्तु।

१ वृषणा अग्नीषोमौ इमं मे हवं सु शृणुत, सूक्तानि हर्यतं, दाशुषे मयः भवतं।

२ अग्नीषोमा यः अद्य इदं वचः वां सपर्यति तस्मै गवां पोषं स्वश्व्यं सुवीर्यं धत्तं।

३ अग्नीषोमा यः आहुतिं यः वां हविष्कृतिं दाशात् सः प्रजया सुवीर्यं विश्वं आयुः वि अश्नवत्।

हे अग्नि और सोम, जिस समय पणि राक्षस ने तुम्हारे इकट्ठा[1] किये हुये धन (धेनुएं) को छीन लिया उस समय आपने बृसय राक्षस के अनुचरों का पराभव किया। और जिस समय सब मनुष्यों के कल्याण के लिये आप अपने देदीप्यमान तेज के साथ आये उस समय आपका वीर्य सब को विदित हुआ। ४

हे सोम, आप और अग्नि, दोनों सामर्थ्यवान् है। आपने ज्योतियों को (नक्षत्रों को) द्युलोक में (आकाश में) स्थापित किया। हे अग्नि और सोम, रुके हुए नदियों के (जलों को) आपने हानिकारक निन्दा से मुक्त किया। ५

आप (अग्नि और सोम) दोनों में से एक को मातरिश्वा–देव द्युलोक से यहां ले आये। आप दोनोंमें से दूसरे को श्येन पक्षी पर्वत से उत्पन्न करके लेआया। हे अग्नि और सोम, आप स्तुति–वाक्यों से आनन्दित हूजिये। आपने यज्ञ–कर्म करनेके लिये इस जगत् को विस्तीर्ण किया है। ६ (२८)

हे अग्नि और सोम, आप के लिये यहां हवि सिद्ध[2] किया गया है। आप उसको चखिये[3]। आप उसका स्वीकार कीजिये। हे पराक्रमी देव, भक्ति से अर्पण किये हुए अग्नि को आप पसन्द कीजिये। आप हमारा कल्याण कीजिये। हमारी रक्षा की जिम्मेदारी केवल आपही पर निर्भर है। स्तुति करनेवाले भक्तों को जो सौख्य आप अर्पण करते हैं वही सौख्य यागकर्म करनेवाले उपासकों को भी आप प्रदान कीजिये। ७

हे अग्नि और सोम, जो उपासक आपको हवि अर्पण करके आपकी भक्तियुक्त[4] पूजा करते हैं और मन से अर्चन करते हैं उनके कर्मों की आप रक्षा कीजिये और सुदृढ तन (शरीर को) रक्षा कीजिये। सब लोग आपही की प्रजा है, इस लिये आप उन्हें सौख्य अर्पण कीजिये। ८

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

हे अग्नि और सोम, आप दोनोंको हमारा सब हाल विदितही है। आप दोनोको हम एकसाथ पुकारते हैं। इस लिये हमारे स्तोत्रो का स्वीकार कीजिये। देवगणो मे आप एकदम प्रकट हुए। ९

हे अग्नि और सोम, घी से भरा हुआ हवि जो मनुष्य आपको अर्पण करता है उसको आप उत्तम सम्पत्ति दीजिये और उसके लिये प्रकाश भी दीजिये। १०

हे अग्नि और सोम, प्रेम से इन हवियो का आप स्वीकार कीजिये। और दोनो मिलकर आप हमारी ओर आईये। ११

हे अग्नि और सोम, हमारे अश्वो को (धेनुओ को) हृष्ट पुष्ट करनेका प्रबन्ध आप कीजिये। उनके दुध से हवि तैयार किया जाता है। हमारी गौवो की संख्या भी बढ़ाइये। हम आपको हवि अर्पण करते है। इसलिये आप हमे सामर्थ्य प्रदान कीजिये। और हमारे यज्ञ की कीर्ति आप सब दूर फैलाइये। १२ (२६) (१४)

## अनुवाक १५.

### सूक्त ९४.

॥ ९४ ॥ ऋषि—रहूगणपुत्र गोतम । देवता—अग्नि ॥

हे योग्य और सर्वज्ञ अग्नि—देव, जिस तरह कोई मनुष्य अपने मित्र को प्रेम से रथ प्रदान करता है उसी तरह हम बड़े प्यार से आपको हवि अर्पण करते हैं। सचमुच हमारे विषय मे आपकी इच्छा बहुत अनुकूल है। हे अग्नि—देव, आप हमारे मित्र है। इस लिये हमारा नाश न होनेका प्रबन्ध आप कीजिये। १

जो मनुष्य आपके लिये यज्ञ करते हैं उनकी इच्छा पूरी हो जाती है। उनके पास अश्व न होनेपर भी उनका पराभव नहीं होता। वे वीरताका काम करते हैं। उनकी उन्नति[1] होती है। उनको कोई बाधा[2] नहीं पहुँचा सकता है अग्निदेव, हम आपके मित्र हैं, इस लिये हमारा नाश न होने का प्रबन्ध आपको करना चाहिये। २

आपको प्रज्वलित करनेका सामर्थ्य हम रखते हैं। आप हमारी पुकार सुनिये। और प्रार्थना की अनुसार हमें सफलता प्राप्त होवे। आपको अर्पण किये हुए हवियों का आप स्वीकार करते हैं। आप अदित्य को यहां ले आइये। सब देवोंपर हम प्यार करते हैं। हे अग्निदेव, आप हमारे मित्र हैं। इस लिये आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये। ३

हम आपको लकडी (इन्धन) अर्पण कर (देते) हैं। समय समयपर हम आपको प्रज्वलित करेंगे; और आपको हवि अर्पण करेंगे। हमारी आयु[3] लें और हमारी कामना सिद्ध होवे। हे अग्निदेव, आप हमारे मित्र हैं इस लिये हमारा नाश न होने दीजिये। ४

आप सब लोगों की रक्षा करनेवाले हैं। आपही के प्रभाव से मनुष्य और पशु [illegible] सञ्चार कर सकते हैं। आपही उषा की श्रेष्ठ कीर्ति-ध्वजा[4] हैं। हे अग्निदेव, आप हमारे मित्र हैं, इस लिये हमारा नाश न होने दीजिये। ५ (३०)

आप अध्वर्यु (नेता) हैं। हवि अर्पण करनेवाले पुरातन समय से आप होता हैं। (यज्ञ [illegible]) सब के ऊपर शासन चलानेवाले आपही हैं। यज्ञ को पवित्र[1] करनेवाले आप [illegible] हैं। जन्मसे आप यज्ञ के नेता हैं। आप ज्ञानी होनेके कारण ऋत्विजों के काम को [illegible] कुशलता से कर सकते हैं। हे अग्निदेव, आप हमारे मित्र होनेके कारण आपको चाहिये कि हमारा नाश न होवे। ६

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

हे अग्नि-देव, आप सब प्रकारसे बडे सुन्दर दिखाई देते है। दूर[6] होनेपर भी आप अपने तेज-
से बडे प्रज्वलित दिखाई देते है। रात्रि के अन्धकार में[7] भी आप अपने तेज से देख सकते
है। हे अग्नि-देव, आप हमारे मित्र होने के कारण आपको चाहिये कि हमारा नाश न
होवे। ७

हे देव, सोमरस को सिद्ध करनेवाले उपासकों का रथ सबसे आगे बढे। और हमारी
स्तुति दुष्ट मनुष्यों का तिरस्कार करके आगे चलकर आपको पहुचे। हमारी प्रार्थना को
अच्छीतरह समझ जाइये और उसको सफल कीजिये। हे अग्नि-देव आप हमारा सखा
होनेके कारण आप हमारा नाश न होने दीजिये। ८

अपने नाश करनेवाले शस्त्रों से दुष्ट और पापी मनुष्यों को[9]-चाहे वे आपके पास हो या
दूर हो- मार डालिये। आपका स्तोत्र गानेवाले भक्तों के लिये यज्ञ का मार्ग सरल और
सीधा कीजिये। हे अग्नि-देव, आप हमारे मित्र होनेके कारण हमारा नाश न होने
दीजिये ९

जिस समय देदीप्यमान सुन्दर, मानो, वायु की तरह दौड़नेवाले लाल अश्व आप जोतते
है उस समय वृषभ की तरह आपकी गर्जना होती है। धूम्ररूपी ध्वजा को फहरानेवाले
ज्वालाओं से आप वृक्षोंको व्याप्त[10] करते है। हे अग्नि-देव, आप हमारे मित्र होने के कारण
हमारा नाश न होने दीजिये। १० (३१)

जब आपकी ज्वालाएं वनका नाश करती है और चारों ओर फैलती[11] है तब आपकी
गर्जना सुनकर पक्षी भी डरते है। आपके रथका मार्ग भी सुगम होता है। हे अग्नि-देव, आप
हमारे होनेके कारण हमारा नाश न होने दीजिये। ११

मित्र और वरुण को सन्तुष्ट[12] करनेवाले, मरुत् देवो के क्रोधसे[13] सचमुच आश्चर्य ही उत्पन्न होता है। हे अग्निदेव–हमे सौख्य अर्पण कीजिये। उन मरुतो के मनका झुकाव फिर हमारी ओर होवे। हे अग्निदेव, आप हमारे मित्र होनेके कारण हमारा नाश न होने दीजिये। १२

आप सब देवों मे श्रेष्ठ देव है; आप सबके अपूर्व मित्र है। आप सब वसुओ मे श्रेष्ठ वसु हैं। सब यज्ञों मे आप शोभा देनेवाले हैं। आपकी कल्याणकारक सहायता की इच्छा हम करते हैं। हे अग्निदेव, आप हमारे मित्र होनेके कारण हमारा नाश न होने दीजिये। १३

जिस समय आपको अपने घर मे सोम का हवि दिया जाता है उस समय आप प्रदीप्त होते है और भक्तो को सौख्य अर्पण करते है। आप मधुर भाषा बोलने[14] है, और उपासको को उत्तम वस्तु और धन अर्पण करते है। यही आपका कल्याणकारी काम है। हे अग्निदेव आप हमारे मित्र होनेके कारण हमारा नाश न होने दीजिये। १४

वैभव और अखण्ड सामर्थ्य देनेवाले हे अग्निदेव,[15] आप जिसको सामर्थ्य और सौख्य देते है और सन्तति देकर जिनकी उन्नति करते है उनपर आपकी कृपा[16] बनी रहती है और वे आनन्द मे रहते है। १५

हे अग्नि–देव, कल्याण करनेका सच्चा मार्ग केवल आपही अच्छी तरह जानते है। इस जगत् मे हमारी आयु आप बढाईये। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक सबही एक सम्मति[17] से हमारी प्रार्थना सुने और हमारी आयु बढावे। १६ (३२) (६)

---

१२ मित्रस्य वरुणस्य धायसे[12] अवयाता मरुता अय हेळः[13] अद्भुतः मृळ, एषा मन नः सु भूतु।

१३ देवानां देव, अद्भुत मित्र असि. वसूना वसु, अध्वरे चारु असि. तव सप्रथस्तमे शर्मन् स्याम।

१४ तत् ते भद्र, यत् स्वे दमे सोमाहुत समिध्द्र. मृळयत्तम जरसे,[14] दाशुषे रत्न द्रविण च दधासि।

१५ सुद्रविणः अदिते[15] यस्मै त्व सवताता[16] अनागास्त्व ददाश, य भद्रेण शवसा चोदयासि, प्रजावता ते राधमा स्याम।

१६ देव अग्ने, सौभगत्वस्य विद्वान् त्व इह अस्माक आयुः प्रतिर. मित्रः वरुण अदितिः सिन्धु पृथिवी उत द्यौः न तत् ममहन्ता[17]।

# अध्याय ७.

## सूक्त ९५.

॥ ९५ ॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–अग्नि ॥

(उषा और रात्रि) दोनों (युवतीयोंका) स्वरूप बिलकुल भिन्न है। वे दोनों सुन्दर मार्गोंसे गमन करती है। हर एक परस्परके बालकको स्तन पिलाती हैं। एक (रात्री) के पास पीले रङ्गका बालक हृष्ट पुष्ट[1] होता है और दूसरे (उषा)के पास शुभ्र रङ्गका बालक वृद्धि पाता है। १

त्वष्टा देवके उद्योगी दश युवतीयोंने इस खिलाडु[2] (अग्नि) बालकको जनाया। जब इस बालकका तेज दिखाई देने लगा तब उसकी कीर्ति (संसारमें) चारों ओर फैल गयी। वे दोनों (युवती) उस देदीप्यमान् बालकको अपने साथ ले गयी। २

तीन जगह उस बालकका जन्म हुआ–समुद्रमें, द्युलोकमें और अन्तरिक्षमें। ज्ञानी लोक उन तीनों जन्मोंका[3] अच्छा वर्णन करते है। पृथ्विके चारों दिशाओंतक पूर्वसे पश्चिम और दक्षिणसे उत्तर विभागोंतक और ऋतुओंपर वह बालक अपना शासन नियमानुसार[4] चलाता है, और योग्य समयपर अपना प्रबन्ध स्थापित करता है। ३

जब यह बालक (अग्नि) गुप्त[5] रहता है तब कौन इसको पहचान सकता है? इस बालकने अपने माताओंको अपने सामर्थ्यसे उत्पन्न किया। सब वस्तुओंको अपने पेटमें रखनेवाला श्रेष्ठ, ज्ञानी, और सामर्थ्यवान्[6] अग्नि अपने (अद्भुत) पराक्रमके[7] स्थानसे[8] बाहर निकलकर सर्वत्र सञ्चार करता है। ४

---

१ [illegible] चरतः। अन्यान्या वत्स उप धापयेते। अन्यस्या हरिः स्वधावान्[1] भवति, अन्यस्यां [illegible] सुवर्चा ददृशे।

२ [illegible] दश युवतयः इमं विभृत्रं[2] गर्भं जनयन्त। तिग्मानीकं जनेषु स्वयशसं विरोचमानं [illegible] परि नयन्ति।

३ [illegible] दिवि एकं, अप्सु (एकं), अस्य त्रीणि जाना[3] परि भूषन्ति। पूर्वां अनु पार्थिवानां प्र [illegible] ऋतून्[4] वि दधौ।

४ [illegible] स्वधाभिः मातॄः जनयत। बह्वीनां गर्भः, महान्, कविः, [illegible] निः चरति।

यह सुन्दर अग्नि जलमें रहकर सबके सामने[९] वृद्धि पाकर प्रकट होता है। आप निज कीर्तिसे शोभायमान दिखाई देते हैं। जिन जलोंमे आप रहते हैं वे आड़ मार्गसे चलते हैं किन्तु उनमे आप खड़े रह सकते हैं। जब आपका जन्म हुआ तब द्युलोक और पृथिवीलो –जिनको त्वष्टा देवने उत्पन्न किया–दोनो घबडा गये। किन्तु (द्युलोक और पृथिवीलोक दोनो लौट आये और सिंहरूपी बालकको गोदमे लिया। ५ (

उपकारी द्यावापृथिवीओने माताकी नाई उस बालकका पालन किया। अपने वत्सके लि रांभनेवाली गौकी नाई वे दोनो (माताएं) अपने बालकके पास दौड़ती गयी। (सब उपासक लोग) अग्निको दहने ओरसे हवि अर्पण करते हैं, और सबसे आप सामर्थ्यवान् बन जाते है। ६

सविता देवकी नाई अग्नि अपने हाथ खड़े करता है। और आप दोनो (द्यावापृथिवी)को वस्त्रोंसे सुशोभित करते हैं। सबसे आप उनके पुराणे उज्ज्वल वस्त्र[१०] छीन लेते हैं, और अपने माताओंसे भी नया वस्त्र छीन लेते है। ७

जब निजके घर (अन्तरिक्ष)मे अग्निका सम्बन्ध उदकरूपी गोकेसाथ होता है तब विजलीकी तरह उनका उज्ज्वलरूप प्रकट होता है। प्रज्ञावान् अग्नि केवल बुद्धिकी मूर्ति है। इसके चमकनेसे आकाशमे प्रकाश प्रकट होता है। आपही स्वर्गके मूलस्तम्भको पवित्र करते है। इसीको कहते है कि यज्ञके समय अग्निका मेल देवोकेसाथ होता है। ८

(अग्नि) सबसे श्रेष्ठ है। आपका निवासस्थान (स्वर्ग लोकके) प्रदेशमे है। उस विस्तीर्ण प्रदेशको आपका देदीप्यमान् तेज[११] व्याप्त करता है। हे अग्निदेव, आप अपने सब ज्वालाओंसे प्रदीप्त हो जाइये। अपने सामर्थ्यसे[१२]– जिसको कोई रोक नही सकता– भक्तोंकी रक्षा कीजिये। ९

---

५ चारु[९] आविष्ट्य[९] आसु वर्धते। स्वयशा. जिह्मानां उपस्थे ऊर्ध्व। त्वष्टु उभे जायमानात् बिभ्यतु, प्रतीची सिंह प्रति जोषयेते।

६ भद्रे उभे मेने न जोषयेते। वाश्रा[९] गाव. न एवैः उप तस्थु। य दक्षिणत हविर्भिः अजति स क्षाणां दक्षपतिः बभूव।

७ सविता इव बाहू उत् ययमीति। सिचौ उभे ऋजन् भीम यतते। सिमस्मात् शुक्र अत्क[१०] उत् अजते। मातृभ्य नवा वसना जहाति।

८ यत् सदने गोभिः अद्भि[९] सपृचान उत्तर त्वेष रूप कृणुते। धी कविः बुध्न परि मर्मृज्यते। सा देवताता समिति बभूव।

९ त उरु विरोचमान ज्रय[११] महिषस्य धाम बुध्न परि एति। अग्ने स्वयशोभि. विश्वेभिः इद्ध अदब्धेभि पायुभिः[१२] अस्मान् पाहि।

(अग्नि) बञ्जर[13] भूमीमें जलको बहाता है। उदकोंको आप मार्ग दिखाते हैं। आप पानीकी लहरें उछलाते हैं; और आप सब दूर पृथ्विपर पानी फैलाते हैं। सब पुरानी वस्तुओंको आप पेटमें रखते हैं; और नये वृक्षोंको उत्पन्न करते है। १०

हे अग्निदेव, जो इन्धन (लकड़ी) हम आपको अर्पण करते हैं उससे आप बढ़ जाइये; अपना प्रकाश सब दूर फैलाइये; हमे धन दीजिये और अपनी कीर्ति बढ़ाइये। इस प्रार्थनाको मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथ्वी, द्युलोक सुने और हमारी प्रार्थना सफल करें। ११ (२)

## सूक्त ९६.

॥ ९६ ॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–शुद्धोमि ॥

सामर्थ्यसे उत्पन्न हुए अग्निने सचमुच[1] बुद्धिका सब खजाना एकदम प्राप्त किया। उदक और प्रज्ञाओंने अग्निको दुनियाका मित्र बनाया। और सब देवोंने वैभव देनेवाले अग्निकी शरण ली। १

अग्नि आयूकी स्तोत्रोंसे[2] सन्तुष्ट होकर अपने प्राचीन ज्ञानके अनुसार मनुष्यजातिकी सब प्रजा उत्पन्न की। आपने अपने तेजसे द्युलोक और उदकको उत्पन्न किया। वैभव देनेवाले अग्निकी सब देवोंने शरण ली। २

विश्वका पोषण करनेवाले, दान–कर्मकरनेमें सहायता देनेवाले और यज्ञकी सिद्धि करनेवाले सामर्थ्यके पुत्र–अग्निको–श्रद्धावान्[3] लोगोंने सबसे पहले बुलाया; (श्रद्धावान् लोगोंने) अग्निकी स्तुति करके आपको सन्तुष्ट किया। वैभव देनेवाले अग्निकी सब देवोंने शरण ली। ३

मानवजातिकी रक्षा करनेवाले, द्युलोक और भूलोकको उत्पन्न करनेवाले स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाले और असंख्य[४] वैभव पास रखनेवाले मातरिश्वा देवने अपनी सन्तानका कल्याण करनेके लिये नये नये और अच्छे मार्ग ढूंढे। और इसी लिये वैभव देनेवाले अग्निकी सब देवोंने शरण ली।

अपने स्वरूपको हमेशा बदलनेवाली[५] रात्री और उषा दोनो मिलकर[६] अपने सूर्यरूपी अग्नि बालकको अपना स्तन पिलाती है। सुवर्णके समान शोभा देनेवाले (सूर्यरूपी) अग्नि-देव द्युलोक और भूलोकमें अपना प्रकाश फैलाते हैं। वैभव देनेवाले अग्निकी सब देवोंने शरण ली। ५ (३

आप सम्पत्तिका मूल खजाना हैं,। धन देनेवाले, यज्ञकी ध्वजा फहरानेवाले और प्रार्थना करनेवालोंकी[७] इच्छा[८] पूरी करनेवाले आपही हैं। अपना अमरत्व स्थीर करनेका प्रयत्न करनेवाले देवोंने वैभव देनेवाले अग्निकी शरण ली।

जैसे प्राचीनकालमें आप वैभवके स्थान थे वैसेही अबभी[९] आप वैभवके स्थान बने हूए हैं आजतक जितने प्राणियोंका जन्म हुआ है और भविष्यत्कालमें जिनका जन्म होगा उन सबोंके आप आनन्दकारक स्थान[१०] है। वर्तमान्कालमें जितने प्राणी जीवित हैं औ भविष्यतकालमें जिनका जन्म होगा उन सबोंकी रक्षा आप करनेवाले हैं। वैभव देनेवाले अग्निकी सब देवोंने शरण ली। ७

वैभव देनेवाले अग्निदेवने शीघ्र[११] बढ़नेवाली सम्पत्ति हमें दी है। पराक्रमी पुरुष भी (अग्निदेवकी कृपासे) हमें मिले है। वीर्यशाली सम्पत्तिके साथ पोषण-द्रव्य भी आप (अग्नि)ने हमें अर्पण किया है। वैभव देनेवाले अग्निदेव हमारी आयुकी वृद्धि करते है। ८

---

विशा गोपाः रोदस्योः जनिता स्वर्वित् पुरुवारपुष्टि[४] स मातरिश्वा तनयाय गातु विदत्।

५ वर्णं आमेम्याने[५] नक्तोषसा समीची[६] एकं शिशु धापयेते। रुक्म. द्यावाक्षामा अन्त वि भाति।

६ राय बुध्न वसूनां संगमन. यज्ञस्य केतु वे.[७] मन्मसाधन[८]। अमृतत्वं रक्षमाणास देवा एनं द्रविणोदा अग्नि धारयन्।

७ नु[९] च पुरा च स्वदिणा सदनं, जातस्य च जायमानस्य च क्षां,[१०] भूरे सत. च भवतः च गोपां द्रविणोदा अग्नि देवा धारयन्।

८ द्रविणोदा. तुरस्य[११] सनरस्य द्रविणसः प्र यंसत्। द्रविणोदा नः वीरवतीं इष। द्रविणोदा दीर्घं आयु रासते।

हे अग्निदेव, हमने अर्पण किये हुए इन्धनसे आपकी वृद्धि होती है। आप सबको पवित्र करते है। आप अपना प्रकाश सब दूर फैलाइये। हमे धन दीजिये। और आपकी कीर्ति सब दूर बढ़ जावे। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथ्वी, द्युलोक हमारी प्रार्थना सुने और सफल करे। ९ (४)

## सूक्त ९७.

॥ ९७ ॥ ऋषि–अङ्गिरस कुत्स । देवता–अग्नि ॥

(अग्नि–देव) प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करे। हे अग्निदेव, हमपर सम्पत्तिका प्रकाश फैलाइये। सचमुच आप (अग्नि) प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करे। १

अच्छी[1] जगह रहनेवाली और सुमार्गसे[2] प्राप्त होनेवाली सम्पत्तिकी इच्छा करके हम आपका अर्चन करते है। आप प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करे। २

आपका भक्त (केवल) आपहीका स्तवन[3] करता है। और हमारे कुलमे उत्पन्न हुए सब विद्वान सज्जनभी आपहीकी स्तुतिमे मग्न होते है। इस लिये आप (अग्नि) प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश कीजिये। ३

हे अग्निदेव, हमारे जन्मसेही हम आपके उपासक बन गये है। इस लिये हम आपके ही है। आप प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश कीजिये। ४

जब बलवान् अग्निके किरण सब दूर फैलते है तब आप हमारे पापका नाश कीजिये। ५

चारों ओर आप (अग्नि)का सुन्दर मुख दिखाई देता हैं। हे (अग्निदेव) सचमुच आपने सब जगह व्याप्त की है। प्रज्वलित होकर हमारे पापका आप नाश करे। ६

आप (अग्निदेव)का मुख चारो ओर दिखाई देता है। जिस तरह जहाज समुद्रके परे ले जाता है उसी तरह हमे आप शत्रुके वलके पार (जहा शत्रु किसी प्रकारकी वाधा नही पहुचा सकता) ले जाईये। आप प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करे। ७

समुद्रके पार ले जानेवाले जहाजकी तरह आप हमे संकटसे वचाइये[८] और आप (अग्नि) प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करे। ८ (५)

## सूक्त ९८.

॥ ९८ ॥ ऋषि–अङ्गिरस कुत्स । देवता–सोम ॥

सव मानवजातिसे अन्तःकरणमें प्रेम रखनेवाले अग्निदेवकी कृपा–दृष्टि हमपर रहे। आप किसकी रक्षा करते है? आप सव भुवनोके अलंकार[१] है। इसी जगह जन्म लेकर आप सव विश्वका अवलोकन करते हैं। सव मानवजातिके विषयमे अन्त.करणमें प्रेम रखनेवाले (अग्निदेव) सूर्यसे इर्ष्या[२] करते है। १

द्युलोकमे जिसको ढूंढते है और पृथ्वीपर भी जिसको ढूंढते हैं ऐसे अग्निदेवने वनस्पतिमे प्रवेश किया। मानवजातिसे प्रेम रखनेवाले वलवान् अग्निदेवको सव लोग ढूंढते है। आप दिनरातमे दुष्ट लोगोंसे हमारी रक्षा कीजिये। २

---

विश्वतोमुख, त्व हि विश्वत परिभू असि।

वश्वतोमुख, नावाइव न द्विष अति पारय।

८ नावया सिंधु इव स्वस्तये स नः अति पर्ष[२]।

१ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम। राजा क हि[२] भुवनाना अभिश्री.[१] इत· जातः इदं विश्व वि चष्टे। वैश्वानर सूर्येण यतते[२]।

२ दिवि पृष्ट, पृथिव्या पृष्ट. पृष्ट. अग्नि. विश्वा. ओषधी. आ विवेश। वैश्वानरः अग्निः सहसा पृष्टः। सः दिवा नक्त न रिष पातु।

सब मानवजातिसे प्रेम रखनेवाले अग्निदेव, यह आपका सत्य (बल) हमेशा आपके पास रहे। हमारे तरफ आकर बहुत[3] सम्पति हमे दीजिये। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिंधु, पृथ्वी और द्युलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान देवे और सफल करें। ३ (६)

## सूक्त ९९.

॥ ९९ ॥ऋषि–मरीचिपुत्र, काश्यपऋषि । देवता–अग्निर्जातवेदा ॥

चलिये। सर्वज्ञ अग्नि-देवका सन्मान करनेके लिये सोमरस तैयार करके रखना चाहिये। जो मनुष्य हमसे वैरभावका बर्ताव करते हैं उनके धनका अग्नि-देव नाश करते है। जिस तरह जहाज समुद्रके पार लेजाता है उसी तरह अग्नि-देव संकट और पापोंसे हमे बचाते हैं। १ (७)

## सूक्त १००.

॥ १०० ॥ ऋषी–ऋज्राश्व, अंबरीष, सहदेव, भयमान, सुराधा । देवता–इन्द्र ॥

बलवान् इन्द्र कई वीर्यशाली देवोंकेसाथ रहता है। विस्तीर्ण द्युलोक और पृथ्विलोकोंका आप स्वामी है। सचमुच अनुभवसे आपके बलके अस्तित्वका[1] प्रभाव विदित होता है। सोमरस तैयार होनेके पश्चात् आपको हवि अर्पण किया जाता है, और आप सन्तुष्ट होते हैं। मरुत्-देवोंकेसाथ आप यहां आवे और हमारी रक्षा करे। १

सूर्यकी गतिकी[2] नाई इन्द्रकी गतिको कोई रोक[3] नहीं सकता। जब सोमरस तैयार किया जाता है तब वृत्रको मारनेवाले इन्द्रकी पराक्रम- करनेकी ओर प्रवृत्ति होती है। मित्रकी सहायता मिलनेके कारण आपका सामर्थ्य बहुत बढगया है। आप मरुत् देवोंकेसाथ अपने मार्गसे[4] चलते हुए हमारी रक्षा करनेके लिये यहां आवे। २

इन्द्रके सामर्थ्यको कोई रोक नहीं सकता, जिस मार्गको आप तैयार करते है उसी मार्गसे द्युलोकमे जल बहते है। आप अपने शत्रुओसे आपको सहजही बचा सकते है। आप पराक्रमी होनेके कारण सब जगह आप विजयी हुए है। मरुत्–देवोकेसाथ इन्द्र–देव हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवे। ३

आप ( इन्द्रदेव ) अपने मित्रोके साथ मित्रत्वका वर्ताव करते है। पराक्रम करनेवाले लोगोमे आपका नाम मशहूर है। आंगिरस वंशमे आपही सबसे श्रेष्ठ है। जो देव स्तुति करने योग्य[५] हैं उनमे, आप अधिक स्तुति– योग्य है। स्तुतिके कारण आपका नाम बहुत बढ़ गया है। इन्द्रदेव मरुत् देवोके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहा आवे। ४

युद्धमे[६] इन्द्रदेव अपने शत्रूओंको जीत[७] लेता है। मानो, पुत्रकी नाई रुद्रोकी सहायता आपको युद्धमे मिली; इस कारण आप श्रेष्ठ[८] समझे गये आपके साथ रहनेवाले देवोंकी सहायतासे आप बड़े बड़े वीरताका काम करते[९] हैं। इन्द्रदेव मरुत्देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवे। ५ (८)

शत्रूओंकी घमण्ड[१०] हरण करनेवाले और युद्ध[११] करनेवाले इन्द्रने शूर पुरुषोंकी सहायतासे सूर्यको ढूंढ निकाला। भक्तगण आपको हमेशा प्रार्थना करते हैं। आप सज्जन लोगोकी रक्षा करनेवाले है। इन्द्रदेव मरुत्–देवोकेसाथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवे। ६

पराक्रमी लोग धन प्राप्त करनेकी इच्छासे युद्ध करते है। युद्धके समयपर आप उनके मनमे प्रेरणा[१२] उत्पन्न करके उनको सामर्थ्य देते हैं। सब मनुष्य आपहीको कल्याण करनेवाले[१३] समझते है। जगत्के सत्कृत्योंके[१४] आपही स्वामी है। इन्द्र–देव मरुतदेवोकेसाथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवे। ७

---

३ शवसा अपरीता यस्य पथासः दिव न रेतसः दुधाना॰ यंति, तरद्द्वेषाः, पौंस्येभि ससहिः मरुत्वान् .. ऊती भवतु।

[illegible] भि सखा सन् वृषभिः वृषा सः अंगिरोभि अंगिरस्तमः भूत्। ऋग्मिभि.[५] ऋग्मी, गातुभि. ज्येष्ठ. इन्द्र न ऊती भवतु।

५ नृसह्ये[६] अमित्रान् ससह्वान्[७] स सूनुभि न रुद्रेभि ऋभ्वा[८]। सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्[९] मरुत्वान् इन्द्र. न ऊती भवतु।

६ मन्युमीः[१०] समदनस्य[११] कर्ता स अस्माकेभि नृभि सूर्य सनत्। पुरुहूत सत्पति. मरुत्वान् इन्द्रः अस्मिन् अहन् न ऊती भवतु।

७ शूरसातौ त ऊतय रणयन्[१२]। क्षितय त क्षेमस्य त्रा[१३] कृण्वत। विश्वस्य करुणस्य[१४] सः एक. ईशे। मरुत्वान् इन्द्र. न. ऊती भवतु।

आनन्दोत्सव मनाते समय आप (इन्द्र) के मनमें नयी स्फूर्ति उत्पन्न होती है। स्वरक्षा और धनकी इच्छा करनेवाले पुरुष आप (इन्द्र) जैसे पराक्रमी देवोंकी शरण लेते हैं। जब चारों ओर गाढ़ा अन्धकार फैलता है तब आप तेजोमय प्रकाश उत्पन्न करते हैं। इस लिये इन्द्र-देव मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। ८

आप अपने बायें हाथसे अपने बलवान्[15] (शत्रुओंको) दबा सकते हैं; और प्राप्त किये हुए धनको दहिने हाथमें आप पकड़ लेते हैं। स्तुति करनेवाले उपासकोंको धन अर्पण करनेवाले इन्द्र मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। ९

आप (इन्द्र) बैठकर सेनाकी सहायतासे धन प्राप्त कर सकते हैं। सब मानव जातिको आपकी कीर्ति विदितही है। जो लोग आपकी स्तुति नहीं करते उन दुष्टोंको[16] आप अपने बलसे पराजित करते हैं। इन्द्र मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। १० (९)

बहुतसे उपासक लोग इन्द्रको पाचारण[17] करते हैं। अपने संगेवाले हों अथवा दूसरे लोग हों उनको युद्धमें आप सहायता देते हैं। जल, पुत्र, और पौत्रकी प्राप्ती करानेके लिये इन्द्रदेव, आप यहां आवें। आप (इन्द्र) देव मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। ११

आप (इन्द्र) हाथमें वज्र धारण करते हैं। आप शत्रुका नाश करनेवाले हैं। आप सबको डरानेवाले हैं। आपका स्वरूप उग्र है। आप प्रज्ञावान् हैं। आप सेनाके अधिपति हैं और सामर्थ्यवान् हैं। सोमरसकी तरह आप स्फूर्ति[18] देनेवाले हैं। आप मानव जातिकी रक्षा[19] करनेवाले हैं। इन्द्र-देव मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। १२

---

जैसे द्युलोकमें अथवा (अन्तरिक्ष) में (विजली चमकते समय) वड़ी गर्जना[20] होती है वैसेही आपका वज्र स्वर्गसे गिरते समय वड़ी गर्जना करता है। अनेक मार्गोंसे लाभ और सम्पत्ति आपकी ओर दौड़ती चली आती है। इन्द्र मरुत् देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे (यहां) आवें। १३

इन्द्रके सामर्थ्यसे द्युलोक और भूलोक भरा हुआ है। आपकी कीर्ति सब दूर फैली हुई है; हमारी पूजासे[21] आप सन्तुष्ट हूजिये। और हमे संकटसे परे ले जाइये। इन्द्र, मरुत् देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे (यहा) आवे। १४

देव, देवता, मनुष्य, जल, आदि किसीको भी इन्द्रके सामर्थ्यका पता नहीं लगा। आप अपने वलसे[22] द्युलोक और भूलोकको आक्रमण करते हैं। इन्द्र मरुत् देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे (यहा) आवे। १५ (१०)

सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव जब अपने रथमें विराजमान होते हैं तब आपके रथका जूआ द्युलोकमें[23] रहनेवाली लाल और काले रङ्गकी सुन्दर और देदीप्यमान घोड़ी अपने कंधेपर ले चलती है। वह सुन्दर घोड़ी[24] ऋज्राश्वको सम्पत्ति अर्पण करनेके लिये (यहा) आनन्दसे आती हुई[25] दिखाई देती है। १६

हे इन्द्र, ऋज्राश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान् और सुराधा वृषागिरके पुत्र अपने मित्रोंके साथ[26] आनन्दसे आपका सन्मान् करके आपका स्तोत्र गाते है। १७

---

१३ दिवः शिमीवान् त्वेष. रवथः[20] न तस्य स्वर्याः वज्रः क्रन्दति। सनय 'ानानि त सच-ते।

स्य शवसा मान उक्थ अजह्य विश्वत सीं रोदसी परिभुजत्, स. क्रतुभि.[21] मन्दसान पारिपत्।

वा, देवता, मर्ता, आप चन यस्य शवस अन्त न आपु त्वक्षसा[22] क्ष्मा दिवः च परिका स नू इन्द्रः नः ऊती भवतु।

१६ वृषण्वन्त रथ धूर्षु बिभ्रती रोहित् श्यावा द्युक्षा[23] सुमदशु ललामी[24] ऋजाश्वस्य राये नाहुषीषु[25] विक्षु मन्द्रा चिकेत।

१७ इन्द्र, वार्षागिराः, ऋज्राश्वः, अम्बरीषः, सहदेव., भयमान', सुराधा', प्रष्टिभि[26] वृष्णे ते एतत् त्यत् राधः उक्थ अभि गृणन्ति।

इन्द्रदेवने– जिसकी अनेक भक्तजन प्रार्थना करते हैं–पृथिवीपरके सब दुष्ट लोगोंका और सतानेवाले शत्रुओंका[27] धीरे धीरे[28] नाश[29] किया। वज्रधारी देवने अपने तेजस्वी[30] मित्रोंकी सहायतासे भूमिको प्राप्त किया। १८

इन्द्र हमारा निरन्तर कल्याणकरनेवाला और आशीस देनेवाला होवे; जिससे हमारे मार्गमें कोई बाधा न पड़े और हमें सामर्थ्य प्राप्त होवे। मित्र, वरुण, अदिति, तथा सिन्धु, पृथिवी, द्युलोकादि एक सम्मतिसे हमारी प्रार्थना सफल करें। १९ (११)

## सूक्त १०१.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र ॥

इन्द्र देवने ऋजिश्वाके द्वारा काले रङ्गके (दुष्ट) लोगोंका वध करवाया। आनन्द देनेवाले इन्द्रको हविके[1] साथ एक स्तोत्र हम अर्पण करते हैं। हमारी रक्षा करनेके लिये हम उनके मित्रत्वकी इच्छा करते हैं। दहने हाथमें वज्र धारणकरनेवाले पराक्रमी इन्द्रको मरुत् देवोंके साथ हम यहां बुलाते हैं। १

आप (इन्द्र)ने क्रोधमें आकर व्यंसका वध किया, आपने शम्बरको मार डाला; आपने भक्तिहीन पिप्रुका भी नाश किया, जिस शुष्णका नाश करना असम्भव[2] था उसका भी आपने नाश किया। ऐसे इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करनेवाले हम मरुत्‌देवोंके साथ आपको बुलाते हैं। २

द्युलोक और पृथिवीलोक उत्पन्न करनेका पराक्रम आपने किया। वरुण, सूर्य, नदियां, आदि देवताएं इन्द्र देवताकी आज्ञा मानते हैं और उसके अनुसार चलते हैं। ऐसे उपर्युक्त इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करनेवाले हम मरुत् देवोंके साथ आपको बुलाते हैं। ३

---

आप अश्वोंके और धेनुओंके भी स्वामी है। आप सबको अपने वशमे रखते हैं। आपका सब सन्मान करते है। आपका प्रभाव हरएक काममे दिखाई देता है। आपको हवि अर्पण न करनेवाले पाखण्डी (अभक्त) लोगोका आप वध करते है। इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करके हम मरुत् देवोंके साथ आपको बुलाते है। ४

आप सब प्राणियोंके स्वामी है। भक्तिवान् उपासकोंके लिये आपने पहिले धेनुओंकी प्राप्ति की। आपने दुष्ट लोगोंको दूरतक नीचे फेक दिया। ऐसे इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करनेवाले हम मरुत्देवोंके साथ आपको पाचारण करते है। ५

पराक्रमी लोग आपको हमेशा पुकारते है; और कायर लोग भी आपको बुलाते हैं। युद्धमे जीतनेवाले और हारनेवाले दोनो प्रकारके पुरुष आपसे प्रार्थना करते है। सब जगत्के लोग आपके सङ्गतिकी इच्छा[४] करते है। इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करनेवाले हम मरुत्देवोंके साथ आपको पाचारण करते है। ६(१२)

ज्ञानी इन्द्र रुद्रकी दिशाकी ओरसे आते है। रुद्रदेवके साथ उषादेवी (युवती) अपना विस्तीर्ण प्रकाश फैलाती[५] है। भक्त लोग स्तोत्रोंके द्वारा कीर्तिवान् इन्द्रका अर्चन करते है। हम भी इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करके मरुत्देवोंके साथ आपको पाचारण करते है। ७

हे इन्द्र, आप हमेशा मरुत देवोंके साथ रहते है। जब आप सब देवोंके साथ किसी जगह आनन्द मनाते है अथवा किसी एकान्त जगह[६] बैठते है तब भी हमारे यज्ञकी ओर आगमन कीजिये। सत्यसे सन्तोष मनानेवाले देव, आपहीके प्रेमसे[७] हम आपको हवि अर्पण करते है। ८

---

य अश्वाना, य गवां गोपति वशी, य आरित कर्मणिकर्मणि स्थिर, य. इन्द्र वीळो. चित् अमु-:, मरुत्वत सख्याय हवामहे।

विश्वस्य जगत प्राणतः पति, य ब्रह्मणे प्रथम गा अविन्दत्, य दस्युन् अधरान् अवातिरत, सख्याय हवामहे।

य शूरेभि हव्य, य च भीरुभिः, य धावद्भि हूयते, य च जिग्युभि, य इन्द्र विश्वा भुवना अभि[४] दधु, मरुत्वत सख्याय हवामहे।

७ विचक्षण रुद्राणा प्रदिशा एति। रुद्रेभि योषा पृथु ज्रयः[५] तनुते। मनीषा स्तुत इन्द्र अभि अर्चति। मरुत्वत सख्याय हवामहे।

८ मरुत्व', यत् वा परमे सधस्थे, यत् वा अवमे वृजने[६] मादयासे, अत न अध्वर अच्छ आ याहि। सत्यराध त्वाया[७] हवि चकृम।

हे वीर्यशाली इन्द्र, आपहीके प्रेमसे हमने सोमरस तैयार किया है। हमारे स्तुतियोंका स्वीकार करनेवाले देव, आपहीके प्रेमके कारण हम हवि सिद्ध करते हैं। अश्वपर आरूढ[८] होनेवाले देव, अपने गणोंकेसाथ यहां आकर हमारे कुशासनपर विराजमान् होकर मरुत् देवोंके साथ आनन्द मनाइये। ९

अपने पीले रङ्गके अश्वोंके साथ (इस यज्ञमें आकर) आनन्द मनाइये। अपना मुख खोलकर अपने सुन्दर मुखसे हमारे हवियोंका भक्षण कीजिये। उत्तम मुकुटसे[९] शोभनेवाले इन्द्रको आपके अश्व ले आवे। हमारे हवियोंको पसन्द[१०] करके आप उनका स्वीकार कीजिये। १०

जिस जगह मरुत् देवोंकी स्तुति की जाती[११] है वहां इन्द्रदेव भी आते हैं और हमें सामर्थ्य प्रदान करते हैं। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथ्वि, द्युलोक आदि देवताए हमारी प्रार्थनापर ध्यान देकर उसे सफल करें। ११ (१३)

## सूक्त १०२.

॥ ऋषि–अङ्गिरस कुत्स । देवता-अग्नि ॥

(हे इन्द्र) जो स्तोत्र आप बहुत पसन्द[१] करते हैं उसीको मैं आप जैसे श्रेष्ठ देवको अर्पण करता हूं। आनन्द मनाते समय अथवा लाभ[२] प्राप्त करनेके समयपर आपका हमेशा विजय[३] होता है। आप जैसे सामर्थ्यवान् देवको देखकर और आर दूसरे देवोंको आनन्द होता है। १

आपकी कीर्ति इतनी बड़ी है कि वह सात नदियों द्वारा बहती है। स्वर्ग और भूमि दोनों विस्तार्ण लोक[४] आपके सुन्दर देहको व्याप्त करते हैं। हे इन्द्र सचमुच हम आपके पर श्रद्धा रखते हैं, और सूर्य और चन्द्र आपसमें न मिलकर हमारे प्रकाश देनेके लिये हमेशा सञ्चार करते रहते हैं। २

हे उदार (इन्द्र), जब आपका विजयी रथ आता है तब हमें आनन्द होता है। आपके रथके द्वारा हमे सम्पत्तिका लाभ होता है और हमारी रक्षा होती है। भक्तोंकी स्तुतिका स्वीकार करनेवाले उदार इन्द्र, हम हृदयसे आपपर प्रेम[६] करते हैं। इस लिये युद्धमें हमारी रक्षा कीजिये। ३

यदि आप हमको सहायता देनेवाले होंगे तो हम (निश्चयसे) शत्रुओंको[७] जीत लेंगे। जब[८] हम आपको हवि अर्पण करते हैं तब हमारे पक्षकी[९] रक्षा करनेके लिये तैयार रहिये। हमारी रक्षा करनेके लिये आप एक ऐसा सुलभ (बचानेवाला) अस्त्र[१०] बनाइये जिससे हम शत्रुओंको जीत लेंगे। ४

सम्पत्तिको उत्पन्न करनेवाले इन्द्र, हम आपकी कृपाकी इच्छा करते हैं। आपका स्तवन और पूजन करनेवाले बहुत सज्जन है। किन्तु केवल हमारा लाभ करानेके लिये आप-रथमें आरूढ़ हूजिये। हे इन्द्र, सचमुच आपके मनकी इच्छा हमेशा विजयकी ओर दौड़ती है। ५(१४)

आप अपने बाहूओंके बलसे-गौधनको जीत लेते हैं। आपकी बुद्धिका सामर्थ्य असीम है। आप बड़े श्रेष्ठ[११] है। हरएक कृत्यमें आप (भक्त)को सहायता देते है। आप युद्ध करनेमे बड़े कुशल[१२] हैं। आपके बलकी कोई कल्पना[१३] भी नहीं कर सकता है। आप अपने अद्वितीय सामर्थ्यके कारण श्रेष्ठ हुए है। आपकी सेवा करनेवाले लोग आपको कई प्रकारसे पुकारते हैं। ६

मानवजातिमे आपका यश सब दूर फैला हुआ हैं। सैकडो नहीं हजारों लोगोंकी अपेक्षा आपका यश अधिक फैला हुआ है। आपका सामर्थ्य कोई नाप[१४] नहीं सकता (वह असीम है)। हमारी स्तुति आपका उत्साह[१५] बढ़ाती है। शत्रुओंके नगरोंका नाश करनेवाले देव, आप राक्षसोंका नाश कर सकते है। ७

---

मघवन्, य ते जैत्र (रथ) सगमे अनुमदाम, त रथ सातये प्र अव स्म। पुरुस्तुत मघवन् इ द्र, ायद्भा[६] न. न आजा शर्म यच्छ।

त्वया युजा वृत[७] वय जयेम। भरेभरे[८] अस्माक अश[९] उत् अव। इन्द्र, अस्मभ्यं सुग वरिव[१०] कृधि। शत्रूणा वृष्ण्या प्र रुज।

५ धनाना धर्त', अवसा त्वा हवमाना: विप-यव. इमे जना. नाना हि। अस्माक सातये स्म रथ आ तिष्ठ। इन्द्र, तव: मन: निभृत जैत्र हि।

६ बाहू गोजिता; इन्द्र: अमितक्रतु सिम[११] कर्मन्कर्मन् शतमूति', सजकर,[१२] अकल्प,[१३] ओजसा प्रतिमान। अथ सिषासव: जना विह्वयन्ते।

७ मघवन्, कृष्टिपु ते श्रव उत् शतात्, उत् च भूयस', उत् सहस्रात् रिरिचे। अमात्र[१४] त्वा मही धिषणा तिलिये, अध, पुरन्दर वृत्राणि जिघ्नसे।

हे मनुष्योंके स्वामी, भूलोक, स्वर्गलोक, और देदीप्यमान प्रदेश ( अन्तरिक्ष ) तीनो लोगोंको आपने व्याप्त किया है। इन तीनो लोगोसे आप बड़े है। हे इन्द्र, आपके जन्मसेही आपका कोई शत्रु नही रहा। ८

सब देवोंसे पहिले हम आपको पुकारते हैं। युद्धमे विजय पानेवाले इन्द्र, हमे स्तवन करनेकी स्फूर्ति[१५] दीजिये, और ( सम्पत्ति ) का लाभ[१६] करानेके लिये हमारा रथ सबसे आगे बढाइये। ६

हे उदार देव, आप छोटे और बड़े सब युद्धोमे विजय पाते हैं। किन्तु कभी सम्पत्ति लूट नही लेते। आपका स्वरूप बड़ा उग्र है। हमारी रक्षा[१७] करनेके लिये हम आपकी स्तुति करते हैं। हे इन्द्र, जब हम आपकी स्तुति करते हैं तब आप हमारी उन्नति कीजिये। १०

इन्द्र, हमे शुभदायक आशीस देनेवाला होवे। आपकी कृपाके कारण ही हमारे कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा नही आती। हमे सामर्थ्यका लाभ करा दीजिये। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और द्युलोक, आदि हमारी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये ११(१५)

## सूक्त १०३.

॥ ऋषि–अङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र ॥

पुरानी कालसे आपका जो सामर्थ्य[१] इस पृथिवीपर दृग्गोचर होता है उसका विद्वान लोग अभिनन्दन[२] करते है। आपकी शक्तिका एक अंश पृथिवीपर दृग्गोचर होता है, और दूसरा अंश स्वर्गलोकमे दिखाई देता है। जैसे युद्धके समय भीड़ होनेके कारण ( एक दलकी ध्वजा दूसरे दलकी ध्वजासे मिलती हुई दिखाई देती है ) उसी तरह आपके ( द्युलोक और पृथिवीलोकके ) दोनो अंश एक दूसरेके साथ मिले हुए दिखाई देते हैं। १

८ [illegible] तिस्र भूमी, त्रीणि रोचना, ओजसा त्रिविष्टिधातु प्रतिमानं। इदं विश्वं भुवनं अति ववक्षिथ। [illegible] जनुषा [illegible] असि।

[illegible] प्रथमं त्वा हवामहे। [illegible] ससहि बभूथ। सः इन्द्र नः [illegible] उपमन्यु उद्भिद," "प्रसवे" [illegible]

१० [illegible] न जिगीष, धना न रुरोधिथ। त्वा उग्र अवसे स शिशीमसि"। [illegible]

११ [illegible] अस्तु। अपरिहृता वाज सनुयाम। [illegible] पुरा पराचै 'अभ्यर्चन्त' अस्य इदं अन्यत् क्षमा, अन्यत् दिवि। [illegible] प्रच्यते।

आपने पृथिवीको धारण करके उसको विस्तीर्ण किया और अपने वज्रसे वृत्रको मार डाला। जलोके मार्गमे जो ( रुकावटे ) थी उनको हटा दिया । आपने अहीका वध किया। और व्यंसको अपने शक्तिसे मार डाला। २

आपने अपने वज्रसे[3] और सामर्थ्यसे शत्रुओंके[4] दश नगरोंका नाश किया। आपने शत्रुकी सेनाको पैरसे कुचल डाला। हे वज्रधारी इन्द्र, आप तो सर्वज्ञही है। शत्रुपर आप अपना अस्त्र[5] छोडिये; और अपने उपासकोंके बल और वैभवको बढ़ाइये। ३

हे वज्रधारण करनेवाले और उदार इन्द्र, जब आपने दस्युओंपर ( राक्षस अथवा दुष्ट लोग ) चढ़ाई की उस समय आपकी कीर्ति बहुत बढ़ गयी। नाम कमानेके[6] कारणही आप जैसे उदार देवकी सब उपासक प्रशंसा करते हैं। ४

इन्द्र-देवका बहुत बढ़ा हुआ सामर्थ्य अवलोकन कीजिये, इन्द्रकी शक्तिपर भरोसा रखिये। इन्द्रदेवने ही धेनु, अश्व, और वनस्पतियोंको प्राप्त किया, और जलका मार्ग मुक्त करके आपही अरण्यका स्वामी बन गये। ५ (१६)

मार्गमें रुकावट डालनेवाले चोरोंका आप पहिले आदर करके उनका धन हरण करते हैं। हमारी तरफ आनेवाले इन्द्र, आप सामर्थ्यवान, बलशाली, और सत्यशक्तियुक्त हैं। आपके लिये सोमरस तैयार करना चाहिये। ६

---

२ स. पृथिवीं धारयत् पप्रथत् च। वज्रेण हत्वा अपः नि. ससर्ज। अहि अहन् रौहिण अभिनत्, मघवा भिः व्यंस अहन्।

मां,[3] ओज श्रद्दधान पुर विभिन्दन् दासी [4] वि अचरत्। वज्रिन्, विद्वान् दस्यवे हेतिं अस्य[5] र्यं सह द्युम्न वर्धय।

४ वज्री सूनु[:] दस्युहत्याय उपप्रयन् श्रवसे यत् नाम दधे ह तत् कीर्तेन्य नाम मघवा इमा मानुषा युगानि ऊचुषे[6] बिभ्रत्।

५ तत् अस्य इद भूरि पुष्ट पश्यत । इन्द्रस्य वीर्याय श्रत् धत्तन । स गा अविन्दत्, स अश्वान् अविन्दत्, स ओषधी, स अप, स वनानि।

६ य शूर परिप थी इव अयज्वन वेद, आदाय विभजन्, एति, भूरिकर्मणे, वृषभाय, वृष्णे, सत्यशुष्माय सोम सुनवाम।

हे इन्द्र, सोए[1] हुए अहि (राक्षसको) अपने वज्रसे जगाया। सचमुच आपने यह बड़े वीरताका[2] काम किया। जब आप आनन्दित होते हैं तब सब देव और पक्षीभी आनन्द मनाते हैं। ७

हे इन्द्र, जब आपने शुष्ण, पिप्रु, कुवय, और वृत्र, आदि (राक्षसोंका) वध किया तब आपने शम्बर (राक्षस) के नगरका नाश किया। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और द्युलोक हमारी प्रार्थना सुनकर सम्मति देवें। ८ (१७)

## सूक्त १०४.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र ॥

हे इन्द्र–देव, आप इस आसनपर विराजमान् हूजिये। यह आसन[1] आपके लिये सिद्ध किया गया है। जिस प्रकार अश्व आनन्दसे हिनहिनाता है उसी प्रकार (आनन्दसे) आप इसका स्वीकार कीजिये। पक्षीकी तरह वेगवान् घोडोको (अब) छोड़ दीजिये। चाहे रात हो या दिन हो, सोमरस पीनेके लिये आपके अश्व आपको चाहे जहां ले जाते हैं। अब उनको छोड़ दीजिये। १

वे पुरुष अपनी रक्षाके लिये इन्द्रकी ओर दौड़े, क्या आप (इन्द्र) उनकी ओर नहीं जावेंगे? सब देव मिलकर दुष्ट शत्रुओंका कोप शान्त[3] करें। और हमारी जातिके लोगोंको कल्याणका मार्ग दिखलावे। २

दूसरेके धनको हरनेको जाननेवाला (कपटी) कुवय (राक्षस) ने जलमें चारों ओर फेन फैला दिया। कुवयकी स्त्रियां तो केवल दूधसे नहाती हैं, शिफा नदीके जलमें (भवरमें) वे दोनों डूबकर मर जावें। ३

आयु (राक्षस) ऊपर आकाशमें था। उसका नाभिस्थल इतना बड़ा था कि जिससे सब आकाश व्याप्त[5] हुआ था। इन्द्रने अपने ज़ोरसे उसको तोड़ डाला और अपना अधिकार उसके ऊपर प्रस्थापित किया। आयु (राक्षस) की स्त्रीया अञ्जसी, कुलिशी और वीरपत्निओंने उस को (अपने पतिको) जलमें छुपा दिया। ४

आयु राक्षसका मार्ग (इन्द्रको) दिखाई देने लगा। जिस वेगसे स्त्री अपने घरकी ओर जाती है उसी तरह इन्द्र उस राक्षसकी ओर (मारनेके लिये) दौड़ता[6] है। हे उदार इन्द्र देव, हमे किसीसे बाधा न हो जाय। जिस तरह विषयासक्त पुरुष[7] अपनी सम्पत्ति उड़ाता है उसी तरह हमारा त्याग न कीजिये। ५ (१८)

हे इन्द्र, सूर्य, उदक, हमें पवित्र बनाइये और हमें उन्नतिका लाभ होवें। आप इसी लिये हमारे पास रहिये। हमने जो धन[8] इकट्ठा किया है उसका नाश न होवे। आप शक्तिकी प्रत्यक्ष मूर्ति ही हैं। आपहीपर हमारा भरोसा है। ६

हे इन्द्र, मै पूर्ण रीतिसे यह समझता हूं कि मेरा आपहीपर पूर्ण विश्वास है। आप सामर्थ्यवान् हैं; इस लिये हमे ऐसी स्फूर्ति दीजिये जिससे हमे सम्पत्ति मिले। आपके भक्तगण आपको पाचारण करते है। हे (इन्द्र–देव) जब हमे भूक लगती है तब हमे अन्न[9] और जल[10] दीजिये। हमे रहनेके लिये ऐसा घर दीजिये जिसमे सम्पत्तिकी कमी न होवे। ७

हे इन्द्र, हमारा वध मत कीजिये, हमारा त्याग मत कीजिये। हे सामर्थ्यवान् उदार (इन्द्र), गर्भमे रहनेवाले सन्ततिका[11] नाश न कीजिये। ऐसे अण्डेको मत फोड डालिये जिससे एकदम कई बच्चे उत्पन्न[12] होते हैं। ८

---

४ उपरस्य आयो नाभिं युयोप[5] पूर्वाभि॰ प्र तिरते। शूर राष्टि। अजसी कुलिशी, वीरपत्नी, पय हिन्वाना भरन्ते।

त् दस्यो रया नीथा प्रति अदर्शि, सदन जानती ओक. अच्छ न, गात्, अध, मघवन्, नः मा इत्, निष्पर्पी[7] मघा[?] इव, न मा परमा परा दा।

इन्द्र, सः त्व नः सूर्ये, सः अप्सु, अनागास्त्वे, जीवशंसे आ भज। न अन्तरा भुजं[8] मा आ रिरिष ६ इन्द्रियाय श्रद्धित।

७ अध ते अस्मै श्रत् अधायि मन्ये; वृषा महते धनाय चोदस्व। पुरुहूत इन्द्र, न क्षुध्यद्भ्य, वय[9] आसुति,[10] अकृते योनौ, मा दाः।

८ इन्द्र न मा वधी, मा परा दाः न प्रिया योजनानि ता प्र मोषी मघवन् शक्र, न आण्डा[11] मा निः भेत्। सहजानुपाणि[12] न पात्रा मा भेत्।

हे इन्द्र, आप इधर आईये । यह बात सबको विदितही है कि आप सोमरस बहुत चाहते हैं, । और इसी लिये सोमरस तैयार किया हुआ रखा गया है । आप उसको पीजिये और आनन्द मनाईये । आप बहुत जगह व्याप्त कीजिये । इस ( सोमरस ) का पान कीजिये। आप सामर्थ्यवान् होनेके कारण हम आपकी सहायता चाहते है । पिताकी नाई हमारी प्रार्थना सुन लीजिये । ९ (१९)

## सूक्त १०५.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–अग्नि ॥

चन्द्रमा जलमें ( अन्तरिक्षमें ) दौडता चला जाता है । यह सुन्दर पङ्खोंका पक्षी आकाशमें दौड़ता है । उसके पङ्ख सुवर्णके बने हुए है । आकाश मे चमकनेवाली बिजलीको भी आपका स्थान विदित नहीं हैं । हे द्युलोक और भूलोक, हमारी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये । १

अर्थकी इच्छा करनेवालेको धन मिलता है, और स्त्रीको उसके स्वामीकी भेट होती है । जब दोनो मिलते हैं तब जल उत्पन्न होता है । इस प्रकार उत्पन्न हुआ जल एक दूसरेको देता है, और इस तरह दोनोको आनन्द होता है । हे द्युलोक और पृथिवीलोक, हमारी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये । २

हे ( इन्द्र ) देव, यह तेज स्वर्गसे भी गिर न जाय । हमारा कल्याण करनेवाला सोमरस जहां नहीं है वहां हमे कभी मत ले जाईये । हे द्युलोक और पृथिवीलोक, मेरी प्रार्थना सुनिये । ३

मै अन्तिम यज्ञसे एक प्रश्न पूछता हू । आप देवोके दूत होनेके कारण आप उसका उत्तर देंगे । प्राचीन कालका सत्य कहा है ? वह किस नये मनुष्यके पास चला गया ? हे द्युलोक और पृथिवीलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये । ४

---

९ [illegible] आ इहि । त्वा सोमदाम आहु, अयं सुत ; तस्य पिब । उरुव्यचा. जठरे आ वृषस्व । हूयमानः पिता [illegible] शृणुहि ।

१ [illegible] सुपर्ण दिवि आ धावते । हिरण्यनेमय विद्युत व पद न विन्दन्ति । रोदसी [illegible] वित्त ।

२ अर्थिन [illegible] जाया पति आ युवते । [illegible] पय तुञ्जाते, परिदाय रस दुहे ।

३ देवा, [illegible] दिव परि मो सु अव पादि । शम्भुव सोम्यस्य शूने कदा चन मा भूम ।

४ [illegible] । [illegible] वि वोचति । [illegible] ऋतं [illegible] नूतन. [illegible]

द्युलोकके इन तीनों देदीप्यमान् प्रदेशोंमें रहनेवाले देव, आपका सत्य कहां है? आप असत्य किसको कहते हैं? पुरातन कालमें जो आहुति मैंने अर्पण की थी वह कहां चली गई? हे द्युलोक और पृथिवीलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ५ (२०)

आपके सत्यकी रक्षा[२] कौन करता है? वरुणदेवकी (अमृत) दृष्टि कौनसी है? श्रेष्ठ अर्यमाके मार्गसे चलते हुए हमारा नाश करनेकी इच्छा[३] करनेवाले लोगोंको हम किस प्रकार मार डाल सकते हैं। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ६

जो मैं पहिले सोमरस सिद्ध करनेवाला था वही मैं स्तोत्र गानेवाला हूं। जिस तरह भेडिया हरिणको खा[४] जाता है उसी तरह चिन्ता मुझे खा जाती है। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ७

जिस तरह दो स्त्रीयां अपने पतिको सताती हैं उसी तरह मेरी पतली हड्डियां मुझे दोनों तरफसे सताती है। हे सामर्थ्यवान् देव, मैं तुम्हारी स्तुति गानेवाला हूं। जिस तरह चूहा जुलहाके सूतको खा जाता है उसी तरह यह चिन्ता[५] मुझे खा[६] जाती है। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ८

सूर्यके सात रङ्गके किरण सब दूर फैले हुए हैं। इनमें मेरी नाभि भी खुली हुई दिखाई देती है। आप्त्य-त्रिता-को यह बात विदित ही है। अपने सगेसाथीसे वह मिलनेके लिये प्रार्थना करता है। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ९

---

५ अमी ये देवा. दिव त्रिषु रोचने आ स्थन, व ऋतम् कत्, अनृत क्व? व. प्रत्ना आहुति क?

६ व ऋतस्य धर्णसि[२] कत्? वरुणस्य चक्षण कत्? महः अर्यम्णः पथा दूढ्य[३] कत् अति क्रामेम?

७ य पुरा सुते वदानि चित् वदामि स अह अस्मि। त मा, वृक. तृष्णज मृग न, आध्य व्यन्ति[४]।

८ सपत्नी. इव पर्शव. मा अभित. स तपन्ति। शतक्रतो ते स्तोतार मा आध्य[५] शिश्ना[६] न नि अदन्ति।

९ अमी ये सप्त रश्मय तत्र मे नाभिः आतता। आप्त्य त्रित तत् वेद। स जामित्वाय रेभति[१]।

जो पाच बलवान्[8] देव विस्तीर्ण द्युलोकके बीचमें विराजमान् हुए हैं वे मेरी स्तुति सुनकर देवगणकी ओर लौट गये। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १०(२१)

द्युलोकके अन्तिम सीमापर[9] सुन्दर पङ्खोंके किरणरूपी पक्षी विराजमान् हुए हैं। आकाशरूपी विस्तीर्ण उदकके बीचमे तैरनेवाले भेड़ीयोंको वे मार्गसे निकाल देते हैं। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ११

हे देव, यह स्तोत्र भक्तोका कल्याण करनेवाला प्रशंसा करनेयोग्य और बिलकुल नया है। ये महानदिया अपने प्रवाहोंके साथ सत्य और सत्ययुक्त नीतिको दूरतक ले जाती है; और सूर्य (अपने प्रकाशके साथ) सत्यबलको चारो ओर फैलाता है। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १२

हे अग्नि-देव, आप देवोंके सगेदार भाई है। आपकी सब लोक प्रशंसाही करते हैं। जिस तरह आप मनुष्यके यज्ञमे विराजमान[10] होते है उसी तरह हमारे घरमे आप विराजमान् हूजिये। आप प्रज्ञाशील हैं; इसलिये हमारा यज्ञ देवोंकी ओर पहुंचाइये। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १३

सब देवोंमे अग्नि-देव अत्यन्त बुद्धिवान् और प्रज्ञाशील है। जिस तरह मनुके यज्ञमें आप स्थित होते है उसी तरह हमारे घरमे स्थित होकर हमारे हवि देवोंकी ओर पहुंचाईये। क्यो कि, हवि पहुंचानेका[11] काम आपहीका है। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १४

---

१० ये अमी पञ्च उक्षण[8] महः दिवः मध्ये तस्थु प्रवाच्य सध्रीचीनाः देवत्रा नि ववृतुः नु।

११ एते सुपर्णाः दिव आरोधने[9] मध्ये आसते। ते यह्वती अपः तरन्त वृक पथः सेधन्ति।

१२ देवा, तत् उक्थ्य हित सुप्रवाचन नव्य। सिन्धव ऋत अर्षन्ति, सूर्यः सत्य ततान।

१३ अग्ने, देवेषु तव त्यत् उक्थ्य आप्य अस्ति। स विदुष्टरः मनुष्वत् न आ सत्तः[10] देवान् यक्षि।

१४ देवेषु विदुष्टर नेधिर होता अग्नि देव मनुष्वत् आ सत्तः देवान् अच्छ हव्या सुपूदति[11]।

स्तुति ( स्तोत्र ) करनेकी स्फूर्ति वरुण देवही देता है। अच्छा मार्ग[14] बतानेवाले ज्ञानी वरुणकी हम प्रार्थना करते हैं। भक्तोंके हृदयको आपही प्रकट करते हैं। सचमुच नयी नीति ( स्तुति ) का उदय होवे। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये १५(२२)

आकाशमें आदित्यका जो नया मार्ग है वह प्रशंसा करनेयोग्य है। हे देव, आप उस मार्गका उल्लंघन नहीं कर सकते। और मनुष्य उसको देख भी नहीं सकता। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १६

जब त्रित कूवेमें गिरा[13] तब उसने अपनी रक्षाके लिये देवोंको बुलाया। बृहस्पतिने संकटसे[16] उसको बचा लिया, और उसकी प्रार्थना सुनी। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १७

जब मैं मार्गसे चलता था तब एक लाल रंगके भेड़ियाने मुझे देखा और जिसके पीठमें[17] दर्द है ऐसे बढ़ईकी तरह धीरे धीरे[18] उठा और मेरे पीछे चलने लगा। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १८

इस स्तोत्रके द्वारा इन्द्रकी कृपा हमे प्राप्त होवे। उसके कारण हम अपने वीरोंकेसाथ निजको संकटसे बचा लेंगे। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और द्युलोक आदि सब देवताएं हमारी प्रार्थनापर सम्मत्ति देवे। १९ (२३) (१५)

---

१५ वरुण ब्रह्म कृणोति। त गातुविद[14] ईमहे। हृदा मति ऊर्णोति। ऋत नव्य जायतां।

देवा, असौ य आदित्य दिवि पन्था प्रवाच्य कृत स न अतिक्रमे। मर्तास, त न पश्यथ।

१७ कूपे अवहित[13] त्रित ऊतये देवान् हवते। बृहस्पति अहूरणात्[16] उरु कृण्वन् तत् शुश्राव।

१ पथः यन्त मा अरुण वृकः सकृत् ददर्श हि। पृष्ठ्यामयी[17] तष्टा इव निचाय्य[18] उत् जिहीते।

१९ एन, आङ्गूषेण इन्द्रवन्त सर्ववीरा वय वृजने अभि स्याम।

## अनुवाक १६.

### सूक्त १०६.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र ॥

हम अपनी रक्षाके लिये इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, मरुद्गण और अदितिको बुलाते है। हे उदार देव, आप जिस तरह रथको ( गाड़ीको ) बुरे[1] मार्गसे बचा लेते है उसी तरह हमे संकटसे बचाइये। १

हे देव, आपहीके लिये हम यज्ञ करते हैं, इस लिये आप इधर आईये। हे देव, दुष्ट लोगोका नाश करके हमारा कल्याण कीजिये । हे उदार देव, आप प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति है। हे उदार देव, आप जिस तरह रथको ( गाड़ीको ) बुरे मार्गसे बचा लेते हैं उसी तरह हमे संकटसे बचाइये[2]। २

स्तुति करने योग्य हमारे पितर हमारी रक्षा करे। नीतिनियमनसे चलेनेवाली और देवोको जन्मदेनेवाली दोनो देवीएं हमारी रक्षा करे। हे उदार देव, आप प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति है। आप जिस तरह रथको ( गाड़ीको ) बुरे मार्गसे बचा लेते है उसी तरह हमे संकटसे बचाइये। ३

सामर्थ्यवान् पूषा–देव प्रशंसा–योग्य है। आपहीके पास वीर पुरुष रहते है। इसलिये हम आपकी स्तुति करते है। हे उदार देव,–प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति–आप जिस तरह रथको ( गाड़ीको ) बुरे मार्गसे बचा लेते है उसी तरह हमे संकटसे बचाइये। ४

हे बृहस्पति–देव, मनुष्यका कल्याणकारी सौख्य आपहीकेपास है। इसलिये हम आपसे प्रार्थना करते है। हे उदार देव,–प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति–आप जिस तरह रथको ( गाड़ीको ) बुरे मार्गसे बचा लेते है उसी तरह हमे संकटसे बचाइये। ५

---

१ इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि मारुत शर्ध, अदिति, ऊतये हवामहे । सुदानव वसवः, दुर्गात्' रथ न स्वश्वस्मात् अहस नः नि पिपर्तन।

२ आदित्या, सर्वतातये ते आ गत। देवा वृत्रतूर्येषु शभुव. भूत।

३ सुप्रवाचना पितर न अवन्तु, उत ऋतवृधा देवपुत्रे देवी।

४ वाजिन नराशस इह वाजयन् क्षयद्वीर पूषण सुम्नै ईमहे।

५ बृहस्पते, सद इत् नः सुग कधि। यत् ते यो मनुर्हित रा तत् ईमहे।

कूवेमें गिरे हुए कुत्स ऋषिने अपनी रक्षाके लिये वृत्रका वध करनेवाले सामर्थ्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना की । हे उदार देव,–प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति–आप जिस तरह रथको ( गाड़ीको ) बुरे मार्गसे बचा लेते है उसी तरह हमे संकटसे बचाइये । ६

अदिति–देव सब देवोंके साथ हमारी रक्षा करे, और हमारी रक्षा करनेवाला देव हमारी उपेक्षा न करके हमारी रक्षा करें । मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और द्युलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान देवे । ७ (२४)

## सूक्त १०७.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र ॥

यज्ञ देवोंकी कृपा[1] सम्पादन करनेके लिये हमे सिद्धि देनेवाला होवे । हे आदितिदेव. हमे सौख्य अर्पण कीजिये । आपकी कृपासे हमारी रक्षा[2] होती है । इस लिये आप भक्तगणोंपर ( हमपर ) कृपा कीजिये । १

अंगिरसने अपने स्तोत्रोंके द्वारा देवोंकी स्तुति की है । इसलिये वे देव हमपर कृपा करे । इन्द्र–देव, अपने सामर्थ्यकेसाथ मरुत्–देव अपने मरुद्गणोकेसाथ, और अदिति–देव अपने आदित्य गणोकेसाथ हमे सौख्य अर्पण करे । २

इन्द्र–देव हमारी स्तुतिका प्रेमसे स्वीकार करे । वरुण, अर्यमा, सविता, देवभी हमारी स्तुतिका स्वीकार[3] करे । मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और द्युलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान देवे । ३ (२५)

---

६ कर्टे निवाह्ळ: कुत्स. वृत्रहन शचीपति इन्द्र उतये अह्वत् ।

७ देवी अदिति देव न नि पातु । त्राता देव अप्रयुच्छन् त्रायता ।

१ यज्ञ देवाना सुम्न[1] प्रति एति । आदित्यास , मृळयन्त भवत । वा अहो चित् वरिवोवित्तरा[2] असत् सुमति अर्वाची आ ववृत्यात् ।

२ अङ्गिरसा सामभि । स्तूयमाना देवा अवसा न. उप आ गमन्तु । इन्द्रिये इन्द्र, मरुद्भि मरुत, आदित्यै अदिति न शर्म यमत् ।

३ तत् न इन्द्र , तत् वरुण , तत् अग्नि , तत् अर्यमा, तत् सविता चन.[3] धात् ।

## सूक्त १०८.

॥ ऋषी–आंगिरस कुत्स । देवता–इन्द्राग्नी ॥

हे इन्द्र और अग्नि–देव, जिस आश्चर्यकारक रथमें[1] बैठकर आप सब विश्वका अवलोकन करते हैं उस रथमें आप दोनों साथ ही साथ आरूढ होकर यहां आइये और तैयार किये हुए सोमरसका प्राशन कीजिये । १

हे इन्द्र और अग्नि–देव, जिस तरह यह सब जगत विस्तीर्ण रूपसे नीचे[2] तक फैला हुआ है उसी तरह इस सोमरसका आप यथेष्ट प्राशन कीजिये और उससे आपका आनन्द होवे । २

सचमुच आपने अच्छी तरह नाम पाया है । वृत्रका नाश करनेवाले आप (सचमुच) अच्छा काम करनेवाले हैं । इसलिये (इस यज्ञमें) अच्छी तरहसे आप विराजमान् हूजिये । हे सामर्थ्यवान् इन्द्र और अग्नि, आप सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिये सोमरसका पान कीजिये । ३

हे इन्द्र और अग्नि–देव, अग्निको प्रदीप्त करनेके बाद आप अलंकारोंसे विभूषित[3] होते हैं । आपके लिये यज्ञ चमस (हवि अर्पण करनेके लिये) ऊपर उठाया जाता है, और आप दर्भासनपर विराजमान् होते हैं । यह सोमरस तैयार होते ही हम पर कृपा करके इधर आइये । ४

हे इन्द्र और अग्नि–देव, (आजतक) आपने जितना वीरताका काम किया और जिस तरहसे अपना स्वरूप प्रकट किया और प्राचीन कालमें जितना मित्रताका काम किया उन सब (बातों) पर ध्यान देकर सिद्ध किये हुए सोमरसका पान कीजिये । ५ (२६)

---

१ इन्द्राग्नी, यः वां चित्रतमः रथः विश्वानि भुवनानि अभिचष्टे तेन सरथं तस्थिवांसा आ यातं अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं ।

२ इन्द्राग्नी यावत् इदं विश्वं भुवनं उरुव्यचा वरिमता गभीरं अस्ति तावान् अयं सोमः पातवे अस्तु युवभ्यां मनसे अरं अस्तु ।

३ भद्रं सध्र्यक् नाम चक्राथे हि उत वृत्रहणौ सध्रीचीना स्थः वृषणा इन्द्राग्नी, सध्र्यञ्चा निषद्य वृष्णः सोमस्य आ वृषेथां ।

४ इन्द्राग्नी अग्निषु समिद्धेषु आनजाना यतस्रुचा, बर्हिः तिस्तिराणा तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिः, सौमनसाय अर्वाक् आ यातं ।

५ इन्द्राग्नी यानि वीर्याणि चक्रथुः यानि रूपाणि उत वृष्ण्यानि या वां प्रत्नानि शिवानि सख्या, तेभिः सुतस्य सोमस्य पिबतं ।

पहिले पहल जब हम आपके दर्शनकी इच्छा करते हैं और हमारे उपासकोंके द्वारा आपको सोमरस अर्पण किया जाता है तब हमारी सच्ची भक्तिकी ओर ध्यान देकर आपको हमारी ओर आना चाहिये। आप तैयार किये हुए सोमरसका पान कीजिये। ६

हे यज्ञ करने-योग्य इन्द्र और अग्निदेव, जब आप अपने मन्दिरमें अथवा विद्वान् भक्तके घरमें अथवा राजाके यज्ञमें आनन्द मनाते हुए बैठते हैं तब हे सामर्थ्यवान् देव, हमारी ओर यहां आइये और सोमरसका पान कीजिये। ७

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु अथवा पूरुओंके घरमें बैठते हैं तब भी हे सामर्थ्यवान् देव, हमारी ओर आइये और सोमरसका पान कीजिये। ८

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप पृथिवीके नीचेके प्रदेशमें रहते हैं अथवा बीचके प्रदेशमें रहते हैं तब भी हे सामर्थ्यवान् देव हमारी ओर आइये और सिद्ध किये हुए सोमरसका पान कीजिये। ९

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप स्वर्गमें, पृथिवी और पर्वतपर अथवा वनस्पति वा उदकमें रहते हैं तब भी हमारी ओर आइये और सिद्ध किये हुए सोमरसका पान कीजिये। १०

---

६ यत् प्रथम वा वृणानः अत्रव "अय सोम. न. असुरैः' विहव्य.," ता सत्या श्रद्धा अभि आ यात हि।

यजत्रा इन्द्राग्नी, यत् स्वे दुरोणे, यत् ब्रह्माणि राजनि वा मदथ, अत, वृषणौ, परि आ यात हि।

इन्द्राग्नी, यत् यदुषु तुर्वशेषु, यत् द्रुह्युषु, अनुषु, पूरुषु स्थः, अतः, वृषणौ, परि आ यात हि।

९ इन्द्राग्नी, यत् अवमस्या पृथिव्यां, मध्यमस्या उत परमस्या स्थः, अतः, वृषणौ, परि आ यात हि।

१० इन्द्राग्नी, यत् परमस्या पृथिव्या, मध्यमस्या उत अवमस्यां स्थः, अतः, वृषणौ परि आ यात हि।

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप पृथिवीके ऊपरके, बीचके और नीचेके, प्रदेशमें रहते तब भी वहांसे हे सामर्थ्यवान देव, हमारी ओर आइये और सिद्ध किये हुए सोमरसका पान कीजिये । ११

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप सूर्योदयके समय स्वर्गलोकके बीचमें बैठकर आनन्दसे हविका स्वीकार करते है तब हे सामर्थ्यवान् देव, इधर आईये और तैयार किये हुए सोमरसका पान कीजिये । १२

हे इन्द्र और अग्निदेव, इस तरह सोमरसका प्राशन करके हमारे लिये सब वैभव जीत ले आइये । हमारी प्रार्थनापर मित्र, वरुण, तथा आदिति, सिन्धु, पृथ्वि, और द्युलोक ध्यान और सम्मति देवें । १३

## सूक्त १०९.

॥ ऋषि–अङ्गिरस कुत्स । देवता–अग्नि ॥

मनने धनकी इच्छा करके मैं भाई और सगेदारोंको सहायताके लिये ढूंढने[१] लगा । किन्तु हे इन्द्र और अग्निदेव, आपकी इच्छा मुझे अनुकूलही है । इस लिये भक्तिपूर्वक यह स्तोत्र मैं आपके सन्मानार्थ गाता हूं । १

मैंने सुना है कि आप सचमुच साला[२] और गुणहीन जमाईकी अपेक्षा उदारतासे अधिक धन बाटते है । इस लिये हे इन्द्र और अग्नि–देव, आपको सोमरस अर्पण करके मे यह नया स्तोत्र बनाता हूं । २

---

११ इन्द्राग्नी, यत् दिवि स्थः, यत् पृथिव्या, यत् पर्वतेषु, ओषधीषु, अप्सु, अतः, वृषणौ परि आ यात हि

१२ इन्द्राग्नी, सूर्यस्य उदिता यत् दिवः मध्ये स्वधया मादयेथे, अतः, वृषणौ, परि आ यातं हि ।

१३ इन्द्राग्नी, एव सुतस्य पपिवांसा अस्मभ्यं धनानि सजयत ।

१ इन्द्राग्नी, मनसा वस्यः इच्छन् ज्ञासः[१] उत वा सजातान् वि अख्य हि । युवत् प्रमतिः मह्य अन्या न अस्ति । सः वाजयन्तीं धियं वां अतक्षम् ।

२ स्यालात् उत वा विजामातुः घ वा भूरिदावत्तरा अश्रव हि । अध, इन्द्राग्नी, युवभ्यां सोमस्य प्रयती नव्यं स्तोमं जनयामि ।

इन्द्र और अग्निकी कृपाके कारणही सामर्थ्यवान् पुरुष अपने वंशका[3] नाश न होनेकी प्रार्थना करते है, और अपने वंशकी, सन्ततिकी वृद्धिकी इच्छा करते हैं। (इसका उदाहरण देखिये) सोमरस तैयार करनेके लिये लाये हुए पाषाण (पत्थर) पासही रखे हुए (दिखाई) देते है। ३

हे इन्द्र और अग्नि-देव, यह दिव्य सोमरसपात्र आपको सन्तुष्ट करनेके लिये बड़े आनन्दसे सोमरस निकालकर स्वयं धारण करता है। हे अश्विनी-देव, आपके मङ्गलदायक और सुन्दर हाथ आगे करके बड़े जोरके साथ हमारी ओर दौड़िये। जलमे सोमरस रखकर उसके ऊपर मधुकी वर्षा कीजिये। ४

हे इन्द्र और अग्नि-देव, मैंने यह सुना है कि दुष्ट लोगोंका नाश करनेके काममें और धन अर्पण करनेके अवसरपर आप (सबसे) अधिक अधिकार[4] चलाते हैं। हे बहुत जगह सञ्चार करनेवाले देव, इस यज्ञमे कुशासनपर बैठकर सोमरससे सन्तुष्ट हूजिये। ५ (२८)

हे इन्द्र और अग्नि-देव, युद्धके लिये बुलानेवाले[5] पुरुषोंकी अपेक्षा, पृथ्वि द्युलोक, महानदी, पहाड़ोंकी अपेक्षा और बचे हुए सब दूसरे लोगोंकी अपेक्षा आप श्रेष्ठ हैं। ६

हे इन्द्र और अग्नि-देव, आपके बाहु वज्रकी तरह मज़बूत हैं। हमारी उन्नति कीजिये, हमे सिखलाइये, और अपने सामर्थ्यसे हमारी रक्षा कीजिये। सचमुच वे, येही सूर्यके किरण है जिनके स्वरूपमे[7] हमारे बाप दादा जा मिले (मग्न हुए)। ७

---

३ रश्मीन्[3] मा छेद्य इति नाधमानाः पितृणा शक्तीः अनुयच्छमानाः वृषणः इन्द्राग्निभ्या क मदन्ति। ता हि अद्री धिषणायाः उपस्थे।

४ इन्द्राग्नी, देवी धिषणा युवाभ्यां मदाय उशती सोम सुनोति। अश्विना, तौ भद्रहस्ता सुपाणी आ, अप्सु मधुना पृक्त।

५ इन्द्राग्नी, वृत्रहत्ये, वसुनः विभागे, युवां तवस्तमा[4] शुश्रव। प्र चर्षणी, तौ अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि आसद्य तस्य मादयेथा।

६ इन्द्राग्नी, पृतनाहवेषु[5] चर्षणिभ्य[5], पृथिव्याः, दिवः च प्र रिरिचाथे। महित्वा सिन्धुभ्यः प्र, गिरिभ्यः प्र, अन्या विश्वा भुवना अति।

७ वज्रबाहू इन्द्राग्नी, अस्मान् आ भरत, शिक्षतं, शचीभिः अवत। इमे नु ते सूर्यस्य रश्मय, येभिः नः पितरः सपित्व[7] आसन्।

शत्रुओंके नगरोंका नाश करनेवाले और ( हाथोंमे ) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र–देव, हमे अच्छा मार्ग बताइये, हमारे हवियोका स्वीकार कीजिये और हमारी रक्षा कीजिये। हमारी प्रार्थनापर मित्र, वरुण तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक सम्मति देवे। ८(२९)

## सूक्त ११०.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र ॥

मेरा ( नियुक्त ) हुआ काम[1] समाप्त हुआ । वह काम मै फिर करता हूं । ( देखिये ) ऋभुओका सन्मान् करनेके लिये मै मधुर स्तुति गाता हूं। सब देवोंके उद्देश्य ( सोमरसका ) समुद्र भरा हुआ रखा है। हे ऋभुओ, "स्वाहा" शब्दका उच्चारण करके अर्पण किये हुए सोमरसका पान करके सन्तुष्ट हूजिये। १

जब अज्ञानसे मुक्त[2] हुए मेरे पुराणे सगेदार भाईयोने हवियोंकी इच्छा[3] की तब वे उसको ( प्राप्त करनेका ) उद्योग करने लगे। उस समय सुधन्वाके पुत्र अपने पराक्रम और श्रेष्ठताके कारण सविता देवके रथमे जा सके। २

जिस सविता देवका यश गुप्त नही रह सकता उस ( देवता ) का वर्णन करनेका परिश्रम जब आप करते हैं तब सवितादेव आपको अमरत्व अर्पण करते है। उदार ( त्वष्टा ) देवका पीनेका जो रस था उसके आपने चार विभाग ( चमस ) बनाये। ३

सत्कर्मोंका उत्साहसे आचरण करनेवाले और देवोकी[4] उपासना करनेवाले ( ऋभु ) मनुष्य होनेपर भी अमरत्वको जा पहुंचे । सुधन्वाके पुत्र ऋभु, सूर्यका दर्शन मिलने योग्य हुए। उनकी योग्यता एक वर्षमे इतनी बढ़ गयी कि सब लोग उनकी स्तुति गाने लगे। ४

---

८ पुरदरा इन्द्राग्नी, अस्मान् शिक्षत, भरेषु अवतं ।

१ मे अप[1] तत तत् ऊ पुनः तायते । स्वादिष्ठा धीतिः उचथाय शस्यते । अय इह विश्वदेव्यः समुद्रः, ऋभव स्वाहाकृतस्य स तृप्णुत ऊ ।

२ यत् अपाकाः,[2] मम के चित् आपयः, प्रांचः आभोगय[3] इच्छतः प्र ऐतन, सौधन्वनासः, चरितस्य भूमना, दाशुष सवितु गृह अगच्छत ।

३ यत् अगोह्य श्रवयन्त ऐतन तत् सविता वः अमृतत्व आ असुवत् । त्य चित् असुरस्य भक्षण चमस एक सन्त चतुर्वय अकृणुत ।

४ शमी तरणित्वेन विष्टी[4] वाघत. मर्तासः सन्तः अमृतत्व अनशु सौधन्वनः सूरचक्षस ऋभव सवत्सरे धीतिभि स अपृच्यन्त ।

देव समुदायमें अपनी कीर्ति बढ़ानेकी इच्छा करनेवाले और उत्कृष्ट यश[५] प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले ऋभुओंकी मनुष्यजातिने स्तुति की। जिस तरह खेतका क्षेत्र नापा जाता है उसी तरह ऋभुओंने अपने तेज़ हथियारसे[६] खुला हुआ यज्ञपात्रका मुख[७] नाप लिया।५(३०)

ऋभुओंकी श्रेष्ठतापर ध्यान देकर अन्तरिक्षमें रहनेवाले वीरोंको हम जिसतरह चमसोंसे घी अर्पण करते हैं उसी तरह स्तोत्र[८] अर्पण करेंगे। अपने प्राचीन श्रेष्ठ पितरोंके साथ अपने उत्साहकारी कार्योंके कारण वे जा मिले। उन्हें सामर्थ्य प्राप्त हुआ और वे दिव्य रजोलोकमें विराजमान् हुए। ६

ऋभुही अपने सामर्थ्यके कारण स्फूर्ति पाया हुआ हमारा इन्द्र है। ऋभुही अपनी शक्ति और सम्पतिके कारण हमारा उदार दाता हुआ है। हे देव, आपकी कृपाके कारणही एकआध अनुकुल दिनपर भक्तिहीन लोगोंकी सेनापर[९] हम विजय पावेंगे। ७

हे ऋभु, केवल चर्मसेही आपने सचमुच एक नयी गौ उत्पन्न की; और उसकी उसके बछड़ेके साथ भेट करवाई। हे सुधन्वाके पुत्र, आपने आश्चर्यकारक कामके कारण अपने बुढ़े मातापितरोंको जवान बनाया। ८

इन्द्र, पराक्रमसे लाभ होनेकी जहां सम्भावना हो ऐसे युद्धमें अपने सामर्थ्यसे हमारी रक्षा[१०] कीजिये। (हे इन्द्र,) आप ऋभुओंके साथ आकर हमें आश्चर्यकारक सौख्य प्रदान कीजिये। हमारी इस प्रार्थनापर मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक ध्यान और सम्मति देवें। ९ (३१)

---

५ अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः उपम नाधमाना . उपस्तुता ऋभवः तेजनेन एक जेहमान पात्र क्षेत्र इव वि ममु।

ये ऋभव अस्य पितु सश्चिरे, वाज, दिव रज अरुहन्, अन्तरिक्षस्य नृभ्य, स्रुचा इव घृत मनीषा, आ जुहवाम।

ऋभु न शवसा नवीयान् इन्द्र, ऋभु वाजेभि वसुभि वसु ददि देवाः, अवसा प्रिये अहनि नता पृत्सुती अभि तिष्ठेम।

८ ऋभव, चर्मण गा नि अपिशत, वत्सेन मातर पुन स असृजत। सौधन्वनास नर, स्वपस्यया जिव्री पितरा युवाना अकृणोतन।

९. इन्द्र, वाजसातौ वाजेभि न अविड्ढि, ऋभुमान् चित्र राध आ दर्षि।

## सूक्त १११.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र ॥

ऋभुओं, आप ज्ञानी[1] होनेके कारण चतुर बन गये हैं। इन्द्रके लिये आपने सुन्दर रथ और वेगवान् अश्व उत्पन्न किये। आपने अपने (बुड्ढे) मातापितरोंको नयी आयु प्रदान करके जवान बनाया और बछडेके लिये हमेशा पास रहनेवाली माता उत्पन्न की। १

हे ऋभुओं, आप सामर्थ्यवान् हैं; इसलिये यज्ञ याग करनेके लिये हमें आयु[2] प्रदान कीजिये। हमे ऋभवान् तथा पराक्रमी बनानेके लिये उत्कृष्ट सन्तति और यथेष्ट अन्न प्रदान कीजिये। अपने वीर पुरुषोंके साथ इस जगतमें आनन्दसे रहनेके लिये हमारी सेनामें स्फूर्ति (बल) उत्पन्न कीजिये। २

हे ऋभुओं, हमारी उन्नति कीजिये। हमारे रथोंकी और अश्वोंकी संख्या बढ़ाइये। युद्धमें हमें ऐसा यश प्राप्त होवे जिससे हमारे साथ हमारे शत्रु और हमारे अप्रिय सगेदार युद्धमें यदि सामने खड़े हो तो उनका भी पराजय[3] होवे। ३

ऋभुओंका स्वामी इन्द्र, ऋभु, तथा वाज, मरुत् दोनों मित्र और वरुण और दोनों अश्विनी देवोंको सोमपान कराके हमारी रक्षा करनेके लिये हम बुलाते हैं। ४

ऋभु हमारा ऐसा लाभ[4] करा दे जिससे हमें हवि अर्पण करनेका सामर्थ्य प्राप्त होवे। युद्धमें विजय पानेवाले वाज भी हमारी रक्षा करे। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथ्वि और द्युलोक हमारी प्रार्थनापर (ध्यान देकर) सम्मति देवे। ५ (३२)

---

१ विद्मनापसः, सुवृत रथ तक्षन्; इन्द्रवाहा, वृषण्वसू हरी तक्षन्। ऋभवः, पितृभ्यां युवत् वयः तक्षन वत्साय सचाभुवं मातरं तक्षन्।

२ यज्ञाय नः ऋभुमत् वयः आ तक्षत, क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीं इषं। यथा सर्ववीरया विशा क्षयाम तत् नः शर्धाय इन्द्रियं सु धासथ।

३ नरः ऋभवः, अस्मभ्यं साति, रथाय साति, अर्वते साति आ तक्षत। पृतनासु जामिं अजामिं सक्षणि जैत्रीं साति नः स महेत।

४ ऊतये ऋभुक्षणं इन्द्रं, ऋभून्, वाजान्, मरुतः, उभा मित्रावरुणा, अश्विना सोमपीतये नः आ हुवे। ते नः सातये, धिये, जिषे नः हिन्वन्तु।

५ ऋभुः भराय साति सं शिशातु। समर्यजित् वाजः अस्मान् अविष्टु।

## सूक्त ११२.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–द्यावापृथिवी अग्नि अश्विन ॥

द्युलोक और भूलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान[1] देवें, इस लिये हम उनकी स्तुति करते है। वह सुन्दर और देदीप्यमान् अग्नि हमारी इच्छा पूरी करें; इस लिये हम उनकी स्तुति करते है। हे अश्विन्, जब आपकी स्तुति[2] करनेवाले लोग आपको सोमरस अर्पण करते है तब आप[3] अपने सामर्थ्यसे उनकी रक्षा करते है। उस सामर्थ्यके साथ आप हमारी ओर आइये। १

भक्तजन आपका स्मरण करके आपको सोमरस अर्पण करते हैं; इस लिये आप उनको अपनी उदारता दिखाकर धन दीजिये; मानो, वे आपकी राह[4] जो रहे है और इसी लिये वे आपके रथके पास इकट्ठे हुए हैं। हे अश्विनीदेव, अपने (भक्तोंकी) इच्छा पूर्ण करनेके लिये आप उनको ऐसे सामर्थ्य प्रदान कीजिये जिससे वे अपनी रक्षा कर सकें और अपने काममे लगें। उसी सामर्थ्यके साथ आप हमारी ओर आइये। २

आपका तेज दिव्य और अमर होनेके कारणही आप नये उत्साहके साथ सब लोगोंपर अधिकार चला सकते हैं। हे शूर अश्विन, आपने जिस सामर्थ्यसे (भक्तजनो)की रक्षा की उसी सामर्थ्यसे वन्जर[5] गौके स्तनमे दूध उत्पन्न करते है। उन सामर्थ्योंके साथ आप हमारी ओर आइये। ३

जिस सामर्थ्यसे[6] आपने चारो ओर सञ्चार करनेवाले और दो माताओंसे जन्म पाये हुए दोनो पुरुषोको (वायु और अग्निको) शीघ्रगामी और सामर्थ्यवान् वनाया और जिस सामर्थ्यसे त्रिमन्तुको ज्ञानी और वलवान् वनाया ऐसे सामर्थ्यके साथ हे अश्विन, आप हमारी ओर आइये। ४

जिन् सामर्थ्योंसे आपने वन्धनमे[7] फँसे[8] हुए रेभको मुक्त किया, पानीमे गिरे हुए वन्दनको पानीके वाहर निकाल कर उसको प्रकाश दिखलाया और आपके चिन्तनमे मग्न हुए की रक्षा की, ऐसे सामर्थ्योंके साथ हे अश्विनिदेव, आप हमारी ओर आइये। ५ (३३)

१ पूर्वचित्तये[1] द्यावापृथिवी, धर्मं सुरुच अग्नि यामन् इष्टये, ईळे। अश्विना, याभि भरे कार[2] अशाय[3] जिन्वथ ताभि. ऊतिभि सु आ गत। २ युवो दानाय सुभरा असश्चत.[4] वचग न रथ मन्तवे आ तस्थु अश्विना, याभिः इष्टये कर्मन् धिय अवथ ताभि ऊतिभि सु आ गत। ३ दिव्यस्य अमृतस्य मज्मना तासा विशा प्रशासने युव क्षयथ नरा अश्विना, याभिः अरव[5] धेनु पिन्वथः ताभि ऊतिभि. सु आ गत। ४ याभि परिज्मा द्विमाता तनयस्य मज्मना तूर्षु तरणि विभूषति, याभिः त्रिमन्तु विचक्षणः अभवत् ताभि ऊतिभि अश्विना, सु आ गत। ५ अश्विना, याभि निवृत[7] सिन[8] रेभ व दन अदभ्य दृशे उत् ऐरयत, यानि. प्र सिपासन्त कण्वम् आवत ताभि. ऊतिभि. सु आ गत।

जिन सामर्थ्योंसे चलते चलते[1] थके[2] हुए अन्तकको आप उत्साहित करते हैं, दुःखसे मुक्त करके भुज्यूको उत्साह दिलाते हैं, और कर्कन्धु और वय्यको आनन्द दिलाते है, ऐसे सामर्थ्योंके साथ हे अश्विनीदेव, हमारे यहा आइये। ६

जिन भक्तगणोंकी रक्षा करनेवाले सामर्थ्योंसे आपने शुचन्तिको धनसे भरा हुआ गृह[3] अर्पण किया, जिन सामर्थ्योंके कारण आपने अत्रिका दाह (गर्मी) शान्त किया, और जिन सामर्थ्योंसे आपने पृश्निगु और पुरुकुत्सकी रक्षा की, उन सामर्थ्योंके साथ हे अश्विनीदेव, आप यहा आइये। ७

जिन भक्तगणोंकी रक्षा करनेवाले सामर्थ्योंसे आपने अंधे और लङ्गड़े[4] परावृजको देखनेकी और चलनेकी शक्ति प्रदान की और जिन सामर्थ्योंके कारण आपने अन्तरिक्षमे उड़नेवाले (चिड़िया) पक्षीको नाश करनेवाले प्राणियोंसे बचा लिया उन सामर्थ्योंके साथ हे अश्विनीदेव, आप यहा आइये। ८

जिन भक्तगणोंकी रक्षा करनेवाले सामर्थ्योंसे आपने नदीयोमें पूरा पूरा मधुर जल भर[5] दिया, जिनसे आपने वसिष्ठकी उन्नति की, और जिनसे आपने कुत्स्य, श्रुतर्य और नर्यकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ हे अश्विनीदेव, आप यहा आइये। ९

जिन भक्तगणोंकी रक्षा करनेवाले सामर्थ्योंसे आपने अथर्वकुलमें उत्पन्न हुए धनवान् विश्पलकी भयङ्कर युद्धमे (जिसमे सैकड़ो मनुष्य मरते है) रक्षा की, और जिन सामर्थ्योंसे, आपसे प्रेम[6] करनेवाले अश्वकुलमें उत्पन्न हुए पुरुषोंकी आपने रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये। १० (३४)

---

६ याभि आअरणे[1] जसमान[2] अन्तक, याभिः अव्यथिभिः भुज्यु जिजिन्वथुः, याभि कर्कंधु वय्य च जिन्वथ ताभि. ऊतिभि, अश्विना सु आ गत।

७ याभि शुचन्ति धनसा सुषसद,[3] तप्त घर्म अत्रये ओम्यावन्त, याभिः पृश्निगु पुरुकुत्स आवत ताभि. ऊतिभि, अश्विना, सु आ गत।

८ वृषणा अश्विना, याभि. शचीभि अन्ध श्रोण[4] परावृज चक्षसे एतवे कृथ, याभि ग्रसिता वर्तिका अमुचत ताभि ऊतिभि सु आ गत।

९ याभि मधुमत सिन्धु असश्चत,[5] अजरौ, याभि. वसिष्ठ अजिन्वत, याभिः कुत्स श्रुतर्य नर्य आवत, ताभि ऊतिभि, अश्विना, सु आ गत।

१० अथर्व्य धनसा विश्पला याभि. सहस्रमीळ्हे आजौ अजिन्वत, प्रेणि[6] अश्व्य वश याभि आवत ताभि ऊतिभि, अश्विना, सु आ गत।

हे उदार अश्विनीदेव, जिन भक्तरक्षक सामर्थ्योंसे आपने उशीजकुलम उत्पन्न हुए दीर्घश्रवाका व्यापार बढ़ानेके लिये मेघोसे मधुर ( जलोकी ) वृष्टि कराई, और जिन सामर्थ्योंसे आपकी स्तुति करनेवाले कक्षीवानोंकी रक्षा की, उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आगमन कीजिये । ११

हे अश्विनीदेव, जिन भक्त रक्षक सामर्थ्योंसे आपने रसा नामके नदीको जलप्रवाहसे बढ़ा दिया, जिन सामर्थ्योंसे बिना अश्वके जोते हुए रथकी विजय कराके आपने रक्षा की, और जिन सामर्थ्योंके कारण त्रिशोक अपने गौको अपने घर ले जा सका उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये । १२

हे अश्विनीदेव, जिन ( भक्तगण ) रक्षक सामर्थ्योंके कारण आप दूरके प्रदेशमे भी सूर्यको चारो ओर घुम सकते हैं, जिन सामर्थ्योंके कारण जमीन का स्वामी बननेका यत्न करनेवाले मन्धाताकी रक्षा आप कर सकते है, और जिन ( सामर्थ्यों ) के कारण विद्वान् भारद्वाजकी आप रक्षा करते है उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये । १३

हे अश्विनीदेव, जिन ( भक्तगण रक्षक ) सामर्थ्योंके कारण आपने शम्बरका वध करनेके समय श्रेष्ठ आतिथिग्वो, कशोजु और दिवोदासकी रक्षा की, और जिन सामर्थ्योंके कारण ( शत्रुओं ) के नगरोका नाश करनेवाले त्रसदस्युकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये । १४

हे अश्विनीदेव, जिन ( भक्तगण रक्षक ) सामर्थ्योंके कारण आपने सोमरसका पान करनेवाले वम्र, उपस्तुत और स्त्रीका लाभ करानेवाले कलिका सन्मान किया, और जिन सामर्थ्योंके कारण आपने व्यश्व और पृथिकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये । १५ (३५)

---

११ सुदानू अश्विना, याभि औशजाय दीर्घश्रवसे वणिजे कोश मधु अक्षरत्, याभिः स्तोतार कक्षी । अवत ताभि , ऊतिभि , अश्विना, सु आ गत ।

१२ अश्विना, यानि उद्र क्षोदसा रसा पिपिन्वथु , याभि. अनश्व रथ जिषे आवत, याभि त्रिशोक स्त्रिय उदाजत, ताभि ऊतिभि सु आ गत ।

१३ अश्विना, याभि परावति सूर्य परियाथ , क्षेत्रपत्येषु मधातार आवत, याभिः विप्र भरद्वाज प्र आवत ताभि ऊतिभि सु आ गत ।

१४ अश्विना, याभि शम्बरहत्ये मह्रा अतिथिग्व, कशोजुव, दिवोदास आवत, याभि पूर्भिद्ये त्रसदस्यु आवत, ताभि ऊतिभि सु आ गत ।

१५ अश्विना यानि विपिपान वम्र, उपस्तुत, वित्तजानि' कलि दुवस्यथ , याभि व्यश्व उत पृथि आवत, ताभि ऊतिभिः सु आ गत ।

हे पराक्रमी अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण आपने पुराने समयमे शयु, अत्रि और मनुकी उन्नति करनेकी इच्छा की, और जिन सामर्थ्योंसे आपने स्यूम-रश्मीके लिये बाण[८] चलाये उन सामर्थ्योंके साथ आप हमारे यहा आइये। १६

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण प्रज्वलित अग्निकी नाई पठर्वा मार्गसे[९] चलता हुआ अपने बड़े शरीरके कारण देदीप्यमान दिखने लगा, और जिन सामर्थ्योंके कारण आपने बड़ बड़े युद्धमेभी शर्याताकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप हमारे यहा आइये। १७

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण अङ्गिरसोंकी स्तुतियोंसे सन्तुष्ट[१०] हुए आपने गुहामे बन्धे हुए गौओंको सबसे आगे होकर मुक्त किया, और जिन सामर्थ्योंके कारण पराक्रमी मनुको अन्न देकर आपने उसकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये। १८

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण आपने विमदाको भार्या दिला दी, जिन सामर्थ्योंके कारण आपने लाल रङ्गकी धेनुओंको अपनी आज्ञा माननेको सिखलाया, और जिन सामर्थ्योंके कारण सुदेव्यको सुदासकी ओर आप ले गये उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये। १९

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण हवि अर्पण करनेवाले भक्तोका आप कल्याण[११] करते हैं, जिन सामर्थ्योंसे भुज्यु और आध्रिगुकी आप रक्षा करते हैं, और जिन सामर्थ्योके कारण आप हवि अर्पण करनेवाले ऋतस्तुभको आनन्द दिलाते है उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये। २० (३६)

---

१६ नरा अश्विना, याभि पुरा शयवे, याभि अत्रये, याभि. मनवे गातु ईषथु, याभि. स्यूमरश्मये शारी.[८] आजत, ताभि ऊतिभि सु आ गत।

१७ अश्विना. याभि पठर्वा जठरस्य मज्मना अज्मन्[९] चित इद्ध अग्नि न अदीदेत्, याभि. महाधने शर्यात अवथ· ताभि ऊतिभि सु आ गत।

१८ अश्विना, याभि अङ्गिर मनसा निरण्यथः,[१०] गोअर्णस विवरे अग्र गच्छथः, याभि· शूर मनु इषा समावत ताभिः ऊतिभि. सु आ गत।

१९ अश्विना, याभि विमदाय पत्नी नि ऊहथु, याभि. वा घ अरुणी. अशिक्षत, याभि सुदेव्य सुदासे ऊहथु ताभि. ऊतिभि सु आ गत।

२० अश्विना, याभि ददाशुषे शताती[११] भवथः, याभि. भुज्यु, याभिः अध्रिगु अवथः, याभि. सुभरा ऋतस्तुभ ओमावतीं, ताभि ऊतिभि. सु आ गत।

हे अश्विनीदेव, जिन ( भक्तगण रक्षक ) सामर्थ्योंके कारण आपने बाण चलाते समय[1] कृशानुकी प्रशंसा करवाई, जिन सामर्थ्योंके कारण अश्वपर बैठकर दौड़नेवाले युवाकी आपने रक्षा की और जिन सामर्थ्योंके कारण आप भ्रमरको मधुर रस पिलाते हैं उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये। २१

हे अश्विनीदेव, जिन ( भक्तगणरक्षक ) सामर्थ्योंके कारण युद्धमें धेनु, भूमि और सन्ततिके लाभ इच्छा करनेवाले वीरोंकी आपने उन्नति की, और जिन सामर्थ्योंके कारण आप रथ और अश्वकी रक्षा करते हैं उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये। २२

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंसे अर्जुनीका पुत्र कुत्स्य, तुर्वीति और दभीतिकी आपने रक्षा की, और जिनके कारण ध्वसन्ति और पुरुपन्तिकी भी आपने रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये। २३

हे शत्रुओंका नाश करनेवाले पराक्रमी अश्विनीदेव, हमपर कृपा करके हमारी स्तुति और प्रार्थना सफल[13] कीजिये। सूर्यप्रकाश[16] चारों ओर फैलनेके पहले हम अपनी रक्षाके लिये आपकी प्रार्थना करते हैं। इसलिये आप हमे सामर्थ्य अर्पण करके हमारी उन्नति कीजिये। २४

हे अश्विनीदेव, हमारे आनन्दमे बाधा[15] न डालिये और रातदिन हमारी रक्षा कीजिये। इस प्रार्थनापर मित्र, वरुण, अदिति, तथा सिन्धु, पृथ्वि और द्युलोक सम्मति देवे। २५ (३७)

---

२१ अश्विना, याभि: असने[11] कृशानु दुवस्यथ, याभि: यून अर्वंत जवे आवत, यत सरड्भ्य: प्रिय म..य ताभि ऊतिभि सु आ गत।

२२ अश्विना, याभि: गोपुयुध नर नृषाह्ये क्षेत्रस्य तनयस्य साता जिन्वथ:, याभि: रथान्, याभि: अर्वत अवथ ताभि ऊतिभि सु आ गत।

२३ शतक्रतू अश्विना, याभि: आर्जुनेय कुत्स, तुर्वीति, दभीति प्र आवत, याभि: ध्वसति पुरुषं आवत, ताभि: ऊतिभि: सु आ गत।

२४ दस्रा वृषणा अश्विना, अस्मे न वाच मनीषा अप्नस्वतीं[11] कृत, अक्तुये[11] अवसे वा नि ह्वये वाजसाते न वृधे च भवत।

२५ अश्विना, अरिष्टेभि[11] सौभगेभि द्युभि अक्तुभि अस्मान् परिपात।

# अध्याय ८.



## सूक्त ११३.

॥ ऋषि–आङ्गिरसः कुत्स । देवता–उषा ॥

सब तेजोंमें जो श्रेष्ठ तेज है वह तेज प्रकट हुआ है। आश्चर्यकारक और सर्व व्यापी प्रकाशका[1] उदय हुआ है। सविता देवको उत्पन्न[2] करनेके लिये (उषा) देवी प्रकट हुई है और इसी लिये रात्रीने अपनी जगह खाली छोड़ दी है। १

अपने सफ़ेद (शुभ्र) रङ्गके बछेको लेकर शुभ्र और देदीप्यमान् (उषा) प्रकट हुई है। काले रङ्गकी रात्रीने अपनी सब जगह छोड़ (उषा) के लिये सब जगह खाली की है। एक दूसरीका अनुकरण[3] करनेवाली (उषा और रात्री)—दोनोका अधिकार एकसा होनेपर भी—जगतका रङ्ग उलट पुलट कर देती है। आप दोनो आकाश मार्गमें सञ्चार करती है। २

दोनों बहिनोंके कई मार्ग हैं। देवोंकी आज्ञाको मानकर बताये हुए मार्गसे वे बारी बारीसे सञ्चार करती है। स्वरूपमें भिन्न किन्तु एकमतसे चलनेवाली सुन्दर[4] उषा और रात्री किसी जगह ठहरकर आराम नहीं करती। ३

देदीप्यमान्, सुन्दर, सत्यकी ओर ले जानेवाली और आश्चर्यकारक उषा प्रकट होकर दिखाई देने लगी। आपने ही हमारे घरका दरवाजा खोल दिया। आपने ही सब लोगोको उद्योगके लिये प्रवृत्त[5] किया। आपने ही हमारे लिये वैभव प्राप्त करनेका दरवाज़ा खोल दिया और आपने ही सब प्राणियोको जगाया। ४

---

१ इदं ज्योतिषां श्रेष्ठं ज्योतिः आ अगात्। चित्रः विभ्वा प्रकेतः[1] अजनिष्ट। यथा सवितुः सवाय[2] एव प्रसूता रात्री उषसे योनिं अरैक्।

२ रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्या आ अगात्। कृष्णा अस्याः सदनानि अरैक् उ। समानबन्धू अनूची[3] अमृते वर्णं आ मिनाने द्यावा चरतः।

३ स्वस्रोः अध्वा समानः अनन्तः। देवशिष्टे तं अन्यान्या चरतः समनसा विरूपे सुमेके[4] नक्तोषसा न मेथेते, न तस्थतुः।

४ भास्वती, सूनृतानां नेत्री चित्रा अचेति। नः दुरः वि आवः। जगत् प्रार्प्या नः रायः वि अख्यत्। उषा विश्वा भुवनानि अजीगः।

उषाने सब प्राणियोंको जगाया है । इधर उधर सोये हुए प्रवासी लोगोंको मार्ग बतानेके लिये, अच्छी अच्छी वस्तुओंका लाभ करानेके लिये, इष्ट वस्तुएं और धन प्राप्त होनेका प्रयत्न करानेके लिये और अन्धेको दृष्टि दिलानेके लिये उषादेवी प्रकट हुई है। ५ (१)

उषा सब प्राणियोंको इसलिये जागृत करती है कि वे सामर्थ्य प्राप्त करनेका प्रयत्न करें, कोई कीर्ति कमानेका प्रयत्न करे, कोई अपना उद्देश सिद्ध करनेका प्रयत्न करे, कोई अपनी इच्छा पूरी करनेका प्रयत्न करे, और इस तरह सब लोगोंको अपने अपने उदरपोषणका मार्ग दिखा देवें। ६

सफेद वस्त्र पहनी हुई और पृथ्विपरके सब वैभवपर अधिपत्य चलानेवाली देदीप्यमान द्युलोककन्या (उषा) प्रकट (दृग्गोचर) हुई है । हे कल्याणकारी उषादेवी, आज यहां आकर अपना उज्वल प्रकाश फैलाइये। ७

अपना उज्वल प्रकाश सब दूर फैलाती हुई, सब प्राणियोंको अपने अपने काममें लगाती हुई, (बिछानेपर) मृतवत् पड़े हुए (मनुष्य) को जागृत करती हुई यह उषा धीरे धीरे आगे चलकर पिछली उषाओंका अनुकरण करती है। ८

हे उषादेवी, आपहींने अग्निको प्रदिप्त करनेके लिये उसको सिद्ध किया, आपहींने सूर्यके नेत्रोंके द्वारा सब जगतको प्रकाशित किया; आपहींने यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको जागृत किया; इस तरह आपने देवोंकी और बड़े उपकारका काम किया। ९

---

५ जिह्मश्ये चरितवे, मघोनी आभोगय इष्टये राये, दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥

६ क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै, विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ।

७ शुक्रवासा, विश्वस्य पार्थिवस्य वस्व ईशाना, व्युच्छन्ती युवतिः एषा दिवः दुहिता प्रति अदर्शि। सुभगे उषः, अद्य इह व्युच्छ ।

८ व्युच्छन्ती, जीवं उदीरयन्ती, मृतं कंचन बोधयन्ती, शश्वतीनां आयतीनां प्रथमा उषा परायतीनां पाथः अनु एति ।

९ उषः, यत् अग्निं समिधे चकर्थ, यत् सूर्यस्य चक्षसा वि आवः, यत् यक्ष्यमाणान् मानुषान् अजीगः, तत् देवेषु भद्रं अप्नः चकर्षे ।

हरएक उषा–जो उषाएं पहिले प्रकाश फैलाकर चली गयी और जो उषाएं आगे प्रकाश फैलानेके लिये आनेवाली है–उपर्युक्त उषाओंका अनुकरण करती है। उनमेसे हरएक उषा पहिले गयी हुई उषाके सम्बन्धमे दु.ख मनाती है और अपना प्रकाश[१] फैलाकर आगे आनेवाली उषाके साथ चली ( मिल ) जाती है। १० (२)

प्राचीन कालमे जिन लोगोने प्रकाशित होती हुई उषाको देखा था वे ( मानव ) चले गये। यह उषा अब हमे दिखाई देती है। आगे आनेवाले लोग भी प्रकाशित होनेवाली उषाको देखकर चले जायेगे। ११

दुष्ट लोगोका नाश करनेवाली, सत्यकी रक्षा करनेवाली, सत्यको उत्पन्न करनेवाली, मधुर रीतिसे सत्य बोलनेवाली, कल्याण करनेवाली, और देवोको हवि पहुंचानेवाली, हे सबसे श्रेष्ठ उषादेवी, आप अपना प्रकाश यहा फैलाइये। १२

हे उषादेवी, प्राचीन कालसे आप प्रकाशित होती चली आई है। उस उदार देवीने अब भी अपना प्रकाश सब दूर फैलाया है। और इसके अनन्तर भी वह देवी अपना प्रकाश फैलावेगी। उषादेवी कभी बुढ्ढी नहीं होगी और उसको कभी मृत्यु नहीं आती। वह देवी अपने मार्गसे गमन करती है। १३

अपने अलंकारोसे भूषित हुई उषादेवी द्युलोकके विस्तीर्ण प्रदेशमे प्रकाश फैलाती है। इस देवीने ( जगत्का ) काला देह सफ़ेद किया है। अपने लाल रङ्गके अश्वोके द्वारा वह सबको जगाती है और अपने सजे हुए रथमे बैठकर चली आती है। १४

---

१० या व्यूषु, या च नून विउच्छान् कियति यत् समया आ भवाति[२] वावशाना पूर्वा अनु कृपते, प्रदीध्याना[१] अन्याभि जोष एति।

११ ये मर्त्यास पूर्वतरा उषस व्युच्छन्तीं अपश्यन् ते ईयु। अस्माभि ऊ प्रतिचक्ष्या अभूत् नु। ये अपरीषु पश्यान् त यन्ति।

१२ उष, यवयद्द्वेषा:, ऋतपा, ऋतेजा, सुम्नवरी, सूनृता ईरयन्ती सुमगली[१], देववीति विभ्रती श्रेष्ठतमा अद्य इह व्युच्छ।

१३ देवी उषा पुरा शश्वत् वि उवास, अथो मघोनी अद्य इद व्याव, अथो उत्तरान् यून् अनु व्युच्छात् अजरा अमृता स्वधाभि चरति।

१४ अञ्जिभि दिव आतासु वि अद्यौत्। देवी कृष्णा निर्णिज अप आव। अरुणेभि अश्वैः प्रबोधयन्ती उषा सुयुजा रथेन आयाति।

आप ( उषादेवी ) अपने साथ शक्तिवर्धक वस्तुएं ले आती है। प्रज्ञावती उषादेवी अपना आश्चर्यकारक तेज प्रकट करती है। अबतक जितनी उषाएं चली गयीं उनमें यह अन्तिम[10] उषा है; और आगे आनेवाली उषाओंमे यह पहिली उषा अपना प्रकाश फैलाती है। १५ (३)

चलो, उठो;[11] अपना चैतन्य देनेवाला प्राण आया है। अन्धकार भाग गया। प्रकाश आ रहा है। उषाने सूर्यके लिये अपना मार्ग छोड़कर खुला कर दिया। जिस जगह सब लोगोकी आयु बढ़ती है ऐसी जगह हम आकर पहुंचे है। १६

यह स्तोता-उपासक-उषाके लिये मधुर स्तुति बनाकर[12] देदीप्यमान् उषाकी प्रशंसा करता है। इसलिये हे उदार देवी, उपासकके लिये आज प्रकाशित हूजिये, हमे सन्तति दीजिये और हमारी आयु बढ़ाइये। १७

गोधन और अश्वोका लाभ करानेवाली उषादेवी-जिसको सब पराक्रमी पुरुष पूज्य मानते हैं-हवि अर्पण करनेवाले मानवोके लिये अच्छी तरह प्रकाशित होती है। सोमयाग करनेवाले उपासकोकी जोरसे गाई हुई स्तुति वायुकी तरह उषाके पास शीघ्र जा पहुंचे। १८

हे उषा, देवोकी माता, अदितिका बल, यज्ञकी ध्वजा और सबसे श्रेष्ठ देवता आप ही है। इसलिये आप प्रकाशित हूजिये। हमारे यज्ञकी प्रशंसा करके हमारी स्तुति सुनिये; और उज्वल कान्तिसे युक्त हूजिये। आपसे सब लोग प्रेम रखते हैं। जब तक हम इस जगत्मे रहते है तबतक हमे नया जीवित अर्पण कीजिये। १९

---

१५ वार्याणि पोष्या आवहन्ती चेकिताना चित्र केतु कृणुते ईयुषीणा शश्वतीना उपमा[10] विभातीना न उषा वि अश्वेत्।

१६ उत् ईर्ध्व,[11]। न असु आ अगात्, तम अप प्र अगात्, ज्योति, आ एति। सूर्याय यातवे पथा अरक्। आयु' प्रतिरन्ते अगन्म।

१७ विभाती उषस स्तवान रेभ वह्नि वाचः स्यूमना[12] उत् इयति। तत् मघोनि गृणते अद्य उच्छ, अस्मे प्रजावत् आयु नि दिदीहि।

१८ गोमत अश्वदा सर्ववीरा याः उषस दाशुषे मर्त्याय व्युच्छन्ति सोमसुत्वा सूनृताना वायो इव उदर्क ता अश्नवत्।

१९ देवाना माता, अदिते अनीक, यज्ञस्य केतु, बृहती वि भाहि। प्रशस्तिकृत् न ब्रह्मणे वि उच्छ, विश्ववारे जने न आ जनय।

पूजन और स्तवन करनेवाले उपासकोंके लिये कल्याणकारी उषादेवी आश्चर्यकारक वल ले आती है। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक हमारी प्राथनापर ध्यान देकर उषाका अनुकरण करें। २० (४)

## सूक्त ११४.

॥ ऋषि—आङ्गिरस कुत्स । देवता—रुद्र ॥

जो रुद्र केवल पराक्रमकी मूर्ति है, जिनका सिर जटा[1] भारसे मण्डित रहता है और सब पराक्रमी वीर जिनकी शरण लेते हैं ऐसे रुद्रदेवको हम स्तुति अर्पण करते हैं। जिस ग्राममें रुद्रको हवि अर्पण किया जाता है उसमें किसी मनुष्य (द्विपाद) और पशुओं (चतुष्पादों) को दुःख नहीं होता है, किन्तु उनकी उन्नति ही होती है। १

हे रुद्र, हमें सौख्य अर्पण कीजिये और हमें आनन्द दीजिये। सब शूर पुरुष आपकी शरण लेते हैं और आपहीको वन्दन करके आपहीकी सेवा करते हैं। जो आपके भक्त हैं केवल उन्हींका आप कल्याण करते हैं। हमारे पिता मनुजीने भी आपसे जिस कल्याणकी इच्छा की वह (कल्याण) उन्हें आपहीकी कृपासे[2] प्राप्त होगा। २

हे उदार[3] रुद्र, सब शूर पुरुष आपहीका आश्रय करते हैं। आपकी सेवा करनेसेही हमें आपकी कृपाका लाभ होगा। हमारे लिये और इधर[4] हमारे बालबच्चोंके लिये भी उत्तम वैभव ले आइये। हमारी सेवामें जितने लोग हैं वे सब आनन्दित रहें। हम आपको हवि अर्पण करते हैं। ३

बड़े जोशवाले, यज्ञकी ओर पहुंचानेवाले, कुटिलनीतिमें बड़े होशियार, ऐसे रुद्रको हम अपनी रक्षाके लिये बुलाते हैं। दूसरे देवोंका क्रोध जो हमारेपर है उसे, हे रुद्र, हटा दीजिये। आपहीकी कृपाकी हम इच्छा करते हैं। ४

---

२० ईजानाय शशमानाय यत् भद्रं चित्रं अप्न[13] उषसः वहन्ति तत् नः मित्रः वरुणः ममहंताम्।

१ तवसे कपर्दिने[1] क्षयद्वीराय रुद्राय इमा मतीः प्र भरामहे, यथा द्विपदे चतुष्पदे शं असत्, अस्मिन् ग्रामे विश्वं पुष्टं अनातुरं।

२ रुद्र, नः मृळ उत नः मयः कृधि। क्षयद्वीराय ते नमसा विधेम। यत् च यो च शं पिता मनुः आयेजे तत्, रुद्र, तव प्रणीतिषु[2] अश्याम।

३ मीढ्वः[3] रुद्र, क्षयद्वीरस्य तव सुमतिं ते अश्याम। अस्माकं विशः इत् सुम्नयन् आचर[4]। अरिष्टवीराः ते हविः जुहवाम।

४ त्वेषं यज्ञसाधं वङ्कुं कविं रुद्रं अवसे नि ह्वयामहे। दैव्यं हेळः अस्मत् आरे अस्यतु। अस्य सुमतिं इत् वयं आ वृणीमहे।

देदीप्यमान, जटा धारण करनेवाले, जोशवाले और सुन्दर स्वरूप धारण करनेवाले स्वर्गके वराह (इन्द्र) को वन्दन करके हम बुलाते हैं। जिन औषधियोको सबलोग चाहते हैं उन्हींको आप अपने वशमे रखते हैं और हमे निडर बनाकर तथा सौख्य अर्पण करके हमारी रक्षा कीजिये। ५ (५)

सबसे मधुर और सन्तोष देनेवाला स्तोत्र, मरुतोका पिता जो रुद्र उनके लिये हम गाते हैं। इसलिये हे अमर देव, हमे अच्छे अच्छे और खाने योग्य पदार्थ अर्पण[५] कीजिये, और हमारे बच्चोको सौख्य अर्पण कीजिये। ६

हे रुद्र, हम लोगोमें जो बड़े[६] अथवा छोटे लोग है और जो बड़े हुए हैं और जो बडे होनेवाले हैं उनमेसे किसीको भी मत सताइये। हमारे पिता और माताओका नाश मत कीजिये। हमारे शरीरको किसी प्रकारकी बाधा मत पहुंचाइये। ७

(आपकी कृपासे) हमारे बालबच्चोको, सेवकोको,[७] धेनुओंको और घोड़ोको किसी प्रकारकी बाधा न पहुंचे। हे रुद्र, हमपर क्रोध मत कीजिये और हमारे पराक्रमी पुरुषोका नाश मत कीजिये। हम आपको हवि अर्पण करते है और सदैव आपकी पूजा करते है। ८

जिस तरह गड़रिया अपने पशूओंको इकट्ठे करता है उस तरह मै आपके सन्मानार्थ सब स्तोत्र एकत्रित करता हूं। हे मरुतोके पिताजी, आप हमे उत्कृष्ट वैभव दीजिये। आपकी कृपासे हमें कल्याण और आनन्द प्राप्त होना है। इसलिये मै आपसे कृपा करने की प्रार्थना करता हूं। ९

---

५ अरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं दिवः वराहं नमसा नि ह्वयामहे। वार्याणि भेषजा हस्ते बिभ्रत् शर्म वर्म छर्दिः अस्मभ्यं यंसत्।

स्वादोः स्वादीयः वर्धनं इदं वचः मरुतां पित्रे रुद्राय उच्यते। अमृत नः मर्तभोजनं च रास्व, त्मने तोकाय च मृळ।

७ रुद्र, नः महान्तं उत नः अर्भकं, नः उक्षन्तं उत नः उक्षितं, नः पितरं उत मातरं, नः प्रियाः तन्वः रिरिषः।

८ नः तोके तनये, नः आयौ, नः गोषु, नः अश्वेषु मा रिरिषः। रुद्र, भामितः नः वीरान् मा वधीः हविष्मन्तः त्वा सदं इत् हवामहे।

९ पशुपाः इव ते स्तोमान् आ अकरं। मरुतां पितः अस्मे सुम्नं रास्व। ते सुमतिः भद्रा मृळयत्तमा हि, अथ वयं ते अवः इत् वृणीमहे।

हे देव, धेनुओं और पुरुषोंका वध करनेवाला आपका शस्त्र दूरतक फेंक दीजिये। हे रुद्रदेव, आप सब वीर पुरुषोंको आश्रय देनेवाले हैं। आपके पास जो उत्कृष्ट वैभव है वह हमारे लिये रख छोडिये। हे देव, हमे सौख्य अर्पण कीजिये और हमारी तरफदारी कीजिये। आप दुगर्थे (बलवान) हैं; इसलिये हमारी रक्षा कीजिये। १०

रुद्रदेवके लिये हम नम्रताके साथ उनका स्तोत्र गाते हैं। वे हमारी रक्षा करें; इसलिये आप (रुद्र) मरुत्देवोंके साथ हमारी पुकार सुनिये। हमारी प्रार्थनापर मित्र वरुण तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक ध्यान देवें। ११ (६)

## सूक्त ११९.

॥ ऋषि–अङ्गिरस कुत्स । देवता–सूर्य ॥

देवोंका आश्चर्यकारक मुख–मित्र, वरुण, अग्नियोंके, मानो नेत्रही जो सूर्य, उसका उदय होता है। सूर्यने–मानो जो स्थिर और अस्थिर वस्तुओंका केवल प्राणही है–द्युलोक, भूलोक और अन्तरिक्षको व्याप्त किया है। १

जिस तरह कोई युवा पुरुष युवा स्त्रीके पीछे पीछे दौड़ता है उसी तरह देदीप्यमान् सूर्य भी उषाके पीछे पीछे चलता है। जिस भूलोकमे उसके उपासक अपनी आयु व्यतीत करते हैं उसी कल्याणकारी जगह आप उनका कल्याण करनेके लिये जाते हैं। २

सूर्यके अश्व कल्याणकारी, आश्चर्यकारक भिन्न भिन्न रंगके और आनन्ददायक होते हैं। सब लोग सूर्यको नमन करते हैं। आपने सब द्युलोकको व्याप्त किया है। आप द्युलोक और भूलोककी चारों ओर एक क्षणमे जा सकते हैं। ३

---

१० ते गोघ्न उत पुरुषघ्न आरे। क्षयद्वीर, ते सुम्न अस्मे। अस्तु देव न मृळ च अधि ब्रूहि च, अध द्विवर्हा न शर्म च यच्छ।

११ अवरयव अस्मै नम. अवोचाम। मरुत्वान् रुद्र नः हव शृणोतु।

१ मित्रस्य वरुण स्य अग्ने चक्षु देवाना चित्र अनीक उत् अगात्। जगत तस्थुष च आत्मा सूर्य. द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष आ अप्रा।

२ यत्र देवय त: युगानि वितन्वते भद्र प्रति भद्राय, मर्य योषा न, सूर्य. रोचमाना देवीं उषस पश्चात् अभि एति।

३ सूर्यस्य हरित अश्वा भद्रा:, चित्रा:, एतग्वा, अनुमाद्यास.। नमस्यन्त दिवः पृष्ठ आ अस्थु.। द्यावापृथिवी सद्य परियन्ति।

जब मनुष्य काम[२] करता है तब सूर्य अपने किरण एक निमिषमें अपनी ओर खींच
लेता है। इसीसे आपकी दिव्य शक्ति और बड़ापन लोगोंको विदित होता है। रात्रि और
सूर्य दोनोंकी रहनेकी जगह केवल यही जगत् है। जब इस जगत्से दूर चले जानेके लिये
सूर्य अपने अश्व जोतता है तब रात्रि अपना अन्धकार सब (जगत्पर) फैलाती है। ४

मित्र और वरुणको अपना देदीप्यमान् स्वरूप दिखलानेके लिये सूर्य स्वर्गलोकके अन्तिम
प्रदेशपर प्रकाशित होता है। एक समय उसके अश्व उसका देदीप्यमान् तेज प्रकट करते हैं
और दूसरे समय काले रंगका तेज (पृथिवीपर) दिखाई देता है। ५

हे देव, आज सूर्यका उदय होते ही हमे पाप और निन्दासे मुक्त कीजिये। अग्नि,
वरुण तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान देवे। ६ (७)(१०)

## अनुवाक १७.

### सूक्त ११६.

॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–अश्विन ॥

सत्यस्वरूप देव, छोटे आयुके विमदकी और उसकी स्त्रीको सैन्यकी नाई वेगवान् रथमें
बिठलाकर ले आये। उन देवोंका सन्मान करनेके लिये मानो, मैं यह कुशासन तैयार कर
रहा हूं। (क्यो कि) जिस तरह वायु मेघोदकको गीराता है उसी तरह मै उन देवोंको का
स्तोत्र अर्पण कर रहा हूं। १

जो बडे जोरसे उडते है और जो बडे वेगवान् है ऐसे (आपके अश्व) अथवा देवोंके
उत्साह देनेवाले शब्दही केवल आपको इस यज्ञमे ले आते है। (किन्तु) हे सत्यस्वरूप देव,
आपका गधा भी (इतना सामर्थ्यवान् है कि)–जिस युद्धमे यम स्वय लड़ता है उसमे। उन्होंने
(आपके गधाने) कई शत्रुओंको जीत लिया। २

---

४ सूर्यस्य तत् देवत्व तत् महित्व कर्तो: मध्या वितत स जभार यदा सधस्थात् हरित अयुक्त आत् रात्री
वास तनुते आत्।

५ मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे द्यो: उपस्थे तत् रूप सूर्य कृणुते। अनन्त् हरित अस्य अनन्त रुशत्
पाज:, अन्यत् कृष्ण स भरति।

६ देवा, अद्य सूर्यस्य उदिता अंहस अवद्यात् नि पिपृत।

१ यो अर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतु रथेन जाया निऊहथु:, नासत्याभ्या बर्हि इव प्र वृञ्जे। वात अभ्रिया
इव स्तोमान् इयर्मि।

२ वीळुपत्मभि: आशुहेमभि वा देवाना जूतिभि: शाशदाना। तत्, नासत्या, यमस्य प्रधने आजा रासभ
सहस्रं जिगाय।

हे अश्विनीदेव, 'जिस तरह मृत मनुष्य अपने संसारिक वैभवको छोड़कर चला जाता है उसी तरह सचमुच तुग्रने भुज्युको अथाह जलमे छोड़ दिया। किन्तु आप उसको प्राण अर्पण करनेवाली, आकाशमे उडनेवाली और जलसे अलग रहनेवाली नौकामे विठलाकर ले आये। ३

हे सत्यस्वरूप देव, तीन दिन और तीन रातसे अधिक समयतक दौड़नेवाले पक्षीकी तरह वेगवान् अश्वोंकी सहायतासे आपने भुज्युको तीन रथोमे विठलाया। उन रथोंको छः घोड़े जोते हुए थे और उन्हे सौ पैये थे। उदकसे भरे हुए समुद्रके परे सूखे जमीनपर आप उसको ले गये। ४

हे अश्विनीदेव, आपने भुज्युको नौकामे–जिसे चलानेके लिये सौ डाण्ड लगते है–विठलाकर उसके घर पहुचाया। यह आपका बडा पराक्रम है। इस बातको कोई नही जानता कि समुद्र उत्पन्न हुआ कहासे, उसे किसका आधार है और उसको किस तरह वशमे रखना चाहिये। ५(८)

हे अश्विनीदेव, हमेशा शान्ति देनेवाला सफ़ेद रङ्गका अश्व आपने अधाश्वाको दिया। इससे विदित होता है कि आप बड़े दानी है। आपका यह गुण स्तुति करने योग्य है। पेदूका उत्कृष्ट अश्व सन्मान करने योग्य हैं। ६

पज्रके कुलमे उत्पन्न हुए कक्षीवानने आपकी स्तुति की। स्तुति करते ही आपने उसको गेत्र बुद्धि अर्पण की। वरतनके समान लम्बे आकारवाले सामर्थ्यवान् अश्वके खुरसे आपने सुराके सौ घड़े उत्पन्न किये। ७

---

३ अश्विना, क चित् ममृवान् रयि न तुग्रः ह भुज्यु उदमेघे अव अहा। अ तरिक्षप्रुद्भि अपोदकाभिः नौभिः त ऊहथुः।

४ नासत्या, तिस्रः क्षप त्रिः अहा अतिव्रजद्भिः पतगैः, त्रिभि शतपद्भि षडश्वै रथैः, आर्द्रस्य समुद्रस्य पारे धन्वन् ऊहथुः।

५ अश्विनौ, शतारित्रा नाव आतस्थिवास भुज्यु यत् अस्त उहथु. तत् अनारभणे अनास्थाने अग्रभणे समुद्रे अवीरयेथा।

६ अश्विना, शश्वत् इत स्वस्ति य श्वेत अश्व अघाश्वाय ददथुः तत् वा महि दात्र कीर्तेन्य भूत्। पैद्व अर्य वाजी सद इत् हव्य।

७ नरा, पज्रियाय स्तुवते कक्षीवते युवं पुरंधि अरदत। वृष्ण. अश्वस्य कारोतरात् शफात् सुरायाः शत कुम्भान् असिंचत।

ठण्डि हवा उत्पन्न करके आपने तापदायक अग्निको शान्त किया। आपने अत्रिको उत्तम सुरा पिलायी। इसी कारणसे उसमें (अत्रिमें) उत्साह देनेवाला नया बल उत्पन्न हुआ। जब अत्रि गहरे गड्ढेमें पडा था तब आपने, हे अश्विन्, उसके बालबच्चोंकी रक्षा की और उसको गड्ढेसे बाहर निकाला। ८

हे सत्यस्वरूप अश्विनीदेव, आप उस कूएको ऊपर ले आये। उसका मूंह टेढा रहनेके कारण आपने उसके तलको उलटा दिया। उसके अनन्तर आपने गोतमके प्याससे अनुचरोंके लिये पानीका प्रवाह बहा दिया, मानो, गोतमको हजारो प्रकारकी सम्पत्ति अर्पण की। ९

हे सत्यस्वरूप अश्विनीदेव, जिस तरह मनुष्य अपना कवच निकालता है उसी तरह आपने वृद्ध च्यवनको बुढापनसे मुक्त किया। जब सब (लोगोंने) उसको त्याग दिया तब आपने उसकी आयु बढ़ायी और उसको कुमारियोंका पति बनाया। १० (९)

हे सत्यस्वरूप और शूर अश्विनीदेव, सचमुच आपकी कृपा बड़ी प्रशंसा योग्य सौख्य देनेवाली और हित करनेवाली है। उस कृपाके कारणही आप जैसे ज्ञानवान् देवोंने मानो, दृष्टिके परे हुए धन सञ्चयको वन्दनके लिये ढूंढकर बाहर निकाला। ११

हे शूर अश्विनीदेव, जिस तरह मेघगर्जनासे पर्जन्य वृष्टि होनेका लक्षण दिखाई देता है उसी तरह धनका लाभ होनेके लिये मैं आपके पराक्रमकी स्तुति करता हूं। आपकी कृपाके कारण ही अथर्व वंशमें उत्पन्न हुए दध्यंच ऋषिने अश्वका शिर धारण करके आपके साथ मधुर सम्भाषण किया। १२

---

८ हिमेन घ्रंस अग्नि अवारयेथां। पितुमतीं ऊर्जं अस्मै अधत्त। अश्विना, ऋबीसे अवनीत अत्रि सर्वगण त उत् निन्यथु॰।

नसत्या, अवत परा अनुदेथां, जिह्मबार उच्चाबुध्न चक्रथुः। गोतमस्य तृष्यते पायनाय, आप, ... राये, क्षरन्।

१० उत नासत्या, जुजुरुष च्यवानात् द्रापि इव वव्रि प्र अमुचत। दस्रा, जहितस्य आयुः प्र अतिरत कनीन पति इत् अकृणुत।

११ नासत्या नरा, तत् वां वरूथ शंस्य राध्य अभिष्टिमत् च यत् विद्वांसा दर्शतात् अपगूळ्ह निधि इव वन्दनाय उत् ऊपथु।

१२ नरा, तन्यतु वृष्टि न सनये वां तत् उग्र दंस आविः कृणोमि, यत् आथर्वण दध्यङ् ह अश्वस्य शीर्ष्णा वां ईं मधु उवाच।

हे सत्यस्वरूप अश्विनीदेव जब आप लम्बे लम्बे मार्गपर चलते थे तब वृध्रिमतिने आपकी स्तुति की और आपको हवि अर्पण किया । आप बड़े बलवान् और सबकी रक्षा करनेवाले है । वृध्रिमतिकी स्तुतिको आज्ञाही समझकर आपने उस स्तुतिको सुना और उसको हिरण्यहस्त नामका पुत्र प्रदान किया । १३

हे सत्यस्वरूप देव, जब बाज पक्षी बिलकुल भेडियाके मुहके पास था तब आपने उसको छुड़ा लिया । हे भक्तोकी रक्षा करनेवाले अश्विनीदेव, जब विद्वान् लोक आपकी कृपाकी इच्छा करते है तब आप उनको देखनेका सामर्थ्य देते है । १४

जिस तरह पक्षीका पंख टूट जाता है उसी तरह खेलके युद्धमे रातके[२] समय (विश्पलेका) पैर टूट गया । किन्तु लडाई शुरू होतेही (युद्ध क्षेत्रमे चलनेके लिये) आपने उसको शिघ्रही लोहेका पैर जुडा दिया । १५ (१०)

जब ऋज्राश्वने भेडीयाको (खिलानेके) लिये सौ बकरियां काट डाली तब उसके पिताने उसको अन्धा बनाया । (किन्तु) शत्रूओका नाश करनेवाले, हे सत्यस्वरूप वैद्यराज, आपने देखनेके लिये कृपा करके फिर उसको जैसेके तैसे नेत्र प्रदान किये । १६

आपने वेगवान् अश्वोके द्वारा (शर्यत) जीतनेवाली सूर्यकी लडकी (पुत्री) आपके रथको शर्यतका[३] ठिकाना समझकर आपके रथपर चढ गयी । हे सत्यस्वरूप देव, इस तरह उस वैभवसे आपकी शोभा बढ गयी । और सब देवोने इस बातपर हार्दिक सहानुभूति दिखलायी । १७

---

१३ नासत्या, वा महे यामन् पुरुभि करा पुरुभुजा अजोहवीत् वध्रिमत्या तत् शासु इव श्रुत हिरण्यहस्त, अश्विना, अदत्त ।

१४ नरा नासत्या, वृकस्य आस्न अभीके वर्तिका युवं अमुमुक्त । उतो, पुरुभुजा, युव ह कृपमाण कवि विचक्षे अकृणुत ।

१५ वे इव पर्ण, खेलस्य आजा, परितक्म्याया[२] चरित्र अच्छेदि । धने हिते सर्तवे आयसी जघा विश्पलाये प्रति अधत्त ।

१६ शत मेषान् वृक्ये चक्षदान त ऋज्राश्व पिता अध चकार । नासत्या दस्रा भिषजो, विचक्षे अनन्[?] तस्मै अक्षी आ अधत्त ।

१७ अर्वता जयन्ती सूर्यस्य दुहिता वा रथ कार्ष्म[३] इव अतिष्ठत् । विश्वे देवा हृद्भि: अनु अमन्यन्त । नासत्या, श्रिया स सचेथे ।

हे अश्विनीदेव, जब आप दिवोदास और भरद्वाजके लिये उनके घरकी ओर शीघ्रतासे चले गये तब जिस रथमें आप बैठे थे उसमें बहुत धन भरा हुआ था। उस रथको एक बैल और एक नक्र (मगर) जोते हुए थे। १८

दिनमें तीन समय आपको हवि अर्पण करनेवाले, जन्हूके वंशमें उत्पन्न होनेवाले पुरुषोंकी ओर, हे सत्यस्वरूप देव, आप दोनों अपने बालबच्चों, वीरता वैभव और सामर्थ्यवान आयुके साथ एक सम्मतिसे चले गये थे। १९

हे वृद्ध न होनेवाले सत्यस्वरूप देव, जब जाहुप चारों ओरसे शत्रूओंसे घिरा हुआ था तब आप रजोलोकमेंसे सरल मार्गसे उसको ले गये। पत्थरको तोडनेवाले रथमें बैठकर आपने पहाड़मेंसे मार्ग निकाला। २० (११)

हे अश्विनीदेव, हजारों प्रकारकी सम्पत्तिका लाभ करानेके लिये आपने वशको एक दिनमें युद्ध करनेका सामर्थ्य प्रदान किया। हे सामर्थ्यवान् देव, आपने इन्द्रकी सहायता लेकर पृथुश्रवके दुष्ट शत्रुओंका नाश किया। २१

ऋचत्वका पुत्र–शरकी प्यास बुझानेके लिये आपने गहिरे कूएंसे पाणी ऊपर निकाला। थके हुए शयूके लिये उसर गौमें भी आपने भरपूर दूध उत्पन्न किया। २२

---

१८ अश्विना, यत् दिवोदासाय भरद्वाजाय हयन्तौ वर्तिः अयात, सचन रथ रेवत् उवाह। वृषभ च शिशुमार च युक्ता।

१९ अन्ह त्रिः भाग दधतीं जन्हावीं सुक्षत्र स्वपत्य रयिं सुवीर्यं आयु आ वहन्ता वाजे समनसा उप त।

२० अजरयू नासत्या, विश्वतः परिविष्ट जाहुप सुगेभि रजोभि नक्त ऊहथु.। वि भिन्दुना रथेन पर्वतान् वि अयात।

२१ अश्विना, सहस्रा सनये एकस्या वस्तोः वश रणाय आवत। वृषणौ, इन्द्रवन्ता पृथुश्रवस दुच्छुना. अरातीः नि. अहत।

२२ आर्चत्कस्य शरस्य चित् पातवे नीचात् अवतात् वा उच्चा चक्रथुः। नसुरये शयवे चित् शचीभि स्तर्य गा पिन्वथु।

हे सत्यस्वरूप देव, कृष्णाके कुलमें उत्पन्न हुए और सीधे मार्गसे चलनेवाले विश्वकने आपकी स्तुति की और आपकी सहायताकी इच्छा की। इसलिये जिस तरह खोया हुआ पशु स्वामीको मिल जाता है उसी तरह, आपने उसके पुत्र (विष्णापू)को ढूंढकर निकाला, उसे उसका पिता विश्वकसे मिलाया और उसे उसके सुपुर्द किया। २३

जिस तरह चमसोंसे सोमरस बाहर निकालते हैं उसी तरह आपने दस रात और नौ दिनतक पानीके अन्दर बन्धे हुए, थके हुए, सर्दीसे कांपते हुए, और जलमें दुःख पाते हुए रेभको पानीके बाहर निकाल दिया। २४

हे अश्विनीदेव, मैने आपके बड़े बड़े कामोंका यहा वर्णन किया है। इसलिये आपकी कृपासे मुझे धेनु और पराक्रमी पुरुष प्राप्त होवे। मुझे इस घर और वैभवका स्वामी बनाइये। आपकी कृपासे मेरी दृष्टि अच्छी रहे और मेरी आयु बढ़े। जिस तरह कोई मनुष्य आनन्दसे मन्दिरमे घुसता है उसी तरह बुढ़ापेमे आनन्दसे मेरे दिन व्यतीत हो। २५ (१२)

## सूक्त ११७.

॥ ऋषि—कक्षीवान् । देवता—अश्विन ॥

हे अश्विनीदेव, मधुर सोमरसका पान करके आपको आनन्द होनेके लिये मै आपका पुराना सेवक आपसे प्रार्थना करता हूं। आपके लिये हवि हमने पवित्र दर्भोंपर रखा है। हमारी स्तुति भी आपकी ओर पहुंच गयी है। इसलिये अनाजका संग्रह करके नाना प्रकारके सामर्थ्योंके साथ आप इधर आइये। १

हे अश्विनीदेव, आपका चञ्चल रथ मनसे भी वेगवान् है। उसको सुन्दर अश्व जोते हुए है। वह सब लोगोंकी ओर आता है। जिस रथमे बैठकर आप सदाचारी पुरुषोंके घर चले जाते है उसी रथमे विराजमान् होकर, हे वीर पुरुष, आप हमारी ओर आइये। २

---

२३ नासत्या, ऋजूयते अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय विश्वकाय शचीभि, नष्ट पशु न, विष्णाप्व दर्शनाय ददथु।

२४ दश रात्री. नव द्यून् अशिवेन अप्सु अन्तः अवनद्ध श्नथित विप्रुत उदनि प्रवृक्त रेभ स्रुवेण सोम इव उत् निन्यथु.।

२५ अश्विना, वा दसांसि प्र अवोच। सुगवः सुवीरः अस्य पतिः स्या। उत पश्यन् दीर्घ आयु. अश्नुवन् जरिमाण अस्त इव जगन्या।

१ अश्विना, नव्यः सोमस्य मदाय प्रत्नः होता वां विवासते। रातिः बर्हिष्मती, गीः विश्रिता, नासत्या इषा वाजैः उप यात।

२ अश्विना, यः वां मनसः जवीयान् स्वश्वः रथः विशः आजिगाति, येन सुकृतः दुरोण गच्छथः, तेन, नरा, अस्मभ्य वर्तिः यात।

हे सामर्थ्यवान् वीर पुरुष, हमारे मनका झुकाव (आपकी कृपासे) हमारी उन्नतिकी ओर होवे और दुष्ट राक्षसोका कपटजाल निष्फल होवे। पाच प्रकारके लोगोको प्रिय होनेवाले अत्रिऋषिको उनके मनुष्योंके साथ भयंकर गुहामेसे आपने वाहर निकाला। ३

रेभऋषि जलमें डूब गया था। दुष्ट (लोगोंके) नीच कर्मोंके कारण अश्वकी तरह रेभ ऋषि जलमे अदृश्य हुआ था। हे सामर्थ्यवान् वीर, आपने आश्चर्यकारक काम करके उसकी रक्षा की। आपका काम पुराना होनेपर भी कभी पुराना नही समझा जाता। ४

(शत्रुओंका) नाश करनेवाले हे अश्विनीदेव, हीन अवस्थाको पहुंचे हुए वन्दनको कल्याण करनेके लिये अन्धःकारमें छुपे हुए सूर्यके समान और सुन्दर द्रव्यसञ्चयको जमीनसे खोदे हुए सुवर्णके समान, संकटसे आपने वाहर निकाला। ५ (१३)

हे शूर सत्यस्वरूप देव, आपका काम ऐसा था कि जिसके कारण पज्रकुलमे जन्म पाये हुए कक्षीवान्की ओरसे आपकी स्तुति हुई। जब आप सञ्चार करते थे तब आपने एक सामर्थ्यवान् अश्वके खुरसे लोगोंके कल्याणके लिये मधुर रसके सौ घड़े उत्पन्न किये। ६

कृष्णवंशमे उत्पन्न हुए विश्वकने आपकी स्तुति की। इसलिये आपने (उसके पुत्रको) विष्णापूको ढूंढ़कर निकाला। हे अश्विनीदेव, पिताके घरमे रहकर बुढ्ढी हुई घोषाको आपने पतिका लाभ करा दिया। ७

---

३ वृषणा नरा, अनुपूर्वं चोदयन्ता, अशिवस्य दस्योः मायाः मिनन्ता पाचजन्य अत्रि ऋषि गणेन अंहस. ऋबीसात् मुचथ.।

४ वृषणा नरा अश्विना, दुरेवैः अश्व न अप्सु गूहळ विसुत त रेभ ऋषि दस्रोभि. रिणीथ. वा पूर्व्याणि न जूर्यन्ति।

५ दस्रा अश्विना, निर्ऋते उपस्थे न सुषुप्वास, सूर्यं न तमसि क्षियन्त दर्शत रुक्म न वन्दनाय शुभे उत् ऊपथुः।

६ नरा नासत्या, पज्रियेण कक्षीवता शस्य तत् वा, परिज्मन्, वाजिन अश्वस्य शफात् जनाय मधूना शत कुम्भान् असिचत।

७ नरा, स्तुवते कृष्णियाय विश्वकाय विष्णाप्व ददथु पितृषदे दुरोणे जूर्यन्त्यै घोषायै चित् पतिं अदत्त।

हे अश्विनीदेव, आपने श्यावको रुशती नामकी भार्या दिलाई और कण्वको गृह-सौख्य अर्पण किया। हे सामर्थ्यवान् देव, आपने नृषद्के पुत्रको कान दिये। वह आपका कृत्य प्रशंसा करनेयोग्य है। ८

नाना प्रकारके स्वरूप धारण करनेवाले हे अश्विनीदेव, आपने जो अश्व पेदुको अर्पण किया था वह सैकड़ो प्रकारका वैभव ला सकता था। वह बड़ा बलवान् था, उसकी बराबरी करनेवाला कोई न था, वह सर्पोंको मार डालनेवाला था; उसकी कीर्ति सर्वत्र फैली हुई थी, और वह संकटमे सबोकी रक्षा करनेयोग्य था। ९

हे अत्यन्त उदार देव, यही आपका कीर्तिमान् पराक्रम है जिसके कारण द्युलोक और भूलोकमे आपकी स्तुति गायी जाती है; वहीं आपका निवास-स्थान है। हे अश्विनीदेव, पज्र आपकी प्रार्थना करके आपको बुलाते है। इसलिये बड़ा अन्नसंग्रह आप इधर ले आइये और विद्वान् स्तुति-करनेवालोको सामर्थ्य अर्पण कीजिये। १० (१४)

सब विश्वका पोषण करनेवाले हे सत्यस्वरूप अश्विनीदेव, जब मानने पुत्रका लाभ होनेके लिये आपकी स्तुति की उस समय आपने उस विद्वान् उपासकको सामर्थ्य अर्पण किया अगस्त्यके गाये हुए स्तोत्रोसे आप सन्तुष्ट हुए, और आपने विश्वलाको संकटसे बचा लिया। ११

हे अश्विनीदेव, हे सामर्थ्यवान् द्युलोकपुत्र, शयूकी रक्षा करनेवाले आप काव्यकी सुन्दर स्तुतिका स्वीकार करनेके लिये बाहर चले गये थे। जिस तरह सुवर्णका घडा जमीनसे खोदकर बाहर ले आते हैं उसी तरह छुपा हुआ धन दसवे दिन आप बाहर ले आये। १२

---

८ अश्विना, युवं श्यावाय रुशतीं अदत्त। कण्वाय क्षोणस्य महः। वृषणा तत् वां कृतं प्रवाच्यं यत् नार्षदाय श्रवः अध्यधत्त।

९ पुरु वर्पांसि दधाना अश्विना, पेदवे आशुं सहस्रसा वाजिनं अप्रतीतं अहिहनं श्रवस्यं तरुत्रं अश्वं नि ऊहथुः।

१० सुदानू, एतानि वां श्रवस्या रोदस्योः ब्रह्म आगूषं सदनं अश्विना यत् वां पज्रासः हवते इषा च यातं विदुषे च वाजं।

११ सूनोः मानेन अश्विना, गृणाना विप्राय वाजं रदन्ता, अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना, विश्पलां स अरिणीत।

१२ अश्विना, दिवः नपाता, शयुना, काव्यस्य सुष्टुतिं कुह यान्ता, हिरण्यस्य इव कलशं दशमे अहन् निखातं उत् ऊपथुः।

हे अश्विनीदेव, बुड्ढे हुए च्यवनको आपने अपने सामर्थ्यसे फिर जवान बनाया। हे सत्यस्वरूपदेव, सूर्यकी कन्याने अपने वैभवके साथ बैठनेके लिये आपहीके रथको पसन्द किया। १३

हे तरुण देव, अपने प्राचीन रीतिके अनुसार आपने तुग्रके विषयमें बड़ी दया (सहानुभूति) दिखलाई। पक्षीकी तरह चंचल¹ अश्वकी सहायतासे आपने भुज्यूको समुद्रके—जिसमें बड़ी बड़ी लहरें उछलती थीं—बाहर निकाला। १४

हे अश्विनीदेव, तुग्रके पुत्रने आपकी पूजा की। समुद्रपर कामके लिये जब वहाँ भेजा गया था तब वह निडर होकर चला गया। हे सामर्थ्यवान् देव, अच्छी तरह सजे हुए और मनकी नाईं वेगवान रथमें बिठलाकर उसको अच्छी तरह आप बाहर ले आये। १५(१५)

हे अश्विनीदेव, जब आपने भेड़ियाके मुखसे लवा पक्षीकी रक्षा की तब उसने आपकी पूजा की। अपने विजयी (रथमें) बैठकर आपने पहाड़की चोटीको तोड़ डाला, और जहर पिला कर विष्णापूके पुत्रका नाश कर डाला। १६

ऋज्राश्वने भेड़ियाको खिलानेके लिये सौ बकरिया जा दीं। उस कारणसे उसके दुष्ट पिताने उसको अन्धा बनाया। उसपर कृपा करके आपने उसको नेत्र अर्पण किये, और देखनेके लिये नेत्रमें प्रकाश उत्पन्न किया। १७

---

१३ अश्विना, जरन्तं च्यवान युव शचीभिः पुन युवान चक्रथु। नासत्या, सुर्यस्य दुहिता श्रिया मह युवो रथ अवृणीत।

१४ युवाना, पूर्व्येभिः एवैः एव तुग्राय पुनर्मन्यौ अभवत। विभि ऋज्रेभि.¹ अश्वैः अर्णवः समुद्रात् भुज्यु ऊहथु।

१५ अश्विना, तौग्र्य वा अजोहवीत् समुद्र प्रऊह्ळ अव्यथिः जगन्वान्। वृषणा, सुयुजा मनोजवसा रथेन स्वस्ति निः ऊहथुः।

१६ अश्विना, यत् वृकस्य आस्न सीं अमुचत वर्तिका वां अजोहवीत्। जयुषा अद्रे सानु नि ययथु। विश्वाचः जात विषेण अहत।

१७ अश्विनौ, वृकये शत मेषान् ममहान अशिवेन पित्रा तम· प्रणीत ऋज्राश्व अक्षी आ अधत्त। अन्धाय विचक्षे ज्योति चक्रथु।

हे अश्विनीदेव, उस भेड़ियाने अन्धे हुए ऋज्राश्वके लिये आप जैसे सामर्थ्यवान् और पराक्रमी देवसे बड़ी नम्रतासे[2] प्रार्थना की। मुझे खानेके लिये एकसौ एक बकरियाँ देकर युवा पतिकी नाईं आपने मुझपर बड़ी कृपा की। १८

हे अश्विनीदेव, भक्तोंकी रक्षा करनेवाला आपकासामर्थ्य बड़ा सुख देनेवाला है। हे धैर्यवान् देव, लङ्गडे[3] मनुष्यको भी आप अच्छा करते है। इसीलिये पुरन्धीने आपको फिर बुलाया। हे पराक्रमी देव, आप अपने सामर्थ्यके साथ उसकी रक्षा के लिये चले गये। १९

शत्रुओंका नाश करनेवाले हे अश्विनीदेव, शयुके लिये दूध[4] न देनेवाली और दुबली गौमें बहुत दूध आपने उत्पन्न किया। आपने अपने सामर्थ्यसे पुरुमित्रकी कन्याको विमदकी पत्नि करा दी। २० (१६)

शत्रुका संहार करनेवाले हे अश्विनीदेव, जमीनमें हलसे अनाजका बीज बोकर मानव-जातिके लिये अन्नका संग्रह आप उत्पन्न करते है। अपने वज्रसे आप दुष्ट लोगोंका नाश करते है। भक्तिमान् लोगोंके लिये आपने बहुत प्रकाश प्रकट किया। २१

हे अश्विनीदेव, अथर्वके पुत्र दध्यचको आपने अश्वका सिर लगाया। अनन्तर, सत्यवादी पुरुषने आपको एक अति मीठी और गूढ बात बतलाई, जो केवल त्वष्टा देवको मालुम थी और जिससे आप बड़े प्रसन्न हुए। २२

---

हे ज्ञानवान् देव, आपकी कृपाकी मैं इच्छा करता हूं। हे अश्विनीदेव, मेरी सब स्तुतियोंका आप स्वीकार कीजिये। हे सत्यस्वरूप देव, हमे कीर्तिवान् सन्तान और वैभव अर्पण कीजिये। २३

हे उदार और पराक्रमी अश्विनीदेव, आपने वध्रिमतिको हिरण्यहस्त नामका एक पुत्र, अर्पण किया। हे दान करनेवाले अश्विनीदेव, जब श्यावका शरीर तीन जगह टूटा हुआ था तब आपने उसमें चैतन्य उत्पन्न किया। २४

हे अश्विनीदेव, कई मनुष्योंने आपके पुराने बड़े बड़े कामोंका वर्णन किया है। हे सामर्थ्यवान् देव, हम अपने कुटुम्बके मनुष्योंके साथ आपकी स्तुति गाते है और अपने यज्ञकी कीर्ति बढ़ाते हैं। २५ (१७)

## सूक्त ११८.

॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–अश्विन ॥

हे बलवान् अश्विनीदेव, आपके रथकी गति मनसेभी अधिक है। उसके तीन पैये होते हैं। उसका वेग वायुसे भी शीघ्र है। आपहीके तेजसे आपका रथ शोभायमान् दिखाई देता है। उसको बाज पक्षी जोता हुआ है। इसीके कारण वह आकाशमे उडता हुआ दिखाई देता है। वह कल्याण करनेवाला रथ हमारी ओर आवे। १

हे अश्विनीदेव, आपके रथके तीन पैये होते है। उसका आकार त्रिकोण है। ऐसे सुन्दर रथमें बैठकर आप हमारी ओर आइये। आपकी कृपासे, हमारी गौ यथेष्ट दूध देवे। हमारे अश्व शीघ्र चलनेवाले होवें, हमारे (कुलमें) वीर पुरुष उत्पन्न होवें, और उनकी उन्नति होवे। २

---

२३ कवी, सदा वां सुमति आ चके अश्विना, मे विश्वा. धियः प्र अवत। नासत्या, बृहन्त अपत्यसाच रयिं अस्मे रराथा।

४ सुदानू नरा अश्विना, रराणा वध्रिमत्याः हिरण्यहस्त पुत्र अदत्त। अश्विना, त्रिधा ह विकृत्त श्याव ते उत् ऐरयत।

२५ अश्विना, एत नि वा पूर्व्याणि वीर्याणि आयव अवोचन्। वृषणा, युवभ्यां ब्रह्म कृण्वन्तः सुवीरास. विदथ आ वदेम।

१ वृषणा अश्विना, य वा रथ मर्त्यस्य मनस. जवीयान्, त्रिवन्धुर, वातरंहा, स्ववान्, सुवृतीक, श्येनपत्वा अर्वाक् यातु।

२ अश्विना, त्रिवन्धुरेण, त्रिवृता, त्रिचक्रेण सुवृता रथेन अर्वाक् आ यात। न गा. पिन्वत, अर्वतः जिन्वत, अस्मे वीर वर्धयत।

(शत्रुओंका) नाश करनेवाले हे अश्विनीदेव, सीधे[1] मार्गसे चलनेवाले सुन्दर रथमें बैठकर, आप सोमपत्थरका सुन्दर आवाज़ सुनिये। हे अश्विनीदेव, प्राचीन कालमें विद्वान् लोक, आपको 'दुःख मिटानेके लिये शीघ्र भागनेवाले देव' ऐसे क्यों कहते थे? ३

हे अश्विनीदेव, आपके रथको जोते हुए, और आकाशमें शीघ्रतासे उड़नेवाले चञ्चल श्येन पक्षी आपको हमारी ओर ले आवे। हे सत्यस्वरूप देव, आकाशके गीधकी नाईं वे हमारी रक्षा करते हैं। (हमें) खानेके लिये वे अनाज़ ले आते हैं। ४

हे शूर पुरुष, वह प्यारी[2] स्त्री, सूर्यकी कन्या, आपके रथपर चढ़ती है। वे सुन्दर अश्व, (आकाशमें) उड़नेवाले वे सुन्दर[3] और देदीप्यमान् पक्षी, आपको हमारी ओर ले आवे। ५ (१८)

हे शत्रुओंका नाश करनेवाले सामर्थ्यवान् देव, आप अपने अद्भुत कृत्योंसे वन्दनको ऊपर ले आये और अपने बलसे रेभको ऊपर उठाया। तुग्रके पुत्रको आप समुद्रके परे ले गये और च्यवनको फिर युवा बनाया। ६

हे अश्विनीदेव, सत्य स्थलमें चले गये अत्रिको आपने सामर्थ्य और सहायता अर्पण की। अन्धे[4] बने हुए अत्रिकी सुन्दर स्तुतिका स्वीकार करके आपने उसको नेत्र अर्पण किये। ७

---

३ दस्रौ अश्विना, प्रवद्यामना[1] सुवृता रथेन अद्रेः इमं श्लोकं शृणुत। पुराजाः विप्रासः वां अवर्ति प्रति गमिष्ठाः किं अंग आहु?

४ नासत्या अश्विना, दिव्यासः गृध्राः न ये अप्तुरः श्रय[1] अभि वहन्ति, रथे युक्तासः पतङ्गाः आशवः श्येनासः वां आवहन्तु।

५ नरा, जुष्टा[2] युवतिः सूर्यस्य दुहिता अत्र वां रथं आ तिष्ठत्। वां वपुषः[3] अश्वाः, अरुषाः पतगाः वयः, वां अभीके परि वहन्तु।

६ दस्रा वृषणा, दंसनाभिः वन्दनं उत् ऐरयतं, शचीभिः रेभं उत् (ऐरयतं)। तौग्र्यं समुद्रात् निः पारयथः, च्यवानं पुनः युवानं चक्रथुः।

७ अश्विनौ, तप्तं अवनीताय अत्रये ऊर्जं ओमानं युवं अधत्तं। सुस्तुतिं जुजुषाणा अपरिह्वृताय[4] कण्वाय पुनः चक्षुः प्रति अधत्तं।

हे अश्विनौदेव, जब पुराणे शयूने आपकी स्तुति[7] की तब आपने (उसकी) धेनुमें पूरा पूरा दूध भरा दिया। ८

हे अश्विनौदेव, आपने पेदूको एक ऐसा अश्व अर्पण किया जिसका रंग सफेद था। इन्द्र उसको हांकता था। वह अश्व सांपोका नाश कर सकता था। अच्छे वर्तावके लोगोको देख कर वह (अश्व) हिनहिनाने लगता था। वह अश्व हज़ारो शत्रुओका[8] नाश करनेवाला था। वह (अश्व) उग्र दिखता था। वह (अश्व) सैकडो प्रकारकी सम्पत्ति जीतकर ले आता था। वह सामर्थ्यवान था और उसका शरीर हृष्ट पुष्ट था। ९

हे अश्विनौदेव, आपका जन्म उच्च कुलमें हुआ है। आपकी प्रार्थना करके हम आपको हमारी रक्षा करनेके लिये बुलाते हैं। हमारी स्तुतियोका स्वीकार कीजिये और धनसे भरे हुए रथमें बैठकर हमारे कल्याणके लिये आप हमारी ओर आइये। १०

हे सत्यस्वरूप देव, हमारे श्येन पक्षीको नया वेग दिखाकर आप दोनो सम्मत होकर हमारी ओर आइये। हे अश्विनौदेव, अब यह पुरानी उषा अपना प्रकाश प्रकट करती है तब मैं आपकी पूजा करके आपको हवि अर्पण करता हूं। ११ (१९)

---

८ अश्विना, नाधिताय[7] पूर्व्याय शयवे युव धेनु अपिन्वत। वर्तिका अहस नि अमुचत, विश्पलायाः जघा प्रति अधत्त।

९ अश्विना, युवं पेदवे श्वेत, इन्द्रजूत, अहिहन, अर्य जोहूत्र,[8] अभिभूतिं, उग्र, सहस्रसा, वृषण, अश्व अदत्त।

१० सुजाता नरा अश्विना, नाधमाना ता वा अवसे सु हवामहे। न गिर जुजुषाणा वसुमता रथेन सुविताय उप आ यात।

११ नासत्या अश्विना, श्येनस्य नूतनेन जवसा सजोषा अस्मे आ यात। शश्वत्तमाया उषस व्युष्टौ हविष्मान वा हवे हि।

## सूक्त ११९.

ऋषि–कक्षीवान् । देवता–अश्विन ॥

हमारी आयु वढ़ानेके लिये मै आपके रथको इस हविकी ओर बुलाता हूं। इस रथमें कई[1] अच्छी अच्छी वस्तुएं भरी हुई है । इस रथका वेग मनके समान है। उसके अश्व बड़े चञ्चल हैं। वह यजन करनेयोग्य है। उसपर हजारों झण्डे लगे हुए हैं। वह रथ अच्छी अच्छी लकड़ीयोका[2] बना हुआ है। उसमें सैकड़ो प्रकारका धन भरा हुआ है। उसने बड़ी नामवारी पैदा की है। उससे भक्त लोगोकी रक्षा होती है। १

जब आपका रथ चलता है तब मेरी बुद्धि चौक उठती है। इतनाही नही, किन्तु आपकी स्तुति[3] करनेके लिये मानो, दश दिशाएं इकट्ठी हो जाती है। गरम[4] हविको (जहातक हो वहातक) मै मधुर बनाता हूं । भक्तगणोकी रक्षा करनेवाला आपका सामर्थ्य मेरी ओर आवे। हे अश्विन, ऊर्जानी आपके रथपर आरूढ हुई है। २

जिस समय बड़े बड़े वीर युद्धमें जयकी इच्छासे[5] जोरसे[6] लड़ते है तब आपका रथ आकाशसे नीचे उतरता[7] हुआ दिखाई पड़ता है। हे अश्विन्, उस समय आप अपने चतुर भक्तोको वैभव अर्पण करते है। ३

पक्षीयोंके समान चञ्चल अश्वोपर आरूढ होकर आप डूबनेवाले[8] भुज्यूकी ओर दौड़े। उन्ही अश्वोके द्वारा आपने उस (भुज्यू) को उसकी मातापितरोंके पास पहुंचाया। आपके अश्व रथको स्वयम् जोत लेते है। हे सामर्थ्यवान् देव, भुज्यूका स्थान दूर[9] होनेपर भी आप वहापर पहुंचे । यह बात सबको विदित ही है कि आपने दिवोदासकी रक्षा अच्छी तरहसे की। ४

---

१ जीवसे वा पुरुमाय[1], मनोजुव, जीराश्व, यज्ञियं, सहस्रकेतु, वनिन[2], शतद्वसु, श्रुष्टीवान, वरिवोधा रथ प्रय: अभि आ हुवे।

२ अस्य प्रयामनि धीति ऊर्ध्वा प्रति अयायि; शस्मन्[3] दिश स आ अयन्ते । घर्मं[4] स्वदामि ऊतय: प्रति यन्ति। अश्विना, ऊर्जानी वा रथ आ अरुहत्।

३ यत् जावव:[5] अमिता. नरा[6] शुभे निथ: पस्पृधानास रणे स अग्मत, अह युवो रथ प्रवणे[7] चेकिते, यत, अश्विना, सूरि वर आ वहथ ।

४ विभि: युव भुरमाण[8] भुज्यु गत, स्वयुक्तिभि पितृभ्य. आ निवहन्ता । वृषणा, विजय[9] वर्ति आ यासिष्ट, दिवोदासाय वा महि अव. चेति।

हे अश्विन्, आपका जो रथ आपने आनन्दसे[१०] जोता था वह केवल आपकी आज्ञासे ही चलता था। जो सुन्दर युवा स्त्री आपकी ओर आई थी उसने आपको पसन्द किया और (अन्तमे) आपही उसके पति बन गये। ५(२०)

आपने रेभकी संकटसे[११] रक्षा की; और अत्रिके तप्त हृदयकी गरमी शान्त की। शयुकी धेनुमे आपने अच्छा दूध उत्पन्न किया और (आपहीकी कृपासे) वन्दनकी आयु बढ़ गयी। ६

(शत्रुओंका) नाश करनेवाले हे सामर्थ्यवान्[१२] देव, जिस तरह पुरानी गाडीकी मरम्मत करके वह नईसी बनजाती है उसी तरह बुड्ढे[१३] वन्दनको आपने फिर जवान बनाया। स्तुतियोंसे सन्तुष्ट होकर विद्वान् उपासकको आपने पृथ्विमेसे फिर उत्पन्न किया। आपकी स्तुति करनेवाले भक्तोंके लिये आपका आश्चर्यकारक कर्म, कल्याणकारी होवे। ७

(भुज्यूके) पिताने उसको त्याग दिया था, इस कारण वह बडे दूरके प्रदेशमे बडा कष्ट उठाता था। उसका दु:ख मिटानेके लिये आप उसकी ओर (दौडते) चले गये। जब आप उसके पास थे तब आपका भक्तकी रक्षा करनेवाला, आश्चर्यकारक और उज्ज्वल सामर्थ्य प्रकट हुआ। ८

उस मधुमक्षिकाने आपकी बहुत स्तुति की और उशीजका पुत्र सोमपान करके सन्तुष्ट होनेके लिये आपको बुलाता है। आप दध्युको भी सन्तुष्ट करते हैं। अश्वके सिरने आपसे सम्भाषण किया था। ९

---

५ अश्विना, वपुषे[१०] युवायुजं युवोः रथं वाणी अस्य शर्ध्यं येमतु। वां पतिस्त्वं सख्याय आ जग्मुषी ये या योषा युवा पती अवृणीत।

६ युवं रेभं परिषूते[११] उरुष्यथ, अत्रये हिमेन परितप्तं घर्मं। युवं शयो गवि अवसं पिप्यथु, वन्दन [illegible]घेण आयुषा प्र तारि।

७ युवं वन्दनं करणा[१२], रथं न जरण्यया निर्ऋतं[१३] वन्दनं युवं स इन्वथ। विप्र यया विप्रं क्षेत्रात् आ जनथ। वां अत्र विधते दसना प्र भुवत्।

८ अस्य पितुः त्यजमानस्य निबाधितं परावति दुःखमान अगच्छत। अभीके युवो ऊती रतः सा[illegible] मह [illegible] चित्रा अभवन्।

९ उत स्या मक्षिका वां मधुमत् अरपत्, सोमस्य मदे औशिज हुव यते। युवं दधीचः मन आ विवासथ अथ अश्व्यं शिरः वां प्रति वदत्।

हे अश्विन, आपने पेदूको जो सफ़ेद अश्व दिया था उससे सब लोग प्रेम करते है। वह शत्रुओंको[14] जीतनेयोग्य है, वह बड़ा तेजस्वी है, युद्धमे उसको कोई जीत नहीं सकता; सब जगह उसकी प्रशंसा[15] होती है और इन्द्रके समान वह सब मनुष्योंसे श्रेष्ठ है। १०(२१)

## सूक्त १२०.

॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–अश्विन ॥

हे अश्विनीदेव, कौनसा यज्ञ आपको सन्तोष देता है? आप दोनोंको किस यज्ञसे आनन्द होता है? अज्ञानी मनुष्य (विना आपकी कृपाके) किस तरह रह सकता है?। १

चाहे अविद्वान् हो अथवा अज्ञानी हो; किसी प्रकारका मनुष्य हो! हरएक मनुष्यको विद्वान् (अश्विनी देवोंकी) सम्मति पूछना चाहिये। क्या सचमुच मर्त्य मनुष्यके विषयमे वे (अश्विनीदेव) कुछ कर नहीं सकते? (वे सब कुछ कर सकते है)। २

आप दोनो अश्विनीदेव विद्वान् है। आपकी हम स्तुति करते हैं और आपको पुकारते है। आप दोनो विद्वान् देव हमे एक सुन्दर स्तोत्र सूचित करेंगे। मै आपका प्रिय भक्त हूं। मै आपको हवि अर्पण करता हू। और आपकी पूजा करता हूं। ३

शत्रुओंका नाश करनेवाले हे अश्विनीदेव, "वषट्" शब्दका उच्चारण करके मैं आपको अद्भूत हवि अर्पण करता हूं। प्रेमसे[1] यह बात मै देवोंको पूछता हूं। बलवान् और चढ़ाई करनेवाले शत्रुओंसे आप हमारी रक्षा कीजिये। ४

---

१० आश्विना, युव पेदवे पुरुवार, स्पृधा[14] तरुतार, अभिद्यु, शर्यै पृतनासु दुस्तर, चर्कृत्य[15], इन्द्र इव चर्षणीसह श्वेत दुवस्थ ।

१ अश्विना, वा का होत्रा राधत्? वा उभयो: जोषे क ? अप्रचेता कथा विधाति ? ।

२ अविद्वान् अचेता इत्था अपर विद्वांसौ इत् दुर पृच्छेत्। मर्ते अक्रौ नु चित नु ? ।

३ ता वा विद्वासा हवामहे। ता विद्वासा न मन्म वोचेत। युवाकु. दयमान. प्र आर्चत् ।

४ दस्रा, वषट्कृतस्य अद्भुतस्य पाक्या[1] न देवान् वि पृच्छामि। युव सह्यस: च रभ्यस: च न पात ।

भृगुकी नाई आपका प्यारा भक्त घोष अपने मूंहसे आपकी प्रशंसा जोरसे करता है। उससे उसकी शोभा बढ़ती है । पज्रका पुत्र विद्वान् इषयू स्तुतियोंके द्वारा आपकी पूजा करता है। (आप उसे पसन्द कीजिये)। ५ (२२)

(आपकी स्तुति करनेके लिये) शीघ्रता[२] करनेवाले भक्तोंकी स्तुति सुनिये। हे अश्विन, जिसने आपकी स्तुति की वह मैं हूं। हे कल्याण करनेवाले देव, हमारी ओर देखिये। ६

सम्पत्ति देनेवाले आप ही हैं और उसको ले जानेवाले भी आप ही हैं। हे वैभव स्वरूप, आप ही हमारी रक्षा करनेवाले हूजिये। और दुष्ट भेड़ियोंसे हमारी रक्षा कीजिये। ७

जो मनुष्य हमारा मित्र नहीं उससे हमारी पहचान न होवे। हमारी दूध देनेवाली गौओंको उनके बछडोंसे[३] दूर मत ले जाइये। ८

आपसे प्रीति होनेके कारण आपके भक्तजन गौओंको दोहते हैं और आपको दूध अर्पण करते हैं। हम आपके मित्र होनेके कारण आप हमारा वैभव बढ़ाइये, हमारी धेनुओंकी वृद्धि होवे और भरपूर धान्य हमें अर्पण कीजिये। ९

---

५ भृगवाणे घोषे या प्र शोभे न, यया पज्रिय विद्वान् इषयु. न वा यजति।

६ तकवानस्य[२] गायत्र श्रुत। अश्विना, अहं चित् वा रिरेभ हि शुभस्पती, अक्षी मा ऽऽ।

७ यत् महः रन् युव हि आस्त युव वा निरततसत, वसू, ता नः सुगोपा स्यात, न अवयो वृकात् पा

८ कस्मै पमित्रिणे न मा अभि धात, न स्तनभुज वेनव अशिश्वी[३] गृहेभ्य अकुत्र मा गु।

९ युवाकु निभितये दुहीयन्। वाजपत्नै राये च न मिमीत, धेनुमत्यै इषे च न. मिमीत।

अश्विनौदेव बड़े सामर्थ्यवान्[३] है । उनका रथ बिना अश्वोके चलता है । वह मुझे मिला[४] है और इस कारणसे मै बड़ा आनन्दित[५] हूं । १०

यह सुख देनेवाला रथ हमेशा[६] मुझे ऐसी जगह धीरे धीरे ले जावें जहां सोमरस तैयार करके रखा हुआ है । ११

वह रथ सोनेवाले और धनका उपभोग न लेनेवाले (मनुष्यको) तुच्छतासे देखता है । दोनो प्रकारके लोगोंका शीघ्रही नाश होता है । १२ (२३) (१७)

## अनुवाक १८.

## सूक्त १२१.

॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–विश्वेदेव,–इन्द्र ॥

मनुष्योंका पालन[१] करनेवाले इन्द्र, यहां शीघ्र आकर भक्तिवान् अंगिरसकी स्तुति कब सुनेगे? जब आप घरमे रहनेवाले मनुष्योंकी ओर चले जाते है तब आप यज्ञकी ओर बड़े गौरवके साथ पैर रखके चले जाते है । १

इन्द्रने ही द्युलोक स्थापित किया । आप जैसे चतुर[२] पराक्रमी पुरुषने मनुष्यको सामर्थ्यका लाभ होनेके लिये धेनुके थनमे पुष्टि देनेवाला दूध उत्पन्न किया । महान् इन्द्रने स्वयम् उत्पन्न किये हुए समुदायको[३] घोडीयो और गौओको अपने दृष्टिसे देखा । २

---

१० वाजिनीवतो अश्विनो. अनश्व रथ असन[४] । तेन अह भूरि चाकन[५] ।

११ अय सुख. रथ जनान् अनु सोमपेय मा समह[६] तनु ऊह्याते ।

१२ अध, स्वप्नस्य अभुजत रेवत च नि विदे । उभा ता वस्रि[७] नश्यतः ।

१ नृन् पात्र[१] इत्था तुरण्यन् देवयता अंगिरसा गिर. कत् श्रवत्? यत् हर्म्यस्य विश प्र आ यत्, यजत्रः अध्वरे उरु क्रमते ।

२ सः द्या स्तभीत् हि । ऋभु[२] नरः वाजाय: गो. धरुण द्रविण पुषायत् । महिषः स्वजां ग्नां[३], अश्वस्य नेना गो मातर, अनु परि चक्षत ।

लाल रङ्गकी उषाके पहिले शीघ्र प्रकाशित[4] होकर अंगिरसके कुलमे उत्पन्न हुए मनुष्योंकी पूजाका आपने स्वीकार किया। जो वज्र आप अपने हस्तमे धारण करते है उसको आपहीने उत्पन्न किया, और मानवजातिको उपयोगी होनेके लिये आपने पशू (चतुष्पाद) और पक्षी (द्विपाद) उत्पन्न किये। उन्हींके लिये आपहीने द्युलोकको स्थापित किया। ३

सोमरसका पान करके आनन्दित होकर (सत्य) यज्ञकर्म अच्छी तरह चलानेके लिये देदीप्यमान् गौओंके झुण्डको आपने बन्धनसे मुक्त किया और उनको फिर ला दिया। तिगुणा[5] स्वरूप धारण करके जब इन्द्र युद्धकी[6] ओर चले गये तब मानव जातिके शत्रुओंके (घरके) दरवाजे आपने तोड़ डाले। ४

जब गौका दूध मातापिताने आपको अर्पण किया, तब मानो, आपको अमृतरूपी पेय[7] ही मिला। इस तरह आपके पोषणका प्रबन्ध किया गया। जो सामर्थ्य[8] और आनन्द देनेवाला दूध आपको मिला वह केवल आपहीके लिये (उत्पन्न किया गया) था। ५ (२४)

(देखिये), उषाके अनन्तर सूर्यकी नाई इन्द्रदेव प्रकाशित होता है और सबको आनन्दित करता है। यज्ञगृहमे यज्ञचमसोसे जितने सोमरसके बिन्दु नीचे गिरते है उतने गरम[9] हवि और स्तोत्र,[10] वे (इन्द्र, सूर्य, उषा,) तीनों मिलकर अपनी ओर खींचलेते है। ६

सूर्यके यज्ञमे लकड़ीके राशिमे (एक) वृषभ बद्ध किया जाता है। उसमे अच्छी अच्छी लकडी डाल दी जाती है। जब वह काठका[11] ढ़ेर जलने लगता है तब आप अपना प्रकाश फैलाते है। इस तरह दिनका काम सरल रीतिसे चलता है। प्रकाशित होनेके लिये जब आप रथमे आरूढ़[12] होते हैं तब हरएक मनुष्य अपने पशूको ढूण्ढते ढूण्ढते अपना काम करनेके लिये शीघ्रतासे चला जाता है। ७

---

३ अरणी: पूर्व्यं तुर: राट्[4] अनु द्यून् अङ्गिरसां विशा इव नक्षत्। नियुत वज्र तक्षत्, नर्याय द्विपदे चतुष्पदे द्या तस्तभत्।

४ अस्य मदे अपिवृत उस्रियाणा स्वर्यं अनीक ऋताय दा. यत् ह त्रिककुप्[5] प्रसर्गे[6] निवर्तत् मानुषस्य दुर दुर अप व:।

५ यत् सवर्दुघाया उस्रियाया: पय (पितरौ) ते शुचि रेक्ण[7] अयजन्त, तुरणे भुरण्यू पितरौ यत् राध तुरस्य[8] पयः अनीता, तुभ्य।

६ अध प्र जज्ञे। तरणि: ममत्तु। अस्या उषस सूर न प्र रोचि, येभि जरणा[9] स्वेदद्यै[10] वाम आन त्वेण सिचन् इन्दु आष्ट।

७ सूर अद्वरे गो: रोवना स्विग्मा वनधिनि[11] यत् अद्वरे अप्रगा, यत् ह ऋभ्वान् अनु द्यून् प्रनानि, नर विशे, पश्वे, तुराय।

देदीप्यमान् झरना उत्पन्न करके युद्ध करनेके लिये द्युलोकसे आप आठ घोड़े ले आये। उस समय आपके भक्तोने, आपको आनन्दित करनेके लिये अपने यज्ञपाषाणसे सोमरस तैयार किया। वह सोमरस उबलाया[13] गया था। उसमे दूध मिलानेके कारण वह तीव्र बना हुआ था और पीला दिखाई देता था। ८

हे इन्द्र, आपको आपके भक्तगण पुकारते है। जब आपने कुत्सपर प्रसन्न[14] होकर असंख्य शस्त्रोंसे शुष्णको घेर लिया तब द्युलोकसे लाया हुआ लोहेका पत्थर आपने कुशलतासे[15] गोफनके[16] द्वारा ( शुष्णपर ) फेक दिया। ९

हे वज्रधारी इन्द्र, जब अन्धःकारने सूर्यको घेर[17] लिया तब आपने अपना शस्त्र मेघपर फेक दिया। शुष्णका जो बल सब द्युलोकको व्याप्त करता था उसका आपने नाश किया। १०(२५)

हे इन्द्र, द्युलोक और भूलोक बिना पैयेके चलते है। वे श्रेष्ठ है। वे आपका पराक्रम देखकर आनन्दित होते है। आप सबसे श्रेष्ठ है। जलमे[18] छुपे हुए वृत्र (वराहको) आपने अपने वज्रसे मार डाला। ११

हे इन्द्र, जिन मनुष्योंकी आप रक्षा करते हैं उनका आप कल्याण करते हैं। वायुके बलवान् और अच्छे अश्वोपर आप आरूढ़ हूजिये। उशनाकाव्यने जो आनन्द देनेवाला वज्र आपको अर्पण किया है उसका उपयोग[19] वृत्रको मार डालनेके लिये आप कीजिये। १२

---

८ द्युनरुह उत्स योध.न मह. दिव. अष्टा हरी इह आद, यत् वाताप्य[13] गोरभस ते मन्दिन दुरि अद्रिभि. धुक्षन्।

९ पुरुहूत, कुत्साय वन्वन्[14] यत्र अनन्तै वधै शुष्ण परियासि, दिव: आनीत आयन अश्मान ऋभ्वा[15] गो[16] प्रति वतय।

१० अद्रिव, तमस सूर अपीते[17] पुरा यत् हेति त फलिग अस्य, शुष्णस्य चित् यत् दिव· परि परिहित सुग्रथित ओज, तत् आ अद।

११ इन्द्र, अचक्रे मही पाजसी द्यावाक्षामा त्वा अनु कर्मन् मदता। मह त्व सिरासु[18] आशयान वराहु वृत्र वज्रेण क्षिस्वप.।

१२ इन्द्र, यान् नृन् अव नर्य वातस्य सुयुज वहिष्ठान त्व तिष्ठ। उशना काव्य य मन्दिन ते दात्, पार्य[19] वृत्रहन वज्र ततक्ष।

हे इन्द्र, आपने सूर्यके पीले रंगके अश्वको[20] रोका[21]। एतशाने उसके पैये नहीं खींचे। जो लोग आपकी पूजा नहीं करते उनको आप नव्वे नदीयोके परे ले जाकर गढ्ढेमें फेंक देते हैं। १३

हे वज्रधारी इन्द्र, पाप और संकटसे हमारी रक्षा कीजिये। हमे ऐसा सामर्थ्य दीजिये जिससे हम अपना पेट भर सके, हमारी कीर्ति बढे, हमे सैंकडो रथ प्राप्त होवे, सची और मीठी वात सुने, और हमे सैकडो अश्व मिले। १४

हे सामर्थ्यवान् इन्द्र, हमपर आपकी कृपा वनी रहे, हमे बहुत धनधान्य प्राप्त होवें। हे उदार इन्द्र, आप सबसे श्रेष्ठ हैं। इसलिये आपकी कृपासे हमे धेनुओंका लाभ होवे। आप यहां वैठिये, और हम आपको हवि[22] अर्पण करते है। हम सब आनन्दमे रहे। १५(२६)(८)(१)

---

१३ इन्द्रा, त्वं सूरः हरितः रून्[20] रमयः[21] अध एतशः चक्रं न भरत् अयज्यून् नाव्याना नवतिं पार ग्रास्य कर्तं अपि अवर्तयः।

१४ वज्रिवः इन्द्र; अभीके दुरितात् अस्याः दुर्हणायाः त्वं नः पाहि। इषे, श्रवसे, सुनृतायै, रथ्यः अश्वबुध्यान् वाजान् नः प्र यन्धि।

१५ सा ते सुमतिः असत् मा वि दसत्। वाजप्रमहः इष स वरन्त। मघवन्, अर्यः गोषु नः भज, ते वृष्ण[22] सधमादः स्याम।

॥ अष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥

॥ प्रथमोऽष्टकः समाप्तः ॥ १ ॥

द्वितीय अष्टक । प्रथम मण्डल ।

# ॥ ऋग्वेद ॥

[ प्रथम अध्याय ] [ अष्टादश अनुवाक ]

## सूक्त १२२

॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–विश्वेदेव ॥

हे ऋत्विज, आप बडे उत्साही और चञ्चल है। अब अपना पेय, हवि और यज्ञ रुद्रको अर्पण कीजिये। आप (रुद्र) सिद्धि देनेवाले हैं। आकाशमे रहनेवाले परमेश्वरकी कृपासे वे पराक्रमी मरुत् अन्तरिक्षमे अपने बलसे रहते हैं। १

प्रथम आहुति पूर्ण उत्साहके साथ अर्पण करनेके लिये उषा और रात्रिकी कृपा प्राप्त करनी चाहिये। उषा और रात्रि नूतन वधूकी नाई अपने शरीरको शोभायमान करती है। उनमेसे एक (रात्रि) विजलीरूपी वस्त्र पहिनकर चमकती है, और दूसरी (उषा) प्रातःकालमे सूर्यके किरणोसे शोभायमान दिखाई देती है। २

अन्धकारका नाश करनेवाला और आकाशमे सञ्चार करनेवाला सूर्य हमे आनन्दित करे। जलकी वर्षा करनेवाला वायु हमे आनन्दित करे। हे इन्द्र और पर्वत, हमारी बुद्धि कुशाग्र होवे, और सब देव मिलकर हमे सब वस्तुओका लाभ करा दे। ३

मै उशिजाका पुत्र हूं। आप संसारका पालन करनेवाले है। आपका कभी नाश नहीं होता है। आप दोनो यश देनेवाले है और इसलिये प्रातःकालके समय मै आपको (दोनो अश्विनको) बुलाता हूं। आप अपने अग्निकी क्रमसे स्तुति कीजिये। अग्निको प्रकट करनेवाली दोनो लकडीयोको अपने सामने रखिये। यह अग्नि आकाशमे रहनेवाले जलमे भी प्रकट होता है। बडे जोरसे चिल्लाकर यह अग्नि आपने भक्तोको आशीस देता है। ४

---

१ हे रघुमन्यव (यूय) व पान्त अध यज्ञ (च) मीळ्हुषे रुद्राय प्र भरध्वम्, (अहच) असुरस्य दिव वीरै रुपुध्यव रोदस्यो (स्थितान्) मरुत अस्तोषि।

२ पूर्वहूति वावृधध्यै उषासानक्ता पुरुधा विदाने (स्तवनीये)। (तयो एका) स्तरी न व्युत अत्क वसाना, (अपरा) सूर्यस्य श्रिया हिरण्ये (इव) सुदर्शी।

३ परिज्मा वसर्हा न ममत्तु अपा उपब्दवान् वात ममत्तु, हे इन्द्रापर्वता युव न शिशीतम्, तत् विश्वेदेवा न वरिवस्यन्तु।

४ उत औशिज श्वेतनाये, त्वा मे यशसा व्यता पाता हुवध्यै (प्रवृत्तः), (यूय) व अपा नपात प्र कृणुध्वम्, रशिपनस्य आयो मातरा प्र (कृणुध्वम्)।

मै उशिजाका पुत्र हूं। आपके लिये जोरसे चिल्लानेवाले अग्निकी मैं स्तुति करता हूं। कोढ
रोगका नाश होनेके लिये घोषाने भी इस प्रकार आपकी स्तुति की थी । आपहीके लिये
दानी पूषाकी कृपा मै प्राप्त कर लेता हूं और धनका लाभ होनेके लिये मैं अग्निसे प्रार्थना
करता हू। ५(१)

हे मित्र और वरुण, मेरी पुकारकी ओर ध्यान दीजिये। जब आप अपने घरमे रहते हैं
तब भी मेरी प्रार्थनाकी ओर ध्यान दीजिये । चारो तरफसे मैं आपकी प्रार्थना करता हूं।
हमारी पुकार शीघ्रतासे सुननेवाला सिन्धु भी हमारी स्तुति सुने। आपका दान सबको
विदित ही है। यह सिन्धु उपजाऊ प्रदेशको अपने जलसे भर देता है। ६

हे मित्र और वरुण, पज्र कुलमे उत्पन्न हुए मुझको अनेक यज्ञके समय आपने सैकडो
गौधनका दान प्रदान किया है। उसका स्मरण करके मै आपके दानी स्वभावकी बडी स्तुति
करता हूं। जिनके रथका दर्शन होते ही प्रेम उत्पन्न होता है वे मित्र और वरुण रथमे
वैठकर वैभवके साथ आते हैं। ७

जिनका वैभव वहुत वडा है उन (परमेश्वरके) दानी स्वभावकी मैं वहुत प्रशंसा करता
हू। आप वडे पराक्रमी है। हम सब मिलकर आपके गुणोकी प्रशंसा करते हैं। पज्र कुलमे
उत्पन्न हुए मुझको आपहीने पवित्र सामर्थ्य अर्पण किया। घोडोपर सवार होकर मुझे
सहायता देनेके लिये वीर पुरुषोके मनमे (बुद्धिवान्) आपही प्रेरणा उत्पन्न करते हैं। ८

हे मित्र और वरुण, खुले तौरपर लोगोका द्वेष करनेवाले, सोमरसका पान करके आपकी
सेवा न करनेवाले, और कपटसे दूसरे लोगोका नाश करनेवाले दुष्ट लोगोको जब विदित
होता है कि सदाचारी भक्तोकी सेवा अच्छी तरह सफल हुई है, तब उनके हृदयमे एक
प्रकारका रोग (चिन्ता) उत्पन्न होता है। ९

---

५ औशिज व (अयं) हवण्यु आ हुवध्यै शस (कर्तुं प्रवृत्त), अर्जुनस्य नशे घोषा इव, व (अयं) [illegible]नवे पूष्णे आ प्र (वोचेय), अग्ने वसुताति अच्छा वोचेय।

६ हे मित्रावरुणा म इमा हवा श्रुतम्, उत सदने (अपि) विश्वत सीम् श्रुतम्, सुश्रातु सिन्धु न [illegible]तु, (अय) श्रोतुराति सुक्षेत्रा अद्रि (पिपर्ति)।

७ हे वरुण मित्र वा वृक्षयामेषु पज्रे (मयि) सा गवा शता राति स्तुषे, प्रियरथे श्रुतरथ सद्य पुष्टि दधाना (ताच) निरुवानास: अग्मन्।

८ (अहम्) अस्य महिमघस्य राध स्तुषे, (वय) सुवीरा नहुष (अत) सचा सनेम, (अपिच) या जन पज्रेभ्य वाजिनीवान् (अस्ति), अश्वावत रथिन. मह्य सूरि. हि (चास्ति)।

९ मित्रावरुणौ य जन अभिध्रुक व अपा न सुनोति अक्ष्णयाध्रुक् च, स यत् ऋतावा होत्राणि हम् आप (इति पश्यति तदा, स्वय हृदये यक्ष्म नि धत्ते।

दूसरी ओर उपर्युक्त भक्तगणोंकी इतना शीघ्र उत्कर्ष होता है कि सब लोग आश्चर्य करते हैं। पराक्रमी पुरुषोंमें भी वे भक्तगण दिनपर दिन बलवान् होते हैं। सब लोगोंमें उनकी कीर्ति बढती हुई सब दूर फैलती है, चाहे जैसा संकट होवे, दानी और पराक्रमी भक्तगण, ऐसे बडे संकटसे भी अपनी रक्षा करते हैं। १०(२)

हे देव, जब भक्तगण आपको बुलाते हैं तब आप शीघ्रतासे आईये। हे देव, भक्तगणोंको सहज रीतिसे आप अमरत्वका पद दे सकते हैं। आकाशतक आप सहज रीतिसे जा सकते हैं। पराक्रमी पुरुषोंको सहायता देनेवाला कोई नहीं है । आप उनकी प्रार्थना सुनिये। आप उनको ऐसा सामर्थ्य दीजिये जिससे उनकी सब जगह प्रशंसा होवे। ११

प्रत्यक्ष रीतिसे देव कहते हैं कि 'जिन भक्तोंके यज्ञमें दस प्रकारके हवियोंका स्वीकार करनेके लिये हम जाते हैं उन भक्तोंका सामर्थ्य बहुत बढ जाता है'। जो पराक्रम और सामर्थ्यका केवल स्थान है ऐसे सब देव यज्ञमें हमें पवित्र सामर्थ्य प्राप्त करा दे। १२

कभी कभी देव अपने वचनसे कहते हैं कि 'चलिये, ये ऋत्विज दस प्रकारका हविरूपी अन्न लेकर हमारी ओर आये हैं, इसलिये हम उसका स्वीकार करते हैं'। इष्टाश्व अथवा इष्टरश्मि हमारे भक्तोंसे अधिक क्या कर सकते हैं? लोगोंपर अधिकार चलानेवाले और यश सम्पादन करनेवाले हमारे भक्त सचमुच शोभायमान दिखाई देते हैं। १३

कानमें सुवर्णके कुण्डल और गलेमें जेवरका हार पहिने हुए शरीरका लाभ सामर्थ्यवान् देवकी कृपासे हमें प्राप्त होवे। स्वयंस्फूर्तिसे हमारे मुखसे निकलनेवाली स्तुति और स्तोत्र देदीप्यमान देव बड़े प्रेमसे सुने। १४

---

१० सः (ऋतावा) दसुजूतः, बाधत. नहुषः शर्धस्तरः, नरां गूर्तश्रवाः, विश्वासु पृत्सु (सः) विसृष्टरातिः शूरः सदमित् वाळ्हसत्वा याति।

११ अध सूरे नहुष हवम् ग्मन्त, हे अमृतस्य मद्रा राजान (यूय) नभोजुव (तत्) रथवते महिना प्रशस्तये (यथा भवेत् तथा) निरवस्य राध श्रोत।

१२ यस्य सूरे दशतयस्य (धासेः) नशे (वय आगताः तस्य) एत शर्ध धाम इति (देवाः) अवाचन्, येषु द्युम्नानि वसुतातिश्च ररन् ते विश्वेदेवा प्रभृथेषु वाजम् सन्वन्तु।

१३ "यत् द्वि पञ्च अन्ना विभ्रतः यन्ति (तस्मात्) दशतयस्य धासेः मन्दामहे" (इत्यपि ब्रुवन्ति)। किम् इष्टाश्वो वा इष्टरश्मिर्वा (करिष्यति)। एते ईशा नास तरुपश्च (भक्ताः) नृन् ऋञ्जते।

१४ (यत्) हिरण्यकर्णं मणिग्रीवम् अर्ण तत् विश्वेदेवा न वरिवसन्तु। असे उभयेषु (विषये) सद्यः आ जग्मुषीः गिर उस्रा अर्य आचकन्तु।

मशर्शारके चार पुत्र और बड़ा बलवान् राजा आयवसके तीन पुत्र मुझे अब सता नहीं सकते। इसका कारण यह है कि, हे मित्र और वरुण, आपका बडा रथ अब दिखाई देने लगा है। उसके किरण भी बड़े सुन्दर दिखाई देते है। स्वयं वह रथ बड़ा तेजस्वी दिखाई देता है। १५ (३)

## सूक्त १२३.

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-उषा ॥

यह उषा बडी सुन्दर दिखाई देती है। देखिये। उषाका बड़ा रथ जोता हुआ बिलकुल तैयार दिखाई देता है। उस रथकी चारो ओर तेजोमय प्रकाशका गोला चमकता हुआ दिखाई देता है। काले अन्धेरेसे बाहर निकलकर प्रकाशमान उषा लोगोपर उपकार करनेके लिये अपना प्रकाश फैलाती हुई दिखाई देती है। १

जब सब लोग सोते है तब उषाही सबसे पहिले जागृत होती है। उषा मनसे भी अधिक पवित्र और सामर्थ्यवान् है। आप सबसे श्रेष्ठ हैं। आप सबसे अधिक उदार हैं। हमेशा युवा अवस्थामें रहनेवाली सुन्दर उषा वारवार आकाशमें जन्म लेती है और वहांसे उच्च स्थानसे जगत्की चारो ओर दृष्टि फेकती है। प्रथम हवि अर्पण करनेके समय सबसे पहिले उषा आ पहुंचती है। २

हे उषादेवी, आप सबसे उच्च स्थानमें जन्म लेती है और सब मनुष्योंकी रक्षा करती है। प्रत्येक दिनका सुख और दुःखका भाग हरएक मनुष्यको आप बाट देती है। हे उषादेवी, आप हमारी ओरसे स्वयं प्रकाशमान सूर्यको ऐसा कहिये कि हम बिलकुल निष्पाप है। वह सूर्य अब प्रकाशमान होनेवाला है। वह सबको चैतन्य दिलाता है। ३

प्रत्येक दिन उषादेवी भिन्नभिन्न प्रकारका पोषाक पहिनकर प्रकाशमान होती है। आप सब मनुष्योंको मिलती है। सज्जनलोगोपर अनुग्रह करनेके लिये तेजोमय उषादेवी बडे उत्साहके साथ आ रही है। जगत्में जितनी जितनी सुन्दर वस्तुए है उन सबोंका रस (उपभोग) उषादेवी अपने प्रकाशके द्वारा चख लेती है। ४

---

१५ मशर्शारस्य चत्वार जिष्णो आयवसस्य राज्ञ त्रय शिश्व मा (अधुना न पीडयन्ति, यत) हे वरुण वा दीर्घाप्सा स्यूमगभस्ति रथ सूरो न अद्यौत।

१ दक्षिणायाः (उषसः) पृथु रथ अयोजि, एनम् अमृतास देवास आ अस्थु। अर्या विहाय मानुषाय क्षाय चिकित्सन्ती कृष्णात् उदस्थात्।

२ विश्वस्मात् भुवनात् पूर्वा अबोधि, (सा) वाज जयती बृहती सनुत्री, युवति पुनर्भू व्यख्यत्, उषा पूर्वहूतौ प्रथमा आ अगन्।

३ हे देवी सुजाते उषा यत् (त्व) मर्त्येभ्य, अद्य नृभ्य भाग विभजासि, अत्र देव दमूना सविता न सूर्याय अनागस इति वोचति।

४ दिनेदिने नामा अधि दधाना अहना गृह गृह अच्छ याति, सिषासन्ती द्योतना च (उषा) शश्वत् आ अगात्, वसूनाम् (च) अग्रमग्रम् इत् भजते।

हे उषादेवी, यह बात विदित हुई है कि आप भगवान् सूर्यदेवकी बहिन है। वरुणदेवकी भी आप नातेदार है। हे उषादेवी, सत्य और मनोहर स्तोत्र गानेकी प्रेरणा करनेवाली आपही है। सबसे पहले हम आपहीकी स्तुति करते है। पापकर्म करनेवाला जो मनुष्य है वह ठोकर खाकर नीचे गिर जाय। आप सदाचारी है, इस लिये आपकी सहायतासे हम पापी मनुष्यका एक क्षणमे नाश कर सकेगे। ५(४)

अब हम सत्य और मनोहर स्तोत्र गाना शुरू करता हूं। कविकी प्रभा काव्यके द्वारा प्रकट होवे। प्रात कालके समय अग्निकुण्डमे जो अग्नि है वह प्रदिप्त हो रहा है। जगत्मे जितना धन आजतक अन्धेरेमे छुपा हुआ था वह सब धन उषाके प्रकाशके कारण अब प्रकट हुआ है। वह धन अब दिखाई देता है। ६

जब उषा दिखाई देती है तब रात अन्धेरेमे चली जाती है। इस तरह वर्षरूप पुरुषके ये दोन भाग है। रात और उषा अनुक्रमसे छोटी बडी होती है और एकके पीछे दूसरी चली जाती है। उषा और रात जब पृथ्वीपर सञ्चार करती है तब दोनो भिन्न स्वरूप धारण करती है। जब रात सब दूर अन्धकारको फैलाकर चली जाती है तब उसके पीछे उषा अपने प्रकाशके साथ रथमे बैठकर चली आती है। ७

जिस तरह उषा वरुणका रहनेका स्थानमे आज प्रकाशमान दिखाई देती हैं उसी तरह वह कल भी दिखाई देगी। इस तरह रात्रि और उषा लम्बे चौडे आकाशमे सञ्चार करती है। उनको कोई दोष नही लगा सकता। वे दोनों निष्पाप है। वे निष्कलंक है। वे दोनो तीस दिन तक आकाशकी परिक्रमा करती है। इस तरह वे दोनो नियत समयपर अपना अपना काम पूरा करती हैं। ८

नये वर्षका नया दिन बतानेवाली उषा अपने श्वेत रग और तेजोमय प्रकाशके साथ गहिरे और काले अन्धकारसे बाहर निकलती हुई दिखाई देती है। उषा हमेशा अपना काम करनेमे मग्न हुई दिखाई देती है। तथापि सूर्यका नियत मार्ग छोड़कर उषा अपनी मर्यादाको नहीं उल्लघन करती है। ९

---

५ (हे) भगस्य स्वसा वरुणस्य जामि, हे सूनृते उष प्रथमा जरस्व। य अघस्य धाता स पश्चात् दघ्या. त दक्षिणया रथेन जयेम।

६ सूनृता उदीरता पुरधी. उदीरता, अग्नय. च शुशुचानास. उदस्थु। स्पार्हा वसूनि तमसा अप गूळ्हा (आसन् तानि) विभाती उषस. आवि कृण्वन्ति।

७ अन्यत् अभि एति अन्यत् अप एति, (एतावता संवत्सरस्य) विषुरूपे अहनी सं चरेते। (तयो) परिक्षितो अन्या तम गुहा अक, (अन्या) उषा च शोशुचता रथेन अद्यौत्।

८ सदृशी. अद्य, सदृशी इत् उ श्व (एतादृश) वरुणस्य दीर्घं धाम सचन्ते। अनवद्या (ता) एकैका त्रिंशत योजनानि (सद्य) क्रतु सद्य परि यन्ति।

९ (संवत्सरस्य) प्रथमस्य अह्न. नाम जानती (सा) शुक्रा श्वितीची कृष्णात् अजनिष्ट। (एषा) योषा अहरहर निष्कृतम् आचरन्ती ऋतस्य धाम न मिनाति।

उषाके अवयव कैसे हृष्ट पुष्ट दिखाई देते हैं! नयी वधूकी नाई तेजोमय उषा अपने
देदीप्यमान पतिकी ओर चली जाती है। उषाका पति सूर्य भी उसके लिये मोहित हुआ
है। तू भी मुस्कराती और चमकती हुई अपना वदन और छाती खुली रखकर उसके सामने
चली जाती है। तुम अपने युवा अवस्थामें हो; इस लिये तुमारे लिये यह बात ठीक ही है। १०

जिस तरह माता अपनी पुत्रीका शरीर पानीसे स्वच्छ करके सजाती है उस तरह, हे
उषा, आप अपने सुन्दर अवयवोंको शोभायमान करके प्रकट करती है। आप प्रकाशमान
हूजिये और हमें प्रकाश अर्पण करके हमारा ऐसा कल्याण कीजिये जिसकी बराबरी दूसरी
उषा न कर सके। ११

ये उषाएं बडी चञ्चल है। (ज्ञान देनेवाला) प्रकाश भी आपके पास भरा हुआ है।
सुन्दर सुन्दर वस्तुएं आपके पास है। आप सूर्यकिरणोंके साथ स्पर्धा करते करते गुप्त हो
जाती हैं। फिर आप प्रकट होती हैं। इस तरह कल्याण करनेवाले रूपोंको धारण करती
हुई आप (उषाए) चली जाती है और फिर आ जाती है। १२

हे उषा, सत्यस्वरूप सूर्यकिरणोंके साथ आपका स्वरूप मिल जाता है। आपकी कृपामे
कल्याण करनेवाला सामर्थ्य हमे प्राप्त होवे। हे उषा, आज हम आपसे हार्दिक प्रार्थना
करते हैं। हमारे लिये आप अच्छा प्रकाश दीजिये। हम और हमारे स्वामी दोनोंके लिये
बहुत धनका लाभ आप करा दीजिये। १३(१)

## सूक्त १२४.

ऋषि–कुक्षीवान् । देवता–उषा ॥

अब अग्नि प्रज्वलित हुआ है। उषादेवी अन्धकारका नाश करके अपना प्रकाश फैलाती
है। सूर्यका उदय भी अब होनेवाला है। उषा और सूर्यके प्रकाशसे सब दिशाए शोभायमान
हुई है! सब दूर चैतन्य उत्पन्न करनेवाला प्रकाशमय भगवान् सूर्य हमारे लिये पृथ्वीके सब
वस्तुओंको जगाता है। और इसी कारण हम जैसे प्राणि, चाहे मनुष्य हो अथवा पशु हो,
अपना अपना काम अच्छी तरह कर सकते है। १

---

१० तन्वा शाशदाना कन्येव हे देवि त्व इयक्षमाण देव एषि। युवति. (त्व) सस्मयमाना निगाली न (अग्र) पुरस्तात् वक्षांसि आविः कृणुषे।

११ मातृमृष्टा सुमकाशा योषा इव (त्व) तन्व दृशे क आविः कृणुषे। हे उष त्व भद्रा वितर व्युच्छ, तत् ते (तेज) अन्या उषस न नशन्त।

१२ (इमा) अश्वावती गोमती विश्ववारा च, सूर्यस्य रश्मिभि यतमाना परा यन्ति च पुनः आ यन्ति, (एव) उषस भद्रा नाम वहमाना (वर्तन्ते)।

१३ ऋतस्य रश्मिम् अनु यच्छमाना (त्व) भद्र भद्र क्रतु अस्मासु धेहि। हे उष न अद्य सुहवा वि उच्छ, मघवत्सु (दजमानेषु) अस्मासु च राय स्यु।

१ समिधाने अग्नौ उषा उच्छन्ती सूर्य इ उद्यन् ज्योति उर्विया अश्रेत्। देव सविता न ... अर्थं तु द्विपत् चतु पत् इ प्रासावीत्।

ईश्वरके नियमको न तोड़ती हुई उषादेवी मनुष्योकी आयुके कालको केवल कम करती है। आजतक जितनी उषाएं चली गयी उनमे यह उषा प्रसिद्ध है, और आगे आनेवाली जितनी उषाएं हैं उनमे भी आज उगनेवाली उषा उत्तम है। २

देखिये। आकाशकी कन्या उषा पूर्व दिशाकी ओर दिखाई देने लगी। पराक्रमी स्त्रीकी नाई यह उषा प्रकाशरूपी वस्त्रको पहिनती है। और जो मार्ग सूर्यने नियत किया है उस मार्गसे चतुर स्त्रीकी नाई यह उषा चली आती है। वह अपने मार्गको कभी भूलती नहीं। ३

देखिये। मानो, उषा अपना शुभ्र और उज्ज्वल वक्षस्थल सबको दिखलाती है। जिस तरह कवि हृदयके भावोका वर्णन करके मनको प्रकट करता है उस तरह उषा अपना प्रकाश फैलाकर पृथ्वीकी सुन्दर वस्तुओंको दिखलाती है। जिस तरह घरका स्वामी अपने बालबच्चोको उठाता है उस तरह उषा सब विश्वको जगाती है। उषा हमको नहीं छोडती, किन्तु बारवार हमारी ओर आती है और हमे आनन्दित करती है। ४

भाफसे भरी हुई पूर्व दिशाकी ओर प्रकाश देनेवाली उषाने आकाशमे अपना झण्डा लगाया है। उसका प्रकाश दूर तक फैला हुआ है। अन्तरिक्षरूपी मातापिताकी गोदमे बैठकर उषा अन्तरिक्षकी चारो ओर अपना प्रकाश फैलाती है और अपने प्रकाशसे आकाश भर देती है। ५ (७)

उषादेवि बड़ी उदार है। इस लिये आप सबको अपने प्रकाशके द्वारा अपना दर्शन देती है। पृथ्वीमे कोईभी प्राणी ऐसा नहीं है जिसको उषाका दर्शन नहीं होता है। तेजस्वी उषा अपने स्वच्छ प्रकाशके कारण बिलकुल साफ साफ दिखाई देती है। उषादेवी किसीको चाहे बड़ा हो अथवा छोटा हो—तुच्छ नहीं समजती। ६

---

२ दैव्यानि व्रतानि अमिनती, मनुष्या युगानि प्रमिनती (एतादृशी) उषा शश्वतीना ईयुषीणा उपमा आयतीना च प्रथमा वि अद्यौत्।

३ एषा दिव दुहिता सचना ज्योति वसा ना पुरस्तात् प्रति अदर्शि। ऋतस्य पन्थाम् प्रजानतीव साधु अनु एति, दिश. न मिनाति।

४ (पश्य असा) शुन्ध्युव न वक्ष उपो अदर्शि, नोधा इव प्रियाणि आविरकृत। अद्मसत् न ससत बोधयन्ती (सती) शाश्वतमा एयुषीणाम् पुन॰ (न) आ अगात्।

५ अपूर्वस्य रजस पूर्वे अर्धे गवा जनित्री केतु अकृत। (यस्मिन्) पित्रो उपस्था (सा आसीना ते) उभा (तेजसा) आ पृणन्ती, विउ वितर वरीय प्रथते।

६ हरो क एव इत् एषा पुरतमा (विभाति), न अजामि न च जामिं परिवृणक्ति। (कितु) अरेपसा तन्वा शाशदाना विभाती न अर्भात् न महू (च) ईषते।

उषादेवि जब हमारे जैसे वीरोंके सामने आती है तब वह अकेली राजकन्याकी नाई न्यायासन पर बैठकर न्यायनीतिके अनुसार सबको धन बाटती है। जिस तरह युवा स्त्री वस्त्र और अलंकारोंसे निजको सजाकर अपने पतिकी ओर चली जाती है, उसी तरह उषा बड़े ठाठ़से सुन्दर स्त्रीकी तरह चलती हुई और अपना सौन्दर्य और तेज कुशलतासे प्रकट करती हुई चली आती है। ७

छोटी बहिन ( रात्रि ) बड़ी ( उषा ) के लिये अपने स्थानको खाली करती है। मानो, उसकी ओर देखते देखते वह चली गयी। जब बड़ी बहिन उषा अपने प्रकाशके साथ प्रकट होती है तब मानो, मालूम होता है कि बिजली स्वयं चमक रही है। ( अथवा अलंकारसे सजी हुई युवा स्त्रीया ठाठ़से मेलेमे ( व्याहमे ) निकली हुई है। ८

प्रत्येक दिन यह विदित होता है कि, इन बहिनोमे जब पहली उषा चली जाती है तब उसके स्थानमे दूसरी नई उषा आ जाती है। इससे यह साफ साफ विदित होता है कि भविष्यतमे आनेवाली सब नई उषाएं पुरानी उषाओंकी नाई हमारा कल्याण करे और दिन-पर दिन हमारा आनन्द बढ़ावे। ९

हे उदार उषादेवि, उदार शूर पुरुषोंको जागृत कीजिये। कंजूस दुष्ट लोग सोते रहे। वे हमेशा आलसी रहे। हे उदार उषादेवि, भक्तगणोंको धन देकर उनका वैभव बढाईये। हे उषादेवि, सत्य और मधुर वचन कहनेके लिये आपही प्रेरणा करती है। कवियोको बुद्धि देनेवाली आपही है। इस लिये आप भगवान् सूर्यकी स्तुति करनेवाले भक्तगणोंको धन देकर शोभायमान कीजिये। १०

देखिये। उषादेवि अपने सौन्दर्यके साथ सबके सामने आती हुई दिखाई देती है। उषाने अपने रथको जो घोडे जोते है वे सब लाल रंगके ही है। उसकी प्रकाशरूपी तेजोमय ध्वजा आकाशमे सब दूर चमकती हुई निश्चयसे शीघ्रही दिखाई देगी। उसके अनन्तर हरएक घरमें अग्निकी स्तुति सुनाई देगी। ११

---

७ अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची, गर्तारुक् इव सनये धनानाम् ( एति )। ( अपि च ) पत्ये उशती सुवासा इव जाया उषा हस्रा इव अप्स नि रिणीते।

८ ( कनीयसी ) स्वसा ज्यायस्यै स्वस्रे योनिम् अरैक्, ( अपि च ) अस्याः प्रतिचक्ष्येव अप एति। रश्मिभिः व्युच्छन्ती ( उषा ) समनाः ( विद्युता ) इव अञ्जि अक्त।

९ आसां पूर्वासां स्वसॄणाम् ( एतद् दृश्यते यत् ) अहसु अपरा पूर्वाम् पश्चात् अभि एति। ( तस्मात् ) नूनम् ताः सुदिनाः नव्यसीः उषसः प्रत्नवत् अस्मे रेवत् उच्छन्तु।

१० हे मघोनि उषः, पृणतः प्र बोधय, अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु। हे मघोनि, सूनृते, जरयन्ती मघवद्भ्यः रेवत् उच्छ, स्तोत्रे च रेवत् उच्छ।

११ इयं युवतिः पुरस्तात् अव अश्वैत्, ( इयं ) अरुणानां गवां अनीकं युङ्क्ते। नूनम् अग्नेः ( आग्नेः ) केतुः वि प्र उच्छात्, गृहं गृहं अग्निः उपतिष्ठाते।

हे उषा देवि, आपका प्रकाश दिखाई देते ही सब पक्षी अपने घोसलोंसे बाहर निकलकर उडने लगते है। अन्नकी चिन्तामे लगे हुए लोग अपना अपना उद्योग करने लगते है। किन्तु दानशील और सद्धर्म करनेवाले लोग (अग्निको) हवि अर्पण करते हुए घरमे ही बैठते हैं। तथापि घर बैठे बैठे हवि अर्पण करनेवाले लोगोंको भी आप उनके घर जाकर बहुत धन प्रदान करते हैं। १२

हे महाभाग उषाओ, मेरी बुद्धिके अनुसार मैंने आपकी स्तुति की है। उससे आप सन्तुष्ट भी हुए है। हे प्रेम करनेवाली देवि, अब हमे ऐसा सामर्थ्य दीजिये जिसकी बराबरी कोई न कर सके। १३ (९)

## सूक्त १२५.

॥ ऋषि–कक्षीवान्। देवता–दम्पती ॥

अतिथिने प्रातःकालमे आकर, अपने पासके सब रत्न (अपने पिताको) अर्पण किया। उसने (पिताने) उन रत्नोंको देखकर उनका स्वीकार किया। जिस पराक्रमी राजाने योग्य पुरुषको धन अर्पण किया था उसको बहुत धनका लाभ हुआ और उसको दीर्घकालतक आयु प्राप्त हुई। दिनपर दिन उसका धन भी बढ़ने लगा। १

उस राजाको ज्ञान, गोधन, अचिर सम्पत्ति, और अच्छे अच्छे घोडे प्राप्त होवे। इन्द्र हमेशा उस राजाको युवा अवस्थामे रखता है। जिस तरह सिकारी पक्षीको अपने जालमे फसाता है उस तरह, देखो, हे अतिथि, उस (राजाने) तुमको सम्पत्ति देकर तुम्हे अपने धनसे बाधकर रखा है। २

यज्ञकर्मनिष्ठ पुरुषके योग्य पुत्रको मिलनेके लिये मैं आज सवेरे रथमे भरपूर धन भरकर यहा आया हूं। इस लिये उस बड़े पुरुषको सोमलतासे निचोडा हुआ और आनन्द देनेवाला रस अर्पण कीजिये। पराक्रमी पुरुषोंको सहायता देनेवाले रुद्रकी सत्य और मधुर स्तोत्रोंसे स्तुति कीजिये। ३

---

१२ त्वदुष्टौ वयश्चित् वसते उत् अपप्तन्, येच नरः दितुभाजः (तेऽपि अपप्तन्)। (पर) अमा सते दाशुषे मर्त्याय हे देवि उषः त्वम् वामम् भुरि वहसि।

१३ हे स्तोम्या उषसः मे ब्रह्मणा (यूय) अस्तोढ्वम्, (अपि च) उशती यूयं अवीवृधध्वम्। हे देवी युष्माकम् अवसा सहस्रिण च शतिन च वाज सनेम।

१ प्रातरित्वा प्रातः रत्न दधाति, (पितापि) त (रत्न) चिकित्वान् प्रतिगृह्य निधत्ते। तेन (दातेन) प्रजा आयुश्च वर्धयमान सुवीर रायस्पोषेण सचते।

२ सुगु सहिरण्य सु अश्वः (स) असत् अस्मै बृहत वय इद्रः दधाति (यत) हे प्रातरित्व य त्वा आयान्तम् मुक्षीजया पदिम् इव वसुना उत् सिनाति।

३ इष्टे सुकृतम् पुत्र इच्छन् वसुमता रथेन अद्य प्रात आयम्। (तत्) मत्सरस्य अशो सुत (देव) पायय, क्षयद्वीर सूनृताभि वर्धय।

जो पुण्यवान् पुरुष यज्ञ करता है अथवा केवल यज्ञ करनेकी इच्छा करता है उसके लिये भी धेनु देनेवाली और भरपूर सुखकी महानदियां बहती हैं। उसी तरह ईश्वरको सन्तुष्ट करनेवाले सत्पुरुषोंकी ओर कीर्तिरूप घी का प्रवाह चारो ओरसे बहता है। ४

जो दानधर्मसे ईश्वरको सन्तुष्ट करता है वह स्वर्गकी पीठपर चढ़ता है और वहा ही रहता है। सचमुच वह देवताओंमे मिल जाता है। उसके लिये स्वर्ग और पृथ्वीकी नदियां घीको बहाती है। और उसीके लिये उपजाऊ जमीन धनकी भरमार कर देती है। ५

ये नाना प्रकारका अमूल्य धन दान देनेवाले पुरुषोंके लिये है। दक्षिणा देनेवाले पुरुषोंके लिये ही सूर्य और तारा आकाशमे प्रकाशित होते है। दान देनेवाले पुरुषही केवल नाश न होनेवाले उच्च स्थितिको प्राप्त होते है। दक्षिणा देनेवाले पुरुषही केवल अपनी और दूसरोंकी आयुको बढ़ा सकते है। ६

दान और धर्मसे (ईश्वरको) सन्तुष्ट करनेवाले पुरुषोंको दु:ख और पाप प्राप्त न होवे। सदाचारी और ज्ञानी पुरुष क्षीणताको प्राप्त न होवे। कोई भी मनुष्य ऐसे भजनशील पुरुषोंको सहायता देनेके लिये तैयार होता है। सब दु:ख पाप और शोक कञ्जूस मनुष्यों ही पर गिर पडे (केवल उन्हे प्राप्त होवे)। ७ (१०)

## सूक्त १२६.

॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–विद्वांसः ॥

मै भाव्य राजाकी हृदयसे प्रशंसा करता हूं। मै आपकी स्तुति केवल मामुली तौरपर नही करता हू। सिन्धु देशके रहनेवाले भाव्य राजाने मेरे लिये सहस्र यज्ञ किये। उसको कोई जीत नही सकता। यह राजा सत्कर्म करनेकी इच्छा करनेवाला है। १

---

४ इजान (पुरुष) यक्षमाण चापि धेनव. मयो भुवश्च सिन्धव. उपक्षरन्ति। (ईश्वर) पृण त च पपुरिव श्रवस्यव. घृतस्य धारा विश्वत उपयन्ति।

५ यः पृणाति स नाकस्य पृष्ठे श्रित अधितिष्ठति, सहि देवमु गच्छति। तस्म आपः सिन्धवश्च घृत न्त तस्मे इय दक्षिणा (भूमि.) सदा पिन्वते।

६ दक्षिणावताम् इत इमानि चित्रा (वसूनि), दक्षिणा वताम् दिवि सूर्यास। दक्षिणावन्त अमृत भजन्ते दक्षिणावन्तः आयु प्रतिरन्त।

७ (ईश्वर) पृण त दुरित एन च मा आ अरन्, सुव्रतास सूरय मा जारिषु। अन्य क चित् तेषा परिधि अस्तु (सर्वे) शोका अपृण तम् अभि स यन्तु।

१ सिधो अधि क्षियत भाव्यस्य अमन्दान् स्तोमान् मनीषा प्रभरे। यः राजा मे सहस्र सवान् अमिमीत, (यश्च) अतूर्त श्रव इच्छमान,।

उस राजाने मेरी वहुत प्रार्थना की। इसके कारण उसने दिये हुए सौ सुवर्ण मुद्राओं और सौ अच्छे अच्छे घोडोंका शीघ्रही मैने स्वीकार किया। मुझे (कक्षीवान्का) उस पराक्रमी राजासे सौ गोएँ प्राप्त हुई। इस लिये मैने स्वर्गतक उसकी अखण्ड कीर्ति फैलाई। २

स्वनय राजाने दिये हुए दस रथ उस समय मेरे पास थे। उस रथको काले रंगके घोडे जोते हुए थे। उस रथमे मेरी नई विवाहित स्त्री बेठी हुई थी। उस रथके पीछे साठ सहस्र गौओंकी झुण्ड चली जाती थी। यह दान मुझे (कक्षीवान्को) पिछले दिनके साय-कालमे मिला था। ३

उन दस रथोंके साथ एक सहस्र (सिपाही) चल रहे थे। चालीस लाल रंगके घोड़ोंकी कतार आगे चलती थी। वे घोडे वड़े मस्त थे और बड़े ठाठ्से चलते थे। वे घोडे सुनहरी सिगारसे युक्त और उज्ज्वल भी थे। उनके वदनपर सुवर्ण और मोतीके साज़ लदे हुए थे। कक्षीवान और उनके भाईबंदके नौकरोंने उन घोडोको मालिस करके, तैयार रखा था। ४

जव पहिले दानका मैने स्वीकार किया उसके अनन्तर आठ और तीन मिलके ग्यारा बैलोसे जोती हुई एक (गाडी) का दान मुझे मिला। उस गाड़ीको जोते हुए बैल वड़े हृष्ट पुष्ट थे। वे राजाके वाडेमे रहने योग्य थे। भाईओ। आप सब एक कुटुम्बके मनुष्योंके तौरपर प्रेमसे रहते है। पज्रके कुलमे उत्पन्न हुए हम सब भ्रातृभावसे रहते हैं। और हम सब सत्कर्म करनेकी इच्छा करते हैं। ५

जव मै अपनी पत्नीको आलिङ्गन देता हूं तब वह बड़े प्रेमसे मुझे नकुलीकी तरह चिपकती है। आलिङ्गनके समय वह मुझे सैकडो सुखोको देती है। ६

---

२ (अह) नाधमानस्य राज्ञ शत निष्कान्, शत प्रयतान् अश्वान् सद्यः आदम्। (अह) कक्षीवान् असुरस्य (राज्ञ) गोना शत (आदम्), अजर श्रव दिवि च आ ततान।

३ (इदानीं) स्वनयेन दत्ता श्यावाः (युक्ता.) वधूमन्त· दश रथासः मा उप अस्थु· (तेषा पश्चात्) षष्टि सहस्र गव्य अनु आ अगात्, कक्षीवान् (एतद्) अह्नाम् अभिपित्वे सनत्।

४ दशरथस्य सहस्रस्य (सैनिकाना) अग्रे चत्वारिंशत् शोणाः (अश्वा) श्रेणि नयन्ति। (तान् च) मदच्युत कृशनावत. अत्यान् कक्षीवत पज्रा च उत् अमृक्षन्त।

५ पूर्वाम् प्रयतिम् अनु त्रीन् अष्टौ च युक्तान् अरिधायस गाः वः आ ददे। हे सुबन्धव ये (यूय) विश्या व्रा इव, (वय) पज्रा (अपि) अनस्वन्ता. श्रव ऐषन्त।

६ आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे। (सा) यादुरी मह्यम् याशूना शता भोज्या ददाति।

हे पति, मुझको अत्यन्त समीपसे स्पर्श करो। मुझे छोटी मत समझिये। गन्धार लोगोंकी भेड़की तरह मेरा शरीर वालोंसे भरा हुआ है। ७ (२१)

## अनुवाक १९.

## सूक्त १२७.

॥ ऋषि—परुच्छेप । देवता—अग्नि ॥

मेरा ध्यान सब अग्निकी ओर लगा हुआ है। आपही यज्ञके होता हैं। आप बहुत उदार हैं। धनका खजाना आपही हैं। निर्बल मनुष्यको बल देनेवाले आपही हैं। जिस तरह विद्वान् ब्राह्मण अपने शास्त्रमें निपुण रहता है उसी तरह अग्नि सृष्टिके हरएक पदार्थको जानता है। अग्निकी कृपासे हमारा यज्ञ पूरा किया जाता है। आपकी कृपा बहुत बड़ी है। आप जैसे देवका यह बात उचित ही है। आपकी बढ़ती हुई ज्वालाओंसे विदित होता है कि स्वच्छ और ताजा घी और मक्खन आप बहुत चाहते हैं। १

हे अग्निदेव, आप अत्यन्त पूजनीय हैं। आंगिरस कुलमें उत्पन्न हुए लोगोंसे आप श्रेष्ठ हैं। हे सर्वज्ञ अग्निदेव, आपहीके लिये हम, जो आपके सेवक हैं—एक मतसे हवि अर्पण करते रहते हैं। हे तेजोमय अग्नि, सब विद्वान् ब्राम्हणोंके साथ हम सुन्दर स्तोत्रोंके द्वारा आपकी प्रार्थना करते हैं। बिजलीका रूप धारण करके मानो, आपने आकाशको घेर (व्याप्त कर) लिया है। आप सब मानवजातिके आचार्य हैं। आप बड़े पराक्रमी हैं। ज्वालारूपी केशवाले हे अग्नि, अच्छे अच्छे विचारोंको प्राप्त करनेके लिये, सब लोग आपकी शरण जाते हैं। २

सचमुच आपके चमकनेवाले शस्त्रके कारण आपका तेज बहुत उज्ज्वल दिखाई देता है। उस दिव्य तेजके कारण दुष्ट लोगोंका नाश ही होता है, मानो, वह तेज शत्रुओंका नाश करनेवाली कुल्हाड़ी ही है। जब अग्निके दिव्य तेजका साथ किसी कठिन पदार्थका स्पर्श होता है तब—चाहे जैसा कठिन पदार्थ हो—वह पिघल जाता है। वृक्षकी तरह छिन्न भिन्न हो जाता है। आपको कोई रोक नहीं सकता। जब आप किसी जगहपर खड़े हो जाते हैं तब आप कभी पीछे नहीं हटते। जब आप बड़े बड़े धनुर्धारी योद्धाओंके सामने डटे रहते हैं तब पीठ नहीं दिखाते। ३

---

७ म (अग) उप प परामृश, म (अहानि) दभ्राणि (इति) मा मन्यथा, अहं सर्वा, गान्धारीणाम् विरा इव रोमशा अस्मि।

१ अग्नि होतार, दास्वन्त वसु, सहस सूनु, जातवेदस विप्र न जातवेदस य स्व न्‍ग देव ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा, आजुह्वानस्य घृतस्य सर्पिषश्च विभ्राष्टिम् शोचिषा अनु वष्टि।

२ हे विप्र (वय) यजमानाः त्वा यजिष्ठ अंगिरसा ज्येष्ठ मन्मभि हुवेम, हे शुक्र विप्रेभि मन्मभि (हुवेम)। (त्वा) परिज्मानमिव द्या, चर्षणीनाम् होतार, शोचिष्केश, वृषणम् (हुवेम) य त्वा इमा विश विशश्च जूतये प्र अवन्तु।

३ स हि विरुक्मता पुरुचित् दीद्यान ओजसा द्रुहन्तर द्रुहन्तर परशु न भवति। यस्य समृतौ विद्धि। (अपि) यत् च स्थिर (तदपि) वना इव श्रुवत्। निष्षहमान अय यमत, न अयते धन्वासह (अग्नि) न ना॥

यह बात सबको विदित ही है कि कठिन कठिन पदार्थोंकी आहुति अग्निको दी जाती है। अग्निकी कृपा करनेके लिये यजमान प्रज्वलित की हुई अरणी ( लकडी ) योंके द्वारा हवन करता है। अग्नि अपनी ज्वालाओंसे जंगलकी लकडीयोंका बड़े जोरसे नाश कर देता है। अग्नि अपनी ज्वालाओंसे बहुत पदार्थोंमे घुसकर वृक्षोंकी तरह उनका नाश कर देता है। अग्नि अपने सामर्थ्यसे कठिन और कोमल धान्यको पक्का बनाता है और अपने गर्मीसे कठिन पदार्थोंका भी गलाता है। ४

दिनकी अपेक्षा रात्रिमे अग्नि बहुत सुन्दर दिखाई देता है। दिनपर दिन वृद्ध होने परभी हमारे बलका नाश न होनेके लिये वेदीके पास बैठकर हम अग्निके सामर्थ्यकी प्रशंसा करते है। जिस तरह पुत्रको पिताकी कीर्तिका आधार मिलता है उसी तरह अग्निके सामर्थ्यपर यजमान पूर्ण रीतिसे अवलम्बित रहता है। वेदीमे जो अग्निका स्थिर रूप–जो कभी नष्ट नही होता और कभी क्षीण नही होता–दिखाई देता है वही हमारा अब और भविष्यत् कालमे भी सब प्रकारसे आधार है। ५ (१२)

जब अग्नि, उपजाऊ जमीन परसे जोरसे चलता है अथवा शत्रुके सैन्यमें बड़े जोरसे घुसता है तब वायुकी तरह वह भयकर गर्जना करता है। हवियोको ग्रहण करके खानेवाला अग्नि यज्ञकी उज्ज्वल ध्वजा है। अग्निने आनन्दसे हमारे हवियोका स्वीकार किया है। आप स्वयं आनन्दकी मूर्ति है और आप दूसरोको आनन्दित करते है। अग्निकी पूजा करनाही कल्याणकारक है। इस हेतुसे सब लोग अग्निकी सेवा करते है। ६

---

४ अस्मै दद्दाचित् यथाविदे अनु द्रु, (अत यजमान ) तेजिष्ठाभि अरणिभि अनगे दाश्टे, अग्नये अवसे दाष्टि। य व व तक्षत पुरूणि ( वस्तूनि ) शोचिषा प्र गाहते, (अपि च) ओजसा स्थिरा चित् अन्ना निरिणाति स्थिराणि चित् ओजसा निरिणाति।

५ य दिवातरात् नक्त सुदर्शतर अस्य दिवातरात् अप्रायुषे त पृक्ष उपरासु धीमहि। आत् अस्य आयु. वीळु शर्म सूनवे न प्रभणवत्। अग्रय व्यत अजरा व्यता अजरा च (ते एव न ) भक्त अभक्त अव (भवन्ति)।

६ अप्नस्वतीषु उर्वरासु इष्टनि स दि आर्तनासु इष्टनि (वा) मारुत शर्धः न तुविष्वणि। स आददिः यज्ञस्य केतु. अर्हणा हव्यानि आदत्। अध स्म अस्य हर्षत हृषीवतः पन्था, शुभे पन्था, न विश्वे नरः जुषन्त।

महा कवि भृगु आकाशमें अग्निकी ओर स्थिर दृष्टि लगाकर उसकी बड़ी नम्रतासे दो प्रकारकी स्तुति करता है। भृगुने बड़ी नम्रतासे अरणीयोंका मन्थन करके अग्नि उत्पन्न किया, (दो लकडीयोंको रगडकर अग्नि उत्पन्न किया)। इस तरह उत्पन्न किया हुआ अग्नि सब प्रकारके स्वामी है। आप वडे पवित्र होनेके कारण सब प्रकारके धनको स्वाधीन रखते हैं। हमारे हवियोंको आप वहुत चाहते हैं। इस लिये प्रज्ञावान् आप हमारे हवियोका प्रेमसे स्वीकार करते हैं। उपर्युक्त अग्नि-केवल परमेश्वरकी मूर्ति-हमारे हवियोके दानसे प्रसन्न होवे। ७

आप सब लोगोके स्वामी हैं। सब लोग केवल आपहीको मानते है। हम अपने कल्याणके लिये, हम अपने लाभके लिये, आपको बुलाते है। हमारी प्रार्थना परमेश्वरकी ओर पहुंचानेवाले आपही है। सब मनुष्य जातिके आप बड़े अतिथि हैं। पिताकी तरह आप सब अमर देवोंपर कृपादृष्टि रखते हैं। इसीके कारण सब अमर देव हमेशा युवा अवस्थामे रहते हैं। ऋत्विज अग्निके द्वाराही देवोकी ओर अपना हवि पहुंचाते हैं। ८

हे अग्निदेव, आप बड़े पराक्रमी हैं। आपका प्रभाव बड़ा है। इस लिये आपके सामर्थ्यको कोई रोक नहीं सकता। जब तक आप प्रकट नहीं होते तब तक हम ईश्वरकी प्रार्थना नहीं कर सकते। जिस तरह संसार चलानेके लिये धनकी आवश्यकता है उसी तरह देवोंकी सेवा करनेके लिये आपकी (अग्निकी) आवश्यकता है। आप नित्य आनन्दी हैं। आपके तेजके कारण आप बड़े पराक्रमी है। हे अग्निदेव, आप कभी बुढ्ढे नहीं होते। इसलिये सब लोक आपकी सेवा करते हैं। हे स्थिर अग्नि, सेवककी तरह सब लोक आपहीकी आज्ञा मानते हैं। ९

---

७ यत् क्रीत्तास अभिद्यव नमस्यत भृगव दाशा मथ्रत भृगव ई द्विता उपशोचन्त (तस्मात्) य एषा (वसुना) धर्णि. स अग्नि वसूना ईशे। मेधिरः (अग्नि) प्रियान् अपि धीन् वनिषीष्ट, मेधिर. आ [illegible]षीष्ट।

विश्वासा विशा पतिं त्वा हवामहे, सर्वासा समान दंपति भुजे (अस्माकं) भुजे सत्यगिर्वाहस (हवा-)। (अपि च) मानुषाणा अतिथिं, पितु न यस्य आसया, अमी विश्वे अमृतासः वय आ (भजन्ते),
५ च (तव आसया) देवेषु आ हव्या (निदधति)।

९ अग्ने त्व शुष्मिन्तम सहसा सहन्तम, देवतातये, रयि न देवतातये जायसे। शुष्मिन्तम हि ते मद उत शुष्मिन्तम क्रतु। अध स्म हे अजर ते त्वा परिचरन्ति हे अजर श्रुष्टीवान न (परिचरन्ति)।

अग्नि सबसे श्रेष्ठ है। अग्नि स्वयं सामर्थ्यवान् होनेके कारण तेजस्वी दिखता है। गर्डाग्याके पुत्र ( गोपालक ) की तरह अग्नि उषाके पहिले जागृत होता है। हमारी स्तुतियोंसे अग्नि प्रसन्न होवे। सब पृथ्वीपर हाथमें हवि लिए हुए, और अग्निके गुणोंको स्तुति करते हुए यजमान दिखाई देते है। जिस तरह भाट ( कवि ) स्तुति करते हुए, राजाके सामने चले जाते है उसी तरह बुद्धिमान् होता सब देवोंके सामने अग्निके गुणोंका वर्णन करता है। १०

हे अग्निदेव जब आप बिलकुल हमारे पास प्रकट होते हैं तब आप और और देवोंकी तरह बड़ी कृपासे प्रसन्न होते है। हमपर कृपा करके आप हमे पवित्र धन अर्पण करते है। हे सामर्थ्यवान् अग्नि, हमे वह तत्व समझायिये जिससे हम पृथ्वीके सब पदार्थोंका उपभोग ले सके। आपका तेज बड़ा तीव्र होनेके कारण मानो, यह विदित होता है कि आप सबोंका नाश करनेवाले उग्र और क्रूर दिखाई देते है। किन्तु, हे दानशील अग्नि, आपकी स्तुति करनेवालोंको आप बड़े वीर बनाते है। ११ (१४)

## सूक्त १२८.

॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–उषा ॥

उशिजाका पुत्रोंने जो तप किया उसके कारण मनूकी पुराणी वेदीमें माननीय अग्नि अपने वचनसे अनुसार प्रकट हुआ है। अग्निका साथ रखनेकी इच्छा करनेवाले भक्त गणोंकी आप सब प्रकारसे सहायता करते है। पुण्यकर्म करनेवालोंके लिये, मानो, आप धनका अमोल कोष है। आपका कभी पराभव नही हो सकता। आप आचार्य बनकर वेदीपर अधिष्ठित हुए है। आप अपने परिवारके साथ पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। १

---

१० महे, सहसा सहस्वते, पशुषे न उषर्बुधे, अग्नये, अग्नये (देवाय) वः स्तोम प्र बभुतु। यत् ईं प्रति हविष्मान विश्वासु क्षासु जोगुवे, (किंच) ऋभूणा अग्ने रेभ न (अय) जूर्णिः होता ऋभूणाम् (अग्ने अग्नि) जरात।

११ हे अग्ने त्वन नेदिष्ट ददृशान (अन्यै) देवेभि सुचेतुना महः रायः आ भर। हे शविष्ठ न महि सचक्षे कृधि, भुज च अस्मै (कृधि)। त्व मघी उग्र. न (असि पर च) मघवन् स्तोतृभ्य. महि सुवीर्य (कृधि)।

१ उशिजा व्रत अनु मनुषः धरीमणि अय यजिष्ठः होता अग्नि, स्व व्रत अनु जायत। सखीयते विश्व-श्रुष्टि., श्रवस्यते राय इव (अय)। (अय) अदब्ध. होता इळः पदे निषदत्, (परिवारै.) परिवृत: इळः पदे (अवतीर्ण)।

यज्ञको अच्छी तरह पूरा करनेवाला अग्नि ही है। इस लिये हम अग्निकी बडी भक्तिसे स्तुति करते है। सत्य धर्मके मार्गपर चलकर और नमस्कार करके हम अग्निको हवि अर्पण करते है। जब हम ईश्वरका ध्यान करते है तब हम पहिले अग्निको हवि अर्पण करते हैं। अग्नि बहुत दयाशील है। दैवी तेज सुलभ रीतिसे प्राप्त करनेमे आप हमे साहायता देते हैं और कभी भी हिचकते नहीं। प्राचीन कालमे मातरिश्वा नामका एक ऋषि था। वह मनुके लिये स्वर्गसे पृथ्वीपर देदीप्यमान अग्निको ले आया ' २

जिसका हम वारवार स्मरण करते है और जो बडी गर्जना करके पृथ्वीपर जलकी वर्षा कराता है वह अग्नि वर्षा करनेवाले मेघको एक क्षणमे घेर लेता है। वह फिर गर्जना करके जलवृष्टि कराता है। अपने सैकडो आखोसे सब जगत्पर देखकर मेघरूपी अश्वमे इधर उधर सञ्चार करके वह अग्नि सब जगह हल्ला मचाता है। वह अग्नि पासके और कभी कभी दूरके पहाड़पर उतरकर आराम लेता है। ३

अग्निदेव सब वड़े वड़े कामोमे निपुण है। यज्ञमे आप सबसे श्रेष्ठ आचार्य हैं। जिस घरमे हवियोका दान होता है उस आप हमेशा तैयार सिद्ध रहते हं। जब यज्ञ शुरू होता है तब वह बात आपको दैवी सामर्थ्यसे विदित हो जाती है। अग्निदेव अपने परम भक्तोंके लिये अपने सामर्थ्यसे अनुकूल अवस्था उत्पन्न कराता है। आप सब सृष्टिपर अपनी दृष्टि रखते हैं। घीकी आहुतिके कारण अग्निदेव देदीप्यमान दिखाई देते है। आप अतिथि बन गये हं। हवि पहुंचानेवाला और जगतकी रक्षा करनेवाला अग्नि अब प्रकट हुआ है। ४

---

२ त यज्ञसाध (अग्नि) अपिवातयामसि, ऋतस्य पथा, नमसा हविष्मता, देवताता हविष्मता। स ५. न ऊर्जा उपाभृति न जयति, य (अग्नि) देव परावत. मातरिश्वा मनवे परावत आ।

[illegible]र्गी कनिक्रदत् वृषभ (अग्नि) पार्थिव रेत एवेन सद्य पर्येति रेत (च) दधत् कनिक्रदत् [illegible])। शत अक्षनि (सर्व) चक्षाण वनेषु तुर्वणि देव अग्नि उपरेषु सानुषु (तथा) परेषु सानुषु [illegible] दधान (विश्राम्यति)।

[illegible] स अग्नि सुक्रतु. पुरोहित, दमे दमे अ वरस्य यज्ञस्य चेतति, (यत.) क्रत्वा यज्ञस्य चेतति। क्रत्वा [illegible] वेधा, विश्वा जातानि पस्पशे, यत घृतश्री (अग्नि) अतिथि अजायत, वह्नि वेधा अजायत।

जैसे हम अतिथिको अच्छे अच्छे भोज खिलाते है वैसे जब अग्निकी ज्वालाओंमे ६ बडे आदरसे नित्यविधिके अनुसार मरुतोंकी तरह हवि अर्पण करते हैं तब अग्नि बडे उत्साहके साथ सुन्दर धन अपने प्रभावसे हमे प्रदान करता है। हमारा नाश करनेवाले सङ्कटोसे. दूसरोके शापोसे और भ्रष्ट करनेवाले पापोसे अग्नि हमारी रक्षा करता है। ५ (१४,

सुन्दर धन विश्वव्यापक और सामर्थ्यवान् अग्नि की दहिनी ओर है। जिस तरह सूर्य प्रकाश देता है उसी तरह अग्नि अपने भक्तोंको वह धन बांट देता है । किन्तु कीर्ति प्राप्त करनेके हेतु आप धन नहीं बांटते। जो लोग केवल हार्दिक भक्तिसे ईश्वरकी सेवा करते है उनके हवि, हे श्रेष्ठ अग्नि, आप देवोंकी ओर पहुंचाते हे। सज्जन और साधु पुरुषोंको उत्तम धन देनेके लिये आप आते है। भक्तोंके लिये कृपा करनेका आप हमेशा तयार रहते है। ६

जिस तरह विजयी राजा अथवा लोकप्रिय अध्यक्ष धर्मसभामे जाकर बैठता है उसी तरह मनुष्यजातिका पाप हरण करनेके लिये अग्नि यज्ञमे अधिष्ठित होता है। क्यों कि पवित्र सुख केवल आपही अर्पण कर सकते है। वेदीमे जो हवि अर्पण किये जाते है उनके स्वामी आपही है। पाप करनेके कारण जो दण्ड दिया जाता है उसकी बड़े वरुणदेवके द्वारा आपही हमे क्षमा कराते है। ७

---

५ यत् मरुता न क्रत्वा अत्य अग्ने तविर्षीषु अवेन इषिराय न भोज्या. भोज्या पृच्यते। सहिस्म मज्मना च वसूना दान इन्वति, स अभिन्हुतात् दुरितात् शसात् अभिन्हुत (वा) अघात् नः त्रासते।

६ (अय) विश्व विहाया अरति वसु दक्षिणे हस्ते दधे, (त च) तरणि. न शिश्रथत् (परन्च) श्रवस्यया न शिश्रथत्। विश्वस्मै इषुध्यते इत् देवत्रा हव्य अ ऊहिषे। विश्वस्मै सुकृते इत् अग्नि वार ऋण्वति, द्वारा च वि ऋण्वति।

७ स अग्नि मानुषे वृजने शंतम विश्पति न प्रिय विश्पति (न) यज्ञेषु, (तथा) यज्ञेषु शतम: [illegible]ति स मानुषाणाम् हव्या इळः हतानि पयते, स वरुणस्य धूर्त मह देवस्य धूर्ते न त्रासते।

अग्निदेव यज्ञके आचार्य हैं। आपहीकी ऋत्विज स्तुति करते हैं। आप भक्तोंको प्रिय हैं। आपही धनका कोष है। आपही ज्ञानवान् ईश्वर है। देवोंकी ओर हवि पहुंचानेके लिये ऋत्विजोंने बड़ी नम्रतासे अग्निकी प्रार्थना की। अग्नि सब विश्वका प्राण है। विश्वका ज्ञान अग्निकोही है। अग्नि यज्ञका आचार्य है। अग्नि पूज्य और बुद्धिमान् हैं। सब देवगण अपनी कामना पूरी करनेके लिये बडे उत्साहके साथ सुन्दर अग्निकी स्तुति करते हैं। सुगति इच्छा करनेवाले देव भी मधुर सूक्तोंके द्वारा गर्जना करनवाले अग्निकी स्तुति करते है। ८(१५)

## सूक्त १२९.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–इन्द्र ॥

हे सबको प्रेरणा करनेवाले इन्द्र, यज्ञकी पूर्ति करानेके लिये जिन महात्माओंके पास आप अपना रथ ले जाते हैं उनकी इच्छा आप पूरी करते है और उनको बलवान् बनाते ह। हे निष्कलंक इन्द्र, वे महात्मा चाहे जितने दूर हो उनके पास आप अपना रथ ले जाते हैं। दोष रहित इन्द्र, सज्जन पुरुषोंको सहायता देनेके लिये आप दौडते है। हमारी ओर भी आप ध्यान दीजिये। जिस तरह प्रेमी कवियोंकी पुकार आप सुनते है उसी तरह हमारी भी पुकार आप सुनिये। १

हे इन्द्र, जब युद्ध शुरू होता है तब पराक्रमी पुरुष भक्तिसे आपकी स्तुति करते हैं। पापका नाश करनेके लिये भी लोग आपहीका स्तवन करते है। आप ऐसे सामर्थ्यवान् हैं। इसलिये हमारी प्रार्थना की ओर ध्यान दीजिये। आप जैसे वीरोंके साथ यदि हम रहे तो हमे स्वर्ग प्राप्त होता है और हम सामर्थ्यवान् बन जाते हैं। बडे बडे राजा भी शूर इन्द्रकी शरण लेते हैं। आपको सामर्थ्यकी केवल मूर्ति समझकर सब लोग आपकी शरण लेते हैं। २

---

८ अग्नि होतार ईळते, प्रिय वसुविति चेतिष्ठ अरति (ऋत्विज) नि एरिरे, हव्यवाह नि एरिरे। (इम च) विश्वायु विश्ववेदस होतार यजत कवि रण्व (अग्नि) वसूयव देवास अवसे, वसयन्त (ईळते)।

१ हे इषिर, इन्द्र, य य सत अपाका (अपि) मेधसातये (स्वकीय) रथ प्रणयसि, ह अनाश (रथ) प्रणयसि त सद्यश्चित् अभीष्टये वश वाजिन च कर हे अनवद्य, तृतुजान स (त्व) अस्माक अनवद्य वाच न अस्माक इमा वाच (शृणु)।

२ हे इन्द्र समुचित पृतनासु नरहृतये य स्म नृभि दक्षाय्य आसि प्रतूर्तये (पि) नृभि (दक्षाय्य असि) स त्व (न) श्रुधि, । य शूर (न) स्व सनिता यश्च विप्र वाज तरुता, त वाजिन ईशानास इरवत, अत्य पृक्ष न वाजिन (इरवन्त)।

सचमुच आप बडे अद्भुत चमत्कार करनेवाले हैं। क्यो कि वर्षा करनेवाले मेघोंमे आपही छेद करते हैं। आपही दुष्ट मनुष्यको निकाल देते है। हे वीर, आपही अमर आत्माका नाश होनेवाले शरीरसे अलग रखते है। हे इन्द्र, आपके अद्भुत पराक्रमोंका वर्णन मित्र और रुद्रके सामने मै करता हूं। रुद्र स्वयं आकाशमे रहता है और अपने पराक्रमसे बडा मशहूर है। सुख देनेवाले वरुणके सामने भी मैं आपके प्रसिद्ध यशका वर्णन पूर्ण रीतिसे करता हूं। ३

हम बडी इच्छा करते है कि, तुमारा और हमारा दोनोंका कल्याण करनेके लिये इन्द्र यहा आवे। इन्द्रपर हम बडा प्रेम करते है। आप विश्वव्यापी है। आपके सामने कोई भी लडनेके लिये खडा नही रह सकता। युद्धमे आप हमेशा हमारे साथ रहते है। शत्रुओंका पराभव करनेवाले आप हमेशा हमे सहायता देते है। युद्धके समय हम हमेशा आपकी स्तुति करते है। उससे आप आनन्दित होवे। क्यो कि उसीसे हमारी रक्षा होती है। युद्धमे आपके सामने कोइ भी शत्रु क्षणभर भी खडा रह नही सकता। कोई भी शत्रु आपके सामने आजाय, आप उसका नाश करते है। यदि मनुष्य जातिका शत्रु आपके सामन आजाय तो उसको आप मार डालते हैं। ४

हे इन्द्र, हमे सहायता देकर मस्त लोगोंका गर्व हरण कीजिये। हे उग्र इन्द्र, जलती हुए मशालकी नाई तीव्र शस्त्रोंसे शत्रुओंकी घमण्ड उतार दीजिये। जैसे प्राचीन कालमे आप हमारे नेता थे उसी तरह अब भी आप हमारे नेता है। क्यो कि, हे वीर, आपको सब लोग निष्कलंक समझते हैं। आप इच्छित फल देनेवाले है। इसलिये सद्गुरुकी तरह आप हमारी ओर आइये और हमारे शरीरके और मनके पापोंका नाश कीजिये। ५ (१६)

---

३ दस्म' ( असि ) हि स्म, ( यत ) वृषण त्वच पिन्वसि, कश्चित् अररु मर्त्यं यावीः, हे शूर (अमर्त्यात्) मर्त्यं च परिवृणक्षि। हे इद्र उत तत् ( तं यशः ) तुभ्य, तच्च दिवेस्वयशास रुद्राय, मित्राय वोचम्, वरुणाय सुमृळीकाय ( ते ) सप्रथ. ( यशः ) सप्रथ. ( वाचम् )

४ अस्माक व ( च ) इन्द्रे इद्र उश्मसि-( इद्र ) सखाय, विश्वायु प्रसहम्, युजं, वाजेषु प्रसह, युजम्। कासुचित् पृत्सुषु अस्माक ब्रह्म ऊतये अव। शत्रु त्वा न हि तरते य ( पश्यसि त ) स्तृणोषि, (च) शत्रु स्तृणोषि।

५ ऊतिभि कस्य चित् अतिमति नि सु नम, हे उग्र नेजिष्ठाभि. अरणिभिः न उग्राभिः ऊतिभिः ( अतिमति नमय )। यथा पुरा न नपि, हे शूर त्व हि अनेना. मन्यसे। वन्हिः ( त्वम् ) वन्हिः न नः अच्छ पुरो विश्वानि ( एनासि ) अपपर्षि।

हे इन्द्र, बड़े सोमके सामने ही आपके पराक्रमका वर्णन करना मुझे उचित है। मनको प्रसन्न करनेकी शक्ति आपमें है। इसलिये आप भी पूज्य हैं। आप राक्षसोंका नाश करनेवाले हैं। तथापि आपहीके कारण मनमें पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं। स्तुति करनेकी प्रेरणा करनेवाले आपही हैं। आप अपने नाश करनेवाले शस्त्रोंसे दुष्ट और निन्दा करनेवाले शत्रुओंको यहांसे निकाल दीजिये। हमारे सामने आनेवाले पापी यहांसे आप भगा दीजिये। भाफकी तरह उनका नाश होवे। ६

हे भगवन् इन्द्र, जो दिव्य तेज पराक्रमसे प्राप्त होता है, जो बहुत रमणीय है और जो बहुत उदार है और जिसके कारण पराक्रमके बड़े बड़े सत्कर्म होते हैं ऐसे दिव्य तेजका लाभ हमें आपहीका एकान्त ध्यान करनेसे और आपहीकी प्रार्थना करनेसे प्राप्त होता है। आपका महिमा अचिन्त्य है। हमारी हार्दिक प्रार्थनासे और हमारे दिये हुए हवियोंसे आप प्रसन्न रहें। हे पूजनीय इन्द्र, हमारे गाये हुए सत्य सूक्त और हमारा हार्दिक प्रेम आपके पास जाकर मिले। आपको पहुंचे। ७

देखिये। दुष्ट इच्छा और दुष्ट लोगोंका नाश करनेके लिये इन्द्र, तुमको और हमको सहायता देनेमें हमेशा तैयार रहता है। हमारे ऊपर चढ़ाई करनेवाले और हमारा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले राक्षसोंकी सेनाका नाश होवे। यहां तक आनेके पहिले ही उस सेनाका नाश होवें। यह बड़ी आश्चर्यकी बात है कि हमारे ऊपर छोड़े हुए बाण यहांतक आ नहीं सकते। ८

---

६ तत् ( ते यश. ) नव्याय इन्द्वे ( अपि ) वोचेयम् यः इषवान् ( अतः ) हव्य. न, ( स ) मन्म रेजति रक्षो हा ( सन्नपि ) मन्म रेजति । स स्वय अस्मत् वधै. निदः च दुर्मतिम् आ अजेत । ( अघ पुन ) शस अवतर अव स्रवेत्, क्षुद्रमिव अव स्रवेत् ।

हे रयिव इन्द्र, यत् सुवीर्यं रण्व सन्तम् सुवीर्यं रयिं ( अस्ति ) तत् होत्रया चितन्त्या च वनेम । [illegible] ान ई ( इन्द्र ) सुमन्तुभि. इषा च आ पृचीमहि, द्युम्नहूतिभि. सत्याभिः द्युम्नहूतिभि च यजत्रम् [illegible] । ( पृचीमहि ) ।

८ अस्मे व ( अर्ये ) स्वयशोभिः दुर्मतीना परिवर्ग, दुर्मतीना दरिमन् ऊती इन्द्र प्र प्र ( भवति ) । या न रिषयध्ये उंपेंप च अत्रे ( क्षिप्ता ) मा स्वय हता ईम् असत् । न वक्षति, क्षिप्ता जूर्णि न वक्षी । ।

हे इन्द्र, जिन मार्गोंसे जानेसे हमें धन मिले और जो मार्ग अच्छे है उन्ही मार्गोंसे हमें ले चलो। जिन मार्गपर (दुर्वासना रूप) राक्षस नही हैं उन मार्गोंसे हमें आप ले चलो। जब हम घरमे रहते है और परदेशमें जाते है तब भी आप हमारे साथ रहिये। जब हम पास रहते है अथवा दूर रहते ह तब हमारे ऊपर कृपा करके और हमे सहायता देकर आप हमारी रक्षा कीजिये। ९

हे इन्द्र, आप और आपका धन केवल हमारे लिये है। (लज्जाके मारे) आपकी ओर कोई नही देख सकता। मानो, स्वयं यश निजकी रक्षाके लिये और निजके सुखके लिये मित्रकी तरह हमेशा आपके पास रहता है (आपका साथ कभी नही छोड़ता।) हे इन्द्र, आपका तेज बड़ा तीव्र है। हे लोगोंका पालन करनेवाले इन्द्र, रथमें बैठकर आप भक्तोंकी रक्षा करते हे। हे वज्रधारिन् इन्द्र, जो दुष्ट लोग हैं उनका अपने वज्रसे नाश कीजिये। हमारा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले लोगोंको भी आप मार डालिये। १०

हे इन्द्र, भक्तिसे हम आपकी स्तुति करते हैं। पापसे हमे दूर रखिये। दुष्ट लोगोंका हमेशा नाश करनेवाले केवल आपही हैं। प्रत्यक्ष (साक्षात्) आप ईश्वरही हे। इसलिये दुष्ट इच्छाओंका भी आप नाश कर सकते हैं। दुष्ट कर्म करनवाले राक्षसोंका भी आप नाश करते है। हमे जैसे गरीब ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेवाले भी आप है। हे आनन्द देनेवाले इन्द्र, इसी लिये जगत्पिता परमेश्वरने आपको (उत्पन्न करके) प्रकट किया। हे सुख देनेवाले इन्द्र, राक्षसोंका नाश करनेके लिये ही ईश्वरने आपको प्रकट किया। ११ (१७)

---

९ हे इद्र परिणसा राया अनेहसा पथा याहि, अरक्षसा (च पथा) पुरः नः यादि नः पराके आ सचस्व अस्तमीक (अपि) आ सचस्व। नः दूरात् अभिष्टिभिः पाहि, आरात् च (अपि) अभिष्टिभि. सदा पाहि।

१० हे इद्र त्व तरुपसा राया न (असि) उग्र त्वा चित् महिमा अवसे, अवसे च महे मित्र न त्वा सक्षत्। हे ओजिष्ट (इद्र) हे त्रात अमर्त्य, रथ क चित् अविता (त्वमसि)। हे अद्रिव अस्मत् अन्य क चित् रिरिषे, अद्रिव रिरिक्षन्त चित् (रिरिषे)।

११ हे सुहुत इद्र स्रिध न पाहि, त्व दुर्मतीना सदमित् अवयाता, देव सन् दुर्मतीना (चापि अवयाता) पापस्य रक्षस हता, विप्रस्य मावत त्राता, अध हि हे वसो त्वा जनिता जीजनत्, वसो रक्षोहण त्वा जीजनत्।

## सूक्त १३०.

॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–इन्द्र ॥

जिस तरह सत्यवान् महात्मा सभामे आकर बैठता है अथवा प्रजाका पालन करनेवाला सज्जन राजा अपने राज मंदीरमे आकर बैठता है उसी तरह, हे इन्द्र, उच्च लोकसे हमारी ओर आइये। सोमरस तैयार होते ही हम आपकी प्रार्थना करके आपको बुलाते हैं। क्योंकि हमे परम सुख प्राप्त करनेकी इच्छा है। जिस तरह पुत्र पिताको बुलाता है उस तरह सामर्थ्य प्राप्त करनके लिये और जय पानेके लिये हम आपकी–जो बड़े दानशील है–प्रार्थना करते हैं। १

हे इन्द्र, जिस तरह प्यासा बैल जलसे भरा हुआ हौज़का सब पाणी पी डालता है अथवा जिस तरह तप्त हुआ सूर्य मेघोदकसे पूरे पूरे भरे हुए सरोवर (तालावो) को सुखाता है उसी तरह पत्थरसे चूर चूर किया हुआ और अच्छी तरह निचोड़ा हुआ सोमरसका, हे इन्द्र, आप स्वीकार कीजिये। आपको सोमरस पिलाकर आपको पूर्ण रीतिसे आनन्दित करानेके लिये आपके दिव्य अश्व आपको यहां ले आवे। आपका तेज सूर्यकी नाई बड़ा तीव्र है। सबको उत्साह देनेवाले सूर्यको जिस तरह अश्व ले आते है उसी तरह वे अश्व आपको भी ले आवे। २

जिस तरह पर्वतके दरारमें पडे हुए पत्थरके आन्दर छिपा हुआ पक्षीका गर्भ बाहर लाया जाता है उसी तरह इन्द्र आकाशके उदरमें छिपा हुआ प्रकाशके निधिको दूगडकर जगतके सामने ले आय। वज्र धारण करनेवाले अंगिरसोंके स्वामी इन्द्र, बडे ठाठसे प्रकाशरूपी धेनुओंको साथ ले आये। भक्तगण उससे आनन्दित हुए और अपने अपने अबतक रुके हुए पराक्रमके काम करने लगे। भक्तोंके लिये अन्न प्राप्त करनेका मार्ग इन्द्रने खोल दिया। ३

---

१ हे इद्र अय सत्पति न अच्छा विदथानि इव (उतवा) सत्पतिः राजा अस्तम् इव, ल परावत उप . याहि। प्रयस्वन्त वय सुते सचा त्वा हवामहे। पुत्रास पितर न वाजसातये महिष्ठ (त्वा) वाजमानय (हवामहे)।

२ हे इद्र कोशेन सिक्त अवत वसग न ततृषाण वसग न त्व अद्रिभि. सुवान सोम पिब। ते हर्यताय मदाय तुविष्टमाय धायसे त्वा सूर्यम् हरितः विश्वा अहा सूर्य इव आ यच्छन्तु।

३ अनन्ते अश्मनि अत अश्मानि परिवीतम् वे गर्भ न, दिव गुहा निहितम् निधि (इद्र) अविन्दत्, अंगिरस्तम गवा व्रजम् सिषासन् इव वज्री (अय) इद्र इष परिवृत्ता. (द्वार) इष. परिवृता द्वार अप अवृणोत्।

इन्द्रने अपना वज्र अपने दोनों हाथोंसे पकड लिया। इन्द्रने तरवार की तरह अपना वज्र प्रकट किया। वृत्रको मारनेके लिये इन्द्रने अपने वज्रको धार लगाया। हे इन्द्र, अपने दिव्य तेजसे आप चमकते हैं। आप अपने प्रभावसे और सामर्थ्यसे बड़े मस्त हैं। जिस तरह वृक्षको तोडनेवाला अपनी कुल्हाडीसे वृक्षको बिलकुल तोड़ डालता है उसी तरह आप अपने शस्त्रसे दुष्ट शत्रुओंको मार डालते है। ४

हे इन्द्र, आपने रथकी तरह दौडते हुए बहते बहते समुद्रमे जाकर मिलनेके लिये उन नदीयोंको उत्पन्न किया। उन नदीयोंने सबके लिये एक कल्याणका काम किया है। जिस तरह काम धेनु मनुराजाकी इच्छा पूर्ण करती है उसी तरह वे नदीयां सब जगतको इच्छित फल देती हैं। ५ (१८)

हम दीन जन, धनकी इच्छा पूरी करनेके लिये आपकी प्रार्थना करते हैं। उसके लिये हमने एक प्रार्थना सूक्त तैयार किया है। जिस तरह चतुर और कुशल कारीगर रथको अच्छी तरह तैयार करता है उसी तरह हम अपने मनमे आपकी मूर्तिका ध्यान करते हैं। हे परम बुद्धिवान् इन्द्र, आप विजयी हैं। हम आपका आदर करते हैं। जिस तरह युद्धमे पराक्रमी और साहसी वीरोंको अलंकार प्रदान किये जाते है उसी तरह बल यश और वैभव प्राप्त होनेके लिये हम आपको सन्मान अर्पण करते हैं। ६

---

४ वज्र गभस्त्योः दद्राण तिग्म क्षद्मेव इद्र. असनाय स इयत् अहि हत्याय सद्यत्। इंद्रः त्वा ओजसा सविव्यान मज्मना शवोभि. च (सविव्यान.) तष्टेव वक्ष वनिन नि वृश्चासि परश्वा इव वि वृश्चसि।

५ हे इद्र त्व नद्य रथान् इव वाजयत रथान् इव समुद्र अच्छ सर्तवे वृथा असृज.। इत ऊती ताः समान आक्षित अर्थं अयुजत, (यत्) (इमा) मनवे विश्वदोहस धेनु इव जनाय विश्वदोहसः (अभवन्)।

६ वसूयन्त (वय) आयव इमा त वाचम् अताक्षिपु, स्वपा धीर रथ न सुम्नाय त्वां अताक्षिपुः। विप्र त्वा जेन्य शुम्भतो (यथा) वाजेषु वाजिन अत्य इव, शवसे धना सातये विश्वा धनानि सातये।

हे पराक्रमी इन्द्र, अपने दानशील भक्त, दिवोदासके लिये आपने अपने वज्रसे शत्रुके नब्बे किलोंका नाशकर डाला। भयंकर इन्द्रने अतिथिग्वाके लिये शम्बर राक्षसको पर्वतसे नीचे खींचकर मार डाला। इन्द्र अपने दिव्य सामर्थ्यसे सब प्रकारकी श्रेष्ठ सम्पत्ति अपने भक्तोंको देता है। ७

इन्द्रने अपने सामर्थ्यसे युद्धमें अपने भक्तोंकी रक्षा की। ऐसे युद्धमें वीर पुरुषको स्वर्गका लाभ होता है। अधर्मी लोगोंको आप दण्ड देते हैं और उनको सीधे मार्गपर ले आते हैं। काले रंगके राक्षसको जीतकर मनुराजाके सुपुर्द किया। सब जगतको मानो, अपने तेजसे जलानेवाला इन्द्र, लालची राक्षसोंका नाश करता है और सज्जन पुरुषोंको सतानेवाले दुष्ट लोगोंको मार डालता हैं। ८

इन्द्र अपने तेजसे प्रकट हुआ और आपने सूर्यके रथका एक चाक निकालकर राक्षसोंकी ओर फेंक दिया। प्रात:कालमें क्रोधसे तप्त होकर सूर्यके रथके दूसरे चाककाभी आवाज आपने बन्द किया। इस तरह इन्द्रने अपने प्रभावसे सूर्यके रथका आवाज बिलकुल बन्द किया। हे प्रज्ञावान् इन्द्र, प्राचीन कालमें जब उशनाकवि आपकी ओर आया तब आपने उसकी रक्षा की। मनुष्य जातिको जितना सुख मिल सकता है उतना सुख आपने उशना-कविको अर्पण किया। मानो, उसको अनन्त सुख प्राप्त हुआ। ९

हे वृत्रके किले तोड़ डालनेवाले इन्द्र, आप भक्तोंकी इच्छा पूरी करते हैं और हमारी अपूर्व स्तुतियोंसे आप प्रसन्न होते हैं। कृपा करके हमारी रक्षा आप कीजिये। हे इन्द्र, दिवोदास नृपने आपकी स्तुति की है। जिस तरह दिनके प्रकाशसे आकाशकी शोभा बढ़ती है उस तरह हे इन्द्र, आप अपने प्रकाशसे प्रकट हूजिये। १० (१९)

---

७ पूरवे महि दाशुषे दिवोदासाय, हे नृतो, हे नृतो इन्द्र त्वं वज्रेण नवतिं पुरः भिनत्। उग्रः अतिथिग्वाय गिरेः अव अभरत्। (अयं इन्द्रः) महः धनानि ओजसा विश्वा धनानि आजसा दयमानः (भवति)।

इन्द्रः शतमूतिः विश्वेषु आजिषु, स्वर्मीळ्हेषु आजिषु आर्यम् यजमानं प्र अवत्। मनवे अव्रतान् शासत्, त्वचम् (अस्मै) अरन्धयत्। विश्वम् दहन् न (सः) ततृषाणान् ओषति, अर्शसानम् नि ओषति।

९ (स्वयं) जातः ओजसा सूरः चक्रं (राक्षस-निबर्हणाय) प्र वृहत्, प्रपित्वे (च अपरस्य चक्रस्य) अरुणः वाचं मुषायति ईशानः आ मुषायति। हे कवे यत् उशना परावतः (त्वा) ऊतये आगमत् (तदा सः) विश्वा मनुषा सुम्नानि तुर्वणिः इव, अहा विश्वा तुर्वणिः इव (अभवत्)।

१० हे वृषकर्मन्, हे पुरां दर्त (इन्द्र) सः (त्वं) नव्येभिः उक्थैः (तुष्टः सन्) शर्म पायुभिः न पाहि। हे इन्द्र दिवोदासेभिः स्तवानः त्वं अहोभिः (प्रकाशैः) द्यौः इव वर्धस्व।

## सूक्त १३१.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–इन्द्र ॥

बेहद और प्रकाशसे भरा हुआ आकाश केवल इन्द्रको ही नमस्कार करता है। लम्बी-चौड़ी पृथ्वी भी अपने सौभाग्यके साथ, अपनी उत्कृष्ट सम्पत्तिके साथ और अपन फल-पुष्पोंके साथ इन्द्रको नमस्कार करती है। प्रेमसे एकत्रित हुए सब देवोने इन्द्रकोही नेता बनाया है। हमारे सब सोमरस और हम जैसे भक्तजनोके हवि भी इन्द्रको ही जा पहुंचे। १

सोम अर्पण करनेके समय, आपको सबसे श्रेष्ठ देव समझकर यजमान लोक, बड़े उत्साहसे, आपकी प्रार्थना करत है। हरएक मनुष्य नित्य आनन्द प्राप्त करनेके लिये, स्वतन्त्र रीतिसे आपकी प्रार्थना करता है। प्राणकी रक्षा करनेवाली तरह बड़े कार्यके समय आपकी सहायता मागना हमारे लिये उचित है। हम जैसे मनुष्यगण और भक्तगण यज्ञने कारणही इन्द्र देवके लिये सूक्त गाते हैं। केवल इन्द्रकी ओर ही हम अपना ध्यान लगाते हैं। २

हे इन्द्र, अनेक यजमान और उनकी स्त्रियां आपकी कृपासे गोधन प्राप्त करनेके लिये आपको हवि अर्पण करती है। दुष्ट इच्छाओका नाश करके वे यजमान आपको आहुति अर्पण करते हैं और आपका यजन बड़े उत्साहसे करते है। जब आप, हे इन्द्र, यजमान लोगोको दिव्य प्रकाश और स्वर्गसुख प्राप्त करानेके लिये स्वर्गको ले जाते हैं तब आपका विजयी वज्र हमे सहज रीतिसे दिखाई देता है। प्राणके समान आप अपने वज्रपर प्रेम करते हैं। आप उससे कभी अलग नही होते। ३

---

१ असुर द्यौ. इंद्राय हि अनम्रत, (इय) मही पृथिवी द्युम्न साता, वरीमभिः इंद्राय (एव) वरीमभिः (अनम्रत)। सजोषस विश्वे देवास इंद्र (एव) पुरः दधिरे, (तस्मात्) विश्वा मानुषा सवनानि, मानुषा (हव्यानि) इंद्राय (एव) रातानि सन्तु।

२ विश्वेषु हि सवनेषु तूयमन्यव· (यजमाना) समान एक (देव) त्वां पृथक् तुञ्जते, स्व· सनिष्यवः पृथक् (तुञ्जते)। त त्वा पर्षणि नाव न शूषस्य धुरि धीमहि, (वय) आयव. आयवः यज्ञै. न इंद्र स्तोमेभिः इंद्र (एव) चितयत (वर्तेमहि)।

३ अवस्त्वव मिथुना गव्यस्य व्रजस्य साता इंद्र त्वा विततस्रे। (हव्य) निःसृज सक्षन्त नि सृजः (विततस्रे)। यत् गव्यता स्वर्यन्ता द्वा जना समूहसि, (तदा) इंद्र वृषणं सचाभुव हे इंद्र सचाभुव वज्रम् आवि करिक्रन् (एषि)।

हे इन्द्र, आपका पराक्रम अब सब जगत्को विदित हुआ है । शरद् ( जाडेके ) ऋतुमें अकालरूपी राक्षसके कीले आप तोड डालते है । आपने बड़ी कठोरतासे उन कीलोंका नाश कर डाला । हे सामर्थ्यवान् प्रभो, अधर्मी लोगोंको आप दण्ड देते हैं। विजय प्राप्त करके हर्ष पाये हुए आपने पृथ्वी, नदीया, और नदीके पासके प्रदेशको जीत लिया और आपने स्वाधीन कर लिया । ४

हे उदार इन्द्र, आपके भक्तोंने बडे हर्षसे आपकी स्तुति की है । क्यों कि आपका साथ प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले भक्तोंकी आपने रक्षा की । आपका सख्य प्राप्त करनेके लिये उत्सुक हुए भक्तोंको आप सहायता देते है । जय प्राप्त करनेकी इच्छासे जब आप युद्धमें बड़ी इर्षासे भयंकर आवाज ( सिहनाद ) करते है तब नदीयोंके अन्तर्गत प्रदेशोंको आप जीत लेते हैं । अच्छा काम करनेकी इच्छासे आपने उन प्रदेशोंको जीता । ५

क्या इन्द्र आज प्रातःकालमें हमपर कृपा करेंगे ? हे इन्द्र, हमारे सामगीतको कृपा करके सुनिये । हम बड़ी नम्रतासे आपको हवि अर्पण करते हैं । दिव्य प्रकाशका लाभ होनेके लिये हम आपकी प्रार्थना करते है । हमारी प्रार्थनाओ का स्वीकार कीजिये । हे वज्र धारण करनेवाले पराक्रमी इन्द्र, जब आप दुष्ट लोगोंका नाश करनेकी इच्छा करते हैं तब हम आपकी स्तुति करते हैं । बड़े उत्साहसे और फूर्तीसे गाए हुए स्तुतियोंका आप स्वीकार कीजिये । ६

हे इन्द्र, आप बड़े बलवान् हैं । आप हमसे प्रेम करते हैं । आप सामर्थ्यवान् हैं । हे पराक्रमी इन्द्र, आपही आप हमारा द्वेष करनेवाले दुष्ट लोगोंका आप नाश कीजिये । हम पर अन्याय करनेवाले लोगोंकोभी आप अपने शस्त्रसे मार डालिये । कृपा करके हमारी प्रार्थना सुनिये । आपकी कीर्ति सब दूर फैली हुई । जब दुष्ट लोग हमारी ओर आते हैं तब मार्गमेंही उनका नाश होवे । टूट हुवे गाडीकी तरह हमारे शत्रु मार्गमेंही गिरजाय । ७(२०)

---

४ पूरव ते अस्य वीर्यस्य विदु. यत् हे इन्द्र शारदीः पुरः अव अतिर. ससहानः अव अतिर. । शासः (त्व) त अयज्यु मर्त्य शास. । मही पृथिवी अमुष्णा. इमाः अप मन्दमान इमा अपः ( अमुष्णा )

५ इत् ते अस्य वीर्यस्य मदेषु चर्किरन् यत् हे वृषन् उशिज अविथ, सखीयत यत् अविथ । प्रवन्तवे (यत्) एभ्य कार चकर्थ (तत्) ते अन्या अन्या नद्य सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ।

६ उत अस्या उपस न जुषेत हि, (न.) अर्कस्य बोधि, हवीमभि हविषः च स्वर्षाता हवीमभि (अस्य च बोधि ) । यत् इन्द्र वज्रिन् त्व वृषा शत्रून् हन्तवे चिकेतसि मे अस्य नवीयसः वेधस नवीयस (प्रतिन्नवल्ग्य) मन्म श्रुधि ।

७ त इन्द्र त्व वावृधान (अपि) अस्मयु, हे तुविजात हे शूर अभिनयन मर्त वज्रेण मर्त्य जहि, य. च न अधायति (त अपि जहि), सुश्रवस्तम शृणुत्व (एतद), दुर्मति अपभूतु विश्वा दुर्मति रिष (यथा) न यानन् अपभूतु ।

## सूक्त १३२.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–इन्द्र ॥

हे उदार इन्द्र, पहले युद्धकी तरह इस युद्धमेभी हमारे ऊपर चढ़ाई करनेवाले शत्रुओंका हम आपकी कृपासे पराभव करेंगे । क्यों कि हमारी रक्षा करनेवाले आपही हैं। उसी कारण हम अपने शत्रुओंका नाश भी करेंगे। अब पराक्रम दिखलानेका समय तो आगया। आपको सोमरस पिलानेवाले आपके भक्तोंको आप आशीर्वाद दीजिये। हम केवल शूरता दिखलाने की इच्छा करते हैं। युद्धमें हमे जो लूटका माल मिलेगा वह सब हम आपकोही अर्पण करेंगे। १

इन्द्रही स्वर्गको प्राप्त करानेवाला है । इन्द्रही सबे वीरोंको वैभव दिखलानेवाला है। युद्धके समय प्रातःकालमें भक्तोंके गाये हुए स्तुतियोंका और प्रार्थनाओंका आप स्वीकार करते है। आप सन्तुष्ट होकर शत्रुओंका नाश करते हैं। यह बात सबको विदितही है कि आप बडे पराक्रमी हैं। इन्द्रको नमस्कार करके उसका सन्मान करना चाहिये । हे इन्द्र, आप कवल सौभाग्यकी मूर्ति ही है। आप हमपर कृपा कीजिये और हमारा कल्याण कीजिये। २

जिस यज्ञमें आपके लिये सुन्दर वेदी– मनोहर निवासस्थान– तैयार की जाती हैं उस यज्ञमे उज्ज्वल हवि भी पहिले की नाई आपको अर्पण किया जाता हैं। अपने भक्तोंको सनातन सत्य लोकको ले जानवाले आपही है। सूर्य प्रकाशके कारण अन्तरिक्षमे आपके भक्त लोग केवल आपका पराक्रमही देख सकते हैं। यह बात सबको विदितही है कि प्रकाशरूपी दिव्य धेनुओंको ढूंढकर निकालनेवाले केवल आपही हैं। जब आप अपने भक्तोंको अपनाते हैं तब आपही केवल उनके लिये धनूओंको भी ले आते है। बिना आपके दूसरा कोई भक्तोंको सहायता देनेवाला नही है। ३

---

१ हे मघवन् इन्द्र ( यथा ) पूर्व्ये धने ( तथा इदानीं अपि ) त्वया ऊता च वयं पृतन्यतः ससह्याम, वनुष्यत च वनुयाम । नेदिष्ठे अस्मिन् अहनि सुन्वते नु अधि वोच । ( यत ) अस्मिन् यज्ञे भरे कृत ( वयं ) वाजयत भरेकृत वि चयेम ।

२ स्वर्जेषे, आप्रस्य वक्मनि ( एतादृशे ) भरे, उषर्बुध स्वस्मिन् अजसि, क्राणस्य स्वस्मिन् अजसि इन्द्रः (वृत्र) अहन् यथा विदे, स. हि शीर्ष्णाशीर्ष्णा उपवाच्य , अस्मत्रा ते भद्रस्य रातय भद्राः. रातयः सध्र्यक् सन्तु।

३ यस्मिन् यज्ञे ( तुभ्य ) वार क्षय अकृण्वत ( तस्मिन् यज्ञे ) तत् शुशुक्रन प्रयः प्रत्नथा ते ( एव ) तु ऋतस्य क्षय वा असि । अध तत् निवोचे. यत् ( भक्ता ) दिता अन्त रश्मिभि पश्यन्ति । स इन्द्रः घ अनु विदे नो एषण. वधुक्षित्-य. गोएषण ।

हे इन्द्र, आपकी कीर्ति ऐसी है कि सब लोग उसका बारबार वर्णनही करते रहते हैं। अंगिरसोंके लिये प्रकाशरूपी धेनुओंको रोकनेवाले कीलोंको आपने तोड़ डाला। ज्ञान दिलानेवाले प्रकाशरूपी धेनुओंको स्वाधीन करके आपने अंगिरसोंके अर्पण कीया। हम भी आपके भक्तही हैं। हमारे लिये भी आप युद्ध कीजिये। और आपकी कृपासे हमे जय प्राप्त होवे। जो लोग आपको सोमरस पिलाकर आपकी सेवा करते है वे सज्जन लोगोंको सतानेवाले अधर्मी और दुराचारी लोगोंके पूर्ण रीतिसे स्वामी बन जाय। ४

हे शूर इन्द्र, आपने अपने भक्तोंको भावी दशाका ज्ञान ईश्वरी कृपासे अर्पण किया है। जय और कीर्ति प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले भक्तगण युद्धमे बड़े पराक्रमसे लड़ते हैं और सहज रीतीसे विजय पाते है। आपके लिये वे यज्ञ करते हैं। निजको और पुत्रको दीर्घायु प्राप्त करनेके लिये आपके भक्त आपकी स्तुति करते है। वे संकट समयमे आपहीकी स्तुति करते हैं। जब वे अन्य देवोंकी स्तुति करते हैं तब भी उनका ध्यान आपहीकी ओर रखता है। ५

हे इन्द्र और पर्वत आपही हमारे नेता है। जब कोई अपनी सेनाके साथ हमारे ऊपर चढाई करता है तब आप अपने वज्रसे उसका नाश कीजिये। आपका शस्त्र ऐसा है जो शत्रुको मार डाल सकता है। वह शत्रु चाहे जिस जगह छिपा हुआ हो? आप उसको मार सकते हैं। हे शूर इन्द्र, शत्रुओंका नाश करनेवाला आपका अस्त्र चारों ओरके हमारे शत्रुओंका सब प्रकारसे नाश करे। ६

---

४ हे इद्र ते (वीर्यं) पूर्वथा च नु इत्था प्रवाच्य यत अंगिरोभ्यः (गवा) व्रज अप अव्रणो., (त च) व्रज (तान्) अप शिक्षन्। (एव) एभ्य समान्या दिशा अस्मभ्य च आयोत्सि जेषि च। (पर च) [illegible] अव्रत मुन्वद्भ्य. रध्य हृणायन्तम् चित् अव्रतम् (अपि रध्य)।

५. हे शूर त्व क्रतुभि (भक्त) जनान् स ईक्षयन्। ते हि श्रवस्यन्त तक्षन्त, श्रवस्यन्त च प्रतक्षन्त। [illegible] प्रजावत् (दीर्घं) आयु (लब्धु) बाधे च ओजसा अर्चन्ति। (तेषा) धीतय देवान् अच्छ न, धीतय इद्रे ओक्य दिधिष त।

६ इन्द्रापर्वता, पुरोयुधा य. न: पृतन्यात् त, त इत, अप हत, त त इत वज्रेण हत। [illegible] दूरे चत्ताय छन्त्सत्, शूर, दर्ता अस्माक शत्रून् विश्वत: परि दर्षीष्ट।

## सूक्त १३३.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–इन्द्र ॥

सनातन और सच्चा धर्म यज्ञ ही है। यज्ञके कारण ही हम पृथ्वी और आकाशको स्वच्छ कर सकते हैं। इन्द्र और ईश्वरको न माननेवाले बलवान् और दुष्ट भूतोंको हम यज्ञके कारण ही जला सकते है। यहा देखिये। हमारे शत्रुओंका नाश हुआ है और उनके मृत शरीरके टुकडे यहा स्मशानमे गाड़नेकी जगह पडे हुए है। १

हे वज्र धारण करनेवाले इन्द्र, हमारे ऊपर हमला करनेवाले बाजीगरोंका सिर काट डालिये। उनको अपने प्रचण्ड पैरके नीचे कुचल डालिये। उनको जगद्व्यापी पैरके नीचे कुचल डालो। २

हे उदार इन्द्रदेव, जादूगरोंकी वह बलवान् टोली स्मशानमे गन्दी जगह पडी छिपी हुई रहती है। उस टोलीको ढूंढो और उसका नाश करो। ३

पचास पचासकी तीन टोलीयोंका आप पहिले ही नाशकर चुके हैं। ऐसे कामको आप कुछ नहीं समजते। तथापि हम उसको बड़े महत्वका काम समजते हैं। ४

हे इन्द्र, पीले रंगके, भयंकर स्वरूपके और बड़े जोरसे चिल्लानेवाले पिशाचको आप मार डालिये। उस पिशाचके साथ अन्य राक्षसोंका भी नाश कीजिये। ५

---

१ ऋतेन ( यज्ञेन ) उभे रोदसी पुनामि, या. महीः अनिन्द्राः द्रुहः ताः सं दहामि। ( पश्य ) यत्र अमित्राः अभिव्लग्य हता, परितृळ्हा च वल्स्थान अशेरन्।

२ हे अद्रिव अभिव्लग्य चित् यातुमतीनां शीर्षा छिन्द्धि, वहरिणा पदा महा वहरिणा पदा ( छिन्द्धि )।

३ हे मघवन् आसा यातुमतीनां शर्धः अव जहि, वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके।

४ यासां तिस्रः पञ्चाशतः अभिव्लङ्गैः अपावपः, तत् ( यद्यपि ) ते तकत् सु मनायति, ( भक्तः ) ते ( वीर्य ) सु मनायति।

५ हे इन्द्र पिशङ्गभृष्टिम् अम्भृणम् पिशाचिम् स मृण, सर्वं रक्षः नि बर्हय।

हे इन्द्र, (शरीरको चिपके हुए) भयंकर अन्धकारका नाश कीजिये। क्या आप हमारी प्रार्थनाकी ओर ध्यान देते हैं। आकाशसे बिजलीकी वर्षा करनेवाले और हे वज्र धारण करनेवाले इन्द्र, आपके तीव्र तेज और प्रकाशरूपी (अग्नि) के कारण पृथ्वी और आकाश भी डरके मारे बिलकुल दुःखी और उदास दिखाई देते हैं। आप बड़े सामर्थ्यवान् हैं। नाश करनेवाले आप अपने शस्त्र और अस्त्र बिलकुल तयार करके रखते हैं। उन शस्त्रोंके साथ आप सब जगह सञ्चार करते हैं। परन्तु, हे वीर, सात्विक और सज्जन लोगोंको आप बिलकुल नहीं सताते हैं। एकीन सेवकोंके साथ आप सञ्चार करते हैं। ६

सोमरस अर्पण करनेवाले यजमानको ही केवल आप धन देते हैं। सोमरस अर्पण करनेवाले भक्तही केवल शत्रुओंको जीत सकते हैं और उनको अपने अधिकारमें रख सकते हैं। सोमरस अर्पण करनेवाले पराक्रमी भक्त सैकडों जय प्राप्त करते हैं। ऐसे भक्तको इन्द्र यथेष्ट धन और सुख अर्पण करता है। परमेश्वर भी उसीको धन देता है। ७(२२)

---

६ हे अद्रिव इन्द्र, महत् अत्र दादहि, श्रुधि नः, हे अद्रिवः घृणात् भीषा न, क्षा. न द्यौः (अग्नि) भीषा शुशोच हि। त्वं शुष्मितम. हि वधै. उग्रेभिः ईयसे, (परं च) हे सत्वभि. अप्रतीत शूर, त्वं हे शूर अपूरुषघ्न. सत्वभिः (ईयसे)।

७ सुन्वन् हि परीणस क्षय वनोति, सुन्वानः हि द्विषः अव यजति, देवानां द्विषः अव यजति स्म। सुन्वानः। इत् वाजी अश्नुत. सहस्रा सिषासति। सुन्वानाय इन्द्रः (सुतं) आभुवं ददाति, रयिं आभुवं ददाति।

## अनुवाक २०.

### सूक्त १३४.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–वायु ॥

हे वायो, आपके चञ्चल और वेगवान् अश्व, सोमरसका आस्वाद लेनेके लिये स्वादिष्ट हवियोंकी ओर आपको ले आवे। इन सत्य, मधुर, ज्ञानमय और उदात्त स्तोत्रोसे आपका मन सन्तुष्ट होवे। नियुत नामके वेगवान् घोडोको रथको जोतकर हमने अर्पण किये हुए हवियोंका स्वीकार करनेके लिये आप इधर आइये। १

हे वायु, हमारे सोमरस आनन्द देनेवाले है। कुशलतासे वे तैयार किये गये है। उनके तेजसे विदित होता है कि वे मानो, स्वर्गमे बने हुए है। सोमरसमे दुध मिलाकर वे और भी स्वादिष्ट बने हुए है। ऐसे सोमरसको पीकर, हे वायु, आप आनन्दित हूजिये। आपकी सहायता करनेवाले घोडे आपकी सेवा करनेके लिये आपहीके साथ हमेशा रहते है। रथको जोते हुए घोडे (प्रकाशकिरण) जब भक्तोंके मनमे पवित्र विचार उत्पन्न कराते है तब हमारे बुद्धिमान् ऋत्विज् वायुके लिये स्तोत्र गाते रहते है। २

यह वायु कभी कभी अपने रथको लाल रंगके और कभी कभी अबलक रंगके घोडे जोतता है। स्वतन्त्र रीतीसे सञ्चार करनेके लिये और चाहे जहा जानेके लिये यही वायु, अपने वेगवान् और बलवान् घोडोको रथके जूआको जोतता है। जिस तरह पती अपनी सोये हुए स्त्रीको जगाता है उसी तरह आप भी हमारे मनमे उच्च विचारोको जागृत कीजिये। पृथ्वी और आकाशके ऊपर जो पर्दा है उसको हटा दीजिये जिससे हम उनको देख सके। आप उषाको प्रकाशित कीजिये। उषाको इस लिये आप प्रकाशित कीजिये कि हम अपना सत्कर्म करे। ३

---

१ हे वायो (ते) जुव रघ्वाणा अभि प्रय: त्वा वहन्तु, इह पूर्वपीतये, सोमस्य पूर्वपीतये आवहन्तु। (इय) जानति ऊर्ध्वा च सूनृता ते मन अनु तिष्ठतु, हे वायो नियुत्वता रथेन दावने मखस्य दावने आ याहि।

२ हे वायो अस्मत् इन्दव मन्दिन काणास, सुकृता अभिद्यव, गोभि काणा अभिद्यव त्वा मन्दन्तु। यत् ह काणा उत्तय (अश्वा) दक्ष त्वा इरध्यै सच ते, यदा त नियुत. धिय. दावने सध्रीचीना: (भवन्ति) (ऋत्विज) ई धिय उपब्रुवते।

३ वायु (कदाचित्) रोहिता वायु (कदाचित्) अरुण (अश्वा.) युङ्क्ते। (अय) वायु रथे धुरि वोळ्हवे, (सव) वाळ्हव अजिरा वहिष्ठा (अश्वा) धुरि (युङ्क्ते)। जार आ ससतीं इव पुरधि प्रबोधय। रोदसी प्रचक्षय, उषस: वासय, श्रवसे उषस: वासय।

हे वायु, देदीप्यमान उषा आपके लिये अपना सुन्दर और महीन मंगल—वस्त्र अपने अग्र किरणोंमे—अपने अलौकिक किरणोंमे सब दूर फैलाती है। अमृतकी वर्षा करनेवाली किरणरूपी दिव्य धेनुएँ आपहीके लिये सुन्दर वस्तुओंको देती (दिखाती) है। आकाशके उदरमें (अन्तरिक्षमे) आपही तूफान उत्पन्न करते है। नदियोंको बढ़ानेके लिये ही आप (समुद्रमे) आन्धी उत्पन्न करते है। ४

ये स्वच्छ सोमरस स्फूर्ती देनेवाले हैं। वे सोमरस आपको (वायूको) आगमसे रोक नही देते। वे आपको (वायूको) अन्तरिक्षमे घुमाते है। वे आपके द्वारा पृथ्वीपर वर्षा कराते है। जब कोई यात्री प्रवास करते हुए थक जाता है और जब कोई चोर उसके ऊपर हमला करता है तब वह आपकी प्रार्थना करता है और आप उसकी रक्षा करते हैं। जब सब लोग आपके भक्तके विरुद्ध है तब आप उस भक्तकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उसकी रक्षा करते हैं। गहरे अन्धकारमे भी आप दिव्य शक्तिसे अपने भक्तकी रक्षा करते है। ५

हे वायु, (यज्ञमे) आप सबसे पहिले है। इस लिये हमारे सोमरसका पान सबसे पहिले आपहीको करना चाहिये। पहिले पहल सोमरसका पान करनेके लिये आपही योग्य है। आपको नानाप्रकारके हवि अर्पण करनेवाले और बैठनेके लिये दर्भासन देनेवाले भक्तोंने दिया हुआ सोमरसका पान आपको करना चाहिये। आपके लिये धेनुएं अच्छा दूध देती है। ६ (२३)

---

४ तुभ्य मचन: उषस (स्वेषु) वसु रश्मिषु नव्येषु रश्मिषु चित्रा भद्रा वस्त्रा तन्वाति तन्वते। तुभ्य सबर्दुघा धेनु विश्वा वसूनि दोहते। त्व मरुत: दिव वक्षणाभ्य, वक्षणाभ्य आ अजनय।

(इमे) शुक्रास शुचय (सोमास) तुभ्यन्त (पर च) मदेषु उग्रा: त्वा उपणत, भुर्वणि, अपा इषन्त। ध्यान्तो दसमान (भक्त:) तस्करीय त्वा भग ईट्टे। (तदा) त्वम् (त भक्त) विश्वस्मात् भुवनात् पासि, अर्याग्‌ (अपि) धनणा पासि।

६ हे वायो, त्व अस्मद्य: प्रथम, न: एषाम सोमाना पीतिम् अर्हसि, सुताना पीति अर्हसि। उत विहुत्मतीना, विशर्दुघा विशाम् (एव अय सोम)। ते इत् विश्वा: धेनव: आशिर दुहे घृत आशिर दुहे।

## सूक्त १३५.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–वायु ॥

हमारे यहां दर्भासन बिछा हुआ है। इस लिये, हे वायु, हवियोंका स्वीकार करनेके लिये आप हमारे यहा आइये। प्रशसायुक्त मन्त्र कहनेके कारण सोमरस तीव्र बन गया है। अपने रथको हजारो घोडे जोतकर सोमरसका आस्वाद लेनेके लिये यहा आइये। हे भगवन् वायुदेव, अन्य देवताएँ सोमपान करनेके लिये आपको यहां पहिले आनेके लिये आग्रह करती है। आपको आनन्दित करनेके लिये मधुर सोमबिदु हम आपको अर्पण करते है। हम आपको सोमबिदु इस लिये अर्पण करते है कि आप सत्कार्य करनेके लिये प्रेरणा उत्पन्न करे। १

पत्थरोसे पिसे हुए सोमरसको केवल आपहींके लिये हमने तैयार किया है। यह स्वच्छ और तेजस्वी सोमरस थालीमे डाला हुआ है। (मोतीकी नाई) यह तेजस्वी सोमरस छाना हुआ है। सोमरसका एक भाग आपको अर्पण किया जाता है और दूसरा भाग अन्य देवताओको और दिव्यजनोको अर्पण किया जाता है। हे वायुदेव, आपके घोडोको हमारी ओर खीचो। हमपर आप बडी कृपा करते है। हमपर आप बहुत प्रेम रखते है। आप सन्तुष्ट होकर हमारी ओर आइये। २

हे वायुदेव, आपके सैकडो नहीं हजारो घोडोको जोतकर हमारे यज्ञके समय हवियोका स्वीकार करनेके और आस्वाद लेनेके लिये आप आइये। एक भाग केवल आपहींके लिये अलग रखा हुआ है। रविकिरणोके प्रकाशके कारण वह भाग बहुतही तेजोमय दिखाई देता है। हे वायुदेव, अध्वर्युने आपके लिये थालीमे सोमरस तैयार रखा है। उसको हम आपके सामने रखते है। मोतीकी नाई शुभ्र सोमरसको हम बडे प्रेमसे आपको अर्पण करते है। ३

---

१ स्तीर्ण बर्हि उपनः याहि वीतये, सहस्रेण नियुता नियुत्वत (सोमाय) शतिनीभि. (स्तुतिभि) नियुत्वते (आयाहि)। तुभ्य देवाय देवा. पूर्व पीतये येमिरे हि। (इमे) मधुमत सुतास ते मदाय प्र अस्थिरन्, (तव) क्रत्वे अस्थिरन्।

२ अय अद्रिभि परिपूत स्पार्हा वसान तुभ्य कोश परि अर्षति, शुक्रा वसान अर्षति। तव अय भाग, अय सोमः देवेषु आयुषु हूयते, (तत्) हे वायो नियुत वह, अस्मयु याहि, अस्मयु जुषाणः याहि।

३ शतिनीभि सहस्रिणीभि नियुद्भि न अध्वर आ याहि, हे वायो वीतये, हव्यानि वीतये उपयाहि,। तव अय ऋत्विय भाग (स अधुना) सूर्ये सचा सरश्मिः। (तस्मात्) अध्वर्युभिः भरमाणाः (इमे सोमाः) अयसत, हे वायो शुक्रा. (सोमा) अयसत।

आपका रथ, आप दोनो ( इन्द्र और वायु ) को हमारी रक्षा करनेके लिये, तैयार किये हुए पक्वान्न-भोजनको पानेके लिये, और हवियोंका आस्वाद लेनेके लिये, ले आया है। आपके रथको नियुत नामके अश्व जोते हुए थे। इस मधुर सोमरसका प्राशन कीजिये। आपही के लिये वह रस तैयार किया हुआ रखा है। हे वायु, आपकी कृपा हमपर हमेशा बनी रहे। अर्पण किये हुए विभागको आप ले जाइये। हे वायु और इन्द्र, आप अपना भाग ले आइये। आनन्द देनेवाला भोजनका भाग आप ले जाइये। ४

हमारी हार्दिक प्रार्थनाएं आप ( इन्द्र और वायु ) दोनोंको हमारे यज्ञकी ओर आकर्षित करें। तेजस्वी और चञ्चल अश्वकी तरह हमारे ऋत्विजोंने सोमरसको बड़ी चिन्तासे स्वच्छ तैयार किया है। आप हमपर प्रेम करते हैं इस लिये हमारे सोमरसका आप प्राशन कीजिये और हमारी सहायताके लिये आइये। हे इन्द्र, हे वायु, पत्थरोंसे पीसकर बने हुए सोमरसका आप दोनो स्वीकार कीजिये। हे दिव्य सामर्थ्य देनेवाले देव, सोमरस पीकर आप प्रसन्न हूजिये। ५ (२४)

ऋत्विजोंने पानी डालकर निचाडे हुए सोमरसको यज्ञपात्रमे रखा है। वे स्वच्छ सोमरसको आप ( वायु ) को ही अर्पण करते है। आप दोनोंके लिये यह सोमरस पवित्र दर्भोंपर छाना हुआ है। आनन्दित करनेवाले और उत्साह दिलानेवाले सोमरस खराब न होनेवाले ऊनके वस्त्रोंमेसे छाने हुए है। ६

---

४ वायो, ( अय ) नियुत्वान् रथ ( अस्माक ) अवसे सुधितानि प्रयासि अभि वीतये, हव्यानि च वीतये वीतये वा आ वक्षत्। मध्व अधस पिबतम्, इद वा पूर्वपेयम् हि हितम्, ( तस्मात ) वायो आ ( गहि ), इन्द्र च राधसा आगतम्, चन्द्रेण राधसा आ गतम्।

( न ) धिय वा अध्वरान् उप आ ववृत्यु (ऋत्विज) इम वाजिन इन्दु, आशु अत्य वाजिन न मर्मृजन्त। हे अस्मयू तेषा पिबतम्, ऊत्याच इह न आगतम्। हे इन्द्रवायू युव अद्रिभि सुताना ( पिबतम् ) वाजदा युवम् मदाय ( पिबतम् )।

६ इमे अप्सु सुता सोमा. इह अ वर्युभि परिमाणा वा अय त हे वायो ( इमे ) शुक्रा ( सोमा वा ) अयसत। एत ऊर्णाव तिर पवित्रम् वा अति अन्क्षत। अति अव्यया रोमाणि अति अव्यया ( वा ) सुवान सोमास ( अक्षत )।

हे वायु, इस समय वहुत लोक सोते होंगे, इस लिये उनको छोड़कर जहा सोमरसको पीसनेवाले पत्थरोका अवाज होता है वहा आप चले जाइये। हे वायु, आप और इन्द्र, दोनो उस घर चले जाइये जहा आपके लिये मधुर स्तोत्रोका गायन होता है। जिस घरमे अग्निमे घीकी धारा वहती है उसी घर आप चले जाइये। अपने रथको वलवान् घोडे जोतकर उस पवित्र यज्ञकी ओर आप (वायु और इन्द्र) चले जाइये। ७

सोमरसके मधुर हविर्भागको आप इधर ही ले आइये। वीर पुरुष इस मधुर सोमलताको अश्वत्थ वृक्षकी नाई पवित्र मानते है। वे उसका वड़ा वर्णन करते है। जय पानेवाले वीर पुरुष हमेशा हमारी ओर होवे। हमारी धेनुएं आपकी कृपासे अच्छे अच्छे वच्चे जनती है। आपकी कृपासे हमारे खेतमे वहुत धान्य उत्पन्न होता है। हे वायु, आपकी कृपासे हमारी दूध देनेवाली गौओको वीमारी पैदा नही होती और वे दुवली नही होती। ८

हे वायु, आपके वलवान् हृष्ट पुष्ट और तेजस्वी घोडे आकाशके अन्तरिक्षमें दौड़ते हुए चलते है। चलते समय वे अश्व वड़े मजवूत दिखाई देते है। निर्जल प्रदेशमे भी वे थक नही जाते। जव वे दौडते है तव वड़ा आवाज होनेपर भी वे हिचकते नही। जिस तरह सूर्यके किरणोको कोई रोक नही सकता उसी तरह आपके अश्वोको भी कोई खीच नही सकता अथवा दवा नही सकता। ९ (२५)

---

७ हे वायो, ससत शश्वत अति याहि, यत्र ग्रावा वदति तत्र त्व च इद्र॰ च गच्छत (तत्र) गृह गच्छतम्। (यत्र) सूनृता दिदृशे, घृतम् च रीयेत, (तत्र) अध्वरम् पूर्णया नियुता आयाथ, (त्वच ह इद्र. च अध्वरम् आयाथ।

८ तत् मध्व आहुति अत्र अह वहेथे, यम् (सोम) अश्वत्थ (इव वहुमन्यमाना॰) जायव: उप तिष्ठन्त ते जायव अस्मे सन्तु। अस्माक गाव साक सुवते यव. पच्यते, हे वायो ते धेनव न उपदस्यति न च ते धेनव अपदस्यन्ति।

९ हे वायो इमे ते उक्षण ते ये सु वाह्वोजस. नदी अन्त. पतयन्ति। (पतयन्त॰ च) महि व्राधन्त उक्षण: (दृश्यन्ते) ये धन्वन् चित् अनाशव:, जीरा चित् अगिरौकस। (पुन च) सूर्यस्य रश्मय इव दु.नियन्तव, हस्तयो दुर्नियन्तव. (सन्ति)।

## सूक्त १३६.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–मित्रावरुण ॥

सबसे श्रेष्ठ, आनन्दरूप, और आनन्द देनेवाले मित्र और वरुणको बडी नम्रतासे नमस्कार कीजिये। एकान्त चित्तसे उनका ध्यान कीजिये। और मधुर हवि उनको अर्पण कीजिये। वे विश्वके अधिपति हैं। घीकी नाई वे तेजस्वी वर्षा करते हैं। यज्ञमे उनका गजन होता है। उनके सर्वव्यापी अधिकारको कोई रोक नहीं सकता। उनके श्रेष्ठतामे कोई सन्देह नहीं करता। १

देखिये। हमारे महायज्ञके लिये उषाका उदय हुआ है। स्थिर और सत्य आकाशमे उषाका मार्ग किरणोंसे प्रकाशित हुआ है। दयालु भगवानका आज भी अपने हमेशाके उन किरणोंसे दिखाई देने लगा है। उसी तरह मित्र, अर्यमा और वरुणका भी स्थान प्रकाशित हुआ है। वहांसे वे सन्तुष्ट होकर प्रशंसायोग्य उत्साहके साथ उत्तम युवा अवस्थाका अर्पण करते हैं। २

स्थिर, तेजोमय और पीला आकाश अदिति पृथ्वी और नक्षत्रोंको धारण करता है। उस आकाशरूपी अदितिके साथही कभी न सोनेवाले मित्र और वरुण हमेशा रहते हैं। विश्वके वैभवयुक्त साम्राज्यका दानशील आदित्यही उपभोग लेते हैं। मित्र और वरुण सब लोगोंको अपना अपना काम करनेकी प्रेरणा करते हैं। अर्यमा भी इसी तरह काम करनेकी प्रेरणा करता है। ३

यह सोमरस मित्र और वरुणको सुख देनेवाला होवे। जब यज्ञके समय सब देव यज्ञ-पात्रमे रखे हुए तेजास्वी और मधुर सोमरसका प्राशन करते है तब वह बड़ा स्वादिष्ट लगता है। प्रेमसे एकत्रित हुए सब देव सोमरसका यथेष्ट प्राशन करे। हे विश्वाधिपति ( मित्र और वरुण ), हम आपसे प्रार्थना करते है वह सफल होवे। हे सत्यधर्मका प्रचार करनेवाले ( मित्र और वरुण ), कृपा करके हम जो आपसे मांगते है वह दीजिये। ४

जो मित्र और वरुणकी सेवा करते है उन पराक्रमी और उदार भक्तोकी पाप और दुःखसे सब प्रकारसे रक्षा कीजिये। जो सच्चे और सत्यधर्मसे चलते है, जो यज्ञका स्तोत्र गाते है, और जो सेवारूपी स्तवन करते है, उन भक्तोकी अर्यमा सब प्रकारसे रक्षा करता है। ५

पृथ्वी और आकाशके बीचमे प्रकाशित होनेवाले बड़े मित्रका मै स्तवन करता हूं। दान-शील, दयालु, और उदार वरुणकी भी मै स्तुति करता हूं। हे ऋत्विज, इन्द्र, अग्नि, भग, और स्वर्गमे रहनेवाले अर्यमा आदि देवताओके गुणोका भी वर्णन कीजिये। हमे अच्छे पुत्रका और दीर्घ आयुका लाभ होवे। क्यो कि हम आपको सोमरस अर्पण करते है। ६

दयालु मरुत्देव और इन्द्र देव भी हम पर कृपा रखे। बडे कष्टसे हमें कीर्तिका लाभ हुआ है। इसी लिये सब लोक हमे जानते है और मानते है। अग्नि, मित्र और वरुण हमे सबको शान्ति और सुख देवे। हम और हमारे यजमान सदाके लिये सुख और शान्तिका उपभोग लेवे। ७ (२६) (१)

---

४ अय सोम मित्राय वरणाय शतम भूतु, देवः देवेषु आभग अवपानेषु आभग ( भवतु ) य ( सोम ) सजोपस विश्वे देवास अय जुषरत। हे राजाना यत् ईमह, हे ऋतावाना यत् ईमहे तथा करथः।

५ य. जन मित्राय वरणाय अविधत् त अनर्वाण दाश्वास मर्तं अहस परिपातः, अहस ( परि पात )। त ऋजूयन्त अनु व्रतम् ( चरन्त ) अयमा अभि रक्षति, य एनो व्रतम् उक्थै परि भूषति, व्रतम् स्तोमै आभूषति।

६ रोदसीभ्या. बृहते दिवे मित्राय नम वोचम्। वरुणाय मीळ्हुपे सुमृळीकाय मीळ्हुषे च ( नम वोचम् ऋत्विज। इन्द्रम् अग्नि, द्युक्ष अर्यमण भग च उपस्तुहि, ( यया स्तुत्या ) ज्योक् जीवन्त प्रजया सचेमहि, ( सर्व इदम् ) सोमस्य ऊती सचेमहि।

७ मरुद्भि. देवाना च ऊती वय इन्द्रवन्त स्वयशसा च मसीमहि। अग्निः मित्र· वरुण शर्म यसन्) तत् च मघवान वय च अश्याम।

# अध्याय २.

## सूक्त १३७.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–मित्रावरुण ॥

मित्रावरुणो आइये । हमने ये सोमरस ग्रावोंके योगसे निचोड़ कर निकाले हैं । उनमें दूध डाला है और वे उत्साहकर और हर्षप्रद है । हे जगन्नायको, आप आकाशतकको व्याप्त कर डालनेवाले है, आप ही हमारे रक्षक है, इस लिए हमारे पास आइये । मित्रावरुणो, ये शुभ्र सोमरस आपहीके लिए बनाये गये है और उनमे मीठा तथा गाढ़ा दूध और थोड़ासा पानी मिलाया गया है । १

इधर आइये । (हमारे) यहां भी इन सोमरसोंमें दहीके समान गाढ़ा दूध डाला गया है । यह रस निचोड़ कर उसमे मीठा दहीभी डाला गया है । प्रभात होनेके बाद सूर्य के कोमल किरण पड़ते ही आप दोनोंके लिए, अर्थात् मित्र और वरुण के लिए, यह रस निचोड़ कर तैयार किया गया है । उनके पान करनेके लिए–उन सत्यस्वरूप मित्रावरुणोंके ग्रहण करने के लिए–यह सुन्दर रस तैयार किया गया है । २

(हे देवताओ), दूधके प्रवाहके प्रवाह छोड़नेवाली आपकी उस प्रकाशरूपी धेनुका जैसे दूध दुहा जाय वैसे ही (हमारे ऋत्विज) इस सोमवल्लीका मानो दूध ही दुह रहे हैं । ग्रावोंके योगसे–उन पाषाणोंके योगसे–मानो उस वनस्पतिका दोहनही कर रहे है, अतएव हे भक्तरक्षको, हमारे यहा सोमपान करनेके लिए आइये । हे मित्रावरुणो, ऋत्विजोंने आपके लिए यहा यह सोमरस तैयार कर रखा है, यह आपके ग्रहण करनेके लिए यहां पर उन्होंने पात्रो मे भरकर (आपके सामने) रख दिया है । ३ (१)

---

१ (हे मित्रावरुणौ) आयात, इमे सोमासः मत्सराः अद्रिभिः सुतम, इमे, गोश्रीताः मत्सराः (... ) । हे राजाना युवा दिवि स्पृशौ अस्मत्रा च उप नः आगतम् । हे मित्रा वरुणा इमे गवाशिरः शुक्राः गवाशिरश्च (सन्ति) ।

(मित्रावरुणौ) आयातम्, इमे सोमासः इदव दध्याशिर (इमे) सुतासः दध्याशिर, उत उषस बु... स्य रश्मिभि साकं वाम् (अयं) मित्राय वरुणाय च (अयं) सुत, (अयं) चारु ऋताय पीतये सुत ।

३ (हे देवौ) ता वा वासरीं धेनु न अंशु अद्रिभिः दुहन्ति सोम अद्रिभि दुहन्ति; अस्मत्रा ... (... ) उप न सोम पीतये आगन्तम् । हे (मित्रावरुणा) अयं सोम. वा नृभिः सुतः, (अयं) पीतये ... सुत ।

## सूक्त १३८.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–पूषा ।

अब मैं समर्थ पूषा की महिमा यथामति वर्णन करता हूं। यह स्वाभाविकही प्रतापी है। इसके पराक्रम की कीर्ति कदापि कम नहीं होती, अथवा यह भी नहीं होता कि इसकी स्तुति कभी समाप्त हो जाय। शान्तिसुखकी मनीषा रखकर मै जिस पूषा की उपासना करता हूं वह (भक्तो की) रक्षा करनेके लिए बिलकुल तैयार रहता है और वह सर्वोत्कृष्ट आनन्द का लाभ कर देनेवाला है। यह परमपूज्य प्रभु सम्पूर्ण विश्व का चित्त अपनी ओर आकर्षित कर लेता है और इसकी प्रसन्नता के लिए जो यज्ञ किया जाता है वह भी सब का मन हरण कर लेता है। १

हे पूषा, चपलता मे वायुकी तरह अत्यन्त चंचल आपका भजन हम स्तोत्रोंसे करते रहते हैं। अतएव, जिस प्रकार आप युद्धके अवसर पर (हमारी) रक्षा करते है उसी प्रकार शत्रुके इस अंधेरे प्रदेशसेभी हमे, ऊंटकी पीठ पर बैठा कर लजाने की तरह, पार कीजिए। आप परमान्ददायक परमेश्वर हैं और मैं दीन मर्त्य हूं। आपका सहवास होनेके लिए आपकी विनती करता हूं। भजनमे हमारी स्तुतिओ को सफल कीजिए और समरांगण मे हमारे बाणोको यशस्वी कीजिए। २

हे पूषा, आपके सहवाससे विद्वान् साधुजन अपने सुकृतके कारण और आपकी कृपासे संसारके लिए उपयोगी हुए; और सचमुच इस सत्कर्मके कारण ही वे (आनन्दपदका) उपभोग कर रहे हैं। अतएव, हम आपसे करोड़ो ऐसे दिव्य प्रसाद, जोकि आपके पूज्य नामके योग्य है, अंचल फैला कर मागते हैं, इस लिए हमे न दबकाते हुए, हे सर्वजनस्तुत पूषा, आपही हमारे रक्षक हो, प्रत्येक युद्धमे आपही हमारे नेता हो। ३

---

१ पूष्ण महित्व प्र प्रशस्यते, अस्य तुविजातस्य तवस॰ (महित्व) न तदते । अस्य स्तोत्रमपि न तदते । सुम्नयन् (अह) अतिऊति मयोभुव अर्चामि, य॰ मख दव विश्वस्य मन॰ आ युयुवे, (यस्य) मखश्चापि आ युयुवे ।

२ हे पूषन् यामनि अजिर न, त्वा स्तोमेभि प्रकृण्व॰ (तत्) यथा मृध कृणव (तथा) उष्ट्रः न मृधः पीपर. । यत् मर्त्य. (अह) त्वा देव मयोभुव सख्याय हुवे । अस्माक आगूषान् वाजिद्युम्नि. ।

३ हे पूषन् यस्य ते सख्ये विपन्यव सत क्रत्वा चित् अवसा च बुभुज्रिरे इति क्रत्वा बुभुज्रिरे । (तत्) ता (तव) नवीयसीं (कीर्ति) अनु नियुत राय ईमहे । हे ऊरुशस (त्व च), अहेळमानः सरी भव वाजवाजे सरी भव ।

हे पूषा, आपके अश्व भी जन्मरहित हैं, अतएव, ऐसी दिव्य सम्पत्ति प्राप्त कर देनेके लिए सदा सर्वदा आप हमारे बिलकुल समीप रहिये, हे परमोदार पूषा, आप रोष न रखते हुए हमारे बिलकुल समीप रहिए; क्यों कि हम सत्कर्मप्रवृत्त हैं। हे अद्भुत पराक्रम करनेवाले पूषा, हम अपने मनोहर स्तोत्रोंके योगसे आपका अन्तकरण अपनी ओर आकर्षित कर सकें। हे प्रखर दीप्तिमान् पूषा, आपको हम क्षणभर भी न भूलें और हमारी ओरसे आपके सहवासकी उपेक्षा यत्किंचित् भी कभी न हो। ४ (२)

## सूक्त १३९.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–विश्वेदेव ॥

सुनिये सुनिये, मैं आपके सामने भक्तिपुरस्सर अग्निकी स्थापना करता हूं और दिव्य सामर्थ्य प्राप्त होनेके लिए ( हम सब मिलकर ) उससे प्रार्थना करते हैं, हे इन्द्र, वायुदेव, उस ( सामर्थ्य ) के लिए हम अंचल फैलाते हैं। अपूर्व और बिनचूक कार्य सिद्ध कर देनेवाली जो जो प्रार्थना होती है वह वह इस प्रकाश–निधि के तई संलग्न हो जाती है, अतएव हमारा भी ध्यान पूर्णतया उसीकी ओर लगे और देवताओंकी दृष्टिमे रहन की तरह हमारी काव्यप्रतिभा का जोर बेरोक फैले। १

हे मित्रावरुणो, जब आपने अपनी इच्छासे और अपने चातुर्यपूर्ण नियमके अनुसार सत्यस्वरूप ( आत्मा ) से यह असत्य ( शरीर ) अलग कर दिया तभी आपके निवासस्थानमे आपका हिरण्यमय स्वरूप हमे देख पडा। वह पहले हमारी सूक्ष्म बुद्धि को गोचर हुआ। इसके बाद मन को हुआ, इसके बाद इन्द्रियोंको और अन्तमे सोमकी ओर लगे हुए हमारे स्वकीं नत्रोंको ( गोचर हुआ )। २

---

४ हे अजाश्व पूषन् अस्वाः ( राय. ) सातये नः उप भुव, हे ररिवान् अजाश्व पूषन् त्व अहेळमान त्यता ( अस्माक उपभुवः )। हे दस्म त्वा साधुभि स्तोमेभि ओ षु वर्तीमहि। हे आघृणे पूषन् त्वा तिमन्यं, ते सख्यमदि नापन्हुवे।

श्रु श्रौषट् ( अह ) धिया अग्नि पुरा दधे त नु तद् दिव्य शर्ध आवृणीमहे, हे इन्द्रवायु आवृणीमहे। नव्यसी श्राणा ( स्तुति सा ) विवस्वति नाभा सदायि। अव न धीतय प्रसूपयन्तु देवान् अच्छा न .) धीतय ( प्रसूपयन्तु )।

२ हे मित्रावरुणौ यत् ह युवा स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ऋतात् अधि त्यत् अनृत आददाथे। ( तत हि ) युवोः हिरण्ययम् ( रूप ) सद्मसु अधि दृश्या अपश्याम। ( तत् प्रथम ) धीभिः मन ( अपश्याम पश्चात ) मनसा ( तत पर ) स्वेभि अक्षभि सोमस्य स्वेभि अक्षभि ( अपश्याम )।

हे अश्वीदेवताओ, यहा बन्दिजनों की तरह आपकी कीर्ति फैलानेवाले कितनेही ऋत्विज आपका स्तवन कर के आपकी प्रार्थना किया करते है, और इधर दुसरे कुछ ऋत्विज आपको हविर्भाग देकर भजते रहते है। हे ज्ञानसागरो, सब प्रकारकी सम्पत्ति, सब ( प्रकारका ) सामर्थ्य आपमे रहता है। हे अद्भुत पराक्रमी अश्वियो, आपके सुवर्णरथके, आपके अविनाशी रथके, पहिले ( मानो इछित मनोरथो की ) वर्षाही किया करते हैं। ३

हे पराक्रमी अश्वियो, यह सभी को मालुम है कि आप आप आकाश के कपाट खोलते हैं। ( भक्तजनो की ) प्रातःकालकी इष्टियो मे जानेके लिए आप अपने रथके घोड़े जुटाते रहते है; आप वे अपने कभी न नाश होनेवाले घोड़े, देवलोकमे रहने की इछा करनेवाले भक्तोंके यहा जानेके लिए, जुटाते रहते है। हे अश्विदेवताओ, आपके कर्म अद्भुत हैं। आप अपने अविनाशी रथमे सारथीके समीप हमे बैठने दीजिए; क्यो कि ( पृथ्वीपरकी ) किसी पक्की सड़क परसे चलने की तरह आप आकाशमें अच्छी तरह घोड़े दौड़ाते रहते हैं, और दिव्य लोकके मार्गसे वेगपूर्वक रथ छाड़ते रहते हैं। ४

हे अश्विदेवताओ, विलक्षण सामर्थ्य तो आपकी सम्पत्ति ही है, अतएव उन सामर्थ्योंके योगसे रातदिन आप हमारी सहायता कीजिए। आपकी उदारतामे कभी प्रतिरोध न हो। हमारे उपर जो आपकी कृपा है वहभी कभी समाप्त न हो। ५ (३)

---

३ हे अश्विनौ आश्रावयन्त· इव, आयव· ( युवयो· ) श्लोकम् ( आश्रावयन्त: ) आयवः युवान् स्तोमेभिः देवयन्त ( अपरे च ) आयव युवा हव्या अभि ( आव्हयन्ति ) हे विश्ववेदसा विश्वाः श्रिय. पृक्षः च युवो अधि ( वसन्ति ) हे दस्रा वा हिरण्यये हिरण्यये रथे पवय: ( अभीप्सितानि ) प्रुषायन्ते।

४ हे दस्रा ( इद ) अचेति ( यद् युवा ) नाकम् वि ऋण्वथः वा रथयुज दिविष्टिषु युञ्जते, अध्वस्मानः ( अश्वा ) दिविष्टिषु ( युञ्जते )। हे दस्रा, वा हिरण्यये रथे वन्धुरे अधि स्थाम। यत. ( सु ) पथा इव रज. अनुशासता यतौ, रज अजसा शासता ( यन्तौ )।

५ हे शचीवसू शचीभि दिवा नक्त च न: दशस्यतम्। वाम् रातिः कदा चन मा उप दसत्। ( वा ) राति कदाचन अस्मत् ( मा उप दसत् )।

हे औदार्यसागर इन्द्र, ये सोमरस आपके समान शूरके ही पीने योग्य है। ये पाषाणोंसे निचोड़ कर टपकाये हुए तीव्र सोमरस–ये शरीरमें भिननेवाले रस–आपके लिए (तैयार किये गये) हैं। ये (रस) आपको हर्ष उत्पन्न करे, जिससे आप प्रसन्न हो कर हमें बहुत बड़ी और अद्भुत देनगी देवें। स्तुतिसे प्रसन्न होनेवाले हे इन्द्र, हम सुन्दर स्तोत्रोंसे आपके गुणानुवाद गाते हैं। हमारे यहा आइये। आप हमारे लिए अत्यन्त सुखदायक है, अतएव हमारे पास आइये। ६

हे अग्निदेव, हमारी सुनिये, हमें आपका गुणसंकीर्तन करते रहते है, (यह बात) उन माननीय देवो से–उन यजनीय और दैदीप्यमान देवो से–आप कहे ही गे। देवो, जब आपने अंगिरसोंको (काम–) धेनु दी तब यज्ञ करनेवाले यजमानके लिए अर्यमाने उसका दोहन किया, और वह गाय कौनसी है–सो सिर्फ उसे अथवा एक मुझेही मालुम है। ७

(हे मरुतो,) हमारे लिए आपने पराक्रम किये, ऐसा कभी नहो कि वे अब पुरानी बातें हो गई। हमारा उज्वल यश कभी मलीन न हो, अर्थात हमारे आखो–देखत तो कभी न हो। अद्भुत, और पीढी दर पीढ़ी हो जाय तथापि नवीनही, (रहे) और हे मरुतो, आपका जो वरदान लोकोत्तर तथा सर्वप्रसिद्ध हो वही हमे दीजिए। जितना कुच्छ दुस्साध्य हो, जितना कुच्छ दुर्लभ हो, वहभी आप हमें दिये विना न रहिए। ८

---

६ हे वृषन् इन्द्र इमे इन्दवः त्वत्पाणास, इमे अद्रिसुतास उद्भिद उत् भिदश्च तुभ्य सुताम। ते मद चित्राय राधसे दावने त्वा मदन्तु। हे गिर्वाह गीर्भि स्तवमान. आगहि, सुमृळीक: न: आगहि।

७ हे अग्ने न ओ षु शृणु (अस्माभि) ईळित त्व यज्ञियेभ्य राजभ्य यज्ञियेभ्य देवेभ्य (अस्मत् स्तुतिम इत्य) ब्रवसि। हे देवा यत अंगिरोभ्य त्या धेनु अदत्तन ता कर्तरिसचा अर्यमा दुहे एष म सचा ता वेद।

८ (हे मरुत:) व तानि पौंस्या अस्मत् मोषु सना अभि भूवन्, (अस्माक) द्युम्नानि मोत जारिषु, अस्मत् पुरा मोत जारिषु। यत् व राध चित्रम युगेयुगे नव्य अमर्त्य च घोषात्। तत् हे मरुत अस्मासु दिधृत यच दुस्तरम् यत् च दुस्तरम् तदपि (दिधृत)।

पुरातन ऋषि दध्यङ्, तथा अंगिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि और मनु को मेरा कुल मालुम है। जितने कोई मेरे पूर्व हो गये उन ( ऋषि और राजा मनु ) सबको मेरा हाल मालुम है, क्योंकि उनका सम्बन्ध देवो तक पहुंचता है और हमारे मुख्य पूर्वज भी उन्हींमे से थे; अतएव उन्ही की पद्धतिके अनुसार मै इन्द्राग्निका स्तवन करके उनके सम्मुख नम्र होता हूं। उनका यशोवर्णन करके उन्हींको प्रणिपात करता हूं। ९

याज पठन करके आचार्य को देवोका यजन करन दीजिए, और प्रेमी देवता भी उत्कृष्ट हविरन्नका स्वीकार करने मे प्रवृत्त हो, क्योंकि अब ज्ञानवान् बृहस्पति, बलवर्धक सोमरस अर्पण करके देवयजन करनेके लिए उत्साहित हुआ है, और सर्वगुणसम्पन्न तथा तीव्र सोमरससे यजन कर रहा है। अतएव सोमवल्ली निचोड़ने के पाषाणो की दूर तक सुन पड़ने वाली ध्वनि सहज ही हमारे कानो मे पडी। महत्कार्य करनेवाले इस सोमरसके हाथ मे वर्षा करनेका सामर्थ्य है, ( इसी लिए ) पुण्यकर्मका आचरण करनेवाले के लिए रहने को विस्तृत और उत्कृष्ट स्थान मिले है। १०

हे दिव्य विभूतियो, आप ग्यारह जन आकाश मे रहते है ग्यारह लोग पृथ्वीपर और उदकोमे भी ग्यारहही जन बडे वैभव से रहते है; अतएव आप हमारा यह यज्ञ मान्य कर लीजिए। ११ (४) (२०)

## अनुवाक २१.

### सूक्त १४०.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

जो यह अग्नि वेदीपर आरूढ़ होता रहता है और जिसे अपना निजका (तेजोमय) स्थान अधिक प्रिय होता है उस परम देदीप्यमान अग्निके लिए घृतपात्र ले आओ। घृत ही उसके लिए हविरन्न की तरह है, और जैसे वस्त्रसे मंडित किया हो वैसे ही अग्निको मननीय स्तोत्रोसे आच्छादित करो। यह परम पवित्र, शुभ्र-तेजोमय है, प्रकाशही उसका रथ है और उसके योगसे वह अंधकार का नाश करता रहता है। १

---

९ पूर्व दध्यङ् ह अंगिरा च, प्रियमेध कण्वः, अत्रि मनु च ( एते ) मे जनुष विदु, ( ये च ) मे पूर्वे मनु च ते सर्वेपि विदु । ( यत ) तेषा देवेषु आयति अस्माक च तेषु नाभयः, ( तत. ) तेषाम् पदेन इन्द्राग्नी गिरा नहि आनमे, गिरा आनमे ।

१० होता यक्षत् वनिन ( देवा ) वार्यं वन्त, वेन बृहस्पति पुरुवारेभिः पुरुवारेभि उक्षभिः यजति । अप अद्रे दूर आदिशम् श्लोकम् त्मना जगृम्भ, सुक्रतुः ( सोम. ) अररिदानि अधारयत् ( अत ) सुक्रतु. ( भक्त. ) पुरु सद्मानि ( अधारयत् ) ।

११ हे देवास ये ( यूय ) एकादश दिवि स्थन, पृथिव्या एकादशस्थ, एकादश एव महिना अप्सु क्षितः स्थ ते ( यूय ) यज्ञम् इम जुषध्वम् ।

१ वेदिषदे, प्रियधामाय सुद्युते अग्नये धासि इव यानि प्रभर । वस्त्रेणेव मन्मना त शुचि ज्योतीरथ शुक्रवर्ण तमोहनम् वासय ।

दोनो से, अर्थात् पृथ्वी और आकाशसे, यह प्रकट होता है, और तीन प्रकारका अन्न ग्रहण करके एक वर्ष के वाद फिर उसी भक्षण किये हुए अन्न की ( धान्यरूपसे ) अनेक-गुणा वृद्धि करता है। बलशाली अग्नि अत्यन्त उदार चरित देख पड़ता है, उस समयका उसका मुख और जिव्हा दूसरी, और जब अनिवार होकर अरण्यके अरण्य चट कर डालता है तबका दूसरा। २

पहले दोनो अंधकारमे छिपे रहते है और एक दूसरेसे चिपटे रह कर जोरसे हिलने लगते है और इसके बाद ( प्रकट होनेवाले ) अग्निरूप बालकके पास वे दोनो दौडते आते है ( यह बालक साधारण नहीं है )। इसकी लम्बी जिव्हा बाहर आकर पूर्वाभिमुख होती है। यह एकदम प्रकट होकर चमकता है और सब अनिष्टो का नाश करता है। इसकी सेवा सबको करनी चाहिए। यह भक्तो की अन्तःकरणवृत्तियो को उत्साहित कर देता है और ( जगत्‌के ) पिताको हर्षित करता है। ३

( अग्निदेव, ) ये आपके छूटनेके लिए आतुर होनेवाले, सर्वव्यापक, वेगसे दौडनेवाले अश्व जब जोरसे उडते हुए जाते है तब उनका मार्ग काला होता जाता है। इन अश्वोंके मुख भिन्न भिन्न दिशाओं की ओर झुके हुए है और ये वायुरूप शीघ्रगति और वायुप्रेरित अश्व उस राजाके लिए जोते गये हैं। ४

जाते जाते मार्गके अन्धकारका समूल उच्छेद करके अपना विशाल रूप प्रकट करनेवाले ये ( अग्निके अश्व ) स्वाभाविकही परन्तु बडे जोरसे उडते जाते हैं, क्योंकि उस समय यह अग्नि भी पृथ्वीके विस्तीर्ण भालप्रदेश का चुम्बन लेकर मेघगर्जनारूप प्रचण्ड घोष करते हुए सपाटेसे जाता है। ५ (५)

---

२ द्विजन्मा, त्रिवृत् अन्नम् अभि ऋज्यते, संवत्सरे ईम् जग्ध पुनः वर्धते। ( अथ ) मुखा अन्यस्य ( [illegible] जिह्वा जेन्य वारण ( असौ ) वनिन अन्येन नि मृष्ट।

ते कृष्णप्रुतौ सक्षितौ अन्य मातरा वेविजे, उभा च शिशुम् अभि तरेते। प्राचाजिह्वम् ध्वसयन्तं तृष्ण आ साच्य कुपय पितुः वर्धनं ( अभितरेते )।

४ ( हे अग्ने ) ( इमे ते ) मुमुक्ष्व आशव जुवः ( अश्वा ) ऋधुद्र कृष्णसीतासः, उ ( नाते ) [illegible] अजिराः रघुष्यदः वातजूता मनवे मानवस्यते उप युज्यन्ते।

५ आत् अस्य ते ( अश्वा ) [illegible] ध्वसयन्त [illegible] कृत [illegible]। [illegible] अनि मरुतान् अभिश्वसन् स्तनयन् नानदत् प्र [illegible]

चित्रविचित्र ओषधियोंको मानो (अपनी) प्रभासे अलंकृत करनेके लिए ही यह अग्नि (उनकी ओर) झुककर देखता है और जैसे कोई शूर योद्धा अपनी प्रिय पत्नीसे भेटने जाता है वैसे ही गर्जना करते हुए यह उन (ओषधियों) के पास जाता है। उसका दिव्य प्रताप प्रकट होनेहीसे उसके शरीरमें विशेष शोभा आती है, परन्तु उस समय किसी भयंकर श्वापदकी तरह दुर्निवार होकर वह अपने ज्वालारूप अयाल एकदम हिलाता है। ६

वे ज्वाला चाहे सकलित हो चाहे भिन्न भिन्न दिख पड़नेवाली हों, उन सबको जाननेवाला यह सनातन अग्नि उन सभीको समेटता है और वे भी अग्निको अपनेके तौर पर पहचानती हैं। और इसी लिए उनके समुद्रमें जाकर वह शयन करता है। उस समय फिर न ज्वाला बढती है और दिव्यरूप पाकर मावापसहित एक निराला ही रूप धारण करती है। ७

सुन्दर केशकलाप धारण करनेवाली उन लावण्यवतियोंने अग्नि को आलिंगन किया। (इसके पहले) वे मृतप्राय ही थीं, परन्तु इस विश्वजीवन के लिए ही वे उठ खड़ी हुई, उनका वार्धक्य दूर करके उनमें उत्साहपूर्ण और नष्ट अथवा क्षीण न होनेवाली नई जीवनीशक्ति उत्पन्न करके, जयघोष करते हुए वह उनके पास आया। ८

पृथ्वीमाताके वस्त्रके अंचलका चुम्बन करते हुए यह तीव्र अग्नि (दावाग्निके रूपसे) वेग के साथ आगे जाता रहता है और (उसके पास आते ही) घोर वन्यश्वापद भी चिल्लाते हुए उधर उधर भागने लगते हैं। पृथ्वीका पृष्ठभाग चाटते चाटते जाते समय (यह अग्नि) पादचारी प्राणियोंके शरीरमें (उन्हें अन्न देकर) सदा नवीन जोश उत्पन्न करता है; परन्तु इसके आगे जानेपर पीछे अवश्यही इसका मार्ग काला होता जाता है। ९

हे अग्निदेव, हमारे उदार यजमानों पर अपनी दयाका प्रकाश डालिये। आप वीर्यवान् और आत्मसंयमी हैं, आपका श्वासोच्छ्वास भी (ओजस्वी) होता है। आप अपना बालरूप छोड़कर, जैसे समराङ्गणमें तेजस्वी कवच पहन कर घूमता हो वैसेही, अपने प्रकाशसे सबको दीप्त कर डाला है। १० (६)

---

६ य वस्त्रपु ता भूषन् न अधि नन्नते वृषेव पत्नी, ता.श्च रोरुवत् अभ्येति। ओजायमान (स्न) तन्वः च शुम्भते भीम (सिंह.) न दुर्गृभि सन् शृगा दविधाव।

७ स नस्तिर विष्टिर (सती: अपि ता सर्वा.) जानन् एव सगृभाति जानती च ता नित्य आनके। ता पुन वर्धन्ते देव्यम् अपि यन्ति, अन्यत् वर्प पित्रो सचा कृण्वते।

८ ... अनु त हि तेरेभिरे. मनृपी (च ता) आयव तस्मै पुन. ऊर्ज तस्थु। सोपि ताभ्यो ... जरा ... तासु न अनु पर अस्तृत जीवम् जनयन् नानदत् न एति।

९ ... परि रिहन् अन जव (अग्नि) तुविग्रभि सत्वभि याति अट। वय पद्वते ... (अग्नि) ... वर्तनी अनु नन्ते अह।

१० ... अस्माक मघवत्सु (यजमानेषु) दीदिहि, अध त्वं ... वृषभ दमीवान् (अग्नि) ... परिजङ्गुराण ... ददरे।

हे अग्निदेव, किसी न किसी तरह रची हुई किसी कवितासे, अथवा आपको प्रिय लगने-
वाले किसी सुरस पद्यसे भी, यह मेरा सुव्यवस्थित स्तोत्र आपको विशेष प्रिय हो, और
आपके शरीरका जो शुभ्र और पवित्र प्रकाश पड़ता रहता है उसके योगसे (ऐसा हो कि)
आप हमे ( आपकी जो कृपा है वही ) रत्नही देते है। ११

हे अग्ने, हमे रहनेके लिए और जल्द चलनेके लिए, एक ऐसी नौका आप देनेही वाले
है कि जिसमे अभंग हाथे और वल्ली है, परन्तु वह ऐसी चाहिए कि जिसमे हमारे सारे
योद्धा, यजमान और लड़के तथा अन्य लोग, सब बैठकर पार हो सके और जो हमारे लिए
सुख का आश्रय हो। १२

हे अग्ने, यह हमारा प्रशंसास्तोत्र उत्तम मान लीजिए, इससे पृथ्वी, आकाश और
स्वयशोमंडित महा नदिया हमे दिव्य गोधन, धान्यसमृद्धि और दीर्घ आयु प्राप्त कर देगी
और अरुणवर्णा उषादेवी हमारे लिए मन.सामर्थ्यही का वरदान माग लेगी। १३ (७)

## सूक्त १४१.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–अग्नि ॥

सचमुचही देव का अवर्णनीय तेज सामर्थ्यके प्रभावसे प्रकट हुआ, इसी लिए वह (यह
अग्निरूप तेज) एक दर्शनीय वस्तु हो रहा है, अतएव मेरी चित्तवृत्ति उसकी ओर लगती
है और वह तत्काल फलद्रूप भी होती है। इस कारण सत्यधर्मप्रवर्तक ( हमारी ) स्तुतियोका
प्रवाह भी उसी ओर बहता रहता है। १

सामर्थ्यवान, नाशरहित, और सर्वान्न सम्पन्न यह अग्नि ( प्राणियोके ) शरीरमे वास करता
रहता है। सातो भुवनोको जो माताके समान कल्याणप्रद होते है उन ( उदकों ) मे उसका
दूसरा स्वरूप रहता है। इस वीर्यवान् अग्निसे मनोरथरूप दूध दुहनेके लिए उसके तीसरे
स्वरूपकी योजना की गई है। और इतनेहीके लिए सुन्दर युवतियोने इस लोकत्रयमे पूज्य
( अग्नि ) को प्रकट किया है। २

---

११ हे अग्ने इदं सुचितं ( मन्म ) दुर्वितान्, प्रियात् उचित् मन्मन· ते प्रेय अस्तु यत् तन्व शुचि ते।
रोचते तेन त्वं अस्मभ्य ( तव कृपारूप ) रत्न आवनसे।

हे अग्ने, गृहाय उत्तम रथाय नित्यारित्रा पद्वतीं नाव रासि, या नो अस्माकं वीरान् उत न मघोन
पारयात् या च शर्म ( भवेत् )।

१३ हे अग्ने न इदं उक्थं अति जुजुषी अपि च द्यावाक्षामा. स्वगूर्ता सिन्धवश्च गव्य नव्य दीर्घ
आयु यन्त ( भवेयु, ) अरुण्य ( उषस च ) इष वर वरन्त।

१ वल्मिथा, देवस्य दर्शत भर्ग तत् यत् महस्य अजनि, ( अत एव अत्र तत् ) वपुषे चारि। अतश्च
मति ईं उप दृते सावते च, अत ऋतस्य धेना मन्दुत अनयन्त।

२ पृक्ष न नित्य पितुमाश्च ( अय अग्नि, प्राणिना ) वपु आवेश ( अस्य ) द्वितीय रूप मातृशिवासु मातृषु
आ अस्य दुघन्य तृतीय ( अनीषितासा ) दोहसे ( अत ) युवतय दशप्रमति नमु जनयन्त।

जब अति विशाल ( इस आकाशरूप ) शरीरके मूलप्रदेशसे महात्माओंने अथवा ज्ञानसम्पन्न ऋषियोंने अपने सामर्थ्यसे इसे बाहर प्रकट किया और मधुर रसकी आहुति देनेके लिए पुरातनकालमें उसके गुप्त रूपसे रहते हुए भी मातरिश्वाने मंथन करके ( जब ) उसे बाहर निकाला, ३

जब उसे परात्पर पिताके पाससे नीचे लाकर आस पास फिराते हैं तब सामर्थ्यवर्धक आहुतियोंसे और समिधोंकी लताओंसे वह विलक्षण तेजके साथ ( एकदम ) प्रज्वलित होता है। दो लोग उसे प्रकट करनेका योग लाते है। तब वह अति पवित्र अग्नि अपने प्रखर तेजसे अत्यन्त तरुण रूपमें प्रादुर्भूत होता है। ४

इसके बाद वह पवित्र ( अग्नि ) मातृ समूहमें झटपट प्रवेश करके निष्प्रतिबन्धताके साथ अतिशय वृद्धिको प्राप्त होता है और उनमेंसे जो उसके विस्तारवृद्धिके लिए पहले कारणी भूत हुए होते है उनमें पहले प्रज्वलित होकर बादको फिर नवीन और कनिष्ठ समूहमें वेगसे सचार करता है। ५ (८)

अर्थात् प्रातर्यज्ञके समय ( ऋत्विज ) उसीको अपना आचार्य बनाते हैं और यह श्रद्धा रखकर, कि वही हमारा भाग्यदाता है, उसके प्रीत्यर्थ आहुतियोंसे पूर्णतया हवन करके उसे प्रसन्न कर लेते है। फिर, अपने प्रज्ञाप्रभावसे और अद्भुत सामर्थ्यसे सबकी स्तुतिका पात्र होनेवाला और सारे विश्वको जिसका आधार है वह अग्नि, सुप्रसन्न होकर, भक्तजनोंके स्तवन सुननेके लिए और उनके सोमरसका आस्वाद लेनेके लिए देवताओंको ले आता है। ६

यह अत्यन्त पूज्य अग्नि, वायुके कारण क्षुब्ध होते समय, स्तुतिको न माननेवाले किसी चतुर–चाणाक्ष पंडितकी तरह, ( अपने मार्गसे ) अनिवार होकर, जब अच्छी तरह जाता है और सब ( पातकोंको ) भस्म कर डालता है, जिसके दोनो पख कृष्णवर्णही होते है, तथापि जो शुद्ध स्थानहींमें प्रकट होता है और जिसकी ( कृपाके ) मार्ग नाना प्रकारके है वही यह अग्नि जाते समय मार्गमें अन्तरिक्षसे ऊपर चढ़ता जाता है। ७

---

३ यत् महिषस्य वर्पस बुध्नात् ईशानासः सुरय ईं शवसा क्रन्त। यत्र मध्व आधवे प्रदिव. गुह्य सन्तम् मातरिश्वा ईम् अनु मथायति।

४ यत् परमात् पितु प्रपरिणीयते ( तदा ) पृक्षुध वीरुध दसु आरोहति। यत् यत् अस्य जनुषः उभाः इन्वतः आदित् शुचि असौ घृणा यविष्ठ ( प्रादुः ) अभवत्।

५ आदित् स मातृ. आ विशत्, यासु आ, असौ शुचि अहिंस्यमान सन् उर्विया वि वृधे। यत् पूर्वा सनाजुव अनु अरुहत्, ( तत ) नव्यसीपु अवरासु धावते।

६ आदित् च त दिविष्टिपु होतार वृणते, भगमिव (हव्यै ) त पपृचानासः ऋजते। यत् क्रत्वा मज्मना च पुरु ष्टुत विश्वधा अमौ शस ( श्रोतु ) धायसेच देवान् मर्त वेति।

७ यत् ( अय ) यजत वातचोदित सन् जरणा अनाकृत व्हार वक्रा न व्यस्थात् तदा (एनासि) धक्षुष, कृष्णजंहस, व्यध्वन तस्य परमन् रज आ ( गच्छति )।

यंत्रसामर्थ्यसे चलाये हुए और सजा कर तैयार किये हुए किसी वाहनमे (बैठने) की भाति वह अपने आरक्त परिवारसहित तैयार होकर आकाशलोकमे सचार करता है। हे (अग्ने), आपका दहनकर्म जब तेजोसे होता रहता है तब कृष्णवर्ण धूम्रके टोलके टोल उठा जाते रहते है और जैसे प्रतापी शूरको कोई (डरे) वैसेही पक्षिगण आपके प्रखर कोपसे डरकर दशो दिशाओको भग जाते है। ८

हे अग्निदेव, आपहीके द्वारा वरुण (अपने) धर्मनीति-नियमोका पालन कराता है और मित्र तथा अर्यमा नामक उदारबुद्धिवाले देव (पापियोको) शासन करते है। आप अब सर्व व्यापक रूपसे प्रकट हुए है, और जेसे पहिलेका घेरा आरोको अपनी अपनी जगमेह दाब रखता है उसी प्रकार अपने प्रज्ञाबलसे आप सबको सब प्रकारसे सम्हालते है। ९

हे अग्निदेव, आप सदासर्वदा ठीक तरुणाईके जोरमे रहते है और स्तवनपूर्वक सोमरस अर्पण करनेवाले भक्तोको इच्छित रत्नसम्पत्ति और देव भजनबुद्धि दोनोका जोड़ मिला देते है। आप स्वयं सामर्थ्यकी ही तारुण्यदशाकी मूर्ति है, अतएव, हे महा वैभव सम्पन्न अग्निदेव, आप जो स्तुतिपात्र है उन्हे अपना भाग्यदाता मान कर हम अपने सब उद्योगोके आरम्भमे आपहीकी याद करते रहते है। १०

हे अग्निदेव, जिस प्रकार इतना ऐश्वर्य और बलवत्तर भाग्य, कि जो स्वयंपूर्ण और सत्कार्यमे व्यय किया जा सके, (आपने हमे दिया) उसी प्रकार सब सहन करनेका भरपूर सामर्थ्य भी हमे दीजिए। जिस प्रकार (घोड़ेकी) लगाम पकड़कर उसे वशमे रखते है उसी प्रकार यह अग्नि स्वाभाविक लीलासे (दैवी और मानवी) जन्मोपर अपना प्रभुत्व चलाता रहता है और सद्धर्मविहित यज्ञके प्रसंगमे देवोके प्रीत्यर्थ स्तवन करनेकी स्फूर्ति भी वही सत्कृत्यशील (देव) देता रहता है। ११

अत्यन्त देदीप्यमान, सर्व (वस्तु) तत्काल व्यापकर डालनेवाला और आनन्दरूप यह यज्ञसम्पादक अग्नि, तेजोमय रथसे जाता रहता है, वह हमारी पुकार सुने। अविनाशी अग्नि, अचूक प्रेरणाओसे हमे अभीष्ट सुखकी ओर-स्पृहणीय आनन्दकी ओर-ले जाय। १२

---

८ शिक्वनि यात कृत च रथ न अर्पानि अर्चिभि. द्या ईयते। आत् अस्य स्तनदिः, ते कृष्णास सूर( रहन्ति ), शूरस्य त्वेषयान् इव वय डपने।

हे अग्ने त्वया हि वरुण. धृतव्रत, मित्र अर्यमाच सुदानव (देवाश्च) शासदे। यत सीम् अनु विश्वथा अजायथा नेमि अरान् न परिभू (अग्नि)।

१० हे अग्ने यविष्ठ त्व शशमानाय सुन्वते रत्न दयताति च दन्वरि। हे सहस सूनु हे महितत्व नप्त त्वा वय भग न नकारे धीमहि।

११ हे अग्ने, दमूनसम् स्वर्थ रयिम न दक्ष च भग न त्व अस्मे वर्णिम परुचामि। (अग्न्यः) रश्मीन् च उभे जन्मनी यमति य सुक्रतु नत आ देवानाम् च शस (प्रवृर्ति)।

१२ उत सुद्योत्मा जीराश्व मद्र चद्रथ होता (अय अग्नि) न शृणवत्। स अग्नि अनर नेषत सुनिन सम्य अच्छ न नेषत्।

ऐसे स्तोत्रगानोंसे, कि जिनका प्रभाव विलक्षण है, अग्निका स्तवन किया है। विश्वका साम्राज्य भोगनेके लिए यह बिलकुल योग्य है, इसी लिए यह सबमे अग्रसर ठहरा है। अतएव, हमारे दातृत्वशाली यजमान और हम, सब इस प्रकार (अधर्मका उन्मूलन करके) अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हो जैसे सूर्य हिमजालका (उच्छेद करके वृद्धिको प्राप्त होता है।) १३ (६)

## सूक्त १४२.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

हे अग्ने, आप प्रदीप्त हुए है, अतएव आहुतियां देनेके लिए उत्साहित होनेवाले यजमानोंके पास आज आप अपने देवताओंको ले आइये; और पुरातन (यज्ञधर्मकी) यह हमारी परम्परा सोमरस निकाल कर अर्पण करनेवाले भक्त जनोंके लिए यथासांग कीजिए। १

हे स्वयंभु अग्निदेव, आपका स्तवन करके हवि अर्पण करनेवाले मेरे समान भक्तजनोका (जो) यज्ञ आप समीप रहकर यथासाग पूर्ण करते हैं उसमें अवश्यही घृतकी और मधुर मधुकी कदापि न्यूनता नहीं रहती। २

यह नराशंस, अर्थात् सर्वजनस्तुति योग्य अग्नि स्वयं पवित्र है, दूसरोंको पावन करनेवाला और आश्चर्यचकित करनेवाला है। वह द्युलोकसे आकर तीन वार (हमारा) यज्ञ मधुररससे पूर्ण करता है। वह सब देवताओंमे अत्यन्त पूज्य है। ३

हे अग्निदेव, हमारे स्तवनोसे आप प्रसन्न हुए है, अतएव उस अत्यन्त उज्ज्वल यशवाले इन्द्रको यहा ले आइये। आप मधुरभाषी हैं और यह अपना स्तोत्र मै आपके प्रीत्यर्थही गाता हूं। ४

---

१३ (अय) अग्नि साम्राज्याय प्रतर दधान. अग्निः शिमीवद्भि अर्कैः अस्तावि। अमी ये च मघवान (यजमाना) वय च ते मिह न सूरः अति निष्टतन्युः।

१ हे अग्ने समिद्ध. अध यतस्रुचे (यजमानाय) देवान् आ वह, सुत सोमाय दाशुषे पूर्व्यं ततु तनुष्व।

२ हे तनूनपात्, त्व मावत विमत्य, शशमानस्य दाशुषः घृतवन्त मधुमन्त यज्ञ उप मासि।

३ शुचि. पावक. अद्भुत. देवेषु यज्ञिय देवः नराशसः त्रिरा दिवः (नः) यज्ञ मध्वा मिमिक्षति।

४ ट अग्ने ईळित. त्व हि चित्र प्रिय इद्र इहा वह, हे सुजिह्व इय मम मतिः त्वा अच्छ वच्यते।

इस अध्वर यज्ञमे ऋत्विज कुशासन बिछा कर हाथमे स्रुवा लेकर आहुतियां देनेके लिए
यार हैं; और मै भी इन्द्रके लिए ऐसा विस्तृत आसन सुशोभित करता हू जो कि उस
सर्वव्यापक देवके लिए योग्य होगा। ५

देवताओंके भीतर प्रवेश करनेके लिए यज्ञशालाके पवित्र महाद्वार खुलें, वे दुष्टोंके स्पर्शसे
कलंकित नहीं हुए हैं; किन्तु सनातन धर्मको बढ़ानेवाले, पवित्र करनेवाले और सबको
अत्यन्त प्रिय हैं। ६ (१०)

सबको आनन्दसे जिसका सत्कार करना चाहिए, जो एक दूसरेसे बिलकुल संलग्न हुई हैं
और अपनी सुन्दरताके कारण बहुत मोहक देख पड़ती हैं वे रात्रि और उषारूप देवता, जो
कि (मानो) सत्यधर्मकी श्रेष्ठ माताही हैं, प्रसन्न अन्त.करणसे कुशासनपर आकर बैठें। ७

मधुरभाषी, (भगवान्का) अत्यन्त प्रेमसे स्तवन करनेवाले कवि, दोनों दिव्य ऋत्विज,
यह हमारा यज्ञ-सर्वार्थप्रद और स्वर्ग (के देवताओं) तक भी पहुंचनेवाला यज्ञ-सांगोपांग
पूर्ण करें। ८

शुद्धचारित्र्य और देवताओंमें तथा मरुद्गणोंमे भी पूज्य होनेवाली होत्रा, भारती, इला
और परम श्रेष्ठ सरस्वती, सब वंदनीय देवता आपही आप आसनपर आ बैठें। ९

हमारे ऊपर कृपा करनेवाला त्वष्टृदेव (यज्ञमंडपमे) नाभिपर, अर्थात् उत्तर वेदीपर,
आरूढ़ होकर, हमसे जो ओजस्वी और स्वाभाविकही अत्यन्त विपुल तथा अतिशय
आश्चर्यकारक वीर्य है उसकी ऐसी योजना करे कि जिससे हम सामर्थ्य हों और हमारा
उत्कर्ष हो। १०

हे राजा वृक्ष, यहां आइये और स्वयं हवि अर्पण करके देवोंका यजन कीजिए। परम
द्धिमान् अग्नि भी देवताओंमे जिनका हविर्भाग होता है उन्हींको देता रहता है। ११

पूषा तथा मरुत् भी जिसके सेवक है, जो विश्वाधीश है और सर्वत्रगति वायु (का भी
ो आत्मा) है, जो गायत्र गायनके विषयमे स्फूर्ति देता है उस इन्द्रको, (हे ऋत्विजो),
ाहा उच्चार करके हवि अर्पण करो। १२

स्वाहा शब्दका उच्चारण करके ये हव्य अर्पण किये हैं, इस लिए इनका स्वीकार करनेके
लेए आइये, हे इन्द्र यही ठीक है। इस अध्वर यज्ञके लिए ही (ये ऋत्विज) आपको
ुकार रहे है। १३ (११)

## सूक्त १४३.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–अग्नि ॥

मैं अब अपना वह ध्यान, जो कि सदा फलद्रूपही होता है, अग्निके नई लगाता हूं, और अपने मनोहर तथा शब्दोंसे व्यक्त किये हुए विचार भी हम धैर्यबल देनेवाले उस अग्निकी ही सेवामे अर्पण करते है। (स्वर्लोकके) उदकोंसे जो प्रादुर्भूत हुआ है वह लोकप्रिय अग्नि यज्ञका होता होकर अपने दिव्य निधियोंके सहित यज्ञसमयमे आकर पृथ्वी (पर की इस वेदी) पर अधिष्ठित हुआ है। १

अत्युच्च आकाशमे प्रकट होते ही यह अग्नि पहले मातरिश्वाको दृष्टि पड़ा। और वह अपनेही प्रज्ञाबलसे तथा पराक्रमसे जब प्रज्वलित हुआ तब उसकी दीप्तिसे पृथ्वी और आकाश दोनो ओतप्रोत भर गये। २

---

११ हे वनस्पते त्मना (हव्यानि) अवसृजन् देवान् उप यक्षि। देवेषु मेधिरः देवः अग्निः (अपि स्वय) हव्या सुषूदति।

१२ पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे, गायत्रवेपसे इन्द्राय स्वाहा हव्य कर्तन।

१३ हे इन्द्र स्वाहाकृतानि (इमानि) हव्यानि वीतये उपागहि हे इन्द्र आगहि, हव च श्रुधि, (ऋत्विजः) त्वा अध्वरे हवन्ते।

१ तव्यसीं धीति नव्यसीं वाच मति च सहस सूनवे अग्नये प्रभरे। यः अपा नपात् प्रियःच होता (अग्नि) ऋत्विय वसुभि सह पृथिव्या न्यसीदत्।

२ स. परमे व्योमन् जायमान अग्नि (प्रथम) मातरिश्वने आविरभवत। अस्य क्रत्वा, मज्मनाच समिधानस्य शोचि. द्यावा पृथिवी च अरोचयत्।

इसकी ज्वाला कभी बुझती नही, किन्तु सदा बढती रहती है और इस भव्य तथा अग्निके कारण भी बड़े दर्शनीय और देदीप्यमान होते हैं। चण्डकिरण सूर्यकी तरह इसके भी तेजकी लहरें न थकते हुए अथवा निद्रावश न होते हुए रात्रिके निबिड़ अन्धकारको भेद कर चारो ओर फैल जाती है। ३

जिस सकल ऐश्वर्यके स्वामी अग्निको भृगुऋषिने त्रिभुवनका बल खर्च करके (लगाके) लाकर पृथ्वीके मध्यभागमे (वेदीपर) उसकी स्थापना की उसके स्वस्थानमे विराजमान होनेवाले उस अग्निको अपनी स्तुतियोसे अपना बनाओ, क्यो कि वरुणकी तरह (भगवद्रूप रहनेवाला) यह भी (दैवी) सम्पत्तिका अकेलाही प्रभु है। ४

मेघगर्जना अथवा (धनुषसे छूटा हुआ) बाण अथवा आकाशके उल्कापात जैसे किसी पकड़े हुए नहीं रह सकते उसी प्रकार इस अग्निका यदि कोई रोकना चाहे तो यह असम्भव है। अपनी तीक्ष्ण दंष्ट्राओसे (जो कुछ इसके पंजेमे आता है वह सब) यह खाकर भस्म कर डालता है और जैसे कोई किसी लड़नेवाले शत्रुपर टूट पड़े वैसेही यह जंगलके जंगल चट कर डालता है। ५

हमारा स्तोत्रगायन अग्नि बड़े कौतुकसे बारम्बार पसन्द कर लेवे। यह (दैवी सम्पत्तिका) भाण्डार, हमे वह सम्पत्ति बारम्बार देकर हमारा मनोरथ पूर्ण करे। यह प्रेरक ऐसा करे कि प्रत्येक कार्यमे हमारे सुविचार उत्तम रीतिसे काम दे। उस अग्निका, जो पवित्रताकी मूर्तिही है, मै स्तवन करता हूं। वह ऐसे स्फूर्तिजन्य स्तोत्रके द्वाराही करता हूं। ६

आहुतीकी उज्वल कान्ति घृतमे सुशोभितही दिखती है। इसको सत्यधर्मका मार्गदर्शक मानकर तुम्हारे लिए प्रेमी मित्रकी तरह उद्बोधन करके (जब) इसको भक्तजन सुप्रसन्न करते हैं तब अपने तेजके भर जोरमे प्रदीप्त होकर सारे यज्ञमण्डपमे दिव्य कान्तिसे चमकनेवाला यह अग्नि हमारे भक्तजनके प्रेमका आतिशय कौतुक करता है। ७

हे अग्निदेव, आप भक्तोंकी कभी उपेक्षा न करते हुए अपने अमोघ मंगलदायक और सुखकर उपायसे हमारी संरक्षा कीजिए। आपकी योजनाएं ऐसी है कि उनमे न्यूनता कही नहीं मिल सकती। वे किसीके द्वारा च्युत नही की जा सकती। इसके सिवाय उनमे कभी खंड भी नही पड़ता। इस लिए, हे परमपूज्य देव, ऐसी योजनाओसे हमारे स्वकीयोकी संरक्षा कीजिए। ८ (१२)

## सुक्त १४४.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–अग्नि ॥

अपनी ( उपासना ) प्रवीणताके जोरमे जब ऋत्विज इस अग्निकी सेवा करनेमे प्रवृत्त होता है तब वह अपने सर्वांगसुन्दर गायनके आलाप खड़े सुरमे निकालता रहता है। उसके साथ अग्नि भी प्रेमवेगसे, आहुतिया देनेके लिए बढ़ाई हुई पड़ीकी ओर बाई तरफ बढ़ता है, क्यो कि सबके पहले वही उसके आसनसे भिड़कर उसका चुम्बन लेता रहता है। १

सत्यधर्मके प्रवाह अपने उद्गमस्थानमे अर्थात् देवके निवासस्थानमे दिखाई देने लगे। उन्होनेही अग्निको गौरव किया। स्वर्गगाके अंकपर कौतुकसे क्रीड़ा करते हुए इस ( अग्निरूप बालकने ) ईश्वरी तेजका पान किया, इसी कारण अब उसकी सर्वत्र प्रार्थना होती रहती है। २

एकही उद्देश साधनेके लिए दोनो परस्पर आतुर हुए है और दोनोका उत्साह बराबरही है। अतएव अग्निका वह अपूर्वरूप प्रकट होनेके लिए ( दोनो ) प्रयत्न करते है, अर्थात् इस भावनासे कि हमारे भाग्यका निधान यही है, हम भी इस अग्निकी पुकार करे, यह बिलकुल योग्य है। क्योकि जैसे घोड़ेकी लगाम हाथमे रहती है उसी प्रकार हमारे भाग्यके सूत्र इसी सूत्रधारके हाथमे है। ३

जिस अग्निकी उपासना दोनो ( ऋत्विज ) एकही घरमे रहनेवाले एकही वेदीपर जोड़ीसे, समानही उत्साहसे करते है वही यह अग्नि, क्या दिनमे क्या रात्रिमे, सदाही तरुण रहनेवाला यह शुभ्रतेजस्क अग्नि देखिये अवतीर्ण हुआ है। और मनुष्यजातिके कितनेही युग हो जायेग, परन्तु यह कदापि जराग्रस्त नही होगा। ४

---

८ हे अग्ने त्व अप्रयुच्छन् अप्रयुच्छद्भि. शिवेभि शग्मै. पायुभि न पाहि। ( तथाच ) हे इष्टे, अदब्धेभि अदृपितेभि अनिमिषद्भि च ( उग्ने. ) न जा परि पाहि।

१ ( यदा ) होता मायया अस्य व्रतम् प्रेति ( तदा ) स ऊर्ध्वो शुचिपेशस धिय दधानः। अग्निश्चापि, अभि स्रुच दक्षिणावृत क्रमते, या. ( स्रुच ) अस्य धाम प्रथम निसते ह।

२ ऋतस्य दोहना योनौ (नाम) देवस्य सदने परिवृताः ( अपि ) ई अभ्यनूषत, यत् अपा उपस्थे विभृत. आ अवसत्। अध स्वधा.अधयत, याभि ईयते रा।

३ समान अर्थ मिथ वितरित्रता ( द्वौ ) सवयसा तत् (अपूर्व्यं) वपु युयुषत इत, आदीम् सः (नः) भग न सम् आरभ्य वोळ्हु न रश्मीन् स सारथि असत् ( रश्मीन् ) सम् अयस्त।

४ यम् ईम् द्वा सबन्धू, समा योना मिथुना सवयसा सपर्यतः। ( सोय ) दिवा न नक्तम् युवाः पलित. ( अग्नि ) अजनि, मानुषा युगा पुरु चरन् अपि अजर।

ने जो व्यानुकूल स्तोत्रोंसे इस बार प्रार्थना करता हूं सो इसीकी और हम मरी माता जो सरक्षणार्थ पुकार करते है सो भी इसी भगवानको। यह कमानीदार आकाशसे तेजीके साथ नीचे आता है और अपने स्वागत करनेवाले भक्तोंको साथ लेकर (जगत्‌मे) अपने ज्ञानका प्रसार करता है। ५

हे अग्निदेव, इस आकाशके भुवनोंके राजा एक आपही है। और इस भूलोकके भी (राजा) आपही है। कोई गोपाल (जैसे गाईको चराता है) उसी प्रकार आप इन दोनों लोकोंपर सत्ता चलाते है। (आकाश और पृथ्वी) ये पृथ्वी इत्यादि गोले उतने प्रकाश, सुश्रवर्ण, तेज पुंज, नाशरहित और भ्रमणशील यद्यपि है तथापि इस अग्निके कुशासनके लिए भी वे जैसे तैसे करकेही पुरते है। ६

हे अग्निदेव, आप प्रसन्न होकर इन हमारे स्तवनोंसे आनन्दपूर्ण हो। हे अग्ने, आप आनन्दमय, स्वतंत्र, सद्धर्मप्रभव और परमप्रद है, आपके दर्शन होते ही सब दिशाओंसे आप [illegible] होते है और सम्पूर्ण समृद्धियोंसे युक्त राजमहलकी तरह सब दिशाओंसे आप सबके सन्मुख होते रहते है। ७ (१४)

## सूक्त १४९.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

इन्होंने पहले, यह देखिये अग्नि इधरही आ रहा है। उसे सब बातोंका ज्ञान रहता है। [illegible] है। इसीकी विनती करते है और प्रार्थना करते है। सब शास्त्रनियम इसीके [illegible], सब यज्ञभाग भी इसीने है। पवित्र सामर्थ्यका, सब प्रतापोंका और प्रतापी पुरुषका भी अधिपति यही है। १

कुछ पढ़ना है तो इसीने पढ़ते है, पर ऐसा नहीं है कि चाहे जो मनुष्य इससे प्रश्न करे, [illegible] साधु पुरुष, अपने मनके विचारके अनुसार, अपने हृदयकी बात इससे पूछ सकता है। वह (सहना) अग्निका बतलाया हुआ आगे या पीछेका कोईभी शब्द न भूलते हुए [illegible] स्तनका (अग्निकेही) सद्बुद्धिके अनुसार चलता रहता है। २

(घृताहुतियोंसे भरी हुई) पड़ियां इसीकी ओर जाती हैं; स्फूर्तिजन्य स्तुतिस्तोत्रोंका स्थान भी वही है, हमारी की हुई सारी विनतिया भी उसीके कानमे पड़े। नाना प्रकारकी प्रार्थनाओंका स्वीकार करनेवाला, जयशाली और यज्ञ सांगोपांग पूर्ण करनेवाला यह बालरूप अग्नि अपने जोरकी चमक प्रकट करने लगा है। इसका कृपाछत्र ऐसा पूर्ण है कि उसमे दोष निकालना बिलकुल असम्भव है। ३

अग्नि अपना सारा शरीर जब सम्हाल लेता है तब वह अवश्यही चारों ओर (धीरे धीरे) संचार करता है। परन्तु जब नवीन प्रकट होता है तब अपने परिवारके सहित एकदम झपाटेसे निकल जाता है। परन्तु अग्निके प्रकट होतेही प्रेमवेगसे जब उसकी स्तुति की जाती है तब अवश्यही वह पास आकर थके हुए भक्तजनोमे आनन्द और प्रेमकी वृद्धि करनेके लिए उनकी पीठपर हाथ फिराता है। ४

यह जब मेघोदरमे या वनमे होता है तब किसी वन्यश्वापदकी तरह उग्र अवश्य दिखता है, परन्तु अब (आकाश और पृथ्वी परकी वेदीके) उत्कृष्ट पृष्ठभागपर उसकी स्थापना की है। मनुष्यको पहले पहल सद्धर्मका ज्ञान इसीने सिखलाया; क्योंकि वह सर्वज्ञ है, तथा परम धर्मका प्रवर्तक और सत्यकी केवल मूर्तिही है। ५ (१४)

## सूक्त १४६.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–अग्नि ॥

अग्निके मस्तक तीन (प्रकारके) और किरण सात प्रकारके हैं और उसके स्वरूपमें न्यूनता मिलही नहीं सकती। वह (जगत्के) मा बापके समीपही बैठा हुआ है। उस अग्निका मै गुणसंकीर्तन करता हूं। देखिये, उसने देखनेमे चल परन्तु वस्तुतः अचल आकाशका तेजोरूप और विस्तीर्ण प्रदेश कैसा ओतप्रोत भर डाला है। १

दीर्घवेगसे स्फुरण पानेवाले महान् अग्निने आकाश और पृथ्वी दोनोको कभी का घेर डाला। जरारहित और उदारचरित अग्नि यज्ञोसे फैलते फैलते आकाश तक जा भिड़ा। इसने पृथ्वीके गिरिशिखर पर पैर रखा, इतनेही मे उसकी आरक्त शिखाएं मेघरूप गाईके ऐन तक पहुच कर चारने लगी। २

---

३ इद् तमित् गच्छन्ति, तम् अदती, मे विश्वानि वचांसि स (एकः) शृणवत्। सः पुरु प्रेषः ततुरि यज्ञसाधनः अच्छिद्रऊति शिशु च रभः समा अदत्त।

४ यत् समारत उपस्थाय चरति (किंतु) सद्यः जात सन् युज्येभिः तत्सार । यत् ईम् अपिष्ठितम् उशती (स्तुतय) गच्छन्ति (तदानीमेव) श्रान्तम् (भक्त) नान्य मुदेच अभि मृशते।

५ सः अव्य वनर्गु (वा) मृग ईम्, (किंतु अधुना) उपमस्या त्वचि उप नि धायि । मार्येभ्यः वयुना अग्निः (एव) व्यब्रवीत (सः) हि विद्वान् ऋतचित् सत्य च।

१ त्रिमूर्धान, सप्तरश्मि, अनूनम्, पित्रो उपस्थे निषत्तम् अग्निम् गृणीषे । (पुनश्च:) अस्य चरतोपि ध्रुवस्य दिव विश्वा रोचना आपप्रिवांसम् (गृणीषे)।

२ अय उक्षा महान् एने (द्यावा पृथिव्यौ) अभि ववक्षे, अजरः ऋष्व इत ऊतिः तस्थौ। (यदा) ऊर्व्या सानौ पद नि दधाति (तदानीमेव) अस्य अरुषासः (दीप्तयः) ऊधः रिहन्ति।

ये दोनो मनोहर धेनुएं अपने बछड़ोंके आसपास चक्कर काटते हुए एक के पीछे ए...
चली जाती है और जाते जाते उसके मार्ग निष्कंटक कर डालती है, क्योंकि उनका ध्या
ध्यान ( उनके इन बछड़ोंकी ओर ) उस सर्वश्रेष्ठ ( अग्नि )की ओर लगा रहता है। ३
नाना ऋषि अग्निको उसके स्वस्थानकी ओर ले जाते है और वहा सच्चे प्रेमसे
योजित की हुई नाना प्रकारकी युक्ति प्रयुक्तियो से उस जरारहित अग्निको रक्षा करते है,
उनसे उत्कंठापर्वक सेवा करनेवाले उन ऋषिवर्योंके आकाशरूप सागरकी ओर दृष्टि डालते ही
उन ऋषियोंके कारण मर्त्यजनोंके लिए सूर्य प्रकट हुआ।
चाहे जिस स्थलमे दर्शन करने योग्य यदि कोई है तो वह यही विभूति है। ४
छोटेबड़ोंको दीर्घायु-प्राप्तिके लिए स्तवन करके इसीको प्रसन्न करना चाहिए, क्यो कि यह
संरक्षक मनोहार सबको दर्शन देनेवाला अग्नि इन सब जीवोंका पिता है। ५ (१५)

## सूक्त १४७.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

हे अग्निदेव, ( पुण्यप्रभावसे ) तेज पुंज, और आपको परमात्मा मान कर अन्न तुम्हारो
आपका भजन करनेवाले भक्तजन यज्ञोंसे आपकी सेवा कैसे करते है, सो कृपा करके हमे
बतलाइये, उनसे ( हमे ) पुत्रपौत्र दोनो देनेवाले देव हमारे धर्माचरणोंसे सन्तुष्ट होगे। १
अत्यन्त तरुण। अतिदिप्त, हे स्वतंत्र, यह मेरा स्तोत्र कृपा करके सुनिये, इसमे औचित्य
...न किया गया है और इसकी पद्यरचना भी मनोहर है। चाहे कोई प्रशंसा करे, चाहे
...दा करे, परन्तु हे अग्ने, मैं आपका सेवक सर्ववन्द्य देव आपके सामने अनुरागी
होऊंगा। २

आपके आज्ञाकारी सेवकोंने उस ममताके अंधपुत्रको देखते ही उस दुःखसे उसकी रक्षा की। हे परमबुद्धिमान् सर्वज्ञ भगवान्, उन भक्तोंकी (अपने इस रीतिसे) रक्षा की, इस लिए, मनमें नुकसान करनेकी इच्छा रखते हुए भी, शत्रु (उन भक्तजनों)का एक बाल भी नहीं टेढा कर सके। ३

हे अग्ने, जो कोई नीच मनुष्य स्वयं तो भक्ति करताही नहीं, किन्तु (सज्जनोंको अवश्यही) दुख देना चाहता है, और कपट करके हमें धोखा देना चाहता है, ऐसे दुरात्माका दुष्ट विचार उलटे उसीके गले पडता है और उसके गालीगलौजसे स्वयं उसीका नाश होता है। ४

तथा हे परमप्रतापी अग्निदेव, आपका स्तवन सर्वत्र होता रहता है, अतएव जो मनुष्य जान बूझकर कपटसे दूसरेका नाश करना चाहे उसके पंजेसे आप अपने गुणसंकीर्तन करनेवाले भक्तोंका बचाव कीजिए और ऐसा न होने दीजिए कि हम पर अनर्थ आवे। ५(१६)

## सूक्त १४८.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

जो यज्ञका आचार्य, सब प्रकारके स्वरूप धारण करनेवाला, सब देवोंका मूर्तस्वरूप है उस अग्निको जब स्वाधीनचित्त मातरिश्वाने मंथन करके प्रकट किया तबसे देदीप्यमान सूर्यकी भांतिही एक अद्वितीय और तेजस्वी विभूतिके तौरपर इसकी भी मनुष्यलोकमें स्थापना हुई। १

जो सचमुच भक्तिभावसे (देवकी) प्रार्थना करता है उसकी हानि कोई भी नहीं कर सकता, अग्निको इस प्रकारकी प्रार्थना मनसे अच्छी लगती है, इसी कारण मेरा कवच बन कर वह मेरी रक्षा करता है। लोगोंको धर्मरत भक्तोंका सत्कर्म, सेवा, इत्यादि सब कुछ प्रिय ही होता है। २

---

३ हे अग्ने ते (तव) पायव ये मामतेय अंध पश्यत. (त) दुरितात् अरक्षन्। हे सुकृतो विश्ववेदा तान् (भक्तान्) ररक्ष (अत.) रिपक दिप्सन्तः इत् अपि न अह देभुः।

४ हे अग्ने, य अघायु (स्वय) अररिवान् अरातिवा च द्वयेन (न) मर्चयति, । (अस्य) सः मन्त्र पुन अस्य (एव) गुरुः अस्तु, स च दुरुक्तैः तन्वम् अनु मृक्षीष्ट।

५ उतवा हे सहस्य अग्ने, य (कोपि) मर्त प्रविद्वान् मर्त द्वयेन मर्चयति। अत हे स्तवमान अग्ने, स्तुवन्तम् पाहि, न दुरिताय माकि धायी.।

१ यत् ईम् होतार, विभ्वप्सु, विश्वदेव्यम् (अग्निम्) विष्ट. मातरिश्वा मथीत्। (तत्) य स्व (सूर्य) न चित्र विभान (देवा) मनुष्यानु विक्षु वपुषे दधुः।

२ नन्म ददानन (केपि) न इत् ददभन्त, तस्य (मन्मन) चाकन् अग्नि मम वरूथम्। (लोका) अस्य भरनाणस्य उपस्तुतिम् कर्म विश्वानि जुषन्त।

पूज्य ऋषिजनोंको उनके शाश्वत स्थानमेंही अग्नि मिला, फिर बड़े गौरवसे उन्होंने उसको (वेदीपर) स्थापना की। इसके बाद वे आदरसे उसे यज्ञमें ले गये। परन्तु रथमें जोते हुए अश्वोंकी तरह वे बड़े वेगसे गये। ३

अग्नि अघटित चमत्कार घटित करता है (परन्तु उसी प्रकार) सैकड़ों पदार्थ अपनी डाढोंके नीचे डालकर रगड़ भी डालता है। और लोगोंकी आंखे चकाचौंधमें डालकर सारा जंगल प्रज्वलित कर डालता है। ऐसी दशामें वायु भी, जैसे किसी धनुर्धरके द्वारा वेगसे छोड़े हुए बाणको सहाय्यभूत होता है, उसी प्रकार प्रतिदिन अग्निकी ज्वालाओंके अनुकूलही बहता रहता है। ४

अग्नि चाहे गर्भावस्थामें हो, तथापि उसे कोई भी शत्रु, कोई भी घातकी अथवा कोई भी अत्याचारी पातकी उपसर्ग नहीं दे सकता। उसके प्रकट होनेपर उसके जाज्वल्य तेजसे वे अंधे हो जाते हैं और उन्हें कुछ दीखही नहीं पडता, तब फिर वे उपद्रव कैसे कर सकते हैं? परन्तु निरन्तर उपासनानिष्ठ भक्तजन अवश्यही उसे (अन्तःकरणमें) रखे रहते हैं। ५(१७)

## सूक्त १४९.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

यह देखिये, दिव्य सम्पत्तिका उदार अधिपति, राजाओंका भी राजा इस (पवित्र) निवासके स्थानकी ओर इधरही आ रहा है। अतएव अब उसका आगमन होता है, इतनेहीमें वे सोमप्रस्तर उसकी सेवाके लिए तैयार हों। १

यह अग्नि इस (भूतलपरके) लोगोंका तथा अन्तरालके भुवनोंका अपनी कीर्तिमय गुणोंके नातेसे प्रसिद्ध है। जिसकी किरणरूप स्तुतिका पान सम्पूर्ण जीव नित्य करते रहते हैं वहां यह अग्नि आगे बढ़कर अपने आसनपर आरोहण करता है। २

जिसने नार्मिणीके कोटवाले नगरपर उज्वल प्रकाश डाला वही यह महाज्ञानी (अग्नि), आकाश कँपा डालनेवाला मानो चपल अश्वही और सूर्यकी तरह तेज.पुज अग्नि, आत्मशक्ति से सौ गुना भर रहा है। ३

दो स्थानोमे प्रकट होनेवाला और तीनो दिव्य लोक तथा सब अन्तराल प्रकाशसे ओतप्रोत भर डालनेवाला यह अत्यन्त पूज्य आचार्य स्वर्गगाके वसतिस्थानमे वास करता रहता है। ४

वही यह अग्नि दोनो स्थानोमे प्रकट होनेवाला यज्ञका आचार्य है। सत्य भक्तिसे प्रेरित होकर जो भक्त इसे हविर्भाग अर्पण करता है उसे यह अग्नि अत्युत्कृष्ट संपत्ति और जगद्विख्यात सत्कीर्तिका लाभ अवश्यही कर देता है। ५ (१८)

## सूक्त १५०.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–अग्नि ॥

हे अग्निदेव, मै आपसे बहुत धन मागता हूं। क्योंकि मै आपका अनन्य भक्त हूं। आप सबसे वडे है। आप धर्मका प्रचार करनेवाले है। आपहीकी कृपासे मै आनन्दमे रहता हू। १

आप मुझपर कृपा कीजिये। जो नास्तिक मनुष्य यज्ञ नहीं करता है और जो ईश्वरकी पूजा नही करता है उसका आप नाश कीजिये। वह बड़ा धनवान् होनेपर भी आप उसकी पुकार मत सुनिये। उसकी ओर आप ध्यान मत दीजिये। २

हे ज्ञानवान् अग्निदेव, जो मनुष्य आपका भक्त है वह सबको आनन्द दिलाता है। स्वर्गमे भी उस भक्तकी उन्नति होती है। हे अग्निदेव, हम भी आपके भक्त है। इस लिये हमारी भी आप उन्नति कीजिये। और हमे सबसे श्रेष्ठ बनायिये। ३ (१९)

---

३ य नार्मिणीनाम् पुरम् अदीदेत् (सोय) कवि, (अग्नि) नभन्यः अत्य अर्वा न, सूर न रुरुक्वान्, शतात्मा (भवति)।

४ (स) द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि अभि शुशुचान यजिष्ठः होता अपा सधस्थे अस्थात्।

५ अय स दिजन्मा होता, य मर्त स्रुक् अस्मै ददाश, (तस्मै) विश्वा वार्याणि, श्रयसा च दध।

१ हे अग्ने ना धान् (अह) त्वा पुरुवोचे, ता (अह) अरि तव स्वित् शरणे आ (अस्मि, येन) महस्य तोदस्येव शरणे आ (भवामि)।

२ (प्रसीद) अनिनस्य, वनिन (सत.) अररुष चित् अदेवयो च वि प्रहोषे (अपि) कदा चन प्रजिगत.।

३ हे विप्र अग्ने स, (तव) मर्त (भक्त) चन्द्र महः दिवि ज्यायान् तम. च, (अत) हे अग्ने (वय) ते वनुष (अपि) प्रप्र इत् स्याम।

## सूक्त १५१.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–मित्रावरुण ॥

(ईश्वरके) ध्यानमें मग्न हुए सज्जनोंने (ज्ञानरूपी) गोधनकी इच्छा करके यज्ञके समान मित्रकी तरह उपकार करनेवाले, परम प्रिय और परमपूज्य अग्निको आकाशके जलसे प्रकट किया। उस समय अग्निने बड़े जोरसे गर्जना की। उससे आकाश और पृथ्वी भी कम्पित हुई। वे सोचने लगे कि मनुष्यकी रक्षा किस तरह होगी। १

सोमयाग करनेवाले पुरुमीळ्हकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले ऋत्विजोंने बड़े प्रेमसे आपको हवि अर्पण किया है। इस लिये आपकी स्तुति करनेवाले भक्तोंको आप ज्ञान और काव्य करनेकी स्फूर्ति अर्पण कीजिये। हे पराक्रमी पुरुष, घरका स्वामी अथवा यजमानकी प्रार्थनाकी ओर भी आप ध्यान दीजिये। २

हे वीर पुरुष, आप अन्तरिक्षसे उत्पन्न होते हैं। उत्कृष्ट सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिये आपके भक्त बड़े प्रेमसे आपकी उत्पत्तिका वर्णन करते हैं। यथाविधि किये हुए यज्ञका जब आप प्रसन्न स्वीकार करते हैं तब आप अपने साथ लाया हुआ सामर्थ्य धर्मप्रचारके लिये उनको अर्पण करते हैं। ३

हे अग्निरूपी मित्र और वरुण, जिन लोगोंपर आप कृपा करते हैं उनका वैभव बढ़ता है। हे धर्मकी रक्षा करनेवाले देव, हमारे यज्ञकी आप प्रशंसा कीजिये। जिस तरह स्वर्गके लोग हमेशा यज्ञ करते हुए रहते हैं उसी तरह आपकी कृपासे द्युलोकसे प्राप्त होनेवाले सामर्थ्यके साथ सत्कर्म हमेशा रहता है। ४

आप अपने प्रभावसे पृथ्वीकी सुन्दर सम्पत्तिका संग्रह करते हैं। इस लिये निष्कलङ्क और तेजस्वी (बुद्धिरूप) धेनुएँ अच्छी तरह रहती हैं। जिस दिन आकाश मेघोंसे आच्छादित रहता है उस दिन जिस तरह चकवी पक्षी सूर्यका दर्शन लेनेके लिये रातभर ध्यानसे मधुर आवाज करती हैं उसी तरह वे धेनुएँ भी सुन्दर (काव्य) ध्वनि अपने मुखसे निकालती हैं। ५ (२०)

हे मित्र और वरुण, जिस यज्ञमें आप बड़े जोरसे गाते हैं उस यज्ञमें स्वर्गकी स्त्रीया भी जिनके वाल बडे मनोहर दिखाई देते हैं आपके यशका वर्णन करते है। आप अपने मनसे हमारी बुद्धिकी उन्नति कीजिये। मैं जैसे कवीकी बुद्धिको स्तुति करनेकी प्रेरणा करनेवाले आपही है। ६

जो मनुष्य आपकी स्तुति करके यज्ञके द्वारा आपको हवि अर्पण करता है और जो कवि और पुजारी बड़े ओजसे आपका स्तवन करता है और आपकी उपासना करता है उनके पास आप जाते है और बडे प्रेमसे उनके यज्ञके हवियोका आप स्वीकार करते है। हमपर कृपा करनेवाले हे मित्र और वरुण, हमारी प्रार्थना और सच्ची भक्तिकी ओर ध्यान देकर हमारी ओर आइये। ७

न्याय और नीतिका प्रचार करनेवाले मित्र और वरुण, यज्ञके लिये लाये हुए गोरससे हम नियमके अनुसार हृदयसे आपहीकी पूजा करते हैं। (भक्तजन) आपहीको अनन्य भक्तिसे स्तुतियो और प्रार्थनाएँ अर्पण करते है। आप भी दिव्य वैभव साथ लेकर उनको हृदयसे अर्पण करते हैं। ८

हे वीर पुरुष, आप वड़े जवान है। श्रेष्ठ और सवकी रक्षा करनेवाला सामर्थ्य भी ईश्वरकी कृपासे आपही हमे अर्पण करते है इस लिये आकाशरूपी समुद्र और पणि भी आपके दैवी सामर्थ्यकी वरावरी नही कर सकते। ९ (२१)

---

६ हे मित्र वरुण यत्र गातुम् अर्चथ, तत्र ( यज्ञे ) केशिनी; ऋताय वाम् आ अनूषत । ( युवा ) त्मना धिय अवस्रजतम् पिन्वतम् च युवम् विप्रस्य मन्मनाम् इरज्यथ ।

७ य वा शशमान ह यज्ञै दाशति, य. कवि होता ( वा ) मन्मसाधन. ( वा ) यजति । तम् उप गच्छथ अह, ( तस्य ) अध्वर वीथ , ( तत् ) हे अस्मयु ( अस्माक ) गिर सुमति च गन्तम् ।

८ हे ऋतावाना, यज्ञै गोभि मनस प्रयुक्तिषु न युवाम् प्रथमा अञ्जते । ( भक्ताश्च ) सयता मन्मना वा गिर भरन्ति, ( युवा हि ) अदृप्यता मनसा रेवत् ( च ) आशाथे ।

९ हे नरा, रेवत् वय दधाथे, रेवत्, इतऊति, ( च. ) मातिनम् ( ऐश्वर्यमपि युना ) मायया आशाथे । ( अत. ) न द्याव. न उत सिन्धव नापि पणय वाम् देवत्वम् मघ ( वा ) अहभि न आनशु ।

## सूक्त १५२.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-मित्रावरुण ॥

हे मित्र और वरुण, आप ऐसा वस्त्र पहिनते हैं जिससे सबदूर प्रकाशही फैलता है। आप अपने नियत कर्ममें और अपने कृत्यमें कभी भूल नहीं करते। किसीकी कपटनी (चालबाजी) आपके सामने नहीं चलती। हे मित्र और वरुण, इसका कारण यह है कि आप हमेशा सत्य धर्मसेही चलते हैं।

हे मित्र और वरुण, आपके कामके विषयमें विद्वान् लोक जो अनुमान करते हैं वह बिलकुल ठीक निकलता है। उसके लिये विद्वान् लोग आपकी स्तुति करते हैं। आप जो काम करते हैं वह बिलकुल उचित है। शत्रुका हथियार जब तीन जगह पतली धारका होता है तब आपका हथियार चार जगह पतली धारका होता है। इस तरह आप शत्रुका नाश करते हैं। उसी समय देवोंकी निन्दा करनेवाले लोगोंका नाश आपही प्रथम होता है।

यह बड़ी आश्चर्यकी बात है कि जिस स्त्रीको पैर नहीं होते वह पैरवाली स्त्रियोंके आगे चलती है। हे मित्र और वरुण, आपका उपर्युक्त महिमा कौन जान सकता है?। आपका स्वरूप छोटा होनेपर भी आप जगतका भार सहन करते हैं। आपका अवतार सत्यधर्म बढ़ाता है और असत्य धर्मका नाश करता है।

सूर्य-जिसपर स्वर्गकी स्त्रियां प्रेम करती हैं-सदा हमें चलता हुआ दिखाई देता है। आराम लेता हुआ वह कभी दिखाई नहीं देता। उसके तेजोस्वी वस्त्र सबदूर प्रकाश फैलाते हैं। मित्र और वरुणका प्रीतिका स्थान भी आप (सूर्य) ही हैं।

उदय होतेही बिना लगामके अश्वकी तरह सूर्य बड़े गर्वसे अपनी छाती दिखाकर और गर्जना करके आकाशमें एकदम उछलने और कूदने लगता है। इस आश्चर्यके कारण युवा अवस्थाका उपभोग लेनेवाले देव मित्र और वरुणके वैभवकी स्तुति करते हैं और ईश्वरके अनन्त गुणोंका वर्णन करते हैं और उसीमें मग्न हो जाते हैं।

---

१ युवम् [illegible] वस्त्राणि वसाथे, युवोः [illegible], सर्गाश्च अच्छिद्राः। (युवाम्) [illegible] अनृतानि [illegible] निरतम्, (ऋतेन) हे मित्रावरुणा (युवाम्) ऋतेन सचेथे।

२ एतत् चन त्वः वि चिकेतत् (यत्) [illegible] मन्त्रः (च) [illegible], [illegible]

[illegible]) उग्रः चतुरश्रिः (नूनम्) त्र्यश्रिम् हन्ति। (तदानीम्) देवनिदः ह प्रथमाः [illegible]।

३ अपात् एति पद्वतीनाम् (मध्ये) प्रथमा एति, हे मित्रा वरुणा वां तत् (कर्म) कः आ चिकेत। गर्भः [illegible] भारम् आ भरति, ऋतम् पिपर्ति, अनृतम् [illegible]।

४ [illegible] परि [illegible] पश्यामसि न (तु) [illegible]। (अपि-) [illegible] [illegible], मित्रस्य वरुणस्य च प्रियं धाम (पश्यामसि)।

५ [illegible] (अत्यः) [illegible] (यथा) कनिक्रदत् पतयत् [illegible] (यत्) [illegible] [illegible] (देवाः) मित्रस्य वरुणस्य धाम [illegible] महिमानम् [illegible]।

जिन धेनुओंने मेरी–मैं जो ममताका पुत्र हूं–रक्षा की उन्होंने मुझे–जो मैं उनकी उपासना करनेवाला भक्त–हूं अपना दूध पिलाकर हृष्टपुष्ट बनाया है। सब प्रकारकी विद्याओंको पढ़कर ( दिव्यज्ञान ) प्राप्त करनेके लिये मैं उनसे प्रार्थना करता हूं। उसके अनन्तर ईश्वरपर सब भरोसा रखकर दु खसे मुक्त होनेकी इच्छा मैं करुंगा। ६

हे देव, हे मित्र और वरुण, मैने अर्पण किये हुए हवियोंका आप स्वीकार कीजिये। मैं आपकी सेवा करनेवाला भक्त हू। इस लिये मेरी ओर आप ध्यान दीजिये। युद्धमें हमारी प्रार्थना सफल होवे, हमें दिव्य ज्ञान प्राप्त होवे और आपकी कृपासे हमारा कल्याण होवे। ७ (२२)

## सुक्त १५३.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–मित्रावरुण ॥

हे मित्र और वरुण, आप सामर्थ्यवान् हैं। हम सब लोग एकत्रित होकर प्रेमसे आपको हवि अर्पण करते हैं। हम नम्रतासे आपकी प्रार्थना करके आपकी सेवा करते हैं। हे स्वर्गके घीकी वर्षा करनेवाले देव, हमारे अध्वर्यु घीकी आहुतिकी तरह योग्य स्तोत्रोंसे आपको सन्तुष्ट करते हैं। १

आपकी अच्छी तरहसे स्तुति करनेसे और आपका ध्यान करनेसे दोनोंसे सामर्थ्य प्राप्त होता है। हे मित्र और वरुण, इस लिये मैं आपको एक सुन्दर स्तोत्र अर्पण करता हूं जब धर्ममन्दिरमें यज्ञका आचार्य आपका भजन करता है तब, हे वीर पुरुष, आपसे वह महात्मा ( आचार्य ) सबे आनन्दके लाभकी इच्छा करता है। २

हे मित्र और वरुण, यज्ञके सभामन्दिरमें आचार्य भी साधारण मनुष्यकी तरह आपको हवि अर्पण करके आपकी पूजा करता है। वह अपने हृदयको भी आपकी सेवा लगाता है। उस समय मनकी शक्तिस्वरूप धेनु सत्यधर्म बढ़ानेके लिये और हवियोंको देनेवाले भक्तलोगोंके लिये दिव्य दूधसे भरी हुई, बड़ी मस्त रहती है। ३

---

६ (या) धेनव (मा) मामतेय अवन्ती (ता) ब्रह्म (ता.एव मा) ब्रम्हप्रिये सस्मिन् ऊधन् पीपयन्। वयुनानि विद्वान् पिल भिक्षेत अदितम् असा आविवासन् उरुष्येत्।

७ हे देवौ मित्रावरुणौ नमसा अवसाव वा हव्यजुष्टि (प्रति) आ वहृत्याम्। अस्माक ब्रह्म पृतनासु सह्या दिव्या वृष्टि अस्माक सुपारा (भवतु)।

१ हे मित्रावरुणा (वय) सजोषा हव्येभि नमोभि वा मह यजामहे। हे घृतस्नू, अध यत् अध्वर्यव घृतै न धीतिभि वाम् भरन्ति।

२ प्रस्तुति वाम् प्रयुक्ति न धाम (अत) हे मित्रावरुणा (मया) सुवृक्ति अयामि। यत् होता विदथेषु वाम् अनक्ति, (तदा) हे वृषणौ स सूरि वाम् सुमनम् इयक्षन् (वर्तते)।

३ हे मित्रावरुणा यत विदथे स होता मानुष न रातहव्य सपर्यन् च (स्यात.) वाम् हिनोति। (तदा) अदिति धेनु ऋताय, हविर्दे जनाय च पीपाय।

जब आपके भक्त आपके आनन्दमें मग्न होते हैं तब सोमरस, दिव्य धेनु, और रागेका जल आपको यथेष्ठ रूपसे प्राप्त होते हैं। यदि इसी तरह सनातन भगवान् हमे हमेशा आनन्द देवे तो आप भी मित्र और वरुण, आईये और प्रकाशरूप धेनुके मधुर दूधका आस्वाद लीजिये। ४ (२३)

## सूक्त १५४.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–विष्णु ॥

हम पूर्ण रीतिसे विष्णुके पराक्रमोंका वर्णन नहीं कर सकते। क्यों कि वे अद्भुत हैं। विष्णुने सब जगत् व्याप्त किया है। इतनाही नहीं किन्तु देवलोक भी–जो सबसे ऊंचा है आपके बलके आधार पर ही रहता है। भिन्न भिन्न जगह तीन पैर रखकर आपने सारा विश्व व्याप्त किया है। १

विष्णुके पराक्रमोंके कारण ही सब लोग उनकी स्तुति करते है। घोर वनमे संचार करनेवाले और गुहामें रहनेवाले सिंहकी नाई विष्णुके ( सब दिव्य देवताओंमें ) बड़े पराक्रमी है। देखिये; उनके केवल तीन पैरोंसे विश्वके सब भुवनोंको व्याप्त किया है। २

कार्य करनेको उत्साह दिलानेवाली हमारी सुन्दर स्तुतिको विष्णु सुने। हमारी स्तुतिको आप प्रेमसे स्वीकार करते हैं। सब लोग आपका यश गाते हैं। आप बड़े वीर है। आप अकेले केवल तीन पैरोंसे इतने बड़े विश्वको व्याप्त करते हैं। ३

आप तीन जगह रहते है। हरएक जगह मधुर रस भरा हुआ है। तीनो स्थान अक्षय्य है। हरएक स्थानमें आपके भक्त बड़े आनन्दमे मग्न रहते हैं। आप स्वयं ऐसे है कि त्रिगुणात्मक विश्वको–पृथ्वी, आकाश और अन्य अन्य भुवनोंको आप अकेले सम्हाल सकते हैं। ४

---

४ उत वा सदासु विष्णु, अन्य गाव आपो देवी च पीपयत। उत न ( अपि ) महा ( भुवनस्य ) न पति इन्द्र ( मरुत्, अत ) अश्वियाया पयस वीतम् पातम्।

१ नु कम् विष्णो वीर्याणि प्र वोचम्, य ( विष्णु ) पार्थिवानि रजांसि विममे। यः त्रेधा [illegible] (सन्) उत्तर सधस्थ अस्कभायत्।

२ ( [illegible] ) विष्णु नु वीर्येण प्र स्तवते, कुचर गिरिष्ठा मृग न भीम। यस्य त्रिषु उरुषु विक्रमणेषु भुवनानि अधि क्षियन्ति।

३ ( [illegible] ) इयं मन्म गिरिक्षिते उरुगायाय वृष्णे विष्णवे प्रैतु। य इदं दीर्घं प्रयत सधस्थं [illegible] [illegible] त्रिभि इत् पदेभि विममे।

४ यस्य त्री पूर्णानि मधुना पदानि, अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति। य उ त्रिधातु पृथिवीम् उत द्याम् एक भुवनानि च [illegible] दाधार।

जिस स्थानमें ईश्वरके भक्तलोग आनन्दमें मग्न रहते हैं वह विष्णुका प्रिय स्थान मुझेभी प्राप्त होगा। सचमुच जो विष्णुका सच्चा भक्त है वही केवल सब विश्वको व्याप्त करनेवाले विष्णुका प्रिय मित्र है। विष्णुके बड़े पवित्र स्थानसे ही अमृतका अक्षय्य झरना बहता है। ५

ऐसे बड़े ( आनन्दमय पवित्र और वैभवयुक्त ) स्थान ही प्राप्त करनेकी हम ( हृदयसे इच्छा ) करते हैं। बड़ी चंचल और सींगवाली दिव्य धनुएँ वहां रहती हैं। देखिये सब विश्वको व्याप्त करनेवाले विष्णुके श्रेष्ठ स्थानसेही हमे पूरा पूरा प्रकाश मिलता है। ६

सूक्त १५५.

॥ ऋषि दीर्घतमा। देवत विष्णु ॥

( हे ऋत्विज, ) आप अपने सोमरसको मधुरताका वर्णन. परम श्रेष्ठ और पराक्रमी विष्णुके सामने कीजिये। जब सच्चा भक्त विष्णुकी प्रार्थना करता है तब सचमुच उसने की हुई प्रार्थना विष्णु सुन लेते हैं। वहां देख लीजिये; जिस तरह विजयी योधा जवान घोड़ेपर सवार होता है उसी तरह इन्द्र और विष्णु दोनों देव पहाड़के शिखरपर खड़े हुए हैं। १

हे इन्द्र और विष्णु आप बड़े बलवान् हैं। इस लिये आपके सोमरसका जो मनुष्य स्वीकार करता है वह बड़े जोरसे चले हुए घोर संग्राममेंभी परास्त नहीं होता है। जब धनुर्धर धनुषपर बाण चढाकर निरपराधी मनुष्यपर छोड़ता है तब भी आप उस बाणकी दिशा पलटाकर उस निरपराधी मनुष्यकी—यदि वह आपका भक्त हो तो--रक्षा करते हैं। २

जब विष्णुके भक्त सोमरसका स्वीकार करते हैं तब उनका बल बहुतही बढता है। वे अपने बलसे मेघोदककी वर्षा कराके वीर्यको माता और पिता ( आकाश और पृथ्वी ) तक पहुंचाते हैं। उससे वे दीर्घकाल तक ( धान्यका ) उपभोग लेते हैं। इसी तरह विष्णुके भक्त वे पुत्र--स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वीमें अपने बलकी रक्षा करते हैं। ३

---

५ यत्र देवयव. नर. मदन्ति, तत् अस्य प्रिय पाथ. अभि अश्याम्, ( य' अनन्यभक्त. ) स हि उरुक्रमस्य बन्धु इत्था, विष्णो परमे पदे मध्व' उत्स ।६ ( हे पत्नी यजमानौ ) व । गमध्यै ता वास्तूनि उश्मसि, यत्र भूरिशृङ्गा अयास. गाव । अत्राह( पश्य ) उरुगायस्य वृष्ण. तत् परम पद भूरि अवभाति ।

१ ( हे ऋत्विज. ) व: अन्धस: पान्तम् महे शूराय धियायते च विष्णवे अर्चत। या ( इन्द्राविष्णू ) अदाभ्या पर्वतानाम् सानुनि साधुना अर्वता इव मह. तस्थतुः।

विष्णुदेव विश्वके अधिपति और भक्तकी रक्षा करनेवाले हैं । आप बड़े उदार और दयाशील हैं । आपने केवल तीन पैरोंसे सब विश्वको व्याप्त किया है । मनुष्यकी आयु बढ़ानेके लिये और मनुष्यकी उन्नति करानेके लियेही केवल आपने विश्वको व्याप्त किया है । विशेष करके आपके इस पराक्रमके लिये हम आपका वर्णन करते हैं । ४

विष्णु सदा आकाशमेंही रहते हैं। आकाशमेंही स्थित होकर आप सब विश्वको देखते हैं । विष्णुके केवल दो पैरोंको हि देखकर मनुष्य आश्चर्यसे मुग्ध हो जाता है । विष्णुके तीसरे पैरकी ओर कोई देख नहीं सकता । मनुष्य अथवा पक्षी चाहे जितना सामर्थ्यवान हो अथवा बुद्धिवान हो; विष्णुके विषयमें कोई किसी प्रकारकी अटकल नहीं कर सकता। ५

चारों जगह सब प्राणियोंके जन्मको भिन्न भिन्न रीतिसे नब्बे प्रकारसे बांधकर विष्णुदेव सब विश्वको सदा घुमाते रहते हैं । आपके शरीरको कोई नाप नहीं सकता । केवल भक्तिसे हि लोग आपका अन्दाज सहज रीतिसे कर सकते हैं। जब भक्त लोग युवा विष्णुको पुकारते हैं तब आप उनकी ओर दौडते चले जाते हैं । ६

सूक्त १५६

॥ ऋषि दीर्घतमा। देवता विष्णु ॥

आपका यजन केवल घीकी आहुतिसे होता है । आपका वैभव बहुतही बड़ा है । आप सर्व व्यापी हैं । आप भक्तोंके लिये दौड़ते चले जाते हैं । इस लिये प्रिय मित्रकी नाई आप हमें आनन्द दीजिये । हे विष्णु, यह बात उचितही है कि [illegible]नी लोग आपका यश बढाते और भक्त लोग यज्ञके द्वारा आपको [illegible] । इस तरह भक्त लोग आपको प्रसन्न करते हैं । १

विष्णुदेव सचमुच पुराणपुरुषही हैं किन्तु आप नये भी हैं । आप सृष्टिकी रीतिसे चलाते हैं । आप स्वयम्भूभी हैं । इस लिये जो मनुष्य विष्णुकी [illegible] करता है और विष्णुके अवतारकी स्तुतिभी करता है सचमुच उसको (दैवी) ऐश्वर्य प्राप्त होता है। २

हे स्तुति करनेवाले लोग, सृष्टि नियमसेही सब धर्मोंकी नींव विष्णुही है। इस लिये, हे लोग, अपने अल्पबुद्धिके अनुसार विष्णुके अवतारकी स्तुति करो और आनन्दसे प्रसन्न रखो। हे लोग, जो यश तुमको विदित हैं उनका वर्णन करो। हे विष्णु, आपकी परमश्रेष्ठ कृपा हम पर बनी रहे। हम आपकी
कृपाका अनुभव ले रहे हैं। ३

विष्णु देव मरुतोंपर शासन करते हैं। विष्णुके पराक्रममें भाग लेनेका अधिकार राजा वरुणकाभी है। उसी तरह अश्वी देवकाभी अधिकार है। दिन उत्पन्न करके ( विश्वको ) प्रकाशित करनेकी शक्ति और उत्कृष्ट सामर्थ्य आपही ( विष्णु ) में है। इसलिये विष्णु अपने साथीयोंके साथ स्वर्गमें जाकर ( प्रकाश
रूपी ) धेनुओंको बन्धनसे मुक्त कर देते हैं। ( फैलाते ) हैं। ४

इन्द्र स्वयं सत्कृत्य करनेवाले हैं। इन्द्र बलवान् भी हैं। अच्छा काम करनेकी इच्छा करनेवाले विष्णु भी ( इन्द्रकी ) ओर चले गये। तीनों भुवनोंके अधिपति और शासन करनेवाले विष्णुने आर्य यजमानको आनान्दित किया। श्रेष्ठ
धर्म उस ( आर्य यजमान ) को अर्पण करके उसकी उन्नति की। ५

## अनुवाक २२.

### सूक्त १९७.

॥ ऋषि-दीर्घतमा। देवता-अश्विन् ॥

अग्नि जागृत हुआ है। सूर्यका उदय अतनारिक्षमें अब होनेवाला है। श्रेष्ठ और सुख देनेवाली उषाभी अपने तेजसे प्रकाशित हुई है। रथको जोतकर अश्वी देव भी तैय्यारीमें हैं। उस समय जगत्प्रेरक परमात्माने सब प्राणियोंको अपना
अपना उद्योग करनेके लिये जागृत किया है। १

---

३ हे स्तोतार तमु पूर्व्यं ऋतस्य गर्भं यथा विदे जनुषा विपर्तन। ( युद ) जानन्तः अस्य नाम चित् आ विवक्तन, हे विष्णो मह ते सुमतिम् भजामहे। ४ अस्य मारुतस्य वेधस ( विष्णो ) तं क्रतु राजा वरुणः तं ( क्रतु ) अश्विना ( अपि ) सचन्त, ( सोय ) विष्णु उत्तम अहर्विदम् च दक्षं दधार, ( स ) सखिवान् च ( गवा ) व्रजम अपोर्णुते। ५ आश्विनौ, युव ह जगतीषु गर्भ धत्थ, युव विश्वेषु भुवनेषु अन्तः। युव वृषणौ, अग्नि च, अप च, वनस्पति ऐरयेथा। १ अग्नि अबोधि, सूर्य उम उदेति, चंद्रा महीच उषा अर्चिषा आव। अश्विना ( अपि ) रथ यातने अयुक्षताम् ( एतस्मिन् काले ) सविता देव जगत् पृथक् प्रासावीत्।

हे अश्विदेव, जब आप अपने विजयी रथको जोतकर जानेके लिये तैयार होते हैं तब हमारी सेनापर घी और मधुकी वर्षा करके आप (यश देनेवाली) आशीस दीजिये। हम आपकी स्तुति करते हैं; इस लिये आपकी कृपासे रणभूमिमें हमें यश प्राप्त होवे। आप ऐसा कीजिये जिससे हमें वह सम्पत्ति और ऐश्वर्य प्राप्त होवे। जिसके लिये दोनों दलके वीर आपसमें युद्ध कर रहे हैं। १

हे अश्वि देव, आपका तीन चक्रोंका प्रसिद्ध रथ हमारे (प्रेमरूपी) मधुसे भरा हुआ है। इस लिये उसको आप हमारी ओर लाइये। आपके रथके घोडे बडे शीघ्रतासे दौड़ते हैं। आपके रथमें बैठनेके लिये तीन स्थान हैं। उसके आनेसे भक्त लोगोंका लाभही होता है। इस लिये सबलोग उसको भाग्य देनेवालाही समझते हैं। मनुष्य और चार पैरवाले पशुओंकी ओर आपका रथ आनन्दसे भरा हुआ आवे। २

हे अश्विदेव, यदि हमें आप कुछ देते हैं तो ओजस् दीजिये। आपके चाबुक-ने—जिसमें मधु भरा हुआ है—(आशीसका पवित्र) सिंचन हमपर कीजिये। दुर्बुद्धिका नाश कीजिये और सदा हमारी रक्षा कीजिये। ३

स्त्रीजातिमें गर्भकी उत्पत्ति आपहीके प्रभावसे होती है। सब भुवनोंमें आपही चैतन्य फैलाते हैं। हे अश्विदेव, हे पराक्रमी पुरुष, गर्मी और जलवृष्टिको आपही उत्पन्न करनेवाले हैं। वनस्पतियोंको जीवित देनेवाले आपही हैं। ५

आपही बड़े वैद्य हैं; जिनको औषधियोंके सब गुण विदित हैं। आप बड़े महारथी वीर हैं। रथको जोतनेके लिये अच्छे अच्छे घोड़े आपके पास आवश्यक होंगे। उग्रस्वरूप धारणकरनेवाले अश्विदेव, जो आपको बड़े प्रेमसे आदरसे हवि अर्पण करते हैं उनको आप, लोगोंका आधिपत्य दिलाते हैं। ६

# अध्याय ३

## सूक्त १९८

॥ ऋषि—दीर्घतमा । देवता—अश्विन ॥

हे अश्वी देव, आप ( दैवी सम्पत्तिका ) खजाना हैं। रुद्रस्वरूप आपही हैं। सबसे बलवान् और प्रज्ञावान् भी आपही हैं। हे वीरपुरुष, हे अद्भुत कर्म करनेवाले अश्वी देव, उचथ्यका पुत्र हाथ जोडकर आपसे अनमोल धनका भण्डार मागता है। कृपा करके आप उसे उसको दीजिये; देखिये,आप सब लोगोंपर उदारतासे कृपा करते हैं। १

हे दयानिधि, अश्वी देव, यज्ञवेदीके सामने जब हम बडे प्रेमसे आपको वन्दन करते हैं तब आप हम ( भक्तों ) पर बड़ा अनुग्रह करते हैं। किन्तु उस अनुग्रह-के योग्य क्या कोई आपकी सेवा करता है ?। हमारे दिव्य तेजको जागृत कीजिये। क्योंकि भक्तोंकी इच्छा पूरी करनेके लियेही आप हमेशा सब जगह सञ्चार करते हैं। २

( हे अश्वी देव ), संकट दूर करनेके लियेही आपका रथ हमेशा तैयार रहता है। तुग्रके पुत्रकी सहायता करनेके लिये आपने अपने सामर्थ्यवान् रथको समुद्रके बीचमें ढकेल दिया था। जिस तरह पराक्रमी सेनापति अपने चञ्चल घोडोंके साथ ( इधर उधर न जाकर ) सहायताके लिये अपनी सेनाकी ओर चला जाता है उसी तरह मैंभी आपहीकी शरण लेता हूं। और यही मेरा कर्तव्य है। ३

इस प्रकार मैं–उचथ्यका पुत्र –आपकी स्तुति करता हूं। इस लिये आप मुझे संकटसे बचाइये। हमेशा भागनेवाली दोनों–दिन और रात–मेरी आयुका नाश न करे ( मेरा रस निचोड़ न डाले )। बड़ी बड़ी लकडियोंकी बडी होली मुझे मत जला दे। देखिये; जिसने आपके भक्तको बांध दिया था वही अब जमीन पर गिर गया है और मट्टी खाता है। ४

---

१ हे ( अश्विनौ ) युवा वसू, रुद्रा, पुरुमन्तौ, वृधन्ता ( च स्त ), तत्, हे वृषणा, दस्रा, यत् रेक्ण. औचथ्य वा ( याचते, तद् ) ददथ्य त, यत् युवा अक्राभि ऊती प्र सस्राथे। २ हे वसू गोः पदे ( भक्ति-संयुतेन ) नमसा यत् ( सुमतिं ) धेथे अस्यै सुमतये चित् ( प्रीणनाय ) को दशत् ? अरमे रेवतीः पुरंधीः जिगृतम्. ( यत् युवा ) कामप्रेणेव मनसा चरन्ता। ३ यत् ( अयं ) वाम् पेरुः ( रथः ) युक्तो ह ( वर्तते )। ( सः ) पज्रो ( रथः ) औग्र्याय, मध्ये अर्णस ( युवाभ्याम् ) वि धायि, शूरः ( सैनिकः ) पतयान्दि एवै अज्न न ( अहं ) वात् अत्र शरणम् ऊपगमेयम्। ४ ( इयम् ) उपस्तुतिः मा औचथ्यम् उरुष्येत् इमे दतत्रिणी माम् मा दुग्धाम्। मा दशतय चित एध मा धाक्। यत् ( येन ) वा ( अयं भक्त. ) बद्ध. ( स ) त्मनि क्षा प्र खादति।

देवोंका महिमा और सामर्थ्य अपूर्व और अपार है । आपने द्यावापृथिवीको इस तरह उत्पन्न किया । देखनेसे विदित होता है कि वे आपसमें नातेदार ही हैं । आप दोनोंका जन्मस्थान एकही है और आप दोनो एकही जगह रहते हैं । ज्ञानवान् और प्रकाशमान् देवोंने अपने कामसे यह दिखलाया है कि आकाशमें और समुद्रके पेटमें आपने एक अद्भुत और नया सम्बन्ध हमेशाके लिये जुडा दिया है । ४

सबको चैतन्य देनेवाले देवोंने पूज्य और अपूर्व दान दिया है । सूर्य-उदयके समय हम सदा आपका चिन्तन करते हैं । द्यावापृथिवी बडी उदारतासे और प्रेमसे उस ऐश्वर्यको दशगुणी करके हमारी ओर ले आवे । ५

सूक्त १६०

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता द्यावापृथिवी ॥

उन द्यावापृथिवीकी ओर देखिये । आप धर्मपर प्रेम करते हैं । आप सब विश्वको सुख देनेवाली है । अन्तरिक्षमें ज्ञानका प्रचार करनेवाली शक्तियोंको आपहीका सहारा है । आपहीके पेटमें बड़े बड़े महात्मा लोग जन्म लेते हैं । उन महात्मा लोगोंके द्वारा ईश्वरकी चतुरता दिखाई देती है । उस दिव्य शक्तिकी चारों ओर सूर्य नियमके अनुसार घूमता रहता है । १

विस्तीर्ण, पवित्र और बड़े द्यावापृथिवीरूपी-मातापिता सब भुवनोंकी रक्षा करते हैं । द्यु और पृथिवीके बीचमें जो पोला प्रदेश दिखाई देता है उसमें रत्नोंकी तरह सुन्दर तारामण्डल है । वह तारामण्डल स्थिर है ! जगत्के पिताने सबोंका रूप मनोहर बनाया है । इस तरह उनकी शोभा बढ़ती हुई दिखाई देती है । २

अत्यन्त पवित्र, अत्यन्त ज्ञानवान्, और सत्कर्मका प्रचार करनेवाले ईश्वरने द्यावापृथिवीरूपी मातापिताके पेटमें जन्म लिया । उनका पुत्र बनकर ईश्वरने अपने अपूर्व सामर्थ्यसे सब भुवनोंको पवित्र किया । अपने भक्तोंको ( शुद्ध सत्वरूप ) दुग्ध पिलानेके लिये आपने चित्र विचित्र रंगकी गौ और सामर्थ्यवान् बैल उत्पन्न किये । ३

---

४ ते मायिन सुप्रचेतस, ( ते इमे ) मिथुना जामी, सयोनी, समोकसा ममिरे, ( अतः ) कवयः सुदीतयश्च ( देवाः ) दिवि समुद्रे अन्तश्च नव्यनव्यं तन्तु आ तन्वते ।

५ सवितुः देवस्य यत् वरेण्यम् राधः ( तत् ) अद्य प्रसवे मनामहे । ( तस्मात् ) इमे द्यावापृथिवी सुचेतुना वसुमन्तं शतग्विनं रयिम् अस्मे यच्छतम् ।

सब देवोंमें ईश्वर ही केवल कुशल और चतुर है, क्यों कि, सब लोगोंको सुख देनेवाली आकाश और पृथिवीको आपहीने उत्पन्न किया। अपनी अपूर्व चतुरतासे ईश्वरने अन्तरिक्षमें सब भुवनमण्डलोंको उत्पन्न किया। आपहीके आधारपर वे मण्डल अन्तरिक्षमें हमेशा घूमते रहते हैं। आपका आधार कभी पुराना और नष्ट होनेवाला नहीं है। ४

हे द्यावापृथिवी, आप बहुत उदार और बडे हैं। हम आपकी सदा स्तुति करते हैं। इस लिये आप हमारी कीर्ति बढ़ाइये। आपकी कृपासे हमें अधिकारका पद प्राप्त होवे। आप ऐसा कीजिये जिससे आपके भक्तोंकी चारों ओर कीर्ति फैले और उनका सामर्थ्य बढे। ५

सूक्त १६१

॥ ऋषि दीर्घतमा। देवता ऋभु॥

क्यों? क्या आप हमारी ओर आये हैं? क्या आप सबसे बडे हैं और छोटे हैं? आप किसके लिये आये होंगे? हमने क्या कहा होगा? यह चमसपात्र निश्चयपूर्वक ईश्वरी विभूतिसे उत्पन्न हुआ है। हम उसकी निन्दा नहीं करते किन्तु हे भ्राता अग्निदेव, हम इस काष्ठपात्रकी वर्णन स्तुतिही करते हैं। १

देवोंने आपसे कहा है कि एक चमससे आप चार चमस कीजिये? यही बात कहनेके लिये मैं आया हूं। हे सुधन्वाके पुत्र, यदि आप इस तरह करोगे तो देवोंकी तरह आपभी पूज्य होंगे। २

हे ऋभु, आप जानते हैं कि अग्नि देवोंका प्रतिनिधि है। हे भाई, उसके पास आपने कहा है कि आप एक अश्व, एक रथ, और एक गाय उत्पन्न करना [illegible]। आपने यह भी कहा है कि आप अपने मातापिताको जवान करना [illegible]। उपर्युक्त कार्य करके आप उनके पास चले जाओगे। ३

उपर्युक्त कार्य समाप्त करके आपने पूछा कि "जो देवोंका प्रतिनिधि (अग्नि) हमारी ओर सन्देसा ले आयाथा वह कहां है ?" इतनेमें त्वष्टाने देखा कि चार चमस तैयार हुए हैं। उसी समय वह देव स्त्रियोंमें जाकर छिप गया। ४

त्वष्टाने कहा की "तुमने देवोंके सोम पीनेके चमसोंकी निन्दा की है; इस लिये तुमको मार डालना चाहिये"। हे भाईयो ऋभु, जिस समय उपर्युक्त बात त्वष्टाने कही तबसे सोमरस अर्पण करते समय तुमारी शकल पलट गयी; देवकीसी तुमारी शकल हो गयी। तुमारा रूप पलटनेके कारण स्वर्गकी युवतियां तुमपर मोहित हो गयी और तुमपर प्रीती करने लगी। ५

आपने जो घोडे उत्पन्न कियेथे उनको इन्द्र ले गया। इन्द्रने उन्हे अपने रथको जोता। अश्वि देवोंने रथको तैयार किया। अपनी शकल बदलनेवाली कामधेनुको बृहस्पति अपने साथ ले गया। उपर्युक्त बातें होनेके अनन्तर ऋभु, विभ्वा और वाज तीनोंको देवोंका सारूप प्राप्त हुआ। तुम सत्कर्म करनेवाले हो; इस लिये यज्ञमें तुमको हविका हिस्सा मिल गया। ६

तुमने अपने अतुल बुद्धिके सामर्थ्यसे केवल एक चमडेसे जीती गौ उत्पन्न की और बूढे हुए मातापिताको फिर जवान बनाया। हे सुधन्वाके पुत्र, तुमने एक साधारण अश्वसे एक अपूर्व अश्व उत्पन्न किया। तदनन्तर रथको जोतकर तुम देवोंकी ओर चले गये। ७

हे ऋत्विज, आप ऋभुओंसे ऐसी विनति कीजिये कि "आप यह जल पीजिये; अथवा मुंज तृणसे पवित्र किया हुआ और छाना हुआ यह शुध्द जल पीजिये। हे सुधन्वाके पुत्र, यदि उपर्युक्त जल पीना आप नहीं चाहते तो तीसरी आहुति देते समय सोमरस पीकर आप आनन्दित हूजिये।" ८

---

४ हे ऋभव तत् चकृवांस (यूयम्) अपृच्छत "या दूत न आ अजगन् स्यः क्व इत् अभूत्" इति यदा त्वष्टा चमसान् चतुर कृतान् अव अख्यत्, आदित् ग्नासु अंत नि आनजे।

५ "ये देवपानं चमस अनिंदिषु (तान्) एनान् हनाम" इति त्वष्टा यद् अब्रवित् (तदानीमेव) सुते सचा अन्या नामानि कृण्वते, एनान् च (देव) कन्या अन्यै नामभि (एव) स्परत्।

६ इंद्रो हरी युयुजे, अश्विना रथं (युयुजाते), बृहस्पतिरपि विश्वरूपा (गां) उप अजत। (तदानीं) ऋभु विभ्वा वाजश्च (यूयं) देवान् अगच्छत, सु अपस यूयं यज्ञियं भागं ऐतन।

७ (यूय) धीतिभि चर्मण (एव) गा नि अरिणीत, या जरन्ता ता युवशा अकृणोतन। हे सौधन्वना, अश्वात् अश्व अतक्षत, युक्त्वा च रथं देवान् उप अयातन।

८ 'इद उदक पिबत" इति (ऋभून्) अब्रवीतन, "इद घ मुज नेजनम् वा पिबत, हे सौधन्वना यदि तद् नेव हर्यथ तृतीये सवने व (सोमरसन) मादयाध्वै"।

एक ऋभुने कहा 'सबसे उदकका उपयोग अधिक है'। दूसरे ऋभुने कहा 'सबसे अग्नि श्रेष्ठ है' तीसरा ऋभु कहने लगा कि 'सबके लिये निजको जलानेवाली भूमि अत्यन्त उपयोगी है।' इस तरह भिन्न भिन्न तत्त्वोंपर वाद प्रतिवाद करते करते तुमने सहज रीतिसे चारों चमसोंको तैयार कर डाला। ९

एक ऋभु अन्धे लंगडे गौको जलके पास ले जाता है। दूसरा ऋभु छुरीसे काटकर किये हुए मांसके टुकडोंको यज्ञके समय ठीक ठीक जगहपर अच्छी तरहसे रखता है तीसरा ऋभु संध्याकालके समय वध किये हुए पशुके मांसका यज्ञके अयोग्य भागको दूर जाकर फेंक देता है। यज्ञके समय मातापिताको इससे अधिक अपने पुत्रसे क्या चाहिये। १०

हे नरपुत्र, तुमने अपने आश्चर्यकारक कुशलतासे पशुओंके लिये उद्भिज घास उत्पन्न किया और पहाडके गहरे दरारोंमें स्वच्छ जल उत्पन्न किया। इतनी बातें करनेपरभी सूर्यके घरमें जाकर आप आरामसे सोते हैं। किसी तरह [illegible] किया नहीं जाता। वही काम आप फिर शुरू क्यों नहीं करते?। ११

मरुत् देव उच्च आकाशमें संचार करते हैं. अग्निदेव पृथ्वीपर प्रदीप्त होते हैं और वायुदेव अन्तरिक्षमें चलते हैं। वरुण देवभी समुद्रके वहते हुए जलके बीचमें संचार करते हैं। किन्तु हे सामर्थ्यवान् ऋभु, आप ऐसे हैं कि वे सब देव आपका साथ रखनेकी सदा इच्छा करते हैं। १४

सूक्त १६२.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

इस यज्ञके समय विद्वान् लोगोंकी सभामें प्रत्यक्ष देवोंसे उत्पन्न हुए चपल और तेज अश्वके गुणोंका वर्णन करना हम चाहते हैं। इस समय मित्र, वरुण, अर्यमा, मरुत्, विश्वका प्राण और प्रभु इन्द्र आदि देवताएं हमारा त्याग न करें। १

उपर्युक्त ( मेध्य ) घोडा उंचे दर्जेके कपड़े पहिनकर अच्छी तरह सिद्ध हुआ बड़े ठाठसे चलता है। उसके आगे लोग भी बली हाथोंमें लेकर चलते हैं। इन्द्र और पूषाके घर जानेके लिये एक चित्र विचित्र रंगका बकराभी चिल्लाता हुआ बड़े ठाठसे चलता है। २

जो बकरा तेज घोडेके आगे चलता हुआ दिखाई देता है वह देवोंका बड़ा प्यारा है। किन्तु इस यज्ञके समय पूषा देवको उसका बलिदान होनेवाला है। उस बकरेकी आहुति देव बड़े आनन्दसे चाहते हैं। यह बात प्रकट है कि यह देवोंका बड़ा प्यारा पुरोडाश है। इस लिये विदित होता है कि त्वष्टा उस ( बकरे ) को उस अश्वके साथ आगे आगे चलाता है और यज्ञकी ओर ले जाता है। ३

देवलोकको जानेके लिये तैयार हुए और हविर्भागके तौरपर अर्पण किये हुए अश्वको ऋत्विज बलिदान देते समय अग्निकी चारों ओर तीन दफे घुमाते हैं। यज्ञके समय अश्वका बलिदान होनेके पहले बकरेका बलिदान सबसे पहले पूषा देवके लिये अर्पण किया जाता है। यज्ञका आरंभ होते ही बकरेका बलि प्रथम अर्पण किया जाता है। जब बकरेका बलि दिया जाता है तब वह बकरा देवको ओर स्वर्गमें चला जाता है। ४

---

१४ मरुतः दिवा यान्ति, भूम्या अग्निः अयम् वातः अन्तरिक्षेण याति। वरुणः अद्भिः याति ( परंतु सर्व एते ) हे शवसः नपात युष्मान् इच्छन्त।

हे होता, अध्वर्यु, आवया, अग्निमिंध, ग्रावस्तुत, प्रस्तोस्ता, और विद्वान् ब्रह्म आदि ऋत्विज, इस यज्ञमें घीका प्रवाह इतना बहना चाहिये कि यज्ञकी समाप्ति अच्छी तरह होवे । ५

यज्ञके लिये यूप तैयार करनेवाले, यूपको लानेवाले, यूपके चोटीको अच्छी तरह सजानेवाले, मेध्य अश्वका मांस पकानेका बरतान तैयार करनेवाले, आदि सब लोग सन्तुष्ट होवे और हमारे यज्ञकी सिद्धि आनन्दसे सफल होवे । २

जब मैं अच्छी तरहसे स्तोत्र गाने लगा तब वह हृष्टपुष्ट अश्व देवलोकको जानेके लिये तैयार हुआ । स्तुति करनेवाले लोग और ऋषि बड़े हर्षसे उस अश्वको पहुंचानेके लिये गये । जब वह अश्व देवलोकको चला गया तब देव बड़े प्रसन्न हुए । उस अश्वको हमभी अपने बन्धुके समान मानते हैं । ७

उस चपल घोडेकी रस्सी, उसके पैर बान्धनेकी रस्सी, उसके खानेका घास, और उसने मुहमें जो घास धरा है वह, आदि सब वस्तुएं उसके साथ स्वर्गमें चले जावें । ८

उस मेध्य घोडेका मांस, जो मांस मक्खीने खाया होगा, जो मांस लकडी और छुरीको चिपका होगा, और जो मांस हाथ और नखोंकोभी चिपका होगा वे सब मांसके टुकडे देवोंको जा पहुंचे । ९

---

* हे होता, अध्वर्यु आवया अग्निमिन्ध, ग्रावग्राभ, उत च शस्ता सुविप्र ( ब्रह्मा च इत्यादयः ऋत्विज: ) एतेन सु अरंकृतेन सु इष्टेन ( यज्ञेन घृतस्य ) वक्षणाः आ पृणध्वम् ।

* यज्ञस्य उत ये यूपव्रस्का ये च अश्वयूपाय चषालं तक्षति, ये च अर्वते पचनं सम्भरन्ति, उतो तेषां ... इन्वतु ।

पेटमें अपक्व घासका जो भाग रहता है वह सड़ जाता है । कच्चा मांसभी गंदा रहता है। इस लिये मांस काटनेवाले लोग उस मांसको साफ धोकर स्वच्छ करें। और वे मेध्य मांसको अच्छी तरह पकावे । १०

जब मेध्य मांस चूल्हेपर पकता है तब उसका कुछ भाग उबलने लगता है और कुछ हिस्सा बाहर निकल जाता है। जब उस मांसके भूजते हुए कुछ टुकड़े लोहशूलपर चिपक जाते हैं तब कुछ हिस्सा पिघल जाता है । जमीन और घासपर पड़े हुए वे सब मांसके अंश खराब न होवे । वे सब मांसके अंश देवोंको जा पहुंचे । ११

जवान घोड़ेके मांसको पकानेका और देखनेका अधिकार जिसका रहता है वह कहता है कि‘ अब इसका अच्छा सुवास चल रहा हैं; इस लिये बरतानको नीचे उतारो ’। जो लोग मेध्य अश्वके मांसकी इच्छा करते हैं वे सन्तुष्ट होवे और हमारे कार्यमें सहायता देवें। १२

मेध्य अश्वका मांस पकानेके लिये एक बड़े लोहेके चमचकी, एक बड़े पीतलकी थालीकी, एक ढक्कनकी, एक लोहेकी कड़ाहीकी और एक बड़े लोहेकी जञ्जीर ( कडी ) की आवश्यकता है । १३

जिस स्थानमें वह अश्व आनन्दसे बैठता था वह आनन्द, उसने पीया हुआ जल, और खाया हुआ घास आदि सब वस्तुएँ, उस अश्वको देवलोकमें प्राप्त होवे । १४

---

१० उदरस्य यद् ऊवध्यम् अपवाति, आमस्य क्रविष· यद् गंध अस्ति, तद् शमितार· सुकृता कृण्वन्तु उत मेधम् शृतपाकम् पचन्तु ।

११ ( हे अश्व ) अग्निना पच्यमानात् ते गात्रात् यद् अवधावति, निहतस्य ते अभि शुरुम् ( यद् ) अवधावति, तत् भूम्या मा आश्रिपत, मा तृणेपु ( अपि ). तत् उशम्द देवेभ्यः रातम् अस्तु

१२ ये वाजिन पक्वं परिपश्यन्ति, ये ( अयं ) सुरभीः ईम् निर्हर इति आहुः येच अर्वतः मांसभिक्षाम्, उपासते, उतो तेपाम् अभिगूर्ति· न इन्वतु ।

१३ यत् मांस्पचन्याः उखायाः· नीक्षण, या यूष्णः आसेचनानि पात्राणि, चरूणाम् उष्मण्या ( या ) अपिधाना, अङ्काः सूनाश्च ( एतानि ) अश्वम् परिभूपान्ति ।

१४ अर्वतः यद् निक्रमण निषदनम्, विवर्तनम् यच्च पड्वीशम्, यच्च ( उदक ) पपौ घासिं जघास, सर्वा ते अपि देवेषु अस्तु ।

मेध्यमांस अधिक पकनेके कारण अग्निके धुएं का वास न आवे। जिस बरतानमें मांस पकता है वह बरतान नीचे गिर न जावे। जलनेका मांसका कुछ हिस्सा उबलनेके बाद अग्निमें गिरकर जल न जावे। जब मांसका अच्छी तरहसे हवन किया जाता है, जब मांस स्वादिष्ट बनता है, और जब पका हुआ मांस 'वषट्' शब्दसे पवित्र किया जाता है तब देवलोग उस अश्वके मांसको पसन्द करके उसका स्वीकार करते हैं। १५

घोडेकी झुल, उसका सुवर्णका जीन, उसका लगाम, उसके पैर बान्धनेकी रस्सी, साफ करनेका कपडा आदि अश्वका सब सामान उसके साथ देव लोकको भेजनका प्रचार है। १६

दौड़ते दौड़ते थक जानेके बाद यदि किसीने तुमको ( अश्वको ) चाबूकसे पीटाहुआ हो, तो तुमको दुःख हुआ होगा। इस यज्ञमें होमके चमचेसे और मंत्र स्तवनसे तुमारे दुःखका नाश होवे। १७

वह मेध्य अश्व बलि दिया जाता है। इस लिये सब देव उसपर भाईके समान प्रेम करते हैं। उसकी पसलीकी चौंतीस हड्डीयोंमें छुरी घुसती है। हे अश्वके काटने वाले लोग, इस अश्वके सब गात्रोंको बड़ी कुशलतासे अलग अलग कीजिये। प्रत्येक अवयवके जोडका नाम कहकर उसको कांट डालिये। १८

प्रत्यक्ष त्वष्टाने उस अश्वको उत्पन्न किया, उसका कांटनेवाला एक ही होता है। किन्तु उसको पकडनेवाले दो होते हैं। इसका प्रचार ही ऐसा है। ( हे अश्व ) जिस अनुक्रमसे तुमारे अवयव काटे जाते हैं उसी अनुक्रमसे मैं उसका बलि यज्ञाग्निमें अर्पण करता हूं। १९

---

१५ ( हे अश्व ) त्वा धूमगन्धिः अग्निः मा ध्वनयीत् भ्राजन्ती उखा जिघ्रिः मा अभिविक्त। इष्टम् वीतम् अभिगूर्तम् वषट्कृतम् ( एतादृशमेव ) तम् अश्वम् देवासः प्रति गृभ्णन्ति।

१६ यद् अश्वाय अधीवासं वास उपस्तृणन्ति, या अस्मै हिरण्यानि ( परिष्कृतानि ) यद् च सदानम्, .व ( एतानि ) प्रिया ( वस्तूनि ) अश्व देवेषु आ यमयन्ति।

१७ ( हे अश्व ) ते सादे महसा शूकृतस्य यद् ( कोपि ) पार्ष्ण्या वा कशया वा ( त्वा ) तुतोद, ते तानि ( दुःखानि ) हविः सुचेव ( मे ) ब्रह्मणा ( अपि ) सूदयामि।

१८ वाजिनः देवबन्धोः अश्वस्य चतुस्त्रिंशत् वङ्क्रीः स्वधितिः समेति। ( हे विशसितारः ) गात्रा अच्छिद्रा कृणोत, परुः परुः अनुघुष्य वि शस्त।

१९ त्वष्टुः ( अश्व ) अश्वस्य एकः विशस्ता ( भवति ), द्वा यन्तारा भवतः, तथा ऋतु ते गात्राणां या ... ता ता पिण्डानाम् अग्नौ जुहोमि।

जब इस लोकको ( हे अश्व ) तुम छोड जाते हो तब तुमारे प्राणको किसी प्रकारका दुः ख न होवे । तुमको कांटनेवाले की छुरी तुमारे गलेमें रुक न जावे । तुमको कांटनेवाला मनुष्य अपने अज्ञानके कारण गिद्धकी तरह तुमारे गात्रोंको अयोग्य स्थानमें कांटकर बिगाड न डाले । २०

( हे अश्व ), तुम मरोगे नहीं; अथवा तुमारा नाश भी नहीं होगा । सुलभ मार्गसे तुम देवोंकी ओर चले जाते हो । प्रत्यक्ष इन्द्रके हरिद्वर्ण ( हरे रंगके ) अश्व और मरुत् देवकी हरिणी तुमारे साथ रथको जोते जायेंगे । अथवा अश्वी देवके जोरसे हिनहिनानेवाले बलवान् घोडोंकी जगह तुम जैसे जवान अश्व जोते जाओंगे । २१

यह तेज अश्व यज्ञको अर्पण किया हुआ है । वह हमे उत्तम गोधन देवे, वह हमे अश्व की सम्पत्ति देवे; वह हमें वीर्यशाली पुत्र देवे; वह हमें ( दिव्य ) सम्पत्ति देवे, वह हमारी सब तरहसे उन्नति करें । अनाद्यनन्त अदिति हमें पापसे मुक्त करें । और यह अश्वमेध हमें अधिकार प्राप्त करा दे । २२

## सूक्त १६३

॥ ऋषि दीर्घतमा । देवता—अश्वस्तुति ॥

( हे यज्ञीय अश्व, ) तुमारा जन्म चाहे समुद्रसे हुआ हो अथवा मेघोदकसे हुआ हो । जब तुम उडकर अन्तरिक्षमें हिनहिनाकर प्रगट हुए तब तुमारा रूप कुछ और था । तुमारे पंख श्येन पक्षीकेसे चपल थे । तुमारे पैर हरनकेसे चञ्चल थे । हे अश्व, तुमारा बड़ा भाग्य है कि इस तरह तुमारा जन्म बहुत अच्छा हुआ है । १

यमने इस अश्वको दे दिया । त्रितने उसपर शूल डालकर उसको सजाया । उसके बाद इन्द्र स्वयं सबसे पहले उस पर सवार हुए । उसका लगाम पकड़कर गन्धर्व खडा हुआ । हे वसुदेव, इस दिव्य अश्वको आपने सूर्यसे उत्पन्न किया । २

---

२० ( ते ) प्रियः आत्मा अपियन्त त्वा मा तपत्, स्वधिति· ते तन्व· आ मा अतिष्ठिपत् गृध्नु अविशस्ता अतिहाय, ते गात्राणि असिना मिथु छिद्रा मा क

२१ ( हे अश्व ) एतद् न वा उम्रियसे, न रिष्यसि ( परंच ) देवान् इत् सुगेभि पथिभिः एषि ( इंद्रस्य ) हरी ते युञ्जा ( उत वा मरुताम् ) पृषती ( युंजा ) अभूताम्, ( अथवा ) रासभस्य धुरि ( त्वं ) वाजी उप अस्थात् ।

( ईश्वरकी ) अद्भुत लीलाकी दृष्टिसे देखनेमे विदित होता है कि हे अश्व, आपही स्वयं यम हैं। आप स्वयं आदित्य हो।और आप स्वयं त्रितही हो। सोमरसभी स्वयं आपही हैं। सब लोग कहते हैं कि तुमारा तीन बन्धनभी स्वर्गलोकमें हैं। ३

लोग कहते हैं कि "( हे अश्व ) स्वर्गमें तुमारे जन्मस्थान तीन है, मेघोदकमें तुमारे जन्मस्थान तीन हैं, और समुद्रमेंभी तुमारे जन्मथान तीन हैं।" कहते हैं कि वरुणकी तरह तुमारा जन्मभी श्रेष्ठ स्थानमें हुआ है। मुझे कहिये कि आपका जन्म कहां हुआ। ४

हे बलवान् अश्व, यह वही स्थान है, जहां तुमारा शरीर स्वच्छ किया जाता है। यह वही स्थान है जहां तुम अपने विजयके बडे आनन्दसे अपने खुरोंसे मट्टी उछलते थे। यहां तुमारी मंगलदायक रस्सी पडी हुई मैंने देखी थी। जो लोग सत्यधर्मकी रक्षा करते हैं वे ही उस रस्सीकीभी रक्षा करते हैं। ५

जिस तरह पक्षी नीचेसे ऊपर उडता है उसी तरह आपकोभी अन्तरिक्षमें उड़ते हुए मैंने अपने मनसे देखा। पवित्र मार्गसे ऊपर जानेवाले और पंखोंके द्वारा उडने वाले आपके मस्तकको मैंने देखा है। जिस मार्गसे आपका मस्तक ऊपर उडता है उस मार्गपर पाप और गन्दा रजः कण दिखाई नहीं देता। ६

इस यज्ञमण्डपमें तुमारी मनोहर शकल मैंने देखी। जब तुम वेदीके पास हविरन्नका आस्वाद ले रहे थे उस समय तुमारा रूप बडा उत्साही दिखाई देता था। जब भक्तोंने खानेकी वस्तु तुमारे सामने धर दी तब तुमने उस घासको ( तृणाहारको ) एकदम खा डाला। ७

---

३ हे अर्वन् ( भगवन् ) गुह्येन व्रतेन ( त्वं ) यम असि, आदित्य असि त्रितश्चासि। सोमेनापि समना [illegible] असि, दिवि ते बन्धनानि त्रीणि इत्याहु।

[illegible] दिवि बन्धनानि त्रीणि, [illegible] आहु अप्सु त्रीणि, समुद्रे अन्त च त्रीणि ( इत्याहु ) उत हे अर्वन् [illegible] ते परमम् जनित्रम् आहु ( तद् ) मे ब्रूहि।

[illegible] इमा ते [illegible], इमा ( ते ) [illegible] शफाना निधाना। ते भद्रा रशना [illegible] [illegible] अभिरक्षन्ति।

[illegible] ( हे अर्व ) ते [illegible] दिव पतगमिव उपतनम् मनसा आरात् अजानाम। ( अपि च ते [illegible] [illegible] [illegible] नद्गनानन [illegible]।

[illegible] आ ते [illegible] [illegible] आपश्यम। यदा च मर्त ते भोगम अनु आनट् [illegible]।

हे अश्व, रथ, पराक्रमी योद्धा, धेनुओंका समुह, कुमारीयोंके प्रेम ( कटाक्ष ) और मरुद्गण, आदि सब लोग तुमारे साथकी इच्छा करके तुमारे पीछे चले गये ) देवभी तुमारे पराक्रमकी प्रशंसाही करते थे। ८

विदित होता है कि इस दिव्य अश्वकी अयाल सुवर्णकी बनी हुई है; मानों, उसके पैर फौलादके बने हुए हैं। इन्द्र—जो मनसेभी वेगवान् है और जिसके सामने किसीका भी कुछ नहीं चलता-उस दिव्य अश्वका स्वामी है। उस अश्वके बलिदानका स्वीकार करनेके लिये सब देव उपस्थित थे इतनाही नहीं किन्तु इन्द्र देव भी-जो उस अश्वपर सबसे पहिले आरूढ हुआ था- उपस्थित था। ९

दिव्य लोकके हृष्ट पुष्ट, सुन्दर, चपल और तेज घोडे अनुक्रमसे हंसमालिकेकी तरह बडी शीघ्रतासे दौडते हैं। सब घोडे स्वर्गमार्गपर एकत्रित्त होकर आकाशको व्याप्त करते हैं। १०

हे अश्व, तुमारा शरीर पक्षीकी तरह ( आकाशमें ) उड्डान कर सकता है। तुमारा मनभी वायुकी तरह वेगवान् है। तुमारी अयाल इतनी बडी है कि वह सब दूर फैली हुई दिखाई देती है। वनमें तुमारी अयालका अवाज सुनाई देता है। ११

बलिदान करनेके स्थानपर वह जवान घोड़ा आ पहुंचा। इस समय उस अश्वका हृदय देवके ध्यानमें मग्न है। इस घोड़ेका भा... बकराभी उसके आगे चल रहा है। घोड़ा और बकरेके पीछे पवित्र स्तुति करनेवाले लोगभी च... रहे है। १२

---

८ हे अर्वन् रथ. अनुत्व, मर्य. ( अपि ) अनु ( त्वा ), गावः अनु. कनीनाम् भगश्चापि ( त्वाम् ) अनु ( ईयुः ) व्रातास. तव सख्यम् अनु ईयु, ( एवम् ) देवासः ते वीर्यं अनु ममिरे।

९ ( अयम् ) हिरण्यशृंग. अस्य पादा. अय ( भवन्ति ), मनोजवाः अवरः इंद्रः ( अस्य अभिभूः ) आसीत्। ( अत ) अस्य हविरद्य देवाः इत् आयन्, यश्च ( एनं ) अर्वन्तम् प्रथम अध्यतिष्ठत् ( सोपि आयात् )।

१० ईर्मान्तास. सिलिकमध्यमास दिव्यासः शूरणासः अत्या ( एते ) अश्वाः हंसा इव श्रेणिशः संयतन्ते, यदा ( ते ) दिव्यं अज्मम् आक्षिपु।

११ हे अर्वत् तव शरीरम् पतयिष्णु, तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् तव शृंगाणि पुरुत्रा विष्ठिता अरण्येषु जर्भुराणा चरन्ति।

१२ ( अय ) वाजी अर्वा देवद्रीचा मनसा ( भगवन्तं ) दीध्यानः शसनम् उप प्र अगात्। अजः अस्य नाभिः पुरः नीयते पश्चात् कवयः रेभाः अनुयन्ति।

यह अश्व उच्च स्वर्गलोकमें जा पहुंचा । उस अश्वको जगत्पिता और जगन्माताकाभी दर्शन हुआ । हे अश्व, सन्तुष्ट हृदयसे देवोंका दर्शन कीजिये ।स्तोतृजनभी यजमानको ईश्वरकी कृपाका लाभ होनेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं । १३

देखिये; यह ( किरणरूपी ) सफेद बालोंका पुराणा आचार्य । इसका दूसरा भाई बडा खाऊ है । इसके तीसरे भाईका शरीर घीसे लिपट जानेके कारण बड़ा दीप्तिमान दिखाई देता है । सब लोगोंके स्वामीका और उसके सात पुत्रोंका दर्शन मुझे यहांही हुआ । १

एक चक्रके रथको सात मनुष्य जोतकर तैयार करते हैं । उस रथको एकही घोडा जोतते हैं, किन्तु उसका रूप सात प्रकारका है । उस रथका चक्र तीन स्थानमें गांठदार है । वे कभी घिसते नहीं हैं । उनका कभी नाशभी नहीं होता । इस एक चक्रके आधारपर ही सब भुवन अच्छी तरह घूम रहे हैं । २

दूसरा एक रथ सात चक्रोंका है । उसमें सात मनुष्य बैठते हैं । उसको सात घोडे जोते हुए रहते हैं और सात बहिनी उस रथके महत्त्वका वर्णन करते हैं । क्योंकि उस रथके स्थानमें दिव्य धेनुओंके सात रूप गुप्त रीतिसे छिपे हुए है । ३

क्या किसीने उस ईश्वरको उत्पन्न होते हुए देखा है जो सब स्थूल विश्वको सम्भालता है और जिसके शरीरमें हड्डी न होनेपर भी जो हड्डीयोंसे भरे हुए प्राणियोंकी रक्षा करता है ? उस पृथ्वीका [illegible] और आत्मतत्त्व उस समय कहां था जो जो वस्तुएं पृथ्वीमें नहीं [illegible] उस समय कहां थी ? जिसको उपर्युक्त बातें मालुम थी उसको पूछनेके लिये कौन गया था । ४

मेरे मनमें कुछ कपट नहीं है, किन्तु मैं अज्ञानी हूं। इस लिये मैं पूछता हूं कि ईश्वरका रूप जो बिलकुल गुप्त है-किस प्रकारका है। देखिये; ज्ञानी लोक एक वर्षके वत्स (सूर्य) के शरीरपर सात धागेका भक्ति (उपासना) रूप वस्त्र फैलाते हैं। ५

इस विषयमें मुझे कुछ नहीं समझता है। मैं अज्ञानी हूं। जिन ज्ञानी लोगोंको ईश्वरके तत्त्वकी सब बातें विदित हैं उनसे मैं पूछता हूं कि बिनाजन्मके ईश्वरके-जो छः लोगोंको धारण करता है-रूपमें कुछ भिन्नता है या एकता है। ६

जिनको उपर्युक्त बातें विदित होवे मुझे शीघ्रही सब कह दे। उस मनोहर दिव्य पक्षीका निवासस्थान बहुत गूढ है। उसकी (किरणरूपी) धेनूएँ ऐसी है कि जिनके मस्तकसे दूधका प्रवाह चलता है। वे धेनूएँ तेजोमय वस्त्र पहिनतीं हैं और पैरोंसे जल पीती हैं। ७

जब यज्ञमें भूमाताने पिता (द्यु) की सेवा की तब पिताने ध्यानसे और मनसे भूमाताके साथ पहले पहल समागम किया और (द्युरूपी) पिताने सेवा करनेवाली पत्नीपर वृष्ट्युदककी वर्षा की। भक्तलोग दोनोंके पास चले गये और दोनोंकी स्तुति करने लगे। ८

दक्षिणा नामकी यज्ञधेनुका काम करनेके लिये भूमाता तैयार हुई। भूमि भीजी हुई थी। मेघरूपी धेनुके पेटमें गर्भ उत्पन्न हुआ। वत्स चिल्लाकर अपनी माताकी ओर देखने लगा। यह गोमाता ऐसी है कि इस भुवनमें वह अपना चाहे सो रूप धारण कर सकती है। ९

---

५ मनसा पाक अविजानन् (च) देवानां एना निहिता पदानि (अधिकृत्य) पृच्छामि। (यत) कवय वत्से बष्कये अधि. (वस्त्र) ओतवै उ सप्त तन्तून् वितत्निरे।

६ अचिकित्वान् (अह) न विद्वान् (च) अत्र चिकितुष चित् कवीन् विद्मने पृच्छामि। (यत्) (य) इमा षट् रजांसि तस्तभ (एतादृशस्य) अजस्य रूपे किं स्वित् एकम् (अस्ति खलु)।

७ य अङ्ग ईम् वेद (स) इह ब्रवीतु। अस्य वामस्य वे पद निहितम्। अस्य गाव: (ईदृशा· अपूर्व्यां यत् ता.) शीर्ष्ण क्षीर दुह्रते (अपिच) वव्रिम् वसाना: उदकम् पदा अपु.।

८ माता पितरम् ऋते आबभाजे, (सोपि) अग्रे धीती मनसा च सजग्मे हि। सा बीभत्सु गर्भरसा निविद्धा, (तदा स्तवत:) नमस्वन्त इत् उपवाकम् ईयु।

९ दक्षिणाया धुरि (भू) माता युक्ता असीत्। वृजनीष्वन्त. गर्भ. आतिष्ठत्। वत्स. अमीमेत् त्रिषु योजनेषु विश्वरूप्य गाम अनु अपश्यत्।

( हे आदित्यरूपी परमेश्वर ), मातृरूपी तीन और पितृरूपी तीन । ऐसे मिलकर छः भुवनोंको आप अकेले धारण करके खडे हैं । इतना बोझ धारण करके भी आप थक नहीं जाते । स्वर्गलोकमें रहनेवाले देव आपसमें एक ऐसी भाषा बोलते हैं कि वह किसीके समझमें नहीं आती । किन्तु वे आपसमें उस भाषाके द्वारा अपना मतलब समझ लेते हैं । १०

इस सृष्टिक्रमके चक्रके बारा डण्डे होते हैं । वे कभी घिस नहीं जाते । आकाशमण्डलमें वे हमेशा चारों ओर घूमते रहते हैं । हे अग्निदेव, इसी चक्रपर सब पुत्रोंको ( रात और दिन दोनोंको ) जोडी बैठी हुई है । वे सब मिलकर सात सौ बीस ( ७२० ) हैं । ११

कई लोग कहते हैं कि ( द्युरूपी ) पिताके पांच चरण होते हैं; और उसका रूप बारा प्रकारका है । वह जलकी वर्षा करनेवाला है और वह आकाशके उच्च प्रदेशमें रहता है । और दूसरे लोग कहते हैं कि वह पिता पासके प्रदेशमें रहता है और छः दण्डेके सात चक्रके रथपर बैठकर सब कुछ देखता है । १२

एक चक्रके पांच दण्डे होते हैं और वह हमेशा घूमता रहता है । सब भुवनोंका उसीका आधार है । उस चक्रके लोहेकी धुरीपर बहुत बोझ पडता है । तथापि वह कभी तप नहीं जाता । अनन्तकालसे वह चक्र एकही धुरीपर घूमता रहता है; तथापि वह धुरी कभी टूट नहीं जाती । १३

एक अखण्ड धुरीकी चारों ओर नाश न होनेवाला चक्र घूमता रहता है । उसका लकडा उलट फुलट हुई है । उसको दस घोडे जोतेहुए हैं और वे चक्रको खींच रहे हैं । नाना प्रकारके रंगोंके गोलोंसे सूर्यका नेत्र घिरा हूआ है और वह अपने मार्गसे चल रहा है । सब भुवनोंको उसीकाही आधार है । १४

---

१० तिस्रः मातृः त्रीन् पितॄन् बिभ्रत् एकः ( एव ) ऊर्ध्वः तस्थौ, ( इमे अतिभाराः ) ईम् न अव [illegible]न्ति । अमुष्य दिवः पृष्ठे ( देवाः ) विश्वविदम् ( [illegible] ) अविश्वमिन्वाम् वाचम् मन्त्रयन्ते ।

११ द्वादशारम् ऋतस्य चक्रम् नहि तज्जराय, ( तच्च ) द्याम् परि वर्वर्ति, हे अग्ने अत्र च मिथुनासः पुत्राः ( [illegible] ) सप्त शतानि विंशतिः ( [illegible] ) तस्थुः ।

१२ पञ्चपादम्, द्वादशाकृतिम् पुरीषिणम् पितरम् दिवः परे अर्धे आहुः । अथ इमे अन्ये ( तम् ) उपरे [illegible] षडरे चक्रे ( ये ) अर्पितम् ( [illegible] ) विचक्षणम् आहुः ।

१३ पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन् विश्वा भुवनानि आतस्थुः तस्य अक्षः भूरिभारः ( अपि ) न तप्यते [illegible] सनात् एव न शीर्यते ।

१४ सनेमि चक्रम् अजरम् विववृते, ( तस्य ) उत्तानायाम् ( धुरि ) दश युक्ताः वहन्ति । सूर्यस्य चक्षुः [illegible] रजसा आवृतम् एति, तस्मिन् विश्वा भुवनानि अर्पिता ( सन्ति ) ।

सातोंका जन्म एकसाथही हुआ; किन्तु अन्तिम सातवेका जन्म भिन्न प्रकारसे हुआ। बचे हुए छः का जन्म एकही स्थानसे हुआ। देवोंसेही उनका जन्म माना जाता है; और वेही ऋषि कहलाये जाते हैं। उनके कर्मफल निजकी इच्छाके अनुसारही अनुक्रमसे मिलते है। वे नाना प्रकारका रूप धारण करते हैं। किन्तु वे अपने स्वामीकी इच्छाके अनुसारही बर्ताव करते हैं। १५

सचमुच वे स्त्रीयां हैं। किन्तु उन्होने मुझे कहा की वे पुरुष हैं। जिनको आंख हैं उनको यह बात विदित हो सकती है। आन्धा इस बातको किस तरह जान सकता है ? जो सच्चा सुपुत्र है वही इस बातको जानेगा। जो सुपुत्र इस बातको जानता होगा वह अपने पिताका भी पिता होगा। १६

अत्युच्च स्थानके नीचे किन्तु इस भूगोलके ऊपर वह गौ—जो अपने पैरसे अपने बच्चोंको ऊपर उठाती है—दिखाई देने लगी ! नहीं मालूम, वह किस तरफ और किसकी ओर चली जा रही है। यह बात किसीको विदित नहीं है कि वह बच्चेको कहां जनती है। झुण्डमें वह कभी नहीं जनती। १७

अत्युच्च स्थानके नीचे किन्तु नीचेके स्थानके ऊपर यह विश्व स्थित है। इस विश्वका पिता ईश्वर है। इस संसारमें ऐसा कौन ज्ञानी पुरुष है जो उस ईश्वरको ठीक ठीक पहिचान सके ? उस पुरुषने ईश्वरके विषयमें क्या उपदेश किया है ? दिव्य मन कहांसे उत्पन्न हुआ ? १८

जो ( किरण ) सचमुच अपनीओर नीचे आते हूए दिखाइ देते हैं वे ऊपर जानेवाले हैं; और जो ( किरण ) सचमुच ऊपर चले जाते हैं वे अपनी ओर नीचे आते हुए दिखाई देते हैं ? यह क्या बात है। हे सोम और इन्द्र, दोनों मिलकर तुमने यह आश्चर्य उत्पन्न किया है। किन्तु रजोगुणके कारण ही जुआमें जोते हुए घोडोंकी तरह यह सृष्टिनियम योग्य रीतिसे चल रहा है। १९

---

१५ साकजानां ( सता ) सप्तथम् एकजम् आहु. ( शेषास्तु ) षट् यमाः इत् देवजा ऋषय इति ( आहु ) तेषाम् इष्टानि ( फलानि ) धामशः विहितानि, रूपश विकृतान्यपि स्थात्रे रेजन्ते।

१६ स्त्रियः सतीः. तान् उ पुंसः ( इति ) मे आहुः, ( एतद् ) अक्षण्वान् पश्यत्, अंधः न विचेतत्। यः पुत्र कवि स ईम् आचिकेत, ( अपि च ) य ता. विजानात् सः पितु' पिता असत्।

१७ परेण अवः एना अवरेण परः वत्सं पदा बिभ्रति गौः उदस्थात्। सा कद्रीची, कं स्वित् अर्धम् परा अगात्, क स्वित् सूते, नहि यूथे अन्त।

१८ परेण, अव , एना अवरेण पर , य अस्य ( विश्वस्य ) पितरं अनुवेद ( एतादृशः ) कवीयमानः ( ऋपि ) इह प्र वोचम् देवम् मन' कुत. अधि प्रजातम्।

१९ ये अर्वाञ्च तान् उ पराच , आहु ये च पराञ्चः तान् उ अर्वाच आहुः। ( एवम् ) हे सोम, त्वम् इंद्रश्च या ( अद्भुतानि ) चक्रथुः तानि धुरा युक्ताः [ अश्वा ] न रजसः वहन्ति।

सुन्दर पंखके दो प्रेमी मित्र—जो बिलकुल एक मनके हैं--एकही वृक्षपर बैठे हुए थे। उनमेंसे एक उस वृक्षके मधुर फलका आस्वाद लेता है और दूसरा कुछभी न खाकर सब बातें अपने आखोंसे केवल देखता है। २०

वे सुन्दर पंखके पक्षी अपने ज्ञानसामर्थ्यसे अमरत्वका कुछ भाग उस स्थानपर सदा पहुंचाते हैं जहां ज्ञानस्वरूप परमेश्वरका निवास स्थान है। विश्वकी रक्षा करनेवाले परमात्माका कुछ अंश मुझमें–जो मैं बड़ा अज्ञानी हूं–भी उपस्थित है। २१

जिस वृक्षपर सुन्दर पंखवाले पक्षी मधुर फलोंको खाकर आराम लेते हैं और अण्डा डालते हैं उस वृक्षकी चोटीका फल बड़ा स्वादिष्ट होता है। किन्तु जगत्पिता ईश्वरका ज्ञान जिसको नहीं है उसको वह फल नहीं मिलता। २२

गायत्रसे गायत्री, त्रिष्टभसे त्रैष्टुभ और जागतसे जगती छन्द किस प्रकार उत्पन्न हुए कथा इस बातको कोई जानता है ?। इस बातको जाननेवालोंकोही अमरत्व प्राप्त होता है। २३

गायत्री छन्दसे अर्क छन्द उत्पन्न हुआ। अर्क छन्दसे साम छन्दकी रचना हुई। और कई त्रैष्टुभ छन्द मिलकर एक वाक उत्पन्न हुआ। दो अथवा चार चरणोंके वाकोंसे एक अनुवाक होता है ? अक्षरोंकी संख्या के हिसाबसे सात मुख्य वृत्त बनते हैं। २४

---

२० द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्षम् परिषस्वजाते। तयो अन्य स्वादु पिप्पलम् अत्ति अन्यश्च अनश्नत् अभि चाकशीति।

२१ यत्र सुपर्णा विदथा अमृतस्य भागम् अनिमेषम् अभिस्वरन्ति। अत्र [ मे शरीरे ] स इन विश्वस्य भुवनस्य धीर गोपा मा पाकम् आ विवेश।

२२ यस्मिन् वृक्षे मध्वद सुपर्णाः निविशन्ते सुवते च। तस्य इत् अग्रे पिप्पलम् स्वादु आहु. यः पितर न वेद ( स ] तत् न उत् नशत्।

२३ यद् गायत्रे अधि गायत्रम् आहितम् त्रैष्टुभात् वा त्रैष्टुभ निः अतक्षत। यद्वा जगत् जगति आहितम् य इत् तद्विदु ते अमृतत्वम् आनशु।

२४ गायत्रेण अर्कम् प्रति मिमीते अर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम। द्विपदा चतुष्पदा वाकेन [ अनु ] वाकम् अक्षरेण च सप्त वाणी मिमते।

जागत और साम वृत्तोंका सामर्थ्य इतना है कि आकाशमें आकाशगंगा धारण की जाती है। रथन्तर-सामनामका छन्द अथवा वृत्त गानेसे ( आकाशमें ) सूर्यका दर्शन होता है। गायत्री छन्दके तीन ज्वालाएं रहती है। इस लिये तेज और बड़ेपनमें वह (गायत्री) छन्द सबसे श्रेष्ठ है। २५

बहुत दूध देनेवाली धेनुको मैं अब पुकारता हूं जो चतुर होगा वही उस गौको दोह सकेगा। सबको प्रेरणा करनेवाला सविता देव सबसे उत्तम जीवनका हमें लाभ देवे। देखिये; सूर्यका प्रकाश कितना तेज है। इस लिये मुझे सूर्यके गुणोंकाभी वर्णन करना चाहिये। २६

देखिये वह गौ सब संसारकी स्वामिनी है। अपने बछडेके पास जानेके लिये वह जोरसे रांभती हुई उत्साहसे दौड़ती चली आती है। यह अवध्य धेनु अश्वी देवके लिये दूध देवे। हमें बडा सौभाग्य प्राप्त होनेके लिये उसकी उन्नति होवे। २७

आंख बन्द करके पकडे हुए बच्चेकी ओर वह धेनु उसका सीर चाटनेके लिये रांभती हुई चली जाती है। तदनन्तर वह धेनु बडी उत्सुकतासे अपने बच्चेका मुंह अपने थनके दूधकी ओर मोडती है। फिर वह धेनु धीरे धीरे रांभने लगती है। इतनेमें उसके थनमें दूध भर जाता है। २८

देखिये; यह वत्सभी रांभता है। उस वत्सकी ओर उस धेनुका ध्यान लगा हुआ है। वर्षा करनेवाले मेघकी तरह वह धेनु डकारती है। इस तरह ध्यान लगानेमें वह मनुष्यसेभी श्रेष्ठ है। किन्तु वह धेनु जब विजलीका रूप धारण करती है तब वह अपना सच्चा रूप प्रकट करती है। २९

---

२५ जगता दिवि सिन्धुम् अस्तभायत्। रथंतरे सूर्यम् परि अपश्यत्। गायत्रस्य समिध तिस्रः आहु ततः महा ( च ) महित्वा ( च ) प्ररिरिचे।

२६ एता सुदुघा धेनु उपव्हये उत सुहस्तः गोधुक् एनां दोहत्।सविता ( देवः ) श्रेष्ठं सवं नः साविषत, ( तस्य च ) धर्म अभीद्धः, तद् उ पु प्र वाचेम्।

२७ वसूनां वसुपत्नी हिंकुण्वती वत्सम् इच्छंती मनसा अभि आ आगात्। इयन् अघ्न्या अविभ्यां पय दुहाम्, सा महते सौभगाय वर्धताम्।

२८ गौ. वत्स निपन्त अनु अमीमेत्, मूर्धानं मातवै उ हिङ् अकृणोत्। ( ततः ) अस्य सुक्कम् धर्मम् सृक्काणम् अभि वावशाना, मायु मिमाते, पयोभि पयते।

२९ अय ( वत्सोपि ) येन गौ अभिवृता स शिंक्ते, ( सापि ) ध्वसनौ अधि श्रिता मायुं मिमाति। सा चित्तिभि. मर्त्यं ( अपि ) नि हि चकार, ( परं च विद्युत् भवन्ती वव्रिं प्रति औहत )।

श्वास लेनेवाली, चंचल और सजीव रीतिसे हिलनेवाली कोई वस्तु इस शरी रूपी झूलेमें दृढ रीतिसे गढी हुई है । जीवात्मा भी मृत पदार्थोंके सृष्टि नियमके अनुसार ही चलता है । मरनेवाला शरीर और अमर आत्मा दोनों एकही जगह स्थित है । ३०

शरीरको धारण करनेवाला जी सदा अपने नियमके अनुसार इस संसारमें आता है और फिर चला जाता है । मैं इस बातको देख चुका हूं । उस जीमें संयोग और वियोगका दोनों सामर्थ्य है । वह बारबार संसारमें लौट आता है । ३१

जिसने उस जीको उत्पन्न किया उसको वह नहीं जानता । क्योंकि जो हमेशा इस जीको देखता है वह छिपा हुआ रहता है । इसी कारणही मनुष्य प्राणी अपनी माताके पेटमें लिपटा हुआ रहता है और बाराबर जन्म लेकर दुःखसागरमें डुबा हुआ रहता है । ३२

द्यु मेरा पिता है । मुझे उत्पन्न करनेवाला वही है । और मेरे जीवनका आधार वही है । यह विशाल पृथ्वी मेरी माता है । मेरा नातेदार सब कुछ पृथिवी है । सब लोगोंका जन्मस्थान पेटके बीचमेंके पोले प्रदेश में ही है । उसी स्थानमें पिता अपनी कन्याका गर्भभी रखता है । ३३

अब मैं तुझे पूछता हूं कि ‘ पृथिवीकी अन्तिम सीमा कहा है ’ । जगत्का केन्द्र कहा है । सांड घोड़ेका शुक्र कौनसा है ? और वाक्-देवीका अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान कौनसा है ? ३४

---

३० अनत्, तुरगातु, जीवम्, एजत् ( एतादृशं वस्तु ) पस्त्यानाम् मध्ये ध्रुवम् आ शये । जीवः मृतस्य स्वधाभिः चरति अमर्त्यः मर्त्येन सयोनिः ।

३१ ( तनोः ) गोपाम् अनिपद्यमानम् पश्यामि. आ च परा च चरन्तम् अपश्यम् । स सध्रीची स विषूची भुवनेषु अन्त आवरीवर्ति ।

३२ य ( ईश्वर ) ईं चकार स ( जीवात्मा) अस्य न वेद । य ईं ददर्श ( स ) तस्मात् हिरुक् इत् । ( स ) मातुः योना अन्त परिवीत स बहुप्रजा निर्ऋतिम् आ विवेश ।

३३ अत्र द्यौ मे पिता जनिता नाभि. च, इयं मही ( पृथिवी ) मे माता बन्धुश्च ( भवति ) उत्तानयोः चम्वो अन्त ( जगत. ) योनि , अत्र पिता दुहितु गर्भम् आ अधात् ।

३४ त्वाम् पृथिव्या पर अन्त पृच्छामि, यत्र भुवनस्य नाभिः ( तत् ) पृच्छामि, वृष्ण अश्वस्य रेतः पृच्छामि, वाच परम व्योम च पृच्छामि ।

यह वेदी पृथिवीकी अन्तिम सीमा है। यह यज्ञ सर्व जगतका केन्द्र है। यह सोमरस ही सांड घोडेका शुक्र है। और यह 'ब्रम्ह' वाक्-देवीका श्रेष्ठ स्थान है। ३५(२०)

वे सात (सूर्य किरण)—जगत्का अपूर्ण गर्भ-बीजरूपसे रहते हैं। वे विष्णु की आज्ञाके अनुसार नियमपर चलते हैं। वे बुद्धिमान् हैं; और सब जगत्को व्याप्त करके रहते हैं। वे ध्यानसे सब वस्तुओंका विचार करते हैं। ३६

मैं यह नहीं जानता हूं कि सब कुछ मैं हूं। मैं मनसे बन्धा हुआ हूं। मेरा ध्यान ठिकानेपर नहीं है। मैं हमेशा सञ्चार करता हूं। किन्तु परम तत्वसे उत्पन्न हुआ चैतन्य जब मुझमें प्रकट हुआ तबसे (ईश्वरी) वाक्-देवीका अंश मुझे प्राप्त हुआ। ३७

इस आत्माका जीवन उसके हिलनेसेही विदित होता है। वह कभी पीछे हट जाता है और कभी आगे बढ़ता है। वह अमर होनेपरभी मरने वाले शरीरके साथ जन्म लेता है। वे दोनों (शरीर और आत्मा) आपसमें संलग्न होकर रहते हैं। किन्तु वे सब स्थानोंमें नानारूपसे घूमते हुए रहते हैं। किन्तु सब लोग केवल शरीरकोही देखते हैं और आत्माको नहीं देखते। ३८

जिसतरह देव स्वर्गके बड़े उच्चस्थानोंमें रहते हैं उसी तरह वेदोंकी ऋचाओंके प्रत्येक अक्षरमें देवोंका रहनेका स्थान है। जो मनुष्य ऋचाओंके अक्षरोंको नहीं जानता उसको वेद पढनेसे कुछभी लाभ नहीं है। जो ऋचाओंके अक्षरोंको जानते हैं वे वेदोंको पढनेसे आनन्दमें इकठे रहते हैं। ३९

---

३५ इय वेदि. पृथिव्याः पर. अन्त., अयं यज्ञः भुवनस्य नाभिः, अयं सोम. वृष्ण. अश्वस्य रेतः, अयं ब्रह्मा वाच. परमं व्योम।

३६ सप्त अर्धगर्भा. (ये) भुवनस्य रेत. (ते) विष्णोः प्रदिशा (स्व) विधर्मणि तिष्ठन्ति। ते विपश्चित' मनसा परिभुव. (सन्तः) विश्वत' (विश्व) धीतिभिः परि भवन्ति

३७ यदिव इद अस्मि (इति) न जानामि. (किंतु) निण्यः मनसा सन्नद्धः चरामि। यदा ऋतस्य प्रथमजाः मा आ अगन् आत् इत् अस्याः वाच. भाग अश्नुवे.

३८ स्वधया गभीत. अमर्त्य. मर्त्येन सयोनि. अपाङ् प्राङ् एति ता शश्वन्ता विषुचीना वियन्ता (सन्तौ) अन्य निचिक्युः, अन्यं न निचिक्यु.

३९ परमे व्योमन् (इव) यस्मिन् ऋचः अक्षरे अधि विश्वे देवाः निषेदुः। (तर्हि) यः तत् न वेद ऋचा किं करिष्यति ये इत् तत् विदुः ते इमे समासते

हे धेनु, तुझे खानेके लिये घांस चाहिये । वह तृण तुझे प्राप्त होवे और तुमारा भाग्य सदा बना रहे । तुमारे भाग्यके साथ हमभी भाग्यवान् हो जायेंगे । हे अवध्य धेनु, तूं हमारी ओर आ जाव । सदा यहां तृण खा कर जल पी जाव । ४० (२१)

जब यह सफेद तेजस्वी (मेघवाणी रूपी) धेनु जल उत्पन्न करती है तब रांभती है । उसके कभी एक कभी दो, कभी चार, कभी आठ और कभी नौ पैर होते हैं । उसके कभी कभी सहस्र अक्षर भी होते हैं और वह उच्च स्वर्ग लोकमें रहती है । ४१

उस (मेघरूपी) धेनुकेही कारण समुद्र सदा पानीसे पूर्णरूपसे भरा हुआ रहता है । और उसीके कारण पृथिवीके चारों ओरके प्रदेशोंमें सब लोग आनन्दमें जीन्दे रहते हैं । वहांसे ही अमृतकी वर्षा होती है और इस तरह सब विश्वकी रक्षा होती है । ४२

दूर अन्तरपर गोबरका धुआं मुझे दिखाई दिया । एकके पीछे एक ऊपर जानेवाले धुएंके बादल चारों ओर फैले हुवे थे । चित्र विचित्र रंगके बैलको वहां पराक्रमी पुरुष पकाते थे । उसीको पुराणे कालका पहिला धर्म कहते थे । ४३

तीन देव-जिनकी जटाएं दूर तक बढी हुई हैं—अपने अपने समयपर पृथिवीपर आते हैं । उनमेंसे एक हर साल सबस्थानोंको स्वच्छ करता है । उनमेंसे दूसरा अपने सामर्थ्यसे सब विश्वपर देखभाल करता है । उनमेंसे केवल तीसरेको हम प्रत्यक्ष रूपसे जान सकते हैं । उसकी चाल मालूम होती है; किन्तु वह दिखाई नहीं देता । ४४

---

४० सुयवसाद् भगवती हि भूया, अथ वयम् भगवन्तः स्याम, हे अघ्न्ये विश्वदानीम् तृणम् अद्धि, आचरन्ती च शुद्धम् उदकम् पिब ।

४१ (इयम्) गौरी सलिलानि तक्षती मिमाय, सा (च) एकपदी, द्विपदी, चतुष्पदी, (भवति) [illegible] अष्टापदी नवपदी सहस्राक्षरा भूत्वा परमे व्योमन् (वर्तते)

४२ तस्याः समुद्राः अधि वि क्षरन्ति, तेन च चतस्रः प्रदिशः जीवन्ति । ततः अक्षरम् क्षरति, तत् विश्वम् उपजीवति ।

४३ शकमयम् धूमम् आरात् अपश्यम्, एना अवरेण विषूवता (भवेन) परः, वीराः पृश्निम् उक्षाणम् अपचन्त, (ते) तानि धर्माणि प्रथमानि आसन् ।

४४ त्रयः केशिनः ऋतुथा विचक्षते, (एषु त्रिषु) संवत्सरे एकः वपते । एकः विश्वम् शचीभिः अभिचष्टे एकस्य ध्राजिः दृश्यते न (तु) रूपम् ।

चार प्रकारकी वाक् देवी समझी जाती है । जो ज्ञानवान् ब्राह्मण है वे ही केवल वाक्-देवीके चारों प्रकारोंको समझ सकते हैं । उनमेंसे पहले तीन प्रकार गुप्त रहते हैं । वे समझमें नहीं आते । जिसको मनुष्य बोलते हैं वह वाक्-देवीका चौथा प्रकार है । ४५

उस ( ईश्वरको ) ही इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं । देवलोकमें रहनेवाला और सुन्दर पंखवाला वही है । सचमच वह अकेलाही है । तबभी ज्ञानी लोक उसको बहुत प्रकारके नामोंसे पुकारते हैं। उसीको अग्नि, यम अथवा मातरीश्वाभी कहते हैं । ४६ ( २२)

आकाशमें जानेका जो एक काले रंगका मार्ग है उस मार्गसे सुवर्ण रंगके सुन्दर पक्षी जलरूप वस्त्र पहिनकर आकाशमे उडते हैं । जब वे अपने निवासस्थानसे लोट आते हैं तब पृथिवी घीकी वर्षासे बिलकुल गीली हो जाती है । ४७

चक्र एक ही होता है । किन्तु उसके बारा डण्डे होते हैं। उसके तीन नाह होते हैं । वे किस प्रकार होते हैं यह बात किसीको विदित नहीं है । उस चक्रके तीन सौ सांठ डण्डे होते हैं । वह चक्र शङ्कु की तरह बड़े जोरसे घूमता रहता है । ४८

हे सरस्वति, आपका थन अक्षय, और कल्याण करनेवाला है । उस थनके द्वाराही मनोहर·वस्तुओंकी सुन्दरता बढ़ती है । आपका थन रत्नोंका भण्डार है । आपका थन बडी उदारतासे सबोंकी इच्छा पूरी करता है । इसलिये आपके थनका दूध हमें पिलाइये । ४९

---

४५ वाक् पदानि चत्वारि परिमिता, ये ब्राह्मणा. मनीषिण ( ते ) तानि विदु । त्रीणि ( पदानि ) गुहा निहिता न ईंगयन्ति, वाच तुरीयं ( पद ) मनुष्या वदन्ति ।

४६ ( परमेश्वरम् ) इद्र, मित्र, वरुणं, अग्निम् आहुः, अथो स ( एव ) दिव्य सुवर्ण गरुत्मान् । एकम् सत् विप्रा. बहुधा वदन्ति, अग्निम् यम् मातरिश्वानम् आहु. ।

४७ हरय सुपर्णा अप. वसानाः कृष्णं नियानं ( तिर ) दिवम् उत्पतन्ति । ( यदा ) ते ऋतस्य सदनात् आ अववृत्रन्, आदित् पृथिवी घृतेन वि उद्यते ।

४८ चक्रम् एकम्, द्वादश प्रधय , त्रीणी नभ्यानि क उ तत् चिकेत । तस्मिन् ( चक्रे ) निशताः साक पष्टि ( अरा ) शंकव न, चलाचलास ( शकव ) न अर्पिता. ।

४९ हे सरस्वति, ते स्तन य शशय मयोभूः च येन ( त्व ) विश्वा वार्याणि पुष्यासि, यश्च रत्नधा. य. वसुवित् , य सुदत्र तम् ( स्तन ) २० धातवे क ।

देवोंने यज्ञपुरुषके द्वाराही यज्ञ किया । यदि सच पूछा जाय तो यही सबसे पुराना और पहिला धर्म है । तदनन्तर जहां पुराने और श्रेष्ठ साध्यदेव रहते थे उस स्वर्गलोकमें वे ( यज्ञ करनेवाले ) देव बनकर रहने लगे । ५०

उदक सब स्थानोंमें एकही प्रकारका होता है । वह उदक भाफके रूपसे ऊपर चला जाता है और पुनः वर्षाके रूपसे नीचे गिरता है । इस प्रकार जलकी वर्षा पृथिवीको हरियाली बनाता है । और यज्ञके अग्निसे आकाश तेजोमय दिखाई देता है । ५१

द्युलोकमें रहनेवाला सरस्वान् देव बड़ा वेगवान् और ( बलवान् पक्षी है वही देव उदक का और ) वनस्पतियोंका सुन्दर बच्चा है । जलकी वर्षा करके वह सब लोगोंको बड़ा आनन्द दिलाकर उनको सहज रीतिसे प्रसन्न करता है । वह हम पर कृपा करें और इसलिये मैं उससे प्रार्थना करता हूं । ५२(२३).

## अनुवाक २३

### सूक्त १६५

॥ ऋषि—आगस्त्य । देवता—मरुत ॥

समान बलके और एकही स्थानमें रहनेवाले सब मरुत् देवोंकी कान्ति सुन्दर होनेके कारण वे बड़े शोभायमान् दिखाई देते हैं । वे कहांसे और किस उद्देशसे आये होंगे ? कुछभी हो। वे हमारे शूर मित्र हैं । उन( से लाभ होनेके लिये हम उन) के सामर्थ्यकी प्रशंसा करते हैं । और बड़े जोरसे उनकी स्तुति हम गाते हैं । १

---

५० देवा यज्ञेन यज्ञं अयजन्त, तानि धर्माणि प्रथमानि आसन । देवा ते ह देवा महिमान. नाकं सचते [illegible] सन्ति, ।

५१ उदकम् ( सत् ) अहोभि उत् च अवच एति तत समानम् । पर्जन्या भूमिं जिन्वन्ति, (तथाच ) [illegible] न, जिन्वन्ति

[illegible] दिव्यम् [illegible], बृहन्तम् , अपाम् गर्भम्, ओषधीनाम दर्शतम् । अभीपत [illegible] ( जगत ) तर्पयन्त [illegible] ) [illegible] सरस्वन्तम् अवसे जोहवीमि ।

१ ( [illegible] एते ) सवयस सनीळा मरुत कया शुभा समान्या ( कान्त्या ) स मिमिक्षु । कया मती, [illegible] एता स , एते ( न ) वृषणा वसूया ( एतान् ) शुष्म अर्चन्ति ।

हे जवान मरुत्, इस समय आप कौनसे भक्तोंकी स्तुतिरसका आस्वाद ले रहे हैं। यज्ञमें मरुत् देवोंको कौनसा भक्त ले गया होगा ?। वह भक्तिको कौनसी श्रेष्ठ रीति है जिससे श्येन पक्षको तरह आकाशमें उडनेवाले मरुत्–देवोंको हम प्रसन्न करेंगे। २

हे इन्द्र, आप बड़े श्रेष्ठ हैं। सज्जन लोगोंकी रक्षा करनेवाले आपही हैं। आप अकेले क्यों चले जाते हैं ? सचमुच आप अपने मनमें किस वातका विचार कर रहे हैं ? जव आप अपने विजयी लोगोंके साथ चलते हैं तव आप हमारा स्वास्थ्य पूछते हैं। हरित् रंगके अश्वोंका पालन करनेवाले इन्द्र, आप हमें कहिये कि आप हमारे विषयमें क्या सोचते हैं। ३

स्तोत्रोंका गाना और भक्तिसे प्रार्थना भी मेरे लिये की जाती है। सोमरससे मुझे ही आनन्द होता है। जव मैं अपना वज्र फेंक देता हूं तव वह शत्रुका नाश करता है। भक्त लोग मुझसे सदा प्रार्थना करते हैं। साम गाना मैं पसन्द करता हूं। इसी लिये मेरे अश्व मुझे गानेके स्थानकी ओर ले जाते हैं। ४

हम इसी लिये पराक्रम करते हैं कि हमें सदा विजय प्राप्त होवे और हमारी शोभा बढे। वे अश्व अपनी इच्छासे निजको जोतते हैं और तैयार होते हैं। हे इन्द्र, हमारी इस रीतिको आप अच्छी तरह जानते ही हैं। ५(२४).

---

२ युवान· ( मरुत ) कस्य ब्रह्माणि जुजुषु, मरुत· कः अध्वरे आ ववर्त। श्येनान् इव अतरिक्षे ध्रजतः मरुत. केन महा मनसा रीरमाम।

३ हे इंन्द्र हे सत्पते त्वं माहिन सन् एकः कुतः यासि ? ते ( मनसि ) किं इत्था ? शुभानैः समराण· ( नः ) सं पृच्छसे ( तद् ) हे हरिवः यत् ते ( मनसि ) अस्मे ( वर्तते ) तत् न वोचे।

४ ( इमानि ) ब्रह्माणि, मतयश्च मे ( भवन्ति, ) सुतासः च ( मम ) शं ( भवन्ति )। मे शुष्मः अद्रिः प्रभृत सन् ( अरातीन् ) इयन्ति ( अपिच भक्तास्तु ) उक्था हि ( मा एव ) आ शासते, प्रति हर्यान्ति इमा नः हरी ता अच्छ वहत·

५ अत वयमपि अतमेभि स्वक्षत्रेभि तन्वः शुंभमाना, महोभि, ( प्रभावैरेव ) एतान् उपयुज्जयहे, हे इन्द्र, त्वं हि ( एना ) न स्वधा अनुमभूष

हे मरुत् देव, अही राक्षसका वध करनेके लिये तुमने मुझसे प्रार्थना की। उस समय तुमारा सामर्थ्य कहां चला गया था ? मैं सचमुच धैर्यवान् हूं और पराक्रमी हूं। इसी लिये हमने अपने भयंकर शस्त्रोंसे जगत्के शत्रुओंका नाश किया। ६

हे पराक्रमी पुरुष, आपने अपने सामर्थ्यसे बड़े बड़े काम किये। आपके पराक्रम सचमुच आपके प्रत्यक्ष अतुल मित्र ही हैं। हे पराक्रमी इन्द्र, अब हमें हमारे सामर्थ्यसे और पराक्रमसे हम चाहे सो काम करने दीजिये। ७

हे मरुत् देव, क्रोधमें आकर बड़े पराक्रमसे हमने वृत्रको मार डाला। हमने मनुके लिये सब विश्वको आनन्द देनेवाले मेघोदकोंको अपने वज्रसे सहज रीतीसे मुक्त किया। ८

हे उदारशील इन्द्र, आपके सामने किसीके बलका कुछ नहीं चलता। देवोंमें आपके सदृश ज्ञानी दूसरा कोईभी नहीं। हे बलवान् इन्द्र, जिन कामोंको करनेका आपने पण कियाथा उनको अब कीजिये। ९

---

६ हे मरुतः [illegible] आसीत् यत् माम् एकमेव अहिहत्ये समधत्त। अहं हि उग्रः, तविषः तुविष्मान् ( अतएव ) विश्वस्य शत्रोः ( शत्रुगणम् ) वधस्नैः अनमम्

[illegible] ( [illegible] ) [illegible] समानेभिः युज्येभिः भूरि चकर्थ। ( तर्हि ) [illegible] ) मरुतः [illegible], [illegible] ( तानि ) [illegible] ( वीर्याणि ) कृणवाम।

[illegible] विश्वचन्द्राः सुगाः अपः अहम् [illegible] ) [illegible] ( [illegible] ) [illegible]।

[illegible] हे [illegible] ( [illegible] ) देवता, हे प्रवृद्ध न [illegible] ( [illegible] ) [illegible] ( [illegible] ) [illegible] ( [illegible] ) कृणवाम।

यह कहना योग्य होगा कि विश्वको व्याप्त करनेवाला सामर्थ्य ( अकेलेमें ) मुझमें है । क्यों कि जो काम करनेका मैं निश्चय करता हूं वह काम मैं करके दिखलाता हूं । हे मरुत् देव, मैं भयंकर हूं । मैं ज्ञानी हूं; इस लिये इन्द्रने जो जो वस्तुएं उत्पन्न की हैं उन सब वस्तुओंका मैं स्वामी हूं। १० (२५)

हे पराक्रमी मरुत् देव, आपने जो अभी मेरी स्तुति की और जो मनोहर स्तोत्र आपने गाया उससे मैं आनन्दित हुआ हूं। क्यों कि वीर्यवान् और अत्यन्त पूज्य इन्द्रके लिये—जो तुमारा बड़ा मित्र है और जो तुमारा प्रत्यक्ष प्राण और आत्मा है आपने बड़े प्रेमसे और भक्तिसे एक स्तोत्र गाया है। ११

निष्कलंक, कीर्तिमान् और सामर्थ्यवान् आप प्रत्यक्ष रूपसे मेरे सामने आप खडे हैं । हे मनोहर कान्तिके मरुत्–देव, बड़े ध्यानके द्वारा आपने मुझे प्रसन्न किया है; और अबभी वैसाही मुझे प्रसन्न कीजिये। १२

हे मरुत् देव, इस जगतमें सचमुच आपके गुणोंका वर्णन किसने किया है ? हे मित्र, हम आपके मित्र हैं; इस लिये आप हमारी ओर आइये । आपकी कान्ति अद्भुत है। हे मरुत्–देव, सुन्दर स्तुति करनेकी प्रेरणा हमें उत्पन्न कीजिये। सत्यधर्मके अनुसार हम आपकी उपासना करते हैं। इस लिये आप हमारी ओर ध्यान दीजिये। १३

---

१० हे ( मरुत ) विभु ओज· एकस्य मे चित् अस्तु ( यत ) या नु मनीषा दधृष्वान् ( तानि ) कृणवै हे मरुत उग्र, विदान· अहं- इंद्र इत्--यानि च्यवम्, एषाम् ईशे हि ।

११ हे मरुत अत्र ( व ) स्तोम. माम् अमन्दत् ( अपिच ) हे नर, यत् श्रुत्यं ब्रह्म मे ( यूयं ) चक्र सुमखाय, वृष्णे, इन्द्राय सख्ये तन्वे मद्य, यूय मे सखाय तनूभि ( चक्रुढे ) ।

१२ अनय च, श्रव· इषञ आ दधाना एते ( यूय ) मा प्रति रोचमाना· एवेत् । हे मरुतः ( यथा यूयं ) चंद्रवर्णा· ( पूर्वं ) संचक्ष्य मे अच्छान्त. ( तथा ) नूनम् अपि छदयर्थ ।

१३ हे मरुत व अत्र क वु ममहे, हे सखाय, सखीन् ( अस्मान् ) अच्छ प्र यातन । हे चित्राः ( यूयं ) मन्मानि आपिवातयन्त एषाम् में ऋतानाम् ( उपासनानाम् ) नवदा भूत ।

जिस तरह विद्वान् कवि एक भक्तके पाससे दूसरे भक्तकी ओर जाता है उसी तरह सज्जन लोगोंकी बुद्धिके सामर्थ्यसे हम तुझे ( मरुत- अपनी ओर ले आये। हे मरुत् देव, ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा कर भक्तलोगोंकी ओर आप अपना ध्यान पहुंचाइये ; स्तोत्रोंको गा भक्तोंने आपके लिये स्तोत्र गाया है । १४(२६)

हे मरुत्–देव, तुमारे माननीय मित्र मान्दार्यने यह स्तोत्र और यह प्र तुमारे लिये की। इस लिये हमें उत्साह और बल दीजिये। हमारी इच्छा करनेवाला आपका सामर्थ्य ही हमारे जीवनका आधार है।

॥ तृतीय अध्याय समाप्त ॥



---

१४( हे मरुत. ) यत् आ दुवस्यात् दुवसे कारुः न, ( मान्यस्य ) मेधः ( वः ) अस्मान् च मरुत, इम विप्रन् अच्छा ओषु वर्त, इमा वह्माणि जरिता वः अर्चत्।

१५ हे मरुत्, एष स्तोम , इयं गी च, मान्यस्य कारोः मान्दार्यस्य वः ( अधिकृत्य प्रार्पिता ( अतः ) तन्वे इषा आ यासीष्ट, ( वयं ) वयाम् च विद्याम, जीरदानु वृजनम् च ( भुजीमहि )

# अध्याय ४.

## सूक्त १६६.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–मरुत ॥

सब लोगोंकी इच्छा पूरी करनेवाले और पराक्रमी इन्द्रकी, मानो, हे मरुत्देव, आप ध्वजाही हैं। आप बड़े जोरसे प्रकट होते है। हे मरुत्गण, आपने प्राचीनकालमे जो पराक्रम किये हैं उसके लिये आपकी स्तुति करना हमारा कामही है। हे मरुत्गण, सिंहनाद करनेवाले आप बड़े पराक्रमी वीर है। एक हाथमे मशाल और दूसरे हाथमे तलवार लेकर इस लोकमे आते समय, मार्गमे आप अपना पराक्रम दिखाते चले आते है। १

जिस तरह पिता अपने लडकोंको मिठाई खिलाता हैं उसी तरह–लीला करनेवाले और देदीप्यमान् मरुत्देव, अपने भक्तोपर प्रेमका दान अर्पण करते है। आप यज्ञमण्डपमे आकर वडे आनन्दसे खेल करते है। हे रुद्ररूप धारणकरनेवाले मरुत्देव, जो भक्त आपके सामने वड़ी नम्रतासे सिर झुकाते है उनपर आप वड़ी कृपा करते है। निजके बलपर निर्भर रहनेवाले मरुत्देव, हवि अर्पण करनेवाल भक्तोका कभी नाश नही करते। २

भक्तोंकी रक्षा करनेवाले अमर मरुत्देव, हविर्भाग अर्पण करनेवाले भक्तोको हमेशा दिव्य ऐश्वर्य अर्पण करते है। भक्तोंका कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले मरुत्देव, अपने भक्तोंकी उन्नति करनेके लिये अन्तरिक्षके विस्तीर्ण प्रदेश वृष्टिसे गीले करते है। ३

हे मरुत्देवगण, आपके अश्व स्वयं रथको जोत लेते है। जब आपके अश्व दौड़ते चले जाते है तब वे अपने वेगसे सब रजो लोकको व्याप्त करते है और उसको हिलाते है। जब मरुत्देवगण बाहर निकलते है तब सब मनुष्य डरके मारे घबराने लगते है। और जब वे अपने हाथमे भाला लेतें हैं तब आपकी सवारीकी शोभा कुछ अपुर्व दिखाई देती है। ४

---

१ रभसाय जन्मने वृषभस्य ( इन्द्रस्य ) केतवे ( मरुद्गणाय ) तत ( तेषां ) पूर्वं महित्व वोचाम नु । हे तुविष्वण शक्रा मरुतः यामन्, ( पाणौ स्थितेन ) एधेन युधवच तविषाणि कर्तन

२ नित्य सूनु न ( भक्तजन ) मधु उपविभ्रत ( एते ) घृष्वयः क्रीळाश्च ( मरुतः ) विदथेषु क्रीळन्ति । रुद्रा. नमस्विन अवसा नक्षन्ति, स्वतवस हविष्कृतम् न मर्धन्ति ।

३ ( एते ) ऊमास अमृता हविषा ददाशुषे यस्मै ( भक्ताय ) राय पोष च अरासत, अस्मै मयोभुवः मरुत हिता इव पुरुरजासि पयसा उक्षन्ति ।

४ ( मरुत ) ये ( एते ) व एवास स्वयतास ( ते यदा सन्तु ) प्र अध्रजन् तविषीभि रजासि आ अव्यात । ( युष्माक निर्गमने ) विश्वा भुवनानि हर्म्यां च भयन्ते ( परञ्च ) प्रयतासु ऋष्टिषु व. याम चित्र' ( खलु ) ।

वेगसे चलनेवाले भयंकर मरुत्‌देवगण जब गर्जना करते हैं तब पहाडके गुफाओंमेंसे प्रतिध्वनि निकलने लगता है और आकाशका विस्तीर्ण और गोल प्रदेश हिलने लगता है। हे मरुत्-देवगण, जब आपआपने मार्गसे चलते हैं तब डरसे बड़े बड़े वृक्ष उखड जाते हैं और छोटे छोटे वृक्ष भी रथके चक्रकी तरह वेगसे घूमते हुए दिखाई देते हैं। वे भी बहुत दूरतक फेंक दिये जाते हैं। ५ (१)

हे भयंकर मरुत्-देवगण, आपकी सेनाको कोई भी किसी तरह रोक नहीं सकता। आप हमपर कृपा कीजिये और हमारे मनोरथ सफल कीजिये। जिस तरह भयंकर शस्त्रअस्त्रोंसे पशुओंका नाश होता है उसी तरह भयंकर दांतवाली बिजलीसे भी दुष्ट लोगोंका नाश होता है। ६

जब मरुत्‌देव कृपा करते हैं तब वह हमेशा बनी रहती है। आपकी कृपासे सबको लाभ होता है, किन्तु आपका विद्युत् अस्त्र बहुतही भयंकर है। मरुत्‌देवोंकी स्तुति हमेशा यज्ञ-मन्दिरमें चलती है। आनन्ददेनेवाले सोमरसको पीनेके लिये मरुत्-देव गर्जना करते हुए आते हैं। प्राचीनकालमें इन्द्रने जो पराक्रम किये उनको मरुत्-देव अच्छी तरह जानते हैं। ७

हे मरुत्-देव, जिस तरह चारों ओर घिरे हुए दीवारोंसे शहरकी रक्षा की जाती है उसी तरह जिन भक्तोंपर आप प्रसन्न होते हैं उनकी पातकोंसे और दुष्टलोगोंकी गालीयोंसे आप रक्षा करते हैं। हे भयंकर और पराक्रमी मरुत्-देव, आप बहुत बड़े हैं। हे मरुत्-देव, जिन भक्तोंपर आप कृपा करते हैं उनकी कुटुम्ब-पोषणके कारण उत्पन्न हुई जननिन्दासे आप रक्षा करते हैं। ८

हे मरुत्-देव, आपके रथपर स्थान मिलनेके लिये प्रत्यक्ष कल्याण और बल मानों आपसमें झगड़ रहे हैं। आपके रथपर प्रत्यक्ष कल्याण और बल खिचाखिच भर रहे हैं। जब आप शत्रुओंपर चढाई करनेके लिये चलते हैं तब आपके कन्धपर चक्र आदि शस्त्र-अस्त्र अलंकारकी तरह लटके हुए दिखाई देते हैं। आपके रथकी धुरा इस तरह चलाता है कि रथके सब चक्र एकदम वेगसे घूमते हुए दिखाई देते हैं। ९

---

५ यत् त्वेषयामाः ( मरुत स्वनि स्वनेन ) पर्वतान् नदयन्त, दिवः वा पृष्ठं अचुच्युवुः, ( तदा ) मरुत ) व [illegible] विश्व वनस्पतिः [illegible], ओषधिश्च रथयन्तीव प्र जिहीते।

६ उग्रा मरुत, अरिष्टग्रामा यूयं सुचेतुना न सुमतिम् पिपर्तन, ( पश्यन् ) यत्र व दिद्युत् ( विद्युत् ) [illegible] नी [illegible] दद्वा पश्वः इव, ( अपायून् ) नि रिणाति।

७ [illegible] हि ) [illegible], अनवभ्रराधस, अलातृणास ( मरुत ) विदथेषु सुष्टुत । मदिरस्य ( सोम- [illegible] अर्चन्ति, ( यत ) वीरस्य ( इन्द्रस्य ) प्रथमानि पौंस्या विदुः ।

८ [illegible] ( [illegible] ) आवत, तम् [illegible] पूर्भि ( इव ) अभिह्रुताद् [illegible] [illegible] [illegible] निरवित्तात् [illegible] पाथन (तमपि) तनयस्य पुष्टिषु (उत्थिताद्) शसात् ( रक्षत )।

९ [illegible] रथेषु विश्वानि भद्रा तविषाणिच मिथस्पृध्येव आहिता । व. प्रपथेषु ( व ) [illegible] [illegible] दत्र, उ दत्र ( दोधवन्ते ), न ( रथस्य ) अक्ष चक्रा समया नि वावृते ।

हे मरुत्-देव, मान्यवर मान्दार्यने आपका स्तोत्र गाया है। उसीने आपसे प्रार्थना की है। इसी लिये आनन्द देनेवाला सामर्थ्य आप हमारी ओर ले आइये। उस सामर्थ्यके कारणही हमारी इच्छा सफल होगी और उसीके कारणही हमारा मन स्थिर होगा। १५ (३)

## सूक्त १६७.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–मरुत् ॥

हे हरिदश्व, इन्द्र, आपके सहस्र प्रसाद, आपकी आनन्द देनेवाली और स्तुति करने योग्य सहस्र प्रेरणा, आपकी सहस्र ( दिव्य ) सम्पत्ति और आपकी असीम पवित्र शक्ति हमे आनन्दमे मग्न करनेके लिये हमारी ओर आवे। १

आश्चर्य-कारक मरुत् अपने उत्तम और दीप्तिमान् प्रसादोके साथ हमारी ओर आवे ( यह काम करना आपके लिये कठिन नही है )। क्योंकि आपके नियुत् नामके सुन्दर अश्व दौड़ते दौडते समुद्रके पार चले जा सकते है। २

एक सुन्दर स्त्री मरुत्-देवोके साथ हमेशा रहती है। मक्खनकी तरह उस स्त्रीका शरीर बहुत कोमल है। सुवर्णकी तरह उसकी कान्ति तेजस्वी है। और उसके शरीरका ढङ्ग बहुत ही मनोहर है। जिस तरह मरुत्-देवोका भाला उनसे अलग् नही होता उसी तरह वह स्त्री भी उससे कभी अलग नही होती। अन्त.पुरमे रहनेवाली स्त्रीकी तरह वह स्त्री कभी कभी गुप्त रहती है। और कभी कभी वह स्त्री सभामे आनेवाली स्त्रीकी तरह और यज्ञके समय ( मेघगर्जनारूप ) देवस्तुतिरूप स्त्रीकी तरह प्रत्यक्ष रूपसे सबको दिखाई देती है। ३

शुभ्र-कान्तिमान् और कभी न थकनेवाले मरुत्-देवोने उस युवा स्त्रीको अपने पास लिया इससे यह विदित होता है कि सब मरुत्-देव उस युवा स्त्रीपर बहुत प्रेम करते है। मरुत्-देव बडे उग्र है, किन्तु वे रोदसी स्त्रीका कभी त्याग नही करते। विद्युत्-रूप रोदसी स्त्री मरुत्-देवोका आनन्द बढाती है। इस लिये वे भी प्रेमसे उस स्त्रीका स्वीकार करते है। ४

---

१५ हे मरुत एष व स्तोम इयच गी मान्यस्य कारो मान्दार्यस्य। इषा आ यासीष्ट तन्वे, वयाम इषम् वृजनम् जीरदानुम् ।

१ हे हरिव इन्द्र, ते सहस्रं ऊतय सहस्र गूर्ततमा इष सहस्र रायः, (अपिच) सहस्राणि वाज नः मादयध्वै न उप यन्तु ।

२ नुन वा मरुत स्वेष्टेभि वृहद्दिवै वा अवोभि नः अच्छ आ यान्तु । अध यत् एषा परमाः नियुतः समुद्रस्य पारे चित धनयन्त ।

३ घृताची, हिरण्य निर्णिक्, सुधिता ( एतादृशी का चित् योषा ) येषु ( मरुत्सु ) मिम्यक्ष, उपरा न ऋष्टि । ( सापि कदाचित् ) गुहा चरन्ती मनुष योषा न ( निगूढा, कदाचित् च ) विदथ्या वाक् इव सभावती न ( दृश्यते ) ।

४ शुभ्रा अयास मरुत ( तया ) युवा परामिमिक्षु साधारण्या ( स्त्रीया ) इव, । घोरा ( अपि ते ) रोदसी न अपनुदन्त ( किन्तु ) देवा ( ते ता ) वृध सख्याय जुषन्त ।

मरुत्‌देवोंके बाहु बड़े पराक्रमी और यश प्राप्त करनेवाले हैं। आपकी छाती अलंकारोंसे शोभायमान दिखाई देती है। आपके गलेमें सफेद माला दिखाई देती है। आपका हथियार बडा तेज है। इस तरह सजे हुए जब आप चलते हैं तब आपआपनी दिव्य कान्ति जिस तरह पक्षी अपने पंख फैलता है उसी तरह सबदूर फैलते है। १० (२)

जिस तरह नक्षत्रोंके कारण द्युलोक सब दूर प्रकाशमान दिखाई देता है उसी तरह बड़े पराक्रमी मरुत्‌देव भी अपने ऐश्वर्य और सामर्थ्यके कारण सबदूर प्रकाशमान दिखाई देते हैं। मरुत्‌देव बडा आनन्द देनेवाले हैं। आप बडी मीठी बात करनेवाले हैं। आप अच्छी तरह गाते हैं। आप हमेशा इन्द्रका साथ रखते हैं। सब लोग मानो, आपको स्तुतियोंसे चारों ओरसे घेर लेते हैं। ११

हे अमर मरुत्‌देव, आपका प्रेम बिलकुल सच्चा है। अपने भक्तोंपर आपकी कृपा भविष्यत् युगमें भी सदाके लिये बनी रहती है। मनुष्य जातिका कल्याण करनेकी आपकी इच्छा है। इस लिये हम आपसे प्रार्थना करते हैं। आप बड़े शूर हैं और आपअपने पराक्रमके कारण बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। १२

हे मरुत्‌देव, आप केवल पवित्रस्थानमेंही प्रकट होते हैं। आपका तेज बहुत बडा है। जिस तरह अदितिका अधिकार बहुत बडा है उसी तरह आपका दान भी असीम है। जिस पुण्यवान् पुरुषपर आप कृपा करते हैं उस पुरुषका इन्द्र भी तिरस्कार नहीं करता है। १३

हे वेगवान मरुत्‌देव, आपने दिये हुए दिव्य और असीम ऐश्वर्यके कारण हमारी हमेशा उन्नति होवे। जिस स्थानमें हमारे लोग रहते हैं उसी स्थानमें उनकी सन्ततिकी वृद्धि होवे। उसी लिये हम यज्ञ करते हैं और उसीके कारण हमारा उद्देश्य पुरा होवे। १४

---

१० वःबाहुषु भूरीणि भद्रा, वक्षःसु रुक्मास अधय दधमा, अंसेषु एताः, पविषु अधि क्षुरा, ( एव अन्तः ) पक्षान् न [illegible] श्रियः वि अनु धिरे।

११ [illegible] महान्त, विभ्व, विभूतय ये ( एते ) मरुत स्तृभि दिव्या. ( लोका. ) इव दूरेदृश। ( ते ) [illegible] आसनि स्वरितार, इन्द्र सनिस्ला ( त ) परिष्टुभ. च ( सन्ति )।

[illegible] मरुत, व तत् महित्वनम् ( भवति यत् ) अदिते व्रतमिव व. दात्रम् सुदीर्घम् [illegible] जनाय अराव्णम्, तत् ( व दात्रम् ) इन्द्र चन त्यजसा वि [illegible]ाति।

[illegible] मरुत, तत् व [illegible]त्वम् यत् शमम् आवत ( तत ) परे युगे ( अपि ) पुरु, [illegible] [illegible], न ( मरुत ) दमने साकं आचिकित्रिरे।

[illegible] मरुत येन युष्माकं परीणसा ( तया ) दीर्घं शशवाम। यत् ( अस्मा[illegible] ) जनास [illegible] ) [illegible] तन, एभिर्यौनिः ( न ) इष्टि जनि अश्याम्।

विद्युत्‌रूप रोदसी स्त्रीका रूप बहुत दिव्य है; उसके बाल बडे सुन्दर है। मरुत्-देवोंके साथ हमेशा रहनेके लिये रोदसी स्त्रीने उनको पसन्द किया। जिस तरह सूर्यका तेज उनके रथके पास चला जाता है उसी तरह वह तेजोमय विद्युत्-रूपी रोदसी स्त्री मरुत्-देवोंके रथके पास चली जाती है। ५ (४)

जवान् मरुत्-देवोने आनन्द देनेवाली और यज्ञ सभामे गम्भीरतासे इधर उधर चलनेवाली युवा रोदसी स्त्रीका अपने रथमे बिठा लिया। उस समय, हे मरुत्-देव, आपकी स्तुति करनेवाले भक्त लोगोने आपको हवि और सोम अर्पण किया आपकी स्तुतिकी और आपका स्तोत्र गाया। इस तरह उन्होने आपकी सेवा की। ६

मरुत्-देवोका एक बड़ा विशेष गुण (महिमा) है। वह गुण वर्णन करने योग्य और सच भी है। मरुत्-देवोकी घमण्डी और विश्वास-करने योग्य रोदसी-स्त्री जल-वृष्टिरूप भाग्यशाली स्त्रियोको भी अपने साथ ले आती है। ७

यह भी आपहीका महिमा है कि मित्र, वरुण और अर्यमा भी आपके भक्तोका पापोसे रक्षा करते है। वे दुष्टलोगोको ढूंढकर निकालते है और उनका नाश करते है। जो लोग पूर्ण रीतीसे अचल है वे भी चल होंगे किन्तु जो दान देनेवाले भक्त है उनकी उन्नति अवश्यही होगी। ८

हे मरुत्-देव, किसी मनुष्यको आपका पता नहीं लगा—चाहे वह मनुष्य पुराने कालका हो अथवा आज कालका हो। जब मरुत्-देव क्रुद्ध होते हैं तब वे समुद्रको तरह दुष्टलोगोको घेर लेते है और उनको डुबाते है। ९

---

५ यद् असुर्या, विषितस्तुका नृमणा (एतादृशी) रोदसी (मरुतः) सचध्यै ईम् जोषत्, (तदा) सूर्या इव नभस इत्या, (सा) त्वेषप्रतीका (रोदसी) विधतः (मरुद्गणस्य) रथम् आ अगात्।

६ (ते) युवान (ता) शुभे निमिश्लां, विदथेषु पज्राम् युवतिम् (स्वे रथे) आ अस्थापयन्त, यद् हे मरुत व हविष्मान् सुतसोम दुवस्यन् (च) अर्क (व) गाथ गायत्।

७ एषा मरुता यो महिमा वक्म्य सत्य (च स.) अस्ति, तम् प्र ववक्मि। यद् ईम् अहंयु (चापि) स्थिरा वृषमणा (रोदसी) सुभगा चित् जनी वहते।

८ मित्रावरुणौ अवद्यात् पाति, अप्रशस्तान् (अपि अर्यमा) चयते। उत अच्युता ध्रुवाणि (अपि) च्यवन्ते (परन्तु) हे मरुत ईम् दातिवार वावृध (खलु)।

९ हे मरुत अस्मे (मनुष्येषु ये केऽपि) अन्तितु आरात्तात् चित् (वा तेऽपि) व शवस अन्त न आपु। ते धृष्णुना शवसा शूशुवांस द्वेष अर्ण न धृषता परि स्थु।

हम इन्द्रके प्यारे भक्त हैं। हम युद्धमें और यज्ञमें भी इन्द्रकी सदा स्तुति करते हैं। इसके पहिले भी हम इन्द्रकी स्तुति कर चुके हैं। भविष्यत् कालमें भी हम उनकी स्तुति करेंगे। इस लिये मरुत्–देवोंका स्वामी–इन्द्र–सबसे पहिले हमें प्रसन्न होवे। १०

हे मरुत्–देव, माननीय मान्दार्यने आपकी स्तुति की है और आपसे प्रार्थना भी की है। इस लिये उत्साह दिलाने और बढ़ानेवाली शक्ति आप हमें अर्पण कीजिये। उस सामर्थ्यके कारणही हमारी इच्छा सफल होगी और हमारा मन स्थिर होगा। ११ (५)

## सूक्त १६८.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–मरुत् ॥

हे मरुत्–देव, हरएक यज्ञमें हम जैसे आपके भक्त आपकी उपासना बडे उत्साहसे करते हैं आपभी हमारी उपासना की और बडे प्रेमसे ध्यान देते हैं। सब जगत्का कल्याण करनेके लिये और हमपर कृपा करनेके लिये हम आपकी पवित्र स्तुति करते हैं। हमारी स्तुतिके कारणही आपके मनका झुकाव हमारी ओर होवे। १

मरुत्–देवोंका जन्म आपही आप होता है। सबको डरानेवाले मरुत्–देव पवनकी तरह निजके बलपर निर्भर रहते हैं। प्रकाश फैलाकर मनका उत्साह बढानेके लिये मरुत्–देव प्रकट होते हैं। पराक्रमी मरुत्–देव महासागरके प्रचण्ड तरङ्गोंकी तरह असंख्य है। और वे धेनूकी तरह पूजा करने योग्य है। २

जिस तरह रसीली और पुष्टि देनेवाली सोमलताका पिया हुआ रस हृदयको आनंन्द दिलाता है और उसमें रहता है उसी तरह मरुत्–देव भी भक्तोंके अन्तःकरणको आनन्द दिलाकर उसमें रहते हैं। सुन्दर स्त्रीके बाहुकी तरह आपके कन्धेपर फूलोंकी माला दिखाई देती है। आपके एक हाथमें ढाल और दूसरे हाथमें तलवार रहती है। ३

---

१० इन्द्रस्य प्रेष्ठा वय समर्ये (यज्ञे वा) अद्य, श्व (तदुत्तर च) वय (त) वोचेमहि। पुरा। वय। (त। न नहि च (लु·व त), अनु नून् च (इत परमपि स्तोष्यामहे) तत् ऋभुक्षा नरा (मध्ये) न अनुष्यात्)

११ हे मरुत एष व स्तोम इय गी मान्यस्य कारो: मान्दार्यस्य (तत्) तन्वे इषा आ यासीष्ट, वयाम न, जीरदानु वृजनम् विद्याम।

१ (हे मरुत) यज्ञायज्ञा समना तुतुर्वणि (यो भक्त· स.) व (अस्ति), वः देवया उ धियधिय न) दधिध्वे, (तस्मात्) रोदस्यो महे सुविताय, अवसेच सुवृक्तिभि· व अर्वाच ववृत्याम्।

२ स्वजा, स्वतव ये (मरुत ते) वव्राम न (स्थिरा) इष, स्वश्च (वितरणाय) अभिजायन्त। (एते) [illegible] न महद्भिचाम, गाव न आमा वन्द्यास।

३ सोमास न ये सुताः तृप्तांशव [illegible] न पीताम न हत्सु (समुत्सति तद्वत्) ये दुवस. (हत्सु) आसते, एषा [illegible] विरमे, हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च स दधे।

मरुत्–देवोंके अश्व रथको आपही आप जोत लेते है। वे मरुत्–देव अपने रथमें बैठकर आकाशसे मजेमें भूलोकमें आये हुआ है। हे मरुत्–देव, आपही अपने घोडोंको जाबुकसे दबाइये। मरुत्–देव जन्मसे ही निष्कलंक और बलवान् है; आपके हाथमें चमकनेवाला भाला भी है। इसलिये आप (पहाड जैसे) अचल वस्तुको भी हिला (चलायमान्‌कर) सकते है। और आप उसका वस्तुका नाश भी करते है। ४

हे मरुत्–देव, चमकनेवाली बिजली ही आपका भाला है। जिस तरह बोलते समय जिव्हाके सामर्थ्यसे ओठ हिलते है उसी तरह आपको हिलानेवाला और आपको प्रेरणा करनेवाला कौन है? सब लोगोंको ताजा करनेका और बल देनेका सामर्थ्य आपकेही पास है। जिस तरह सूर्यके नाना प्रकारके किरण सब स्थानोंमे संचार करते है उसी तरह जब आप अन्तरिक्षसे बाहर निकलते हैं तब सब स्थानोंमे आप भी सञ्चार करते है। ५ (६)

हे मरुत्–देव, जिस स्थानसे आप भूलोकपर आये है उस रजोलोकका उत्पत्तिस्थान और निवासस्थान कहा है? जब मेघरूप शत्रूओंके गणको आप बिजली (अशनी) के झपटेसे उडा देती है तब देदीप्यमान अन्तरिक्षरूपी समुद्रके परे आप जोरसे चले जाते है। ६

जिस तरह आपकी कृपासे प्राप्त हुआ विजय बल देनेवाला, स्वर्गको प्राप्त करनेवाला, उज्वल और आनन्द देनेवाला होता है उसी तरह आपने दिया हुआ दान भी बडे दानी मनुष्यकी दक्षिणा की तरह कल्याण करनेवाला, आकाशकी बिजलीकी तरह वेगसे चलनेवाला, और सबको चकित करनेवाला होता है। ७

मरुत्–देव अपनी गर्जनारूपी शब्दोंसे मानो अपने जयकी घोषणा करते है। दूसरी ओर रथचक्रके घीसनेसे मेघरूपी समुद्रमें भी खलबली मची है। मरुत्–देव पृथिवीके ऊपर अमृतकी वृष्टि करते है। उस समय चमकती हुई बिजली हंसती हुई दिखाई देती है। ८

---

४ (येषां) स्वयुक्ता (अश्वा) दिव आ वृथा अव ययु, हे अमर्त्या (तान्) कशयात्मना (मनाक्) चोदत,। (एतं) अरेणव, तुविजाता भ्राजदृष्टय मरुत दृळ्हानि चित् अचुच्युवु।

५ हे ऋष्टिविद्युत, मरुत, हन्वेव जिव्हया, को नु अत व त्मना रेजति? इषा यामनिन। (यूय) धन्वच्युत, अहन्य एतश न पुरुप्रैषा।

६ हे मरुत् यस्मिन् (रजसि) आयय, अस्य महो रजस पर क्वस्वित् अवर (चापि) क? यद् संहितमपि अद्रिणा विधुरेव च्यवयथ, (तद्) त्वेषम् अर्णवम् च वि पतथ।

७ व अमवती, स्वर्वती त्वेषा विपाका साति न, हे मरुत व रातिः (अपि) भद्रा, पृणत दक्षिणा न असुर्यव, अशुर्येव (च) जञ्जती।

८ यद् (मरुत) अभ्रिया वाच उदीरयन्ति (पर एतेषा) पविभ्य सिधवः प्रतिष्टोभन्ति। यदि मरुत घृतम् प्रुष्णुवन्ति विद्युत (अपि) पृथिव्या अव स्मयन्त।

भयंकर लड़ाई करनेके लिये पृश्निमाताने वेगवान् और उज्ज्वल मरुत् गणोंको बनाया वे बड़े लड़नेवाले है, इस तरह वे अपना पराक्रम प्रकट करते है । इसी कारण प्राणि जातिके हलचलमें प्रबन्ध दिखाई देने लगा। ९

हे मरुत्-देव माननीय मन्दार्यने आपहीके लिये यह प्रार्थना की । इस लिये आप हमें उत्साह बढ़ानेवाला सामर्थ्य अर्पण कीजिये । उस सामर्थ्यके आधारपर हम जीवित रहेंगे और हमारी इच्छा सफल होगी। १० (७)

## सूक्त १६९.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्र ॥

हे इन्द्र, कोई भी मनुष्य चाहे जितना बड़ा हो, कोई भी मनुष्य चाहे जितना बलवान् हो, उसके हमलेसे हमारी रक्षा करनेवाले आपही है। हे सकलदेव-प्रभो, आप बड़े ज्ञानी है। सबसे प्यारा जो आनन्द वह आपहीके पास है। आप वह आनन्द हमें प्रदान कीजिये। १

हे इन्द्र, यह बात विदित होती है कि मनुष्यजातिके शत्रुओंका नाश करनेवाले, सब लोगोंको मार्ग दिखानेवाले और ज्ञानवान् देवोंपर आप अपनी आज्ञा चलाते है। युद्ध करके स्वर्ग-लोकसे प्रकाश लानेके लिये मरुत्-देवोंकी सेना बड़े वेगसे आगे चल रही है। २

हे इन्द्र, हमारी रक्षा करनेके लिये आप अपने हाथमें अपना हथियार रखते है। मरुत्-देवोंने भी हमारी रक्षा करनेके लिये अपना सब सामर्थ्य प्रकट किया है। जिस तरह अग्नि जलनेवाली लकडीको घेरता है अथवा जलका प्रवाह जिस तरह किसी टापूको घेर लेता है उसी तरह इन्द्र और मरुत्-देवोंने हमारे लिये सब सुखोंको अपने हाथमें ले रखा है। ३

---

९ मरुते रणाय पृश्नि अथामा मरुता लेप अनीकम् असुत । सप्सरास ते अश्वम् अजनयन्त, आत इत् ( जना ) दधिरा स्वधाम् पयपश्यन् ।

१० हे मरुत एष व स्तोम इय च गी मान्दस्यकारो मादार्यस्य, ( तद् ) तन्वे, इषा आयामीष्ट, वयं इष,-जीरदानु वृजन विद्याम ।

१ इद यत मह चित् मह चित् त्यजसा त्वम् एतान् वरुता असि, सः मरुता वेध चिकित्वान् तव [illegible] न वनुष हि ।

२२ मघवा नि पिन विश्वष्टी विदनानामश्व ते ( देवास ) अयुग्रन्त ( इव, यत ) दासमाना पृत्सु [illegible] प्रवनन्य साता ( अयुञ्जत ) ।

३ [illegible] ते [illegible] अभ्यक, मरुत ( अपि ) मनेमि अश्व तुनन्ति । शुशुक्वान् अग्नि चित् हि [illegible] ( सिन्धु ) [illegible] द्वीप न प्रसानि दधाति ।

हे इन्द्र जिस तरह प्रभावशाली गोरूपी धन आप हमें देते हैं उसी तरह दिव्य ऐश्वर्य भी हमे आनन्दसे प्रदान कीजिये। आपकी स्तुति हम अच्छी तरह करत हे । किन्तु जिस स्तुतिसे आप प्रसन्न हुए उसी स्तुतिसे वायुभी प्रसन्न होवे। जिस तरह वायुका हृदय सुगन्धिसे भर जाता है उसी तरह हमारा हृदय भी भक्तिसे भर जाता है। ४

हे इन्द्र, पवित्र हृदयके भक्तोका कल्याण करनेवाला, और सम्पत्ति वढानेवाला दिव्य ऐश्वर्य आपहीके हाथमे है। आपके मित्र देदीप्यमान् मरुत्–देव आपके भक्तोके सामने जाकर उनका सन्मान करते है, व हम पर सदा कृपा करे। ५ (८)

हे इन्द्र, मरुत्–देव कृपारूपी प्रसादकी वर्षा करनेवाले और बड़े पराक्रमी है। मरुत्-देवोको आपभी सहायता दीजिये और अपना पराक्रम दिखाइये । जिस तरह राजाकी सेना रणभूमिमे तैयार रहती है उसी तरह मरुत्–देवोके वलवान किरणरूपी हिरनोकी झुण्ड यहा सदा खडा रहा है। ६

भयंकर और वेगवान् मरुत्–देव वडे जोरसे आ रहे है। सुनिये, उनका आवाज वडे जोरसे सुनाई दे रहा हे। जिस तरह पापी देनदार (कर्जदार)का नाश होता है उसी तरह मरुत्–देव प्रेम करवाले मित्रका जो द्वेष करता है उस दुष्ट मनुष्यका नाश करते है। ७

हे इन्द्र, मरुत्–देवोके साथ आप यहा आइये। आप हमे ( माननीय पुरुषोको ) ऐसा दान दीजीये जिससे ज्ञानरूप प्रकाश सव दूर फैले और हमारे सव दुःख मिट जाय। हे देवाधिदेव इन्द्र, पूजा करने योग्य सव देव भी आपकी स्तुति करते है। आप हमपर ऐसी कृपा कीजिये जिससे हमारी इच्छा सफल होवे और हमारा उत्साह और वढे। ८ (९)

---

४ हे इद्र त्व तु न आजिष्ठया दक्षिणया रातिमिव त रयि दा., त्वं स्तुतश्च ( ताभि॰ ), या ते चकनन्त ( ता ) मध्व वायो स्तन न ( भक्तान् ) वाजैः पीपयन्त ।

५ हे इद्र, कस्य चित् ऋतायो प्रणेतार तोशतमाः राय त्वे ( एव ), ( तद् ) ये ( भक्ताना ) पुरः गातूयन्तीव स्म, ते देवा. मरुत न सु मृळयन्तु ।

६ हे इद्र, मीव्हुष , मह नॄन् च प्रतीम्र याहि, पार्थिवे सदने यतस्व । अथ यत् तीर्थे अर्य. पौंस्यानि न, एषा पृथुबुध्नास. एता तस्थु ।

७ घोराणा, अयासा, आयताम् मरुताम् उपद्धि प्रति शृण्वे ये ( ते ) पृतनायन्तम् मर्त्यम्, ऋणवानम् न, ऊमै. सर्गं । पतयन्त ।

८ हे इद्र, त्वम् मरद्भि (आगत्य) मातेभ्य, विश्वजन्या, गो अग्राः शुरुध. रद । हे देव स्म स्तवानभिः देवै स्तवसे, ( तद् ) इषम्, जीरदानुम् वृजनम् विद्याम ।

## सूक्त १७०.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–इन्द्र ॥

(जो वस्तु मिलनेकी हम इच्छा करते है वह वस्तु) आज भी नहीं मिलती और कल भी मिलनेवाली नहीं है। इस लिये इसबातका विश्वास हम नहीं करते कि भविष्यत् कालमे वह वस्तु मिलेगी अथवा नहीं। जब कोई मनुष्य किसी दूसरेके प्रसन्न करनेकी इच्छा करता है तब उसकी इच्छा सफल नहीं होती। १

हे इन्द्र, हमारा नाश करनेकी आप इच्छा क्यो करते है। मरुत्–देव आपके भाई हैं। उनपर आप प्रेम कीजिये, । आर युद्धमे हमारा नाश मत कीजिये। २

हे भाई, अगस्त्य, आप हमारे मित्र कहलाये जाते है, किन्तु आप हमे हवि अर्पण नहीं करते। हम आपको अच्छी तरह समझते है। आप हमे कुछ भी देनेकी इच्छा नहीं करते है। ३

आप क्रुद्ध मत हूजिये। देखिये, अब हम वेदी तैयार करते है। अग्निको प्रज्वलित करते हैं। अमरत्वको चैतन्य दिलानेवाले यज्ञको अब हम तुमारे लिये यथाविधि करते है। ४

सब प्रकारकी इच्छा सफल करनेवाले इन्द्र, सब अच्छे अच्छे लाभोके आपही स्वामी है। हे इन्द्र, सब मित्रोंमे आप श्रेष्ठ है। आप अकेलही सबसे उदार है। इसलिये मरुत्–देवोंके साथ आप प्रसन्न बात कीजिये। ठीक ठीक समयपर आकर हमने दिये हुए हवियोका आप स्वीकार कीजिये। ५

---

१ न नूनम् अस्ति, नो श्वः, (तत्) यद् अद्भुत तद् को वेद। अन्यस्य चित्तम् अभि सञ्चरेण्यम्, उत (च) आधीतम् विनश्यति।

२ हे इन्द्र न किं जिघांससि ? मरुत तव भ्रातरः, तेभिः साधुया कल्पस्व, समरणे नः मा वधीः।

३ हे भ्रातः अगस्त्य (नः) सखा सन् अस्मान् (एव) किम् अति मन्यसे ? (वयं) ते मनः यथा (तथा) (जानीमः) अस्मभ्यम् इत् न दित्ससि।

(ऋत्विजः) वेदिम् (ऋत्विजः) अरं कृण्वन्तु, अग्निं पुरः समिन्धताम्। तत्र अमृतस्य (अपि) (चेतनम्) ते यज्ञं तनवावहै।

५ त्वम् ईशिषे वसूनां ईशिषे, हे मित्रपते, श्रेष्ठः त्वं मित्राणां (चापि ईशिषे)। हे इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्व, ऋतुथा हवींषि प्र अशान।

## सूक्त १७१.

॥ ऋषि—अगस्त्य । देवता—मरुत् ॥

मै आपको, हे मरुत्-देव, वार वार नमस्कार करता हूं। मैं आपहीके पास आया हूं। भक्तोंके लिये शीघ्रतासे आप दौडते चले आते है । आपके गुणोका वर्णन करके हम आपकी कृपा चाहते है। हे मरुत्-देव, हमारी विनतीकी ओर ध्यान दीजिये और क्रोध छोड दीजिये । आप अपने अश्वोंको भी रथसे अलग कीजिये । क्योकि आप हमपर प्रसन्न हुए है। १

हे मरुत्-देव, यह स्तोत्र हम आपहीका है जो हमने बड़ी नम्रतासे गाया है । आपके स्तोत्रको यथाविधि बड़ी नम्रतासे गाते है। आप भी उस स्तोत्रका स्वीकार कीजिये। उस स्तोत्रका स्वाद लेनेके लिये आप सच्ची भक्तिसे इधर आइये । क्योंकि आप सदा अपने भक्तोंकी उन्नति ही करते है। २

हम मरुत्-देवोका यथाविधि स्तवन करते हैं । इस लिये वे हमपर-सदा कृपा करे। सब लोगोका कल्याण करनेवाले इन्द्रकी भी हम स्तुति करते हैं । इस लिये इन्द्र भी हमपर प्रसन्न रहे । हम जय प्राप्त करनेकी सदा इच्छा करते है । हमारी रक्षा करनेके लिये आपके सुन्दर भाले सदा तैयार रहे। ३

हे मरुत्-देव, भयकर इन्द्रसे मैं डरता हूं। उनके पाससे मैं दूर चला जाता हूं। आपके लिये हविरूपी अन्न मैंने तैयार रखे थे। किन्तु हविरूपी अन्नको मैने दूर लौटा दिया। इस लिये हमे क्षमा कीजिये। ४

---

१ (हे मरुत अय) अह एना नमसा व एमि, तुराणा (युष्माकम्) सुमति भिक्षे। हे मरुतः वेद्याभिः रराणता, हेळ नि धत्त, अश्वान् वि मुचध्वम्।

२ हे मरुत एष नमस्वान् स्तोम. व (एव), स. हृदा तष्ट, हे देवाः (स) धायि । (यूय) जुषाणाः इम् मनसा उप आयात, यूयम् हि नमस इत् वृधास· स्थ ।

३ स्तुतास मरुत न मृळयन्तु, उत शभविष्ट. मघवा (च) स्तुतः (सन् मृळयतु), हे मरुत· (अस्माक) जिगीषा, विश्वा अहानि, (सुनिहिताना) व (ऋष्टीना) कोम्या वनानि ऊर्ध्वा सन्तु।

४ हे मरुत अस्मात् तविषात् इन्द्रात अह भिया रेजमान ईषमाण. (च अपैमि)। हव्या युष्मभ्य निशितानि आसन्। तानि आरे चकृम, (तद्) नः मृळत।

हे इन्द्र, जब सनातन उषा अपने सामर्थ्यसे प्रकाशित होती है तब आपहीकी कृपासे उस दीप्यमान् उषा-देवीका दर्शन मान-पुत्रोंको हुआ। इच्छाको सफल करनेवाले हे (पराक्रमी) इन्द्र, आप बड़े पुराण-पुरुष है। धैर्य और बल देनेवाले आपही है। आप बड़े उग्र है। इस लिये भयंकर मरुत्-देवोंको साथ लेकर आप हमारी ओर आइये और हमे यश प्राप्त होवे। ५

हे इन्द्र, आप बलवान् और पराक्रमी मरुत्देवोंकी रक्षा कीजिये। आप मरुत्-देवोंपर क्रोध मत कीजिये और क्रोधको छोड दीजिये। सब जगत् समजता है कि आप बुद्धिमान् मरुत्-देवोंके विजयी अधिपति है। आपहीकी सहारसे हमारा उत्साह सफल होवे और आपकी कृपा हमपर सदा बनी रहे। ६ (११)

## सूक्त १७२.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–मरुत् ॥

हे दानशील मरुत्-देव, आप आश्चर्यकारक रीतिसे हमारी ओर आवे। सापकी तरह चञ्चल विरणके मरुत्-देव, आपके सामर्थ्यके कारणही आप आश्चर्यकारक रीतिसे हमारी ओर आवे। १

हे दानशील मरुत्-देव, शत्रुओंके शरीरमे घुसनेवाला और नाश करनेवाला आपका शस्त्र हमेशा हमसे दूर रहे। जिस अशनि पत्थरसे आप मारते है वह भी हमसे दूर रहे। २

हे दानशील मरुत्-देव, तृणस्कन्दके लोगोंको आप चारों ओरसे घेर लीजिये और उनको काट डालिये। हमे यश प्राप्त होवे और हम जीवित रहे। हमारी उन्नति भी होवे। ३(१२)

---

५ शश्वतीना (उषसा) शवस ऋजीषिन्, येन (ता) उषा मानागः चितयन्त हे वृषभ, ध (त्व) ... ... च (तद्) उग्र. (त्व) ... मरुद्भि न भव वाः

६ हे इन्द्र, त्व ... नॄन् पाहि, मरुद्भि अवयातहेळ भव, (तै.) सुप्रकेतेभि ... दधान (तद्) जीरदानु वृजन विद्याम।

१ ... न याम चित्र अस्तु, हे अहिभानव मरुत, (स याम) ऊती चित्र (भवतु)।

२ ... मरुत, सा (दिद्युत्) ... आरे (अस्तु), (अपिच) यम् ... ... र (अस्तु)।

३ ... , तृणस्कन्दस्य विश परि ... , जीवसे न ऊर्ध्वान् कृत।

## सूक्त १७३.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–इन्द्र ॥

हे इन्द्र, आपको सन्तुष्ट करनेके लिये ( उद्गाता ) आकाशमे चारो ओर फैलनेवाला गान गायेगा। स्वर्गके प्रकाशकी तरह चारो ओर इधर उधर फैलनेवाला अपूर्व स्तोत्र भी हम जोरसे गायेगे। आप अपने अमूर्त स्वरूपसे दर्भके आसनपर यहा बैठते है। तेजोरूप धेनु भी जिनको कोई भी सता नही सकता-आपकी सेवामे तैयार रहती है। १

पराक्रमी पुरोहित, पराक्रमी आचार्योंके साथ आपकी उपासना करते है, और आपको ताजा, गरम गरम हविरन्न अर्पण करते है क्योकि भूखे सिहकी तरह आप उसका बड़े उत्साहसे स्वीकार करे। हे सबसे श्रेष्ठ-देव, यज्ञ होता, माननीय यजमान और उसके स्त्रीके साथ बडे आनन्दसे आपको सन्तुष्ट करनेके लिये आपकी स्तुति करता है। २

हे इन्द्र, यह आचार्य ( पुरोहित ) अग्निके बड़े बड़े तीन स्थानोंको प्रदक्षिणा करके शरदृतुमे उत्पन्न होनेवाले संपत्ती साथ लेकर पृथिवीपर आता है। इसी ऋतुमे अश्व हिनाहिनाते हुए मार्गसे चलते है। बैल भी डकारते हुए चलते हैं। दिव्यवाचा, भी दूतीकी तरह पृथ्वी और आकाशके वीचमे सदा सचरावती हुई दिखाई देती है। ३

इन्द्र जिन वस्तुओंको चाहता है उन वस्तुओंको हम आपको अर्पण करेगे। इन्द्रके लिये भक्तलोग प्रतिभाशाली स्तोत्रोंको गाते हैं। तेजस्वी इन्द्र उन वस्तुओंका और स्तोत्राका प्रेमसे स्वीकार करे। नासत्यकी तरह वह भक्तके आधीन रहता है। भक्तोंके लिये, इन्द्र, रथपर बैठा हुआ तैयार है। ४

---

१ हे इंद्र यथा ते ( तथा ) तभन्य साम ( उद्गाता ) गायत्, ( वयच ) तंत स्ववंत् वावृधान च ( शस ) ... र्चाम। वह बर्हिष सद नम् दिव्य ( त्वा ) अदव्या गाव धेनवश्च आ विवासन्।

२ वृषा ( ऋ...वश ) वृदभ ( त्वाम् ) स्वेदुहव्यै यत् ( त्व ) अश्न मृग न ( तानि ) अतिजुगुयात ( तथा ) अजर। ... होता, यजत्र मर्तश्च मिथुना ( त्वाम् ) मनाम् प्र भरते।

३ ( इन्द्र, यज्ञाय ते अयम् ) होता ( अग्ने ) मिना सद्म परि यन् नक्षत्, ( स ) शरद गर्भं पृथिव्या आ ... । नयमान. अश्व क्रदत्, गौ रुवन्, ( माध्यमिका ) वाक् दूत न रोदसी अन्त चरत्।

४ अस्मे ( इन्द्र ) ता अपस्या ( एव हवींषि ) कर्म, देवयन्त ( अपि अस्मै ) चौत्नानि प्र भरते। ( तद् ) ...नरचा इद ( तानि ) जुजोषत्, ( स ) नासत्येव सुग्म्य रथेष्ठश्च।

इन्द्रकी स्तुति करनी चाहिये। आप बड़े सत्यवादी है, आप बड़े शूर है; आप बड़े उदार हैं,। भक्तोंके लिये आप रथपर बैठे हुए हैं। सब लोगोंकी इच्छा पूरी करनेवाले आपही है। चाहे जैसा बलवान् शत्रु हो, आप उससे श्रेष्ठ है। पृथ्वीको चारों ओरसे घेरनेवाले अन्धकारका नाश आपही कर सकते हैं। ५ (१३)

विश्वमें जितने शूर पुरुष है उनसे सचमुच आप बहुत श्रेष्ठ हैं। अन्तरिक्ष बहुत विस्तीर्ण है। तदापि इन्द्रके कमरबंदके लिये भी वह पूरा नहीं पडता। पराक्रमी इन्द्रने आकाश-रूपमें पृथिवीको व्याप्त किया है और आपने नक्षत्रोंको अपने सिरपर अलंकारके तौरपर धारण किया है। ६

हे पराक्रमी इन्द्र, सब सज्जन लोगोंकी रक्षा करनेवाले आपही है। आप अच्छे नेता भी है। ज्ञानवान इन्द्रको यज्ञमें हवि अर्पण करनेके लिये सब भक्तजन बड़े प्रेमसे एकत्रित होते हैं और आपको प्रसन्न करते है। युद्धमें भक्तलोग बड़े नम्रतासे इन्द्रकी सहायता भी चाहते हैं। ७

जिस तरह वर्षा कीये हुए दिव्य उदकोंकी धाराएँ भूलोकमें आकर बड़े आनन्दसे समुद्रमें जाकर मिलती हैं उसी तरह हमने अर्पण किये हुए सोमरसके प्रवाह बड़े आनन्दसे आपकी ओर चले जाते हैं। चाहे ज्ञानी लोग हो अथवा साधारण लोगहो, सब लोगोंपर आप हार्दिक प्रेम करते हैं। इस लिये यह आश्चर्यकी बात नहीं है कि सब लोगोंकी स्तुति आपकी ओर दोड़ती है। ८

पराक्रमी पुरुषोंका अभय वचन मिलना, मानो, एक उत्तम मित्र मिलनेकासा है। इस तरह उत्तम मित्र और सहायता केवल आपहीकी कृपासे मिलती है। इन्द्र-देव चञ्चल मनकी तरह सब स्थानोंमें सञ्चार करता है। किन्तु इन्द्र, हमारे किये हुए कर्म और गाये हुए स्तोत्रोंको सफल करे। इन्द्र निश्चित बुद्धिसे हमारी उपासनाकी ओर सदा ध्यान देवे। ९

---

५ यो ह सत्वा, यः शूर मघवा यः रथेष्ठ.। (यश्च) वृषण्वान् प्रतीच चित् योधीयान्, ववव्रुष. तमस चित् विहन्ता च, तनु इन्द्रम् स्तुहि।

६ यत् (इन्द्र) महिना (विश्वेभ्य) नृभ्य प्र कृष्ट अस्ति इत्था, अस्मैच कक्ष्ये रोदसी अर न। (अयम्) ... वान् वृजनम् न भूम सम् विव्ये, द्याम् ओपश मिव मर्ति।

७ ... उग्राम् प्रपथि तम च त्वा समन्यु परितसयन्ते, (एते) ये राजोपस क्षोणी (ते त्वा) चित् नदे वाज अनुमदन्ति।

८ ते ... देवी (भुवि आगत्य) समुद्रे आसु मदन्ति, एव हि सवना ते शम् (भवन्ति)। यदि ... चित् जनान् (चित्) विश्वा वेषि, (तद किं चित्रम् यदि) विश्वा गो ते जोष्या अनु भूत्।

९ ... न, ... सुवृक्ताय ... (तथा) अमाम। (अपिच ... मन) न तुर इन्द्र ... न ... यथा अगन् (तथा भूयात्)।

बड़े बड़े पुरुषोंकी और द्वेष न करनेवाले साधु-सज्जन लोगोंकी प्रार्थनाकी ओर इन्द्र सदा ध्यान देवे। वज्र धारणकरनेवाले इन्द्र सदा हमारा कल्याण करे। नगरका अच्छी तरह प्रबन्ध करनेवाले राजाको प्रसन्न करनेकी और उनका सन्मान करनेकी जिस तरह प्रजा इच्छा करती है उसी तरह इन्द्रके हार्दिक प्रेमकी इच्छा करनेवाले भक्तलोक भी यज्ञ-यागसे उनको प्रसन्न करते है। १० (१४)

कई स्थानोंमे इन्द्रको सन्तुष्ट करनेके लिये यज्ञयाग चल रहे है। कई स्थानोंमे चञ्चल और भ्रष्ट मनुष्य विना उद्देशके इधर उधर घूमता हुआ दिखाई देता है। जिस तरह प्यासे मनुष्यको जलका प्रवाह घरकासा आनन्द देता है उसी तरह यज्ञ-याग करनेवाले मनुष्यको इन्द्र आनन्दित करता है। चिन्ता करनेवाले मनुष्यको दूरके मार्गपर चलनेसे जिस तरह दुःख होता है उसी तरह भ्रष्ठ मनुष्यका, इन्द्र-देव तिरस्कार करता है। ११

हे इन्द्र, ऐसे युद्धके समय हमारा तिरस्कार मत् कीजिये। हे पराक्रमी इन्द्र, आपके चारो ओर सब देव बैठे हुए है, आपको हविर्भाग देनेके लिये यहा बिलकुल तैयार है। आप सबसे श्रेष्ठ-देव है, आप सब लोगोंकी इच्छा पूरी करनेवाले ह। हवीको अर्पण करनेवाले भक्तलोग अपनी तोतली भाषासे आपके और मरुत्देवोंके गुणोंका वर्णन करते है। आप उसका आनन्दसे स्वीकार कीजिये। १२

हे इन्द्र, हम आपको यह स्तोत्र अर्पण करते है। हे हरिदश्व इन्द्र, हमारी स्तुतिसे प्रसन्न होकर हमे अच्छा मार्ग दिखलाइये। हे देव, जिस मार्गसे हमारा कल्याण होगा वही मार्ग हमे दिखलाइय। उस मार्गसे जानेसे आपका सहारा हमे मिलेगा, हमारी इच्छा सफल होगी और हमारा उत्साह बढ़ेगा। १३(१५)

---

१० नरा विष्पर्धस च शसै न (अयम्) वज्रहस्त इद्र· अस्माक असत् पूर्पतिम् सुशिष्टौ मित्रयुव: न, (एते कृत्य) नव्य युव (तम्) यज्ञै उप शिक्षन्ति।

११ (क्वचित्) कश्चित् यज्ञ इद्र ऋन्धन् हि स्म, (क्वचित्) मनसा जुहुराण. चित् परियन् (दृश्यते)। तीर्थे अच्छ तातृपाणम् ओको न (प्रथम कर्म), सिध्र दीर्घोध्वा आकृणोति (एतादृश अपरम् कर्म)।

१२ हे देवै (वृत) इद्र, अत्र पृत्सु मो षु न (त्याक्षी), ते अवया अस्ति स्म हि। हे शुष्मिन् यस्य मे हविष्मत ववा गी (ते) मह मीढ्हुष चित् मरुतश्च वन्दते (ता जुषस्व)।

१३ हे इद्र, अत्ने एष स्तोमः तुभ्य अस्ति, एतेन हे हरिव. नः गातु विदः। हे देव सुवितात न. आ ववृत्या (येन) इष जीरदानु वृजनम् विद्याम.

## सूक्त १७४.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–इन्द्र ॥

हे इन्द्र, जितने देव है उन सबोंके आप राजा है, हमारी पराक्रमी सेनाकी आप रक्षा कीजिये। हे परमात्मन्, आप हमारी भी रक्षा कीजिये। आप साधु लोगोंमे भी बड श्रेष्ठ है। आप बडे उदार है, और आप हमारी रक्षा करनेवाले है। आप सत्यस्वरूप सम्पत्ति देनेवाले और धैर्य बढानेवाले है। १

हे इन्द्र, हमे गाली देनेवाले दुष्ट लोगोंका आपने नाश कर डाला। उसी समय उनके निवास स्थानोंकाभी–शारद नामक सात किलाओंका भी आपने नाश कर डाला। हे पवित्र इन्द्र, बडे बडे जलके प्रवाहोंको–जिनमें भयंकर लहर उछलती है आपने बहाया। युवा पुरुकुत्स आपका भक्त है। उसके शत्रुको आपने उसके आधीन कराया। २

हे इन्द्र, जगत्के शत्रुओंकी सेनाके नेता बडे शूर है। उन्होंने गोल आकाशको व्याप्त किया है इस लिये आप उन्हे वहासे निकाल दीजिये। हमारे घरमे जो अग्निहोत्र है उसका नाश न होवे। क्योंकि वह शीघ्र फल देनेवाला है। सिंहकी तरह जागृत रहकर हमारे अग्निहोत्र और उपासनाकी आप रक्षा कीजिये। ३

हे इन्द्र, आपके वज्रके केवल आवाजसे और तेजस्विताके कारणही सब जगत्के शत्रुओंका एकही स्थानमे नाश हुआ। शत्रुओंका नाश होनेके कारण आपका तेज बहुत बढ गया है। देखिये, इन्द्रने शत्रुओंके साथ युद्ध किया और दिव्य उदकके प्रवाह बन्धनसे छोडकर बहा दिये। रुके हुए प्रकाशरूपी धेनुओंको भी इन्द्रने मुक्त किया। इन्द्र अपने अश्वपर सवार हुए और भक्तोंको दिव्य सामर्थ्य प्राप्त कराया। ४

---

१ हे इन्द्र, ये च देवाः (तेषां) त्वं राजा, हे असुर रक्ष (नः) त्वम् नॄन्, अस्मांश्च पाहि। त्वं सत्पतिः मघवा, नः तरुत्रः त्वम् सत्यः वसवानः सहोदाः (असि)।

२ हे इन्द्र, दनः मृध्रवाचः विशः (त्वम्) दनः (तदैव एतेषां) शारदीः शर्म (नाम) सप्त पुरः (त्वम्) अनवद्य, ... अपः ऋणोः, यूने पुरुकुत्साय (अस्य) वृत्रं रन्धीः।

३ इन्द्र (एना शूरपत्नीः सेनाः) याः (अकृण्वन्), हे पुरुहूत येभिः च (द्यौः व्याप्ता) शूरपत्नीः हत ... अशुषं, तूर्वयाणं। दमे अग्निम्, अपांसि च (दोषा) वस्तोः सिंहो न रक्ष।

४ हे इन्द्र, ते पवीरवस्य मह्ना (एव) ते (द्विषः तव) प्रशस्तये सस्मिन् योनौ शेषन् नु। यद् (स) युधा अर्णांसि, गाः (च) अवसृजत्, तिष्ठत् हरी (तम् भक्तार्थं) धृषता वाजान् मृष्ट।

हे इन्द्र, कुत्स नामके भक्तपर आपकी बडी कृपा है; इस लिये सीधे मार्गसे चलनेवाले और एकसे दौडनेवाले वायुके अश्वोंको आप उसकी ओर ले आइये। उषाका उदय होते समय सूर्य अपने एक चक्रके रथको हमारी ओर ले आवे। वज्र धारण करनेवाला इन्द्र पापी शत्रु ओंपर चढ़ाई करें। ५ (१६)

हे हरिदश्व इन्द्र, यह बात सबको विदित ही है कि सज्जन लोगोंको प्रेरणा करनेवाले आपही है। आपके भक्तलोगोंको सतानेवाले और दानधर्म न करनेवाले दुष्ट लोगोका आपहीने नाश किया। हे इन्द्र, किसीका अधिकार न माननेवाले दुष्ट लोगोंका जब आपने नाश किया तब सब प्राणियोंको शीघ्रही विदित हुआ कि आप उनकी रक्षा करनेवाले हैं। ६

हे इन्द्र, काव्यकी रचना करनेवाले ज्ञानवान् कवियोंने आपका ठीक ठीक वर्णन किया है कि आप दुष्ट लोगोका नाश करते है। (वे मर जाकर पृथिवीपर सो जाते है।) दयाशील परमेश्वरने अपनी उदारतासे पृथिवीकी शोभा बढायी। आपने रणांङ्गणमें युद्ध किया और कुयवाच्का नाश कर डाला। ७

हे इन्द्र, आपके प्राचीन कालके पराक्रमोंका नये कवियोंने बडे प्रेमसे वर्णन किया है। आपने पापी दुष्ट लोगोका नाश कर डाला; इस लिये युद्ध होनेकी संभावना बहुत कम है। ईश्वरकी भक्ति न करनेवाले दुष्ट लोगोके निवासस्थानोंका आपने नाश कर डाला; और ईश्वरकी निन्दा करनेवाले दुष्ट लोगोका भी आपने नाश किया। ८

हे इन्द्र, जब आप गर्जना करते हैं तब सब जगत् डरके मारे कांपने लगता है। धुनि नामके राक्षसने दिव्य उदक–धाराओंको रोक दिया था; किन्तु आपने उसका नाश करके उन उदक–धाराओंको बन्धनसे छुडा लिया। उसीके कारण नदीके प्रचण्ड प्रवाह बहने लगे। हे पराक्रमी इन्द्र, आप आकाशरूप समुद्रके परे सहज रीतिसे चले जा सकते हैं। इस लिये तुर्वश और यदु नामके भक्तोंको आप अपने साथ समुद्रके परे ले जाइये। ९

---

५ हे इन्द्र, यस्मिन् (त्वम्) चाकन् (तम्) कुत्स, वातस्य स्यूमन्यू ऋज्रा अश्वा वह। (स) सूरश्चक्रं अभीके प्र वृहतात्, वज्रबाहु स्पृध अभि यासिषत्।

६ हे इन्द्र, हे हरिव, (त्वम्) चोदप्रवृद्ध मित्रेरून् अदाशून् जघन्वान्। अपत्य वहमाना ये (अरातय) त्वया शूर्ता, (ते) आयो अर्यमणम् (त्वाम्) सचा प्र पश्यन्।

७ हे इन्द्र, अर्कसातौ (त्वाम्) कवि रपत (यद् त्वम्) दासाय क्षाम् उपभर्हणीम् कः। (सत्वम्) मघवा तिस्र (भुव) दानुचित्रा करत्, दुर्योणे च मृधि कुयवाच नि श्वेत्।

८ हे इन्द्र ता ते सना नव्या (अपि) आ अगु, अविरणाय (त्वम्) पूर्वीः नभ सहः अदेवी (तेषा, च) पुर न भिद भिनत, अदेवस्य हीयो वध (अपि) ननम।

९ हे इन्द्र त्वम धुनि, धुनिमती अप, स्रवन्ती सीरा न कृणोः। हे शूर यत् समुद्र प्र अतिपर्षि तुर्वश यदु च स्वस्ति पारय।

हे इन्द्र, आप हमारा कल्याण कीजिये। निरपराधि मनुष्यको आप नहीं सताते। सब मनुष्योंकी आप बड़े प्रेमसे रक्षा करते हैं। इस लिये हमारे सब शत्रुओंका आप नाश कीजिये। उसीके कारण हमारी इच्छा सफल होगी और हमारी उन्नति होगी। १० (१७)

## सूक्त १७५.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–इन्द्र ॥

हे हर्यश्व इन्द्र, आप आनन्दित हूजिये। यह आनन्द देनेवाला आनन्दरूपी सोमरस मानो, आपका प्रत्यक्ष तेजही विदित होता है। यज्ञ-पात्रसे सोमरसको आप पीते हैं। आनन्द देनेवाला, ओजस्वी, और असंख्य जयोंको प्राप्त करनेवाला बलवान् सोमरस, आप जैसे बलवान् पुरुषके लिये स्वीकार करने योग्य है। १

हे इन्द्र, आनन्द बढानेवाला, वीर्यवान, उत्कृष्ट और उग्र सोमरस हमारी इच्छा सफल करनेवाला है। शत्रुओंको जीतनेवाला अमर सोमरस आपकी ओर पहुंचे। २

हे इन्द्र, आप सचमुच बड़े दानी और पराक्रमी पुरुष है। मै जैसे दीन मनुष्यकी इच्छा पूरी करनेवाले आपही हैं। आपही शत्रुओंको जीतनेवाले है। अधार्मिक दस्युओंको (मट्टीके) बरतानकी तरह आप तपायिये। ३

---

१० हे इन्द्र त्वम् विश्वय अस्माकम् स्याः, अवृकतम (त्वम्) नरां नृपाता (असि)। स (त्वम्) विश्वासां न स्पृधां महोनाः (येन) इष जीरदानु वृजनम् विद्याम

१ हे हरिव मत्सि, मत्सर मद ते मद इव पात्रस्य (त्वया) अपायि, (अयम्) इन्दु वाजी, सहस्रसा (सोम) ते वृष्ण (समुचित एव)।

२ हे इन्द्र, न मत्सर, वृषा मद वरेण्य, सहवान्, सानसि पृतनाषाट, अमर्त्यः (सोम.) ते आगन्तु।

३ (हे इन्द्र) त्वमहि शूर, सनिता, (तद) मनुष (मम मनो) रथम् चोदय, (सहावान् (त्व) अव्रतान् दस्युन् (इन्द्र) पात्र न शोचिषा ओष।

हे सर्वज्ञ इन्द्र, आप जगत्के शासन करनेवाले हैं। आपने अपने ईश्वरी सामर्थ्यसे सूर्यके रथका एक चक्र निकाल डाला। (शुष्णके) मृत्युको और कुत्सको वायुरूप अश्वोंसे शुष्णकी ओर ले जायिये। ४

सचमुच आपका आनन्द बहुतही ओजस्वी है। आपका कर्तृत्व बहुतही अपूर्व है। आप शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। अपने पराक्रमसे आप सब लोगोंको आनन्द देते हैं। सर्वव्यापी सामर्थ्य आप देनेवाले हैं। इस लिये सब लोक आपकी स्तुति करते हैं। ५

हे इन्द्र, जिस तरह प्यासे मनुष्यको जलसे आनन्द होता है उसी तरह प्राचीन समयके सब भक्तोंको आपके पराक्रमोंसे आनन्द हुआ। उसी तरह प्राचीन समयके 'निविद्' स्तोत्रसे मैं भी आपकी स्तुति करता हूं। इच्छाको शीघ्रतासे सफल करनेवाले इन्द्र, हमारी उन्नति होवे और आपकी कृपासे हमारा कल्याण होवे। ६ (१८)

## सूक्त १७६.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–मरुत् ॥

हे आनन्द देनेवाले सोमरस, हमे सुख प्राप्त करनेके लिये आप इन्द्रको आनन्दित कीजिये। आप भी बड़े पराक्रमी हैं। इस लिये वीर पुरुषोंके शरीरमे आप प्रवेश कीजिये। ( हे इन्द्र, ) जब क्रोधसे आप शत्रुओंपर चढ़ाई करते हैं तब एक भी शत्रु आपके सामने खड़ा नही रहता। १

---

४ हे कवे ( इन्द्र ) ईशान ( त्वम् ) ओजसा सूर्यं चक्र मुषाय, वातस्य अश्वै, कुत्सम् वध च शुष्णाय वह।

५ ते मदः शुष्मिन्तम हि उत क्रतु द्युम्नितम । ( तं ) वृत्रघ्ना वरिवोविदा ( मदेन ) अश्वसातम मसीष्ठाः।

६ हे इन्द्र यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य. ( त्वम् ) तृष्यते आपः न मयइव बभूथ, ( तद् ) त्वा ताम् निविद अनु जोहवीमि, ( तस्मात् ) इष जीरदानु वृजनम् विद्याम।

१ हे इन्दो, न वस्य इष्ट्ये इन्द्र मत्सि, ( त्वहि )। वृषा ( तद् तम् वीरं ) आ विश, ( हे इन्द्र ) ऋधायमाण इन्वसि ( परन्च ) शत्रुम् अन्ति न विन्दसि।

हे इन्द्र, आप प्राणिजातिके अकेले प्रभु है। इस लिये आप ऐसा कीजिये जिससे मेरा मन आपकी स्तुति करनेमे मग्न हो जावे। बैलके जोतनेके अनुसार जिस तरह अनाज बोया जाता है उसी तरह आपकी इच्छाके अनुसार प्राणिजातिका कर्मबीज बोया जाता है। २

पाच जातिके लोक जिस धनकी इच्छा करते है वह धन आपहीके हाथमे है। हमारे शत्रुओको आप ढूण्डकर निकालो और जिस तरह बिजली किसी वस्तुका नाश करती है उसी तरह हमारे शत्रुओका आप नाश कीजिये। ३

जो मनुष्य आपको सोम अर्पण करता है किन्तु आपकी भक्ति नही करता, जो मनुष्य आपको आनन्द नही देता और जिस मनुष्यका पता भी नही लगता, भक्ति न करनेवाले उन लोगोका आप किसी युक्तीसे नाश कीजिये। उन युक्तियोको हमे आप विदित कीजिये। मै आपका भक्त हू, इस लिये मै विश्वास करता हू कि आप सब बाते मुझे विदित करेगे। ४

इन्द्रकी कीर्ति दोनो लोकमे फैली हुई है। इन्द्रका स्तोत्र सब जगह गाया जाता है। सोमरसन इन्द्रको सहायता दी। मनोहर कान्तिका सोमरस इन्द्रको अर्पण किया गया। जिस युद्धमे योद्धाओके सामर्थ्यकी परीक्षा की जाती है ऐसे युद्धमे भी पराक्रमी वीरोकी आप रक्षा करते है। ५

हे इन्द्र, जिस तरह प्यासे मनुष्यको जल मिलनेसे आनन्द होता है उसी तरह प्राचीन समयके भक्तोको आपकी कृपा प्राप्त होनेसे आनन्द हुआ। पुराने निविद् स्तोत्रसे मै भी आपकी स्तुति करता हू। इस लिये हमारी इच्छा सफल कीजिये और आपकी कृपासे हमारा आनन्द बढे। ६ (१९)

---

२ चर्षणीनाम् य एक (एव प्रभु) तस्मिन् (इन्द्रे) गिर आ वेशय, यम् अनु स्वधा (कर्म) उप्यते, यवा इव चर्कृषत् न।

३ यस्य हस्तयो पञ्च क्षितीना विश्वानि वसु, (सत्व) य अस्मद्रुक् (त) स्पाशयस्व, दिव्या अशनि इव तम् (च) जहि।

४ असुन्वन्तम्, योन ते मय त (सम) दूणाश (पाप्मान) जहि, अस्य वेदन अस्मभ्य दद्धि, (एतद्) चित् ओहते।

५ द्विबर्हस (नरस्य) अर्केषु सानुषक् असत् (तस्य) आव, हे इन्द्रस्य इन्दो (त्वम्) आजौ वाजेषु वाजिनम् प्र आव।

६ हे इन्द्र यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य (त्वम्) तृष्यते आप न, मय इव बभूथ। (अत) त्वा तान् निविदम् अनु जोहवीमि, (वय) इष जीरदानु वृजनम् विद्याम।

## सूक्त १७७.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्र ॥

हे इन्द्र, आपने सब जगत् व्याप्त किया है। आप लोगोंकी इच्छा पूरी करनेवाले हैं। आप सब लोगोंके स्वामी हैं। असंख्य लोग आपकी स्तुति करते हैं। यथाविधि मैंने आपका स्तवन किया है। इस लिये आप अपने युवा अश्वोंको रथको जोतिये; मेरी विनती सुननेके लिये भूलोकमें आप मेरे पास आइये और आपका उत्तम प्रसाद मुझे अर्पण कीजिये। १

हे इन्द्र, आपके युवा अश्व आप जैसे वीर्यशाली और प्रसिद्ध पुरुषके रथको जोतनेके योग्य हैं। भक्त लोगोंकी प्रार्थनाको सुनतेही आपके युवा अश्व स्वयं रथको जोत लेते हैं। इस लिये, हे इन्द्र, आप अपने युवा अश्वोंपर सवार होकर हमारी ओर भूलोकमें आइये। हमने सोमरस तैयार रखा है। इस लिये हम आपको बड़ी नम्रतासे बुलाते हैं। २

हे इन्द्र, मानो, आप इष्टसिद्धिकी वर्षा करनेवाले हैं। भक्तके मनोरथ पूरी करनेवाले इन्द्र, आप ऐसे रथपर आरूढ हूजिये जिससे हमारी सिद्धि होवे। आपके लिये सोमरस तैयार किया हुआ रखा है। उसमें अच्छे अच्छे स्वादिष्ट पदार्थ डाल दिये गये हैं। हे श्रेष्ठ पुरुष, अपने युवा अश्वोंको जोतकर आप हमारी ओर भूलोकमें आइये। ३

यहां यज्ञ शुरु हुआ है, जिसको सब देव मानते हैं। यहां मेध्य पशु बन्धा हुआ खड़ा है। हे इन्द्र, आपके लिये प्रार्थना-स्तोत्र चल रहे हैं। इधर सोमरस रखा हुआ है और दर्भास्तन भी बिछा हुआ है। हे सामर्थ्यवान् इन्द्र, आप हमारी ओर जरूर आइये। हमारे सोमरसका स्वीकार कीजिये, थोडी देर आरामसे लेट जाइये और अपने अश्वोंको भी रथसे छोड देकर विश्रान्ति दीजिये। ४

---

१ त्वम् इन्द्र चर्षणिप्राः जनानां वृषभः, कृष्टीनां राजा, पुरुहूत (असि), स्तुतः (च त्वम्) वृषणा हरी युक्त्वा अवस्यन् अवसा (सह) मद्रिक् अर्वाङ् उप आ याहि।

२ हे इन्द्र, ते ये वृषणः वृषभासः अत्याः वृषरथासः, ब्रह्म युजः (च)। तान् आतिष्ठ, तेभिः अर्वाङ् आयाहि। हे इन्द्र त्वा सोमे सुते हवामहे।

३ वृषा (त्वम्) वृषणं रथं आ तिष्ठ, सोमः सुतः परिषिक्ता मधूनि। क्षितीनां वृषभ, वृषभ्यां हरिभ्यां (रथं) युक्त्वा, प्रवता मद्रिक् उप याहि।

४ अयं देवयाः यज्ञः, अयं मियेधः इमा ब्रह्माणि, हे इन्द्र अयं सोमः। (इन्द्र) बर्हिः स्तीर्णम् तु, शक्र प्र याहि (सोमं) पिब निषद्य (च) इह हरी विमुच।

हे इन्द्र, हमने यथाविधि आपकी स्तुति की है । इस लिये आप माननीय और श्रेष्ठ कवियोंके प्रार्थना-स्तोत्रोंकी ओर भूलोकमें आइये। प्रातःकालमें हम आपकी स्तुति करते हैं। इस लिये हमपर आप कृपा रखिये और आपकी कृपासे हमारी इच्छा सफल होवे। हमें केवल आपहीका आधार है । उससे हमारी इच्छा सफल होवे और हमारा उत्साह और बढ़े। ५ (२०)

## सूक्त १७८.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्र ॥

हे इन्द्र, आप अपने भक्तोंकी प्रार्थनाकी ओर ध्यान देकर उनकी रक्षा करनेके लिये सदा तैयार रहते हैं। आप बड़े दयाशील हैं। इस लिये हम आपकी प्रार्थना करते हैं कि आप हमारे उच्च मनोरथोंका नाश मत् कीजिये। आपके भक्तलोगोंका आपके विषयमें जो काम है वह काम वे ठीक समयपर आपकी कृपासे करें। क्योंकि आप विश्वात्मा-विश्वव्यापी-हैं। १

दोनों भगिनीयोंने (दिन और रात) हमारे लिये जो जो काम किया है उसकी पूर्ति, हे जगत्-पति इन्द्र, आप कीजिये। पवित्र इच्छाओंको उत्पन्न करनेवाले दिव्य जल इन्द्रको जाकर मिलते हैं। वह इन्द्र-जो हमपर प्रेम करता है-हमारा उत्साह बढावे और हमारी आयुकी वृद्धि करे। २

पराक्रमी इन्द्र और उसकी वीर्यशाली सेनाका युद्धमे सदा विजय होता है । इन्द्र प्रार्थना करनेवाले भक्तोंकी पुकार सदा सुनता है। हवि अर्पण करनेवाले भक्तके पास इन्द्र अपना रथ ले जाता है। जब इन्द्र चाहता है तब वह चाहे जिस मनुष्यके द्वारा दिव्य (वेद) वाणीका उच्चारण कराता है। ३

---

५ सुष्टुत इन्द्र [illegible], मान्यस्य कारोः ब्रह्माणि उपओ याहि, (तव) अवसा (दोषा) वस्तो (त्वा) [illegible] (अर्चन्त) [illegible], इषं [illegible] जीरदानुं [illegible] च विद्याम।

१ हे इन्द्र [illegible] उती वनुष सा यद् श्रुष्टि ते अस्ति (तद्) नो ममदन्तम् काम मा आ धक्, [illegible] (च) विश्वा आयु ते परि अश्याम्।

[illegible] (अर्यं) [illegible], [illegible] इन्द्र न घ आ दभन्। [illegible] चित् आप [illegible] (न) न [illegible] वयश्च गमन्।

३ [illegible] इन्द्र [illegible] दाशुषः उपाके रथं प्रजर्ता, यदि च [illegible] गिर उद्यन्ता।

इन्द्र स्वयं सामर्थ्यका अलंकार है। जब इन्द्र अपने भक्तोंकी स्तुति सुनता है तब वह अपनी सेनाके साथ अपने प्रिय भक्तोंकी ओर चला जाता है। जब घमासान युद्ध चलता है तब भी यजमानकी सत्य स्तोत्र-वाणी इन्द्रके अपूर्व गुणोंका वर्णन करती है। ४

हे ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्र, आपहीके बलके कारण घमण्डी और पापी शत्रुओंको हम सहज रीतिसे जीत सकते हैं। हमारी रक्षा करनेवाले आपही हैं। आपही हमारी उन्नति करते हैं। आपहीके आधारसे हमारे मनोरथ शीघ्रतासे सफल होते हैं और हमारा उत्साह बढ जाता है। ५ (२१)

## सूक्त १७९.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–रति ॥

मैं बहुत वर्षोंसे लगातार रातदिन कष्ट उठाता हूं। दिनपरदिन बुढ़ापा पास आ जाता है। बुढापेमें शरीरका प्रत्येक अवयव ढीला पड़ जाता है और शरीरका मोह नष्ट होता है। इस अवस्थामें क्या पुरुष अपनी स्त्रीके साथ समागमसुखका अनुभव न लेवे? १

देखिये। प्राचीन समयमें जो सत्य बात करनेवाले महात्मा पुरुष थे और प्रत्यक्ष देवोंके साथ सच्ची बात करनेवाले महात्मा पुरुष थे वे भी अपने जन्मतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन कर नहीं सके। इस लिये यह बात उचितही है कि स्त्री भी अपने पतिके साथ समागम-सुखका अनुभव ले लेवे। २

---

४ एव (अय) इद्र पृक्ष· प्रखाद·, नृभि· मित्रिणः अभिभूत्। विवाचि समर्ये (अपि) यजमानस्य सत्राकर· शस (अस्य) इष· स्तवते।

५ हे मघवन् वयं त्वया महत मन्यमानान् शत्रून् अभिष्याम, त्व (नः) त्राता त्वमु नः वृधे भुः (येन) इष जीरदानु वृजन विद्याम।

१ पूर्वी शरद अह शश्रमाणा, दोषा वस्तो· उषस· तरयन्तीः (एव); जरिमा (च) तनूना श्रिय मिनाति, (एव सत्यपि) वृषण स्वपत्नी सजगम्युः नु (किम्)।

२ येचित् हि पूर्वे ऋतसापः आसन् (येच) देवेभिः साक ऋतानि अवदन्, ते चित् अव असु·, (नतस्य) अन्तम् नहि आपु· (अत) पत्नीः वृषभिः स जगम्युः नु।

इस तरह मत समझना कि ब्रह्मचर्यव्रत पालन करनेके कष्ट हमने मुफ्त उठाये। क्योंकि देव स्वयं हमारी रक्षा करते हैं। देवोंकी कृपासे हमने अपने शत्रुओंको जीत लिया है। (इससे अधिक हम क्या चाहते हैं?) यदि तुम और हम एक मतसे संसारसुखका अनुभव लेंगे तो हम सहज रीतिसे उससे सैंकडो लाभ उठावेंगे और सुगमतासे संसारकी कठिनताओंको झेलेंगे। ३

जब महानदीका जल रोका जाता है तब उस नदीको बाढ आ जाती है। जिस तरह उस बाढको कोई रोक नहीं सकता उसी तरह मैं अपने इच्छाको दबा नहीं सकता। मैं लोपामुद्राके सम्बन्धमें इतना मोहित हो रहाहूं कि मेरा वीर्य, बुद्धि, और धैर्य भी सब भ्रष्ट हो गये हैं। लोपामुद्रा अबला है किन्तु उसने मेरे बलका हरण किया है। ४

जिस सोमतत्त्वको हम अपने शरीरमें इकठ्ठे करते हैं उसके सामने खड़े रहकर मैं प्रार्थना करता हूं कि जो पाप मैंने किया होगा उसके लिये आप क्षमा कीजिये। क्योंकि मनुष्य प्राणीही ऐसा है जिसके मनमें सैकडो अच्छे और बुरे विचार उत्पन्न होते हैं। ५

जिस तरह जमीन खोदनेसे कष्ट होते हैं उसी तरह तपश्चर्या करनेसे अगस्त्य ऋषिको कष्ट उठाने पडे। नाश न होनेवाले बल और सन्तानकी इच्छा अगस्त्य ऋषिको थी। जब अगस्त्य ऋषिको सामर्थ्य प्राप्त हुआ तब आपने दोनो पक्षोंकी उन्नति की। इस समय ईश्वरके सत्य आशीर्वादका फल भी देव लोकमें आपको मिला। ६ (२२) (२३)

---

३ न मृषा श्रान्तम् यद् (न) देवा अवन्ति, विश्वा स्पृध इत् अभ्यश्नवाव (च), यद् सम्यञ्चा मिथुना (भवान्) अभि अजाव, (तद्) अत्र शतनीथम् आजिम् जयाव इत्।

४ रुधत नदस्य काम मा आ अगन, इत अमुत कुतश्चित् (अपि) आजातः, (इयं) लोपामुद्रा वृषणं (स्वपति) धीरं तृष्णम् मा निरिणाति, श्वसन्तच धयति।

५ [illegible] नु [illegible] पीतम् ([illegible]) अन्तित (वर्तमान) सोमम् उप ब्रुवे यत् सीम् आगः चकृम (स) [illegible] [illegible] हि पुरुकाम।

अगस्त्य ऋषि खनित्रैः (इव तपसा) खनमान, अपत्य, प्रजा, बल (च) इच्छमान, [illegible] [illegible] देवेषु (च) सत्या आशिषः जगाम।

## अनुवाक २४.

### सूक्त १८०.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-अश्विन ॥

हे अश्वीदेव, जब आपका रथ अन्तरिक्षरूपी रजोमय समुद्रके आसपास इधर उधर सञ्चार करता है तब भी आपके अश्व सीधे और सरल मार्गसे ही चलते हैं। आपके सुवर्णमय चक्रके धुरासे अमृतके बिन्दु इधर उधर उडते हैं। आप भी मधुर रस प्राशन करके उषाके साथ इधर आते हैं। १

शीघ्रतासे दौडनेवाले, लोगोका लाभ करनेवाले, पवित्र और वेगवान् सूर्यके पहिले अश्विदेव उषाके साथ आते हैं। जब आप आते हैं तब भक्तलोग इस उद्देश्यसे आपकी स्तुति करते हैं कि आपकी भगिनी उषा आपको अपने साथ ले आवे और हमे दिव्य सामर्थ्य और उत्साहका लाभ होवे। २

दिव्य धेनुके अपक और प्रकाशमय स्तनमे आपने परिपक और उत्कृष्ट अमृततत्व रखा है। हे सत्यस्वरूप अश्वीदेव, जिस तरह अरण्यके बीचमे टेढे मार्गसे चलनेवाला वायु पवित्र होता है उसी तरह पवित्र हृदयसे मैं (जो आपका भक्त हूं) आपकी सेवा करता हूं। ३

हे पराक्रमी अश्वीदेव अत्रिऋषिके लिये आपने जलके प्रवाहकी तरह तीव्र उष्णताको ठण्डा और मधुर कर दिया। इसी लिये हे अश्वीदेव, आपके लिये पशु-यज्ञ किया जाता है और मधुर रस हमारी ओर रथके चक्रकी तरह दौड़ता चला आता है। ४

---

१ हे (अश्विनौ) यद् युवो: रथ: रजांसि अर्णांसि परि दीयत् (तदपि) वाम् अश्वा: सुयमास:, वाम् हिरण्यया पवयः (पीयूष) प्रुषायन्, (हे अश्विनौ) मध्व पिबन्ता उषस: सचेथे।

२ यद् युवम् अत्यस्य, विपत्मन नर्यस्य प्रयज्यो (सूर्यस्य) अव नक्षथ:, (तदा) हे विश्वगूर्ती, हे मधुपौ (स्तोता) ईट्टे यद् वाम् स्वसा वाजाय, इषे च (वाम्) भराति।

३ युवम् (दिव्याया.) गो. आमायाम् उस्रियायाम् (वक्षणाया) पक्व पूर्व्य च पय. यत् अधत्तम्। हे ऋतप्सू वनिन अन्त: ह्वार (वात:) न शुचि हविष्मान् वाम् यजते।

४ युवम् ह एये अत्रये, घर्म अप क्षोदो न मधुमन्तम् अवृणीतम्। तत् हे नरौ, अश्विनौ वाम् पश्व इष्टि:, (अत:) मध्व रथ्या चक्रा इव (न) प्रतियन्ति।

हे अद्भुत कर्म करनेवाले अश्वीदेव, जिस तरह बुड्ढे हुए तुग्रपुत्रने आपको मोहित किया उसी तरह आपको घीकी आहुति देकर मैं आपका मन मोहित करता हूं और आपका आशीर्वाद प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूं। आपके यशने आकाश और पृथिवीको व्याप्त किया है। हे पूजनीय देव, जो पापके ढेर लगे हुए थे उनका आपने बिलकुल नाश कर डाला। ५

हे उदार अश्वीदेव, जब भक्तोंकी ओर जानेके लिये आप अपने अश्वोंको जोतते हैं तब आपके प्रभावसे आपके भक्त बुद्धिमान् होते हैं। बुद्धिमान् भक्त आपको सन्तुष्ट करके वायुकी तरह चारों ओर सञ्चार करते है। सत्कर्म करनेवाला जो भक्त है उसका यश बढानेके लिये आप उसको पवित्र सामर्थ्य अर्पण करते हैं। ६

हम आपकी स्तुति करनेवाले सच्चे भक्त हैं। हम आपके गुणोंका वर्णन करते हैं। धनी मनुष्य यदि धर्मको माननेवाला न हो और कञ्जूस हो तो हम उसकी ओर ध्यान भी नहीं देते। हे निष्कलङ्क और वीर्यवान् अश्वीदेव, सदा ईश्वरका चिन्तन करनेवाले भक्तोंकी आप रक्षा करते हैं। ७

हे अश्वीदेव, सब पुरुषोंमें अगस्त्य ऋषि बड़े श्रेष्ठ हैं। ज्ञानरूपी जलका प्रचण्ड प्रवाह प्राप्त होनेके लिये सबसे श्रेष्ठ अगस्त्यऋषि भी प्रत्येक दिन प्रातःकालको आपको जगाते हैं और 'काराधुनी' नामके सुन्दर वाद्यसे आपकी मनोहर स्तुति गाते हैं। इस तरह वे आपकी प्रार्थना सदा करते रहते हैं। ८

---

५ हे दस्रा, जित्रि· तौग्र्यो न, (अह) वा दानाय, गो· ओदेन च आववृतीय। आप. क्षोणी च वाम् महिना ववृते, हे यजत्रा, अहसः अक्षु वाम् (पुरा) जूर्णः (एव)।

६ हे सुदानू यद् नियुत नि युवेये (तदेव) स्वधाभि (भक्तहृदि) पुरधिम् सृजथ·। (तत) सूरि (स.) वात. न देषन् (वाम्) प्रेषच (स) सुव्रत न (अस्य) महे वाजम् आद दे।

७ वय वाम् जरितार सत्या चित् हि, विपन्यामहे, पणि वि हितवान्। अधा चित् हि स्म हे अनिन्द्यौ वृषणौ अश्विनौ (त) अति देवम् पाथ. हि स्म।

८ हे अश्विनौ विश्वस्य (ज्ञानस्य) प्रस्रवणस्य सातौ, नरा नृषु प्रशस्त. अगस्त्य. काराधुनीव (मधुघोषै.) ददृते (ददे) युवा चित् हि अनुद्यून् चितयन् स्म।

जगह-सञ्चार करनेवाले हे अश्वीदेव, आपका रथ स्वर्गमें भी जा सकता है। आप रथमे बैठकर चाहे उधर जाते हैं। किन्तु जब आप हमारी ओर आते हैं तब किसी मनुष्यका रूप धारण करके होता बनकर आते है। इस लिये हमारे यजमानको आप बुद्धिरूपी उत्तम अश्व अर्पण कीजिये। हे नासत्य, हम भी आपके ऐश्वर्यके भागी होंगे। ९

हे अश्वीदेव, आपके रथचक्र कभी नहीं टूटता है। आपका रथनक्षत्र लोकके चारो ओर-सञ्चार करता है। ऐसे आपके यशस्वी रथको हमारे कल्याणके लिये हम स्तोत्रोंके द्वारा बुलाते है। इस तरह इच्छाको शीघ्रतासे सफल करनेवाला और हमारा उत्साह बढ़ानेवाला आपका सहारा हमे प्राप्त होगा। १० (२४)

## सूक्त १८१.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–अश्विन ॥

हे अश्वीदेव, आप बड़े दयाशील हैं। सात्विक सम्पत्ति देनेवाले और सात्विक प्रेम करनेवाले आपही है। स्वर्गके जलका अंश आप कब लावेंगे? हे दिव्य सम्पत्ति देनेवाले अश्वीदेव, इस यज्ञके द्वारा हम आपके गुणोंकी प्रशंसा करते है। १

आपके रथके पवित्र और दिव्य अश्व अमृतका प्राशन करनेवाले वायुकी तरह बलवान्, मनकी तरह वेगवान्, वीर्यवान्, हृष्टपुष्ट, और निजके तेजसे प्रकाशित होनेवाले है। वे अश्व आपको हमारी ओर बड़ी शीघ्रतासे ले आवे। २

जिस तरह ढालू जमीनपरसे जलका प्रवाह बड़े वेगसे बहता है उसी तरह आपका रथ बड़े जोरसे चलता है। रथ हाकनेवालेका जो स्थान उस रथपर बना हुआ है वह भी बड़ा चौड़ा है। हमारा कल्याण करनेके लिये वह रथ हमारी ओर आवे। ध्यान और चिन्तन करनेयोग्य हे अश्वीदेव, मन सबसे चञ्चल है, किन्तु आपका पवित्र रथ मनसे भी अधिक चञ्चल है। आपका रथ बड़े ठाठसे सबके आगे चलता है। ३

---

९ हे स्पन्द्रा, यत् रथस्य महिना प्रवहेथे, (तदा) (कश्चित) मनुष होता न (अस्मान्) प्र याथः। उतवा हे नासत्या (न) सूरिभ्य (प्रज्ञामय) सु अश्व्यम् धत्तम् (येन वयमपि) रयिषाच स्याम।

१० हे अश्विनौ वाम् तम् नव्य अरिष्टनेमि द्याम् परि इयान रथ वयम् अद्य (न) सुविताय स्तोमैः हुवेम, (येन) इष जीरदानुम् वृजन च विद्याम।

१ प्रेष्ठौ, इषा रयीणा च अध्वर्यन्तौ युवाम् यत् अपाम उत् निनीथ (तत्) कत् उ? हे वसुधिती हे। जनाना अवितारौ, अयम् यज्ञ वाम् प्रशस्तिम् अकृत।

२ वाम् अश्वास शुचय पयस्पा वातरहसः, दिव्यास, अत्याः, मनोजुव, वृषण वीतपृष्ठा स्वराज (अश्वा) ए अश्विना युवाम् आ वहतु।

३ (अयम्) प्रवत्वान् अवनि न, वाम् रथ सुप्रवन्धुर (न) सुविताय आ गम्या। हे स्थातारौ, हे धिष्ण्यौ य (रथ) अदृपूर्व, वृष्ण मनस (अपि) जवीयान्।

इस यज्ञमें प्रकट होनेवाले अश्वीदेव, आपके गुणोंका वर्णन सब लोग वारवार करते हैं। आपकी मूर्ति निष्कलंक और कीर्ति पवित्र है। इस लिये आपका स्तोत्र सब लोक गाते हैं। इससे यह विदित होता है कि आप दोनोंमेसे एक हमारे यज्ञका नेता है और दूसरा द्युलोकका भाग्यवान पुत्र है। ४

बड़े वेगसे नीचे दौड़नेवाला और उच्च उच्च शिखरका आपका सुवर्णमय रथ, आपकी इच्छासे आपके भक्तोंकी ओर आवे। हे अश्वीदेव, आप दोनोंमेसे एककी स्तुति करनेसे भी स्तोताको सामर्थ्य प्राप्त होता है। रथके अश्व हृष्टपुष्ट हो जाते हैं और अपने हिनहिनानेसे अन्तरिक्षको व्याप्त करते हैं। ५ (२५)

शरदृतुमे धान्यरूपी सम्पत्ति आपके रथमें रखी जाती है। आपका रथ भी उत्साह देनेवाले अमृतके बिन्दुओंकी वर्षा करता है और इधर उधर सञ्चार करता है। जब हम आप दोनोंमेसे एककी स्तुति करते है तब हमें सामर्थ्य प्राप्त होता है, बड़ी बड़ी नदीयोंको बाढ़ आती है और जलके प्रवाह हमारी ओर बहते हैं। ६

सबको नियमके अनुसार चलानेवाले अश्वीदेव, आपकी पुरानी स्तुतिका प्रवाह बड़े जोरसे मेरे मुहसे बाहर निकलता है। उस स्तुतिसे आप सन्तुष्ट हूजिये और हमपर कृपा कीजिये क्योंकि मैं आपका भक्त हूं। जब आप सञ्चार करते हैं और विश्रान्ति लेते हैं तब भी मेरी ओर ध्यान दीजिये। ७

---

४ इह इहेव जाताः (यत्) अवावशीताम् (तद) अरेपसा तन्वा, स्वैः नामभिः (च) वाम् अन्य (नः) सुमखस्य जिष्णु सूरि (भवति) अन्यश्च दिव सुभगः पुत्रः (इति) ऊहे।

५ वाम् निवेद, ककुह, पिशङ्गरूप (रथ वाम्) वशा अनु (न) सदनानि प्र गम्याः। हे अश्विना, वाम्) अन्यस्य वाजि हरी परिपप्रन्त, मथ्रा (च तौ) घोषै रजांसि वि (आप्यायतः)।

६ वाम् (रथ) शरद्वान् न वृषभ निष्पाट् (च), मध्व इष्णन् पूर्वीः इषः प्र चरति। (वाम्) अन्यस्य वे वर्जे (ना) परिपप्रन्त, (ता) ऊर्ध्वा वेपन्ती नद्य नः आ अगुः।

७ हे वेधसा अश्विना, त्रेधा वाम् इ जरती स्वविरा (च) वाम् गी असर्जि। (अस्याम्) उपस्तुतौ (उपन्) ... अवतम्, आसन् नयामन् (च) मे हव शृणुतम्।

यज्ञगृहमे तीन दर्भासन रखे जाते है। वहा आपके उज्वल और तेजोमयरूपकी स्तुति की जाती है। उस समय भक्तोंके हृदयमे आपके लिये प्रेम उत्पन्न होता है। हे वीर पुरुष, जब आप हमारे मनोरथ पूर्ण करते है तब आप ज्ञानरसकी वर्षा करते है और मनुष्योंकी इच्छा सफल करके उनका ऐश्वर्य बढाते हैं। ८

हे अश्वीदेव, पुषादेवके समान आप भी सब लोगोंकी रक्षा करते हैं। ज्ञानवान् भक्त आपको हवि अर्पण करते हे और वे जिस तरह अग्नि और उषाकी स्तुति करते हे उस तरह वे आपकी भी स्तुति करते है। सच प्रेमसे मै आपकी स्तुति और प्रार्थना करता हू। इस लिये आप एसी कृपा हमपर कीजिये जिससे हमारी इच्छा सफल होवे और हमारा उत्साह बढे। ९

## सूक्त १८२.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–अश्विन ॥

देखिये, अश्वीदेवोके आनका चिन्ह दिखाई देने लगा; चलो, आगे चलो । देखिये यहां पराक्रमी पुरुषोका रथ खडा है । हे ज्ञानवान् भक्तलोग, अश्वीदेवोको सन्तुष्ट कीजिये । सद्बुद्धि देनेवाले आपही है। मनुष्य जातिको दयारूपी सम्पत्ति देनेका सामर्थ्य आपके पास है। आप ध्यान करने योग्य हैं। द्युलोकसे वे प्रकट होते हैं। केवल पुण्यवान् पुरुष आपके पवित्र सत्वका अनुभव ले सकते है। १

हे अश्वीदेव, (पराक्रममे) इन्द्र और आप एकसे ही है। आप चिन्तन करने योग्य है। मरुतोंकी तरह आप शत्रुओका नाश करनेवाले और अपूर्व काम करनेवाले है । आप रथपर आरूढ होते हैं। हे अश्वीदेव, अमृत–रससे भरे हुए रथमे बैठकर हवि अर्पण करनेवाले भक्तोकी ओर आप चले जाते हैं। २

---

८ उत त्रिवर्हिपि सदने वाम् रुशत. वप्सस. स्या गी (प्रयतान्) नॄन् पिन्वते । हे वृषणा, (अयम्) वाम् वृपा (वरद) मेघ गो सेके न मनुष दशस्यन् (तान्) पीपाय ।

९ हे अश्विना युवाम पूषव, अग्नि उषाम् न पुरन्धि हविष्मान् (वाम्) जरते । यत (अहम्) वरिवस्य गृणान. वाम् हुव (तद्) इपम् जीरदानु वृजनम् वियाम ।

१ (पश्यत यत) इद (अश्विनो वयुनम् (पुरत·) अभूत, ओ पु भूषत, (अय) वृषण्वान् रथ, ह मनीपिण (ऋत्विज एतान्) मदत । (इमावपि) धिय जिन्वा धिष्ण्या, विश्पलावसू, दिव. नपाता, सुकृते शुचिव्रता (च)।

२ (वाम्) इन्द्रतमा, धिष्ण्या हि, (युवाम् च) मरुत्तमा दस्रा, दसिष्ठा, रथ्या रथीतमा, पूर्ण रथ मध्व आचितम् वहेथे, तेन च हे अश्विना दाश्वासम् उप याथ. ।

हे सामर्थ्यवान् देव, आप क्या करते हैं ? आप क्यों ठेरे हुए हैं ? यहांके लोक देवोंको हवि अर्पण करनेके बदले अपने घमण्डमें मग्न हुए हैं। इस लिये उनको छोड़ देना चाहिये। धर्मभ्रष्ट और दुष्ट लोगोंकी आयुको घटाकर देवोंके गुणोंका वर्णन करनेवाले भक्त लोगोंको ज्ञानरूपी प्रकाश आप अर्पण करें। ३

( सज्जन लोगोंको ) गाली देनेवाले लोगोंका आप नाश कीजिये । सत्पुरुषोंके शत्रुओंका भी आप नाश कीजिये। हे अश्विदेव, आप सब बातें जानते ही हैं। ( हमारी ओरसे प्रार्थना करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है ) । स्तुति करनेवाले लोगोंकी प्रार्थना सफल होवे। हे सत्यस्वरूप अश्विदेव, आप दोनों मेरे स्तोत्रोंको सफल करें। ४

तुग्रपुत्रके लिये आपने महासमुद्रमें एक आनन्द देनेवाली और सजीव नौका–जिसके पंख थे–तैयार की। आप उडनेमें बडे कुशल हैं। ईश्वरकी ओर ध्यान लगानेवाले भक्तोंके साथ आप अपने उस नावसे उदककी उछलनेवाली लहरोंके ऊपर समुद्रके परे उड गये। ५

तुग्रपुत्र जब महासागरमें फेंका गया था तब वह गाढ़े अतन्त अन्धेरेमें डुब गया था। अश्विदेव जिनकी प्रेरणासे समुद्रमें उन चार नावोंको चलाते थे । समुद्रमें उन चार नावोंका बहुतही उपयोग होता है। वे ( नाव ) समुद्रके परे उसको ले जाते हैं। ६

---

३ हे दस्रा अत्र किम् कृणुथः, किम् आसाथे, ( अयं ) जनः यः कश्चित् अहविः महीयते ( च ) ( तद् ) अति क्रमिष्टम्, पणेः असु जुरतम्, वचस्यवे विप्राय ( मे ) ज्योतिः कृणुतम्।

४ रायतः शुनः अभितः जम्भयतम्, हतम् मृधः, हे अश्विना, ( ए ) तानि विदथुः। जरितुः वाचं वाचं रत्निनीम् कृतम्, हे नासत्या ( युवाम् ) उभा मम शंसम् अवतम्।

५ युवम् तौग्र्याय सिन्धुषु, आत्मन्वन्तम् पक्षिणम् प्लवम् ( एकम् ) कम् चक्रथुः। येन सुपप्तनी ( युवाम् ) क्षोदसः महः पेतथुः देवत्रा मनसा ( तेन सह च ) निरूहथुः।

६ अप्सु अन्तः अवविद्धं तौग्र्यम् अनारम्भणे तमसि च प्रविद्धम् जठलस्य जुष्टाः अश्विभ्याम् इषिताः चतस्रः नावः उत् पारयन्ति ( तम् )।

जिस तरह जलमे डुबे हुए मनुष्यको वृक्षका आधार मिलता है उसी तरह घबरे हुए तुग्रपुत्रको समुद्रमे आपहीका (मानो वज्रवान वृक्षका) आधार मिला; मानो नीचे गिरते हुए पशुको उडनेके लिये पंख प्राप्त हुए। हे अश्वीदेव, आपने तुग्रपुत्रकी रक्षा की। इस लिये आपकी कीर्ति बहुत दूरतक फैली हुई है। ७

वीर्यशाली सत्यस्वरूप अश्वीदेव, मानपुत्रोंने आपकी जो स्तुति की है वह आपको प्रिय होवे। जब हम आपको सोम अर्पण करते है तब आपकी कृपासे हमारी इच्छा शीघ्रतासे सफल होवे और हमारा उत्साह बढे। ८ (२८)

## सूक्त १८३.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–अश्विन ॥

हे वीर्यशाली अश्वीदेव, आप अपना रथ जोतकर तैयार कीजिये। आपका रथ मनसे भी अधिक वेगवान् है। उसमे बैठनेके लिये तीन स्थान हैं और उसके तीन चक्र है। जिस तरह पक्षी अपने पखोसे उडता है उसी तरह आप भी अपने रथमें–जिसके तीन तत्वरूपी चक्र होते हैं–बैठकर अपने भक्तोके घर चले जाते है। १

जब आप अपनी दयाका सामर्थ्य दिखलानेके लिये रथमें बैठकर आते हैं तब आपका रथ बड़ी शीघ्रतासे और सीधे मार्गसे पृथिवीकी ओर आता है। जिस तरह आप आकाश-कन्या–उषाके साथ चले जाते हैं उसी तरह हमारी सुन्दर स्तुति भी आपके साथ शीघ्रतासे दौड़े। २

---

७ यम् नाधित तौग्र्य पर्यषस्वजत (स) अर्णस मध्ये निष्ठित वृक्ष कस्वित? (येन) पतगो मृगस्य आरभे पर्णा इव (अश्ववत्), हे अश्विना (एवम् युवाम् स्व) श्रोमताय (एन) कम् उत् ऊह्थु।

८ हे नरा नासत्या यद मानास: वाम् उचथम् अवोचन् तत् वाम् अनुस्यात्। अथ अस्मात् सोमस्य न सदस, इषम् जीरदानुम् वृजनम् विद्याम।

१ हे वृषणा मनस य जवीयान् य. त्रिवन्धुर: त्रिचक्रश्च (रथ.) त युञ्जाथाम्। येन त्रिधातुना (रथेन) वि पर्णे न, (युवाम्) पतथ, सुकृत दुरोणम् च उपयाथ।

२ यत् रतुन ता (युवाम्) पृक्षे अनुतिष्ठत (तत् स) रथ (अपि) अभिक्षाम् येन सुवृत वर्तते। (यथा युवाम्) वपुष्या दिव दुहित्रा उषसा सचेथे (तथा) इयम् गी (व) वपु सचताम्।

भक्तोंने अर्पण किये हुए हवियोंसे भरा हुआ आपका रथ आपकी आज्ञाके अनुसार सीधे मार्गसे चलता है । उसी रथमें आप बैठिये । हे शूर-सत्यस्वरूप अश्विदेव, उपर्युक्त रथमें बैठकर आप अपने भक्तों और उनके पुत्रों और पौत्रोंको जागृत करके उनको वृद्धि अर्पण करनेके लिये उनके घर चले जाते है । ३

हे अश्विदेव, आपका (क्रोधरूप) भेड़ियां और भेडी दोनों हमारा नाश न करें । आप हमारा त्याग मत कीजिये । हमें छोड़कर दूसरी जगह मत् जाइये । देखिये, आपके लिये यहा हविर्भाग रखा हुआ है । हे महापराक्रमी अश्विदेव, मधुर सोमरससे भरे हुए बरतन भी आपके सामने रखे हुए है । ४

हे अद्भुत् पराक्रम करनेवाले अश्विदेव, गोतमऋषि, पुरुमिळ्ह, और अत्रिऋषि भी आपकी कृपा प्राप्त करनेके लिये आपको हवि अर्पण करते हैं और आपकी स्तुति करते है । हे नासत्य, जिस तरह नियमके अनुसार चलनेवाला मनुष्य अपनी इच्छा सफल करनेके लिये सीधे मार्गसे चलता है उसी-तरह आप भी मेरी इच्छा सफल करनेके लिये सरल मार्गसे मेरी ओर आइये । ५

अब हम (अज्ञानरूपी) अन्धकारके परे पहुंचे हैं । इस लिये, हे अश्विदेव, हमने जो आपके गुणोंका वर्णन किया है वह हम आपहीको अर्पण करते हैं । जिस मार्गसे देव चलते हैं उसी मार्गसे आप हमारी ओर आइये । हमारी इच्छा शीघ्रतासे सफल करके आप हमारा उत्साह बढावे । ६ (२९) (४)

---

३ यो (इयम्) वाम् रथः हविष्मान् व्रतानि अनुवर्तते (तम्) सुवृतम् आ तिष्ठतम् । हे नरा नासत्या येन (रथेन) वर्तिः, त्मने तनयायच [illegible] याथ. ।

४ वाम् (क्रोध) वृक (अस्मान्) मा, वृकी (अवकृपा अपि) मा आ दधर्षीत, मा परिवृक्तम् उत मा अति धक्तम् । अयं वा भाग. निहित इयम् गीः, हे दस्रौ इमे वाम् मधूनाम् निधय ।

५ हे दस्रा, गोतम पुरुमीळ्ह अत्रिश्च हविष्मान् युवाम् अवसे हवते । यन्ता ऋजुयेव दिशम् दिश न हे नासत्या, मे हवम् उप आयातम् ।

६ [illegible] तमस पारम् अतारिष्म, हे अश्विना, (अयम्) स्तोमो (पि) वाम् प्रति अधायि । (तः) [illegible], (येन) इषम् जीरदानु वृजनम् विद्याम ।

॥ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

... Bombay No 2 & published at ... by ... Bhalchandra ...